वैद्यक-शिक्षा

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त,
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार संग्रह, रसेन्द्रचिन्तामणि,
तथा भैषज्य रत्नावली, आदि आयुर्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

आयुर्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक विषयों की सचित्र पुस्तक।

तृतीय संस्करण।

गवर्णमेण्ट मेडिकेल डिप्लोमाप्राप्त, पेरिस केमिकल सोसाइटी,
लण्डन सर्जिकेल एड् सोसाइटी और लण्डन केमिकल
इण्डस्ट्री के मेम्बर तथा श्री बनवारीलाल
आयुर्वेदीय विद्यालय के परीक्षक
श्रीनगेन्द्रनाथ सेन वैद्यशास्त्री सङ्कलित।

नगेन्द्र स्टीम् प्रिण्टिंग वर्क्स्—कलकत्ता।
सन्—[illegible]।

दाम—२) दो रुपये।

आयुर्व्वेदीय औषधोंके हिन्दी और बङ्गला भाषा का

निर्घण्ट।

अ

अक्ष तैल—हि॰ बहेडेका तैल।

अक्षोट—हि॰ अखरोट। बं॰ आखरोट।

अगरु—हि॰ अगर।

अग्निदमनी—हि॰ आगी घमासा।

अग्निजार—हि॰ अग्निजार।

अग्निमन्थ—हि॰ अरनी, अगेथु, गणियारी।

अजगन्धा—हि॰हुरहुर,हुलहुल।

अजमोदा—हि॰ अजमोदा बं॰। बनजमानी।

अजकर्ण—हि॰ बडाशाल। बं॰ भाजोशाल।

अर्जक—हि॰ अजबला।

अर्ज्जुन—हि॰ कोहा,कोह। बं॰ अर्जुन।

अतसी—हि॰ अलसी।

अतसी तैल—हि॰ अलसीकातैल।

अतिबला—हि॰ कंगई, कंघई, ककहिया, पिटारी। बं॰ पीतबेडेला।

अतिविषा—हि॰ अतीस। बं॰ आतइच।

अतिमुक्ता—हि॰ रायनेवारी, रायबेल।

अपवर्दण्ड—हि॰ रामशर।

अपामार्ग—हि॰ औंगा, चिरचिरा। बं॰ अपांग।

अभ्रक—हि॰ अभ्रक, अबरख।

अम्बष्ठा—हि॰ अमारी,मोइया। बं॰ मोचिका।

अमरवल्लरी—हि॰ अंमरबेल, आकाशबवरी।

अमृतश्रवा—(चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध है।

अम्लपर्णी—हि॰ रामचना।

अम्लवेतस—हि॰अम्लवेत,चेकल।

अम्लदाडिम्ब—हि॰खट्टा अनार।

अरण्यकुसुम—हि० कुसुम, कुम, दाना।

अरण्यकार्पासी—हि० बनकपास।

अरण्यकुलत्थिका—हि० बन-कुरथी। बं० बनकुलत्थ।

अरण्यजीरक—हि० बनजीरा।

अरण्यसूरण—हि० जङ्गली सूरण।

अरिमेद—हि० हिवर।

अर्क—हि० आक, मदार, आकड़ा। बं० आकन्द।

अद्रक—हि० आदी, अद्रक। बं० आदा।

अशोक—हि० अशोका। बं० अशोक।

अश्मन्तक—हि० सिरहटा, कमिमिलौरा।

अश्वखुरा—हि० सफेद गोकर्णी, सफेद कोयल। बं० दापर माली। श्वेतअपराजिता।

अश्वगन्धा—हि० असगन्ध। बं० अश्वगन्धा।

अश्वकार्यरिका—हि० घोड़े का घरा।

अश्वकर्ण—हि० छोटासाल। बं० ग्राज, शाल।

अश्वत्थ—हि० पीपरवृक्ष।

अश्वत्थी—हि० छोटा पीपल।

असन—हि० असन।

असितबन्धूक—हि० काला दुपहरिया।

अक्षोट—हि० ढेरा टेरा। बं० बेल पाकड़ा।

अहिफेन—हि० अफीम, अमल-आफू। बं० अहिफेन।

आ

आकाशमांसी—हि० आकाश जटामासी।

आखुकर्णी—हि० मूसाकर्णी। बं० इन्दूरकाणिपाना, कानीदन्ती।

आखुपाषाण—हि० सोमल।

आढकी—हि० अरहर, रहरी।

आदित्यपत्र—हि० आदित्यपत्र।

आदित्यभक्ता—हि० हौंचली, हुरहुज।

आमलकी—हि० आमला, आमरा। बं० आमलकी।

आम्र—हि० आम।

आम्रातक—हि० अबाडा। (कोकण देशमें प्रसिद्ध)।
आम्रनिशा—हि० आंबाहल्दी।
आरग्वध—हि० बडा अमलतास।
आरामबोलिका—हि० लोनी शाक भेद।
आरामशीतला—हि० आराम शीतला।
आरि—हि० वलिखदिर, मट्टिकफल।
आरुक—हि० आलुबुखारा।
आवर्तकी—हि० बडी जाल, रक्त बाहुली।
आसुरी—हि० राई बं० सरिषा।
आह्लो—हि० रग।

इ

इट्—हि० गाडा, पांडा, ईख।
इत्कुदर्भी—हि० इत्कुदर्भ।
इंगुदी—हि० हिंगोट गोटी।
इंगुदी तैल—हि० हिंगोटका तैल।
इन्दीवरा—हि० उतरण।
इन्द्रजव—हि० इन्द्रजव।
ईश्वरलिङ्गिका—हि० शिवलिङ्गी।

उ

उत्पल—हि० नील कमल।
उत्पलिनी—हि० चन्द्रविकाशी, कमलिनी।
उदुम्बर—हि० गूलर। बं० यज्ञ डुमुर।
उपकुञ्चिका—हि० कलौंजी, मगरैला। बं० कलौंजी।
उपोदकी—हि० बडी पोई। बं० पुइशाक।
उशीर—हि० खस, कालावाल। बं० व्याणारमूल।
उष्ट्रकाण्डी—हि० उताटी।

ऊ

ऊखल—हि० ऊखलहण।

ऋ

ऋषभक—गौड वो काश्मीरमें प्रसिद्ध।
ऋद्धि—गौड देशमें प्रसिद्ध।

ए

एकवीर—हि० एकवीर।
एरण्ड तैल—हि० अडीका तेल।
एला—हि० इलायची, छोटी लायची। बं० छोट इलाइच।

एलावालुक—हि० एलवा। बं० ? लाल।

एर्वारु—हि० बड़ी ककड़ी।

ऐ

ऐन्द्री—हि० इन्द्रायन। बं० राखालशशा।

औ

औखर—हि० खारी नोन।

औद्भिद—हि० सूर्याक्षार, रेह-गवा, रेहसमानोन, रेहका निमक।

क

कटभी—हि० काली कटभी, करही।

कट्फल—हि० कायफर। बं० कट्फल।

कटुतुम्बी—हि० कड़ई तोरई तितलोकी। बं० तितलाऊ।

कटुका—हि० कुटकी। बं० कटकी।

कटुघोषक—हि० कड़ुई तूरी, कड़ुई गुमकाँव। बं० घन-धुंदकी।

कटुकची—हि० कड़वंची।

कटुनिष्पाव—हि० कड़वा नि-ष्पाव।

कटफल—हि० काय फर। बं० कट्फल, कायफाल।

कणगुग्गुल—हि० कणगूगल।

कतक—हि० निर्मली। बं० नि-र्मला।

कत्तृण—हि० रोहिस, रौहिषा, गन्धेज घास। बं० गन्धकर्पूर।

कदली—हि० केला, केरा।

कदम्ब—हि० कदम्ब, कदम।

कपर्दक—हि० कौड़ी।

कपिलशिंशपा—हि० पीला सि-सम।

कपित्थ—हि० कैथ। कबीदबेल।

कमल—हि० कमल। बं० पद्म।

करमर्द—हि० करौंदा, करौंदी। बं० करमचा।

करञ्ज—हि० करञ्जा, कटकरञ्जा।

करञ्जतैल—हि० करञ्जुका तैल।

करीर—हि० करील करेल, करैल।

कर्कशो—हि० करशोरणो (को-कण देशमें प्रसिद्ध है।)

कर्कट—हि० काकड।

कर्कटी—हि०—ककडी, काकड़ी। वं० कांकुड़।

कर्कोटकी—हि० खेकसा, ककोडा। वं० कांकरोल।

कर्चूर—हि० कचूर। वं० शठी।

कर्णस्फोटा—हि० कानफोडा।

कर्णिकार—हि० छोटा अमलतास, धनवहेरा, सोनालु, किरवारो। वं० छोटा सोंदाल।

कर्पूर—हि० कपूर। वं० कर्पूर।

कर्पूर तैल—हि० कपूरका तेल।

कर्पूरमणि—हि० करपुरनिया।

कलाय—हि० मटर केराव।

कलिकारी—हि० कलिहारी करिहारी, कलहिंस। वं० ईशलांगला।

कलिङ्ग—हि० तरबूज। वं० तरमूज।

कल्हार—हि० सफेद कमल चन्द्रविकाशी।

कस्तूरी—हि० कस्तूरी। वं० मृगनाभि।

कस्तूरीमल्लिका—हि० कस्तूरी मोतिया।

काकनासा—हि० कौआठोठी। वं० काकठुडो।

काकमाचिका—हि० मकोय, कवैया। वं० काकमाची, गुडकामाई।

काकजंघा—हि० काकजङ्घा, मसी। वं० काकजंघा।

काकजम्बू—हि० नदी जामुन। वं० नदी जाम।

काकतिन्दुक—हि० काकतेंदू।

काकलीद्राक्षा—हि० किसमिस।

काकादनी—हि० कामारी। काकफल।

काकोली—हि० काकोली।

कामवृद्धि—हि० कामजहच।

कारवल्ली—हि० करैला। वं० करोला।

कारस्कार—हि० कुचला।

कासमर्द—हि० कसोदी, अगोय।

कारी—हि० कारी।

कालाञ्जनी—हि० कालोकपास।

कार्पासी—हि० लाल कपास।

काश्मरी—हि० गभारी, कभारी खुमेर। वं० गाम्भारी।

काष्ठकदली—हि० काठकेला।

काष्ठधात्री—हि० छोटा ग्रामला।
काष्ठदारु—हि० काठ देवदार।
काष्ठागरु—हि० काष्ठागर।
कासालु—हि० कासालु।
कासीस—हि० उसोस।
कुटज—हि० कुड़। वं कुड़ची।
कुटम्बिनी—हि० अंधा होली।
कुणञ्जर—हि० लैसूरा।
कुद्दाल—हि० वनको कोदो।
वं० वनकोद्रव।
कुञ्जक—हि० कुब्जा।
कुमुद—हि० सफेद कमल चन्द्र विकाशी।
कुरी—हि० कुरोधान्य।
कुलत्थिका—हि० वनकुरथी।
कुलित्थ—हि० कुल्थी। वं० कुलत्थकलाई।
कुलञ्जन—हि० कुलिञ्जन।
कुष्ठ—हि० कूठ। वं० कुड़।
कुसुम तैल—हि० कुसुमके वीजका तेल।
कूष्माण्डी—हि० कुम्हड़ा, कोहड़ा, पेठा। वं० माचिकमुड़ा।
कृमीगन्ध—हि० कृमीगन्ध।

कृष्णजीरा—हि० शाहजीरा।
कृष्णत्रिवृत्—हि० काली निसोथ। वं० श्यामतेउड़ी।
कृष्णकुटज—हि० कालाकुड़ा।
कृष्णकरवीर—हि० काली कनेर। वं० कृष्णकरवी।
कृष्णधत्तूर—हि० काला धतूरा। वं० कृष्णधुतुरा।
कृष्णतुलसी—हि० कालीतुलसी।
कृष्णमरुवक—हि० कालामरुआ।
कृष्णसारिवा—हि० कालीसर, करिआसाठ। वं० श्यामालता
कृष्णागरु—हि० काला अगर।
कृष्णार्जक—हि० काला अजवला।
कृष्णोदुम्बरिका—हि० कठूमर, कटूम्बर। वं० डुमुर।
केतकी—हि० केवड़ा, गगनधूल।
केना—हि० केना।
केविका—हि० केवा।
कैडर्य—हि० कृष्णनिंव, बरसंग, महारुख। वं० कार्यफली।
कोकनद—हि० लाल कमल।
कोकिलाक्ष—हि० तालमखाना। वं० कुलिखाड़ा।

कोद्रव—हि० कोदों, कोदव। व गोम।

कोलकन्द—हि० जङ्गली प्याज, कोलिकांदा।

कोविदार—हि० पीला वच नार। बं० पीत काञ्चन।

कोशातकी—हि० झिमनीलता, जङ्गली (गरका) तोरई श्रडवी तोरई।

कोशाम्र—हि० कोशाम। बं० केवडाफल।

कोशाम तैल—हि० कोशमका तेल।

कौसुम्भशाक—हि० कुसुमशाक।

कङ्कुष्ठ—हि० कङ्कुष्ठ, ताडिका कङ्कुष्ठ।

कक्कोल—हि० कबाबचीनी, शीतलचीनी, चीनीसवार। बं० काकला।

कङ्गुल—हि० कागनी। बं० कागनी धान्य।

कण्टकरञ्जपुङ्खा—हि० कण्टपुङ्खा।

कण्टकारी—हि० कटेरी, लघु कटाई, भटकटैया, रगनी कटाली। बं० कण्टकारी।

कंथारी—हि० नागफनी, थूहर।

कन्दगुडूची—हि० कन्दगिलोय।

काचलवण—हि० काचलोण, कचिया लवण।

काण्डीर—हि० चिरचिरा, काडवेल।

काण्डेक्षु—हि० कास व केशी।

कान्तलोह—हि० कान्तलोह।

काम्भोजी—हि० सफेद घुंगची, चिरमिटीगुञ्ज, छोटली। बं० श्वेतकूंच।

कास्य—हि० कासा।

किञ्जल्क—हि० कमलकेसर।

कुङ्कुम—हि० केसर। बं० कुङ्कुम।

कुन्द—हि० कुन्द।

कुन्दरु—हि० सालईका गोंद, कुन्दरु। बं० कुदरखोटी।

कुम्भी—कोंकणप्रदेशमें प्रसिद्ध।

ख

खटिका—हि० खड़िया।

खड्गशिम्बी—हि० गोरजियासेव, सेम। बं० श्वेतसिम, मोगलाईसिम।

खदिर—हि० खैर।

खदिरसार—हि० खैरसार, कत्था।
खर्परो—हि० खापरियाॅ।
खर्जूरो—हि० जङ्गली खजूर।
खसखस—हि० खसखस। वं० गोस्तदाना।
खण्ड—हि० वं० चीनी, शक्कर।

ग

गणिकारी—हि० मदनमादनी।
गर्मोटिका—हि० जरणी तृण।
गार्जर—हि० गाजर।
गारुत्मज हि० पन्ना।
गिरिकदली हि० जंगली केला।
गुग्गुल—हि० गूगल, गूगर। वं० गुग्गुल।
गुच्छकन्द—हि० गुच्छकन्द।
गुच्छकरञ्ज—हि० गुच्छकरञ्ज।
गुड—हि० गुड़।
गुडकन्द—हि० कसेरु, केचुक, चिचोड। वं० केसुर।
गुडूची—हि० गिलोय। वं० गुलञ्च।
गुडामिनी—हि० गोदपटेर।
गुण्डाला—हि० गोंडाला।
गृहकन्या—हि० घीकुवार, ग्वारपाठा। वं० घृतकुमारी।
गैरिक—हि० गेरू।

गोक्षुरक—हि० गोखरू। वं० गोक्षुरी।
गोजिह्वा—हि० गोभी। वं० गोजिया, दानाशाक।
गोधापदी—हि० गोह्वालिया।
गोधूम—हि० गेहूँ।
गोपालकर्कटी—हि० गोपाल काकडो।
गोमय—हि० गोबर।
गोमूत्र—हि० गोमूत्र।
गोमूत्रिका—हि० गोमूत्रतृण।
गोमेद—हि० गोमेद।
गोरक्षतुम्बी—हि० गोलतुम्बी।
गोरक्षदुग्धी—हि० गोरखदूधी।
गोरक्षी—हि० गोरख इमली।
गोरोचन—हि० गोलोचन। वं० गोरोचना।
गोलोमी—हि० गोलोमी। वं० भंड़कैश।
गोस्तनी—हि० कालीदाख।
गौरसुवर्णशाक—चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध।
गङ्गापत्री—हि० गङ्गापत्ती।
गण्डपूर्वा—हि० गांडरदूब।
गन्धक—हि० गन्धक।

गन्धपत्ता—हि॰ कपूरहल्दी, गन्धपलाशी।
गन्धनाकुली—हि॰ सरहटी, गंडिनी, सुगन्ध नकुलकन्द। वं॰ सर्पकङ्कालिका।
गन्धमांसी—हि॰ गन्धमांसी।
गुण्डाला—हि॰ गोंडाला।
गृञ्जन—हि॰ लालमुठा।
ग्रन्थिपर्णी—हि॰ गठिवन, गठीना। वं॰ गेंठेला।

घ

घृत—हि॰ घी।
घृतकरञ्ज—हि॰ घीयकरञ्ज, घीकारञ्ज।
घोटी—हि॰ घोटी।
घोली—हि॰ लोनिया शाक, लोनी।

च

चणक—हि॰ चना,छोला। वं॰ छोला।
चणिका—हि॰ चणद्रूण।
चतुष्फला—हि॰ गुलशकरी, गगीरन, गगिरमा। वं गोरचचाकुले।
चक्रमर्द—हि॰ पवाडर, पमाडर, चकवड़। वं॰ चाकुन, चाकन्दे।
चव्य—हि॰ चाभ। वं॰ चव्य।
चाणाक्यमूलक—हि॰ बडीमूली
चार—हि॰ चिरौञ्जी।
चित्रक, हि॰ चीता, चितरक। वं॰ चिता।
चित्रवल्ली—हि॰,बडी इन्द्रकला।
चिभिंटा—हि॰ गोरख ककडी।
चिल्लिका—हि॰ चिल्ली, बडा बथुआ।
चिचिल्लिका—हि॰ छोटी लोनी।
चीडा—हि॰ चीढ देवदार।
चीनकर्पूर—हि॰ चीनीकपूर।
चुक्र—हि॰ बडा चुका। वं॰ चुका पालङ्ग।
चूर्ण—हि॰ चूना।
चोरक—हि॰ भटेउर।
चक्षु—हि॰ चक्षु, चेवुना।
चक्षुक—हि॰ चक्षु।
चन्दन—हि॰ सफेद चन्दन।
चन्द्रकान्त—हि॰चन्द्रकान्तमणि।
चम्पक—हि॰ चम्पा।
चण्डालकन्द—हि॰ चण्डालकन्द।

चाङ्गेरी—हि० अंबल, भालिलोश।
चिञ्चा—हि० इमली, अम्बली। बं० आमरुल, तेंतुल।

ज

जपा—हि० ओडहुल, गुडहर।
जन्तुका—हि० पपरी, पनड़ी, पद्मावती, नाडीहिंग, लाख।
जलमधुक—हि० जलमहुआ। बं० जलमौत।
जलब्राह्मी—हि० ब्राम।
जलवेतस—हि० जलवेत।
जलशुक्ति—हि० नदीकी सीप।
जवादि—हि० जवादी कस्तूरी।
जातिपत्री—हि० जावित्री। बं० जईत्री।
जाती—हि० चमेली।
जातीफल—हि० बं० जायफल।
जालवव्वूलिका—हि० जालबबूल।
जीवनी—हि० डोडीशाक।
जीरक—हि० जीरा। बं० जीरा।
जीवपुत्री—हि० पाजी।
जीवक—गोड देशमें प्रसिद्ध है।
जीवन्ती—हि० बं० लघुजीवन्ती।
जीवशाक—हि० जीवशाक।
जेपाल—हि० जमेपाल, जमाल गोटा। बं० जयपाल।
जन्तुका—हि० पपरी, पनडी, पद्मावती, नाडीहिंग, लाख।
जम्बीर—हि० जम्बीरी। बं० गोंडालेबू।
जम्बू—हि० जामुन, जामन। बं० जाम।
ज्योतिष्मती—हि० मालकांगुनी। बं० लताफटकी।
ज्योतिष्मती तैल—हि० मालकांगनी तैल।

झ

झिंझरीटा—हि० झिरझिटा, झंझरीटा।
झेण्डूक—हि० झेण्डु।

ट

टङ्कण—हि० सोहागा।

ड

डोडी—हि० डोडी।
डङ्गरी—हि० सफरिकुमरा, लालपेठा।

त

तक्र—हि॰ छांछ।

तकाछा—हि॰ ताका।

तमाल—हि॰ वं॰ तमाल।

तमालपत्र—हि॰ पत्रज, तेजपात। वं॰ तेजपत्र।

तरटी—हि॰ तरंटी।

तर्कारी—हि॰ अरनी। (कोकण देशमें प्रसिद्ध।)

तरुणी—हि॰ शेवती गुलाब।

तवचीर—हि॰ तबाखीर।

ताम्र—हि॰ तांबा, तामा।

तारमाक्षिका—हि॰ रूपामक्खी।

ताल—हि॰ ताड़।

तालीसपत्र—हि॰ तालीसपत्र।

तिनिश—हि॰ तिरिच्छ, तिनसुना। वं॰ तिलिश।

तिल—हि॰ तिल।

तिलक—हि॰ वं॰ तिलक।

तिल तैल—हि॰ तिलका तेल।

तूल—हि॰ पारस पीपल, गजदण्ड।

तीक्ष्णफला—हि॰ काली राई।

तुत्थ—हि॰ नीला थोथा, नीला तूतिया।

तुरुष्क—हि॰ शिलारस।

तुलसी—हि॰ वं॰ तुलसी।

तृणकुङ्कुम—हि॰ तृणकेसर।

तृणधान्य—हि॰ तृणधान्य।

तेजफल—हि॰ तिरफल।

तेजोवती—हि॰ बड़ी मालकांगनी।

तैरणी—हि॰ तेरडा।

तैलकन्द—हि॰ तैलकन्द।

तुण्डिका—हि॰ कन्दूरी, कुलकांध। वं॰ कुन्दरकी।

तण्डुलीयदल—हि॰ चोलाई।

तण्डुलीयक—हि॰ चोलाई, चौराई वं॰ नेटेशाक, चांपानटिया।

तिंदुक—हि॰ तेन्दू।

तुम्बक—हि॰ वं॰ तुम्बकफल।

त्रपु—हि॰ रांगा, रागा।

त्रपुसैर्वारुकचारश कूष्माण्ड प्रभृति बीज तैल—हि॰ त्रपुसी, काकडी, वारोली, कोंहडोके बीजका तेल।

त्रपुसी—हि॰ खीरा, काकड़ी।

त्रायमाणा—हि॰ त्रायमाणा।

त्रिधार—हि॰ तिधारा थूहर।

त्रिपर्णीकन्द—हि॰ त्रिपर्णीकंद।

त्रिहत—हि० निशोथ सफेद श्वेत धनिलर। बं० श्वेत- तेउडी।

त्रिसन्धि—हि० सांझो।

त्वच—हि० तज दालचीनी। बं० दारुचिनी।

द

दग्धरुहा—कोंकण देशमें प्रसिद्ध।

दधि—हि० दही।

दधिपुष्पी—हि० सुअरासेम, करियेसेम।

दमनक—हि० दौना, दवना।

दारुहरिद्रा—हि० दारुहल्दी। बं० दारुहरिद्रा।

दाहागरु—हि० दाहागरु।

दीर्घरोहिषक—हि० बड़ा रोहिषक।

दुग्ध—हि० दूध।

दुग्धपाषाण—हि० गिरगोला।

दुग्धफेनी—हि० दुधफेनी।

दुग्धतुम्बी—हि० मीठी तूम्बी। बं० लाउ।

दुरालभा—हि० धमासा। बं० दुराला।

देवदारु—हि० देवदारु।

देवदाली—हि० सोनैया, बंदाल, घघरबेल, देवदाली, बिंदाल, बिदाली।

द्रवन्ती—हि० छोटी मूसाकर्णी। बं० इंदूरकाणिपाना।

द्राक्षा—हि० दाख।

द्रोणपुष्पी—हि० गोमा, गुमा, दणहली। बं० कालघसिया।

द्रोणेय—हि० द्रोणीलवण, बरतनका नमक।

ध

धन्वन—हि० धामिन। बं० धामनि।

धरणीकन्द—अनूप देशमें होता है

धव—हि० धो, धावा। बं० धाओया।

धातकी—हि० धावई, धाय। बं० धाई।

धान्य—हि० धान्य।

धान्यक—हि० धनिया। बं० धनिया।

धान्यतैल—हि धान्य तैल।

धाराकदम्ब—हि० धाराकदम्ब।

धाराकोशातकी—हि० तोरई, तुरैया। बं० झिंगा।

धूमपत्र—हि॰ कीडामार।
धूलिकदम्ब—हि॰ धुलिकदम्ब।
ध्वांचनाशिनी—हि॰ छोटी हाउवेर।

न

नख—हि॰ नख।
नखनिष्पाविका—हि॰ छोटी सेंवी।
नदीवट—हि॰ नदीवड।
नद्योदुम्बरिका—हि॰ नदी गूलर
नल—हि॰ नरसल। बं॰ नल, कच्ची आंची।
नलिका—हि॰ पवारी।
नवनीत—हि॰ मक्खन।
नवमल्लिका—हि॰ नेवारी।
नाकुली—हि॰ नकुलचन्द्र।
नागकेसर—हि॰ नागकेसर।
नागचम्पक—हि॰ नागचम्पा।
नागदन्ती—हि॰ नागाली। बं॰ नागदन्ती।
नागदमनी—हि॰ नागदौन। बं॰ नागदना।
नागबला—हि॰ गुलसकरी,गंगेरन, गागेरुश्रा। बं॰ गोरचचाकुले।
नागरमुस्ता—हि॰ नागरमोथा।
नागवल्ली—हि॰ नागरवेल।
नाडीहिङ्गु—हि॰ डिकामाली।
नारिकेल—हि॰ नारियल।
नारङ्ग—हि॰ नारङ्गी।
निकुञ्जिका—हि॰ सोकाकाइ भेद।
निर्विषा—हि॰ निर्विषी।
निष्पाव—हि॰ भटवास, निष्पाव।
निष्पावी—हि॰ सेंवी।
निःश्रेणिका—हि॰ निश्रेणीतृण।
नील—हि॰ नीलम।
नीलदुर्वा—हि॰ नीली दूब।
नीलधत्तूर—हि॰ नीला धत्तूरा। बं॰ नील धुतूरा।
नील पलाश—हि॰ नीलपलास। बं॰ नील पलाश।
नीलबीज—हि॰ काला आसन। बं॰ नील आसन।
नीलवृक्ष—हि॰ नील वृक्ष।
नीलमार्कव—हि॰ पीला भांगरा
नील यूथिका—हि॰ नीलीजूही।
नीलसिन्दूक—हि॰ नीलसम्हालू
नीलाशस्त्र—हि॰ नीलपलास। बं॰ नील पलाश।

नीलागिरिकर्णिका—हि० काली गोकर्णी, नीली कोयल। बं० नील अपराजिता।
नीलापुनर्नवा—हि० नीलीसांठ।
नीलाम्लान—हि० नीला कट सरैया।
नीलाक्षी—हि० काली पिठांडी।
नीलालु—हि० काला आलु, काला धोपा, काडा चिमकुरा।
नीली—हि० नील, लील। बं० नील।
नीलोत्पल—हि० नील कमल, चन्द्रविकाशी।
नीवार—हि० तीनी। बं० उडी-धान।
नेपाल—हि० नेपालनिंब, चि-रायता।
नन्दीवृक्ष—हि० नन्दीवृष।
निम्ब तैल—हि० नीमके बीजका तैल।
निम्बूक—हि० नींबू। बं पाति-लेंबू।

प

पखोड—हि० पखोड।
पटोल—हि० पलवल, पटोल।
पत्राङ्ग—हि० पतङ्ग।
पद्मा—हि० भारङ्गी।
पद्मक—हि० पद्माख। बं० पद्मकाष्ठ।
पद्मकन्द—हि० कमलकन्द।
पद्माक्ष—हि० कमलगट्टा।
पद्मिनी—हि० पद्मनी।
पनस—हि० कटहर, कटेर, फनस। बं० कांठाल।
पर्पट—हि० पीत पापडा, दवन पापडा। बं चेत पापडा।
परिपेल्ल—हि० केवटी मोथा। बं० केउटमुथा।
परूषक—हि० फालसे। बं० फलसा।
पलाण्डु—हि० प्याज। बं० पियाज।
पाचो—हि० पाच।
पाठा—हि० पाठ, पाढ। बं० आकनादि।
पानियालु—हि० पानीका आलु।
पानीय—हि० पानी।
पारद—हि० पारा।
पारिभद्र—हि० फरहद, जल नीम बं० पालिदामादार।

पालक्य—हि० पालक। बं० रालेक।
पाषाणभेदी—हि० पाषाणभेदी।
पित्तल—हि० पीतल।
पिप्पली—हि० पीपर, पीपल। बं० पीपुल।
पिप्पलामूल—हि० पीपरामूल। बं० पीपुलमूल।
पीतकरवीर ·हि० पीलीकनेर। बं० पीत करवी।
पीतचन्दन · हि० पीला चन्दन।
पीततण्डुला—हि० भोतरेंगनी, बृहतीभेद।
पीतधत्तूर—हि० पीला धतूरा। बं० पीत धुतुरा।
पीत पलाश—हि० पीला पलास। बं० पीतपलाश।
पीत पुष्पी—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।
पीत बन्धूक—हि० पीली दुपहरिया।
पीतमाक्षिक—हि०पीला भागरा।
पीतागस्त्य—हि० पीला अगस्तिया। बं० पीत बक।
पीता जगधा—हि०पीली दुरहुर
पीताम्लान—हि० पीला कट सरैया।
पुत्रजीव—हि० जीयापोता, पुनजीया। बं० पुतञ्जिया।
पुत्रदा—हि० पुत्रदाई, गर्भदात्री
पुन्नाग—हि० पुन्नाग, पुन्नाक। बं पुन्नाग।
पुष्करमूल—हि० गांठदा, पुष्करमूल।
पुष्पकासीस—हि० पुष्पकासीस।
पुष्पद्रव—हि० पुष्पद्रव।
पुष्पराज—हि० पुखराज।
पुष्पाञ्जन—हि० पुष्पाञ्जन।
पूग—हि० सुपारी। बं० सुपारी।
पूतिकरञ्ज—हि० दुर्गन्धकरञ्ज। बं० लाटा करञ्ज।
पृष्ठिपर्णी—हि० पिठवन, पिठौनी। बं० चाकुले, चाकोलिया, शङ्करजटा।
पेऊ—हि० जङ्गली झादा।
पेरोज—हि० फिरोजा।
पोतास—हि० भीमसेन कापूर।
पाण्डुफली—हि० पाटली।
पिण्डखर्जूर—हि० पिण्डखजूर, छुहारा। बं० सोहारा।

पण्डमूलक—हि॰ गोलमूली।
पिण्डालु—हि॰ पेंडालु।
पिण्डीतगर—हि॰ पिण्डीतगर।
पुण्डरीक—हि॰ सफेदकमल।
प्रपौण्डरीक—हि॰ पुण्डरिया।
प्रभद्र—हि॰ नीम। बं॰ निम।
प्रवाल—हि॰ मूंगा।
प्रसारिणी—हि॰ गन्धप्रसारिणी, पसरन। बं॰ गन्धभादुल्या।
प्रियङ्गु—हि॰ फुलप्रियङ्गु। बं॰ प्रितङ्ग।
प्लक्ष—हि॰ पाकर, पाक खर। बं॰ पाकुड।

फ

फञ्जिका—हि॰ फाजी।
फोंडालु—कोकण देशमें प्रसिद्ध।

ब

बक—हि॰ बडी बोलसिरी। बं॰ पद्मबक।
बकुल—हि॰ मोलसरी, बन-फुला। बं॰ बकुल।
बटलोह—हि॰ बठलोहा, निखु।
बदरी—हि॰ बेर बं॰ कुल।
बदरमाम्र—हि॰ बडा रसाल आम।
बनबर्बरिका—हि॰ सुगन्ध अज बला।
बनपिप्पली—हि॰ बनपीपल।
बब्बुल—हि॰ बबूर, कीकर। बं॰ बाबला।
बर्बर—हि॰ बाबरी, बनतुलसी।
बर्हिचूडा—हि॰ मोरशखा।
बला—हि॰ बरियारा। बं॰ वेडेला।
बलोत्तरा—हि॰ खिरेटी, खर-हटी। बं॰ खेतवेडेला।
बल्वज—हि॰ नरई सावेबागी।
बस्तान्त्री—हि॰ मोकड़ी।
बहुदल—हि॰ नाचनी।
बाकुची—हि॰ बावची। बं॰ सोमराज।
बालक—हि॰ सफेद बाला।
बिडलवण—हि॰ विरिया नमक कटिमानोन। बं॰ बिटलवण।
बिभीतक—हि॰ बहेडा। बं॰ बहेडा।
बिल्व—हि॰ बेलवृक्ष।
बसन्धि—हि॰ सांभो।
बीजपूर—हि॰ विजौरा। बं॰ टाबालेबु।

बृहच्चञ्चु—हि० बड़ी चञ्चु।
बृहज्जीवन्तिका—हि० बड़ी जीवन्ती।
बृहत्पीलु—हि० बड़ा पीलु।
बृहती—हि० बड़ी कटाई, बरहटा। बं० बृहती, व्याकुड़।
बृहल्लज्जालु—हि० बड़ी लजालु।
वेणुबीज—हि० वेणुयव।
बोल—हि० बोल।
बन्धूक—हि० दुपहरिया, गेजुनिया।
बन्ध्याककोंटका—हि० बांजककोड़ा, बांजखखसा।
वंशयव—हि० वंशयव।
ब्रह्मदण्डी—हि० ऊटकटारा।
ब्राह्मी—हि० ब्राह्मी, बरम्ही। बं ब्राह्मी।

भ

भव—हि० रोमफल।
भद्रदन्तिका—हि० बड़ी दन्ती, मुगलाई अरंड।
भद्रमुस्ता—हि० भद्रमोथा। बं० भद्रमुथा।
भल्लातक—हि० भिलावा, भिलाए। बं० भेलां।
भार्गी—हि० भारङ्गी, भांडगी, ब्रह्मनेटी। बं० वामुनहाटी।
भूखर्जूरी—हि० छोटी जङ्गली खजूर।
भूतसार—हि० पीला सोनापाठा
भूताङ्कुश—हि० भूतकेशी।
भूतुम्बी—हि० पातालतुम्बी।
भूतृण—हि० सुगन्ध रोहिष।
भूनाग—हि० केचवे।
भूनिम्ब—हि० भूचिरायता, चिरैता। बं० भूचिराता।
भूपाटली—हि० भुंईपाडरी।
भूबदरी—हि० झरबेर।
भूमिज गुग्गुल—हि० भूमिगूगल
भूमिजम्बू—हि० बनजामुन।
भूम्यामलकी—हि० भुंय आंवला, जरआंवला। बं० भुइ आंवला।
भूम्याहुली—हि० सोनमक्खी।
भूर्जपत्र—हि० भोजपत्र। बं० भूर्जपत्र।
भृङ्गमारी—हि० भृङ्गमारी। (मालवामें प्रसिद्ध)।
भ्रमराह्वा—हि० भ्रमरच्छली।
भेंडा—हि० रामतोरई।

म

मदन—हि॰ मैनफल। वं॰ मयना फल।
मद्य—हि॰ दारु, यूनानी शराब।
मधु—हि॰ शहद।
मधुक—हि॰ महुवा। वं॰ मोल, महुवा।
मकर्कटी—हि॰ पपई, अरण्ड-माकडी। वं॰ वातावितेबु।
मधुखर्जूरिका—हि॰ मीठी जंङ्गली खजूर।
मधुजम्बीर—हि॰ मीठा नेबू। वं॰ कमलालेबु।
मधुनारिकेल—हि॰ मधुनारियल
मधुरदाडिम—हिमे—अनार।
मधुवल्ली—हि॰ मुलहटी भेद।
मज्जर—हि॰ मज्जरतण।
मल्लिका—हि॰ वेल मोतिया।
मसूर—हि॰ मसूर।
मरिच—हि॰ काली मिरिच।
महाकरञ्ज—हि॰ करञ्जो, अरारि, बडा करञ्ज।
महाकन्द—हि॰ लाल लहसन।
महाजम्बू—हि॰ राजजामन, फरेंद। वं॰ गोलापजाम।
महाद्रोण—हि॰ बडा गोमा।
महानिम्ब—हि॰ बकाम। वं॰ घोडानिम।
महापखेत—हि॰ बडी छोपास्वर खजूरी।
महापिण्डीतक—हि॰ बडा मैनफल।
महापिण्डीतरु—पण्डिरा वृक्ष।
महामेदा—मोडदेशमें प्रसिद्ध है।
महानीली—हि॰ बडी नील।
महाराजाम्र—हि॰ महाराज आम्र।
महाराष्ट्री—हि॰ मरेटी पनिसंगा
महाबला—हि॰ सहदेई। वं॰ पीतपुष्प, दण्डोत्पल।
महाशतावरी—हि॰ बडी सतावर।
महाश्रावणी—हि॰ बडी मुडी।
महिषीकन्द—हि॰ भैंसाकन्द।
मनःशिला—हि॰ मनसिल।
मत्स्याक्षी—हि॰ मछेछी, मछेद्री, जलपीपर। वं॰ कांचडागाप।
माकन्दी—हि॰ मायमूड।
माड—हि॰ माडा।
माधवी—हि॰ माधवी।

माणिक्य—हिं० मानिकलाल।
माष—हिं० उरद।
मायाफल—हिं० माजूफल।
मार्कव—हिं० भागरो। बं० भीमराज।
मालाकन्द—हिं० मालाकन्द।
माषपर्णी—हिं० मखवन, मशवन, वनउर्दी। बं० माषानी, बनमाष।
मिश्रीमोश्री—हिं० छोटा कांस।
मिश्रेया—हिं० सौंफ बड़ी सौंफ। बं० मौरी।
मीन.एडी—हिं०मिसरी, खड़ी शकर।
मुकष्ठक—हिं० मठ, मोठ।
मुक्ताशुक्ति—हिं० मोतीकी सीप।
मुखालू—हिं० मुचकुन्द। विशेष।
मुचकुन्द—हिं० मुचकुन्द।
मुद्र—हिं० मूंग।
मुद्गपर्णी—हिं० मुगोन मुगवन। बं० मुगानि।
मुद्गर—हिं० मोतिया।
मुरा—हिं० एकाङ्गीमुरा। बं० मुरामांसी।
मुष्कक—हिं० मोखा, फरवाह।
मुसलीकन्द—हिं० काली मुसली।
मूर्वा—हिं० चूरोनहार, चूरनहार, मरोरफली। बं० मूर्वा
मूलपाती—हिं० पोई मेद।
मूलक—हिं० मूली।
मूषकमारी—हिं० उंदिरमारी।
मृगाची—हिं० सन्धिनी।
मृणाल—हिं० कमलकी दण्डी।
मेचकयूथिका—हिं० मेचक जूही
मेथिका—हिं० बं० मेथी।
मेदः—गौड देशमें प्रसिद्ध है।
मेषशृङ्गी—हिं० मेढाशिङ्गी। बं० मेढ़ाशिंगा।
मोचरस—हिं० मोचरस। बं० मोचरस।
मोरटा—हिं० चोर चूरोनि नहाड, मुहेरी।
मौक्तिक—हिं० मोती।
मङ्गलागरु—हिं० मङ्गलाईन।
मञ्जिष्ठा—हिं० मजीठ। मञ्जिष्ठा।
मांसरोहिणी—हिं० मांसरोहिणी। बं० चमारकषा।

मांसी—हि० छड़, जटामासी। बं० जटामासी।

मुञ्ज—हि० मूंज।

य

यव—हि० जौ।

यवचिंची तल—हि० सत्यनाशी के बीजका तैल।

यवक्षार—हि० जवाखार।

यवानी—हि० अजवान। बं० यमानी, यौंयद।

यवासा—हि० जवासा। बं० दुरासा।

यष्टीमधु—हि० मुलहटी। बं० यष्टीमधु।

यावनल—हि० ज्वार, जोधरी, पोंगरी।

मावनालशर—हि० रामशरभेद।

यूथिका—हि० जूही।

र

रक्त एरण्ड—हि० लाल अरण्ड। बं० लोहित एरण्ड।

रक्तकरवीर—हि० लाल कनेर। बं० रक्तकरवी।

रक्तखदिर—हि० लाल खैर।

रक्तगुंजा—हि० लाल घुंगची, चिरीमटी गुंज, चोटली। बं० लालकुंच।

रक्तचन्दन—हि० लालचन्दन।

रक्तचित्रक—हि० लालचिता।

रक्तधत्तूर—हि० लालधतूरा। बं० रक्त धुतुर।

रक्तपलाश—हि० लालपलाश, ढाक, केसु, खाकरिया। बं० रक्तपलाश।

रक्त पाटली—हि० लाल पाडरि। बं० रक्त पारुल।

रक्तपादी—हि० लजालु, लज्जावन्ती।

रक्त पिण्डालु—हि० रतालू, रतपड़ा, दमणिया।

रक्तबन्धूक—हि० लाल दुपहरिया।

रक्तबीज—हि० बीजेसार।

रक्तरोहितक—हि० रोहिडा रोहेरा।

रक्तशिग्रु—हि० लाल सहजना।

रक्तविहत—हि० लाल निसोथ।

रक्तागस्त्य—हि० लाल अगस्तिया। बं० रक्तबक।

रक्तापामार्ग—हि० लाल ओंगा, चिरचिरा। बं० लाल आपांग।

रक्तापुनर्नवा—हि० सांठ, गदह-पूर्णा बं लाल पुनर्नवा।

रक्तम्लान—हि० लालकटसरैया, पीयाबांसा। बं० रक्तझिंटी, झांटी।

रक्तावसु—हि० लाल वसु।

रक्तोत्पल—हि० लाल कमल, चन्द्रविकासी

रसाञ्जन—हि० रसाञ्जन,रसोत।

रसोन—हि० लहसन, कांदा। बं० रसुन।

राजखर्जूरी—हि० राजपिण्ड-खजूर।

राजगिरा—हि० कलकाधास।

राजतरुणी—हि० बड़ा सेवती गुलाब।

राजधतूर—हि० राजधतूरा। बं० राजधुतुरा।

राजपलाण्डु—हि० लाल प्याज।

राजबदर—हि० रायबेर।

राजमाप—हि० खेसारी भेद।

राजरीति—हि० सोन पितल।

राजादनी—हि० खिरनी। बं० क्षीरिनि, खिरखेजुर।

राजाम्र—हि० कलमी आम। बं० लता आम।

राजार्क—हि० लाल मन्दार। बं० रक्त मंदार।

राजावर्त—हि० रेवटी।

राजिका तैल—हि० राईका तेल।

राजिका पत्र—हि० राईकी शाक।

राल—हि० रार, राल। बं० धुना।

रास्ना—हि० रासन, रायसन। बं० रास्ना।

रीठाकरञ्ज—हि० रीठा।

रुद्रदन्ती—हि० रुद्रवन्ती।

रुद्रजटा—हि० ईशरमूल।

रुद्राक्ष—हि० बं० रुद्राक्ष।

रेणुका—हि० बं० रेणुका।

रोमक—हि० सूर्यखार, रेह-गवा, रेहगमानोन, रेहका नमक।

रोहिणी—हि० रोहिणी।

रौप्य—हि० रुपा, चांदी।

रन्ध्रवंश—हि० पोलिवास।

ल

लकुच—हि० बड़हर। बं० मादर।
लघुदन्ती—हि० दंती। बं०दन्ती
लघुपीलु—हि० छोटा पीलू।
लघुबदरी—हि० छोटी बेर।
लघुशमी—हि० छोटा समी।
लघुशणपुष्पी—हि० छोटी शण पुष्पी।
लघुलेष्मातक—हि० गुदनी, लभेरा।
लताकरञ्ज—हि० कटूकरञ्ज, करञ्जरा।
लवणक्षार हि० लोणखार।
लवङ्ग—हिन लौंग। बं० लवङ्ग।
लक्ष्मणा—हि० सफेद कटेरी, श्वेतभटकटैया।
लक्ष्मणाकन्द—हि० लक्ष्मणाकंद।
लामज्जक—हि० पीलाबाला।
लाक्षा—हि० लाख। बं० लाहा।
लोहकिट्ट—हि० मण्डूर, लोह-सिंहानिका, किट्टी, सिहान।
लोध—हि० लोध।
लाक्षा—हि० खिमारी, कसूर।

व

वचा—हि० वच। बं० वच।
वज्रक्षार—हि० नोसादर।
वट—हि० बड़, बर। बं० बट।
वटपत्री पाषाणभेदी—हि० बड़-पत्ती पाषाणभेदी।
वत्सनाभ—हि० बचनाग, तिलियाविष।
वत्सादनी—हि० छिरेटा, छिरहटा। बं० पातालगरुड़ी।
वनज्या उपोदकी—हि० जङ्गली पोई।
वनबीजपूर—हि० जङ्गली बिजौरा।
वनशृङ्गाटक—हि० छोटा गोखरू।
वन्यदमनक—हि० जङ्गली दवना
वरक—हि० वटी।
वरुण—हि० बरना। वरुण।
वर्बरक—हि० बबर चन्दन।
वल्लिदूर्वा—हि० बल्लोदूब।
वर्षाभूपाक—हि० विषखोपरा।
वसुपत्र—हि० सफेद वसु।
वानीर—हि० जलबेत।

वार्ताकी हि॰ बैगन, भंटा। बं॰ बेगुन।
वाराही—हि॰ गठी, मिर्चोली कंद।
वार्षिकी—हि॰ वेल।
वालुकी—हि॰ बालुकी ककडी।
वासक—हि॰ अडसा, अडूसा बं॰ बासक।
वासन्ती—हि॰ मधुमाधवी।
वास्तुक—हि॰ बथुआ। बं॰ बेतुया।
व्याघ्रनख—हि॰ व्याघ्रनख।
विकण्टक—हि॰ हथिया।
विकङ्कत—हि॰ कटाई, कि-ङ्किणी। बं॰ बंइचो।
विटखदिर—हि॰ दुर्गन्ध खैर।
विडङ्ग—हि॰ वायविडङ्ग।
विदारीकन्द—हि॰ विदारीकंद, दोनो विलियाकन्द।
विमला—हि॰ बिमला।
विष—हि॰ बं॰ विष।
विषमुष्टि—हि॰ विगडोडो, करे-कथा।
विष्णुकन्द—कोकण देशमें प्र-सिद्ध है।
विष्णुक्रान्ता—हि॰ विष्णु-क्रान्ता।
वृक्षाम्ल—हि॰ विषाविल म-हादा। बं॰ महादा।
वृन्तमल्लिका—हि॰ बुधरु मो-तिया।
वृद्धदारु—हि॰ विधारा। बं॰ वृद्धदारक।
वृद्धि—गौड देशमें प्रसिद्ध।
वृश्चिका—हि॰ विछवा।
वृश्चिक ली—हि॰ वृश्चिकाली।
वेतस—हि॰ वत।
वेत्र—हि॰ बडावेत। बं॰ वेत।
वेल्लतर—हि॰ बबूल।
वैक्रान्त—हि॰ वैक्रान्त।
वैडूर्य—हि॰ वैडूर्य।
वैपरित्या लज्जालु—हि॰ बडी ललालू।
वन्दाक—हि॰ वन्दा, वन्दाक। बं॰ परगाछा(?)
वंश—हि॰ बांस। बं॰—बंश।
वंशाङ्कुर—हि॰ बांसकेअङ्कुर।
वंशपत्री—हि॰ वंशपत्री घास।
वंशरोचना—हि॰ वंसलोचन।

श

शण—हि० सन।

शणपुष्पी—हि० शणहुली,शणई, घुंगरू। वं० वायशणई।

शतपत्री—हि० शेवती, गुल दावदी।

शतपुष्पादल—हि० सोम्रा।

शतावरी—हि० छोटी सतावर। वं० शतमूली।

शताह्वा—हि० सोग्रा। वं० शुल्फा।

शबरचन्दर—हि० शबरचन्दन।

शमी—हि० समी, छेकरा सफेद कीकर। वं० शाइवावला।

शर—हि० सरपता।

शरपुङ्खा—हि० सरफोका।

शशाण्डुली—हि० एक प्रकारकी ककडी।

शाक—हि० सागवन। वं० शेगुन।

शाखोट—हि० सिहोड़ा। वं० श्याओडा।

शालि—हि० शालि।

शालिपर्णी—हि० सरिवन, शाल पन। वं० शालपानि।

शाल्मली—हि० सेमर। वं० सिमुल।

शाल्मलीकन्द—हि० सेमलका कन्द।

शिनिवार—हि० शिरिआरी, सिलवारी। वं०शुनिशाक, शेमोला।

शिग्रु—हि० पीला सहजना। वं० पीत सजिना।

शिग्रु तैल—हि० सहजनेका तेल।

शिग्रुपत्रशाक—हि० सहजनेके पत्तेकाशाक।

शिरीष—हि० सिरस, भिंजरषी। वं० शिरीष।

शिल्पिका—हि० शिल्पिकतृण।

शिलाजतु—हि० शिलाजीत।

शुनक चिल्ली—हि० कुत्तरचोल।

शूकधान्य—हि० शूकधान्य।

शेफालिका—हि० बन निर्गुण्ड।

शैलेय—हि० पत्थरफूल,, चलो रा, भूरिछला। वं० शैलज।

शैवाल—हि० काई, वलकुम्भी। वं० पाना।

शोभाञ्जन—हि० काला सहजना।

शोली—हि० सोलीनामकजंगली हल्दी।

शङ्ख—हि० शङ्ख।
शङ्खपुष्पी—हि० सुङ्खाहुली, कौडोयाला। वं० चोरकांचकी।
शङ्खिनी—हि० बड्डवेल।
शिंशपा—हि० शीशव, सिसव। वं० शिशु।
शिम्बीधान्य—हि० शिवीधान्य।
शु*र—हि० सोंठ, सुंठ। वं० सुंठ।
शृङ्गाटक—हि० सिङ्घाडा।
शृङ्गी—हि० कांकडासिङ्गी। वं० काकडासृङ्गी।
श्यामाक—हि० सांवा, समा। वं० श्यामाघास।
श्योनाक—हि० सोनापाठा, अरलु, टेंटू। वं० सोना।
श्रावणी—हि० छोटी मुण्डी। वं० मुडुरी, भुंइकदम, थुलकुडी।
श्रीताल—हि० श्रीताड।
श्रीवल्ली—हि० सीकाकाई।
श्रीवेष्ट—हि० विरोपधप।
श्लेष्मान्तक—हि० लिसोडा, निसोरे, बहुवार।
श्वेत अगस्त्य—हि० सफेद अगस्तिया, हथिया। वं० श्वेत वक।
श्वेत एरण्ड—हि० सफेद एरंड, अण्डोआ।
श्वेत करवीर—हि० सफेद कनेर। वं० श्वेत करवी।
श्वेत खदिर—हि० सफेद खैर।
श्वेतचिल्ली—हि० श्वेतचिल्ली।
श्वेत जीरक—हि० सफेद जीरा। वं० शुक्लजीरा।
श्वेत टङ्कण—हि० सफेद सोहागा।
श्वेत तुलसी—हि० सफेद तुलसी।
श्वेतदूर्वा—हि० सफेद दूब।
श्वेत धत्तूर—हि० सफेद धतूरा। वं० श्वेत धुतुरा।
श्वेत पाटली—हि० सफेद पाडार। वं० शतपारूल।
श्वेतपाषाणभेद—सफेद पाषाणभेद।
श्वेतबृहती—हि० सफेद बडी कटाई।
श्वेत बन्धूक—हि० सफेद दुपहरिया।
श्वेतमरिच—हि० सफेदमिरच।

श्वेत मदक्र—हि० सफेद मदुआ।

श्वेतमन्दार—हि० सफेदमंदार। बं० श्वेतमदार।

श्वेत रोहितक—हि० सफेद रोहिड़ा।

श्वेत लोध्र—हि० पठानी लोध।

श्वेत बचा—हि० सफेद बच।

श्वेत वाणपुष्पी—हि० सफेद बाणपुष्पी।

श्वेत शरपुङ्खा—हि० सफेद सरफोंका।

श्वेत शिग्रु—हि० सफेद सहजना।

श्वेतशिंशपा—हि० पिला सिसव।

श्वेतकटभी—हि० सफेद कट भी. करही।

श्वेतपुनर्नवा—हि विषखोपड़ा। बं० श्वेतपुनर्नवा।

श्वेताम्ली—हि० धमर्मोया, पटकोका।

श्वेतार्क—हि० सफेद आक। बं० श्वेत आकन्द।

श्वेतार्जक—हि० सफेद मजवना।

श्वेतांशु—हि० सफेद वसु।

श्वेतोत्पल—हि० सफेद कमल, चन्द्रविकाशी।

ष

षड्भुजा—हि० खरबूजा। बं० खरमूंजा।

षारिवर—हि० बालेवत।

स

सप्तपर्ण—हि० छितवन, सतवन, बं० छातिम।

समष्ठिल—हि० नखाम्र, केसुयाहह।

समुद्रफल—हि० कौयफल।

समुद्रफलफेन—हि० व० समुद्रफेन

समुद्रलवण—हि० नमक, मासुद्रनोन। बं०करकचलवण।

सरल—हि० धप सरल। बं० सरलकाष्ठ।

सर्ज—हि० बड़ा शाल। बं० शालगाछ।

सर्पाक्षी—हि० सरहधी गन्धिनी, सुगन्ध नकुलकन्द। बंगमें कदालिका।

सर्पिणी—हि० सर्पिणी।

सर्वक्षार—हि० साजू।

सल्लकी - हि० शालई।
सही (सलेही) पिप्पली—हि० सिंहली पिप्पली।
सहचर—हि० सफेद कसेसरैया।
सहदेवी—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डत्पल।
साखरु'ड—हि० पड़वास, बडो मार्ई, छोटी मार्ई।
सातला—हि० शातला, थूहरका भेद। बं० सिजविशेष।
सारिवा—हि० गौरीसर, गौरि आशाऊ। बं० अनन्तमूल।
सार्षपपत्र—हि० सरसों का शाक।
सार्षप तेल—हि० सरसों कातेल।
सिकता—हि० बालू रेती।
सिक्थक—हि० मोम।
सिपु'ड—हि० शेशु'ड।
सितदर्भ—हि० कुश्दाभ—डाभ, दाभबडो।
सितपलाश—हि० सफेद पलास बं० श्वेत पलाश।
सिद्धार्थ—हि० सफेद सरसों।
सीसक—हि० सीसा।
सुगन्धभूतृण—हि० सुगन्धतृण।
सुरपुन्नाग—हि० सुरपुन्नाग, कमल। बं० रुवियानाफुल।
सुवर्णकदली—हि० सोनकेला।
सुवर्णकेतकी—हि० सुवर्णकेतकी
सुवर्णगैरिक—हि० सुवर्ण गेरु।
सुवर्णमाक्षिक—हि० सोना माखी।
सूक्ष्मयोनिका—हि० छोटोलोनी
सूरण—हि० सूरन, जमीकन्द। बं० ओल।
सूर्यकान्त—हि० भागियो कचि।
सौराष्ट्री—हि० वोनीचन्दन।
सौवर्चल—हि० सोंचर, नोन, कालानमक, छोटा रकोडा। बं०—सचल लवण।
सोवीर—हि० काला सुरमा।
साम्भर—हि० साम्बरलोण।
सिन्दूर—हि० सिन्दूर।
सिन्दूरी—हि० सिन्दुरिया, जाफर लटकन।
सिन्दुवार—हि० श्वेत सम्भालु, निर्गुण्डी, मेउडी सेंदुवारि। बं० निसिन्दा।
सैन्धव—हि० सैन्धानिमक, लाहोरो निमक।

स्थलपद्मिनी—हि० स्थल कमलिनी।

स्थूलैरण्ड—हि० बड़ा अण्ड।

स्थूलेला—हि० बड़ी लायची। बं० बड़ इलायची।

स्थूलवर—हि० बड़ा सरपता।

स्थौणेयक—हि० थुनेर।

स्निग्धदारु—हि० तेलिया देवदारु।

स्नुही—हि० थूहर, सेहुड। बं० मिजभच।

स्पृक्का—हि० असवरग कलङ्कीदकपुरी। बं० स्पृक्काशाक।

स्फटिक—हि० स्फटिक।

स्फटिकी—हि० फिटकिरी।

स्रोतोञ्जन—हि० लाल सुरमा।

स्वयंगुप्ता—हि० कौंछ, किवांच। बं० आलकुसी।

स्वर्जिचार—हि० सज्जी।

स्वर्ण—हि० सोना।

स्वर्णक्षीरी—हि० चोक, सत्यानाशी। बं० चोक सियालकाटा।

स्वर्णुली—हि० सनाय

स्वादुपटोली—हि०मीठापटोल।

ह

हवुषा—हि० बड़ी हाउबेर।

हीरक—हि० हीरा।

हरिचन्दन—हि० कुङ्कुमागुरुचन्दन।

हरिताल—हि० हरिताल।

हरिद्रा—हि०हल्दी। बं० हरिद्रा

हरिद्र—हि० हरदिया।

हरिद्रुभ—हि० बड़ा दाम।

हरीतकी—हि० हरड, हर्ड़, हरें। बं० हरीतकी।

हरीतकीतैल—हि० हरडका तेल

हस्तकौडिका—हि० हाडजोड।

हस्तिकोषातकी—हि० नेनुआ, गलका तोरई, घीया तोरई। बं० धुंधुल।

हस्तिमद—हि० हस्तिमद।

हस्तिकन्द—हि० हाथी चिघारी। हि० कचु।

हस्तिशुण्डी—हि० हाथीशुण्डा।

हिताबली—हिताबल्ली।

हिज्जल—हि० जलकनेर।

हेमजीवन्तिका—हि० स्वर्णजीवन्ती।

हेमयूथिका—हि॰ पीली जूही।
हंसपादी—हि॰ गोहालिया।
हिङ्गु—हि॰ हींग। ब॰ हींग।
हिङ्गुपत्री—हि॰ बाफली। बं॰ गंसुनी।
हिङ्गुल—हि॰ सिंगरफ।
हिन्ताल—हि॰ बड़ा ताड़।
ह्रस्वालह—हि॰ छोटी पाखर।

क्ष

क्षुप—हि॰ चवरा, चौरा, रत्तरा, बौड़ा, लोनिया।
क्षीरकाकोली—हि॰ क्षीरकाकोली।
क्षीरणी—हि॰ खिसोरा।
क्षीरविदारी—हि॰ दूधविदारी।
क्षुद्रकारलीकन्द—हि॰ कडवचीकन्द।
क्षुद्रचञ्चु—हि॰ छोटी चञ्चु।
क्षुद्रदुरालभा—हि॰ छोटा धमासा।
क्षुद्रपाषाणभेद—हि॰ क्षुद्रपाषाणभेद।
क्षुद्रशङ्ख—हि॰ छोटा शङ्ख।
क्षुद्रा उपोदकी—हि॰ छोटी पोई।
क्षुद्राग्निमन्थ—हि॰ छोटी अरनी।



तृतीय संस्करणका विज्ञापन।

बड़े आनन्दका विषय है, कि फिर, वैद्यक-शिक्षाका तृतीय संस्करण भी छप गया। द्वितीय संस्करण की दो हजार प्रति जितनी जल्दी बिकी उतनी आशा हमें न थी। अवश्य यह ईश्वर की कृपा व ग्राहक अनुग्राहक गणोंकी सहायताका फल है। इस बार नये उत्साहसे वैद्यक शिक्षाका तृतीय संस्करण की ४ हजार प्रति हमने छपवाया है। द्वितीय संस्करणमें बहुत कुछ त्रुटियां रह गई थी इस बार उन त्रुटिओं को सुधारने के साथ साथ कई नवीन और परीक्षित औषधियोंका योग भी दियेगये हैं। इसके सिवाय आयुर्वेदीय संस्कृत नामावलीका हिन्दी और बङ्गला भाषाका सर्व्वसाधारणके समझने लायक पुस्तकके अन्तमें एक निघण्ट दिया गया है।

अन्तमें पाठकोंसे सविनय निवेदन है कि यदि कोई त्रुटि या भूल रह गई हो तो कृपाकर सूचित करें जिसे हम चतुर्थ संस्करण में सन्निवेशित करेंगे।

भवदीय—

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।

श्रीगणेशाय नमः ।

वैद्यक-शिक्षा ।

प्रथम खण्ड ।

स्वास्थ्यविधि ।

"स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति ।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते ।" - चरकसंहिता ।

चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्य ।—स्वास्थ्य सम्पादन करनाही चिकित्सा शास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। रोग उत्पन्न होनेसे चिकित्सा द्वारा उसका निवारण करना जैसा आवश्यक है, वैसही रोग आक्रमणके पहिले जो सब उपायों के अवलम्बन करने से रोग उत्पन्न न हो, उसका प्रतिपालन करना उससेभी अधिक आवश्यक है। स्वास्थ्य रक्षाही रोगोत्पत्तिके निवारण का एकमात्र उपाय है। यथोपयुक्त बल वर्णादि सम्पन्न निरोग शरीर से निर्दिष्ट आयुके उपभोगका नाम स्वास्थ्य है तथा जिस रीति के आहार विहारादि से स्वास्थ्यकी रक्षा होतीहै उसको स्वास्थ्यविधि कहते हैं। शरीरी मात्रको स्वास्थ्य एकान्त प्रार्थनीयहै, कारण ऐहिक, पारत्रिक जितने कामहैं सबका मूल स्वास्थ्यहीहै। शरीर निरोग न रहनेसे ऐहिक सुखजनक विद्या, धन, यश, अभीष्ट लाभ, अथवा व्रत धर्मादि पारलौकिक धर्ममूलक कार्य्य सम्पादन, ये दोनों कोई

कार्य्यभी सम्पन्न नही हो सक्ता। वस्तुतः एक मनुष्य सब गुण क्ष अनुकूल पुत्र कलत्रादि परिवार परिवृत नष्ट स्वास्थ्य होनेसे जैसा दु:खित होताहै, दूसरा मनुष्य सम्पूर्ण निरोग पर ये सब सुखोंसे वंचित रहने परभी वैसा दु:खित नही होता। यही सब कारणोंको विचार करके आर्य्य मनोषिगणोंने जो सब उपायोंके अवलम्बन करनेसे, मनुष्यगण जराव्याधि प्रभृतिसे छुटकारा पा सकें वही सब उपदेशोंका उल्लेख चिकित्सा शास्त्रमें पहिले कियाहै। हमभी उसी रीतिसे इस पुस्तकके आरम्भमें प्रथम स्वास्थ्यरक्षाके विषयमें कई एक संक्षिप्त नियम सन्निवेशित करते हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य लक्षण।—स्वस्थ व्यक्ति अर्थात् जिनके शरीरमें वात, पित्त और कफ यह तीन दोष; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और ओज यह अष्टधातु और मूत्र, पुरीष, स्वेदादि मल समूह उपयुक्त मात्रामें है, उनको ब्राह्म मुहूर्त्तमें अर्थात् चार दंड रात रहते बिछौनेसे उठ कर मल मूत्रादि त्याग कर दन्तधावनसे मुख धोना चाहिये। पूर्व या उत्तर मुख बैठकर करञ्ज, करवीर, आकन्द, मालती, अर्ज्जुन, खैर अथवा कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त कोई काठकी कूची बनाकर दन्तमांसको छोड़कर दांतको साफ करना; तथा सोना, चांदी, ताम्बा सीसा या पीतलकी बनाई जीभीसे जिह्वा साफ करना इस रीतिसे दन्त प्रभृति साफ और मुखको दुर्गन्धि नाश होनेसे अन्नादिमें रुचि होतीहै। अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, तृष्णा, मुखपाक और हृद्रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा कर्णरोगसे पोड़ित मनुष्योंको दतुवनसे दांत साफ करना उचित नहीहै; सफेद मिट्टी, कोयलेकाचूर्ण, कंडेकी राख आदिसे उनको दांत साफ करना चाहिये। प्रातःकालको तरह तीसरे पहरको भी दतुवनसे मुख साफ करनाचाहिये।

व्यायाम।—इसके बाद व्यायाम (कसरत) करना उचित है। अर्द्ध शान्ति बोध व्यायामको मात्रा निर्दिष्ट है; अर्थात् ललाटमें पसीना आना और ईषत् दीर्घ नि:श्वासादि लक्षणसे अर्द्ध शान्ति अनुभव कर व्यायाम बंद करना। शीत और वसन्तके सिवाय और ऋतुओंमें व्यायाम कुछ कम करना चाहिये। कारण, अधिक व्यायाम इस ऋतुमें करनेसे, तृष्णा, क्षय, प्रमतक (श्वास विशेष) रक्तपित्त, कास, ज्वर और वमन प्रभृति उत्कट रोग होनेका डरहै। उचित मात्रामें व्यायाम करनेसे, शरीरको लघुता, कष्ट सहिष्णुता, अग्निको दीप्ति, मेदक्षय और अङ्गका सुगठन आदि उपकार होताहै। बालक वृद्ध और वातपित्त यद्वा अजीर्ण रोगीको व्यायाम करना निषेध है।

तैलाभ्यङ्ग।—व्यायाम बाद सब शरीर को थोड़ी देरतक मर्द्दन करना आवश्यक है, इससे व्यायाम जनित श्रम दूर होने पर सर्व्वाङ्गमें विशेषकर मस्तक, पैरका तलवा और कानके छेदोंमें तेल मर्द्दनकर स्नान करना। शरीरमें तैल मर्द्दन करनेसे शरीर दृढ़, पुष्ट, क्लेशसह, सुखस्पर्श, और सुन्दर त्वकयुक्त होताहै; तथा इससे जरा, श्रान्ति और विकृत वायु दूरहो आयुको वृद्धि होतीहै। मस्तकमें तैल मर्द्दन करनेसे, खालित्य (टाक), केशकी अकाल पकता और केशका झड़ना आदि रोग दूरहो मस्तक और कपालके बलको वृद्धि, केशके मूलको दृढ़ता, दीर्घत्व और कृष्णत्व, इन्द्रिय समूहको प्रसन्नता और सुनिद्रा होतीहै। पैरके तलवोंमें तेल मालिश करनेसे पदद्वयको कर्कशता, रूक्षता और स्पर्श नभिज्ञता आदि दोष दूर हो, स्थैर्य और बलवृद्धि, सुकुमारता और चक्षुकी ज्योति बढ़तीहै, औरभी पैरका फटना गृध्रसी वात और स्नायु संकोचको आशङ्का नहीं रहतीहै। कानके छेदमें तैल

डालनेसे ऊंचो आवाज सुनना और बहिरापन आदि वायुजनित कर्णरोग तथा मन्याग्रह और हनुग्रह प्रभृति वातज पीड़ा उत्पन्न नहो होती। वस्तुतः तैलाभ्यङ्ग सर्व्वतोभावसे करना उचित है। चर्मा, कलस और गाड़ीके चक्रमें तैल देनेसे उसे बहुत दिन तक स्थायो रहताहै, मनुष्य शरीरभी वैसही तैलाभ्यङ्गसे बहुत दिन तक सबल और कार्य्यक्षम बना रहता है। वमन विरेचनादिके बाद, कफ रोगी और अजीर्ण रोगीको तैलाभ्यङ्ग करना उचित नही है।

स्नानविधि।—तैल मर्द्दनके बाद साफ और बहते पानीसे स्नान करना, अभाव में साफ पानी गरम कर ठंढा होने पर स्नान करना हो तो, मस्तकमें गरम पानी न देकर ठंढा पानी देना चाहिये, कारण गरम पानी शारीरिक बलप्रद होने परभी मस्तकमें देनेसे केश और चक्षुके बलको नष्ट करताहै। स्नान करनेसे शरीरको दुर्गन्ध, मैल, दाह, पसीना, वीभत्सता, भारीपन, तन्द्रा, और खजुली आदिका नाश होताहै तथा शारीरिक बलवृद्धि और अग्निकी दीप्ति होतीहै। स्नानके बाद पहिले गीले अंगौछेसे बदन पोछना, फिर सुखे वस्त्रसे बदन पोछकर, साफ सुखा वस्त्र पहिरना और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यका अनुलेपन करना चाहिये। अर्द्दित रोग, नेत्र, कर्ण और मुख रोगमें, अतिसार रोगमें, पीनस रोगमें, अजीर्ण रोगमें और आहारके बाद स्नान करनेसे अनिष्ट होता है।

आहार।—स्नानके बाद परिष्कृत स्थानमें ऋजु भावसे बैठकर उपयुक्त मात्रासे ईषत् उष्ण, स्निग्ध मधुरादि छ रस सम्पन्न, बलकर रुचि जनक, और विश्वस्त प्रियजनका दिया भोज्य पदार्थ न बहुत जलदी और न बहुत देरसे मौनावलम्बन पूर्व्वक भोजन करना। जितना भोजन करनेसे कुक्षि, हृदय या पार्श्वद्वयमें दर्द

ओर शरीर भारी मालूम न हो अथवा उदर ओर इन्द्रिय समूहोंको प्रसन्नता मालूम हो, क्षुधा पिपासाकी शान्ति हो ओर शयन उपवेशन, गमन, निश्वास, प्रश्वास ओर कथपोकथनमें कष्ट न हो वही आहारको मात्राहै। किन्तु भोज्यवस्तुकी गुरुता ओर लघुतासे उसकी मात्रा स्थिर करना उचित है,—गुरुपाक अर्थात् देरसे हजम होनेवाला पदार्थ अर्द्ध तृप्ति अर्थात् आधा पेट ओर लघुपाक द्रव्य पेटभर खाना उचितहै। उपयुक्त मात्रा आहार न कर अल्प मात्रा या अधिक मात्रा भोजन करनेमे विशेष अनिष्ट होनेकी आशङ्काहै। अल्पाहारमे तृप्ति नहो होती, तथा उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है, बल, वर्ण, आयु, रस रक्तादि धातु समूह ओर ओज क्षीण होता हैं, तथा मन, बुद्धि ओर इन्द्रिय समुदाय उत्तम ओर यावतीय वायु रोग उत्पन्न होते है। अधिक मात्रा आहार करनेसे उगपत् समुदाय दोष कुपित हो अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसुचिका (हेजा) अलसक प्रभृति दुरारोग्य रोग समूह उत्पन्न होते है। अपरोष्कृत स्थान, शत्रुगृह, नीच जातीका गृह, प्रात सन्ध्या ओर सायसन्ध्या प्रभृति समयमें उत्तर मुख बैठकर, पहिलेका आहार अच्छी तरह जीर्ण नं होनेपर, अन्यमनस्क भावमें अथवा ज्वरादि आहार निषिद्ध रोगसे पोडित होनेपर आहार करना उचित नहो है। इसके सिवाय शीतल द्रव्य, पर्युषित ओर सूखी वस्तु, विरुद्ध वीर्य्य ओर क्षीर मत्स्यादिके तरह सयोग विरुद्ध द्रव्यभी आहार करना अनुचित है।

आहारान्ते कर्त्तव्य।—भोजनके बाद जायफल लता कस्तुरीका फल सीतलचीनी लौंग, छोटी इलायची, कपुर, ओर सुपारी आदि मसालायुक्त पान खाना चाहिये, इससे खायाहुआ द्रव्य समूह लारसे मिलकर हजम होता है, ओर मुखकी विर

सता दुरहो सुगन्धयुक्त होता है। इसके बाद थोडो देर बायें तरफ लेटना चाहिये। दिनको भोजनके बाद सोना उचित नही है। कारण दिनको सोनेसे कफ पित्त प्रकुपित हो हलीमक, शिरःशूल, स्तैमित्य, गात्रगौरव, अङ्गमर्द, अग्निमान्द्य, हृदय उपलेप, शोथ, अरोचक, हृल्लास, पीनस, अर्द्धाव भेदक, कोठ, व्रणपिडिका, कण्डु, तन्द्रा, कास, गलरोग प्रभृति और बुद्धिनाश, स्रोतो रोध, और इन्द्रिय समूह दुर्व्वल आदि रोग होनेकी आशंका रहती है। पर जिनको सङ्गीत अध्ययन, मद्यपान, अधिक रात्रि जागरण, मैथुन भारवहन, पथ पर्य्यटन आदि कामोसे क्लान्ति हुइहे और अजीर्ण, क्षत, तृष्णा, अतिसार, शूल श्वास, हिक्का, उन्माद, पतन या आघातादिसे पोडित तथा क्रोधो, शोकार्त्त भीरू, वृद्ध, बालक, क्षय या दुर्व्वल है उनके हकमे दिवा निद्रा उपकारी है। साधारणतः दिवा निद्रा मना रहने परभी ग्रोष्म ऋतुमें स्वभावतः रुक्ष और इस ऋतुमें सूर्य्यकिरण तेज और रात्रि मान अति अल्प होनेके कारण दिवा निद्रा अनिष्टजनक नहो है। किन्तु मेदस्वो, कफ प्रकृति या कफ रोग पोडित और दुषित विषादिसे पोडित ऐसे मनुष्यको ग्रोष्म ऋतुमेभो दिवा निद्रा अनिष्ट कारक है।

भोजनके बाद शारीरिक परिश्रम जनक कार्य्य, तेज चलनेवाली सवारीमें चढना और आग तथा धूपमे बैठना उचित नही है। दो पहरके पहिले या तीसरे पहर को भोजन करना अनुचित है।

तोसरे पहरको जब सूर्य्यको किरण ठढो हो तब थोडो देर बगोचा आदि खुलासे स्थानमें टहलना उचित है, इससे अग्निको दीप्ति, शारीरिक फूर्त्ती और मन प्रफुल्लित होता है। टहलतो समय जुता पैरमें रहना चाहिये, इससे पददयमे किसी तरहका कष्ट नही होता और आखके हकमें उपकारो है। धूप, दृष्टि या

शिशिरके समय कहीं जाना होतो छाता सिरपर लगाना अवश्य उचित है।

रातको एक पहरके भीतर उपर कहे अनुसार उपयुक्त मात्रासे आहार करना चाहिये। रातको दधि भोजन करना कदाच उचित नहीं है। आहारके बाद सूखा-साफ और हवादार घरमें अवस्थानुसार पलंग, चौकी, चारपाई आदि पर ऋतु भेदानुसार कोमल सुखस्पर्श बिछौनेपर सोना चाहिये। रातको ६ घंटेसे ८ आठ घंटे तक सोना उचित है। इससे कम या अधिक देर तक सोनेसे शारीरिक क्षमता, दौर्बल्य, और कई कठिन रोग अथवा मृत्युतक होनेका डर है। इससे मनुष्य मात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें आहारादिके तरह उपयुक्त मात्रा निद्रा करनाभी भांति आवश्यक है।

सहवास।—शरीर रक्षाके लिये सहवास अर्थात् मैथुनभी नितान्त उपयोगी है। ऋतु भेदसे उपयुक्त कालमें अनुरागिनी और अनुकूला स्त्रीमें उपगत होना चाहिये। रजस्वला, कुष्ठादि रोग पीड़िता, स्वकीय अनभिमत रूप या आचार विशिष्टा, अन्यासक्ता स्त्री, परस्त्री, दुष्टयोनि, पश्वादि योनि, योनि भिन्न गुह्यद्वारादि अन्य छिद्रमें अथवा हस्तमैथुन नहीं करना। तथा प्रातःसन्ध्या या सायंसन्ध्या, पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, संक्रान्ति और श्राद्ध दिन प्रभृति निषिद्ध दिनको; देवालय, चतुष्पथ श्मशान, जलाशय, तीर, गुरु ब्राह्मण आदिका मकान शराबकी दुकान आदि स्थानमें अथवा जहां बहुत मनुष्य रहे ऐसे स्थानमें मैथुन करना उचित नहीं है। ज्वरादि यावतीय रोगसे पीड़ित मनुष्यको मैथुन करना नहीं चाहिये।

ऋतुचर्य्या शीत और हेमन्तमें।—यह सब निर्दिष्ट

नित्य कर्मोंके सिवाय ऋतुभेदानुसार कई विशेष नियम प्रतिपालन करने चाहिये। हेमन्त और शीत ऋतुमें शीतल वायुस्पर्शादिसे पेटके भीतरकी अग्नि बढ़ होती है इससे अग्निबल उसवक्त बढ़ता है तथा उपयुक्त मात्रा आहार न मिलनेसे रसादि धातु समूहको परिपाक करता है, इससे इस ऋतुमें अधिक गोधूमादि निर्म्मित अन्न और लवण रसयुक्त स्निग्ध पिष्टकादि भोज्य, जलज और आनूप प्रभृति मांस अभ्यास रहनेसे मद्य, दूध, और दूधकी बनाई वस्तु और मिठाय प्रभृति खाना चाहिये। स्नान, पान, आचमन, और शौचादि कार्य्यमें गरम पानी व्यवहार करना। रेशम, कपास, और पशुलोम निर्म्मित वस्त्रसे बदन ढाकना, उष्णगृह, और उष्ण शय्यामें शयन करना, इस ऋतुमें रोज मैथुन करनेसेभी शरीरमें किसी प्रकारको हानिका आशङ्का नहीं है। कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य, लघु द्रव्य, और वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, वायु सेवन, और दिवा निद्रा आदि हेमन्त और शीतमें परित्याग करना चाहिये। हेमन्त और शीतके आचरण प्राय एकही तरहके; इसलिये दोनोंको ऋतुचर्य्या एक साथ लिखी गयी है, पर शीतके न्यूनाधिक्यमें पूर्व्वोक्त आचरण समूहमें किञ्चित हेर फेर करना आवश्यक है।

वसन्तमें।—हेमन्तका सञ्चित कफ, वसन्त कालमें सूर्य्यके प्रखर किरणसे कुपित होके पाचकाग्निको दूषित करता है, इससे बहुतेरे रोग होनेकी सम्भावना है। अतएव वसन्त ऋतुमें वमनादिसे कफको निकालना उचित है। इस ऋतुमें लघुपाक, रुक्ष-वीर्य्य, कटु, तिक्त, कषाय और क्षाररसयुक्त पदार्थ, शश, आदिके मांसका आहार और स्नान पान आचमन और शौचादि कार्य्यमें थोड़ा गरम पानी व्यवहार करना चाहिये। पोशाक और बिछौना

हेमन्त ऋतुको तरह व्यवहार करना। युवती स्त्रीका संग प्रशस्त है। गुरु स्निग्ध द्रव्य और अम्ल, मधुर रस भोजन, दिवा निद्रा आदि वसन्त कालमें अनिष्ट कारक है।

ग्रीष्मकालमें ।—ग्रीष्मकालमें मधुर रसयुक्त शीतल और स्निग्ध द्रव्य आहार और पान करना चाहिये। इस ऋतुमें जंगली पशु पक्षीका मांस, घृत, दूध, शालि धान्यका भात, आदि भोजन, शीतल गृहमें अल्प दिवा निद्रा, रातको शीतल गृहमें और शीतल बिछौने पर शयन, सुशीतल उपवन और जलाशयके तीर आदि स्थानमें विचरण हितकर है। कपास निर्मित हलका पोशाक इस समयमें व्यवहार करना। लवण, अम्ल और कटुरसयुक्त तथा उष्ण वीर्य्य द्रव्य भोजन, मैथुन और मद्यपान ग्रीष्म ऋतुमें निषिद्ध है। मद्यपानका विशेष अभ्यास हो तो अधिक पानी मिलाकर थोड़ा मद्यपान करसकते है।

वर्षामें ।—वर्षामें ग्रीष्मसञ्चित वायु कुपित होता है, इससे अनुवासन कर्म्म (स्नेहपिचकारी) से वायुको शान्त करना चाहिये। इस ऋतुमें अग्निबल क्षीण होनेके कारण आहार हलका करना चाहिये। वर्षाऋतुमें पानी बरसनेसे किसी वक्त शीतकालकी तरह, किसी वक्त पानी न बरसनेसे ग्रीष्मकालकी तरह अनुभव होता है। इससे इस ऋतुका पान, आहार, शय्या, और पोशाक आदि विचार कर शीत, ग्रीष्म, वसन्त आदिके तरह समय समय पर परिवर्त्तन करना आवश्यक है। खाने पीनेकी चीजमें थोड़ा मधु मिलाकर खाना पीना चाहिये। जंगली मांस, पुराना यव, गोधूम या धान्यादि अन्न और अधिक खट्टा, लवण और स्निग्ध द्रव्य भोजन करना उचित है। वृष्टि, कूप या सरो-

वरका पानी गरम कर ठंढा होने पर पान और स्नान करना चाहिये। मद्यपान करना हो तो ग्रीष्मकालकी तरह पुराना मद्य बहुत पानी तथा थोड़ा सहत मिलाकर पीना। इसवक्त रुईका साफ कपड़ा पहिरना उचित है। वृष्टि और वृष्टिजन्य भूवाष्प (माटीके भीतरसे एक प्रकारका गैस उठता है उसको भूवाष्प कहते है) शरीरमें न लगने पावे। दिनको सोना, ओस धूप आदिमें फिरना, नदीके पानीमें स्नान, व्यायाम और मैथुन इस समय में बहुत अनिष्टकारक है।

शरत्‌में।—शरत कालमें वर्षा ऋतुका सञ्चित पित्त सहसा अधिकतर सूर्य्य किरण प्राप्त हो कुपित हो उठता है। इससे इसवक्त विरेचनसे पित्तको शान्त और जलौकादिसे रक्त मोचन करनेकी विधि है। लघुपाक, शीतल, मधुर और तिक्त रस संयुक्त अन्नपान हितकारी है यव गोधूम और धान्यादिका अन्न, लाव, चटक, हरिण, शश, मेष प्रभृतिके मांस; नदीमें स्नान और पान; निर्म्मल और हलका वस्त्र परिधान, सुकोमल और सुखस्पर्श शय्या तथा चन्द्रकिरण सेवन करना उचित है। क्षार द्रव्य, दही, जलज और आनूप मांस भोजन, तैल मर्द्दन शिशिर और पूर्व्वदिशा की वायु स्पर्श शरत् कालमें अनिष्ट कारक है।

साधारणतः वसन्तकालमें वमन, शरत कालमें विरेचन और वर्षाकालमें अनुवासन विधिका उपदेश रहनेपर भी सास भेदसे इसकी विशेष विधि कहते हैं; जैसे—चैत्रमासमें वमन, श्रावणमें अनुवासन और अगहनमें विरेचन कराना उचित है।

ऋतुभेदसे ऋतु चर्य्या।—ऋतु भेदसे जो सब स्वास्थ्य विधि ऊपर कह आए हैं, अपने अपने प्रकृति अनुसार उसका थोड़ा परिवर्त्तन करना आवश्यक है। वायु प्रकृतिके मनुष्यका वायु

जिसमें शान्त रहे, सब ऋतुमें वैसाही आहार विहारादिका आचरण करना। ऐसही पित्त प्रकृतिके मनुष्यको पित्तनाशक और श्लेष प्रकृतिवालेको श्लेष नाशक आहार विहार करना चाहिये। स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त द्रव्य भोजन, शीतल पानीसे स्नान, शीतल जल पान, सम्वाहन (हाथ पैर दबाना) सर्व्वदा सुखजनक कार्य्य, घृत तैलादि स्नेह द्रव्य व्यवहार, अनुवासन (स्नेह पिचकारी) अग्निदीपक और पाचक औषधादि सेवनसे वात प्रकृतिके व्यक्तिका वायु शान्त रहता है। मधुर तिक्त और कषाय रस संयुक्त शीतल द्रव्य पान भोजन, घृत पान, सुगन्धित द्रव्य सूङ्घना, मोती हीरा और पुष्पादिकी माला धारण, गीत वाद्य आदि श्रुति सुखकर शब्द सुनना, प्रियजनोंके साथ बात चीत, ठंढी हवा और चन्द्रकिरणमें फिरना; मनोरम उपवन, नदीतीर या पर्व्वत शिखर प्रभृति मनोहर स्थानमें विचरण और विरेचन तथा तिक्त घृतादि औषध सेवनसे पित्त प्रकृति मनुष्यका पित्त शान्त रहता है। कटु तिक्त और कषाय रसयुक्त तथा तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्य पान भोजन, सन्तरण, अश्वारोहण, व्यायाम, रात्रि जागरण, रुक्ष द्रव्य समूहद्वारा गात्र मर्द्दन, धूमपान, उपवास, उष्ण वस्त्र परिधान; और वमनादि क्रियासे श्लेष प्रकृति मनुष्यका श्लेषप्रशमित होता है। अतएव अपनी अपनी प्रकृति विचार कर उपर लिखे उपदेशोंको जहांतक बने पालन करना चाहिये।

स्वास्थ्यान्वेषीका कर्त्तव्य।—यह सब दैनिक कार्य्य और ऋतुचर्य्याके सिवाय औरभी कई एक सदाचार स्वास्थ्यान्वेषी मनुष्य गणोंको अवश्य पालन करना उचित है। इसमें संक्षेपमें उनकोभी यहां लिखते हैं। सबेरे स्नानके बाद और शामको ईश्वर

सन्ध्या प्रभृति धर्म्म कार्य्यका अनुष्ठान करना। देवता ब्राह्मण गुरु और वृद्धोंकी सर्व्वदा भक्ति करना। यथासाध्य गरीबकी खबर लेना और अतिथिकी सेवा करना। जितेन्द्रिय निश्चिन्त, अनुद्धत, निर्भीक, लज्जाशील, क्षमाशील, प्रियभाषी, धार्म्मिक अध्यवसायी और विनयी होना। सर्व्वदा परिष्कार वस्त्रादि परिधान और भद्रजनोचित वेश रखना। सब प्राणियोंपर आत्मीयता प्रकाश करना, परस्त्री और पर सम्पत्ति पर लोभ नहीं करना। कभीभी किसी तरहके पापका अनुष्ठान या पापीके संगमें नहीं रहना, दूसरेका दोष और गुप्त बात किसीके पास प्रकाश नहीं करना। बड़े आदमी या भले आदमीसे विरोध नहीं करना। किसी तरहकी खराब सवारी, वृक्ष या पर्व्वत शिखर पर न चढ़ना, जोरसे हंसना विकट भावसे बैठना, असम स्थान या सङ्कीर्ण स्थानमें सोना; मुह बन्दकर जम्हाई लेना, हंसना या छींकना, विना कारण नासिका मर्द्दन, दांत कटकटाना, नाखून घिसना, हाडसे हाडपर मारना, ज्योतिष्क पदार्थ देखना, अकेला शून्य घरमें रहना, जंगलमें फिरना, स्नान करने पर पहिरे हुए वस्त्रसे बदन पोछना, मल मूत्रका वेग रोकना, शामको आहार निद्रा और मैथुन; रातको अपरिचित स्थानमें जाना आदि कामोंको त्यागना उचित है। रातको किसी जगह जानेकी आवश्यकता होने पर सिरमें उष्णीष, पैरमें जूता, हाथमें छड़ी और संगमें आदमी तथा रोशनी अवश्य लेना चाहिये। रातको अपरिचित स्थानमें जाना उचित नहीं है। स्वास्थ्यविधि सम्बन्धमें इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि जिस कामसे शारीरिक या मानसिक किसी प्रकारके अनिष्टकी सम्भावना हो ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये।

नियम पालनका फल।—उपरोक्त स्वास्थ्यविधि प्रति-

पालन करनेसे सर्व्वदा मनुष्य निरोग रहकर निर्दिष्ट आयु उपभोग कर सकता है, सुतरां ऐहिक और पारत्रिक सब कार्य्य निर्व्विघ्न सम्पादन कर इहकालमें उत्तम गति पानेको समर्थ होता है। अतएव मनुष्यमात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें यत्नवान होना उचित है।

नियम अपालनका फल।—स्वास्थ्यविधि पालन न करनेसे शरीरमें नानाप्रकारके रोगोंका प्रादुर्भाव होता है। कभी सम्पूर्ण रूपसे स्वास्थ्यरक्षा करने परभी अभिघातादि आकस्मिक कारणसे भी रोग होता है। चाहे जिस कारणसे हो, रोग उपस्थित होते ही उसके उपशमनका उपाय करना चाहिये। किसी रोगको सामान्य समझकर छोडना नहीं चाहिये, कारण सामान्य रोगभी प्रथम अवस्थामें उपेक्षित होनेसे वही क्रमशः असाध्य हो जानका गाढ़कड़ो जाता है। अतएव रोग होतेही चिकित्सकसे परामर्श लेकर उसका प्रतिकार करना चाहिये। कोई रोग असाध्य होने परभी चिकित्सामें त्रुटि नहीं करना, कारण बहुतेरे असाध्य रोगभी आराम होते देखा गया है। रोग होनेपर डरना नहीं, तथा उसका पूरावृत्तान्त चिकित्सकसे कहना, और चिकित्सकके परामर्श अनुसार सब काम करना। रोग असाध्य या उत्कट होनेसे चिकित्सक या आत्मीयगण रोगीसे न कह कर रोगीको सर्व्वदा सामान्य रोग कहकर आश्वास देना चाहिये; कारण रोगी हताश या असन्तुष्ट होनेसे साध्य रोगभी असाध्य हो जाता है। रोगीके अनुगत, विश्वस्त और प्रिय २।१ आदमी सर्व्वदा पासमें रहकर आश्वासपूर्ण प्रिय वाक्यसे उसको सन्तुष्ट रखे। रोगीके पास बहुत आदमीके निश्वासादिसे गृहकी वायु दूषित होकर रोगीका अनिष्ट होनेका डरहै। जो घर सूखा, परोष्कृत और प्रवात अर्थात् जिसमें

वायु अच्छी तरह खेलती रहे ऐसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना। पहिरनेका कपड़ा सूखा और साफ होना चाहिये, दिनभरमें कमसे कम दोबार पहिरनेका कपड़ा बदलना तथा उसका बिछौना सूखा नरम और साफ होना चाहिये। किसी कारणसे बिछौना खराब होतेही अथवा साधारणत: दो तीन दिन पर बदलना उचित है। सेवा करनेवाले सवदा सतर्क रहकर चिकित्सकके आदेशानुसार काम करें और आहार विहारादि कार्य्यमें रोगी किसीतरहका कु नियम करने न पावे, इस विषयमें विशेष सावधान रहें। चिकित्साके लिये उपयुक्त चिकित्सक निर्व्वाचन करना चाहिये। चिकित्सा शास्त्रमें व्युत्पन्न, दृढकर्म्मा और सतकर्म्मा, औषधादि सब उपकरण विशिष्ट और दयावान, इन सब गुणयुक्त चिकित्सकको चिकित्साका भार देना चाहिये। अज्ञ चिकित्सकसे कभी चिकित्सा नही कराना। उपयुक्त चिकित्सकके चिकित्सामें मृत्युभी अच्छी है तथापि अज्ञ चिकित्सकसे आरोग्य लाभकी आशा करना उचित नही है। आयुर्वेदका प्रधान ग्रन्थ चरकसंहितामें इस विषयमें बहुत दोष लिखा है,

"कुर्य्यान्निपतितो मूर्द्धि सशेषं वासवाशनि

सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम्॥"

मस्तकमें वज्राघात होनेसे कदाचित् जीनेकी आशा कर सकते हैं तथापि अज्ञ चिकित्सकको दी हुई औषधसे जीवन रक्षाकी आशा नही करना चाहिये।

जो सब स्वास्थ्यविधि प्रतिदिन आवश्यक हैं, वही सब यहां लिखी गयी हैं। अब पर रोग परीक्षा विषयके कतिपय नियमोंका लिखना आवश्यक है।

———•———

रोग-परोचा।

रोगमादौ परीचेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म्मभिषकपश्चात् ज्ञानपूर्व्वं समाचरेत्॥
चरकसंहिता।

पहिले रोगको परोचाकर, फिर उसका औषध विचार कर चिकित्सा करना ; यही चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्य है।

रोग परोचाको आवश्यकता।—वस्तुतः चिकित्साका प्रधान अङ्ग रोग परोचा है। उचित रोतिसे रोग निश्चय न होने पर उसका औषधभी निश्चय नहीं हो सकता। कारण जिसका जो नाम है उस नामसे न पुकारनेसे जैसे जवाब नहीं मिलता है तथा किसी समय वही आहूत व्यक्ति क्रुद्ध होता है वैसही अनिश्चित रोगमें किसी प्रकारके औषधसे प्रतिकारको आशाभी वृथा है, तथा उससे अकसर रोगकी वृद्धि और जीवन नाश होते देखा गया है। अतएव पहिले रोगकी परीचा करना आवश्यक है।

परोचाका उपाय।—संचेपमें रोग परोचाका तीन उपाय है ;—शास्त्रोपदेश, प्रत्यच और अनुमान। प्रथमतः रोगोंमें सब अवस्था अवगत हो, शास्त्रोपदिष्ट लचणसे मिलाना, फिर अनुमानसे रोगका आरम्भ या दोष और बलाबल निश्चय करना।

रोगीसे अवस्था अवगत होते समय सब इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। रोगीका वर्ण, आकृति परिमाण, (क्षीनता और पुष्टता) और कान्ति, तथा मल, मूत्र, नेत्र प्रभृति यावतीय देखनेके विषयको देखकर; रोगीके मुखसे उसकी सब अवस्था सुनकर, अङ्गकूजन, सन्धिस्थान या अङ्गली पर्व्व समूहोका स्फुटन आदि शरीरके सब लक्षण देखकर, शारीरिक गन्ध प्रकृत है या विकृत हुआहै उसको परीक्षाके लिये सब शरीरगत गन्ध मल मूत्र शुक्र और वान्त पदार्थ आदि सूंधकर तथा सन्ताप और नाडीको गति आदि स्पर्शकर मालूम करना। केवल अपने रसनेन्द्रियसे कोई विषय जानना असम्भव है, इससे मधु मेहादिमें मूत्रादिकी मिष्टता, रोग विशेषमें सब शरीरकी विरसता और रक्त पित्तमें रक्तका स्वाद जानना हो तो दूसरे जीवसे परीक्षा कराना। शरीरमें कीड़ उत्पन्न होनेसे शरीरकी विरसता और मक्खी बैठनेसे मिष्टता अनुमान करना चाहिये। मूत्र मीठा होनेसे, उसमें चींटी लगती है। रक्त पित्तमें प्राण रक्त वमन हुआ है वा नहो सन्देह होनेसे, काक कुक्कुर आदि जन्तुको चटाना, यदि वे चाट जाय तो प्राण रक्त और न चाटेतो रक्तपित्त का रक्त निश्चय करना। अग्निबल, शारीरिक बल, ज्ञान और स्वभाव प्रभृति विषयोंको कार्य्य विशेषसे अनुमान कर लेना। भूख, प्यास, रुचि, अरुचि, भूख, ग्लानि, और सपना देखना प्रभृति रोगीको पूछकर मालूम करना। अति सामान्य भेदके दो तीन रोगोंमें किसी रोगका निर्णय न होनेसे साधारण कोई औषध देकर उसके उपकार और अनुपकारसे रोगका निश्चय करना। लक्षण विशेषसे रोगकी साध्यता, याप्यता और असाध्यता जानना। अरिष्ट लक्षणसे रोगीका मृत्युमालूम करना।

उक्त विषयोंमें नाडीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, नेत्र परीक्षा, जिह्वा परीक्षा प्रभृति और अरिष्ट लक्षण सहजमें मालूम नहो होताहै, इससे क्रमशः प्रत्येक विषयोंका विवरण लिखते है।

नाड़ी परीक्षा।

नाड़ीपरीक्षा।—हाथका मणिबन्ध (पहुंचा) और अंगुलोके जड़में एक गांठहै; उस गांठ को अंगुलोसे दबाकर नाडीको गतिमालूम करनेको नाडो परोक्षा कहते है। नाडो परीक्षामें पुरुषका दक्षिण हाथ और स्त्रोके बांये हाथके नाडोको परीक्षा करना, कारण स्त्री पुरुषके शरीर भेटके साथ नाडो आदिकाभो मूल विपरीतहै, सुतरां पुरुषके दक्षिण हाथसे जो नाडो मालूम होतोहै वही नाडो स्त्रोके बायें हाथसे अनुभूत होतोहै। इसके सिवाय दोनो पेरके गुल्फ ग्रंथिके नोचे, कठ, नासिका और उपस्थमेंभो नाडी मालूम होतोहै। मुमुर्षुअवस्थामें जब हाथको नाडो साफ मालूम नही तब उक्त नाडीयोंसे परोक्षा करनेको विधिहै।

परीक्षाके नियम।—रोगीके नाडीके उपर परीक्षा करनेवालेके दक्षिण हाथको तर्ज्जनो, मध्यमा और अनामिका अंगुलो स्थापन पूर्व्वक बायें हाथसे रोगोका वही हाथ थोडा टेढा कर केहुनीमें जो नाडो है उसको थोडा दबाना चाहिये, मणिबंधमें तर्ज्जनो अंगुलोके नोचेवालो नाडी वायु, दूसरो पित्त और तोसरो कफको जानना। किसी किसोका मतहै, कि तर्ज्जनाके नोचे

वायु मध्यमाकी नीचे पित्त और अनामिकाके नीचे कफको नाड़ी अनुमान करना चाहिये।

परीक्षाका निषिद्धकाल।—तैल मर्द्दनके बाद, निद्रित अवस्थामें, भोजनके वक्त या भोजनके बाद, भूख प्यास लगी रहने पर, या धूपसे गरम रहने पर और व्यायामादि श्रम जनक कार्य्यके बाद नाड़ी परीक्षा करना उचित नहीं है, कारण उस वक्त नाड़ीकी गति विकृत रहतीहै, इससे परीक्षणीय विषयका अच्छी तरह अनुभव नहीं होताहै।

स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ीकी गति।—स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी केंचुएके गतिकी तरह, अर्थात् धीरे धीरे चलतीहै अथच उसमें किसी तरहका भारीपन मालूम नहीं होता। किन्तु किसी किसी वक्त स्वस्थ मनुष्यकोभी नाड़ी अन्य रूप हो जाया करतीहै; जैसे;—सवेरे नाड़ी स्निग्ध, दोपहरको गरम और तिसरे पहरको तेज अनुभूत होतीहै।

अस्वस्थ व्यक्तिके नाड़ीकी गति से प्रकोपभेद जानना।—अस्वस्थ अवस्थामें वायुके आधिक्यमें टेढ़ी, पित्तके आधिक्यसे चंचल और कफके आधिक्यसे नाड़ी स्थिर चलतीहै। साधारणतः इसी रीतिसे औरभी कईप्रकार विशेष गतिकी कल्पना करना चाहिये जैसे वायुमें टेढ़ी याने सर्प, जलौका (जोंक) आदिके गतिकी तरह। पित्तमें चंचल गति काक, बटेर और मेंढक आदिके तरह और कफके आधिक्यमें स्थिर भाव राजहंस, मोर, कबूतर, घुघु, और मूर्गा आदिके गतिकी तरह अनुमान करना। दो दोषके आधिक्य में, वायु और पित्त यह दो दोष प्रबल रहनेसे नाड़ीकी गति कभी सर्पकी तरह कभी मेंढककी तरह लक्षित होती

है ; वायु और कफ यह दो दोष प्रबल रहनेसे नाड़ीको गति कभी सर्पकी तरह कभी राजहंसकी तरह होती है, पित्त और कफ यह दो दोषके प्रबलतामें नाड़ीकी गति कभी भेकके तरह और कभी मोर आदिके तरह मालूम होतीहै। तीन दोषके आधिक्यमें, पृथक पृथक दोष भेदसे सर्प, बटेर, हंस आदि जीवोंकी गति लक्षित होतीहै। यही विविध गति अनुभवमें यदि पहिलेही वायु लक्षण सर्पादिकी गति फिर पित्त लक्षण बटेर प्रभृति और उसके बाद कफ लक्षण हंस आदिकी गति मालूम हो तो थोड़ा साध्य जानना, और उसके विपरीत होनेसे अर्थात् सर्प गतिके बाद हंस गति अथवा हंस गतिके बाद बटेर गति ऐसा अनुभव होनेसे रोग असाध्य जानना।

ज्वरके पहिले नाड़ीकी गति।—नाड़ीकी गति दो तीन वार भेक आदि जीवके गतिकी तरह मंथर होती है। पर वह धारावाहिक रूपसे रहने पर दाह ज्वर होता है। सन्निपात ज्वरके पहिले नाड़ीकी गति पहिले बटेर पक्षीकी तरह टेढ़ी, फिर तित्तिर पक्षिकी तरह उंची और अन्तमें वार्तीक पक्षीकी तरह मन्थर भावसे चलती है।

वरमें नाड़ीकी गति।—ज्वरमें नाड़ी उष्ण स्पर्श और वेगगामी होती है। अतिशय अन्न भोजन करने पर, मैथुनके बाद अर्थात् जिस रातको मैथुन हो उस रातको अथवा उसके दूसरे दिन सवेरेभी नाड़ी गरम रहती है, किन्तु तेज नहीं रहती है ; इसी लक्षणसे ज्वरके नाड़ीकी गतिकी विभिन्नता अनुमान करना चाहिये।

वात ज्वर।—साधारणत: वात ज्वरमें वायुके आधिक्यसे नाड़ीके गतिका लक्षण जो कह आएहै वही मालूम होता है, वायु

सञ्चित होनेके समय अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको वात ज्वर होनेसे नाड़ो मृदु, क्षग और धीमो चलतो है। वायुका प्रकोप अर्थात् वर्षा ऋतुमें आहार परिपाकके बाद और शेष रातको वात ज्वर होनेसे नाड़ो भारी, कठिन और शीघ्र गामी होती है।

पित्त ज्वर।—पित्त ज्वरको नाड़ीमें अम्लिलता (गठोलापन) और जड़ता मालूम नहो होती है पर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका यह तीन अंगुलीके नीचे स्पष्ट मालूम होतीहै और गतिका वेगभो अधिक होताहै। पित्तका संचयकाल अर्थात् वर्षा ऋतुमें आहारके बाद, सवेरे और शामको पित्तज्वर होनेसे वही सब लक्षणके सिवाय दूसरा कोई लक्षण दिखाई नहो देता। पित्तके प्रकोपमें अर्थात् शरत् ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको पित्त ज्वर होनेसे, नाड़ो कठिन हो इतनो तेज चलतो है कि मानो नाड़ो मांसका भेद कर बाहर निकल आवेगो।

कफ ज्वर।—कफके आधिक्यमें नाड़ीको गति जैसो निर्दिष्ट है, साधारण कफ ज्वरमें वैसोही गतिके सिवाय और कोई लक्षण नहो मालूम होता। कफका संचयकाल अर्थात् हेमन्त और शीत ऋतुमें भोजनके समय शामको और शेष रातको अथवा कफका प्रकोप काल अर्थात् वसन्त ऋतुमें आहारके बाद सवेरे और शामको कफ ज्वर होनेसे नाड़ो तन्तुकी तरह क्षग और गरम पानीमें भींगे रखोमें जैसो शीतलता मालूम होतीहै वैसोहो शीतल अनुभव होतो है। कफके संचय और प्रकोप कालमें कफके नाड़ोको गतिमें कोई विभिन्नता अनुमान नही होतो है।

द्विदोषमें।—वायु पित्त यह दो दोषज ज्वरमें नाडी चंचल, स्थूल और कठिन होती है मानो झूम झूम कर चलना मालूम होता है। वात कफ ज्वरमें नाडी मन्द और थोडी गरम मालूम होती है। इस ज्वरमें कफका भाग कम और वायुका अधिक रहनेसे नाडी रुक्ष और धारावाहिक अर्थात् लगातार तेज चलती रहती है।

पित्त कफमें नाड़ी क्षय, कभी अधिक शीतल, कभी थोड़ी शीतल और मृदुगामी होती है।

त्रिदोषमें।—त्रिदोषके आधिक्यमें नाडीकी गति जैसी उपर कह आए है, त्रिदोष सन्निपात् ज्वरमेंभी वैसीही गति मालूम होतीहै। इसके सिवाय, औरभी इसके नियम निर्दिष्ट है उसी नियमोंके अनुसार इन ज्वरकी साध्यता आदिका ज्ञान होता है।

कई विशेष लक्षण।—त्रिदोष जन्य प्राय सभी रोग भयानक होतेहै, विशेषतः ज्वर रोग त्रिदोष जन्य होनेसे, अति अल्पकालमें उसमे मृत्युके लक्षण दिखाई देने लगतेहै। इस से सन्निपात ज्वरमें औरभी कई प्रकार नाडी परीक्षा सम्बन्धीय उपदेश जानना आवश्यक है। त्रिदोषज ज्वरके नाडीमें तीनों दोषोंके लक्षण अच्छी तरह मालूम होने परभी यदि तीसरे पहर नाडीकी परीक्षामें पहिले वायुकी स्वाभाविक वक्र गति फिर पित्तकी स्वाभाविक चंचल गति और उसके वाद कफकी स्वाभाविक स्थिर गति मालूम हो तो रोग साध्य है; इसमे विपरीत भाव अनुभूत होनेसे रोग कष्टसाध्य या असाध्य जानना। इसके सिवाय सन्निपात ज्वरकी असाध्यता जाननेके लिये औरभी कई विशेष नियम निर्दिष्टहै; जैसे नाडीकी गति कभी धीर, कभी शिथिल, कभी स्खलित, कभी व्याकुल अर्थात् ब्रम्हत्र्यास्त्रिकी तरह इधर उधर

घूमना, कभी सूक्ष्म, कभी वेमालूम होना अथवा अंगुष्ठ मूलसे विच्युत होना अर्थात् अंगुष्ठके नीचे नाडीकी गति मालूम न होना फिर थोडेही देर बाद गति मालूम होनेहीसे असाध्य लक्षण जानना। किन्तु भारवहन, मूर्च्छा, भय और शोक आदि में नाडीकी गति ऐसेही लक्षणयुक्त होती है, वह असाध्य लक्षण नहीं है। फलत' यावतीय असाध्य लक्षण प्रकाश होने परभी जबतक नाडी अंगुष्ठ मूलसे विच्युत न हो तबतक वह असाध्यका परीचायक नहीं है। ऐसही सब रोगोंमें अंगुष्ठ मूलसे नाडी विच्युत न होने तक उसको असाध्य नहीं कहना।

ऐकाहिक विषम ज्वर।—ऐकाहिक विषम ज्वरकी नाडी कभी अंगुष्ठ मूलके पास कभी अंगुष्ठ मूलमें रहती है। तृतीयक (तिजारी) और चतुर्थक (चौथइया) ज्वरमें नाडी उष्ण स्पर्श और घूमते हुए पानीकी तरह गति अवलम्बन कर क्रमश दूर होती रहती है। अन्यान्य पीडाके असाध्य अवस्थामेंभी नाडीकी गति ऐसही मालूम होती है, पर उसमें सन्ताप नहीं रहता।

भूतज ज्वरमें।—भूतज ज्वरकी नाडी अत्यन्त वेगवती और उष्णस्पर्श होती है। क्रोधज ज्वरकी नाडी मानो दूसरी नाडीको अवलम्बन कर थोडी टेढी चलती है। कारण ज्वरकी नाडीमानो दूसरी नाडीके साथ मिलकर चलती है, पर इसमें ज्वरका प्रकोप अधिक होनेसे उष्ण स्पर्श और द्रुतगति होती है।

कामज ज्वरमें।—मनुष्य इच्छित वस्तु न पानेसे जैसे इधर उधर घूमता है; वैसही ज्वरमें कामातुर होनेसे नाडीकी गतिभी चंचल होती है। ज्वरमें स्त्रीसंगकरनेसे नाडी क्षीण और धीमी चलती है। ज्वरमें दही खानेसे ज्वर का वेग और गरमी अधिक होती है।

अन्न भोजन ज्वरमें।—अधिक खट्टा खानेसे, ज्वर किम्बा दूसरे रोग उत्पन्न होनेसे नाड़ी अधिकतर गरम होती है। कांजी पीनेसे ज्वरादि पीड़ामें नाड़ीकी गतिकी तरह धीमी चलती है।

अजीर्ण में।—अजीर्ण रोगकी नाड़ी कठिन और उभय पार्श्वमें जड़ित भाव से मन्द मन्द चलती है, इसमें आमाजीर्ण की नाड़ी स्थूल, भारी और थोड़ी कठिन; पक्वाजीर्ण में नाड़ी दुर्बल, मन्दगामी और वाताजीर्ण में नाड़ी अधिक चलती है।

विसूचिकामें।—विसूचिका (हैजा) रोग में नाड़ीकी गति भेककी गतिकी तरह, और किसी किसी वक्त इस रोगमें नाड़ी का चलना मालूम नहीं होता तथापि अंगुष्ठ मूलसे विच्युत न होनेतक इस रोगको असाध्य नहीं जानना। विलम्बिका रोगमें भी नाड़ी भेककी गतिकी तरह चलती है। अग्निमान्द्य और धातुक्षीण रोगमें नाड़ी क्षीण, शीतल और अत्यन्त मृदु होती है। अग्निप्रदीप्त रहनेसे नाड़ी लघु और बलवती होती है।

अतिसारमें।—अतिसार रोगमें भेद (दस्त) के बाद नाड़ी बेदम होजाती है, आमातिसार में नाड़ी स्थूल और जड़वत् होती है। ग्रहणी रोगमें हाथकी नाड़ी की गति भेककी गतिकी तरह और पैरकी नाड़ी हंसगतिसे चलती है।

मलमूत्रके रोध में।—मलमूत्र दोनोंका एक सङ्ग अवरोध अथवा दोनोंका पृथक भावसे अवरोध होनेपर, मल-मूत्रका वेग धारण से और विसूचिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर प्रभृति रोगमें मलमूत्र बन्द होकर नाड़ी सूक्ष्म भेकगतिकी तरह स्पन्दित होती है। साधारणतः आनाह और मूत्रकृच्छ्र रोगमें नाड़ी कठिन और भारी चलती है।

शूलरोगमें।—शूलरोग समूहमें वायुजन्य शूलरोग में नाड़ी सर्व्वदा वक्रगति, पित्तजन्य शूलमें नाड़ीकी गति अतिशय उष्ण और आमशूल अथवा क्रिमिशूलमें नाड़ी पुष्ट मालूम होती है।

प्रमेह में।—प्रमेह को नाड़ी बीच बीच में ग्रन्थिविशिष्ट बोध होती है। इसके साथ आमदोष रहनेसे नाड़ी उष्ण होती है।

विष्टम्भ और गुल्म में।—विष्टम्भ और गुल्म रोगमें नाड़ीको वक्रगति होती है। किन्तु यह रोग सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश पानेके पहिलेही नाड़ी लताको तरह उपर को चढ़ती है। विशेषत: गुल्म रोगमें नाड़ी चञ्चल और पारावत को तरह प्रबल वेगसे घूमती हुई मालूम होती है। उन्माद प्रभृतिकी नाड़ी भी वैसही चलती है।

व्रणादि रोग में।—व्रणादि रोगमें व्रणके पक्व अवस्था में नाड़ी की गति पित्तप्रकोप के नाड़ी की तरह होती है। भगंन्दर और नाड़ी व्रण रोगमें नाड़ी वायुप्रकोप के नाड़ी को तरह और अतिशय उष्ण चलती है।

विषभक्ष में। विष खानेसे, अथवा सर्पादि विषैले प्राणीके काटनेसे, शरीर में जब विष फैल जाता है, तब नाड़ी अत्यन्त अस्थिर भावसे चलती है।

रोग परीक्षा के सिवाय नाड़ी को गतिसे रोगी के मृत्युका काल भी जाना जाता है, यह भी नाड़ी परिच्छा के अन्तर्गत है, सुतरां वह सब उपदेश भी यहां लिखते हैं।

मृत्यु नाड़ी का लक्षण।—जिस रोगीको नाड़ी थोड़ी

देर तेज चलकर फिर धीमी हो, तथा शरीर में शोथ नहो, तो उस रोगीको मृत्यु सातवें या आठवें दिन जानना।

जिसकी नाड़ी कभी केंचुवेकी तरह पतली और चिकनी हो और केंचुवेकी तरह टेढ़ी गति हो; कभी अतिक्षय किंवा एकाएकी बेमालूम हो; अथवा शारीरिक क्षयता और शोथादिसे नाड़ी भी क्षय और स्थूल हो तो उसकी मृत्यु एक महीने के बाद होती है।

जिसकी नाड़ी स्वस्थान (अंगुष्ठमूल) से अर्द्धयव स्थान स्खलित हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिनमें निश्चय जानना।

यदि किसीकी मध्यमा और अनामिका अङ्गुली के नीचे नाड़ी मालूम न होकर, केवल तर्जनी के नीचे मालूम हो तो जानना कि उसकी आयु चारदिन और है।

सन्निपात ज्वरमें जिसका शरीर बहुत गरम पर नाड़ी अत्यन्त शीतल हो तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद होगी।

भ्रमर की तरह नाड़ी की गति होनेसे अर्थात् अतिद्रुत गतिसे दो तीन बार चलकर फिर थोड़ी देर अदृश्य और फिर वैसही चलकर अदृश्य, ऐसही बार बार मालूम होनेसे एक दिनमें मृत्यु जानना। यदि किसी को नाड़ी तर्जनी अङ्गुलीके नीचे मालूम नहो, तथा कभी कभी मालूम हो, तो उसकी मृत्यु १२ पहरमें निश्चय होगी।

जिसकी नाड़ी तर्जनीके ऊपर बिजलीके चमककी तरह थोड़ी थोड़ी देरपर चलती हो तो उसका जीवन एक दिन और है, अर्थात् ऐसी चालके आरम्भसे लेकर २४ घण्टेके भीतर मृत्यु होती है।

जिसकी नाड़ी स्वस्थान (अङ्गुष्ठ मूल) से सूखलित १ ...

थोड़ी देर पर चलती हो तथा उसके हृदयमें, यदि जलन अधिक हो तो उस जलनके शान्ति तक उसका जीवन है, अर्थात् जलन शान्तिके साथ साथ उसका प्राण वायुभी नकल जाता है।

नाड़ी स्पन्दन परीक्षा। नाड़ीको गति मालूम कर उसका भेद जानना, अथवा उससे रोगका निश्चय करना और रोगको साध्यासाध्य अवस्था जानना अतिशय कष्टसाध्य है। केवल शास्त्रोपदेशसे उसका अनुभव नहो हो सकता है; अकसर रोगीके नाड़ी की गति देखते देखते रोगका ज्ञान क्रमशः उत्पन्न होता है। इसोसे आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकगणोंने घड़ीके मिनिटसे मिलाकर एक प्रकारके नाड़ीका ज्ञान आविष्कार किया है। अल्पबुधि या साधारण चिकित्सकोंके हकमें यह उपदेश विशेष आवश्यक जानकर, इस ग्रन्थमें उनकोभी लिखते है।

वयोभेदसे स्पन्दन विभिन्नता।—अधिकांश स्वस्थ व्यक्तिकी नाड़ी हरेक मिनिटमें ६०से ७५ वार तक चलती है। किसो किसी की नाडी न्यून सख्या ५० और ऊर्ध्व संख्या ८० वार तक एक मिनिटमें चलता ह। उमरके तारतम्यसे नाडीकी गतिभी विभिन्न है। पेटके भोतरके बच्चोंक ी नाड़ी हरेक मिनिटमें १६० वार, भूमिष्ठ होनेसे १४० से १३० वार, एक वर्षके उमरतक १३० से ११५ वार, दो वर्षके उमर तक ११५से १००, तोन वर्षके उमरमें १००से ८८ वार, फिर सात वर्षके उमर तक ८०से ८५ वार मासमे चौदह वर्षके उमर तक ८५से ८० वार, यौवन और प्रौढावस्थामें ८० वार, बुढापेमें ६५से ५० वार तक नाड़ो चलती है।

विभिन्न अवस्थामें स्पन्दनगति। पानाहारके समय हृत्पिण्डको क्रिया वृद्धि होती है, इससे नाड़ीका वेगभो

उसवक्त बढ़ताहै। स्वभावत: स्त्री जातिकी नाड़ी पुरुषकी अपेक्षा १०।१५ बार अधिक चलती है। नाड़ीकी गति स्वाभाविकके अपेक्षा मन्दगति होनेसे, दुर्ब्बलता या मस्तिष्कमें रक्तका आधिक्य हुआ है समझना। ज्वरमें नाड़ीकी गति स्वाभाविक गतिकी अपेक्षा तेज और उष्ण स्पर्श होती है; स्नायविक दौर्ब्बल्यमें नाड़ी मृदुगति और पुष्ट मालूम होती है; ज्वर संयुक्त सब रोगोंमें नाड़ीकी गति द्रुत और ज्वरके ह्रास वृद्धिसे न्यूनाधिक्य होती है। पूरी उमरमें और प्रदाह जनित रोगमें नाड़ी एक मिनिटमें २० बारसे भी अधिक नहीं चलती है, इससे अधिक गति होनेसे रोग क्रमश: कठिन और १५० बारसे अधिक चलनेसे उसी रोगमें रोगीके मृत्युकी आशङ्का है।

तापमान यन्त्र।

(थर्म्मा-मिटर।)

थर्म्मामिटर या तापमान यन्त्र।—नाड़ीज्ञानसे रोग परीक्षा करना साधारण चिकित्सकगणोंके लिये दुःसाध्य है, इससे पाश्चात्य चिकित्सकोंने शरीरके गरमीको परीक्षा कर रोग निर्णय करनेका एक यन्त्र आविष्कार किया है। इस यन्त्रको अङ्गरेजोंमें "थर्म्मामिटर" कहते है। इससे शरीरके गरमीका परिमाण जाना जाता है, इसको हिन्दीमें तापमान यन्त्र कहते है। इस यन्त्रसे गरमीको परीक्षा करना हो तो, रोगीको करवट सुलाओ तथा नोचेके बगल मे यन्त्रका मूलभाग अर्थात् जिस तरफ पारा रहता है उस भागको बगलमें दबाकर रखना। यन्त्र लगानेसे पहिले बगलमे पसीना हो तो सुखे कपड़ेसे पोंछकर यन्त्र लगाना। यन्त्र दबाती वक्त पारेका भाग बाहर न निकला रहे इसका



ख्याल रखना चाहिये। शारीरिक सन्तापके गरमीसे यन्त्रका पारा क्रमशः ऊपरको उठता है। यन्त्रके ऊपरी भागमें कई अङ्क और दाग है; उस दाग और अङ्कके प्रत्येक चिह्नको डिग्री कहते है। पारा जितनी डिग्री ऊपरको उठे, उसी हिसाबसे शरीरका सन्ताप निश्चय करना। तापमान यन्त्र बगलमें रखकर परीक्षा करनाही साधारण नियम है। इसके सवाय, ऊरू, मुख, सरलयन्त्रमेंभी तापमान यन्त्र देकर परीक्षा करनेकी रीति है। सरलयन्त्रमें ताप निर्णय करना हो तो रोगीको बायें बगल सुलाकर यन्त्र लगाना, मुखमें व्यवहार करना हो तो यन्त्र जीभके नीचे रख मुख बन्द करना। अत्यन्त शीर्ण, अचैतन्य या अस्थिर शिशु रोगीका ताप निर्णय करनेमें सुबीताके अनुसार उक्त स्थानोंमें तापमान यन्त्र व्यवहार करना। तापमान यन्त्र व्यवहार करती वक्त ५से १० मिनिट तक रखना। पारा ऊपरको कैसे उठता है अर्थात् द्रुतगति या मृदुगतिसे उठता है यहभी ख्याल रखना। अधिकांश रोगमें सवेरे और शामको तापका निर्णय करना चाहिये। ताप निर्णय करनेके एक घण्टा पहिलेसे रोगीको स्थिर भावसे रखना उचित है। कठिन रोग समूहोंमें दोदो घण्टेके अन्तरमें ताप निर्णय करना चाहिये।

स्वस्थ शरीरमें स्वाभाविक सन्ताप ९८ डिग्री दशमल् ४ फारन् हीट, २६ वर्षसे कम उमर वालेका स्वाभाविक सन्ताप ९९ डिग्री दशमल् ४ फारन् हीट होता है। व्यायामादि कार्य्यमें अङ्ग चालनासे आग या धूपका बाहरी उत्ताप लगनेसे, ग्रीष्म प्रधान देशमें वास करनेसे और आहारके बाद, सन्ताप इसमेभी अधिक होता है। दिवा निद्राके बाद, विश्राममें, परिश्रम करनेसे स्वाभाविक सन्तापकी अपेक्षा डेढ़ फारन् डिग्री सन्ताप कम होता है। अच्छे

प्रकृतिका कुसुम फूलकी तरह मूत्र होता है। रोग विशेष के अन्यान्य लक्षण न होनेसे केवल इसी प्रकारके मूत्र परीक्षासे कोई पीड़ाकी आशङ्का नहीं है।

दूषित मूत्रके लक्षण।—वायुसे बिगड़ा मूत्र-चिकना, पीला, किम्वा काला अर्थात् कृष्णपीत वर्ण अथवा अरुण वर्ण होता है। इस मूत्रमें तेल डालनेसे तेल मिला विन्दु विन्दु मूत्रविम्ब ऊपरको उठता है। पित्तसे बिगड़ा मूत्र लाल तेलविन्दु डालनेसे उसमें बुद बुद उत्पन्न होता है। कफसे बिगड़ा मूत्र फेनिला और क्षुद्र जलाशयकी तरह गदला होता है। आमपित्त दूषित मूत्र सफेद सरसोंके तेलकी तरह मालूम होता है। वात पित्तके मूत्रमें तेल डालनेसे उसमें काले रङ्गका बुद बुद उत्पन्न होता है। वायु और कफ दूषित मूत्रमें तेल डालनेसे मूत्र तेलके साथ मिलकर कांजीकी तरह दिखाई देता है। कफ और पित्तका मूत्र पाण्डुवर्ण होता है। सान्निपातिक दोष अर्थात् वात पित्त और कफ ये तीन दोषका मूत्र रक्त या कृष्णवर्ण होता है। पित्त प्रधान सन्निपात रोगीका मूत्र रख छोड़नेसे उपरका हिस्सा पीला और नीचेका हिस्सा लाल मालूम होता है। ऐसही वात प्रधान सन्निपातमें मध्यभाग काला और कफाधिक्य सन्निपातमें मध्यभाग सफेद मालूम होता है।

विशेष लक्षण।—प्रायः सब रोगोंमें यही सब लक्षणोंका विचार कर रोगीके दोषका भेद अनुमान करना चाहिये। कई एक रोगमें मूत्र लक्षणका किञ्चित विशेष लक्षण निर्दिष्ट है। जैसे—ज्वरादि रोगमें रस अधिक रहनेसे मूत्र ऊखके रसकी तरह। जीर्ण ज्वरमें मूत्र छाग मूत्रकी तरह। जलोदर रोगमें घीके दानेकी तरह मूत्रमें एक पदार्थ दिखाई देता है। मूत्रातिसार



रोगमें मूत्र अधिक परिमाण रख छोडनेसे नीचे लाल रंग मालूम होता है। आहार जीर्ण होनेसे मूत्र चिकना और तेलको तरह आभायुक्त होता है सुतरां अजीर्ण रोगमें मूत्र विपरीत लक्षणयुक्त होता है। क्षय रोगमें मूत्र कृष्णवर्ण, और इसी रोगमें मूत्र सफेद होनेसे रोग असाध्य जानना।

इसके सिवाय प्रमेह रोगमें मूत्रभेद जैसा होता है, वह प्रमेह रोगमें विस्तृत रूपमें लिखा गया है।

नेत्र-परीक्षा।

प्रकोपभेदसे भिन्न भिन्न लक्षण।—वायु प्रकोपसे दोनो आंखे तीव्र, रुक्ष, धुंवाके आभाको तरह, मध्यभाग पीला या अरुण वर्ण और पुतली चञ्चल होती है, अर्थात् दोनो पुतली सर्व्वदा घुमती रहती है। पित्त प्रकोपसे आंखे उष्ण और पीत, लाल, या हरे रंगको होती है। इसमें चक्षुदाह और रोगो दियेको रोशनी सह नहो सकता है। कफ प्रकोपसे दोनो आंखें चिकनो अश्रुपूर्ण पीतवर्ण, ज्योतिहीन, भारी और स्थिर दृष्टियुक्त होती है। दो दोषके आधिक्यमें दोनो दोषके लक्षण मालूम होते है। त्रिदोषके प्रकोपसे, अर्थात् सन्निपात रोगमें आंखें कालो या लाल रंग, टेढ़ो दृष्टि, भीतरको धसी, विकृत और तीव्र पुतली, तन्द्राच्छन्न, और थोडो थोड़ो देरमें बन्द और खुलती रहती है। तथा इस रोगमें आंखें कभो अदृश्य और कभो कई प्रकारके वर्णकी होती है।

रोग आराम होने पर आंखमें क्रमशः स्वाभाविक सौन्दर्य्ययुक्त प्रसन्नता और शान्त दृष्टि प्रभृति लक्षण दिखाई देने लगते है।

जिह्वा-परीक्षा।

वायुके आधिक्यसे जिह्वा शाक पत्रके वर्णकी तरह या पीली, रूक्ष, गोजिह्वाकी तरह कर्कश और फटी होती है। पित्ताधिक्यसे जिह्वा लाल या काली, कफाधिक्यसे सफेद, रसीली, घनी और लिप्त; दो दोषके आधिक्यसे दो लक्षणयुक्त और सन्निपात अर्थात् तीन दोषके आधिक्यसे काली, कर्कश, सूखी, स्फोटकयुक्त और दग्धवत् होती है।

रक्तका आधिक्य और दाह रहनेसे जिह्वा उष्णस्पर्श और लाल। ज्वर और दाह रोगमें नीरस। नये ज्वरमें प्रबल दाह, आमाजीर्ण और आमवातके प्रथम अवस्थामें जिह्वा सफेद और चटचटी मालूम होती है। सान्निपातिक ज्वरमें जिह्वा स्थूल, शुष्क, चटचटी, रूक्ष और निर्व्वापित अङ्गारकी तरह काली होती है। यकृत क्रियाके वैषम्यमें और मल या पित्तके अवरुद्ध होनेसे, जिह्वा पाण्डुवर्ण और मलसे लिप्त रहती है। यकृत् प्लीहा आदि पीड़ाकी शेष अवस्थामें और क्षय रोगके बाद जिह्वामें घाव होता है। हैजा, मूर्च्छा, और श्वासमें जिह्वा शीतल स्पर्श होती है। अत्यन्तदौर्बल्य और दाहमें जिह्वा बड़ी होती है। निरोग मनुष्यकी जिह्वा सर्व्वदा आर्द्र और मद्यपाईकी जिह्वा फटी होती है।

मुखरस-परीक्षा।

वायु प्रकोपमें मुखरस लवण, पित्त प्रकोपमें तिक्त, कफ प्रकोपमें मधुर, कोई दो दोषके प्रकोपमें दो रसयुक्त और सन्निपात अर्थात् त्रिदोषके प्रकोपमें तीन रसयुक्त होता है।

अरिष्ट-लक्षण।

क्रियापथमतिक्रान्ताः केवलं देहमाप्लुताः।
दोषा यत् कुर्व्वते चिह्नं तदरिष्टं निरुच्यते॥

अरिष्ट लक्षण और चिह्न।—रोगोत्पादक दोष सब शरीरमें व्याप्त होनेसे जो सब मृत्युके लक्षण प्रकाश होते है उसको अरिष्ट लक्षण कहते है। वस्तुतः जिस लक्षणसे भावी मृत्यु अनुभव हो उसीका नाम "अरिष्ट चिह्न" है। चिकित्सा कार्य्यमें अरिष्ट लक्षण पर विशेष लक्ष रखना आवश्यक है, नहीतो किसी वक्त अरिष्ट लक्षणयुक्त रोगको चिकित्सा कर वैद्यको अपदस्त होना पड़ता है अथवा रोगीको एकाएकी मृत्युसे उसके आत्मीय स्वजनोको अतिशय दुःख और कष्ट होता है। चाहे जिस कारणसे मृत्युहो, मृत्युके पहिले अरिष्ट लक्षण निश्चय प्रकाश होता है, पर किसी वक्त अच्छी तरह विचार न करनेसे अरिष्ट लक्षण स्पष्ट अनुभव नही होता है। पृथक पृथक रोग भेदसे जो सब अरिष्ट लक्षण प्रकाश होते है वह प्रत्येक रोग निर्द्देशके समय लिखूंगा। यहां केवल कई साधारण अरिष्ट लक्षण संक्षेपमें लिखते है।

प्रकारभेद।—कई स्वाभाविकविषयका सहसा अस्वाभाविक परिवर्त्तनको अरिष्ट लक्षण कहते हैं; जैसे शारीरिक कोई शुक्लवर्णको कृष्णता, कृष्णवर्णको शुक्लता, रक्तवर्णका अन्य वर्णता, कठिनावयवमें कोमलत्व, कोमल स्थानमें मृदुता, चञ्चल स्थानकी निश्चलता, अचञ्चल स्थानको चञ्चलता, विस्तृत स्थानकी सङ्कीर्णता, सङ्कीर्णको विस्तृति, दीर्घको सूक्ष्मता, सूक्ष्मको दीर्घता, पतन शीलका अपतन, अपतन शीलका पतन, उष्णका शीतल, शीतलका उष्ण, स्निग्धकी रूक्षता, रूक्षकी स्निग्धता आदि आदि अनुभव होते हैं। ऐसही भौं आदि स्थान का नीचे झुक जाना अथवा उपरको चढ़ना, आंखें घूमना, मस्तक और ग्रीवा आदि अङ्गोंका गिरना, बाला बदलना, सिरमे सूखे गोबरके चूर्णकी तरह पदार्थका निकलना, सबेरे ललाटमे पसीना दिखाई देना, नाकके छेदका लाल होना और फुनसी दिखाई देना, अथवा सर्व्वांगमें फुनसी या तिलका एकाएकी पैदा होनेमेभी अरिष्ट लक्षण समझना। जिसके शरीरका आधा भाग अथवा केवल मुखमण्डलके अर्द्धभागमें एक रंग और दूसरे भागमें दूसरा रंग मालूम हो तो अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीके दोनो ओठ पके जामुनकी तरह काला होनेसे, दांत काला, लाल या नीला अथवा मैला होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर है। जिह्वा फूली, कालो और कर्कश होनाभी अरिष्ट लक्षण है। दोनो आंखोंका सङ्कोच, परस्पर असमान, स्तब्ध शिथिल, लाल और आंसू जानाभी अरिष्ट लक्षण है। पर किसीको नेत्ररोगके सबब आंसू जानेसे उसको अरिष्ट नही कहना। शिरके बाल और भौं कङ्घीसे झाड़नेकी तरह मालूम होना अथवा तेल न लगाने पर भी चिकना मालूम होना; आंखके दोनो पलकों के बालका गिरना, अथवा एकमें एक मिल जाना,

नाकका छेद बडा होना, शोथ रोग न रहने परभो शोथ रोगको तरह, मलीन, टेढा, सूखा, फटा औरछेद बडा होनेसे भो अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीका हाथ पेर और सांस ठण्ढी हो और जो रोगी मुख पसार कर निश्वास त्याग करे अथवा टूटो सांस ले, कोई बात कहते कहते बेहोश हो पडे और अकसर चित्त सोकर दोनो पेर इधर उधर पटके तो मृत्यु पासही बेठो है जानना।

इसके सिवाय औरभो बहुतसे अरिष्ट लक्षण आयुर्व्वेद शास्त्रमें लिखे है यहा उसका उल्लेख करना अनावश्यक जान नहो लिखा गया।

रोग-विज्ञान।



निदान पूर्व्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिरेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्॥

निदान।—निदान, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यही पांच रोगके ज्ञानका उपाय है। जिससे दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है उसको निदान कहते हैं। विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट भेदसे निदान दो प्रकारका है; विरुद्ध आहार विहारादिको विप्रकृष्ट अर्थात् दूरका निदान और कुपित वातादि दोषको सन्निकृष्ट अर्थात् पासका निदान कहते हैं। रोग होनेसे पहिले जो सब लक्षणोंसे भावी रोगका अनुमान होता है उसको पूर्व्वरूप कहते हैं। पूर्व्वरूप दो प्रकार, सामान्य और विशेष। जिस पूर्व्वरूपसे वायु पित्त या कफ ये तीन दोषोंके कोई लक्षण मालूम न होकर केवल भावी रोगका अनुमान हो, उसको

सामान्य पूर्वरूप कहतेहैं ; और जिस पूर्वरूपसे भावी रोगका दोष भेदतक अनुमान हो उसकको विशेष पूर्वरूप कहते हैं। यही विशेष पूर्वरूप स्पष्ट मालूम होनेसे उसको रूप कहते हैं, वस्तुत. जिन सब लचणोंसे उत्पन्न रोग मालूम हो उसको रूप कहते हैं। निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोंके विपरीत अवस्थामें औषध सेवन और वैसही आहार विहारादिसे रोग उपशम होनेसे उसको उपशय कहतेहैं इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। यही उपशय और अनुपशयसे रोगका गूढ़ लचण निश्चय करना चाहिये। दोष समूह कुपित होकर शारीरिक अवयवोंमें अवस्थान या विचरण कर रोग उत्पन्न करता है उसको सम्प्राप्ति कहते हैं। संख्या, विकल्प प्राधान्य, बल, अबल और कालानुसारसे सम्प्राप्तिके कई प्रकार है। आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारका गुल्म और अट्ठारहं प्रकारका कुष्ठ प्रभृतिके भेदको संख्या कहते हैं। दो दोष या तीन दोषके रोगके कुपित दोष समूहोंमें कौन दोष कितना कुपित हुआहै जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लचण विचार कर जिस अंशांशसे विभाग किया जाता है उसको विकल्प कहते हैं। ऐसही रोगसे मिलित दोष समूहोंमें जो दोष अपने निदानसे दूषित हो वही प्रधान और उसी कुपित दोषके सङ्ग बाकी दो दोष कुपित होनेसे उसको अप्रधान कहते है। जो रोग निदानसे उत्पन्न होता है और उसका पूर्वरूप और रूप सम्पूर्ण प्रकाशित हो वही रोग बलवान और जो अल्प निदानसे उत्पन्न होकर अल्प पूर्वरूप और रूपसे प्रकाश हो उस रोगको हीनबल जानना। नाड़ी परीचा प्रसंगमेंकफादि दोष त्रयका प्रकोप काल लिखा गया है ; वही काल उन सब रोगांके आक्रमण और प्रकोपका है।

दोषज और आगन्तुक रोग।—रोग दो प्रकार,

दोषज और आगन्तुक। जिस रोगमें वात पित्त और कफ ये तीन दोष, एक एक कर या दो तीन दोष एक साथ मिलकर उत्पन्न हो उसको दोषज कहते हैं। एक दोष कुपित होनेसे बाकी दो दोषकोभी कुपित करता है इसीसे कोई रोग एक दोषसे नहो होता यही साधारण नियम हैं। जैसे रोग उत्पादक एक दोष या तीन दोष होता है वैसही नामभी एक दोषज द्विदोषज या त्रिदोषज होताहै। जो सब रोग अभिघात् अभिचार, अभिशाप, और भूताविश प्रभृति कारणोंसे उत्पन्न होताहै उसको आगन्तुक कहते हैं। अपने अपने निदानके अनुसार दोष कुपित न होनेसे रोग उत्पन्न नही होता, किन्तु आगन्तुक रोगमें पहिले यातना प्रकाशहो फिर दोष कुपित होता है यही दोनोमे प्रभेद है।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोषरोगोत्पत्तिकासन्निकृष्ट निदानहै; विविध अहित कारक आहार विहारादिके निदानसे तीन दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कई रोगका आरम्भभी रोग विशेषका निदान है। जैसे ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त यह दो रोगसे राजयक्ष्मा, प्लीहा वृद्धिसे उदर रोग, उदर रोगसे शोथ, अर्शसे उदर रोग या गुल्म, प्रतिश्यायसे खांसी, खांसीसे क्षयरोग और क्षयरोगसे धातुशोथ प्रभृति उत्पन्न होते देखा गया है। उक्त रोगोत्पादक रोगोंमें कोई कोई अन्य रोग उत्पादन कर आपभी रहता है।

यही पांच निदान यावतीय रोगोंके ज्ञानका उपाय है। यहाँ केवल संक्षेप मात्र लिखा गया है। अतःपर प्रत्येक रोगका पृथक पृथक निदानादिके लक्षण लिखते हैं।

ज्वर।

ज्वरका प्राधान्य।—जीवमात्रके जन्म और मृत्युके समय ज्वर होना नियत नियम है। शरीरके उत्पत्ति कालहीसे ज्वर होता है इससे पहिले ज्वरहीका उल्लेख करते हैं। तथा अन्यान्य रोगोंकी अपेक्षा ज्वर अधिक भयङ्कर और ज्वरहीसे यावतीय रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना आदि विचार करने परभी ज्वर सब रोगोंमें श्रेष्ठ लक्षित होता है सुतरां पुराने जमानेसे रोगाध्यायमें पहिले ज्वरहीके विषयमें लिखनेकी रीति चली आती है इससे हमभी यहां पहिले ज्वरके विषयमें लिखते हैं।

ज्वरका साधारण लक्षण।—ज्वरका साधारण लक्षण शारीरिक और मानसिक सन्ताप, कारण सन्ताप लक्षण भिन्न ज्वर देखनेमें नहीं आता है। इसके सिवाय पसीना बंद होना और सर्वाङ्गमें पीडा। यह और कई एक ज्वरके साधारण लक्षण है। वस्तुतः जिस रोगमें सन्ताप, पसीना बन्द हो और सर्वाङ्गमें दर्द लक्षित हो उसीको ज्वर कहते हैं। पर पसीना न आना यह नियत नियम नही है, कारण पित्त ज्वरमें कभी कभी पसीना होतेभी देखा गया है। लक्षण भेदसे ज्वर बहुत प्रकारके हैं, पर चिकित्सा कार्य्यके सुबीतेके लिये शास्त्रमें ज्वर केवल आठ प्रकारमें विभक्त है, हमभी उसको यहां लिखते है। ज्वर आठ प्रकर जैसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्त-श्लेष्मज, सन्निपातज और आगन्तुक, क्रमशः इसी आठ प्रकारके ज्वरके लक्षणादि कहते हैं।

साधारण पूर्व्वरूप।—प्रायः सब ज्वरमें साधारण पूर्व्वरूप एकही प्रकारका होताहै—जैसे सुखकी विरसता, शरीरका भारीपन, पान भोजनकी अनिच्छा, चक्षुदयकी आकुलता और अश्रुपूर्णता; अधिक निद्रा, अनवस्थित चित्तता, जृम्हा अर्थात् जम्हाई आना, शरीर सङ्कुचित करनेकी इच्छा, कम्प, श्रान्तिबोध, भ्रान्ति, प्रलाप, रातको नींद न आना, लोमहर्ष, दांतका घिसना वायु प्रभृति शीतल द्रव्यपर और आतपादि उष्ण द्रव्य पर थोडी थोडी देरपर इच्छा और अनिच्छा, अरुचि, अजीर्ण, दुर्व्वलता, शरीरमें दर्द, शारीरिक अवसन्नता, दीर्घसूत्रता, अर्थात् प्रत्येक काममें देर लगना, आलस्य, हितकी बात कहनेसे भी बुरा लगना, तथा उष्ण, लवण, कटु और अम्ल वस्तु खानेकी इच्छा। यही सब पूर्व्वरूपको सामान्य पूर्व्वरूप कहते हैं। इसके सिवाय वातादि दोष भेदसे औरभी कई विशेष पूर्व्वरूप लक्षित होते हैं;—वातज ज्वरके पहिले बार बार जम्हाई आना, पित्तज ज्वरके पहिले दोनो आखोंका जलना और कफ ज्वरके पहिले अतिशय अरुचि होती है। द्विदोषज ज्वरमें पूर्व्वोक्त सामान्य पूर्व्वरूपके साथ कोई दो दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप और त्रिदोषज ज्वरमें वैसही तीन दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। यही सब पूर्व्वरूप सभी ज्वरमें प्रकाश होंगे यह निर्द्दिष्ट नियम नहो है। दोष प्रकोपके न्यूनाधिक्यसे पूर्व्वरूप लक्षण भी कभी कम और कभी अधिक प्रकाश होता है।

साधारण सम्प्राप्ति।—अनियमित आहारादिसे वायु प्रभृति दोष कुपित हो आमाशयमें जाकर आमाशयको दूषित कर कोठका सन्ताप बाहर निकाल्न ज्वर उत्पन्न करता है। यही सन्ताप बाहर आनेसे सब शरीर गरम हो जाता है, इसीको ज्वर रोगको साधारण सम्प्राप्ति कहते हैं।

वातज ज्वर लक्षण।—वातज ज्वर,—इस ज्वरमें कम्प, विषम वेग अर्थात् ज्वरागमन और ज्वरके वृद्धिमें विषमता, उष्णादिका वैषम्य अर्थात् त्वक आदि कभी अधिक गरम कभी कम गरम, कण्ठ और ओठका सूखना, अनिद्रा, क्षवस्तम्भ (छींक न आना) शरीरकी रुक्षता, मलकी कठिनता, सब अङ्ग विशेष कर मस्तक और छातीमें दर्द, मुखकी विरसता, पेटमें शूलकी तरह दर्द, आध्मान अर्थात् पेट फूलना और जम्हाई आना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तज ज्वर लक्षण।—पित्तज ज्वर,—इसमें ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार रोगकी तरह पतला दस्त होना, अल्प निद्रा, वमन, पसीना हाना, प्रलापवाक्य, मुखकी तिक्तता, (कड़वा होना) मूर्च्छाकी तरह वेहोश होना; दाह, मत्तता, पयासा, गात्र घूर्णन; कण्ठ, ओष्ठ, नासिका आदि स्थानोंका पाक अर्थात् इन सब स्थानोंमें घाव होना, तथा मलमूत्र और नेत्रादिका पोला होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कफज ज्वर लक्षण।—कफज ज्वर,—इसमें ज्वरका वेग मन्द, आलस्य, मुखका स्वाद मीठा होना, शरीरमें स्तब्धता अर्थात् भार बोध, पान भोजनमें अनिच्छा, शीत बोध, हृल्लास अर्थात् जी मचलाना, रोमाञ्च, अति निद्रा, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नासिकासे पानी बहना, अरुचि, कास; मल मूत्र, नेत्रका सफेद होना और स्तैमित्य अर्थात् शरीर गीले वस्त्रसे आच्छादितकी तरह मालूम होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

वातपित्तज ज्वर लक्षण।—वातपित्तज ज्वर,—इस ज्वरमें तृष्णा, मूर्च्छा, गात्र घूर्णन, अनिद्रा, मस्तकमें दर्द; कंठ

और मुख सूखना वमन, अरुचि, रोमांच, जम्हाई आना, सब गांठोंमें दर्द और आंखके सामने अंधियाला मालूम होना आदि।

वातश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—वातश्लेष्मज ज्वर, इस, ज्वरमें स्तैमित्य अर्थात् सब शरीरमें आर्द्र वस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, सब गांठों में दर्द, अधिक निद्रा, सिरमें दर्द, पतिश्याय अर्थात् मुख नाकसे पानी बहना, कास, सर्वांङ्गमें पसीना और सन्ताप आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसमें ज्वरका वेग अधिक तीक्ष्ण या अधिक मृदु नहो होता।

पित्तश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—पित्तश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमें, मुख कफसे लिप्त और पित्तसे कड़ुवा रहता है, तथा तन्द्रा, मूर्च्छा, कास अरुचि, तृष्णा और बारम्बार दाह और बारम्बार शीत बोध आदि लक्षण प्रकाश होते है।

सन्निपात लक्षण।—त्रिदोषज या सन्निपातज ज्वरको चलित भाषामें विकार कहते है। इसमें कभी दाह, फिर थोड़े ही देर बाद शीतबोध, अस्थि समूह, सन्धिस्थल और मस्तकमें दर्द, आखें डबडबों, मैली, लाल, विस्तारित या अतिकुटिल, कानमें कई प्रकारके शब्द सुनाई देना, कण्ठ मानो धानके छिकलेसे भरा; तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप बकना, कास, श्वास, अरुचि, भ्रम, तृष्णा, निद्रा नाश, जीभ कोयलेकी तरह काली और गौके जीभकी तरह कर्कश, सर्व्वाङ्गमें शिथिल भाव, कफमिश्रित रक्त वा पित्तका निकलना, सिरका इधर उधर फिरना, मल, मूत्र और पसीना बन्द होना, दोषके पूर्णताके सबब शरीरको कृशता, कण्ठसे बार बार अव्यक्त शब्द निकलना, मुख और नासिका प्रभृति स्थानोंमें घाव होना, पेटका भारो होना, रस पूर्णताके सबब वातादि दोष समूहोंका देरसे परिपाक और शरीरमें काला तथा लाल कोठ

अर्थात् बर्र काटनेकी तरह शोथकी उत्पत्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

निउमोनिया।—सन्निपात ज्वरकी अवस्था विशेषको "निउमोनिया" कहते हैं। सन्निपात ज्वरमें साधारण लक्षणके सिवाय औरभी कई विशेष लक्षण दिखाई देते हैं। यह पीड़ा प्रकाश होनेके पहिले अत्यन्त दुर्बलता और क्षुधा मन्द होती है। पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें कम्पज्वर, वमन, छातीमें दर्द, शिरःपीड़ा, प्रलाप, अस्थिरता और आक्षेप अर्थात् हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देते हैं; सम्पूर्ण रूपसे रोड़ा प्रकाश होनेके बादभी यह सब लक्षण अधिक होनेके सिवाय और भी कई लक्षण अधिक प्रकाश होते हैं। जैसे छाती छूनेसे दर्द मालूम होना, निश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, अत्यन्त कास, लोहेके मोरचेकी तरह मैला और गाढ़ा लसलसा कफ निकलना, वह कफ किसी बरतनमें रखनेसे फिर जलदी नहीं छूटता। कभी उसी कफके साथ थोड़ा खूनका निकलना। सातवें दिन सूब और पसीना अधिक आना, प्रत्येक मिनिटमें ८० से १२० बार तक नाड़ीका चलना; शरीरका उत्ताप थर्मामिटरमें १०३से १०४ डिग्री होना। (किसी किसीको १०७ डिग्री तक उत्ताप हाने परभी आराम होते देखा गया है) मुखमण्डल मलिन और चिन्तायुक्त होना, गाल लाल और काला होना और फटना, जीभ सूखा और मैली, क्षुधामन्द, आहारमें कष्ट, उदरामय, अनिद्रा, उजियाला देखनेसे कष्टबोध और पीड़ा प्रकाशके दूसरे तीसरे दिन मुखमण्डल पर छाटीर फुंसियोंका होना। फुसफुसका दूषित होना इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है, कहीं कहीं वह सड़भी जाता है। फुसफस दूषित होनेसे ईषत् लाल और मैले रंगका पतला कफ निकलता रहता है। सड़

जानेपर दुर्गन्धयुक्त दूधको मलाईको तरह अथवा पीपको तरह कफ निकलता है। इस प्रकार फुसफुस दूषित होने पर पीड़ा अत्यन्त कष्टसाध्य होती है। फुसफुसमें दाह रहनेसे, वहभी एक कष्टसाध्यका लक्षण है। शिशु, वृद्ध, स्त्री, विशेषतः गर्भिणी स्त्री और मद्यपायी व्यक्तिका यह रोग होनेसे साधारणतः वह दुःसाध्य होजाता है।

सन्निपातके भोगका काल।—सन्निपात ज्वर कभी भी साध्य नहीं होता। यदि मल और वातादि दोष विरुद्ध होय, अग्नि नष्ट हो जाय और सब लक्षण सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश होय तो असाध्य जानना। इसके विपरीत होनेसे कष्टसाध्य होता है। ७ दिन, ८ दिन, १० दिन, ११ दिन, १२ दिन, १४ दिन, १८ दिन २२ दिन, या २४ दिन तक इस ज्वरसे मुक्ति पानेकी या मृत्यु होनेकी अवधि निर्दिष्ट है, अर्थात् इस ज्वरमें यदि क्रमशः ज्वर और वातादि त्रिदोषको लघुता, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता, सुनिद्रा, हृदय परिष्कार, उदर और शरीरको लघुता, मनकी स्थिरता और बल लाभ प्रभृति लक्षण प्रकाश हो तथा उक्त अवधि यदि पूरीहो जाय तो वह रोगी आराम होता है। और यदि दिन पर दिन निद्रानाश, हृदयकी स्तब्धता, पेट और देहका भारी होना, अरुचि, मनमें अस्थिरता और बलहानि आदि लक्षण प्रकाश होय, तो उसी निर्दिष्ट अवधिके भीतरही रोगीकी मृत्यु होती है। सन्निपात ज्वरके शेष अवस्थामें यदि कानके जड़में कष्टदायक शोथ हो तो ऐसही कोई रोगी बचता है; पर वह शोथ यदि प्रथम अवस्थामें हो तो साध्य और मध्य अवस्थामें होनेसे कष्टसाध्य होता है।

अभिन्यास ज्वर।—अभिन्यास ज्वरमें वातादि दोषत्रय

थोडाभी कुपित होकर यदि वक्षःस्थलके स्रोतसमूहोंमें प्रविष्ट होय और आमरसके साथ मिलकर ज्ञानेन्द्रिय और मनको विकृत करे तो अति भयङ्कर कष्टसाध्य अभिन्यास नामक ज्वर उत्पन्न होता है। इस ज्वरमें रोगी निश्चेष्ट और दर्शण स्पर्शण, श्रवण और घ्राणशक्ति रहित हो जाता है, पासके बैठनेवालोंको रोगी पहचान नहीं सकता है, किसीकी कोई बात या शब्द कुछ नहीं समझता, खानेको नहीं मांगता, निरन्तर सूचिका बिद्धवत् (सुई गडानेकी तरह) यातना अनुभव करना, कोई बात न कहना, सर्व्वदा सिर इधर उधर फिराना, कांखना और करवट न लेना, ऐसा ज्वर सर्व्वदा असाध्य है, पर कदाचित् कोई दैव अनुग्रहसे मुक्तिलाभभी पाता है; यहभी एक प्रकारका सन्निपात ज्वरहै।

आगन्तुकका कारण और लक्षण।—आगन्तुक ज्वर शस्त्र, ढेला या डण्डा आदिसे आघात, अभिचार अर्थात् निरपराध मनुष्यको मारनेके लिये मन्त्रादि उच्चारण पूर्व्वक क्रियाविशेष, अभिसङ्ग अर्थात् भूत ग्रहादि या कामादि रिपु सम्बन्ध और ब्राह्मणादिका अभिशाप, यही सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर होता है। अभिघातादि कारण विशेषमें वातादि जिस दोषके प्रकोपकी सम्भावना है, उन सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होनेसे, उसमें वही दोष अनुबन्ध रहता है।

विषज लक्षण।—विषज ज्वरमें मुख काला होना, अतिसार, अरुचि, पिपासा, सूचीविद्धवत् वेदना और मूर्च्छा होती है।

औषधी घ्राणज ज्वर।—औषधि विशेषके सूंघनेसे ज्वर होनेपर मूर्च्छा, सिरमें दर्द और वमन आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

कामज लक्षण।—अभिलषित रमणी न मिलनेसे कामज ज्वर होता है, इसमें मनकी अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य और अरुचि आदि लक्षण दिखाई देते है। भय, शोक या क्रोधसे ज्वर उत्पन्न होनेसे उसमें भी प्रलाप और कम्प होता है।

अभिचारादि लक्षण।—अभिचार और अभिशाप जनित ज्वरमें मोह और तृष्णा तथा भूताभिषङ्गज ज्वरमें चित्तका उद्वेग, हास्य रोदन और कम्प प्रभृति लक्षण दिखाई देते है।

कामज, शोकज, और भयज ज्वरमें वायुका प्रकोप, क्रोधज ज्वरमें पित्तका प्रकोप और भूताभिषङ्गज ज्वरमें वात पित्त और कफ यह तीन दोषका प्रकोप होता है। और जो ज्वर भूतादिके संसर्गसे उत्पन्न होता है उसमें भूतके आवेशकी तरह हंसना रोना आदि रूप होता है।

विषम ज्वर।—विषम ज्वर जिस ज्वरके आगमन या छुट्टिका नियम नही है और जिस ज्वरमें उष्णता या ज्वरके वेगकी भी समता नही है, उसको विषम ज्वर कहते है। इस ज्वरका प्रधान लक्षण मुक्तानुबन्धित्व, अर्थात् छूट छूट कर ज्वर आता है।

नये ज्वरको यथाविधि चिकित्सा न कर, यदि उग्रवीर्य्य औषधादिसे निवृत्त किया जाय तो ज्वरोत्पादक कुपित वातादि दोष अच्छी तरह शान्त न हो होनबल होता है, और रस रक्तादि कोई धातुके आश्रयमे विषम ज्वर उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कभी कभी पहिलेहोमे विषम ज्वर उत्पन्न होता है।

अवस्था भेद।—विषम ज्वरकी लक्षणके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थकादि नामसे अभिहित है। दोष रसस्थ होनेसे सन्तत, रक्तस्थ होनेसे सतत, मांसाश्रित होनेसे अन्येद्युष्क, मेदोगत होनेसे तृतीयक और अस्थि मज्जागत

होनेमे चातुर्थक ज्वर उत्पन्न होता है। यह पाच प्रकारके ज्वरमें चातुर्थक ज्वरही अधिक भयङ्कर है।

सन्तत ज्वर लक्षण।—सन्तत ज्वर लगातार सात दिन, दश दिन या द्वादश दिन तक बराबर भोगकर छूटजाता है।

सौकालीन ज्वरमे।—जो ज्वर दिन रातमें दो या चार बार अर्थात् दिनको एकबार ओर रातको एकबार, अथवा दिनको दो बार या रातको दो बार हो उसको सततक या सौकालीन ज्वर कहते है।

अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक लक्षण।—दिन रातमें एकबार ज्वर हो उसको अन्येद्युष्क कहते है। जो ज्वर तीसरे दिन अर्थात् एक दिन अन्तर देकर आता है उसको तृतीयक (तिजारी) ओर जो चौथे दिन अर्थात् दो दिन अन्तर पर आता है उसको चातुर्थक (चौथइया) ज्वर कहते है तृतीयक (तिजारी) ज्वरमें पित्त ओर कफका आधिक्य रहनेमें ज्वरके आरम्भ होनेके वक्त त्रिक स्थान अर्थात् कमर पोठ मेरुदण्डके सन्धिमें दर्द; वायु ओर कफके आधिक्यसे पोठमें तथा वायु और पित्तके आधिक्यसे मस्तकमें दर्द होता है। चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमें कफके आधिक्यसे पहिले दोनो जङ्घामें और वायुके आधिक्यसे पहिले मस्तकमें दर्द होता है; फिर सर्व्वाङ्गमें ज्वर होता है। जो ज्वर बोचका दो दिन नियम भोगकर आदि और अन्त यह दो दिन विरत रहता है, उसको चातुर्थक विपर्य्यय कहते है। यहभी एक प्रकारका विषम ज्वर है। कोई कोई भूताभिषङ्गज ज्वरकोभी विषम ज्वर कहते है।

वातवलासक और प्रलेपक ज्वर लक्षण।—जिस ज्वरमें कफका आधिक्य मालूम हो, तथा रोगीका शरीर रूखा,

शीथ विश्लिष्ठ, अवसन्न, और जड पदार्थको तरह हो, तथा जो ज्वर नित्य मन्द मन्द होता रहे उसको वातवलासक ज्वर कहते है; और जिस ज्वरमें शरीर भार बोध, सर्व्वदा शरीर पसीनेसे लिप्त मालूम हो, उसको प्रलेपक ज्वर कहते है, यह ज्वरभी मन्द मन्द भावसे होता है। यक्ष्मा रोगमें प्राय: इसी तरहका ज्वर दिखाई देता है।

दूषित रस परीक्षा।—यदि आहारका रस परिपाक न होकर दूषित हो और यदि दुष्ट पित्त और दुष्ट कफ शरीरके ऊर्द्ध, अध: अथवा वाम दक्षिण विभागके अनुसार अर्द्धाई भागमें अवस्थित करे, तो शरीरके जिस भागमें पित्त रहता है उस भागमें उष्ण और जिस भागमें कफ रहता है वह भाग शीतल होता है। उसके विपरीत होनेसे अर्थात् कोष्ठमें कफ और हात पैरमें पित्त रहनेसे शरीर शीतल और हात पैर गरम रहता है।

शीतपूर्व्व और दाहपूर्व्व लक्षण।—यदि दुष्ट कफ और दुष्ट वायु त्वकमें अथवा त्वक गत रसमें अवस्थित करे तो पहिले जाडा देकर ज्वर आता है, फिर वायु और कफका वेग कम हो जानेपर पित्त दाह उत्पादन करता है, इसको शीतपूर्व्व ज्वर कहते है। और यदि दुष्टपित्त त्वक गत हो, तो पहिले दाह होकर ज्वर होता है, फिर पित्तका वेग कम होने पर कफ और वायु शीत उत्पादन करता है, इसको दाह पूर्व्व ज्वर कहते है। यह दोनो ज्वर वातादि दो दोष या तीन दोषके संसर्गसे उत्पन्न होते है। इसमें दाहपूर्व्व ज्वर कष्टसाध्य और कष्टप्रद है।

ज्वर पूर्णरूपसे रसादि सात धातुओंमें से कोई एकका आश्रय ले तो उसको धातुगत ज्वर कहते है।

रक्त और मांसगत ज्वर लक्षण।—रस धातुगत

ज्वरमें शरीर भारबोध, वमनेच्छा, वमन, शारोरिक अप्रसन्नता, अरुचि, और चित्तमें क्लान्ति आदि लचण प्रकाशित होते है। रक्त गत ज्वरमें अल्प रक्त वमन दाह, मोह, वमन, भ्रान्ति, प्रलाप, पिडिका अर्थात् व्रण विशेषकी उत्पत्ति और तृष्णा आदि लचण दिखाई देते है। मासगत ज्वरमें जङ्घोमें डण्डा मारनेको तरह दर्द, तृष्णा, अधिक परिमाण मलमूत्र निकलना, बाहर सन्ताप, भोतर दाह, हाथ पैरका पटकना, और शारीरिक ग्लानि आदि लचण होते है। मेदोगत ज्वरमें बहुत पसोना आना, पिपासा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीरमें दुर्गन्ध, अरुचि, और ग्लानि तथा असहिष्णुता आदि लचण दिखाई देते है। अस्थिगत ज्वरमें अस्थि समूहोमें अस्थि भङ्गवत् दर्द, कुन्थन, श्वास, अधिक मल निकलना, वमन और हाथ पैरका पटकना आदि लचण होते है। मज्जागत ज्वर में आखके सामने अंधियाला होना, हुचको, कास, शीत, वमन, भोतर दाह, महाश्वास और हृदय काटनेको तरह दर्द आदि लचण दिखाई देतेहै। शुक्रगत ज्वरमें लिङ्ग जडवत् स्तब्ध होजाताहै तथापि शुक्र बराबर गिरता है। इस ज्वरमें रोगोका मृत्यु निश्चय जानना।

अन्तर्वेग और बहिर्वेग लचण।—जिस ज्वरमें अधिक अन्तर्दाह, अधिक तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान अस्थि समूहोमें दर्द पसीना बन्द और वातादि दोष तथा मलको बद्धता आदि लचण हो तो उसको अन्तर्वेग ज्वर कहते है। और जिस ज्वरमें बाहर अधिक सन्ताप, किन्तु तृष्णा आदि उपद्रव अल्प रहता है उसको बहिर्वेग ज्वर कहते है।

प्राकृत और वैकृत।—वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें क्रमश वातादि दोषवशसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्राकृत

ज्वर कहते है ; अर्थात् वर्षाकालमें वातिक शरत्‌में पैत्तिक वसन्त-कालमें श्लैष्मिक ज्वर होनेसे उसको प्राकृत ज्वर कहते है। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् वर्षामें श्लैष्मिक या पैत्तिक, शरत्‌में वातिक अथवा श्लैष्मिक, वसन्तमें वातिक या पैत्तिक ज्वर होनेसे उसको वैकृत ज्वर कहते है। प्राकृत ज्वरमें वातिक ज्वरके सिवाय और सब ज्वर साध्य है। वैकृत ज्वरमात्र दुःसाध्य है। प्राकृत ज्वरमें ऋतु विशेषके अनुसार एक एक दोष आरम्भक होनेपरभी बाकी दो दोष अनुबन्ध रहता है।

अपक्क।—अपक्क या तरुण ज्वर—जिस ज्वरमें मुहसे लार बहे, वमनेच्छा हृदयको अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अपरिपाक, मुखको विरसता, शरीरका भारी होना, स्तब्धता; क्षुधानाश, अधिक पिशाब होना और ज्वरके प्रबलताका लक्षण दिखाई दे तो उसको अपक्कया आमज्वर कहते है।

पच्यमान ज्वर,—ज्वरके वेगका आधिक्य, तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, प्रभृति और वमनेच्छा आदि लक्षण समूह पच्यमान ज्वरमें अर्थात् ज्वरके परिपाक अवस्थामें प्रकाशित होता है।

पक्वज्वर,—भूख लगना, देहको लघुता, ज्वरको न्यूनता, वायु, पित्त, कफ और मलका निकलना, तथा इसो रीतिसे आठ दिन अतिवाहित होना, यही सब पक्क ज्वरके लक्षण है।

ज्वरके उपद्रव।—ज्वरके उपद्रव,—कास, मूर्च्छा, अरुचि, कै, तृष्णा, अतिसार, मलबद्धता, हुचकी, श्वास और अङ्ग-वेदना, इसी दस को उपद्रव कहते है।

साध्य ज्वर,—जो ज्वर अल्प दोषसे होता है, तथा उपद्रव शून्य ज्वरमें यदि बलको हानि न होयतो साध्य जानना।

साध्य और असाध्य ज्वर लक्षण।—जो ज्वर धातुगत पुराना अथवा अति बलवान और जिस ज्वरसे रोगी क्षीण हो शोथ उत्पन्न होता है; तथा जिस ज्वरमें रोगीका केश आपसे आप साफ सुथरे हो जाय वह असाध्य ज्वर लक्षण है। कई प्रबल कारणोंसे ज्वर होकर कई लक्षणयुक्त हो और जिस ज्वरमें इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाय उस ज्वरको घातक जानना। अन्तर्दाह, तृष्णा, मल बद्धता, कास और श्वासयुक्त प्रबल ज्वरको गम्भीर ज्वर कहते हैं। यह ज्वरभी असाध्य है; विशेषतः गम्भीर ज्वर होकर रोगी का देह क्षीण या रूक्ष होनेसे उसका प्राण नाश होता है। जो ज्वर पहिलेहीसे विषम या दीर्घकाल स्थायी हो, वहभी असाध्य है। बाहर शीत और भीतर दाहयुक्त ज्वर प्राण नाशक है। जिस ज्वरमें शरीर रोमाञ्चित, आंखें लाल या चञ्चल, मूर्च्छा, तृष्णा, हिक्का, श्वास, छातीमें साङ्घातिक शूलकी तरह दर्द और केवल मुखसे श्वास, प्रश्वास निकलता रहेतो इससे भी रोगीकी मृत्यु होती है। जिस ज्वरमें रोगी को क्लान्ति और इन्द्रिय समूहोंकी शक्ति नष्ट हो जाती है, बल और मांस क्षीण होजाता है तथा अरुचि और ज्वर वेगका गाम्भीर्य्य अथवा तीक्ष्णता मालूम हो वहभी असाध्य है।

त्याग लक्षण।—सन्निपातिक ज्वर, अन्तर्वेग ज्वर और धातुगत ज्वर परित्याग होनेसे पहिले दाह, पसीना, भ्रम, तृष्णा, कम्प, मलभेद, संज्ञानाश, कुन्थन और मुखमें दुर्गन्ध आदि लक्षण प्रकाश होते है।

चिकित्सा।—नये ज्वरमें पहिले उपवास देना आवश्यक है; इससे वात-पित्त और कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीर की लघुता, ज्वरका उपशम और भोजनकी इच्छा होती

है। वातज ज्वरमें; भय, क्रोध, शोक, काम और परिश्रम जनित ज्वरमें, धातुक्षय जनित ज्वरमें और राजयक्ष्मा जनित ज्वरमें उपवास नहो कराना। तथा वायु प्रधान मनुष्य, क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, मुखशोषयुक्त, या भ्रमयुक्त और बालक, वृद्ध, गर्भिणी या दुर्ब्बल इनको भो उपवास विहित नहो है। उपवास विहित ज्वरमें भो अधिक उपवास देकर रोगीको दुर्बल करना उचित नहो है। अधिक उपवास करानेसे अनिष्ट होता है, इससे सब गांठे और शरीरमें दर्द, कास, मुखशोष क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रियकी दुर्वलता, मनकी चञ्चलता या भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह और अग्निमान्द्य होता है। उपयुक्त परिमाणसे यथारीति उपवास करानेसे अच्छो तरह मल, मूत्र और वायुका निकलना, शरीरको लघुता, पसोना आना, मुख और कण्ठ साफ, तन्द्रा और क्लान्ति नाश, आहारमें रुचि, एक साथ भूख प्यास लगना, अन्त करण प्रसन्न और साफ डकार आना आदि उपकार होता है।

दोष परिपाक व्यवस्था।—ज्वर होनेके पहिले दिनसे आठ दिन तक अपक्वावस्था रहतो है इतने दिन तक ज्वरनाशक कोई काढा या औषध देना उचित नहो है। पर षडङ्ग पानो या दोष परिपाकके लिये धनिया १ तोला और परवलका पत्ता १ तोलाका काढा अथवा शोंठ, देवदारु, धनिया, वृहतो और कटेलो इन सबका काढा दे सकते है। ८ दिनके बाद ज्वर नाशक काढा और औषध देना चाहिये। पर आज कलके समयमें जैसे ज्वर आतेहो भयानक होजाता है, उसमे ८ दिनको प्रतोक्षा न कर विचार पूर्ब्बक उक्त समयके भोतर हो काढा आदि औषध देना आवश्यक है।

अविच्छेद ज्वर।—अविच्छेद ज्वरमें इन्द्रयव, परवरका

पत्ता और कुटको यह तीन औषधिका काढा पिलानेसे २।३ बार दस्त हो ज्वर छूट जाता है। पित्तकी आधिक्यमें इन्द्रयव के बदले धनिया या पितपापडा देना उचित है। रोगी दुर्बल हो तो यह दस्तावर काढा न देकर ज्वराङ्कुश, स्वच्छन्द भैरव, हिंगुलेश्वर, अग्निकुमार और मोमृत्युञ्जय (लाल) आदि औषध सहतमें मिलाकर तुलसोके पत्तेका रस अथवा पानके रसके साथ देना। यह ज्वर विच्छेदके बादभी दिया जा सकता है।

वातज ज्वर।—वातज ज्वरमें मतावर और गुरिचका रस गुड मिलाकर पिलाना और पिपला मूल, गुरिच और सोंठ, इस तीन द्रव्यका काढा, अथवा विल्वादि पञ्चमूल; किरातादि, रास्नादि, पिप्पल्यादि, गुडुच्यादि और द्राक्षादि प्रभृति काढ़ा देना।

पित्तज।—पित्तज ज्वरमें खेतपापडाका काढा अथवा खेतपापडा, बाला और लाल चन्दन यह तीन द्रव्यका काढा पिलाना। इसके सिवाय कलिङ्गादि, मोथादि, पटोलादि, दुरालभादि और त्रायमाणादि काढा देना चाहिये।

श्लेष्मज।—श्लेष्मज ज्वरमें निर्गुण्डो पत्रके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। दशमूल और अडूसेको जडका काढा अथवा पिप्पल्यादिगण का काढा, कटुकादि और निम्बादि काढाभो इस ज्वरमें उपकारी है।

द्विदोषज।—द्विदोषज ज्वरमें जो दो दोष ज्वरका आरम्भक हो; उसका उपशम कारक द्रव्य विचार कर काढा स्थिर करना उचित है। इसके सिवाय वातपित्त ज्वरमें नवाङ्ग, पञ्चभद्र, त्रिफलादि, निदिग्धिकादि और मधुकादि काढ़ा प्रयोग करना। वातश्लेष्मज ज्वरमें अडूसेका पत्ता और फूलके रसमें महत और

चीनी मिलाकर पिलाना ; रक्तपित्त और कामला ज्वरमें भी यह विशेष उपकारी है। गुड़्च्यादि, मुस्तादि दार्व्वादि, चातुर्भद्रक, पाठासप्तक और कण्टकार्य्यादि काढ़ा वातश्लेष्मज ज्वरमें देना। इसमें बालूका स्वेद विशेष उपकारी है। मिट्टीके हाड़ीमें बालू गरम करना, फिर एक टुकड़ा कपडेमें रेड़का पत्ता, धकवनका पत्ता, या पानका पत्तारख उपर वही गरम बालू रखना, फिर उसमें थोडी कांजी मिलाकर पोटली बाधना, इस पोटलीसे सर्वाङ्ग (छातीको छोड़कर) सेंकना। इसीको बालूका स्वेद कहते है, बालूका स्वेदसे वातश्लेष्म ज्वर और तज्जन्य शिरः शूल और अङ्ग वेदना प्रभृति शान्त होती है।

पित्तश्लेष्मज।—पित्तश्लेष्मज ज्वरमें पटोलादि, अमृताष्टक और पञ्चतिक्त प्रभृति काढ़ा देना।

मग्नावस्थामें औषध।—उक्त नये ज्वरके मग्नावस्थामें सर्व्वज्वराङ्कुशवटी, चण्डेश्वर रस, चन्द्रशेखर रस, वैद्यनाथ वटी, नवज्वरेभसिंह, मृत्युञ्जय रस, (काला) प्रचण्डेश्वर, त्रिपुरभैरव रस, शीतारिरस, कफकेतु और प्रताप मार्त्तण्ड रस प्रभृति औषध दोषानुसार अनुपान विचार कर देना। अतीसका चूर्ण ६ रत्ती माचा २।३ घण्टेके अन्तरमें ३।४ बार सेवन कराना, अथवा २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ ४ रत्ती नाटा बीजका चूर्ण सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है।

सन्निपातमें प्रथम कर्त्तव्य।—सन्निपातमें पहिले आमदोष और कफको चिकित्सा करना चाहिये, फिर पित्त और वायुका उपशम करना। आमदोषके शान्तिके लिये पञ्चकोल और आरग्वधादि काढ़ा सेवन कराना। कफ-शान्तिके लिये सैंधानमक, सोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण आदोके रसमें मिलाकर

आकण्ठ मुखमें रखना तथा बार बार थूकना। दिन भरमें ऐसही ३।४ बार करनेसे हृदय, पार्श्व, मस्तक और गलेका सूखा गाढ़ा कफ निकलता है। बडे नोबूका रस और अदरखसे रसके साथ सेंधा, काला और सोचलनमक मिलाकर बार बार नास लेनेसेभो कफ पतला हो निकलता है। रोगी बेहोश हो तो पोपलामूल, सैन्धव, पोपल और महुये का फूल समान भाग चूर्ण करना, फिर उसके बराबर गोलमिरचका चूर्ण मिलाना, यह चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर नास देनेसे रोगी चैतन्य होता है और तन्द्रा, प्रलाप, मस्तक भार आदि दूर होता है। तन्द्रा दूर करनेके लिये सेंधा नमक, सेजनको बोज, सफेद सरसो और कूठ समान भाग बकरीके मूत्रमें पोसकर नास देना। शिरिष बोज, पोपल, गोलमिरिच, सेन्धर, लहसुन, मैनसिल और बच, समान भाग गोमूत्रमें पोसकर आंखमें अञ्जन करनेसे चेतन्य होता है। मस्तक अत्यन्त उष्ण, आंखि लाल और प्रबल शिरोवेदना होनेसे आधा तोला सोरा और आधा तोला नौसादर एक सेर पानीमें भिगोवें, गल जानेपर उसमें उनी कपडेका एक टुकडा भिगाकर कनपटो और तालुमें पट्टो रखना; शिरःपोडा आदि आराम न होने तक इस पट्टोको उसो पानीसे तर रखना। फिर रोगको तकलोफ शान्त होने पर पट्टो निकाल डालना। इस ज्वरमें क्षुद्रादि, चातुर्भद्रक, पञ्चमूल, दशमूल, नागरादि, चतुर्दशाङ्ग, विविध अष्टादशाङ्ग, भार्ग्यादि, शट्यादि, बृहत्यादि, व्योषादि और विश्वादि प्रभृति काढ़ा, स्वल्प और बृहत् कस्तुरोभैरव, श्लेष्म कालानल रस, कालानल रस, सन्निपातभैरव और वेताल रस आदि औषध देना।

नाड़ोको क्षीणावस्थामें कर्त्तव्य।—सन्निपात ज्वरमें देह शीतल और नाडो क्षीण होने पर मकरध्वज १ रत्ती,

कस्तुरी १ रत्ती और कपूर १ रत्ती एकत्र सहतमें मिलाना, फिर २ तोला पानका रस या २ तोला अदरखका रस मिलाकर लगातार ३।४ बार पिलावें। मृगमदासव, मृतसञ्जीवनी सुरा और हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" इस अवस्थामें विचार कर दिया जा सकता है, और जल दर्शण, श्रवण और वासशक्ति आदि क्रमशः लोप होते आवे, नाड़ी बैठ जाय तथा संज्ञानाश हो; तब सूचिकाभरण, घोर नृसिंह, चक्री और ब्रह्मरन्ध्र रस आदि उत्कट औषध प्रयोग करना चाहिये।

निउमोनियामें कर्त्तव्य।—सन्निपात ज्वरके जिसे डाक्तार लोग "निउमोनिया" कहते है उसमे सन्निपात ज्वरोक्त काढ़ा, लक्ष्मीविलास, कस्तुरी भैरव, कफकेतू और कास रोगोक्त कई औषध दोष आदि विचार कर देना चाहिये।

अभिन्यास ज्वरमें कारव्यादि और शृङ्गादि काढा तथा स्वच्छन्द नायक और पूर्व्वोक्त सन्निपात ज्वरको औषधोमें विचार कर देना आवश्यक है।

उपद्रव चिकित्सा।—नये ज्वरमें विशेषतः सन्निपात ज्वरमें दोष समूहोंका आधिक्य और हठकारिताके लिये प्रायः नाना प्रकारके उपद्रव प्रकाश होते है। मूल रोग को अपेचा यह सब उपद्रव अधिक भयङ्कर है, कारण इससे हटात् प्राण नाशको सम्भावना है, इस लिये वही सब उपद्रवके चिकित्सामें विशेष मनोयोग देना उचित है।

सान्निपातिक शोथ चिकित्सा।—सान्निपातिक ज्वरमें किसो किसीके कर्णमूलमें शोथ होता है; इस शोथसे अकाल मृत्यु होती है। पर सान्निपात ज्वरके प्रथम अवस्थाका शोथ साध्य और मध्य अवस्थाका कष्टसाध्य है। शोथके प्रथम अवस्थामें

जोंक लगाना ; गेरूमिट्टी, पागा नमक, शोंठ, वच, और राई सम-भाग काञ्जीमें पीसना, अथवा कुरथी, कटफल, शोंठ और काला जीरा समान भाग पानीमें पीसकर, गरम लेप करनेसे आराम होता है। इससे यदि आराम न होकर क्रमशः बढताही जायतो उसको पकाना चाहिये। पानीमें अलसीको पीस थोड़ा घी मिला गरम करना, यह गरम पट्टी बार बार लगानेसे शोथ पक जानेपर नस्तर करना। घाव सूखनेके लिये लहसुनका तेल अथवा हमारा "क्षतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये।

ज्वरमें तृष्णा निवारण।—कफके ज्वरमें प्यास अधिक हो तो, बार बार पानी देना उचित नहीं है। गरम पानी ठण्ढा कर उसमें सफेद चन्दन घिसकर मिलाना फिर उसी पानीमें सौफकी एक पोटली भिगोंना तथा वही पुटली बार बार चूसनेको देना अथवा थोड़ा बरफका पानी देना इससे प्यास क्रमशः शान्त होती है। षडङ्ग पानी पान करनाही इस अवस्थामें अच्छा है।

ज्वरमें दाह निवारण।—अत्यन्त दाह होय तो कुकुरसोंकाका रस बदनमे लगाना, अथवा सेहुडके पत्तेके रसमें अजवाईन पीसकर सर्व्वांगमें मालिश करना। कांजो में वस्त्र भिङ्गो निचोड लेना तथा उसी वस्त्रसे थोड़ो देर बदन आच्छादन करना, बेरका पत्ता कांजीमें पीस थोडो कांजी मिलाकर आगपर रखना जब उसमेसे फेन निकलने लगे तब वही फेन सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। इसी प्रकारसे नीमका फेनभी मालिश कर सकते है। *कालिया काठ, लाल चन्दन, अनन्तमूल, जेठीमध, और बेरके* बीजकी गूदी ; समान भाग कांजीमें पीसकर सिरके तालूमें लेप करनेसे दाह, तृष्णा दोनोको शान्ति होती है।

घर्म्म निवारण।—अतिरिक्त पसीना हो तो भूञ्जो

कुरथोका चूर्ण अथवा अबोर सर्व्वाङ्गमें घिसना, चुल्हेको जलो हुई मिट्टीका चर्णभी मालिश करनेसे पसीना बन्द होता है।

वमन उपद्रव निवारण।—ज्वरमें वमनका उपद्रव हो तो गुरिचका काढा ठण्ढा कर उसमें सहत मिलाकर पिलाना। १ तोला खूब महीन पीसा खस तथा सफेद चन्दन घिसा आधा तोला, आध पाव बतासेके शर्व्वतमें मिलाकर, १ तोला मात्रा बार-बार देना, अथवा खेतपापडा २ तोला आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहे तब उतार कर २।३ बार थोडा थोडा कर यह काढा पिलाना। सहत, चन्दन अथवा चीनीके साथ मक्खीको विष्ठा चाटनेसे; किम्वा तेलचट्टाको विष्ठा ३।४ दाना ठण्डे पानीमें भिगोकर पीनेसे वमन दूर होता है। बरफका टुकडा मुहमें रखनेसे वमन हिक्का दोनो आराम होता है। छर्द्दी रोगोक्त एलादि भी वमन हिक्का दोनोंमें प्रयोग किया जाता है। अतिसारका उपद्रव हो तो ज्वरातिसारकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

ज्वरमें मलबद्ध होनेसे कर्त्तव्य।—मलबद्ध होनेसे रेंडीका तेल २ तोला २॥ तोला गरम पानी या गरम दूधमें मिलाकर पिलाना; अथवा पूर्व्वोक्त इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह तीन द्रव्यका काढा पिलाना। इसके सिवाय ज्वरकेशरी, ज्वर मुरारि, इच्छाभेदी रस भी दे सकते है। हमारी बनाई "सरल-भेदी वटिका" खिलानेसे सुन्दर मृदु विरेचन होता है।

ज्वरमें मूत्ररोधमें कर्त्तव्य।—मूत्र रोध होनेसे वज्रक्षार २ रत्तीसे ६ रत्ती तक ठण्ढे पानीसे दो दो घण्टा अन्तर पर देना। वज्रक्षारके अभावमें सोराका चूर्णभी दे सकते है। खसकी जड़, गोखरू, जवासा, खीरेको बीज, ककडीको बीज, कबाबचीनी, पोर बरुणछाल, प्रत्येक चार २आने भर आधा पाव

पानीमें २ घण्टा भिगोना फिर वही पानी थोड़ा थोड़ाकर घण्टे घण्टेके अन्तर पर पिलाना, इससे मूत्रका रोध और जलन दूर होता है। आधा तोला सारा एक पाव पानीमें भिङ्गोना फिर थोड़ी चीनी मिलाकर वही पानी थोड़ा २ पीनेको देना। इससे क्रमश पिशाब साफ, नाड़ी स्वस्थ शरीरकी गर्मी कम होकर ज्वरका ह्रास होता है।

हिक्का निवारण।—हुचकीको शान्तिके लिये निर्धूम अङ्गारे पर हींग, गोलमरिच, उरद, या घोड़की सूखी लीद जला कर धूंआ सूंघना। राईका चूर्ण आधा तोला, आधा सेर पानीमें मिलाकर थोड़ी देर रख छोड़ना, फिर वही थिरा हुआ पानी आधी छटाक दो तीन घण्टेके अन्तर पर पिलाना। पेटके ऊपर तेल मर्द्दन कर गरम पानीसे सेंकना। पानीके साथ सेंधा निमक मिलाकर अथवा चीनीके साथ सोंठका चूर्ण मिलाकर नाम लेना। पीपलकी सूखी छाल जलाकर पानीमें डूबोकर बुताना, फिर वही पानी छानकर पीनेसे हुचकी और कै दोनो बन्द होता है। तेल चट्टा अर्द्धभाग और उसका आधा भाग गोलमिरच एकत्र पीसना, मात्रा चौथाई रत्ती ठण्ढे पानीके साथ २।३ बार सेवन करनेसे प्रबल हिक्काभी आराम होता है।

श्वास उपद्रव निवारण।—श्वास उपद्रव शान्तिके लिये (वृहती) बनभंटा (कण्टकारी) रेंगनी (दुरालभा) जवासा, पटोली, काकड़ाशिङ्गी बननेठी, कूठ, कुटकी और शटी इन सब द्रव्योंका काढा देना। अथवा पीपल, कटफल और काकड़ाशिङ्गी सहतमें मिलाकर सेवन करना, अन्तर्धूममें भस्म कियाहुआ मयूर-पुच्छ २ रत्ती और पीपलका चूर्ण २ रत्ती अथवा बहेड़ाकी गूदी किम्वा बेरके बीजकी गूदी २ रत्ती सहतमें चाटें, बनकण्डेकी

आगमें कुल्हाडो गरम कर उसके अग्रभागसे पांजरमें दागनेसे अति उग्र श्वासभो आराम होता है।

कास उपद्रव निवारण।—कास उपद्रवमें २।३ घण्टा अन्तरसे पीपला मूल, बहेड़ा, खेतपापड़ा और शोंठ इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटाना। अडूसेके रसमें सहत मिलाकर पिलाना। बहेडे में घी लगाकर गोबरकी गोलेमें रख आगमें सिजालेना। यह मुखमें रखनेसे कास बहुत जल्दो आराम होता है।

अरुचि।—अरुचिमें सेंधा नमक और आदोका रस, सेंधा नमक बडे नीबूका जीरा, घी और सेंधा नमकके साथ बडे नीबूका रस, अथवा आंवला और मुनक्केका कल्क मुखमें धारण करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमें पुसड़ा प्रस्तुत विधि।—साधारण जोर्ण ज्वर और विषम ज्वरमें हरसिंघारके पत्तेका रस सहतमें मिलाकर पिलाना। खेतपापडा, हरसिंघारका पत्ता और गुरिच, यह तोन द्रव्य अथवा गुरिच, खेतपापडा, भैकपर्णी, हिलमोचिका, (हुरहुच) और परवरका पत्ता ; यह पांच द्रव्यका "पुसडा" बनाकर सेवन कराना। पांचो द्रव्य एक साथ थोडा कूटकर केलेके पत्तेमें लपेटना फिर माटोमें लेपकर आगमें उसको जलाकर रस निचोड कर निकालनेसे "पुसडा" कहते हैं। झाड-कांकडाका मूल, छाल, पत्ता, फूल और फल कूटकर वेसही जलाना, उसका रस २ तोले दो आने भर शोंठके चूर्णके साथ सेवन करानेसे जीर्ण ज्वर आराम होता है। भड़रैया को जडका ७ टूकडा कर एक एक टूकड़ा अदरखके टूकडेके साथ सेवन करानेसे सब प्रकारका जोर्ण ज्वर आराम होता है। गुग्गुलु, नोमका पत्ता, बच, कूठ, बडोहर्र, यव, सफेद सरसो, और घो एकत्र

मिलाना, फिर इसका धूंवा रोगीके शरीरमें देनेसे विषम ज्वर प्रशमित होता है, इसका नाम अष्टाङ्गधूप है। बिल्लीके विष्ठाका धूप देनेसे कम्पज्वर दूर होता है। गुग्गुलु, गन्धतृण अभावमें खस, बच, धूना, नीमका पत्ता, अकवनकी जड, अगरू, चन्दन और देवदारु; इन सब द्रव्योंका धूप देनेसे सब प्रकारका ज्वर दूर होता है, इसको अपराजिका धूप कहते हैं। निदिग्धिकादि, गुडच्यादि, द्राक्षादि, महौषधादि, पटोलादि, विषम ज्वरघ्न, भार्ग्यादि, वृहत् भार्ग्यादि, मधुकादि, दार्व्यादि और दार्व्यादि प्रभृति काढ़ेको सब प्रकारके जीर्ण और विषम ज्वरमें दोष विचार कर देना। कारण विषम ज्वरमें तीन हो दोष आरम्भक है, इसमें दोष विशेषको आधिक्यता और न्यूनता विचार कर औषध स्थिर करना चाहिये।

तृतीयक और चातुर्थक ज्वर चिकित्सा।—

तृतीयक (तिजारी) ज्वरमें महौषधादि, उशीरादि और पटोलादि; तथा चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमें वसादि, मुस्तादि और पथ्यादि काढ़ा देना उचित है। काकजङ्घा, बरियारा, श्यामालता, बमनेठी, लज्जावती लता, चाकुला, चिरचिरी, या भङ्गरैया इसमें से कोई एक वृक्षका मूल पुष्य नक्षत्रमें उखाड़कर लाल सूतमें लपेट हाथमें बांधनेसे, किम्बा उल्लूके दहिने डैनेका एक पर सफेद सूतमें बांध बांये कानमें धारण करनेसे तृतीयक अर्थात् तिजारी ज्वर आराम होता है। शिरीष फूलके रसमें दरिद्रा और दारु हरिद्रा पीसना फिर घी मिलाकर नास लेनेसे अथवा बकफूलके पत्तेके रसका नास लेनेसे चातुर्थक (चौथाईया) ज्वर दूर होता है। अश्विनीनक्षत्रमें सफेद अकवन या कनैलकी जड उखाड़ कर

६ रत्ती मात्रा अथवा चावलके धोवनमें पीसकर पोनेसे चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

रात्रिज्वर।—काकमाची (कवैया कवई) की जड़ कानमें बाधनेसे रा त्रज्वर दूर होता है। निदिग्धिकादि काढ़ा शामको पिलानेसे रात्रि ज्वरमें विशेष उपकार होता है।

शीतपूर्व्व ज्वर।—शीतपूर्व्व ज्वरमें भद्रादि और घनादि काढ़ा और दाह पूर्व्व ज्वरमें विभीतकादि और महाबलादि कषाय प्रयोग करना चाहिये।

जीर्ण और विषम ज्वरकी महौषध।—उक्त जीर्ण ज्वर विषम ज्वरके दोष और बलाबल विचार कर अनुपान विशेषसे सुदर्शन चूर्ण, ज्वरभैरव चूर्ण, चन्दनादि लौह, सर्व्वज्वरहर लौह, वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह, पञ्चानन रस, ज्वराशनि रस, ज्वरकुञ्ज-रपारीन्द्र रस, जयमङ्गल रस, विषम ज्वरान्तक लौह, पुटपक्क विषम ज्वरान्तक लौह, कल्पतरु रस, त्राहिकारी रस, चातुर्थकारी रस, मकरध्वज और अमृतारिष्ट आदि औषध देना।

हमारा बनाया "पञ्चतिक्त वटिका" सब प्रकारके नये और पुराने ज्वरको अकसीर दवा है।

जीर्ण ज्वरमें कफका संयोग न रहनेसे अंगारक तैल वृहत् अङ्गारक तैल, लाक्षादि तैल, महालाक्षादि तैल, किरातादि तैल, वृहत् किरातादि तैल सर्व्वाङ्ग में मालिश करना। इस ज्वरमें दशमूल षटपलक घृत, वासादिघृत और पिप्पल्यादि घृत सेवन कर सकते है।

ज्वरमें दूध पान।—ज्वरमें कई प्रकार संस्कृत दूधभी अमृतकी तरह उपकार करता है। पर नये ज्वरमें वही दूध विषकी भांति अनिष्टकारक है।

सरिवन, चाकुला, हड़तो, कटैली और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्चमूलके साथ दूध पाक कर पोनेसे कास, श्वास, शिरःशूल और पोनस संयुक्त जोर्ण ज्वर आराम होता है। गोक्षुर, बरियारा बेलको छाल और सोंठ; यह सब द्रव्यके साथ दूध पाक कर पोनेसे मल और पिशाब साफ हो शोथसंयुक्त जोर्ण ज्वर आराम होता है। सफेद गदहपुन्ना, बेलको छाल और लाल गदहपुन्ना दूधमें पाक कर पोनेसे सब प्रकारका जोर्ण ज्वर आराम होता है। ज्वर रोगीके गुदामें काटनेकी तरह पोड़ा हो तो एरण्डमूलके साथ दूध पाककर पिलाना।

ज्वरमें दुग्ध पाक विधि।—उक्त दूध पाक करनेकी विधि;—जितनो दवायोंके साथ दूध पाक करना हो, उन सबका समान भाग मिलाकर २ तोला होना चाहिये, मिली हुई दवायोंका आठ गूना अर्थात् १६ तोले दुध और पानी दूधका चौगूना अर्थात् ६४ तोले लेना चाहिये। सब दवा एकत्र कर आंच पर रखना, जब सब पानो जल कर केवल दूध रहजाय तब उतारकर थोड़ा गरम रहते हो सेवन करना।

आजकल प्रायः सब जगह नये ज्वरको अपक्क अवस्थामें ज्वरको कुनेनसे बन्द करनेकी रोति है, इससे जोर्ण ज्वरमें भो कफका संस्रव बना रहता है; इस लिये घृत या तेल प्रयोगका उपयुक्त अवसर नहो मिलता है।

आगन्तुक ज्वरादि चिकित्सा।—आगन्तुक ज्वरमें वातादि जिस दोषके लक्षण प्रकाश हो उसों दोषको चिकित्सा करना। इसके सिवाय और भो कई विशेष नियम है; जैसे—अभिघातज आगन्तुक ज्वरमें उष्ण वर्ज्जित क्रिया और कषाय मधुर रसयुक्त स्निग्ध द्रव्यका पान भोजन करना चाहिये। अभिचार और

अभिशाप जनित आगन्तुक ज्वरमें होम, पूजा और प्रायश्चित्त कराना। उत्पात और ग्रहवैगुण्य जनित आगन्तुक ज्वरमें दान, स्वस्त्ययन और अतिथि सत्कार करना चाहिये। औषधिगन्ध और विषमद्य जनित आगन्तुक ज्वरमें विष तथा पित्तदोष नाशक औषधसे चिकित्सा करना और दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्ता, कपूर, शीतलचीनी, अगर, केशर, और लौंग इसका काढ़ा पिलाना ; इन सब द्रव्यको सर्व्वगन्ध कहते हैं। क्रोधज ज्वरमें अभिलषित द्रव्य देना और हितवाक्य कहना, तथा काम, शोक और भयजनित ज्वरमें आश्वास वाक्य, अभीष्ट वस्तु प्रदान, हर्षोत्पादन और वायुको शान्त करना चाहिये। तथा क्रोध उदय होनेसे काम ज्वर, और काम तथा क्रोध उदय होनेसे, भयज और शोकज ज्वर प्रशमित होता है। भूतावेश जनित ज्वरमें बन्धन ताड़नादि और मानसिक ज्वरमें रोगीका मन प्रसन्न रखना चाहिये।

आरोग्यके बादकी अवस्था।—ऐसेही विविध चिकित्सासे ज्वर आरोग्य होने पर २।३ सप्ताह तक लौह भस्म २ रत्ती, मण्डूरका चूर्ण २ रत्ती और सोंठका चूर्ण २ रत्ती चिरायता भिंगोया पानीमें मिलाकर पिलानेसे शरीर सबल और रक्तकी वृद्धि होती है। इस अवस्थामें चिरायताके पानीके साथ मकरध्वज सेवन करनेसे भी उपकार होता है।

नये ज्वरमे पथ्यापथ्य।—नये ज्वरमें दोषका परिपाक न होने तक उपवास, फिर दोषका परिपाक और क्षुधाका परिमाण विचार कर मिश्री, बतासा, अनार, कसेरु, मुनक्का, सिंघाड़ा, दूध, धानका लावा, धानके लावाका मण्ड, पानीका साबुदाना, अराहट और बार्लि आदि हलका भोजन कराना। पीनेको पानी गरम कर ठण्ढा होनेपर देना। कफज, वातश्लेष्मज,

और सन्निपात ज्वरमें पानी ठण्ढा नही करना। ज्वर त्यागके दो तीन दिन बाद यदि शरीरमें ग्लानि न रहे, तो पुराने चावलका भात, मूंग मसूरको दाल, कटु तिक्त रसयुक्त तरकारी, छोटी मछली आदि भोजनको देना। नये ज्वरमें पेट साफ रखना नितान्त आवश्यक है।

सन्निपात ज्वरमें भी पथ्यादि ऐसही जानना ; पर रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाय तो, एक उफानका दूध और मूंग, मसूर या लघुपाक मांस रसके साथ थोडो मृतसञ्जीवनी सुरा मिलाकर बार बार देना चाहिये।

उक्त ज्वरमें ज्वर त्यागके पहिले भात खाना, सब प्रकार गुरुपाक और कफवर्द्धक द्रव्य भोजन, तैल मर्दन, व्यायाम, परिश्रम, मैथुन, स्नान, दिवानिद्रा, अति क्रोध, शीतल जल पान और हवामें फिरना आदि अनिष्टकारक है, अतएव इन सब कामोंको नही करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।—जीर्ण और विषम ज्वरमें ज्वर अधिक रहनेसे धानके लावाका मण्ड, साबूदाना, बार्लि, अराख्ट और रोटी आदि विचार कर देना। ज्वरका आधिक्य न रहनेसे दिनको पुराने चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवर, वेंगन, गुल्लर, अलवी, मूली आदिकी तरकारी ; कोई, मागूर, सिङ्गी आदि छोटी मछलीका रसा और एक उफानका थोड़ा दूध आहार कराना। गरमपानी ठण्ढा कर पीनेको देना। रोगी अधिक दुर्बल हो तो कबूतर, मुरगा और खस्सीके मासका रस देना चाहिये। रातको, क्षुधाके अवस्थानुसार साबुदाना आदि या रोटी खाना उचित है। खट्टेमें पाती या कागजी नीबूका रस थोड़ा देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—घृतपक्क आदि गुरुपाक द्रव्य भोजन,

दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, ठण्ढो हवामें फिरना, मैथुन और स्नान आदि अनिष्ट कारक है। पर जिस रोगीको वाताधिक्य या पित्ताधिक्य का ज्वर हो और स्नान न करनेसे तकलीफ मालूम हो तो उसको गरम पानी ठण्ढा कर थोडे पानीसे स्नान कराना ; अथवा उसी पानीमें अंगोछा भिंगोकर बदन पोंछना चाहिये।

प्लीहा।

प्लीहाका कारण।—ज्वर अधिक दिन तक शरीरमें रहनेसे, मलेरिया ज्वरमें, अथवा मलेरिया दूषित स्थानमें वास करनेसे, किम्वा मधुर स्निग्धादि आहारसे रक्त बढकर प्लीहा बढती है। इसके सिवाय अतिरिक्त भोजनके बाद तेज चलनेवाली सवारी में चढना या व्यायामादि श्रमजनक कार्य्य करनेसे भी प्लीहा स्वस्थानसे च्युत हो बढ जाती है। पेटके बांये तरफ उपरको प्लीहाका स्थान है, अविकृत अवस्थामें हाथसे वह मालूम नहीं होती, पर बडी होनेसे कुक्षिके बांये तरफ हाथ लगाते ही मालूम होती है। इस रोगमें सर्वदा मृदु ज्वर रहता है। और रोज किसी न किसी वक्त ज्वर बढता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर कम्प

ज्वर होता है, तथा प्लीहा स्थानमें दर्द, जलन, कोष्ठ बद्धता, अल्प लाल मूत्र, श्वास, कास, अग्निमान्द्य, शरीर की अवसन्नता, कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, पिपासा, वमन, मुखका बेस्वाद, चक्षु और हाथके अङ्गुलियोंका पीला होना, आंखके सामने अन्धियाला मालूम होना, मूर्च्छा प्रभृति लक्षण प्रकाश होते है।

कष्टसाध्य पीहाके लक्षण।—प्लीहा अधिक बढनेसे रोग कष्टसाध्य होता है तथा नाक और दांतसे खून गिरता है और रक्तवमन, रक्तभेद, उदरामय, दांतके जडमें घाव, पैर, आंख और सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है, तथा पाण्डु और कामला आदिके लक्षण भी दिखाई देता है। यह सब लक्षण दिखाई देनेसे प्लीहा आराम होनेकी आशा नहीं रहती।

पीहाका दोष निर्णय।—प्लीहा रोगमें मलबद्धता, वायुका उर्द्धगमन और दर्द, अधिक हो तो वायुका आधिक्य जानना; पिपासा ज्वर और मूर्च्छा हो तो पित्तका आधिक्य और प्लीहा अधिक कठिन, शरीर भारी और अरुचि हो तो कफका आधिक्य जानना। रक्तके आधिक्यमें पित्ताधिक्यकेही लक्षण मालूम होते है; पर प्यास उससेभी अधिक होती है। तीन दोषके आक्रधि में उक्त लक्षण सब मिले हुए मालूम होते है।

चिकित्सा।—प्लीहा रोगमें रोगीका पेट जिसमें साफ रहे पहिले इसका उपाय करना आवश्यक है। पुराना गुड और बडी हर्रका चूर्ण समान भाग अथवा काला नमक और बड़ी हर्रका चूर्ण समान भाग रोगी और रोगकी अवस्था विचार कर गरम पानीके साथ फांकनेसे प्लीहा और यकृत् दोनो रोगकी शान्ति होती है। पीपल प्लीहा रोगकी एक उत्तम औषध है, २।३ पीपल पानीमें पीसकर पिलानेसे अथवा गुडके साथ मिलाकर खानेसे

प्लीहामें विशेष उपकार होता है। तालकूट (ताडकी जटा) एक हांडोमें रख मुह बन्द कर आगमें भस्म करना, यह भस्म पुराने गुडके साथ उपयुक्त माता सेवन करानेसे प्लीहा प्रशमित होती है। हीग, सोंठ, पीपल, गोलमरिच, कूठ जवाचार और सेंधा नमक सबका सम भाग चूर्ण नीबूके रसमें खलकर दो आनेसे चार आने भर माता रोज खिलाना। अजवाईन, चीतामूल, जवाचार, पीपला मूल, पीपल, और दन्ती सबका सम भाग चूर्ण आध तोला माता गरम पानी, दहीका पानी, सुरा या आसवके साथ पिलाना। चीतामूल पीसकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा वही गोली तीन पक्के केलेमें भरकर खिलाना। चीतामूल, हरदी, अकवनका पका पत्ता, अथवा धाईफूलका चूर्णकर पुराने गुडके साथ खिलाना। लहसन, पिपला मूल, और हर्रे खाने और गोमूत्र पीनेसे प्लीहा आराम होती है। शरफोंका पीसकर आधा तोला माता दहीके माठेके साथ पीनेसे प्लीहा उपशम होती है। यज्ञनाभिका चूर्ण आधा तोला बडे नीबूके रसमे मिलाकर चाटनेसे कछुवेके समान प्लीहाभी आराम होती है। समुद्रकी सीप भस्म प्लीहा नाशक है। देवदारु, सैंधानमक और गन्धक का सम भाग भस्मकर सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस रोग आराम होता है। रोहितक और बडी हर्रके काढेके साथ २ आनेभर पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। सरिवन पिठवन, बनभण्टा, कटैली, गोखुर, हरीतकी और रोहितकको कालका काढा देना। निदिग्धकादि काढाभी इसमें देना चाहिये। इसके सिवाय माणिकादि गुडिका, वृहन्मानकादि गुडिका गुडपिप्पली, अभया लवण, महामृत्युञ्जय लौह, इहलोकनाथ रस आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। प्लीहाके साथ श्लेष्म संसृष्ट ज्वर न रहनेसे चित्रक

घृत आदि सेवन करना चाहिये। रोहितकारिष्टभी प्लीहाको एक अकसीर दवा है।

प्लीहा ज्वरमें हमारी पञ्चतिक्त वटिका।—ज्वर प्रबल रहे या अकस्मात् प्रबल होनेसे उक्त औषधोंमें जो औषध ज्वरमें भी उपकारी हो वही औषध तथा ज्वरकी औषध दोनों मिलाकर प्रयोग करना। आवश्यक होनेसे प्लीहाका औषध बन्द कर केवल ज्वरहीकी चिकित्सा उस समय करना। हमारी "पञ्चतिक्त वटिका" प्लीहा ज्वरकी अति उत्कृष्ट औषध है। चिकित्सासे ज्वर कम होनेपर फिर प्लीहाका औषध प्रयोग करना उचित है।

जीर्ण प्लीहा रोगमें कर्त्तव्य।—पुराने प्लीहा रोगमें विरेचक औषध प्रयोग नहीं करना, कारण अकस्मात् उदरामय होनेसे उसका आराम होना कठिन होता है, उदरामय हो तो पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि ग्राही औषध देना। रक्तामाशय, शोथ या पाण्डु कामला आदि पीड़ा मिलित रहनेसे उन रोगोंकी औषधभी इसके साथ प्रयोग करना। प्लीहा रोग ग्रहणी रोगके साथ मिला रहनेसे आराम होना कठिन है। इस अवस्थामें चित्रकादि घृत और ग्रहणी रोगोक्त कनकारिष्ट और अभयारिष्ट प्रभृति औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

प्लीहामें मुखक्षत चिकित्सा।—मुखमें घाव होनेसे खदिरादि वटिका पानीमें घिसकर घावमें लगाना। बकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गावछाल और अमरूतका पत्ता पानीमें औटाकर थोड़ी फिटकिरीका चूर्ण मिलाकर गरम रहते कुल्ला करनेसे मुख क्षतमें विशेष उपकार होता है।

वेदना चिकित्सा।—प्लीहामें दर्द हो तो वन आदा

पीसकर लेप अथवा गरम पानीका स्वेद देना। तथा कसकर फलालैन पेटमें बांधनेसेभी उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—जीर्ण ज्वरमें जो पथ्यापथ्य विधि लिखी गई है, प्लीहा रोगमें भी वही सब पालन करना उचित है। इसमें साधारण दूध न देकर उसके साथ २।४ पीपल औटाकर वही दूध पान करनेको देना। इससे प्लीहाकी शान्ति होती है, सब प्रकारकी भुन्नी वस्तु गुरुपाक वस्तु, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन और परिश्रम, रातका जागना दिनका सोना और मैथुन आदि निषिद्ध है।



यकृत्।



निदान।—प्लीहा रोगके कारण जो उपर कह आये है, यकृत् रोगभी यही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसके सिवाय मद्यपान और अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द होना आदि कारणोंसे भी यकृत् वर्द्धित या सङ्कुचित होनेसे यकृत् विकृत होता है, अविकृत अवस्थामें हाथ लगानेसे मालूम नहीं होता, परन्तु वर्द्धित होनेसे दबाने पर मालूम होता है। विकृत अवस्थाके यकृतमें दर्द, मलरोध या कईसबत् अल्प मलस्राव, सब शरीर विशेष कर दोनो आंखे पीली, खांसी, दहिने तरफके पंसुलियोंके नीचेका भाग कसा मालूम होना और सूई गड़ानेकी तरह दर्द, दहिना कन्धा या दहिने सब अङ्गमें दर्द, मुखका स्वाद तीता, जीमतलाना

या के होना, नाड़ी कठिन, सर्व्वदा ज्वरबोध, और प्लीहा रोगके अन्यान्य लक्षण समूह भी दिखाई देते है। इस रोगमें रोगी दहिने करवट सो नही सकता है। प्लीहा रोगोक्त लक्षणोंकी तरह इसमेंभी वातादि दोषोंकी वृद्धिका अनुभव करना चाहिये। यकृत् रोग भी बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहने पर पाण्डु, कामला, शोथ, आदि अनेक उत्कट रोग उत्पन्न होता है।

यकृदुदर रोग।—यकृत् अधिक वर्द्धित हो उदर तक बढनेपर यकृदुदर रोग कहते है। उदर रोगमें इसका लक्षण लिखेंगे।

चिकित्सा।—यकृत रोगकी चिकित्सा प्लीहा रोगकी तरह करना, इसमें सर्व्वदा पेटसाफ रखना आवश्यक है। प्लीहा रोगकी सब औषधें इस रोगमें प्रयोग कर सक्तेहै। इसके सिवाय यकृदरि लौह, यकृत्प्लीहारिलौह, यकृत् प्लीहोदरहरलौह, वज्रक्षार, महाद्रावक, और महाशंखद्रावक आदि औषध विचार कर देना। यकृत्में दर्द हो तो तार्पिनका तेल मालिश कर गरम पानीसे सेंकना, अथवा गोमूत्र गरम कर बोतलमें भर किम्वा फलालेन भिंगोकर सेंकना चाहिये। राईका लेप चढ़ानेसेभी यकृतमें विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य प्लीहा रोगकी तरह पालन करना।

ज्वरातिसार।

संज्ञा और कारण।—ज्वर और अतिसार यह दोनो रोग एक साथ होनेसे उसको ज्वरातिसार कहते है। यह एक स्वतन्त्र रोग नहो है, पर इसकी चिकित्सा विधि स्वतन्त्र है इससे अलग मालूम होता है। ज्वर और अतिसारके जो सब उत्पत्ति कारण निर्दिष्ट है, वह सब कारण एक साथ सङ्घटित होनेसे ज्वरातिसार उत्पन्न होता है। ज्वरमें कुपथ्य करना, पित्तकारक द्रव्य भोजन, दुषित जल पान, दुषित वायु सेवन और तेज विरेचन आदि कारणोंसेभो ज्वरातिसार रोग उत्पन्न होता है। जिस ज्वरमें पित्तका प्रकोप अधिक रहता है, उसमें ज्वरातिसार रोग होनेको सम्भावना है।

चिकित्सा।—ज्वर और अतिसार यह दो रोगको चिकित्सा एक साथ होनेका उपाय नहो है, कारण ज्वरकी प्रायः सब औषधें दस्तावर और अतिसारको औषधें सब मलरोधक है, इस लिये ज्वर नाशक औषध अतिसारका विरोधी और अतिसार निवारक औषध ज्वरका विरुद्ध है। इससे इसको चिकित्साविधिभी स्वतन्त्र निर्दिष्ट है, इस रोगमें पहिले दस्त वन्द करना उचित नहो है, कारण इससे कोष्ठका सञ्चित मल रुद्ध हो, अन्यान्य उत्कट रोग उत्पन्न होते है, पर जहां अतिशय अतिसारसे रोगोके अनिष्टको सम्भावना मालूम हो वहां मल रोधक औषध प्रयोग करनाही उचित है। साधारणतः इस रोगके प्रथम अवस्थामें

पाचक और अग्निदीपक औषध प्रयोग करना। धनिया १ तोला और सोंठ एक तोला, एकत्र ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोला पानी रहने पर छानकर दिनको २।३ बार पिलाना। अथवा ह्रीवेरादि, पठादि, नागरादि, गुडूच्यादि, उशीरादि, पञ्चमूलादि, कलिङ्गादि, मुस्तकादि, धनादि, विल्वपञ्चक, और कुटजादि क्वाथ विचार कर व्यवस्था करना। इससेभी पीड़ाका उपशम नहो हो, तो विचार कर अनुपान विशेषके साथ व्योषादि चूर्ण, कलिङ्गादि गुडिका, मध्यम गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् कुटजावलेह, मृतसञ्जीवनी वटी, सिद्ध प्राणेश्वर रस, कनकसुन्दर रस, गगन सुन्दर रस, आनन्द भैरव और मृतसञ्जीवन रस आदि औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

पथ्यापथ्य।—रोगी सबल हो तो पहिले उपवास, फिर उत्पलषटकके साथ यवागू पाक कर थोडा अनारका रस मिलाकर पिलाना। अथवा धानके लावाका मण्ड, जौका मण्ड, सिंघाड़ेकी लपसी, एरारुट और वार्लि खानेको देना, इस अवस्थामें हमारा सञ्जीवन खाद्य विशेष उपकारी पथ्य है। रोगी दुर्ब्बल हो तो उपवास न देकर उक्त हलका भोजन देना। पीड़ाका ह्रास और रोगोके परिपाक शक्तिके अनुसार क्रमशः पुराने चावलका भात, मसूरको दाल, बैंगन गुल्लर और केलेकी तरकारी. मागुर, सिंगी, कोई आदि छोटी मछलीका रसा; अवस्था विचार कर कोमल मांसका रस, बकरीका दूध, अनार और कच्चा बेल भूंज कर खानेको दे सक्ते है। गरम पानी ठंढा होनेपर पीनेको देना।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, गेहूं, जौ, उरद, चना, अरहर, मूंग, शाक, ईख, गुड़, मुनक्का, दस्तावर द्रव्य मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा, अधिक पानी या अन्यान्य

तरल द्रव्य पान, हिम, धूप, अग्निसन्ताप, तैल मर्द्दन, स्नान, व्यायाम, रात्रिजागरण और मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अतिसार।

—:o:—

अतिसार संज्ञा।—जिस रोगमें शरीरका दूषित रस, रक्त, पानी स्वेद, (पसीना) मेद, मूत्र, कफ पित्त और रक्त आदि धातु समूह अग्निको मन्द और मलके साथ मिलकर तथा वायुसे अधोभागमें प्रेरित हो थोड़ा थोड़ा निकलता है, उसको अतिसार कहते हैं।

निदान।—गुरुपाक, अति स्निग्ध, अति रुक्ष, अति उष्ण, अति शीतल, अति तरल और अति कठिन द्रव्य भोजन, क्षीर मत्स्यादिको तरह संयोग, विरुद्ध भोजन, पहिलेका खाया हुआ अन्न न पचनेपर भोजन, कच्चा अन्न भोजन, कोई दिन कम, कोई दिन अधिक या अनिर्द्दिष्ट समयमें भोजन, वमन, विरेचन, पिचकारी, निरुहण, या स्नेहादि क्रियाका अतियोग, अल्प योग, अथवा मिथ्या योग; स्थावर विष खाना, दुष्ट मद्य या दुष्ट पानीका अधिक पीना, बिना अभ्यास और अनिष्ट कारक आहार विहारादि; ऋतुका व्यतिक्रम करना, भय, शोक, अधिक जलक्रीड़ा, मल मूत्रका वेग रोकना और क्रिमिदोष; इन्हीं सब कारणोंसे अतिसार रोग उत्पन्न होता है। यह रोग ६ भागमें विभक्त है;

जैसे—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और अपक्व रस-जात ; द्विदोषज अतिसारमें दो दोष मिलित लक्षणके सिवाय और कोई लक्षण मालूम होनेसे वह स्वतन्त्र रूप निर्दिष्ट नहीं होता।

प्रकाश पूर्व्व लक्षण।—सब प्रकारके अतिसारमें विशेष लक्षण प्रकाश होनेसे पहिले हृदय, नाभि, गुदा, उदर और कोंख में सूई गड़ानेकी तरह दर्द, शरीर अवसन्न, वायु और मलका रोध, पेटका फूलना और अपरिपाक आदि लक्षण पहिले मालूम होते है।

वातज लक्षण।—वातज अतिसारमें लाल या काला फेनयुक्त, रुखा और कच्चा मल थोड़ा २ कई बार बार निकालता है। और गुदामें दर्द मालूम होतो है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज अतिसारमे मलपीला या हरा अथवा लाल रंगका होता है, तथा इससे तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और गुदामें जलन और धाव होता हैं।

कफज लक्षण।—कफज अतिसारमें सादा, गाढ़ा, कफ मिला, आमगन्धयुक्त शीतल मल निकालता है। इस अति सारमें रोगीका शरीर प्रायः रोमाञ्चित होता रहता है।

सन्निपातज लक्षण।—त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अतिसारमें उक्त वातजादि त्रिविध अतिसारके लक्षण प्रकाशित होते है ; विशेष कर इसमें मल शूकरके चर्वी अथवा मांसधौत पानीकी तरह होता है। यही त्रिदोषज अतिसार अत्यन्त कष्ट साध्य है।

शोकज लक्षण।—कोई दुर्घटनाके कारण अत्यन्त शोक हो अल्पाहारी होनेसे शोकज शाप्य और ऊष्मा कोठमें प्रवेश

कर जब जठराग्निको मन्दकर रक्तको स्वस्थानसे हटा देता है ; तब शोकज अतिसार उत्पन्न होता है। इसमें घुंघुचीको तरह लाल रक्त मिश्रित मल अथवा खाली रक्त गुदामें निकलता है। मल मिश्रित होनेसे रक्त अतिशय दुर्गन्ध युक्त, और मल शून्य होनेसे निर्गन्ध होता है। शोक त्याग न कर देनेसे यह अतिसारभी दुसाध्य और कष्टप्रद होते देखा गयाहै।

आमातिसार लक्षण।—भुक्त द्रव्य न पचनेसे वातादि दोषत्रय विपथगामी हो, मल और रक्तादि धातु समूहोंको दुषित कर नाना प्रकारके वर्णका मल बार बार निकलता रहता है। इसीको आमातिसार अर्थात् अपक्क रसजात अतिसार कहते है ; इसमें पेट बहुत दर्द करता है।

अतिसारके मलकी परीक्षा।—सब प्रकारके अतिसारमें जबतक मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और चिकना हो तथा पानीमें फेंकनेसे डूब जाय ; तब तक उसको आम अर्थात् अपक्क अतिसार कहते है। और जब मल दुर्गन्धशून्य रुखा और पानीमें नहो डूबे तो उसको पक्कातिसार कहते है। इस अवस्थामें देह और शरीर हलका मालूम होता है।

असाध्य और सांघातिक लक्षण।—जिस अतिसारमें रोगीका मल स्निग्ध, काला अथवा यकृत् खण्डकी तरह काला लाल रंग, साफ और घृत, तैल, चर्व्वी, मज्जा, विना हड्डीका मांस, दूध, दही अथवा मांस धौत पानीकी तरह, चास नामक पक्षीके पंखको तरह नीलारुण वर्ण, अथवा ईषत् कृष्ण लालवर्ण, चिकना नानावर्णयुक्त, किम्बा मयूरपुच्छकी तरह विविध वर्णयुक्त, तथा, शवगन्धकी तरह दुर्गन्धयुक्त, मस्तिष्ककी तरह गन्ध अथवा सडी बदबू, अथवा परिमाणमें अधिक हो तो उस रोगीको

मृत्यु होती है। जिस अतिसार रोगमें तृष्णा, दाह, अन्धकार देखना, श्वास हिक्का, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, मूर्च्छा, चित्तकी अस्थिरता, गुह्यदेशके वलिमें घाव और प्रलाप आदि प्रकाशित होनेसे वहभी लक्षण असाध्यही जानना। अथवा जिस अतिसार रोगमें गुह्यद्वार संवृत (बंद) नही होता, रोगीका बल और मांस क्षीण हो जाय, और जिसके गुदामें घाव और शरीर शीतल रहताही, वह अतिसार रोगभी असाध्य जानना। यही सब लक्षण प्रकाशित होनेसे बालक, वृद्ध, युवा, किसीकेभी जीनेकी आशा नही रहती।

रक्तातिसार।—उक्त अतिसारोंके सिवाय "रक्तातिसार" नामक एक प्रकारका और अतिसार है। पित्तज अतिसार उत्पन्न होनेसे अथवा उत्पन्न होनेके थोडे दिन पहिले यदि अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेमें आवे तो रक्तातिसार उत्पन्न होता है। इसमें मलके साथ मिला हुआ रक्त अथवा केवल रक्तही निकलता है। अन्यान्य अतिसारके प्राचीन अवस्थामेंभी कभी कभी मलके साथ थोड़ा रक्त दिखाई देता है।

आरोग्य लक्षण।—अतिसार अच्छी तरह आराम होनेसे मूत्र त्याग और अधो वायु निकालनेके वक्त मल नही निकलना, अग्निकी दीप्ति और पेट हलका मालूम होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

अतिसारमें धारक औषध देनेका नियम।—किसी अतिसारके अपक्वावस्थामें धारक औषध प्रयोग करना उचित नही है। कारण अपक्वावस्थामें धारक औषध देनेसे सब दोष बन्द हो शोथ, पांडु, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, ज्वर, दण्डक; अलसक, आध्मान, ग्रहणी, और अर्श आदि विविध रोग उत्पन्न होते है। इसीलिये आमातिसारकी चिकित्सा स्वतन्त्र निर्दिष्ट है। परन्तु

जहां दोष अत्यन्त प्रबल हो बार बार दस्त हो, और उससे रोगीका धातु और बलादि क्रमश: क्षीण होने लगे, तब अपक्वावस्थामेंभो धारक औषध देना उचित है। छोटे बच्चे, वृद्ध या दुर्ब्बल मनुष्यकोभो अपक्वातिसारमें धारक औषध देना चाहिये।

चिकित्सा।—आमातिसारमें अर्थात् अतिसारके अपक्व अवस्थामें आमशूल और मलको रोकना तथा दोष पाचन और अग्निदीप्तिके लिये धनिया, सोंठ, मोथा, बाला और बेलको गूदी यह धान्य पंचकका काढ़ा पिलाना; पर पित्तज अतिसारमें यह पांच द्रव्यमें सोंठ बाद कर बाकी चार द्रव्यका काढ़ा देना, पेटमें दर्द और प्यास रहनेसे सोंठ, अतोस और मोथा यह तोन द्रव्य अथवा धनिया और सोंठ यह दो द्रव्यका काढ़ा देना; इससे कच्चे दोषका परिपाक और अग्निको दीप्ति होतो है। जिस अवस्थामें छोटो छोटो गांठकी तरह दस्त हो और पेटमें दर्द हो तो बड़ो हर्रे और पोपल पानोमें पोसकर थोड़ा गरम कर पिलाना, यह दस्तावर औषध है। आकनादि, हींग, अजमोदा, बच, पोपल, पोपलामूल, चाभ, चितामूल, सोंठ, और सेंधा नमक प्रत्येकका समान चूर्ण एकमे मिलाकर एक आना भर मात्रा गरम पानोके साथ पिलानेसे अथवा उसो मात्रासे शुंठयादि चूर्ण और हरोतकी चूर्ण देनेसेभो आमातिसार आराम होता है। २० मोथा वजनमें जितना हो उसका अठगुना बकरोका दूध और बकरोके दूधका चौगुना पानी, एकमें औटाना दूध रहने पर छानकर वहो दूध पोनेसे आमदोष और पेटको दर्द आदि दूर होतो है। पिप्पल्यादि, वत्सकादि, पथ्यादि, यमान्यादि, कलिङ्गादि और वृषणादिका काढ़ाभो इस अवस्थामें देना चाहिये।

पक्वातिसारकी चिकित्सा।—अतिसारका आमदोष

निवृत्त होनेपर पहिले उपर कहे हुए पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित हुये है वानहो इस विषयमें लक्ष्य रखना चाहिये। पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित होतेही वातादि दोषानुसार भेदका अनुमान कर चिकित्सा करना।

विभिन्न दोषज अतिसार चिकित्सा।—वातज अतिसारमें पूतिकादि, पथ्यादि और वचादि काढ़ा देना। पित्तज अतिसारमें मधुकादि, विल्वादि, कटफलादि, कंचटादि, किरात तिक्तादि, और अतिविषादि काढा देना। कफज अतिसारमें पथ्यादि, कृमिशत्र्वादि और चव्यादि काढ़ा तथा पाठादि चूर्ण, हिङ्गादि चूर्ण वव्वूलादि योग और पथ्यादि चूर्ण सेवन करना। त्रिदोषज अतिसारमें समङ्गादि और पंचमूलीवलादि काढ़ा देना। शोकज और भयजनित अतिसारमें वातज अतिसारको तरह चिकित्सा करना, इसके सिवाय पृश्निपर्णादि काढाभी शोकज अतिसारमें प्रयोग करना उचित है। पित्त कफातिसारमे मुस्तादि, समङ्गादि और कुटजादि, वात कफातिसारमे चित्रकादि काढ़ा और वातपित्तातिसारमें कलिङ्गादि कल्क प्रयोग करना चाहिये।

रक्तातिसारकी चिकित्सा।—रक्तातिसारमें आमशूल और मलभेद होनेसे भूना कच्चा वेल गुडके साथ मिलाकर दो तोले मात्रा खानेको देना। शल्लकी मूलकी छाल, वेरकी छाल, जामुनकी छाल, पियालकी छाल, आमकी छाल अथवा अर्जुनको छाल पीसकर दूध और सहतके साथ सेवन करना। नमक अनारके फलकी छाल, कुरैयाकी छाल प्रत्येक १ तोला, ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहने पर छानकर दो आने भर सहत मिलाकर पिलाना। आम, जामुन और आवलेका नरम पत्ता कूटकर उसका रस दो तोले, सहत और बकरीके दूधके साथ पिलाना। ज्येष्ठा

का मूल २ मासे, चावलके धोवनके साथ पीसना फिर उसमें चीनी और महत मिलाकर पिलाना। कालो तिल पीसकर उसके चार भागका एक भाग चीनी मिलाकर बकरीके दूधके साथ देना। बडकी सोर चावलके धोवनमें पीसकर माठेके साथ मिलाकर पिलाना।

कुकुरसोंका के ३।४ पत्तेका काढा पिलाना। कुरैयाकी छालके काढेको फिर औटाकर गाढा होनेपर अतीसका चूर्ण २ आने भर मिलाकर पिलानेसे प्रवल रक्तातिसार और अन्यान्य अतिसारभी आराम होता है। कुरैयाकी छाल ८ तोले, ६४ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर छान लेना; ऐसही अनारके फलके छिकलेका काढा तयार करना। फिर दोनी काढ़ा एकमें मिलाकर औटाना। गाढा होनेपर १ तोला मात्रा दहीके माठेके साथ प्रयोग करना। गुदामें दर्द हो तो अफीम ४ रत्ती, खेर ४ रत्ती और मैदा ८ रत्ती एकमें मिलाकर घीसे वत्ती बनाना फिर वही वत्ती एक एक कर दो घण्टेके अन्दर अङ्गुलीसे गुदामें प्रवेश करना। घोंघा घीमें भूनकर सेंकनेसेभी दर्द आराम होता है।

जीर्णावस्थाकी चिकित्सा।—सब अतिसारके जीर्ण अवस्थामें अर्थात् जब आमदोष परिपाक होकर दर्द आराम तथा जठराग्निकी दीप्ति होती है, तथा नानाप्रकारका मल निकलता रहता है; उस वक्त वत्सादि काढ़ा, कुटज पुटपाक, कुटज लेह, कुटजाष्टक, और षडङ्गघृत आदि प्रयोग करना। इस अवस्थामें कुरैयाकी छाल, मोथा, सोंठ, वेलकी गूदो, गोंद, सोहागेका लावा, खेर और मोचरस प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, अफीम आधा तोला एकमें मिलाकर एक आना भर मात्रा, कुकुरसोंकेका काढ़ा

या ठंढे पानीके साथ दिनको ३ बार सेवन करानेमें विशेष उपकार होता है।

प्रबल अतिसारमें मलभेदचिकित्सा।—प्रबल अतिसारमें मलभेद बन्द करनेके लिये आंवला पानीमें पीसकर नाभिके चारों तरफ गोल मेंडो बनाना और बीचमें शुद्ध अदरखका रस भर देना; इसमें प्रबल अतिसारका वेग और दर्द शान्त होता है। जायफल पीसकर उसका लेप अथवा आमकी छाल काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे भी वैसही उपकार होता है। माजूफल चूर्ण ५ रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती और गोन्दका चूर्ण पांच रत्ती एकमें मिलाना, फिर प्रत्येक दस्तके बाद ठंढे पानीसे सेवन करना। दस्त बन्द होनेपर दिनको केवल एकबार सेवन कराना। अतिसारके साथ वमनका उपद्रव हो तो बिल्वादि और पटोलादि काढ़ा देना। वमन, तृष्णा और ज्वर आदि कई उपद्रवमें प्रियङ्ग्वादि, जम्ब्वादि, ह्रीवेरादि और दशमूल शुण्ठो आदि व्यवस्था करना। गुदामें दाह या घाव होनेसे पटोलपत्र और जेठोमध औटाये पानीमें अथवा बकरीके गरम दूधसे गुदा सेंकना तथा पटोल पत्र और जेठोमध बकरीके दूधमें पीसकर गुदामें लेप करना।

शास्त्रीय औषध।—उपर कहे सब अतिसारका दोष, रोगीका बल और अनुपान बचार कर नारायण चूर्ण, अतिसार वारण रस, जातीफलादि बटिका, प्राणेश्वर रस, अमृतार्णव, भुवनेश्वर रस, जातीफल रस, अभय नृसिंह, आनन्दभैरव, कर्पूर रस, कुटजारिष्ट और अहिफेनासव आदि औषध प्रयोग करना। इसके सिवाय ग्रहणी रोगोक्त कई औषध भी विचार कर दे सकते है

पथ्यापथ्य।—अपक्व अतिसारमें उपवासही प्रशस्त है। अतिसार रोगी दुर्ब्बल हो तो उपवास न देकर हलका पथ्य देना आवश्यक है। धानकी लावाका सत्तू पानीसे पतलाकर, अथवा पानीको सागूदाना, एरारुट, बार्लि, सिङ्घाड़ेके आटेकी लपसी, किम्वा भातका मण्ड, और यवका मण्ड देना, यह सब बहुत हलका पथ्य है। उक्त पथ्यकी अपेक्षा औषधके साथ यवागू सिद्धकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। सरिवन, पिठवन, वनभण्टा, कटेली, बरियारा, गोखरू, बेलको गूदो, आकनादि, सौंठ और धनिया, यह सब द्रव्यके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर सब अतिसार रोगमें पथ्य दिया जा सकता है। इसके सिवाय पित्तश्लेष्मातिसारमें सरिवन, बरियारा, बेलको गूदो, और पिठवनका काढ़ा; वातश्लेष्मातिसारमें धनिया, सौंठ, मोथा, बाला, और बेलको गुद्दीका काढ़ा अथवा केवल धनिया और सौंठका काढ़ा; वातपित्तातिसार में, बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला, गनियारीके जड़का काढ़ा; और कफातिसारमें पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और सौंठके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर पथ्य देना। गरम पानी ठण्ढा कर वही पानी पीनेको देना। प्यास अधिक होने पर बार बार पानी मांगे तो धनिया और बाला दोनोको पानीमें औटाकर वही पानी पीनेको देना, इससे प्यास, दाह और अतिसार शान्त होता है। पक्वातिसारमें पुराने महीन चावलका भात, मसूरकी दाल, परवर, बैंगन, गुलर, केला आदिकी तरकारी, कोई, मागूर, सिङ्गी, आदि छोटी मछलीका रसा। चूनेके पानीके साथ मिलाकर अथवा अतिसार नाशक औषधके साथ औटाकर दूध आदि पथ्य देना चाहिये। अति जीर्ण अतिसारमें केवल दूधही उपकारी है। रक्तातिसारमें गौ दूधके बदले बकरीका दूध विशेष उपकारी है।

भूंजा कच्चा वेलगिरी वेलका, मुरब्बा, अनार, कसेरू और सिङ्घाडा आदि पुराने अतिसारमें खानेको देना चाहिये।

निषिद्ध।—ज्वरातिसारके पथ्यापथ्यमें जो सब आहार बिहार मना किया गया है अतिसार रोगमें भी वही सब मना है। पर रोगी बलवान हो तो २।३ दिन अन्तर पर गरम पानी ठण्ढा कर स्नान करा सकते है।

प्रवाहिका आमाशय रोग।

निदान।—दूषित, शीतल, आर्द्र, वायु सेवन, आर्द्र स्थान मे वास, अपरिष्कृत जलपान, गुरुपाक, उष्णवीर्य्य और वायु जनक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, अतिरिक्त परिश्रम और अधिक मद्य-पान आदि कारणोंसे प्रवाहिका रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें कुपित वायुसे बारबार मलके साथ थोड़ा थोडा कफ निकलता है। पहिले इसमें कफलिपटा अत्यन्त दुर्गन्ध और चिपकता हुआ मल निकलता है. फिर उसके साथ रक्तभी जारी होता है। तथा ज्वर, क्षुधामन्द्य, पिपासाधिक्य पेटका ऐठना, जीभ मैल से लिपटी, जीमतलाना, मूत्र थोड़ा और लाल, पिशाब करती दफा दर्द, मुख-मण्डल मलीन और उदास, जीभ सूखी, लाल, पिङ्गल और काली, नाड़ीकी गति कभी तेज कभी क्षीण आदि लक्षणभी प्रकाशित होते है। इसके वक्त प्रवाहन अर्थात् कांखना पड़ता है इससे इसका नाम प्रवाहिका है। चलित भाषामें इसको "आमाशय" और रक्त मिला रहनेसे "आमरक्त" कहते है।

दोषभेद लक्षण।—विरुद्ध आहार विहारादिके पाथ्यानुसार तीन दोष और रक्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता है। स्नेह पदार्थ सेवन करनेसे कफज, रुक्ष द्रव्य भोजन करनेसे वातज और उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य सेवनसे पित्तज तथा रक्तज प्रवाहिका उत्पन्न होती है। वायुजनित प्रवाहिकामें पेटमें अत्यन्त दर्द, पित्तजनितमें शरीर और गुदामें जलन, कफ जनितमें अधिक कफ मिश्रित मल आना और रक्तजनितमें रक्त मिला मल निकलता है। पीड़ाके प्रबल अवस्थामें अतिसार के लक्षण समूहभी प्रकाश होते हैं। इसको अपक्व और पक्वावस्था अतिसारोक्त लक्षणके अनुसार स्थिर करना।

चिकित्सा।—साधारणतः इस रोगको चिकित्साविधि प्रायः अतिसार रोगकी तरह जानना। विचार कर वही सब काढ़ा और औषध इस रोगमें भी देना, तथा औरभी कई विशेष औषध इसमें दे सकते हैं। एक बरससे कम दिनके रोगीको इसलीके पौधेकी जड़ दो आनेसे चार आनेभर मात्रा दहीके माठेमें पीसकर दिनको ३।४ बार पिलाना। इमलीके पौधेका नरम पत्ता २ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। अनारका कच्चा फल या पत्तेका रस और कुरैयाके छालका रस या काढ़ा इस रोगमें विशेष उपकारी है। किन्तु रोगके प्रथम अवस्थामें कुरैयाको छाल देना उचित नहीं है। पोपनका चूर्ण आधा तोला अथवा गोलमरिचका चूर्ण चार आने भर आधा पाव दूधके साथ पीनेसे पुराना प्रवाहिका रोगभी आराम होता है। बहुत छोटा कच्चा बेल भूनेको गूदो और सफेद तिल सम भाग दहीके साथ सेवन कराना, कच्चा बेल भूनेको गूदो २ तोले, उखका गुड़ एक तोला, पीपल और सोंठका चूर्ण चार आनेभर थोड़े तिलके तेलके

साथ मिलाकर सेवन कराना। अकवनके जड़की छालका चूर्ण ५।६ रत्ती मात्रा सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, मोथा, वाला, मोचरस, वेलकी गूदी, अतीस और अनारकी छाल, प्रत्येक चार आनेभर ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। आमाशयके प्रथम अवस्थामें रेंडीका तेल आधा छटांक, अहिफेनासव १० बूंद १ छटांक पानीमें मिलाकर रोज एकदफे पिलाना तथा थोड़े दिन तक सोंठका चूर्ण २ रत्ती, कुरैयाका चूर्ण ८ रत्ती, गोंदका चूर्ण ४ रत्ती और अफीम आधी रत्ती एकमें मिलाकर दिनभरमें ३ बार सेवन करानेसे आमाशय रोग आराम होता है। सफेद रालचूर्ण और चीनी सम भाग दो आनेभर मात्रा खिलानेसे आमाशय रोग बहुत जल्दी आराम होता है। पेटका दर्द आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल पेटपर मालिश करना, अथवा सेउड़ा पत्ता दो तोले, नरम काठकरिया केलेका दो टुकड़ा, अरवा चावल २ तोले और पानी एक पाव एकत्र एक पत्थरके बरतनमें गलकर छान लेना फिर उस पानीका चौथा भाग एक पीतलके बरतनमें औटाना आधा पानी जल जानेपर सेवन कराना। ऐसही ३ घण्टे अन्तर दिनभरमें ४ बार सेवन करानेसे पेटका दर्द आराम होता है। रोग और रोगीकी अवस्था विचार कर अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें प्रयोग कर सकते है

पथ्यापथ्य।—पथ्यापथ्य अतिसार रोगकी तरह पालन करना। पुराने रक्तामाशयमें ज्वरादिका संश्रव न रहनेसे भैंसकी दही या उसका मट्ठा दे सकते है, इससे विशेष उपकार होता है।

ग्रहणी रोग ।

निदान ।—अतिसार रोग आराम होनेपर अग्नि, बल अच्छी तरह वृद्धि होनेके पहिलेही किसी तरहका कुपथ्य पदार्थ खा लेनेसे जठराग्नि अत्यन्त दुर्ब्बल हो ग्रहणी नामक नाडीको दूषित करता है। फिर अग्निमान्द्य आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो वही दूषित ग्रहणी नाड़ीको अधिक दूषित करता है। इस अवस्थामें कभी अपक्व युक्त द्रव्य मलद्वारसे बार बार निकलता है, कभी पचकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मल बार बार निकलता है, तथा कभी मल बन्द होजाता है। सब अवस्थामें पेटमें दर्द मालूम होती है। इसी रोगको ग्रहणी रोग कहते है। ग्रहणीकी नाडी अर्थात् पक्वाशय दूषित होकर यह रोग उत्पन्न होता है, इसीसे ग्रहणी रोग कहते है। अतिसार रोग रहते अथवा अतिसार रोग रहनेपरभी एकदम ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

पूर्व्वरूप ।—ग्रहणी रोग प्रकाश होनेसे पहिले प्यास, आलस्य, शरीरका भारीपन, और अग्निमान्द्यसे खाया हुआ पदार्थका खट्टा होना अथवा देरसे पचना आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है।

वातज ग्रहणी ।—अतिशय कटु, तिक्त, कषाय और रूक्ष द्रव्य भोजन, संयोगादि विरुद्ध द्रव्य भोजन, अथवा अल्प भोजन, उपवास, अधिक पैदल चलना, मलमूत्रका वेग रोकना और अतिरिक्त मैथुन आदि कारणोंसे वायु कुपित हो पाचकाग्नि दूषित

होकर वातज ग्रहणी उत्पन्न होती है। यही वातज ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ देरसे पचनेके सबब खट्टा हो जाता है, शरीर रुखा, कण्ठ सूखा, भूख, प्यास, आंखकी ज्योति कम कानमें भी भों शब्द बोध; पार्श्व, ऊरु, दोनो पट्टा, गरदन आदिमें दर्द, विसूचिका अर्थात् के दस्त दोनो एक साथ होना, अथवा कभी पतला, कभी सूखा थोड़ा फेनीला कच्चा मल बार बार तेज और कष्टसे होना, छातीमें दर्द, शरीर क्रश और दुर्ब्बल, मुख विस्वाद, गुदामें काटनेकी तरह दर्द मधुर (मीठा) आदि रसयुक्त भोजनको इच्छा, मन अवसन्न और कास, श्वास आदि लक्षण प्रकाशित होते है। इस रोगमें खाया हुआ पदार्थ पचनेके वक्त अथवा पच जाने-पर पेट फूलता है, पर आहार करनेके बाद शान्ति मालूम होती है। तथा इस रोगमें सर्व्वदा वातगुल्म, हृद्रोग अथवा प्लीहा रोग हुआ है ऐसी आशङ्का रोगीको बनी रहती है।

पित्तज ग्रहणी।—अम्ल, लवण, कटु रसयुक्त, अथवा विदाही अर्थात् जो द्रव्य पचने पर खट्टा होता है वही सब द्रव्य और तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्यके भोजनमें पित्त बिगड़कर जठराग्नि बन्द होनेसे पित्तजग्रहणी उत्पन्न होती है। इसमें बदबू लिये खट्टी डकार आना, गला और छातीमें दर्द, अरुचि, प्यास, नीले या पीले रगका दस्त आना, तथा रोगीका शरीर पीला होजाता है।

श्लेष्मज ग्रहणी।—अतिशय गुरुपाक, स्निग्ध, शीतल, लसोदार और मधुरादि रसयुक्त द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, तथा दिनको भोजनके बादही सोना आदि कारणोंसे कफ प्रकुपित हो जठराग्निको खराब करता है, इससे श्लेष्मज ग्रहणीउत्पन्न होती है। इस ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ कष्टसे पचता है, मुख कफमें

लिपटा और बेस्वाद मालूम होता है, किसी प्रकारके गाढे द्रव्यसे हृदय पूर्ण मालूम होताहै, दुर्ब्बलता आलस्य, जो मतलाना, वमन, अरुचि, कास, पोनस, पेट स्तब्ध और भारी मालूम होना, डाकार में मोठा स्वाद, अप्रसन्नता, मैथुनमें अनिच्छा, आम और कफयुक्त मलभेद आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

सन्निपातज ग्रहणो।—तीन दोष मिले हुए प्रकोप कारक द्रव्य सेवन करनेसे दो या तीन दोष प्रकुपित हो दो दोषज या सन्निपातज ग्रहणो रोग उत्पन्न होता है। इसमें उक्त सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है।

संग्रह ग्रहणी।—ग्रहणो रोगके सिवाय सग्रह ग्रहणी नामक एक प्रकार और ग्रहणी रोग है, इसमें किसिको रोज, किसी को १० या १५ दिन अथवा १ मास अन्तर पर पतला या गाढा, शीतल, चिकना और अधिक मल जोरसे निकलता है। दस्तके समय आवाज, कमर और पेटमें दर्द, पेट बोलना, आलस्य, दुर्ब्बलता, अग प्रभृतिमें अवसन्नता आदि लक्षण प्रकाशित होते है। दिनको यह दोष बढता है और रातको कम होजाता है। आम और वायु इस रोगका आरम्भक है। यह लक्षण अतिशय दुर्ब्बोध और दुःसाध्य है।

अतिसार रोगके अपक्व और पक्व लक्षणको तरह ग्रहणो रोगमें भी अपक्व और पक्व लक्षणका विचार करना चाहिये। वृद्धको ग्रहणी रोग होनेसे उसको मृत्यु निश्चय जानना।

चिकित्सा।—अतिसार रोगको तरह ग्रहणो रोगमेभो अपक्वावस्थामें मल रोधक न देकर पाचक औषध देना उचित है। शोठ, मोथा, इलायचो और गुरिच, इन चार द्रव्योंका काढा अथवा धनिया, अतोस, वाला, अजवाईन, मोथा, शोंठ बरियारा, सरिवन,

पिठवन और बेलकी गूदी, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलानेसे आमदोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होती है। चित्रकगुडिका नामक औषध इस अपक्कावस्थामें दी जाती है।

दोषभेदसे व्यवस्था।—अतिसारोक्त पक्क लक्षणोंके अनुसार इसकाभी पक्क लक्षण विचार कर वातादि दोषोंका बलाबल विवेचना पूर्वक रोगनाशक औषध स्थिर करना चाहिये। साधारणतः वातज ग्रहणी रोगमें शालपर्ण्यादि कषाय; पित्तज ग्रहणी में तिक्तादि कषाय, श्रीफलादिकल्क, नागरादि चूर्ण, रसाञ्जनादि चूर्ण; श्लेष्मज ग्रहणीमें चातुर्भद्र कषाय, शट्यादि चूर्ण, रास्नादि चूर्ण और पिप्पली मूलादि चूर्ण; वातपित्तज ग्रहणीमें शुण्ठ्यादि गुडिका; वातश्लेष्मज ग्रहणीमें कर्पूरादि चूर्ण और तालीशादि वटी, कुटजावलेह, चितपापड़ाका रस और मट्ठा चटाना, फिर हींग, जीरा, सोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण समभाग दो आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ पिलाना। पित्तश्लेष्मज ग्रहणी रोगमें भूपलादि योग व्यवस्था करना उचित है। इसके सिवाय एक दोषज द्विदोषज, त्रिदोषज या संग्रह ग्रहणी रोगमें रोगी और रोगकी अवस्था, दोष और बलाबल विचार कर श्रीफलादि कल्क, पञ्चपल्लव नागराद्य चूर्ण, भूनिम्बाद्य चूर्ण, पाठाद्य चूर्ण, स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण, बृहत् गङ्गाधर चूर्ण, स्वल्प और बृहत् लवङ्गादि चूर्ण, नायिका चूर्ण जातीफलादि चूर्ण, जीरकादि चूर्ण, कपित्थाष्टक चूर्ण, दाडिम्बाष्टक चूर्ण, अजाज्यादि चूर्ण, कञ्चटावलेह, दशमूल गुड़, मुस्तकाद्य मोदक, कामेश्वर मोदक, मदन मोदक, जीरकादि और बृहत् जीरकादि मोदक, मेथी और बृहन्मेथी मोदक, अग्निकुमार मोदक ग्रहणीकपाट रस, संग्रह ग्रहणी कपाट रस, ग्रहणीशार्दूल वटिका, ग्रहणी गजेन्द्र वटिका, अग्निकुमार रस, जातीफलाद्य वटी, महा

गन्धक, महाभ्र वटिका, पीयूषवल्ली रस, श्रीनृपतिवल्लभ, वृहत् नृपति वल्लभ ; ग्रहणीवज्र कपाट, राजवल्लभ रस आदि औषध प्रयोग करना।

पुराने ग्रहणीकी चिकित्सा।—पुराने ग्रहणी रोगमें चाङ्गेरी घृत, मरिचाद्य घृत, महाषटपलक घृत, सेवन और बिल्व तैल, ग्रहणी मिहिर तैल, वृहत् ग्रहणी मिहिर तैल और दाडिमाद्य तैल मालिश करना।

पुराने ग्रहणी रोगमें शोथादि उपद्रव उपस्थित होनेसे सुवर्णपर्पटी, लौह पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, रस पर्पटी आदि औषध प्रयोग करना चाहिये। संग्रह ग्रहणी और किसी ग्रहणी रोगमें मल बन्द रहनेसे अजवाईन और काला नमक समभाग चार आने भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करना। गौ का घी सेंधा नमकके साथ मिलाकर सेवन करानेसे भी बद्ध मल पतला हो निकलता है।

पथ्यापथ्य।—ग्रहणी रोगके अपक्व या पक्व अवस्थामें अतिसार रोगकी तरह पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना। कईथकी गूदी, बेलकी गूदी और अनारके फलकी छाल प्रत्येक २ तोले और उपयुक्त परिमाण दहीके माठेमें यवागू बनाकर पिलाना। वातज ग्रहणीमें स्वल्प पञ्चमूलीके काढ़ेके साथ यवागू मिलाकर पिलाना। सब प्रकारके ग्रहणी रोगमें तक्र अर्थात् दहीका मट्ठा विशेष उपकारी है।

अर्शोरोग (ववासीर)।

वलिके समाविशका स्थान।—गुह्यद्वारके भीतरकी तरफ ४॥ अङ्गुल परिमिति स्थानमें शङ्खावर्त्तकी तरह जो तीन आवर्त्त है, उसको बलि कहते है। भीतरकी तरफ १॥ डेड अङ्गुल परिमित पहिले बलिका नाम प्रवाहणी, उसके नीचे १॥ डेड अङ्गुल परिमित तीसरे बलिका नाम सम्वरणी है। बाकी आधी अङ्गुल परिमित गुह्यद्वार के अशको गुदोष्ठ कहते है। वायु पित्त और कफ यह दोषत्रय, त्वक्, मास और मेद धातुको दुषित कर पूर्व्वोक्त वलित्रयमें नाना प्रकार आकृति विशिष्ट मासाकुर उत्पन्न होते है, इसी मासाकुरको अर्श कहते है, मलद्वारके बाहर जो सब मासाकुर उत्पन्न होते है उसको वाह्यार्श और भीतरके मासाकुरको अभ्यन्तरार्श कहते है। गुह्यद्वारके सिवाय लिङ्ग, नाभि, नासिका और कर्ण आदि स्थानोमे भी अर्शोरोग उत्पन्न होता है।

साधारण लक्षण।—इस रोगका साधारण लक्षण कोष्ठकाठिन्य, अजीर्ण, कठिन मल निकलते वक्त दर्द और रक्त स्राव। रक्त २।४ बून्दसे आध सेर तक स्राव होते देखा गया है। पीडाके प्रवल अवस्थामें पिशाबके साथ या उत्कट भावसे बैठने परभी रक्त निकलता है।

प्रकार भेद।—साधारणतः अर्शोरोग ६ प्रकार—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज, रक्तज और सहज। दो दोषके

मिलित लक्षण और मिलित चिकित्साके सिवाय द्विदोषज अर्श रोगका स्वतन्त्र कोई लक्षणादि न रहनेसे पृथक् भावसे गिना नहीं जाता।

वातज अर्श: ।—वातज अर्श:—कषाय, कटु, तिक्त रस और रुक्ष, शीतल और लघु द्रव्य भोजन, अति अल्प भोजन, तीक्ष्ण मद्य पान अतिरिक्त मैथुन, उपवास, शीतल देशमें वास, व्यायाम, शोक, प्रबल वायु और आतप सेवन आदि कारणोंसे वातज अर्श उत्पन्न होता है। हेमन्तादि शीत काल इस अर्शके उत्पन्नका समय है। इस अर्श रोगमें किसी तरहका स्राव नहीं होता पर टप् टप् दर्द होता है। मांसांकुर समूहोंमें किसीकी आकृति खजूरकी तरह, किसीकी बेरकी तरह, किसीकी वनकपासके फूलकी तरह, कोई कदम्ब फूलकी तरह, कोई सफेद सरसोंकी तरह होता है। सब प्रकारके मांसांकुर म्लान, धूम्रवर्ण, कठिन, धूलेकी तरह रूखा स्पर्श और गो जीभकी तरह कर्कश स्पर्श, कटहरके छोटे फलकी तरह छोटा छोटा कांटा और हरेक कांटा भिन्न भिन्न आकृति और टेढा तथा अग्रभाग सूक्ष्म और फटा होता है। इस रोगमें रोगीका मस्तक, पार्श्व, कन्धा, कमर, ऊरु और पट्टा आदि स्थानोंमें दर्द; छींक, डकार, पेट भारी मालूम होना, छातीमें दर्द, अरुचि, कास, श्वास, अग्निकी विषमता, कानमें सांय सांय आवाजका होना, भ्रम, अत्यन्त यातना, शब्दयुक्त चिकना और फेनयुक्त गठीला, थोड़ा थोडा मल आना; तथा त्वक, नख, मल, मूत्र, आंख, मुखका रङ्ग काला हो जाता है।

पित्तज अर्श: ।—पित्तज अर्श:—कटु, अम्ल, लवण, उष्ण स्पर्श या उष्ण वीर्य, अम्लपाक, और तीक्ष्ण द्रव्य भोजन; मद्य पान, अग्नि और धूपका सन्ताप, व्यायाम, क्रोध, असूया, उष्ण

देश और, उष्ण कालमें पित्तज अर्श रोग उत्पन्न होता है। इस अर्श रोगमें मांसांकुर समूह लाल, पीला या काले रंग पर अग्रभाग नीले रङ्गका होता है, इसकी आकृति शुकके जीभ, यकृत् खण्ड या जोंकके मुखकी तरह होती है पर मध्य भाग स्थूल, लम्बा और अल्प परिमाण, उष्ण स्पर्श और कोमल, आमगन्ध अर्थात् मछलीके बदबूकी तरह, मांसांकुरसे पतला रक्त स्राव, जलन और कभी कभी वह पक उठता है तथा इस रोगमें ज्वर, पसीना आना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, मोह और नीला पीला या लाल रङ्गका कच्चा पतला मल भेद होता है। रोगीका त्वक, नख, मल, नेत्र और मुख हरा, पीला अथवा हलदीके रङ्गका होता है।

श्लेष्मज अर्श।—श्लेष्मज अर्श:—मधुर, स्निग्ध, शीतल, लवण, अम्ल और गुरु द्रव्य भोजन; शारीरिक परिश्रम शून्यता, दिवानिद्रा, सुखकर बिछौनेमें शयन, सुख कर आसन पर बैठना, पूर्व्व वायु या सम्मुख वायु सेवन, शीतल देश, शीत काल और चिन्ता शून्यता आदि कारणोंसे श्लेष्मज अर्श उत्पन्न होता है। इसमें मांसांकुर महामूल अर्थात् बहुत दूर तक गहिरा, घना, अल्प वेदनायुक्त, श्वेतवर्ण, दीर्घाकृति, स्थूल चिकना कड़ा, (दबानेसे दबता नहीं) गुरु अर्थात् भारी, निश्चल पिच्छिल, मसृण, अत्यन्त कण्डू और सुखस्पर्श होता है। इसकी आकृति बंशांकुर, कटहरके बीज और गो स्तनकी तरह होती है। इस अंकुरसे क्लेद रक्तादि स्राव और कठिन मल आनेपरभी मांसांकुर विदीर्ण नहीं होता। इस अर्श रोग में दोनों पट्टा बाधनेकी तरह पीड़ा; गुह्य देश, वस्ति और नाभि खींचनेकी तरह वेदना श्वास, कास, वमन वेग, मुख और गुह्यस्राव, अरुचि, पीनस, मोह, मूत्रकृच्छ्र, शिरका भारीपन, शीतल ज्वर, रतिशक्ति हीनता, अग्निमान्द्य, अतिसार

और ग्रहणी आदि आमवहुत पीड़ाकी उत्पत्ति और प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, कफमिश्रित और चर्बीकी तरह बहुत मलका आना, आदि लक्षण प्रकाशित होते है। रोगीका त्वक, नख, मल, मूत्र और नेत्र आदि चिकना, स्निग्ध और पाण्डुवर्ण होता है।

वातज, पित्तज और श्लेष्मज अर्शोरोग में जो सब निदान लक्षणादि पृथक भावसे निर्दिष्ट है; मिलित भावसे वह सब निदान सेवित होनेसे, द्विदोषज, अर्थात् वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज अर्शो रोग उत्पन्न होनेसे वह सब लक्षण मिले हुए प्रकाश होते है।

त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अर्शोरोगका वही सब मिलित निदानसे उत्पन्न होनेसे तीन दोष मिले हुए लक्षण प्रकाशित होते है।

रक्तज अर्शः।—रक्तज अर्शः—पित्तज अर्शोरोगमें जो सब निदान है, रक्तज अर्शभी वही सब निदानसे उत्पन्न होता है। इसमें मांसांकुर समूह बड़के अङ्कुरकी तरह और घुंघुची या मूंगेकी तरह लालरंगका होता है। मल कठिन आनेसे वह अङ्कुर सब दब जानेपर उसमेंसे खराब और गरम खून निकलता है। इससे खून अधिक जानेपर रोगी मेढ़ककी तरह पीला, रक्तक्षय जनित रोगसे पीड़ित, विवर्ण, क्षम, उत्साह हीन, दुर्व्वल और विकृतेन्द्रिय हो जाता है। इसमे मल काला, कठिन और रूखा आता है तथा अधोवायु नही खुलती। इसके सिवाय पित्तज अर्शरोगके लक्षण समूहभी विद्यमान रहते है।

सहज अर्श।—सहज अर्श—पिता या माताको अर्शो रोग रहनेसे जन्मकालमें पिता माता कर्त्तृक अर्शोरोग कारक निदान सेवित हो पुत्रकोभी अर्शोरोग होता है; इसीको सहज

अर्श कहते हैं। इस रोगमें मासाङ्कुर शरकार, कर्कश, अरुण वर्ण या पाण्डुवर्ण और मुंह भीतरके तरफ होता है। इस रोगसे पीडित रोगी कृश, अल्पाहारी, धीमी आवाज, क्रोधित, शिराव्याप्त देह, अल्पप्रजा तथा आंख, कान, नाक और शिरोरोगसे पीडित रहता है। तथा पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, अन्त्रकूजन, हृदयमें उपलेप और अरुचि आदि उपद्रवभी दिखाई देते है। रोगीके शरीरमें वातादि दोषके आधिक्यानुसार वातजादि अर्शोरोगोक्त लक्षणभी इसमें प्रकाशित होते है।

रक्तज अर्शोरोगके साथ पित्तज अर्शके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको पित्तानुबन्ध रक्तार्श कहते है। वातानुबन्ध रक्तार्श अधिक रूक्षताके कारणसे उत्पन्न होता है और उसमें अरुणवर्ण फेनयुक्त पतला रक्तस्राव, कमर, ऊरु, गुदामें दर्द और शारीरिक दौर्बल्य आदि लक्षण मालूम होते है। श्लेष्मानुबन्ध रक्तार्श गुरु और स्निग्ध से उत्पन्न होता है, तथा इससे स्निग्ध गुरु, शीतल, श्वेत या पीले रंगका पतला मलभेद, गाढा खून या तन्तुविशिष्ट चिकना और पाण्डुवर्ण रक्तस्राव, गुदा चटचटी और गीला कपड़ा आच्छादनकी तरह अनुभव आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

दुसाध्य रोगका कारण।—अर्शोरोग मात्रही प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पांच प्रकार वायु, आलोचक, रञ्जक, साधक, पाचक और भ्राजक यह पांच प्रकारका पित्त, अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, और श्लेष्मक, यह पांच प्रकार कफ तथा प्रवाहनी, विसर्जनी और सम्वरणी गुह्य देशकी त्रिविध वलि, यह सब कुपित होनेसे उत्पन्न होता है। इससे स्वभावत ही यह रोग दु:साध्य, अति कष्टदायक, बहुरोगजनक और सर्व्व देहका पीडाकारक है।

सुखसाध्य अर्श: ।—जो सब अर्श वाह्यवलि अर्थात् सब्व रणी वलि या एक दोष से उत्पन्न होता है और एक वर्षसे कम दिनका पुराना अर्श सुखसाध्य जानना।

कष्टसाध्य अर्श: ।—इसकी सिवाय जो सब अर्श मध्य-वलि अर्थात् विसर्ज्जनोसे उत्पन्न हो दो दोषज और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना है, वह कष्टसाध्य है। तथा जो सब अर्श सहज, अथवा त्रिदोषजात और अभ्यन्तर वलि अर्थात् प्रवाहनी वलिसे उत्पन्न होता है उस अर्शको असाध्य जानना।

सांघातिक अर्श: ।—जिस अर्शमें रोगीका हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषमें शोथ, हृदय और पार्श्वमें शूल हो, अथवा जिस अर्शरोगसे रोगीका हृदय और पार्श्वमें शूल, मूर्च्छा, के, सर्व्वाङ्गमें दर्द, ज्वर, तृष्णा, और गुदामें घाव आदि उपद्रव उपस्थित हो उससे उसकी मृत्यु होती है, केवल तृष्णा, अरुचि, शूल, अत्यन्त रक्तस्राव, शोथ और अतिसार आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोगीको मृत्यु होती है। लिङ्गप्रभृति स्थानोंमें जो सब मांसाङ्कुर उत्पन्न होते है उसका आकार केंचुएके मुखको तरह चिकना और कोमल होता है। गुह्यदेशके अर्शरोगको तरह इसमें भी वातादि दोष भेदसे पृथक पृथक लक्षण लक्षित होते है।

फुन्सी ।—"फुन्सो" नामक जो एक प्रकारका रोग देखने में आता है, वहभी अर्श जातीय है। संस्कृतमें उसको चर्मकील कहते है। व्यान वायु कफको आश्रयकर चमडेके ऊपर यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे उसमें सूई गडानेको तरह दर्द और कर्कश स्पर्श होता है। पित्तका आधिक्य रहनेसे स्निग्ध, गठीला और चमडेके समान वर्णविशिष्ट होता है।

चिकित्सा।—जिसकार्य्यसे वायु अनुलोम हो और अग्निबलकी वृद्धि हो, अर्शो रोग शान्तिके लिये पहिले वही सब उपाय अवलम्बन करना चाहिये। रोज सवेरे सफेद तिल १ तोला, मिश्री १ तोला, मक्खन १ तोला मिलाकर खिलानेसे वायुका अनुलोम हो अर्शोरोग उपशम होता है। केवल सफेद तिल ४।५ तोले खाकर थोडा ठण्टा पानी पिलानेसेभी उपकार होता है। इस रोगमें पतला दस्त होनेसे वातातिसारकी तरह और मलबद्ध होनेमे उदावर्त्तकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। मल बद्ध होनेसे अजवाईनका चूर्ण और काला नमक मट्ठेके साथ पिलाना। एक सीसेकेनलमें घी और सेंधा नमक लगाकर गुदामें रोज देनेसे मल-रोध दूर होता है। चीतामूलकी छाल पीसकर एक घडेके भीतर लेप करना, लेप सूख जानेपर उसी घडेमें दही जमाना तथा उस दहीका माठा पिलानेसे अर्शोरोग शान्त होता है। थोडा पीपल चूर्ण अथवा तेवडीके मूलका चूर्ण और दन्तीमूलके चूर्णके साथ बडी हर्रका चूर्ण मिला कर सेवन करनेसे भी अर्श आराम होता है। काली तिल एक तोला भेलावाकेमूटीका चूर्ण २ रत्ती एकमें मिलाकर सेवन करानेसे अग्नि वृद्धि हो अर्शोरोग आराम होता है। हरीतकी, बिना छिकलेकी काली तिल, आंवला, किसमिस और जेठीमधका चूर्ण समभाग फालसेके छालके रसके साथ सेवन कराना। १ या २ दिन गोमूत्रमें हरीतकी भिङ्गोकर वही हरीतकी खिलानेसे अर्शोरोगमें उपकार होता है। जङ्गली-शूरण अभावमें ग्राम्य शूरणके उपर माटी लपेटकर पुट पाकसे भूञ्जा शूरण तेल और नमक मिलाकर खाना। सेंधा नमक, चीतामूल इन्द्रयव, यवका चावल, डहर करञ्जका बीज और थोडी नीमकी छाल सबका सम भाग चूर्ण एकमें मिलाकर

आनेसे।) आने तक मात्रा रोज ठण्ढे पानीसे सेवन कराना। तोरईका चार६ गूना पानीमें मिलाकर २।१ बार धौराकर छान लेना; फिर उस चार पानीमें बैगन उबालकर घीमें भूंज थोड़े गुड़के साथ भर पेट खाना और उपरसे माठा पीना। इसी प्रकार सात दिन करनेसे बहुत बढ़ा हुआ अर्श और सहज अर्श भी आराम होता है।

अर्शमें रक्तस्राव।—अर्शमें रक्तस्राव होनेसे एक दम बन्द करना उचित नहीं है, कारण खाराब रक्त रुद्ध होनेसे मलद्वारमें दर्द, आनाह और रक्त विकृति आदि रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। पर जब अतिरिक्त स्रावसे रोगीके प्राण नाशकी आशङ्का हो तब तुरन्त बन्द करना चाहिये। बिना छिलकेकी तिल १ तोला आधा तोला चीनी एकमें पीसकर एक छटाक बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होता है तथा पद्मका नरम पत्ता पीसकर चीनीके साथ खाना अथवा सबेरे बकरीका दूध पीना। पद्मकेशर, सहत्, टटका मक्खन, चीनी और नाकेशर एकमें मिलकर खाना। आमरूल शाक, नागकेशर और नीलोत्पल इस तीन द्रव्यके साथ अथवा बरियारा और सरिवन इस दो द्रव्यके साथ धानके लावाका मण्ड बनाकर सेवन कराना। रोज सबेरे मक्खन बिना छिकलेकी तिल प्रत्येक दोदो तोला अथवा मक्खन १ तोला नागकेशर या पद्मकेशरका चूर्ण चार आनेभर और चीनी चार आनेभर एकत्र; किम्बा दहीकी मलाई मिला मट्ठा पीना। पीसी कालो तिल १ तोला, चीनी आधा तोले और बकरीका दूधा १ छटांक एकमें मिलाकर पीना। वराह-क्रान्ता नीलोत्पल, मोचरस, लोध और लालचन्दन सम भाग २ तोले, बकरीका दूध १६ तोलेमें और पानी ६४ तोलेमें औटाना,

दूध बाकी रहने पर छानकर पिलाना, अनारका नरम पत्ता, गेंदाका पत्ता, किम्वा कुकुरसोंकाके पत्तेका रस १ तोला और चीनी, आधा तोला मिलाकर पीना; उपर कही सब दवायें रक्त रोधक है। कुरैयाको छाल अथवा बेलके गुदीका काढ़ा सोंठकाचूर्ण मिलाकर पीना। कुरैयाको छाल आधा तोला पीसकर माठेके साथ अथवा सतावरका रस २ तोले, बकरीके दूधके साथ पीना। यह सब योग रक्तार्श निवारक है तथा रक्त-पित्त रोगोक्त योग और औषध समूहभी विचार कर रक्तार्श रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

शास्त्रीय औषध।—उक्त योगोंके सिवाय छन्मनादि काढ़ा, और मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, विजय चूर्ण, करञ्जादि चूर्ण, भल्लातामृत योग, दशमूल गुड़, नागराद्य मोदक, स्वल्प शूरण मोदक, वृहच्छूरण मोदक, कुटजलेह, प्राणदा गुड़िका, चन्द्रप्रभा गुड़िका, जातिफलादि वटी, पञ्चानन बटी, नित्योदित रस, दन्त्यरिष्ट, अभयारिष्ट, चव्यादि घृत और कुटजाद्य घृत आदि औषध दोषका बलाबल विचार कर सब अर्श रोगमें प्रयोग करनेसे आश्चर्यजनक उपकार होता है।

मांसङ्कुर गिरानेका उपाय।—दृश्यमान मांसङ्कुर अर्थात् जो सब मस्सागुदाके बाहर दिखाई देता है उसमें सेहुंडके दूधके साथ हलदीचूर्ण मिलाकर एक बिन्दु लगाना। तोरईका चूर्ण मस्सेपर घिसना। अकवनका दूध सेहुंडका दूध, तित-लौकीका पत्ता और डहर करञ्जको छाल समभाग बकरीके मूत्रमें पीसकर मस्सेपर लेप करना। अथवा इसकी वत्ती तिल तेलमें भंगोकर गुदामें रखना, इससे मस्सा बेमालूम गिर पड़ता है। पुराना गुड़ थोड़े पानीमें मिलाना, फिर तोरईका चूर्ण

मिलाकर औटाना गाढा होनेपर उसको बत्ती बना वही बत्ती गूदामें रखना। तोरईको जड पीसकर लेप करना। शूरण, हलदी, नामको जड और सोहागेके लावाका चूर्ण पुराने गुडके साथ अथवा कांजीमें पीसकर लेप करना। बीज संयुक्त तितलौकी काजीमें पीसकर गुड मिला प्रलेप देना। सेहुंड या अकवनके दूधमें पोपल, सेधा नमक, कूठ और शिरीष फलका चूर्ण मिला अथवा हलदी और तोरई चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर लेप करना। कपासके सूतमें हलदी का चर्ण मिला सेहुंडका दूध बार लगाकर उसी सूतसे मस्सा बांध रखना। इन सब उपायोंसे मस्सा गिरकर अर्शोरोग आराम होता है। कासीस तैल और वृहत् कासीसतैल मासाङ्कुर निवारणका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य ।—पुराने चावलका भात, मूंग, चना याकुरथको दाल; परवर, गुल्लर, शूरण, छोटो मूली, कच्चा पपीता केलेका फूल, सैजनका डण्डा आदिकी तरकारी, दूध, घी, मक्खन, घृतपक्क पदार्थ, मिश्री, किसमिस, अगर, पक्का पपीता, मट्ठा और छोटी इलायची पथ्य है। नदी या प्रशस्त तालाबमें स्नान और साफ हवामें टहलना आदि उपकारी है।

इसके सिवाय जो सब आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो वही सब आहार विहारादि अर्शोरोगमें करना उचित है। अर्शोरोगमें अधिक रक्तस्राव हो तो रक्तपित्त रोगको तरह पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म ।—भूना, सेंका पदार्थ, गुरुपाक द्रव्य, दही, पिष्टक, उर्द, सेम, लौकी, आदि द्रव्य भोजन; धूप या अग्निका सन्ताप, पूर्व दिशाको वायुका सेवन, मलमूत्रादिको

वेग धारण, मैथुन, घोडा आदि सवारीमें चढना, कडे आसनपर बैठना और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो उसका अनुशीलन अर्श रोगमें अनिष्टकारक है।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

अग्निमान्द्यका निदान।—अधिक जल पान, अपरिमित आहार, सर्वदा गुरुपाक द्रव्य भोजन, अश्रद्धा पूर्वक आहार, मलमूत्रादिका वेग रोकना, दिनको सोना, रातको जागना, दुश्चिन्ता, अच्छी तरह चिबाकर न खाना, परिपाक यन्त्रका दोष, क्रिमि रोग, अधिक शीतल वा आग धूपमें फिरना, अधिक जल क्रीडा और अधिक पान खाना आदि कारणोंसे अग्निमान्द्य रोग, उत्पन्न होता है। उक्त कारण और विषम भोजन अर्थात् कोई दिन थोडा, कोई दिन अधिक, अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, सूखा या सडा द्रव्य भोजन, अनिच्छा या घृणासे भोजन; भोजनके वक्त भय, क्रोध, लोभ, शोक या और कोई कारणसे मानसिक तकलीफ और भोजनके बाद अतिरिक्त मानसिक परिश्रम आदि कारणोंसे भी अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है। साधारणत अजीर्ण रोग चार प्रकार,—आमाजीर्ण, विदग्धा जीर्ण विष्टब्धा जीर्ण और रसशेषाजीर्ण। कफ प्रकोपसे आमाजीर्ण, पित्त प्रकोपसे विदग्धा जीर्ण और खाये हुए पदार्थका पहिला रस रक्तादि रागमें परिणत न होनेसे रसशेषाजीर्ण उत्पन्न होता है।

प्रकारभेदसे लक्षण।—अमाजीर्णमें शरीर भारी, जी मतलाना, गाल और आंखके चारों तरफ शोथ, खाये हुए पदार्थके स्वादका डकार आना आदि लक्षण होते है। विदग्धाजीर्णमें, भ्रम, मूर्च्छा, प्यास खट्टी वा धुंधैली डकार और पित्तजन्य अन्यान्य उपद्रव प्रकाशित होते हैं। विष्टब्धा जीर्णमें पेटका फूलना, दर्द, मल और अधोवायुका अनिर्गम, स्तब्धता, मूर्च्छा, सर्व्वाङ्गमें दर्द तथा वायु जन्य अन्यान्य कष्ट भी दिखाई देते है। रस शेषाजीर्णमें अन्न भोजनको अनिच्छा, हृदय को अशुद्धि और शरीर भारी मालूम होता है।

साधारण लक्षण।—सब प्रकारके अजीर्णमें ग्लानि, शरीर और पेटमें भारीपन, पेटमें दर्द और वायु सञ्चय, कभी मलरोध, कभी अजीर्ण मलभेद और आहारके बाद वमन, यही कई एक साधारण लक्षण दिखाई देता हैं।

उपद्रव।—अजीर्ण रोगसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुखमें स्राव, अवसन्नता और भ्रम; यही सब उपद्रव उत्पन्न होता है।

अग्निमान्द्य चिकित्सा।—सुपथ्य भोजन करना ही अग्निमान्द्य को साधारण चिकित्सा हैं। समभाग बड़ी हर्रे और सोंठका चूर्ण गुड़ या सेंधा नमकके साथ रोज खानेसे अग्निमान्द्य रोग आराम होता है। रोज सवेरे जवाखार और सोंठका चूर्ण समभाग खानेसे अथवा सोंठका चूर्ण घीके साथ चाटकर थोड़ा गरम पानी पीनेसे भूख बढ़ती है। रोज भोजनके पहिले अदरख और नमक खानेसे अग्निमान्द्य दूर हो जीभ और कण्ठ साफ होता है। इसके सिवाय वड़वानल चूर्ण, सैन्धवादि चूर्ण, सैन्धवाद्य चूर्ण, हिङ्गाष्टक चूर्ण, स्वल्पाग्निमुख चूर्ण, वृहदग्नि मुख चूर्ण, भास्कर लवण, अग्निमुख लवण, वड़वानल रस, हुताशन रस

और अग्नितुण्डी वटी आदि औषध सेवन करनेसे अग्निमान्द्य आराम होता है। अजीर्ण रोगोक्त औषध समूह भी अग्निमान्द्य में दे सकते है।

अजीर्णकी साधारण चिकित्सा।—आमाजीर्णमें वमन, विदग्धाजीर्णमें लङ्घन अर्थात् उपवास, विष्टब्धाजीर्णमें स्वेद कार्य्य और रसशेषाजीर्णमें आहारके पहिले दिवा निद्रा; यही सब अजीर्ण रोगकी साधारण चिकित्सा है।

विशेष चिकित्सा।—आमाजीर्णमें वच १ तोला सेंधा नमक १ तोला १ सेर गरमपानीमें मिलाकर कै कराना, पीपल सेंधा नमक, और वच समभाग ठण्ढेपानीमें पीसकर पिलाना। धनिया १ तोला और शोंठ १ तोलाका काढ़ा पिलाना, इससे पेटका दर्द तुरन्त आराम होता है। गुड़के साथ शोंठ, पीपल, बड़ी हर्र अथवा अनार इसमें कोई एक द्रव्यका चूर्ण सेवन करनेसे आमाजीर्ण, मलबद्धता और अर्शरोग शान्त होता है सबेरे अजीर्ण मालूम होनेसे बड़ी हर्र, शोंठ, और सेंधा नमक प्रत्येकका समभाग चूर्ण ठण्ढे पानीके साथ सेवन कर आहार करनेसे किसी तरहके अनिष्टकी आशङ्का नहीं रहती है।

विदग्धाजीर्णमें ठण्ढा पानी पीनेको देना, इससे विदग्ध अन्न जलदी परिपाक होता है और पानीका ठण्ढापन तथा पतलेपनसे पित्त प्रशमित हो नीचे उतरता है। भोजन करतेही यदि अन्न विदग्ध हो हृदय, कोठ और गलेमें जलन मालूम हो तो उपयुक्त मात्रा बड़ीहर्र और किसमिस समभाग एकमें पीसकर चीनो और महतके साथ चाटना। बड़ीहर्र १ तोला, पीपल एक तोला, ३२ तोले काञ्जीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर एक आना भर

सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे धुन्धेली डकार और प्रबल अजीर्ण आराम हो, तुरन्त भूख लगती है।

विष्टब्धाजीर्णमें स्वेदक्रिया और लवण मिला कर पानी पिलाना चाहिये। रस शेषाजीर्णमें उपवास, दिवा निद्रा और प्रबल वायु न्य स्थानमें बैठना आदि साधारण चिकित्सा है। हींग, सोंठ, पीपल, गोलमरिच, और सेंधा नमक, पानीमें पीसकर पेटपर लेप करना तथा भोजनके पहिले लेप लगाकर दिनको सोनेसे सब प्रकारका अजीर्ण रोग आराम होता है। बड़ीहर्रे, पीपल और सोंचल नमक, सबको समभाग चूर्ण दोषानुसार दहीका पानी या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे चार प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरुचि, पेटका फूलना, वायुज गुल्म और शूल रोगभी जल्दी आराम होता है। सोंठ, पीपल, गोलमिरच, दन्तीबीज, निशोथकी जड़, चितामूल और पीपला मूल, इन सबका समभाग चूर्ण पुराने गुड़के साथ सवेरे खानेसे सब प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, उदावर्त्त, शूल, प्लीहा, शोथ और पाण्डु रोगमें भी उपकार दिखाई देता है। उदराध्मान निवृत्तिके लिये गोलमिरच भिगोया पानी अथवा गोलमिरच पानीमें पीसकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

सब प्रकारके अजीर्णमें अग्निमान्द्य नाशक औषध समूह और लवङ्गाद्य मोदक, सुकुमार मोदक, विङ्गादि मोदक, मुस्ताकारिष्ट सुधासागर रस, शङ्खवटी, महाशङ्ख वटी, भास्कर रस, चिन्तामणि रस और अग्निघृत प्रभृति औषध अवस्थानुसार प्रयोग करना। ग्रहणी रोगोक्त कई प्रकारके औषध भी दिये जाते हैं।

पथ्यापथ्य।—अजीर्णके प्रथम अवस्थामें उपवास कराना चाहिये, फिर बार्लि, अरारूट, जौका मण्ड, सिंघाड़ेकी लपसी

आदि हलका पथ्य देना। क्रमशः अजीर्णका उपशम और अग्नि-बलकी वृद्धि होनेसे, दिनको पुराने चावलका भात, मसूरकी दाल, मागुर, शिङ्गी, कोई आदि मछलीका रसा, परवल, बैंगन, कच्चा केला आदिकी तरकारी, मट्ठा और कागजी या पाती नीबू आहार करनेको देना। रातको बार्लि आदि हलकी वस्तु खानेको देना। भूख अधिक होनेसे और दोनो वक्त परिपाक की शक्ति बढने पर रातको भी दिनकी तरह अन्न खानेको देना। भूंना कच्चा बेलका मुरब्बा, अनार, मिश्री आदि द्रव्य उपकारी है। अजीर्ण या अग्निमान्द्य रोगमें भोजनके २।३ घण्टा बाद पानी पीना चाहिये। सवेरे बिछौनेसे उठतेही थोडा ठण्ढा पानी पीना इस रोगमें सुपथ्य है चलित भाषामें इसको "उषापान" कहते हैं।

निषिद्ध कार्य्य।—घृतपक्क द्रव्य, मांस पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, भूंजा सेंका द्रव्य, अधिक जल या तरल पदार्थ पीना, यव, गोधूम, उरद, शाक, इक्षु, गुड, दूध, दही, घी, खोवा, मलाई, नारयल, मुनक्का दस्तावर वस्तु मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा आदि भोजन, तेल मर्द्दन, रातको जागना, मैथुन, स्नान इस रोगमें अनिष्टकारक है। वस्तुत जो द्रव्य जलदी हजम नही होता अथवा जिस द्रव्यके पचनेमें देर लगता है वैसा पदार्थ परित्याग करना चाहिये।

विसूचिका।

विसूचिका या हैजेका निदान।—आयुर्वेद शास्त्र में विसूचिकाभी अजीर्ण रोगके अन्तर्गत निर्दिष्ट है। इसको संक्रामकताशक्ति इतनी अधिक है कि एक आदमीको अजीर्णके सबब विसूचिका रोग उत्पन्न हो क्रमशः उस देशके अधिकांश मनुष्यको आक्रमण करता है। रोगभी अति भयङ्कर और जलदी प्राण नाशक है। इन्ही सब कारणोंसे इसको स्वतन्त्र रोगमें गिनना उचित जानकर अलग लिखते है। चलित भाषामें इसको "हैजा" और अङ्गरेजीमें "कलेरा" कहते है। अतिवृष्टि, वायुको आर्द्रता या स्थिरता, अतिशय उष्ण वायु, अपरिष्कृत जल वायु, अतिरिक्त परिश्रम, आहारका अनियम, भय, शोक या दुःख आदि मानसिक पीड़ा, अधिक जनतापूर्ण स्थानमें वास, रातका जागना और शारीरिक दौर्ब्बल्य आदिको इस रोगका निदान कहते है। जिस आदमो को बिना पेटको बिमारोके हैजा होता है, उसको पहिले शारीरिक दुर्ब्बलता, बदन कांपना, मुखश्रीको विवर्णता, पेटके ऊपरो भागमें दर्द, कानमें कई तरहके शब्द सुनाई देना, शिरःपीडा और शिर घूमना आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होते है।

साधारण लक्षण।—इसका साधारण लक्षण लगातार दस्त और वमन होना है। पहिले २।१ बार उदरामयको तरह दस्त और खाया हुआ पदार्थ वमन हो, फिर पानीको तरह और जौ या चावलके काढेको तरह अथवा सड़ा सफेद कोंहड़ेके पानीको तरह दस्त और पानी वमन होता है। कभी कभी लाल रङ्गका

दस्त होते भी दिखाई देता है। पेटमें दर्द, सड़ी मछलीकी तरह दुर्गन्ध और पिशाब बन्द होता है। फिर क्रमशः आंखोंका बैठ जाना, दोनो ओठका नीला होना, नाक ऊंचो, हाथ पैर ठंढा सिकुड़न और ऐठन, अङ्गुलीके अग्रभाग सूख जाना, शरीर रक्तशून्य और पसीना होना ; नाड़ी होन, शीतल और क्रमशः लुप्त, हुचकी, अत्यन्त प्यास, मोह, भ्रम, प्रलाप ज्वर, अन्तर्दाह, स्वरभङ्ग, बेचैनी, अनिद्रा, शिरका घूमना, शिरमें दर्द, कानमें विविध शब्द सुनाई देना ; आंखसे नाना प्रकार मिथ्यारूप दिखाई देना ; जीभ ठंढी, श्वास शीतल, और दांतोंका बाहर निकलना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

दोष प्रकोपके लक्षण।—इस रोगमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे दस्त वमनकी अल्पता पेटमें दर्द, अङ्गमें दर्द, मुखशोष, मूर्च्छा, भ्रम और शिरा संकोच आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। पित्तके आधिक्यमें अधिक दस्त, ज्वर, अन्तर्दाह प्यास, मोह और प्रलाप आदि लक्षण और कफके आधिक्यमें अधिक वमन, आलस्य, शरीर भारी, शीतज्वर और अरुचि आदि लक्षण विशेष रूपसे लक्षित होते हैं।

शारीरिक सन्ताप।—इस अवस्थामें शारीरिक सन्ताप बहुत कम हो जाता है। तापमान यन्त्रसे परीक्षा करने पर ८६ डिग्री तक सन्ताप रहता है। किसीको मृत्युके दो एक घण्टा पहिले कपाल, गाल और कानोंमें सन्ताप अधिक होता है। उपर कहे लक्षणोंमें मूर्च्छा, गात्रदाह, निद्रानाश, शारीरिक विवर्णता, उदर, मस्तक और हृदयमें अत्यन्त दर्द, भ्रान्ति, प्रलाप, स्वरभङ्ग, कम्प और बेचैनी आदि लक्षण प्रकाश होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं करना। यदि क्रमशः भेद वमनकी अल्पता,

पित्त मिला मलभेद, शारीरिक सन्ताप वृद्धि, पेटके दर्दका नाश, नियमित निश्वास प्रश्वास, प्यास कम, निद्रा स्वाभाविक, वर्ण प्रकाश और पिशाव होना आदि लक्षण दिखाई दे तो आराम होनेकी आशा है। इस रोगका हमला अक्सर सबेरे और रातको होता है। पर कभी कभी और वक्त भी इसका हमला देखनेमें आता है। इसके मृत्युका काल निश्चय नहीं है, किसीको तो २।४ घण्टे ही में मृत्यु होती है और बहुतेरोंको २।४ दिन तक कष्टभोगकर मृत्युमुखमें पतित होना पडता है।

चिकित्सा।—यह रोग उपस्थित होते ही चिकित्सा (इलाज) करना चाहिये। पर पहिले ही तेज धारक औषध देना उचित नहीं है; इससे दस्त बन्द होनेपर भी वमन वृद्धि और पेटका फुलना आदि उपसर्ग उत्पन्न होता है। तथा थोडी देरके लिये दस्त बन्द हो फिर अधिक परिमाणसे दस्त होनेकी आशङ्का बनी रहती है। इससे प्रथम अवस्थामें धारक औषध अल्प मात्रासे थोडी थोडी देना चाहिये। अजीर्णसे रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पाचक और अल्प धारक औषध देनाही सदव्यवस्था है। अजीर्णके विसूचिकामें नृपवल्लभ आदि औषध विशेष उपकारी है। दूसरे विसूचिका रोगमें पहिले दालचिनी ॥) आनेभर, जाफरान ॥) आनेभर, लौंग ।≈) आनेभर और छोटी इलायचीका दाना ।)आनेभर अलग अलग अच्छी तरह पीसकर फिर २५ तोले चीनीमें मिलाना; सब मिलाकर जितना वजन हो उसके तीन भागका एक भाग सफेद मट्टीका चूर्ण उसके साथ मिलाना तथा रोग रोगीके बलानुसार १० रत्तीसे ३० रत्ती तक मात्रा बार बार देना। २० वर्षके जवानसे लेकर ५० वर्षके वृद्धतकको २० रत्ती चूर्णके साथ आधी रत्ती अफीम मिलाकर देना। इससे कम

उमरवालेको खालीचूर्ण देना। रोगके उमरके हिसावसे दवाकी मात्राभी आधो या चौथाई करना चाहिये अथवा अफीम आधी रत्ती, गोल मरिचका चूर्ण चौथाई रत्ती हींग चौथाई रत्ती और कपूर १ रत्ती एक सङ्ग मिलाकर एक आनाभर मात्रा प्रत्येक दस्तके बाद देना। दस्त बन्द हो जानेपर २।३ दिन तक दिन भरमें तीन बार देना, अफीम आदि ४ द्रव्य समभाग ले २ रत्ती वजनको गोली बनाकर देना अथवा हमारा कर्पूरारिष्ट १०।१२ बूंद थोडी चीनीमें मिलाकर आधे घण्टे के अन्तर पर देना। अहिफेनासव भी इस रोगका प्रशस्त औषध है ५से १० विन्दु मात्रा विचार कर ठण्ढे पानीके साथ देना। मुस्तादि वटी, कर्पूर रस, ग्रहणी कपाट रस और प्रबल अतिसार नाशक, अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें दे सकते हैं। यह सब औषध व्यवहार करनेके साथ साथ थोडी मृतसञ्जीवनी सुरा पानीमें मिलाकर देनेसे विशेष उपकार होता है, पर के और हुचकीका वेग रहनेसे सुरा न देकर सौंधु अर्थात् सिर्का पानीमें मिलाकर देना चाहिये इससे हुचकी के, प्यास और पेटका फूलना आराम होता है। एक छटाक इन्द्रयव १ सेर पानीमें औटाना एक पाव रहते उतार कर १ तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पर देनेसे विशेष उपकार होता है।

अपामार्ग (चिरचिरा) की जड पानीमें पीसकर सेवन करानेसे हैजा आराम होता है; छोटी करेलीके पत्तेके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हैजा आराम होता है और भूख बढती है। वेलको गूदी और सोंठका काढा, अथवा वेलकी गूदी, सोंठ और कायफल इस तीन चीजका काढा पीनेसेभी हैजा आराम होता है।

वमन और मूत्र निवारक उपाय।—एक अञ्जुली

धानका लावा और १ तोला चोनो डढ पाव पानीमें थोडी देर भिंगोकर छान लेना, फिर उसमें खस १ तोला, छोटो इलायची आधा तोला, सौंफ एक तोला पीसकर और स`ेद चन्दन घिसा १ तोला मिलाना। यह पानी आधा तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पर पिलानेसे के (वमन) बन्द होता है। सरसों पोसकर पेटपर लेप करनेसेभी के बन्द होता है। तथा अन्यान्य औषधभी वमन बन्द करनेके लिये विचार कर देना चाहिये। पिशाव करानेके लिये पत्थरचूर, हिमसागर या लोहाचूर नामक पत्तेका रस १ तोला पिलाना। अथवा गोखुर बोज, ककड़ीकी बीज और जवासा, इसके काढेके साथ दो अनेभर सोरा चूर्ण मिलाकर पिलाना, किम्बा कुश, काश, शर, खस और काला ऊख यह तृणपञ्च मूलका काढा पिलाना। रामतरोई उबाला पानी आधा छटांक ३।४ बार पिलानेसे अथवा स्थलपद्मके पत्तेका रस १ तोला थोडो चोनो मिलाकर पिलानेसे पिशाब उतरता है। पत्थरचूरका पत्ता और सोरा एकमें पोसकर वस्तिपर लेप करने से भो पिशाव होता है। हाथ पैरका गोला आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल और सुरा एकमें मिलाकर मालिश करना। केवल शोठका चूर्ण मालिश करनेसे उपकार होता है। कूठ और सेंधा नमक कांजी और तिलके तेलमें पोसकर थोडा गरम कर मालिश करना। दालचिनो, तेजपत्ता, रास्ना, अगरू, शंजनको छाल, कूठ, बच और सोवा यह सब द्रव्य कांजोमें पोसकर थोडा गरम कर मालिश करनेसे भी गोला आना बन्द होता है। हुचकोके लिये सन्निपात ज्वरोक्त हिक्का नाशक औषध समूहोको व्यवस्था करना, अथवा केलेके जडके रसका नास लेना। राई पोसकर गरदन और मेरुदण्ड पर लेप करना। पेटका दर्द शान्तिके लिये लौका चूर्ण और सवाचार

मट्ठेके साथ पीस कर थोड़ा गरम कर पेटपर लेप करना, अथवा तार्पिनका तेल पेटपर मालिश कर सेंकना। गरम पानीमें ऊनी वस्त्र भिंगो निचोड़ कर सेंकनेसे भी उपकार होता है। प्याससे जो व्याकुल हो तो कपूर मिला पानी अथवा बरफका पानी पीनेको देना। कबाबचीनीका चूर्ण ३ तोला, जेठीमधका चूर्ण आधा तोला और कज्जली चार आनेभर सहतके साथ थोड़ा थोड़ा चटानेसे पिपासा शान्त होती है। लौंग, जायफल या मोथेका काढ़ा पिलानेसे प्यास और वमन बन्द होता है। पसीना अधिक हो तो अबीर मालिश करना; अथवा मूंगेका भस्म सहतके साथ चटाना। शिरःशूलके लिये ठण्ढे पानीकी पट्टी शिरपर रखना, बेहोशी हो तो हाथ पैर सेंकना।

सूचिकाभरण रस और हमारा कस्तुरीकल्प रसायन प्रयोग

।—जीवनकी आशा कम होनेसे और सन्निपातकी तरह दोनो आंखे लाल प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपसर्ग उपस्थित होनेसे सूचिकाभरण रस प्रयोग करना उचित है। कच्चे नारियलके पानीके साथ २।३ गोली अवस्था विशेषमें २।३ बार तक सेवन करा सकते है। इससे उपकार नही हो तो फिर सेवन कराना वृथा है। अल्पकालके हिमाङ्ग अवस्थामें हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" देनेसे विशेष उपकार होता।

इस रोगकी चिकित्सामें हर वक्त सतर्क रहना चाहिये, कारण किसवक्त कौन आफत आवेगी इसका ठिकाना नही है और न अनुमानसे जानने लायक इसका कोई उपाय है। रोगीका घर, बिछौना और पहिरनेका कपड़ा आदि हरवक्त साफ रखना चाहिये कर्पूर, धूना और गन्धकका धूआं घरमें देना; मल आदि दूर फेंकना चाहिये।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य।—पीडाके प्रबल अवस्थामें उपवासके सिवाय कोई पथ्य नहो देना। पीडा कम हो रोगीको भूख लगे तो सिङ्गाडेको लपसी, एरारूट या साबूदाना पानीमें मिलाकर खानेको देना। अतिसारोक्त यवागूभी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" भी इस अवस्थामें सुपथ्य है। उक्त पथ्यके साथ कागजी या पाती नीबूका रसभी इस अवस्थामें दे सकते हैं। पीडा अच्छी तरह आराम हो अधिक भूख बढ़नेसे पुराने चावलका मण्ड, कांई, मांगुर आदि छोटी मछलीका शुरुवा और नरम मांसका शुरुवा पीनेको देना। फिर अग्र परिपाकका उपयुक्त बल होनेसे पुराने चावलका भात, मसूरकी दालका जूस, पूर्व्वोक्त मछली और मांसका रस, गुल्लर, नरम परवल आदिकी तरकारी थोड़ा खानेको देना, मिश्री बतासाके सिवाय दूसरी मिठाई नहो देना। शारीरिक बलकी वृद्धि होनेसे ३।४ दिन अन्तर पर गरम पानीसे स्नान कराना।

निषिद्ध कर्म्म।—सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ न होने तक गुरुपाक द्रव्य घी या घीकी बनाई वस्तु, भूना, सेंका पदार्थ भोजन, स्नान, मैथुन, आग और धूपका सन्ताप व्यायाम या अन्यान्य श्रमजनक कार्य्य नहो करना। पहिलेही कह आये है, कि साधारणत: अजीर्णही इस रोगका मूल कारण हैं, अतएव जो सब कारणोंसे अजीर्णको आशङ्का है उसको सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये। देश या गांवमें अथवा अपने परिवारमें किसीको यह रोग उपस्थित हो तो किसी तरहसे डरना नहो, कारण भयसे अजीर्णसे हैजा उत्पन्न होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना रहती है।

अलसक और विलम्बिका।

रोगका कारण।—यह दो प्रकारका रोग अजीर्ण रोगका भेदमात्र है। दुर्ब्बल, अल्पाग्नि, बहु श्लेष्मयुक्त, मल-मूत्र-वात वेगका रोकना, और जो मनुष्य गुरु, कठिन अधिक रूखा, शीतल, सूखा द्रव्य भोजन करता है उसका वायु कुपित और कफसे रुद्ध-गति होनेसे उक्त दो प्रकारके रोग उत्पन्न होते है।

अलसक रोगमें अतिशय कष्टदायक उदराध्मान होता है, रोगी तकलीफमे छटफट करते करते मूर्च्छित हो जाता है; और अजीर्णसे उसके कोष्ठकी वायुका अधोगति बन्द हो वही वायु हृदय और कण्ठ आदि उपरकी तरफ चढ़ता है; सुतरां शूलकी और डकार इस रोगमें अधिक आता हैं। दस्त के के सिवाय विसूचिका रोगके अन्यान्य लक्षणभी इसरोगमें दिखाई देते है। खाया हुआ पदार्थ नीचे या ऊपर न जाकर अपक्कावस्थाहीमें आमाशयमें अलस भावसे रहता है इससे इस रोगको अलसक कहते हैं। विलम्बिका रोगके लक्षण पृथक भावसे निर्द्दिष्ट नहो है पर उक्त लक्षण सब अधिक प्रकाशित होनेसे उसको विलम्बिका कहते है। अलसकको अपेक्षा विलम्बिका रोग अधिक कष्टसाध्य है।

चिकित्सा।—अलसक और विलम्बिका दोनो रोगको चिकित्सा एकही प्रकार है, दोनो रोगमें पहिले नमक मिला गरम पानीसे वमन कराना। अथवा कड़ुवा करञ्जका फल, नीमको छाल, आपामार्गको बीज, गुरिच, सफेद तुलसी और चन्द्रयव, इन सब द्रव्यका काढ़ा आकण्ठ पिलाना, इससे वमन होतेही अलसक

और विलम्बिका रोग आराम होता है उदराधान और पेटका दर्द शान्तिके लिये देवदारु, सफेद जो, कूठ सोवा, हींग, और सेंधा नमक काञ्जीमें पीसकर पेटपर लेप करना। जौका चूर्ण और जवाक्षार मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे भी उपकार होता है। गरम काञ्जी बोतलमें भर अथवा उसमें ऊनी वस्त्र भिगो निचाड़कर सेंकनेसेभी उदराधान और पेटका दर्द आराम होता है। हुचकी- के लिये कदलीके जड़की रसको नास लेना। अथवा राई पीसकर गरदन और रीढ़पर लेप करना। अग्नि वर्द्धक और अजीर्ण नाशक औषध इस रोगमें विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—इस रोगके प्रथमावस्थामें उपवास कराना चाहिये। फिर क्षुधा और अग्नि बलके अनुसार लघु पथ्य देना। अन्यान्य सब नियम विसूचिका रोगकी तरह पालन करना चाहिये।

क्रिमिरोग।

—:*:—

प्रकार भेद।—क्रिमि दो प्रकार, आभ्यन्तर दोषजात और वहिर्म्मल जात। आभ्यन्तर क्रिमि तीन भागमें विभक्त है; पूरीषज, कफज, और रक्तज। अजीर्ण रहने पर भोजन, सर्व्वदा मधुर और अम्ल रस भोजन, अतिशय पतला पदार्थ पीना, अपरि- ष्कृत जल पान, गुड़, पिष्टक, मांस, उरद और दही आदि द्रव्य अधिक भोजन, क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, व्यायाम शून्यता, दिवा निद्रा आदि कारणोंसे आभ्यन्तर क्रिमि उत्पन्न होते है। यह क्रिमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग,

अवसन्नता, भ्रम, आहारमें अनिच्छा, जो मतलाना, कै, मुहसे थूक आना, अजोर्ण, अरुचि, नासिका कण्डू, सोतेमें दांत पीसना, छींक आना आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

पुरीषज क्रिमि लक्षण।—पुरीषज क्रिमि पक्काशयमें जन्मती है, यह अकसर नोचेहो रहती है। कभी कभी आमाशय की तरफ भी उठती है। उपर उठने पर रोगीके निश्वासमें विष्ठाकी तरह बदबू आती है। पुरीषज क्रिमि नाना प्रकारकी होती है। सूक्ष्म, स्थूल, दीर्घ, गोल और श्याम, पीली, सफेद या काली आदि नाना प्रकार आकृतिगत विभिन्नता दिखाई देती है। बहुतेरे धानके अङ्कुरकी तरह सूक्ष्म, बहुतेरे केचुवेकी तरह लम्बी और स्थूल कद गोल, कितनी चर्म्मलताकी तरह आकृतियुक्त नाना प्रकार पुरीषज क्रिमि होती है। तुम्बी बीजकी तरह और एक प्रकार क्रिमि है वह १२ हात तक लम्बी होती है। अतिरिक्त मास भोजन, अथवा कच्चा मास भोजन और अधिक शूकर मास भोजन करनेसे प्राय ऐसहो क्रिमि उत्पन्न होती है। इसको बाहर निकालती वक्त खींचना पडता है। यही सब क्रिमि विमार्गं गामी होनेसे मलभेद, शूल, पेटकी स्तब्धता, शारीरिक कृशता, कर्कशता, पाण्डुवर्णता, रोमाञ्च, अग्निमान्द्य, और गुदामें कण्ड आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

कफज क्रिमि लक्षण।—कफज क्रिमि आमाशयमें उत्पन्न हो, पेटके चारो तरफ फिरती है, इसको भी आकृति पुरीषज क्रिमिकी तरह नाना प्रकार, और वर्ण भी वैसही विभिन्न दिखाइ देता है। कफज क्रिमि उत्पन्न होनेसे, जीमतलाना मुखसे पानी आना, अजीर्ण अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, मलमूत्र रोध, कृशता, छींक, पीनस आदि लक्षण अधिक प्रकाशित होते है।

रक्तज क्रिमि।—रक्तज क्रिमि रक्तवाहिनी शिरायामे रहती है। चीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, अजीर्ण मे भोजन और शाकादि द्रव्य अधिक भोजन करनेसे रक्तज क्रिमि उत्पन्न होती हैं। यह सब क्रिमि अतिशय सूक्ष्म, पदशून्य, गोल और ताम्रवर्ण होती है।

वाह्य मलजात क्रिमि लक्षण।—वाह्य मलजात क्रिमि गात्रमल और पसीनेसे उत्पन्न होती है, अतएव अपरिच्छन्नता ही इसका मुख्य कारण है। इसकी आकृति और परिमाण तिलकी तरह, वाह्यक्रिमि यूक और लिख्य भेदसे दो प्रकार, यूक अर्थात् जूं नामक क्रिमि बहुपदयुक्त, कृष्णवर्ण और केश बहुल स्थानमें उत्प है लिख्य सूक्ष्म श्वेतवर्ण और यह कपडेमें उत्पन्न होती है।

चिकित्सा।—आभ्यन्तर क्रिमि नाशके लिये घेंटूका पत्ता अथवा अनारसके नरम पत्तेका रस थोडा सहत मिलाकर पीना। विडङ्ग चूर्ण एक आनाभर पानी के साथ अथवा विडङ्गका काढा २ तोले पिलाना; विडङ्ग क्रिमि नाश करनेके हकमें अति श्रेष्ठ औषध है, खजूरके पत्तेका रस बासी कर पीनेसे अथवा खजूरके जडको नरम गूदो खानेसे म नष्ट होती है। पालिधा पत्रका रस, केउपत्रका रस, पालिधा शाकका रस, पलाश बीजका रस, अनारके जडका काढा आदि द्रव्य भी क्रिमिनाशक है। खुरासानी अजवाईन, सेंधा नमकके साथ सबेरे खानेसे क्रिमि रोग अजीर्ण और आमवात आराम होताहै। तितलौकोकी बीजका चूर्ण मट्ठा या कच्चे नारियलके पानीके साथ अथवा कमलागुडि चार आनेभर गुडके साथ सेवन करना। सामराजो बीज आधा तोला एक छटांक पानीमें ५।६ घण्टा भिंगोकर वह पानी पीना। विडङ्ग,

सेंधा नमक, जवाचार कमलागुडी और हर्रे मट्ठेमें पीसकर पिलाना। आधा पानी और आधा दहीके मट्ठेमें विडङ्ग, पीपला-मूल, सैजन को बीज और गोल मिरचका यवागू बनाना फिर जवाचार मिलाकर पीना। उक्त औषध सब क्रिमिनाश करनेमें उत्तम है। इसके सिवाय पारसीयादि चूर्ण, मुस्तादि कषाय, क्रिमि मुद्गर रस, क्रिमिघ्न रस, विडङ्ग लौह, क्रिमिघातिनी वटिका, त्रफलाद्य घृत, विडङ्ग घृतादि औषध प्रयोग करना। हमारी बनाई "क्रिमिघातिनी वटिका" सेवन करनेसे सब प्रकारका क्रिमिरोग आराम होता है।

बाह्य क्रिमि विनाशके लिये धतूरेका पत्ता या पानके पत्तेके रसमें कर्पूर मिलाकर लेप करना, आलिताको बीज कांजीमें पीस कर शिरमें लगानेसे केशकी क्रिमि दूर होती है। विडङ्ग तैल और धुस्तुर तैल बाह्य क्रिमिकी उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका रसा, परवर, करेला गुल्लर आदिकी तरकारी, कांजी, बकरीका दूध; तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त द्रव्य और पाती या कागजी नीबूका रस इस रोगमें उपकारी है। दोनों वक्त भात न खाकर रातको सावूदाना, वार्लि एरारुट आदि हलका भोजन करना। कारण क्रिमि रोगमें जिसमें अजीर्ण न हो उसका ख्याल विशेष रखना चाहिये।

पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, मिष्ट द्रव्य, गुड, उरद, दही, अधिक घृत, अधिक पतला पदार्थ और मासादि द्रव्य भोजन तथा दिवा-निद्रा और मलमूत्रका वेग रोकना विशेष अनिष्टकारक है।

पांडु और कामला।

निदान।—अतिरिक्तव्यायाम, मैथुन, अथवा अधिक अम्ल, लवण, मद्य, लाल मिरचा, राई आदि तीक्ष्णवीर्य और मिट्टी आदि द्रव्य खानेसे वातादि दोषत्रय रक्तको दूषित कर पाण्डु रोग उत्पन्न होता है। यह रोग प्रकाशित होनेसे पहिले त्वक् फटा, मुखसे पानी गिरना, शरीर अवसन्न, मिट्टी खानेकी इच्छा, आंखके चारो तरफ शोथ, मल मूत्रका पीला होना और अपरिपाक आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। पाण्डु रोग पांच प्रकार। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मृत्तिकाभक्षण जात।

वातज, पित्तज और कफज पाण्डु रोग।—वातज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, चक्षु, नख काला या अरुण वर्ण और रूखा होता है। शारीरिक कम्प, सूची विद्धवत् पीड़ा, आनाह और भ्रम आदि लक्षण होते है। पित्तज पाण्डु रोगमें सब देह विशेष कर मल, मूत्र, नख पीला और दाह, प्यास, ज्वर तथा थोड़ा थोड़ा मल आना आदि लक्षण होते है। कफज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, आंख और मुख सफेद, मुख और नाकसे रक्तस्राव, शोथ, तन्द्रा, आलस्य, देहकी अत्यन्त गुरुता आदि लक्षण प्रकाशित होते है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें उक्त वातादि पाण्डु रोगके लक्षण सब मिले हुए मालूम होते है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें ज्वर, अरुचि, जी मतलाना, वमन, प्यास, क्लान्ति और इन्द्रिय शक्तिका नाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य जानना। मृत्तिका भक्षण जात पाण्डु रोगमें खाई हुई मिट्टीकी

गुणानुसार कोई एक दोष कुपित हो वही आरम्भक होता है। कषाय रसयुक्त मिट्टी खानेसे वायु, क्षारयुक्त मिट्टीसे पित्त और मधुर रसयुक्त मिट्टीसे कफ कुपित हो पूर्व्वोक्त लक्षण समूहोंमें अपना अपना लक्षण प्रकाश करता है। जली हुई मिट्टी खानेसे उस मिट्टीके रुक्ष गुणके कारण रसादि धातु समूह और भुक्त अन्नभी रुक्ष होता है। तथा खाई हुई जली मिट्टी अजीर्ण अवस्थाहीमें रस वहादि स्रोत समूहोंको पूर्ण और रुककर इन्द्रिय शक्ति, दीप्ति, वीर्य्य और ओज पदार्थका विनाशकर सहसा बल, वर्ण और अग्नि विनष्ट कर पाण्डु रोग उत्पादन करती है। पाण्डु रोगीके पेटमें क्रिमि पैदा होनेसे, आंखके चारो तरफ, गाल, भौ, पैर, नाभि, और लिङ्गमें शोथ तथा रक्त और कफमिश्रित मल होता है।

साध्यासाध्य लक्षण।—पाण्डुरोग बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे असाध्य हो जाता है। तथा जो पाण्डु रोगी शोथयुक्त हो, सब वस्तु पीली देखताहो तो वह पाण्डु रोग भी असाध्य ‘ानना, अथवा पाण्डु रोगीका मल कठिन, थोड़ा हरा और कफयुक्त हो ‐े भी असाध्य समझना।

सांघातिक ल ‐ण।—पाण्डु रोगीका शरीर यदि किसी सफेद पदार्थसे लिपटा मालूम हो और शारीरिक ग्लानि, वमन, मूर्च्छा, पिपासा आदि ‐द्रव लक्षित हो तो उसकी मृत्यु होती है। रक्त‐क्षयके कारण जिस‐ शरीर एक दम सफेद हो गया हो उसके भी जीवनकी आशा ‐ है। अथवा जिस पाण्डु रोगीका दांत, नख, आंख पाण्डु वर्ण तथ‐ पद वस्तु उसको पाण्डु वर्ण दिखाई दे तो उसकी भी मृत्यु निश्चय ‐ जानना। पाण्डु रोगी का हाथ, पैर, मुख फूला मध्यभाग क्षीण ह‐ ‐सी अथवा मध्य भाग फूला और ‐ ‐ पैर क्षीण होनेसे उसकी भी ‐ ‐त्यु होती है।

जिस पाण्डु रोगीकी गुदा, लिङ्ग और अण्डकोषमें शोथ तथा मूर्च्छा, ज्ञान नाश, अतिसार और ज्वर आदि उपद्रव उपस्थित होतो उसको भो मृत्यु होती है।

कामला रोगका निदान।—पाण्डु रोग उत्पन्न होनेके बाद अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेसे पित्त अधिकतर कुपित हो रक्त और मांसको दूषित करता है, इसीसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत् रोग पैदा होकर क्रमशः यह रोग उत्पन्न होते दिखाई देता है। पाण्डु रोगके जो सब निदान कह आए है, वही सब निदान और अतिरिक्त दिवा निद्रा आदि कारणोंसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत्से पित्त बाहर हो सब पाकस्थलीमें न जाकर थोड़ा अंश रक्तके साथ मिलता है। इसी रीतिसे कामला रोग सञ्चारित होता है।

लक्षण।—इस रोगमें पहिले केवल दोनो आखें पीली हो फिर त्वक, नख, मुख, मल, मूत्र प्रभृति समस्त शरीर वर्मातके भेड़कके तरह पीला होता है। किसीका मल मूत्र लाल रंगकाभी दिखाई देता है। इस रोगमें मल सफेद, कठिन, बदनमें खुजली, जीमतलाना, इन्द्रिय शक्तिका नाश, दाह, अपरिपाक, दुर्व्वलता, अरुचि और अवसाद आदि लक्षण लक्षित होते है।

सांघातिक लक्षण।—कामला रोगमें अत्यन्त शोथ, मूर्च्छा, मुख और दोनों आखें लाल, मल मूत्र काला, पीला या लाल और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह; तन्द्रा, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य और संज्ञानाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीको मृत्यु होती है।

कुम्भकामला।—कामला रोग बहुत दिन तक शरीरमें रहनेसे पूर्व्वोक्त लक्षण समूह अधिकतर प्रकाश होनेपर उसको

कुम्भकामला कहते है। यह अवस्था स्वभावतः कष्टसाध्य है। विशेषतः इसमें अरुचि, वमन वेग, ज्वर, दोषज ग्लानि, श्वास, कास और मलभेद आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा नहीं रहती है।

हलीमक।—पाण्डु या कामला रोग उत्पन्न होनेके बाद क्रमशः शरीरका रंग हरा, श्याम और पीला होनेसे तथा साथही बल और उत्साहका ह्रास, तन्द्रा अग्निमान्द्य, मृदु ज्वर, स्त्री सहवासमें अनिच्छा, अङ्ग वेदना, दाह तृष्णा, अरुचि और भ्रम आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे उसको हलीमक रोग कहते है।

चिकित्सा और हमारी सरलभेदी वटिका।—

जिस कार्य्यसे यकृत्को क्रिया सम्पूर्ण रुपसे होती रहे वैसही कार्य्य करना हो इस रोगको चिकित्सा है। हमारो "सरलभे वटिका" रोज रातको सोते वक्त उचित मात्रासे खानेपर दस्त साफ हो यकृत्को क्रिया अच्छी तरह होती है और पाण्डु कामला आदिमें भी विशेष उपकार होता है। पाण्डु रोगमें हलदीका काढा या कल्कके साथ औटाया हुआ घ, अथवा आंवला, बडो हर्रे और बहेडा इन तीन द्रव्यका काढा या कल्कके साथ पकाया घी किम्बा वातव्याधि प्रसङ्गका तिन्दुक घृत सेवन कराना उचित है। कोठ बद्ध हो तो घीके साथ रेचक औषध मिलाकर सेवन कराना चाहिये। वातज पाण्डु रोगमें घ और च नीके साथ त्रिफलाका काढा पिलाना। पित्तज पाण्डु रोगमें २ तोले ५ मासा ४ रत्ती चीनोके साथ १० मासा ८ रत्ती त्रिवृत्तका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। कफज पाण्डु रोगमें बड़ी हर्रे गोमूत्रमें भिगोना फिर गोमूत्रमें मिलाकर सेवन कराना। अथवा गोमूत्रके साथ सोंठका चूर्ण ४ मासे और लोहभस्म १ मासा; किम्बा गोमूत्रके साथ

पीपलका चूर्ण ४ मासे और शोंठका चूर्ण ४ मासे ; अथवा गोमूत्र-के साथ शोधित शिलाजीत ३ मासे ; किम्बा घृतपिष्ट गुग्गुलु ८ मासे सेवन कराना। लौहचूर्णको ७ दिन गोमूत्रकी भावना दे फिर दूधके साथ सेवन करानेसे भी कफज पाण्डुरोगमें विशेष उपकार होता है।

पाण्डुरोगमें शोथ चिकित्सा।—गुडके साथ बडी हर्रे रोज खानेसे सब प्रकारका पाण्डुरोग आराम होता है। लौह-चूर्ण काले तिल, शोंठ, पीपल, गोलमरिच और बेरकी गुठी हरेकका चूर्ण समभाग और सब चूर्ण के समान स्वर्णमाक्षिक चूर्ण मिला सहतके साथ मोदक बनाना। यह मोदक मट्ठे के साथ सेवन करानेसे अति कठिन पाण्डुरोग भी आराम होता है। पाण्डु-रोगीको शोथ हो तो मण्डूर सात बार आगमें गरमकर गोमूत्रमें बुताना, फिर वही शोधित मण्डूर का चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर अन्नके साथ सेवन करानेसे पाण्डु और शोथ आराम हो भूख बढती है।

कामला चिकित्सा।—कामला रोगमें गुरिचका पत्ता पीसकर मट्ठेके साथ पीना। गोदूधमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। हलदीका चूर्ण १ तोला ८ तोले दहीके साथ सबेरे सेवन कराना। त्रिफला, गुरिच, दारुहलदी, और नीमकी छालका रस सहतके साथ रोज सबेरे पीना। लौहचूर्ण, शोंठ, पीपल, गुरिच और विडङ्ग चूर्ण; अथवा हलदी, आंवला, बडी हर्रे और बहेडेका चूर्ण सेवन कराना। सहस्रपुटित या पांच सौ बार पुटित लौहचूर्ण सहत और घीके साथ सेवन कराना। बडी लौहचूर्ण हरीतकी और हलदीका चूर्ण, घी और सहतके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुड और सहतके साथ सेवन कराना। लौहचूर्ण, आंवला, शोंठ, पीपल, गोलमरिच

और हलदीका चूर्ण घी, सहत और चीनीके साथ सेवन करानेसे भी कामला रोग आराम होता है।

कुम्भकामला और हलीमक चिकित्सा।—कुम्भ कामला और हलीमक रोगमें पाण्डु और कामला रोगकी तरह चिकित्सा करना। विशेषत कुम्भकामलामें बहेड़ाके लकड़ीको आंचमें मण्डुर गरम कर क्रमश: ८ बार गोमूत्रमें बुताना; फिर मण्डुर चूर्ण सहतके साथ चटाना; और हलीमक रोगमें जारित लौहचूर्ण, खैरका काढा और मोथेके चूर्णके साथ चटाना। कुटकी, बरियारा, जेठीमध, आंवला, बहेडा, हलदी और दारहलदीका समभाग चूर्ण सहत और चीनीके साथ चटानेसे भी हलीमक रोग आराम होता है। फलत्रिकादिकषाय, वासादि कषाय, नवायस लौह, त्रिकत्रयाद्य लौह, धात्रीलौह, अष्टादशाङ्ग लौह, पूनर्नवादि मण्डुर, पञ्चानन रस और हरिद्राद्य घृत, व्योषाद्य घृत तथा पुनर्नवा तैल विवेचना पूर्व्वक पाण्डु, कामला, कुम्भकामला और हलीमक रोगमें प्रयोग करना।

चक्षुद्वयका पीलापन दूर करनेके लिये द्रोणपुष्पके पत्तेका रस आंखमें देना, अथवा हलदी गेरुमिट्टी और आंवलेका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर आंखमें लगाना। काकरोलके जडका रस या घृतकुमारीका रस, अथवा पीत घोषाफल पानीमें घिसकर नास लेनेसे भी आंखे साफ होती है।

पथ्यापथ्य।—उक्त रोगोंमें जीर्ण ज्वर और यकृत् रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। किसी प्रकारका उत्तेजक पानाहार सेवन नही करना।

रक्त-पित्त।

निदान।—अग्नि और आतप आदि सेवन, व्यायाम, शोक, पथ पर्य्यटन, मैथुन और गोलमिरच आदि तीक्ष्ण वीर्य्य द्रव्य, आहार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अधिक भोजन करनेसे पित्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता है। स्त्रियोंका रजो रोध होनेसे भी यह रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावनाहै। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कान यह ऊर्द्धमार्ग और गुदा, योनि और लिङ्ग अधोमार्गसे रक्तस्राव होता है। पीड़ाकी वृद्धिमें समस्त रोमकूपसे भी रक्तस्राव दिखाई देता है।

दोषभेदसे पूर्व्व लक्षण।—रक्तपित्त रोग उत्पन्न होनेसे पहिले शारीरिक अवसन्नता, शीतल द्रव्यपर अभिलाष, कण्ठसे धूमनिकलनेकी तरह अनुभव, वमन और निश्वासमें रक्त या लोहेके गन्धकी तरह गन्ध आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। रोग उत्पन्न होनेपर वातादि दोषके आधिक्यानुसार पृथक पृथक लक्षण प्रकाश होता है। रक्तपित्तमें वायुका आधिक्य रहनेसे रक्त श्याम या अरुणवर्ण फेनिला पतला और रूखा होता है और इसी रक्तपित्त रोगमे गुदा, योनि या लिङ्ग इन्हो मध्य अधोभागोंसे रक्त निकलता है। पित्तके आधिक्यमें रक्तवटादि छालके काढ़ेकी तरह रङ्ग, काला, गोमूत्रकी तरह चिकना, कृष्णवर्ण, जालेके रङ्गकी तरह अथवा सौवीराञ्जनकी तरह वर्णविशिष्ट होता है। कफके आधिक्यसे खून गाढ़ा, थोड़ा पाण्डुवर्ण, थोड़ा चिकना और

पिच्छिल होता है तथा मुख, नाक, आंख और कान इन सब ऊर्द्ध मार्गोंसे रक्तस्राव होता है। केवल इसी दोषका या तीनो दोषका आधिक्य रहनेसे, उसी दो दोष या तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते है। द्विदोषज रक्तपित्तमें वात कफके रक्तपित्तसे ऊर्द्ध और अध: उभय मार्गोंसे रक्त निकलता है।

साध्यासाध्य।—उक्त रक्तपित्तमें जो रक्तपित्त ऊर्द्ध मार्गगत अर्थात् मुख, नासिका आदिसे निकलता है या वेग कम, उपद्रव शून्य, तथा हेमन्त और शीतकालमें प्रकाशित हो उसको साध्य जानना। जो रक्तपित्त अधो मार्गगत अर्थात् गुदा, योनि, और लिङ्गसे रक्तस्राव तथा दो दोषसे उत्पन्न होता है, वह याप्य और जिस रक्तपित्तमें ऊर्द्ध और अधो दोनो मार्गमें रक्तस्राव होता है अथवा तीनो दोषका रक्तपित्त असाध्य है। रोगी वृद्ध, मन्दाग्नि आहार शक्तिहीन या अन्यान्य व्याधियुक्त होनेसे भी रक्तपित्त असाध्य जानना।

उपसर्ग।—दुर्ब्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, मत्तता, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, खाया हुआ पदार्थका अम्लपाक, सर्व्वदा अधैर्य्य, हृदय वेदना, प्यास, मल भेद, मस्तकमें दाह शरीरसे सड़ी दुर्गन्ध आना, आहारमें अनिच्छा, अजीर्ण और रक्तमें सड़ी बदबू, रक्तका रङ्ग मांसधोये पानीको तरह, या कर्द्दमवत्, मेद, पीब, यकृत् खण्ड, पक्का जामुनको तरह काला किम्वा इन्द्रधनुको तरह नाना रङ्ग होना, यही रक्तपित्तका उपसर्ग है। इन सब उपसर्गयुक्त रक्तपित्तसे रोगीको मृत्यु होती है। जिस रक्तपित्तमें रोगीकी आंखे लाल और जो रोगी अपने उद्गारमें लाल देखता है अथवा सब पदार्थ लाल दिखाई देता है, किम्वा अधिक परिमाण रक्त वमन होतो उसको मृत्यु निश्चय जानना।

अवस्था भेदसे चिकित्सा।—रोगी बलवान हो तो रक्तस्राव बन्द करना उचित नहो है। कारण वहो दूषित रक्त देह में बद्ध हो रहनेसे पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लोहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारको पीडा उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। किन्तु रोगी दुर्ब्बल, अथवा अतिरिक्त रक्तस्रावसे जिसके अनिष्टकी आशङ्का है, उसका रक्त बन्द करनाहो उचित है। दूबका रस, अनारके फलका रस, गोबर या घोड़ेकी लोदका रस, चीनी मिलाकर पोनेमे रक्तस्राव बन्द होता है। अडूसेके पत्तेका रस, गूलरके फलका रस और लाह भिंगोया पानो पोनेसेभो रक्तस्राव बन्द होता है। एक आनाभर फिटकिरोका चूर्ण दूधमें मिलाकर पोनेसे रक्तस्राव तुरन्त बन्द होता है। रक्तातिसार और रक्तार्श निवारक अन्यान्य योग समूह भो इस रोगमें विचार कर प्रयोग कर सकते हैं। नाकमे रक्तस्राव हो तो, आंवला घोमें भूंजकर कांजीमे पोस मस्तक पर लेप करना। चोनी मिला दूधका नास अथवा दूर्व्वाका रस, अनारके फूलका रस, पियाजका रस, गोबर या घोड़ेकी लीदका रस, महावरका पानो या हरोतको भिंगोया पानीका नास लेना। कानमे रक्तस्राव हो तो यहो सब औषध प्रयोग करना। मूत्र मार्गमे रक्तस्राव हो तो काश, शर, काला ऊख और कगड़ेकी जड़ सब मिलाकर २ तोले, बकरोका दूध १६ तोले १ सेर पानीके साथ औटाना, दूध शेष रहने पर नोचे उतार कर पोना। शतमूली और गोक्षुरके साथ अथवा शालिवन, पिठवन, मुगानि और माषानिके साथ दूध पकाकर पिलाना। योनिसे रक्तस्राव हो तो यहो सब औषध और प्रदर रोगोक्त अन्यान्य औषधभी विचार कर देना। लाल चन्दन, बेलको गूदी, धनाम, कुरैयाकी छाल और बबूलका गोंद सब २ तोले बकरीका दूध १६ तोले, एक सेर पानीमें औटाना

दूध बाकी रहने पर उतार छानकर पोनेसे गुदा, योनि और लिङ्गसे रक्तस्राव जल्दी आराम होता है। किसमिस, लाल चन्दन, लोध और प्रियङ्गु, सबका चूर्ण अडूसेके पत्तेका रस और सहतके साथ पोनेसे मुख नासिका गुदा, योनि और लिङ्गसे निकलता हुआ खून तुरन्त बन्द होता है। रक्तको गाढ करनेसे कबूतरका बीट अति अल्प मात्रासे सहतके साथ चाटना। इसके सिवाय धान्यकादि हिम, ह्रीवेरादि क्वाथ, आटरूपकादिक्वाथ, एलादि गुडिका, कुष्माण्ड खण्ड, वासाकुष्माण्ड, खण्डकाद्य लौह, रक्तपित्तान्तक लौह, वासा-घृत, सप्तप्रस्थ घृत और ह्रीवेराद्य तैल विवेचना पूर्वक प्रयोग करना।

रक्तपित्तज ज्वर चिकित्सा।—रक्तपित्तमें ज्वर रहनेसे लाल निसत, काला निसत, आवला, बडी हर्र, बहेड़ा और पीपलका चूर्ण प्रत्येकके समभागको दूनी चीनी और सहत मिला मोदक बनाना, इस मोदकसे रक्तपित्त और ज्वर दोनोकी शान्ति होती है। इसके सिवाय रक्तपित्त नाशक और ज्वर नाशक यह दोनो औषध मिलित भावसे इस अवस्थामें प्रयोग करना। श्वास, कास, स्वरभङ्ग आदि अन्यान्य उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्मा की तरह चिकित्सा करना। अडूसेके पत्तेके रसमें तालीश पत्रका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास कास और स्वरभङ्गमें उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—ऊर्द्धग रक्तपित्तमें रोगीका बल, मास और अग्निबल क्षीण न होनेसे पहिले उपवास कराना उचित है। किम्वा बलादि क्षीण होनेसे तृप्तिकर आहारादि देना चाहिये। घी सहत और धानके लावाका खाद्य बनाकर रोगीको देना। अथवा पिण्ड खजूर, किसमिस, जेठीमध और फालसा इसका काढा

चीनी मिलाकर पिलाना। अधोगत रक्तपित्तमें लसिकर पेयादि पीनेको देना। शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्चमूलकी काढ़ेके साथ पेया बनाकर पीनेसे रक्तपित्तमें विशेष उपकार होता है। अतिरिक्त रक्तस्राव बन्द होनेसे और अन्नादि पचानेकी ताकत होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मूंग मसूर और चनेकी दालका जूस, परवल, गुल्लर, पक्का सफेद कोहड़ा और करेलेकी तरकारी, छाग, हरिण, खरगोश, कबूतर, बटेर और बगुलेके मांसका रस, बकरीका दूध, खजूर अनार सिङ्घाड़ा, किसमिस, आंवला मिसरी नारियल, तिल तेल या घृत पक्क वस्तु इस रोगमें आहार कराना। रातको गेहूं या जौके आटेकी रोटी या पूरी और पूर्व्वोक्त तरकारी। सूजी, चनेका बेसन, घी और कम मीठेका बनाया पदार्थ खानेको देना। गरम पानी ठण्ढाकर पिलाना।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक तीक्ष्णवीर्य्य और रूक्ष द्रव्य समूह, दही मछली, अधिक खारवा पदार्थ, सरसोंका तेल, लाल मिरचा, अधिक नमक, सेम, आलू, शाक, खट्टा, उरद की दाल और पान आदि भोजन; मल मूत्रका वेग धारण, दतुवनसे मुह धोना, व्यायाम, पथ पर्य्यटन, धूमपान, धूलि और धूपमें बैठना, ओस लगाना, रातका जागना, आग, सङ्गीत या जोरसे बोलना, मैथुन, अश्वादि सवारीमें चढ़ना आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है। स्नान न करनेसे विशेष कष्ट हो तो गरम पानी शीतल कर किसी किसी दिन स्नान करना उचित है।

राजयक्ष्मा और क्षतक्षीण।

निदान।—मल मूत्रादिका वेग धारण, अतिरिक्त उपवास, अति मैथुन आदि धातुक्षय कारक कार्य्योंसे तथा बलवान मनुष्यसे कुश्ती लड़ना और किसी दिन कम किसी दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन करना आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। रक्तपित्त पीड़ा बहुत दिनतक बिना चिकित्साके रहनेसे भी क्रमशः राजयक्ष्मा रोगमें परिणत होते दिखाई देता है। वायु, पित्त, कफ, यह तीन दोष जब कुपित हो रसवाही शिराओंको रुद्ध करता है, तब उससे क्रमशः रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र क्षीण होता है। कारण रसही सब धातुओंका दृष्टिकर्त्ता है। उसी रसकी गति रुद्ध होनेसे किसी धातुका पोषण नहीं हो सकता। अथवा अतिरिक्त मैथुनसे शुक्र क्षय होनेपर उसकी क्षीणता पूर्ण करनेके लिये भी अन्यान्य धातु क्रमशः क्षयको प्राप्त होता है। इसीको क्षयरोग या राजयक्ष्मा कहते हैं।

पूर्व्वलक्षण।—यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले, श्वास अङ्गमें दर्द, कफ निष्ठीवन, तालुशोष, के, अग्निमान्द्य, मत्तता, पीनस, कास, निद्राधिक्य, आंखोंका सफेद होना, मांस भक्षण और मैथुनकी इच्छा, आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है, तथा इस रोगमें रोगी यही स्वप्न देखता है, कि मानो पक्षी, पतङ्ग और श्वापद जन्तु उसको आक्रमण कर रहे हैं। केश, भस्म और हड्डी, (अस्थि) का ढेरपर वह खड़ा है, जलाशय सूख गया है, पर्व्वत टूट पड़ा है और आकाशके तारे सब गिर रहे हैं।

पर लक्षण।—रोग प्रकाशित होनेपर प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वद्वयका सङ्कोच और दर्द, रक्त वमन, और मलभेद यही सब लक्षण लक्षित होते है। वाताधिक्यसे इसमें स्वरभङ्ग, कन्धा और दोनो पसुलियोंका सङ्कोच या दर्द होता है। पित्ताधिक्यसे ज्वर, संताप, अतिसार और निष्ठीवन और शिरोवेदना, अरुचि, कास, प्रतिश्याय और अङ्गमर्द कफाधिक्यका लक्षण है। जिसको जिस दोषका आधिक्य रहता है, उसको उन्ही सब लक्षणोंमें उसी दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—क्षय, यक्ष्मारोग साधारणतः दुःसाध्य है, रोगीका बल और मासक्षीण न होनेसे, उक्त प्रतिश्याय आदि एकादश रूप प्रकाशित होने पर भी आरोग्य होनेकी आशा कर सकते है, पर यदि बल मास क्षीण हो जाय और उक्त एकादशरूप प्रकाशित न हो, कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभङ्ग, अरुचि और ज्वर यह छ लक्षण दिखाई दें अथवा श्वास, कास और रक्त निष्ठीवन यही तीन दोष प्रकाशित होयतो रोग असाध्य जानना।

सांघातिक लक्षण।—यक्ष्मा रोगी प्रचूर आहार करने परभी क्षीण होवे अथवा अतिसार उपद्रवयुक्त हो किम्बा यदि अण्डकोष और पेटमें शोथ हो तो उसको भी असाध्य समझना। दोनो आंखे सफेद, अन्नसे द्वेष, ऊर्द्ध श्वास, कष्टसे शुक्र जाना इसमें कोई एक उपद्रव यक्ष्मा रोगीको होनेसे मृत्यु लक्षण जानना।

उरःक्षत निदान।—गुरुभार वहन, बलवानके सुस्ती लड़ना, ऊंचे स्थानसे गिरना; गो, अश्वादि जन्तु दौड़ते वक्त उसके गतिको जोरसे रोकना, पत्थर आदि पदार्थको जोरसे दूर फेंकना, तैरनेमें बहुत दूर तक जाना, ऊंची आवाजसे पढ़ना, अधिक

तरना और कूदना आदि कठोर कार्य्योंसे और अतिरिक्त स्त्री सहवासमें भी छातीमें घाव होता है। उक्त कार्य्योंके साथ सर्व्वदा अधिक और कम आहार करने वालेको भी छातीमें घाव होनेकी अधिक सम्भावना है। इन्हीं सब कारणोंसे छातीमें घाव होनेसे उसको उरःचत रोग कहते है। इस रोगमें वक्षस्थल विदीर्ण या टूटकर गिर पड़नेकी तरह मालूम होना तथा दोनो पसुलियोंमें दर्द, अङ्गशोष और कम्प होता है। फिर क्रमशः बल, वीर्य्य, वर्ण, रुचि, अग्निहीनता, ज्वर, कष्ट, मन उदास, मलभेद, खांसीके साथ बड़ी दुर्गन्ध, श्याम या पीला, गठोला और रक्तमिला कफ सर्व्वदा बहुत निकलता रहता है। अतिरिक्त कफ और रक्त वमनसे भी क्रमशः शुक्र और ओज चोण हो रक्तस्राव और पार्श्व, पृष्ठ कमरमें दर्द होता है। उरःचत रोगभी राजयक्ष्माका अन्तर्मूल है। जबतक इसके सब लक्षण प्रकाशित न हो तथा रोगीका बल, वर्ण सम्यक् वर्त्तमान रहे और रोग पुराना न हो तभीतक यह साध्य है। एक वर्षका पुराना रोग याप्य, और समस्त रूप प्रकाश होनेसे असाध्य होता है।

चीणरोग लक्षण।—यही उरःचत रोग और अतिरिक्त मैथुन, शोक, व्यायाम और पैदल चलना आदि कारणोंसे शुक्र, ओज, और बल वर्णादि चीण होनेसे उसका चीणरोग कहते हैं। राज यक्ष्माके साथ इसकी चिकित्सामें कोई प्रभेद नहीं है इससे एक साथही सन्निवेशित किया गया है।

चिकित्सा।—राजयक्ष्माकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन है। बल और मलको इस रोगमें सर्व्वदा रक्षा करना चाहिये। इसीसे विरेचनादि इस रोगमें न करानाही उचित है। पर मल एक दम बद्ध होनेसे मृदु विरेचन देना। छाग मांस भक्षण,

छाग दूध पान, चीनीके साथ छाग घृत पान, छाग और हरिण गोदमें लेना और बिछौनेके पास छाग या हरिण रखना यक्ष्मा रोगीके हकमें विशेष उपकारी है। रोगी दुर्ब्बल होनेसे चीनी और सहतके साथ मक्खन खानेको देना। मस्तक, पार्श्व या कंधेमें दर्द हो तो सोवा, जेठीमध, कूठ, तगरपादुका और सफेद चन्दन एकत्र पीसकर घी मिला गरम कर लेप करनेसे दर्द शान्त होता है। अथवा वरियारा, रास्ना, तिल, जेठीमध, नीला कमल और घृत, अथवा गुग्गुलु, देवदारु, सफेद चन्दन, नागकेशर और घृत किम्बा क्षीरकाकोली, वरियारा, बिदारीकन्द, एल वालुका और पुनर्नवा यह पाचों द्रव्य किम्बा शतमूली, क्षीर-काकोली गन्धतृण, जेठीमध और घृत यह सब द्रव्य पीसकर गरम लेप करनेसे मस्तक पार्श्व और कन्धेका दर्द आराम होता है। रक्त वमनके लिये महावरका पानी २ तोले आधा तोला सहतके साथ या कुकुरसोंकिका रस २ तोले पिलाना। रक्तपित्तमें जो सब योग और औषध रक्त वमन निवारणके लिये कह आये है, उसमें जो सब क्रिया ज्वरादिको अविरोधी है वह भी प्रयोग कर सकते है। पार्श्वशूल, ज्वर श्वास, और पीनस आदि उपद्रवमें धनिया, पीपल, सोंठ, सरिवन, कण्टकारी वृहती, गोक्षुर, बेलकी छाल, स्योनाक छाल, गाम्भारी, पाटला छाल और गनियारीकी छाल, इन सब द्रव्योंका काढा पिलाना। ज्वर, कास, स्वरभङ्ग और रक्तपित्त आदि रोग समूहोंको औषधं लक्षणानुसार विचार कर इस रोगमें मिलित भावसे प्रयोग कर सकते है। इसके सिवाय लवङ्गादि चूर्ण, सितोपलादि लेह, वृहद्वासावलेह, च्यवन-प्राश, द्राक्षारिष्ट, वृहत् चन्द्रामृत रस, जयकेसरी, मृगाङ्क रस, महा मृगाङ्क रस, हेमगर्भपोटली रस, राजमृगाङ्क रस, कांचनाभ्र, वृहत्

काञ्चनाभ्र, रसेन्द्र और वृहत रसेन्द्र गुड़िका, रत्नगर्भ पोट्टली रस, सर्व्वाङ्गसुन्दर रस, अलापञ्चक घृत, दलागर्भ घृत, जीवन्त्याद्य घृत और महाचन्दनादि तैल यक्ष्मा रोगके प्रशस्त औषध है हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करानेसे कास, श्वास और छातीका दर्द आदि उपद्रव जलदी आराम होता है। रक्त वमन हो तो कस्तुरी संयुक्त कोई औषध प्रयोग करना उचित नहीं है। ज्वर हो तो घृत और तैल प्रयोग नही करना चाहिये।

उरःक्षत रोगमें यही सब औषध विचार कर प्रयोग करना। क्षीण रोगमें जिस धातुको क्षय होना अनुभवहो, उसी धातुका पुष्टिकारक पान भोजन और औषध व्यवहार करना चाहिये। अमृत-प्रास और खदंष्ट्रादि घृत आदि पुष्टिकारक औषध क्षीण रोगमें प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—रोगीका अग्निबल क्षीण न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगकी दाल, छाग, हरिण, कबूतर और मांसभोजी जीवका मांस, परवर, बैगन, गुलर, सैजनका डण्टा, पुराना सपेद कोहड़ा आदिकी तरकारी खानेको देना। तरकारी आदि घृत और सेंधा नमककी चीज देनी चाहिये। रातको जौ या गोहूंके आटेकी रोटी, मोहनभोग, और उपर कही तरकारी, छाग दूध अथवा थोड़ा गोदूध देना। कफके प्रकोपमें दिनको भात न दे रोटी खानेको देना। अग्नि बल क्षीण होनेमे दिनको भात या रोटी और रातको थोड़ा दूध मिला आरु-एरारुट और बार्लि आदि खानेको देना। दस्त भी अच्छी तरह जीर्ण न होनेमें दोनो वक्त साबु आदि हलका पथ्य देना। इस अवस्थामें जौ दो तोले, कुलथी २ तोले छाग मांस ८ तोले, पानी ६४ तोले एकमें औटाना २४ तोले रहते उतार कर छान लेना।

फिर २ तोले गरम घीसे उस काढेको छोंक कर थोडा हींग, पीपलका चूर्ण और सोंठका चूर्ण मिलाकर थोडी देर औटालेना, फिर अनारका रस थोडा मिलाकर पिलाना। यह जूस यक्ष्मा रोगमें विशेष हितजनक और पुष्टिकारक है।. गरम पानी ठण्ढाकर पिलाना। इस रोगमें शरीर सब्वदा कापडेसे ढका रखना चाहिये।

निषिद्धकर्म्म।—धूपमें बैठना, आग तापना, रातको जागना, सङ्गीत, चिल्लाकर बोलना, घोडा आदिकी सवारी पर चढना, मैथुन, मलमूत्रका वेग रोकना, कसरत, पैदल चलना, श्रमजनक कार्य्य करना, धूमपान, स्नान और मछली, दही, लाल मिरचा, अधिक लवण, सेम, मूली, आलु, उरद, शाक, अधिक हींग, पियाज, लहसन, आदि द्रव्य भोजन इस रोगमें अनिष्ट कारक है। शुक्र क्षयसे हुई पीडामें विशेष सावधान रहना चाहिये। जिस काममें मनमें कामवेग उपस्थित होनेकी सम्भावना है, उससे दूर वक्त अलग रहना।

कासरोग।

निदान और लक्षण।—मुख या नाकसे धूम या धूलि प्रवेश, वायुसे अपक्व रसको ऊर्द्ध गति, अति द्रुत भोजन करना आदिसे श्वासनलीमें भुक्तद्रव्यका प्रवेश; मल, मूत्र और छींकका

वेग रोकना आदि कारणोंसे वायु कुपित हो, पित्त-कफको कुपित करनेसे कास रोग उत्पन्न होता है। कांसेके बरतनसे चोट लगनेसे जैसी आवाज होतीहै मुखसे वैसही शब्द निकलना कास रोगका साधारण लक्षण है। कासरोग उत्पन्न होनेसे पहिले मुख और कण्ठनाली जौ आदिके छिकलेसे भरा मालूम होता है, गलेके भीतर खुजलाहट और कोई पदार्थ निगलती वक्त कण्ठमें दर्द मालूम होता है। कासरोग पांच प्रकार। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, उरःक्षतज और क्षयजात।

वात, पित्त और कफज कास लक्षण।—वातज कासमें हृदय, ललाट, पार्श्वद्वय, उदर और मस्तकमें शूलवत् वेदना, मुख सूखना, बलक्षय, सर्व्वदा कास वेग, स्वरभङ्ग और कफादि शून्य शुष्क कास, यही सब लक्षण लक्षित होते है। पित्तज कासमें छातीमें दाह, ज्वर मुख शोष, मुखका स्वाद कड़वा होना, पिपासा पीतवर्ण और कटुस्वादयुक्त वमन, देहको पाण्डु-वर्णता और कासके वक्त कण्ठमें दाह यह सब लक्षण प्रकाशित होते है। कफज कासमें रोगीका मुख कफसे लिपटा, देह अवसन्न, शिरोवेदना, सर्व्व शरीरमें कफ पूर्णता, आहारमें अनिच्छा, देहका भारीपन, कण्डु, निरन्तर कास वेग और कासके साथ गाढ़ा कफ निकलना, यही सब लक्षण दिखाई देते है।

क्षयज कास निदान और लक्षण।—उरःक्षत रोगमें जो सब कारण लिख आये है, क्षतज कासभी उन्ही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसमें पहिले कफहीन शुष्क कास होता है, फिर कास वेगसे क्षतस्थान विदीर्ण हो खून जाना, कण्ठमें अत्यन्त दर्द, छाती तोड़नेकी तरह दर्द, तीक्ष्ण सूची विद्धवत् कष्ट और असह्य क्लेश; पार्श्वद्वय भङ्गवत् शूलवेदना, सन्धिस्थान

समूहोंमें दर्द, ज्वर, श्वास तृष्णा, स्वरभङ्ग और खांसनेके समय कबूतरके शब्दकी तरह कण्ठस्वर होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

क्षयज कासका निदान और लक्षण।—अपथ्य भोजन, विषम अर्थात् किसी दिन काम, किसी दिन अधिक अथवा अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, अति मैथुन, मल मूत्रादिकावेग धारण और आहारके अभावसे अपनेको धिक्कार देना वा तज्जन्य शोकाभिभूत होना आदि कारणोंसे पाचकाग्नि दूषित होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो क्षयज कास उत्पन्न होता है। इससे वदनमें दर्द, दाह, मूर्च्छा, क्रमशः देहकी शुष्कता दुर्ब्बलता, बलक्षोण मांसक्षोण और खांसीके साथ पीप रक्तका निकलना आदि लक्षण दिखाई देता है।

प्रतिश्यायज कास।—इन सब कारणोंके सिवाय प्रतिश्याय अर्थात् "सर्द्दी" से भी अकसर कास रोग उत्पन्न होते देखा गया है। नासारोगाधिकारमें प्रतिश्यायके लक्षण और चिकित्सा लिखेंगे। तथापि यहां इतना अवश्य कहना चाहिये कि सामान्य सर्द्दी खांसीकी भी उपेक्षा न कर उसकी चिकित्सा करना अवश्य है।

कासरोगका साध्यासाध्यता।—क्षतज और क्षयज कास स्वभावतः ही असाध्य है। पर रोगीका बल, और मांस क्षीण न होनेसे तथा रोग थोड़े दिनका होतो आराम होनेकी आशा है। वृद्धापेमें जो कास उत्पन्न होता है वह भी असाध्य है। पर औषधादि व्यवहारसे याप्य होजाता है। दूसरा कोई कास साध्य नहीं है; सुतरां रोग उत्पन्न होते ही चिकित्साभें मनोयोगी होना चाहिये।

चिकित्सा।—वातज कासमें वेलकी छाल, स्योनाककी छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल और गनियारीकी छाल, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिला पिलाना। शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, बमनैठी, मोथा, जवासा और पुराना गुड़, किम्वा बमनैठी, शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, शोंठ और पुराना गुड़, यह तीन प्रकारके योगोंमेंसे कोई एक योग तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेसे वातज कास आराम होता है। पित्तज कासमें वृहती, कण्टकारी किसमिस, अडूसा, कपूर, बाला, शोंठ और पीपल इन सबका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पिलाना। वृहती, बाला, कण्टकारी, अडूसा और द्राक्षा; इन सबके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसेभी पित्तज कास उपशम होता है। पद्मबीजका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे पित्तज कास शान्त होता है। कफज कासमें पीपल, पीपला मूल और चाभ, चितामूल और शोंठ, इसका काढ़ा दूधमें औटाकर पिलाना। इससे कास, श्वास और ज्वरका उपशम हो बल और अग्निकी वृद्धि होती है। कूठ कटफल, वमनैठी शोंठ और पीपल इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीनेसे कफज कास, श्वास और हृद्रोग आराम होता है। सहत और आदीका रस पीनेसे भी कास श्वास और सर्दी खांसी आराम होता है। दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे भी कफज कास, ज्वर और पार्श्ववेदना दूर होता है। क्षयज कासमें, इक्षु, इक्षुवालिका, पद्मकाष्ठ, मृणाल, नीलकमल, सफेद चन्दन, जेठीमध द्राक्षा, लाक्षा, काकड़ाशिङ्गी और शतमूली सबका समभाग लेना फिर कोई एक वस्तुका दूना वंशलोचन और सर्व्व समष्टिकी चौगुनी चीनी, यह सब द्रव्य एकमें मिला घी और सहतमें मिला चाटना। क्षयज कासमें चन्दन इचके छालके चूर्ण-

को अडूसेके रसको ७ बार भावना दे सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटनेसे च्यज कासका रक्तस्राव आराम होता है।

शास्त्रीय औषध।—पीपलके चूर्णके साथ कण्टकारीका काढा पीनेसे अथवा कण्टकारीका चूर्ण और पीपल का चूर्ण समभाग सहतमें मिलाकर चाटनेसे सबप्रकारका कास आराम होता है। बहेडामें घी लगाकर गोबरसे लपेट पूट पाकमें सिजाना फिर वही बहेडा मुखमें रखनेसे कास रोग आराम होताहै। अडूसेका पत्ता पुटमें रखकर अर्थात् अडूसेके पत्तेको केलेके पत्तेसे लपेटना फिर कपडमिट्टीकर सिजाना इस पत्तेका रस, पीपल का चूर्ण और सहतके साथ पिलाना। अथवा अडूसेके छालका काढा पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। यह दोनो दवा कास निवारक है। जेठीमधका काढा सामान्य खासीमे विशेष उपकारी है। कटफलादि काढा मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, वासावलेह, तालीशाद्य मोदक, चन्द्रामृत रस, कासकुठार रस, वृहत् रसेन्द्र-गुडिका, शृङ्गाराभ्र, वृहत् शृङ्गाराभ्र; सोर्व्वभौम रस, कामलक्ष्मी-विलास, समशर्कर लौह, वसन्ततिलक रस, वृहत् कण्टकारी घृत, दशमूल षटपलक घृत, चन्दनाद्य तैल, वृहत् चन्दनाद्य तैल कास-रोगके प्रशस्त औषध है। अवस्थानुसार उक्त औषध देनेसे अति सुन्दर फल मिलताहै। हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करनेसे दुरा रोग्य खांसी भी थोडेही दिनमें आरामहोती है।

पथ्यापथ्य—रक्तपित्त राजयक्ष्मारोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, कास रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। पर इस रोगकी प्रथम अवस्थामें कोई, मागुर आदि छोटी मछलीका शुरूवा, मिसरी आदि और काकमाचीकी शाक खानेको देना।

हिक्का और श्वास निदान।

हिक्का और श्वास निदान।—खाया हुआ पदार्थ उपयुक्त समयमें हजम न हो पेटसे स्तब्ध होकर रहे, अथवा जो सब द्रव्य भोजन करनेसे छाती और कण्ठमें जलन पैदा हो वही सब द्रव्य भोजन, गुरुपाक, रुक्ष, कफ जनक और शीतल द्रव्य भोजन, शीतल स्थानमें वास, नासिका आदि रास्तेसे धूम और धूलि प्रवेश, धूप और ओसमें फिरना, छातीमें चोट लगे ऐसी कसरत, अधिक बोझा उठाना, बहुत दूर तक पैदल चलना, मल मूत्रका वेग रोकना, अनशन (उपवास) और रुक्षकारक कार्य्यादिसे हिक्का और श्वास उत्पन्न होता है।

लक्षण और प्रकार भेद।—हिक्का रोगका साधारण लक्षण, प्राण और उदान वायु कुपित हो बार बार उपरको तरफ जाता है और इसीसे हिक्‌हिक् शब्दके साथ वायु निकलता रहता है। यह रोग प्रकाश होनेसे पहिले कण्ठ और छातीमें भारबोध, मुखका स्वाद कसेला और पेटमें गुड़ गुड़ शब्द होना आदि लक्षण मालूम होते है। हिक्का रोग पांच प्रकार,—अन्नज, यमल, क्षुद्र, गम्भीर और महा हिक्का। अपरिमित पान भोजनसे सहसा वायु कुपित और ऊर्द्धगामी होनेसे जो हिक्का उत्पन्न होती है, उसका नाम अन्नज हिक्का। मस्तक और गरदन कपाते हुए दो दो बार निकलती है, उसका नाम यमल। कण्ठ और छातीके सन्धिस्थानसे उत्पन्न हो जो हिक्का मन्दवेग और देरसे निकले उसका नाम क्षुद्र। जो हिक्का नाभिस्थानसे उत्पन्न हो गम्भीर स्वरसे निकले और

तृष्णा, ज्वर आदि नाना प्रकार उपद्रव उपस्थित हो तो, उसको गम्भीर हिक्का कहते है, जो हिक्का निरन्तर आती रहे, तथा आती वक्त सब शरीरमें कम्प हो और जिससे वस्ति, हृदय तथा मस्तक आदि प्रधान मर्मस्थान समूहोंका विदीर्ण होना मालूम हो उसको महाहिक्का कहते है।

प्राणनाशक हिक्का।—गम्भीर और महाहिक्का उपस्थित होनेसे रोगोकी मृत्यु निश्चय जानना। अन्यान्य हिक्कामें जिसका सब शरीर विस्तृत या आकुञ्चित और दृष्टि ऊर्द्धगत हो; अथवा जिस हिक्कासे रोगी चोण और हिक्का अत्यन्त आती हो तो मृत्यु होती है, जिस क्के वातादि दोष अत्यन्त सञ्चित हो, किम्वा वृद्ध या अ य मैथुनासक्त मनुष्यको कोइ एक हिक्का उपस्थित होनेसे वह प्राणका नाश करतो है। यमल हिक्काके साथ प्रदाह, दाह, तृष्णा और मूर्च्छा आदि उपद्रव रहनेसे वहभी घातक है। किन्तु यदि रोगोका बल चोण न होकर मन प्रसन्न रहे, धातु समूह स्थिर और इन्द्रियोंमें शक्ति भरपूर हो तो इस अवस्थामें भी आराम होनेको आशा कर सकते है।

श्वासरोगका पूर्व्वलक्षण।—पूर्व्वोक्तकारणोंसे कुपित वायु और कफ मिलाकर जब प्राण और उदान वायुवाही स्रोत समूहोंको बन्द करताहै और कफ कर्त्तृक वायु अवरुद्ध और बिना गंगामो हो इधर उधर फिरता है, तब श्वासरोग उत्पन्न होता है। श्वासरोग प्रकाशित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, पेट फूलना, शूल, मल मूत्र थोडा निकलना या रोध, मुख बेस्वाद होना, और मस्तक या ललाटमें दर्द आदि पूर्व्वरूप दिखाई देता है। श्वास रोग पाच प्रकार, क्षुद्रश्वास, तमक श्वास, प्रतमक श्वास, छिन्न श्वास, ऊर्द्ध-श्वास और महाश्वास।

क्षुद्रश्वास।—रूक्षद्रव्य सेवन और अधिक परिश्रमसे कोष्ठस्थित वायु कुपित हो ऊर्द्धगत होनेसे क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। यह अन्यान्य श्वासकी तरह कष्टदायक या प्राण नाशक नहीं है।

तमक-और प्रमतक श्वास लक्षण।—जब वायु ऊर्द्धगत स्रोत समूहोंमें जाकर कफको बढ़ाता है तथा उसी कफको गति रुद्ध होनेसे तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके पहिले ग्रीवा और मस्तकमें दर्द होता है; फिर कण्ठसे घर घर शब्द निकलना, चारो तरफ अन्धियाला देखना, तृष्णा, आलस्य, खांसी श्वाससे मूर्च्छा, कफ निकलनेसे थोड़ा आराम मालूम होना, गलेमें सुरसुराहट, कष्टसे बोलना, नींद न आना, सोनेसे अधिक श्वास आना बैठनेसे थोड़ा आराम बोध, दोनो पसुलियोंमें दर्द, उष्णद्रव्य और उष्ण स्पर्शकी इच्छा, दोनो आंखोंमें शोथ, ललाटमें पसीना, अत्यन्त कष्ट, मुंह सूखना, बार बार तीव्र वेगसे दम फूलना और शरीर हिलना, यह सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा रहनेसे उसको प्रमतक श्वास कहते हैं। प्रमतक श्वासको कोई सन्तमक श्वास भी कहते हैं।

छिन्न श्वास।—अति कष्ट और अत्यन्त जोरसे विच्छिन्न भाव अर्थात् ठहर ठहर कर दम फूलना अथवा जिस श्वासमें एक दम निश्वास बन्द हो जाता है उसको छिन्न श्वास कहते हैं। इस श्वासमें अत्यन्त कष्ट, उदर विदीर्ण होनेकी तरह दर्द, आनाह, पसीना आना, मूर्च्छा, वस्तिमें दाह, नेत्रद्वयकी चञ्चलता और पानी जाना, अङ्गकी क्षमता और विवर्णता एक आंख लाल होना, चित्तमें उद्वेग, मुंह सोष और प्रलाप, यह सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

ऊर्द्ध्वश्वास लक्षण।—ऊर्द्ध्वश्वासमें रोगी जैसे जोरसे श्वास लेता है वैसे वेगसे श्वास निकाल नहीं सकता। रोगीका मुख और स्रोतः समूह कफसे आवृत रहनेसे वायु कुपित हो विशेष कष्ट होता है। तथा इसी श्वासमें ऊर्द्धदृष्टि, विभ्रान्त चक्षु, मूर्च्छा, अङ्गवेदना, मुखका सफेद होना, चित्तकी विकलता आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं।

महाश्वास लक्षण।—मत्त वृषको अटका रखनेसे जैसा वह कूदता और चिल्लाता है, महाश्वास रोगमें वायु ऊर्द्धगत होनेसे भी वैस ही शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलता है। दूरसे भी श्वासका शब्द सुनाई देता है। तथा इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट और उसका जी ठिकानें नहीं रहता। दोनों आंखें चञ्चल, विस्तृत, मुख विकृत, मल मूत्र रोध, बोली धीमी और मन भ्रान्त रहता है।

साङ्घातिकता।—इस पांच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वास स्वभावतः ही घातक है। इसमें से कोई एक उत्पन्न होनेसे मृत्यु होती है, तमक श्वासको प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे आराम होता है किम्वा चिकित्सासे एक दम आराम न हो तो याप्य रहता है। छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वासके प्रथम अवस्थाहीसे चिकित्सा करना चाहिये, रोगीके भाग्यसे यहभी आराम होते देखा गया है।

चिकित्सा।—वायुका अनुलोमक या वायु नाशक तथा उष्णवीर्य्य कोई क्रिया हिक्का और श्वास रोगका उपकारी है। हिक्का रोगमें पेटमें और श्वास रोगमें छातीमें तेल मर्द्दन कर स्वेद देनेसे और वमन करानेसे उपकार होता है। किन्तु रोगीका बल आदि क्षीण होनेसे वमन कराना उचित नहीं है। पक्वमके अर्थका

चूर्ण दो आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करानेसे वमन होता है।

हिक्का चिकित्सा।—हिक्का रोगमें बेरके गुठलीकी गूदी, सौवीराञ्जन और धानका लावा अथवा कुटकी और स्वर्ण-गेरू, किम्वा पीपल, आंवला, चीनी और सोंठ; अथवा हीराकस और कैथकी गूदी; किम्वा बटलाका फूल, फल और खजूरका गूदा; इन ६ योगोंमें से कोई एक सहतके साथ सेवन करना। जेठीमधका चूर्ण, सहतके साथ, पीपल चूर्ण चीनीके साथ, किम्वा सोंठका चूर्ण गुडके साथ मिलाकर नास लेना। मक्खीका बीट स्तनदूधके साथ अथवा महावरके पानीमें मिलाकर अथवा स्तनदूध में लाल चन्दन घिसकर नास लेना। सोंठ २ तोले बकरीका दूध १ पाव और पानी एक सेर एक साथ औटाना दूध रहने पर छान-कर पीना। बडा नीबूका रस, सहत और सोचर या सेंधा नमक मिला पीना। मूंगाभस्म, शङ्खभस्म, हरीतकी, आंवला, बहेडा और गेरूमिट्टीका चूर्ण, घी और सहतमें मिलाकर चाटना। बडी इलायचीका चूर्ण और झीनी एकमें मिला सेवन करना। केलेके लडके रसमें चीनी मिला पीना अथवा नास लेना। पीसी हुई राई पानीमें मिला रख छोडना फिर पानी उपर और राई नीचे बैठ जानेपर वही पानी बार बार पिलाना। चीनी और गोलमिरच-का चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोलमि-रचका चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोल-मिरचका चूर्ण निर्धूम कोयलेकी आंचपर रख धूम नाकसे खींचना।

श्वासवेग शान्तिका उपाय।—श्वास रोगमें कनक धतुरेका फल, डाल और पत्ता टूकडा २ कर सुखा लेना, फिर चिलममें रख पीनेसे प्रवल श्वास (दमा) आराम होता है। थोडा

मोरा पानीमें भिंगोना, तथा उसी पानीमें सफेद कपड़े का एक टुकड़ा भिंगोकर सुखा लेना, फिर उसी टुकड़े को लपेट कर चुरुटकी तरह पीना, अथवा देवदारु, बरियारा और जटामासी समभाग पीसकर एक सच्छिद्र बत्ती बनाना ; सूख जाने पर उसमें घी लगा चुरुटकी तरह पीना, यह दो प्रकार के धूम पानसे श्वास का वेग जल्दी दूर होता है। मोरका पङ्ख बन्द बरतनमें भस्मकर उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर चटानेसे श्वासवेग और प्रबल हिक्का रोग आराम होता है। हरीतकी और सोंठ किम्वा गुड़, जवाखार और गोलमिरच एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ पीनेसे श्वास और हिक्का रोग आराम होता है। श्वासका वेग शान्त होनेपर रोग आराम होनेके लिये, हलदी, गोलमिरच, किसमिस, पुराना गुड़, रास्ना, पीपल और सठीका चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर चाटना। पुराना गुड़ और सरसोंका तेल समभाग मिलाकर पीना। पुराना सफेद कोंहड़े की गूदीका चूर्ण आधा तोला थोड़े गरम पानी में मिलाकर पीनेसे कास श्वास दोनों आराम होता है। आदीके रसमें पीपल चूर्ण ⌒) आनेभर, सेंधा नमक ⌒) आनेभर मिलाकर पीना। शोधित गन्धक चूर्ण घीके साथ ; अथवा शोधित गन्धक चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण घीके साथ सेवन करना। बेल-पत्तेका रस, अडूसेके पत्तेका रस, सरसोंके तेलके साथ पीना। गुरिच, सोंठ, बभनठी, कण्टकारी और तुलसी इन सबका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। दशमूलके काढ़ेमें कूठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल और छातीका दर्द आराम होता है।

शास्त्रीय औषध और हमारा श्वासारिष्ट।—

उक्त साधारण औषधसे पीड़ाका उपशम न हो तो भार्गी गुड़,

भार्गी शर्करा, शृङ्गी गुड़ घृत, पिप्पल्याद्य लौह, महाश्वासारि लौह, श्वासकुठार रस, श्वासभैरव रस, श्वासचिन्तामणि, हिंस्राद्य घृत, वृहत् चन्दनादि तैल और कनकासव; यह सब औषध अवस्था विचार कर प्रयोग करना। हमारा "श्वासारिष्ट" सब प्रकारके श्वास रोगको उत्कृष्ट औषध है, इसके पीतेही श्वासका वेग कम हो क्रमश: रोग निर्मूल आराम होता है।

पथ्यापथ्य ।—जिस प्रकारके आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम होवे, हिक्का और श्वास रोगमें वही साधारण पथ्य है। रक्तपित्त रोगमें जो सब आहारीय द्रव्योंका नाम लिख आये है, इसमें भी वही सब पानाहार व्यवहार करना। वायुका उपद्रव अधिक हो तो, पुरानो इमलो भिंगोया पानो पीनेसे उपकार होता है। मिश्रोके शरबतमें नोबूका रस मिलाकर पोना और नदी या प्रशस्त तालावमें स्नान इस अवस्थामें हितकारक है। पर कफके आधिक्यमें सर्ब्बत पोना या स्नान करना मना है। कफज श्वासमें मुहमें सुरतो रख थोड़ा थोड़ा रस पोनेसेबहुत उपकार होता है। रातको लघु आहार करना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य ।—गुरुपाक, रुक्ष और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, दही, मछली और मिर्चा आदि द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, अधिक परिश्रम, अग्नि या रौद्र सन्ताप, अधिक परिमाण भोजन, दुश्चिन्ता, शोक, क्रोध प्रभृति मनोविकार इस रोगमें सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

स्वरभेद।

निदान।—बहुत जोरसे बोलना, विषपान और कण्ठमें चोट लगना आदि कारणोंसे वातादि दोषत्रय स्वर वहा नाडियोंका आश्रय लेनेसे स्वरभेद या स्वरभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। यक्ष्मासे भी यह रोग उत्पन्न होता है। स्वरभङ्ग ६ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोज और क्षयज।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज लक्षण।

वातज स्वरभेदसे गदहेके स्वरको तरह कण्ठस्वर और मल, मूत्र, चक्षु और मुख कृष्णवर्ण होता है। पित्तज स्वरभेदमें कण्ठ सर्वदा कफसे भरा रहनेके कारण शब्द बहुत कम निकलता है, और रातको अपेक्षा दिनको शब्द कुछ साफ मालूम होता है। सन्निपातज स्वरभेदमें उक्त तीन दोषजात स्वरभङ्गके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होते है। मेदोज स्वरभेदमें गला कफ या मेदसे लिप्त रहता है, इससे कण्ठस्वर साफ नहीं निकलता तथा इस रोगमें रोगीको प्यास बहुत लगती हैं। क्षयज स्वरभेदमें स्वर बहुत क्षीण और शब्द धूमके साथ निकलना रोगीको मालूम होता है अर्थात् ऐसीही तकलीफ होती है। क्षयज और सन्निपातज स्वरभेद स्वभावतः दुःसाध्य है। दुर्ब्बल, क्षय और वृद्ध व्यक्तिका स्वरभेद, पुराना स्वरभेद, आजन्म जात स्वरभेद, अति स्थूल व्यक्तिका स्वरभेद और सम्पूर्ण लक्षणयुक्त सन्निपातज स्वरभेद असाध्य है। क्षयज स्वरभेदमें एक दम शब्द उच्चारण बन्द हो जानेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

चिकित्सा।—स्वरभङ्ग रोगमें तैल मिला खैर अथवा हरीतकी और पीपलका चूर्ण; किम्वा हरीतकी और शोंठका चूर्ण मुखमें रखनेमें विशेष उपकार होता है। अजमोदा, हलदी, आंवला, यवक्षार और चाभकी जड़ सबका समभाग चूर्ण घी और सहतके साथ चाटनेसे स्वरभेद आराम होता है। बेरका पत्ता पीस घीमें भूंजकर खानेसे स्वरभेद और कासरोग उपशम होता है। मृगनाभ्यादि अवलेह, चव्यादि चूर्ण, निदिग्धिका अवलेह, ताम्र-काभ्र, सारस्वत घृत और भृङ्गराजाद्य घृत स्वरभेद रोगका प्रशस्त औषध है। उक्त औषधोंके सिवाय कास और श्वास रोगके कई औषध भी विचारकर इसमें दे सकते है।

पथ्यापथ्य।—वातज स्वरभेदमें घृत और पुराने गुड़के साथ अन्न भोजन कर थोड़ा गरम पानी पीना; पित्तज स्वरभेदमें दुग्धान्न भोजन और मेदोज तथा कफज स्वरभङ्गमें रुच अन्न पान उपकारी है। अन्यान्य पथापथ्यके नियम कास और श्वास रोगकी तरह प्रतिपालन करना आवश्यक है।

अरोचक (अरुचि)।

संज्ञा, निदान और प्रकारभेद।—भूख रहते जिस रोगमें खाया नही जाता और कोई वस्तु भी जिसमें खानेकी जी नही चाहता, उसको अरोचक रोग कहते है। यह रोग पांच

प्रकारका है; वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक। भय, शोक, अति क्रोध, अति लोभ, घृणाजनक भोज्य द्रव्य, घृणा जनक रूपदर्शन या घृणाजनक गन्ध आघ्राण आदि कारणोंसे जो अरोचक रोग उत्पन्न होता है, उसको आगन्तुक अरोचक कहते हैं।

भिन्न दोषज लक्षण।—वातज अरोचक रोगोंके मुखका स्वाद कसैला और दांत खट्टा खायेकी तरह और छातोमें दर्द होता है। पित्तज अरोचकके मुखका स्वाद तिक्त, अम्ल, बेस्वाद, दुर्गन्धयुक्त, उष्ण स्पर्श और तृष्णा, दाह, तथा चूसनेकी तरह पोड़ा होती है। कफज अरोचकसे मुखका स्वाद मधुर या लवण रस, चटचटा, शीतल और कफलिप्त तथा कफ निकलता रहता है। सन्निपातज अरोचकमें वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं, अर्थात् मुखका स्वाद बदलता रहता है। आगन्तुक अरोचकमें मुखका स्वाद बदलता नहीं तथापि अरुचि होती है, इसमें चित्तको व्याकुलता, मोह और जड़ता आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा।—वातज अरोचकमें बस्तिकर्म्म (पिचकारी) पित्तजमें विरेचन, कफजमें वमन और आगन्तुक अरोचकमें मनको प्रसन्न रखना ही साधारण चिकित्सा है। दिनको भोजनके पहिले नमक और आदो खानेसे सब प्रकार अरुचि आराम हो अग्निको दोप्ति और कण्ठ शुद्ध होता है। कूठ, सौंचल नमक, जीरा, चीनी, गोलमिर्च और काला नमक; अथवा आंवला, बड़ो लायची, पद्मकाष्ठ, खस, पोपल, चन्दन और नीलाकमल; किम्वा लोध, चाभ हरीतकी शोठ, पोपल, गोलमिर्च और जवाक्षार; अथवा नरम अनारके पत्तेका रस जीरा और चीनी, इन

में दर्द, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें सूई गडानेकी तरह दर्द कास, स्वरभेद, अङ्गमें सूचीविद्धवत् वेदना, प्रबल उद्गार और फेनीला, पिच्छिल, पतला कसैला और तेज वमन होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तज लक्षण।—पित्तज वमन रोगमें मूर्च्छा, पिपासा, मुखशोष, मस्तक, तालु, और चक्षु द्वयमें सन्ताप, अन्धकार दर्शन और पीला, हरा या धूम्रवर्ण, थोडा कडुआ, अति उष्ण पदार्थ वमन और वमनके समय कण्ठमें जलन; यही सब लक्षण दिखाई देते हैं।

कफज लक्षण।—कफज वमन रोगमें तन्द्रा, मुखका स्वाद मीठा, कफस्राव, भोजनकी अनिच्छा, निद्रा, अरुचि, देहका भारीपन और स्निग्ध, घना, मधुर रसयुक्त सफेद वमन, वमनके साथ शरीर रोमाञ्च और अतिशय कष्ट होता है।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज वमन रोगमें शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास, मूर्च्छा और खेद लवण रसयुक्त, उष्ण, नील या लाल रङ्गका घना पदार्थ वमन होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

आगन्तुक वमन।—कुत्सित द्रव्य भोजन, किसी प्रकारके घृणाजनक वस्तु सूङ्घने या देखनेसे जो वमन होता है तथा गर्भावस्था, क्रिमिरोग और खट्टा खानेसे जो वमन होता है उसको आगन्तुक वमन कहते हैं। इस वमन रोगके वातादि दोष त्रयमें जिस दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित हो उसी दोषके वमन रोगमें उसको मिलाना चाहिये। केवल क्रिमिके वमन रोगमें अत्यन्त वेदना, अधिक वमन वेग और क्रिमिज हृद्रोगके कई लक्षण अधिक प्रकाशित होते हैं।

रोगका उपद्रव और साध्यासाध्य।—वमन रोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र और जलवाही स्रोत समूहोंको बन्दकर ऊर्द्धगत हो और उससे यदि रोगोके पेटका पूर्व्व सञ्चित पित्त, कफ या वायु दूषित खेदादि वमन हुआ करे; और वस्तिमें मल मूत्र की तरह गन्ध हो तथा रोगी तृष्णा, श्वास और हिक्कासे पीड़ित हो तो उसको मृत्यु जानना। जिस वमन रोगमें रोगी चीण हो जाय और सर्व्वदा रक्तपित्त मिला पदार्थ वमन करे, अथवा वान्त पदार्थमें यदि मयूर पुच्छकी तरह आभा दिखाई दे, किम्बा वमन रोगके साथ हो यदि कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग और तमक श्वास यह सब उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोग असाध्य होता है।

चिकित्सा।—कच्चे नारियलका पानी, फरुहो या जली रोटी भिंगाया पानी और बरफका पानी वमन निवारणके हकमें उत्कृष्ट औषध है। बड़ीलायचीका काढा पीनेसे भी वमन रोग आराम होता है।, रातको गुरिच भिंगो रखना, सबेरे वही पानी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे भी वमन आराम होता है। पीपल वृचको सूखी छाल जलाकर किसी पात्रमें पानीमें डुबा रखना, फिर वही पानी पीनेसे अति दुर्निवार वमन भी आराम होता है। खेतपापड़ा, बेलकी जड़, या गुरिचका काढा सहतके साथ अथवा मूर्व्वाकी जड़का काढ़ा चावलके धोवनके साथ पीनेसे सब प्रकारका वमन दूर होता है। जेठीमध और लाल चन्दन दूधमें पीसकर पीनेसे रक्त वमन आराम होता है। सहतके साथ हरीतकी चूर्ण चाटनेसे दस्त हो वमन आराम होते देखा गया है। आवलेका रस १ तोला और कईथका रस १ तोला, थोड़ा पीपलका चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटनेसे प्रबल वमन

भी आराम होता है। सोचल नमक चीनी और गोलमिरचका चूर्ण समभाग सहतके साथ चाटनेसे वमन रोग आराम होता है। समभाग दूध और पानी ; किम्वा सेंधा नमक और घी एकत्र पान करनेसे वातज वमनमें विशेष उपकार होता है। जामुनकी गुठली और बैरके गुठलीकी गूदी अथवा मोथा और काकडाशिङ्गी ; सहतके साथ चाटनेसे कफज वमन आराम होता है। तेलचट्टेका बीट ३।४ दाना थोड़े पानीमें भिंगोकर पीनेसे अति दुर्निवार वमन भी आराम होता है। एलादि चूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वज रस और पद्म काद्य घृत वमन रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य ।—सब प्रकारके वमन रोगमें आमाशयका उत्क्लेश रहता है, इससे पहिले उपवास करना ही उचित है। वेग शान्त होनेपर लघुपाक, वायु अनुलोमक और रुचिकर आहारादि क्रमश: देना चाहिये, वमन वेग रहते आहार देनेकी आवश्यकता हो तो भूंजे मूंगके साथ धानके लावाका चूर्ण, सहत और चीनी मिलाकर खानेको देना ; इससे वमन, भेद, ज्वर, दाह और पिपासा की शान्ति होती है। वमन वेग शान्त होनेपर सब वस्तु आहार और ज्वरादि उपसर्ग न रहनेसे अभ्यासके अनुसार स्नान कर सकते है। साफ पानाहार, साफ स्थानमें वास, सुगन्ध सूंघना और मनको प्रसन्न रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

जिस कारणसे घृणा उत्पन्न हो, वही सब कारण और रौद्रादि आतप सेवन प्रभृति वमन रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

तृष्णारोग।

—:*:—

निदान।—भय, श्रम बलादि चयसे वायु कुपित होता है, तथा यही सब कारणोंसे वायु; कटु या अम्लरस भोजन, क्रोध और उपवास आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। जलवाही स्रोत समूह वायु प्रभृति दोषत्रयसे कुपित होनेपर भी तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। इस रोगके उत्पन्न होनेसे पहिले तालु, कण्ठ, ओष्ठ और मुख सूखना, दाह, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम और सन्ताप, यह सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। तृष्णा रोग सात प्रकार,—वातज, पित्तज, कफज, चतज, चयज, आमज और अन्नज।

भिन्न २ दोषज रोग लक्षण।—वातज तृष्णा रोगमें मुंह सूखा और म्लान, ललाट और मस्तकमें सूची विद्धवत् वेदना, रस और जलवाही स्रोत समूहोंका रोध और स्वादका बिगडना यही सब लक्षण लक्षित होता है। पित्तज तृष्णामें मूर्च्छा, आहारमें अनिच्छा, प्रलाप, दाह, दोनो आंखें लाल, अत्यन्त प्यास, शीतल द्रव्यपर इच्छा, मुखका स्वाद कड़वा और अनुताप, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। कफज तृष्णामें अधिक निद्रा, मुखका स्वाद मीठा और शरीर शुष्क आदि लक्षण दिखाई देता है। शस्त्रादिसे शरीर चत हो अधिक रक्तस्राव होनेसे या चतज वेदनासे जो तृष्णा होती है उसको चतज तृष्णा कहते है। रसक्षयसे जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको चयज तृष्णा कहते है। इस तृष्णासे रोगी बार बार पानी पीने परभी तृप्त नहीं

जाता। तथा छातीमें दर्द, कम्प और मनकी शून्यता आदि लक्षण प्रकाशित होता है। आमज तृष्णामें छातीमें शूल, निष्ठीवन, शारीरिक अवसन्नता और तीन दोषजात तृष्णाके भी लक्षण समूह प्रकाशित होते हैं। घृत, तैल प्रभृति अधिक चिकना पदार्थ, अम्ल, लवण और कटु रस तथा गुरुपाक अन्न भोजन करनेसे जो जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको अन्नज तृष्णा कहते हैं। दूसरे कोई रोगके उपसर्गसे तृष्णा होनेसे उसका उपसर्गज तृष्णा कहते हैं। यह वातादि दोषजात तृष्णाके अन्तगत है इसमे इसका अलग नही किया गया। इसमें स्वरकी चीणता, मूर्च्छा, क्लान्ति और मुख कण्ठ, तालु बार बार सूखता है, इससे शरीर बहुत सूख जाता है और यह अति कष्टसाध्य है।

सांघातिक लक्षण।—ज्वर, मूर्च्छा, चय, कास, श्वास आदि रोगोंसे पीड़ित मनुष्यको कोई एक तृष्णा रोग प्रबल होनेसे और साथही वमन और मुख शोष आदि उपद्रवयुक्त होनेसे रोगीको मृत्यु होती है।

चिकित्सा।—वायुके तृष्णारोगमें गुर्चका रस उपकारी है, पित्तज तृष्णामें गुलरके पक्का फलका रस या काढा सेवन उपकारी है। गाम्भारी फल, चीनी, लाल चन्दन, खस, पद्मकाठ, द्राक्षा और जेठीमध, यह सब द्रव्य मिलो २ तोले, आधा पाव गरम पानीमें पहिले दिन शामको भिगोकर दूसरे दिन सबेरे छानकर पीना पित्तज तृष्णामें यह उपकारी है। तथा यह सब द्रव्य पीसकर पीनेसे भी फायदा होता है। मोथा, खेतपापड़ा, बाला, धनिया, खस और लाल चन्दन प्रत्येक साढे पाच आनेभर एकमें मिला २ सेर पानीमें औटाना एक सेर पानी रहते छानकर थोडा थोडा पीनेसे तृष्णा, दाह और ज्वर आराम होता है।

बेलकी छाल, अरहरका पत्ता, धवईफूल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शाठ और कुशमूल, यह सब द्रव्य २ ताले २ सेर पानीमें औटाला एक सेर रहते छानकर थोडा थाडा पीनेसे कफज तृष्णा शान्त होती है। नीमकी छाल या पत्ता अथवा फूलका काढा गरम पीकर के कानेसेभी कफज तृष्णा शान्त होती है। आम जन्य तृष्णा रोगमें पीपल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, अम्लवेतस, गोलमरिच, अजवाईन, मैलावेके गुठली प्रभृति अग्नि दीपनीय द्रव्यका काढा बनाकर वेलकी गूदी, बच और हींगका चूर्ण मिलाकर पीना। क्षतज तृष्णामें मांस रस और रक्त पान विशेष उपकारी है। क्षयज तृष्णामें दूध और मधु मिला पानी और मांस रस हितकारी है। अन्नज तृष्णामें वमन कराना ही प्रशस्त चिकित्सा है। आंवला, पद्ममूल, कूठ, धानका लावा, और बडकामोर इन सबका समभाग चूर्ण सहतमें मिला मुहमें रखनेसे सब प्रकारको तृष्णा और मुखशोष आराम होता है। आम और जामुनके पत्तेका किम्बा आम जामुनके छालका काढा अथवा आम जामुनके गुठलीको गूदी घोटाकर सहत मिलाकर पीने से वमन और तृष्णा आराम होता हैं। धनियाका काढा बासोकर पीनेसे तृष्णा आराम होते देखा गया है। बडकोमोर, चीनी, लोध, अनार, जेठीमध और सहत ; अथवा चावलकी धावनके साथ सेवन करनेसे तृष्णा आराम होती है। द्राक्षारस, इक्षुरस, दूध, जेठीमध का काढा सहत या मुदो फूलका रस नाकसे पान करनेसे प्रबल पिपासा शान्त होती है। बडे नीबूका जीरा, सहत और अनार एकमें पीसकर कुल्ला करनेसे सब प्रकारको तृष्णा आराम होती है। तालु शोष रोगमें दूध, इक्षुरस, गुड या कोई अम्ल द्रव्य पानीमें घोलकर कुल्ला करना। कुमुदेश्वर रस सब प्रकारके तृष्णा रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—रुचिजनक, मधुर रस विशिष्ट और शीतल द्रव्य तृष्णा रोगमें सुपथ्य है। उष्णवीर्य्य और शारीरिक उद्वेग कारक, तृष्णा रोगमें यही सब पानाहारादि सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

मूर्च्छा भ्रम और सन्न्यास।

निदान।—विरुद्ध द्रव्य पान, भोजन, मल मूत्रादि वेग धारण, अस्त्र शस्त्रादिसे शरीरमें आघात प्राप्ति और सत्वगुणकी अल्पता आदि कारणोंसे वातादि उग्रदोषत्रय मनोधिष्ठान अथवा शिराधिष्ठान स्रोत समूहोंमें प्रविष्ट होनेसे मूर्च्छारोग उत्पन्न होता है। अथवा शिरा, धमनी आदि जिस नाड़ीके अवलम्बनसे मन और इन्द्रिय समूहोंमें जाता है, वही नाड़ी वातादि दोषोंसे आच्छादित होनेपर, तमोगुण वर्द्धित हो मूर्च्छा रोग उत्पन्न होता है। सुख दुःखादि अनुभव शक्तिहीन हो, काष्ठादिके तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पड़नाही इस रोगका साधारण लक्षण है। मूर्च्छा उपस्थित होनेसे पहिले हृदयमें पीड़ा, जृम्हा, ग्लानि और ज्ञानकी कमी यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। मूर्च्छा रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। भिन्न भिन्न मूर्च्छामें पृथक पृथक दोषका आधिक्य रहनेपर भी मूर्च्छा रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य रहता है, कारण पित्त और तमोगुण ही मूर्च्छा रोगका आरम्भक है।

भिन्न भिन्न दोषभेदके लक्षण।—वातज मूर्च्छामें रोगी, नील, कृष्ण अथवा अरुणवर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है और थोड़ेही देरमें होशमें आता है, तथा कम्प, अङ्गमर्द, हृदयमें पीड़ा, शारीरिक कृशता और देहका वर्ण श्याम या अरुण वर्ण होता है। पित्तज मूर्च्छामें रोगी लाल, पीला, अथवा हरित् वर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है। होश आनेपर पसीना, पिपासा, सन्ताप, दोनो आंखे लाल या पीतवर्ण, मलभेद और देह पीला होता है। कफज मूर्च्छामें रोगी साफ आकाशमें मेघकी आभा, मेघाच्छन्न या अन्धकारयुक्त देखते देखते मूर्च्छित होता है और देरसे होशमें आता है। होश आनपर सर्व्वाङ्ग गीले चमड़ेसे आच्छादितकी तरह भारी, मुखसे स्राव और जी मतलाता है। सन्निपातज मूर्च्छामें वातादि त्रिविध मूर्च्छाके लक्षण समूह मिले हुये मालूम होते है और अपस्मार रोगकी तरह प्रबल वेगसे पतित हो देरसे होशमें आता है, पर अपस्मारकी तरह फेन वमन, दांती लगना और नेत्रविकृति आदि भयानक अङ्गविकृति समूह इसमें प्रकाशित नहो होता। रक्तज मूर्च्छामें अङ्ग और दृष्टिस्तब्ध तथा श्वास बहुत कम चलती है। मद्यपान जनित मूर्च्छामें ज्ञानशून्य और विभ्रान्तचित्त हो जमीनपर गिरकर हाथ पैर पटकना और प्रलाप बकते बकते मूर्च्छित होता है। मद्य जीर्ण न होतेतक होशमें नही आता। विष मूर्च्छामें कम्प, निद्रा, तृष्णा, आंखके सामने अन्धियाला देखना और विष भक्षण जनित अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होते है।

भ्रमरोगका निदान और लक्षण।—वायु, पित्त और रजोगुण मिलकर भ्रम रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें रोगीको अपना शरीर और सब पदार्थ घूमता हुआ मालूम होता

है, इससे खड़ा नहीं रह सकता तथा खड़ा होनेपर गिर पड़ताहै।

सन्न्यास रोग।—वातादि दोष समूह अत्यन्त कुपित हो जब प्राणाधिष्ठान हृदयको दूषित करता है तथा दुर्ब्बल रोगीका मन और इन्द्रिय समूहोंका कार्य्य बन्दकर मूर्च्छित करता है, तब उसको सन्यास रोग कहते है। यह रोग अतिशय भयानक है। सूचीवेध, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण नस्य, आदि तुरन्त होशमें लाने-वाले उपाय न करनेसे होशमें नही आता, तथा रोगी भी थोड़े ही देरमें प्राणत्याग देता है।

चिकित्सा।—मूर्च्छा रोगके आक्रमण कालमें आंख और मुख आदि स्थानोंमें ठण्डे पानीका छीटा देकर होशमें लाना चाहिये, फिर थोड़ा देर नरम बिछौने पर सुलाकर ताड़के पंखेसे हवा करना उचित है। दांतो लगजाने पर उसके छुड़ानेका उपाय करना। पानीके छीटेमे होशमें न आवे तो नौसादरका टुकड़ा २ भाग और सूखा चूर्ण १ भाग शीशोमें भरकर सूंघनेको देना। अथवा सेंधा नमक, बच, गोलमिरच और पीपल समभाग पानीसे पीसकर नास देना। शिरीष बीज, पीपल, गोलमिरच, सेंधा नमक, लहसन, मैनसिल और बच; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर अथवा सेंधा नमक, गोलमिरच और मनसिल; यह तीन द्रव्य महतके साथ पीसकर आंखमे अञ्जन करनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। इसके सिवा "कुमुदासव" सेवन करानेसे मूर्च्छा आराम हो रोगी अच्छी तरह होशमें आता है।

भ्रम चिकित्सा।—भ्रम रोगमे शतमूली, बरियारेकी जड़ और किसमिस दूधमें औटाकर वही दूध पीना। बरियारेके बीजका चूर्ण और चीनी एकमें मिलाकर सेवन कराना। रातको महत और त्रिफलाका चूर्ण, सबेरे गुड़के साथ अदरख सेवन करने-

से भ्रम, मूर्च्छा, कास, कामला, और उन्माद रोग आराम होता है। सोंठ, पीपल, सोवा और हरीतकी प्रत्यकका चूर्ण एक एक तोला, गुड ६ तोले एकमें मिलाकर आधा तोला मात्राकी गोली बना रखना, यह गोली सेवन करनेसे भ्रम रोग दूर होता है। जवासाके काढेके साथ ताम्रभस्म २ रत्ती और घी एक आनाभर मिलाकर पीनेसेभी भ्रम रोग आराम होता है। शिलाजीत आदि रसायन अधिकारके औषध समूहोंका सेवन और १० वर्षका पुराना घृत मर्दन इस रोगमें विशेष उपकारी है।

सन्यासमें चेतना सम्पादन।—सन्यास रोगको बेहोशी छुड़ानेके लिये अपस्मार रोगोक्त तेज अञ्जन, नास, धूँआ, सूई गडाना, गरम लोहेकी सलाई नखके भीतर दागना, केश लोमादि खोचना, दांतसे काटना और बदनमें आलकुशी मलना आदि कार्यों से होशमें आनेपर मूर्च्छा रोगोक्त औषध देना। बच्चोंके सन्यास रोगमें रेंडीका तेल अथवा रसाञ्जन चूर्णसे विरेचन कराना पेटमें स्वेद करना उचित है। क्रिमिजन्य सन्यास रोगमें क्रिमि नाशक औषध प्रयोग करना चाहिये।

हमारा मूर्च्छान्तक तेल।—मूर्च्छा, भ्रम और सन्यास रोगमें सुधानिधि, मूर्च्छान्तक रस, अश्वगन्धारिष्ट तथा अपस्मार और उन्माद रोगोक्त अन्यान्य औषध, घृत, तैल आदि प्रयोग करना चाहिये। हमारा "मूर्च्छान्तक तैल" इस रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा आदि रोगमें पुष्टिकर और बल-[illegible] आदि देना। [illegible]को पुराने चावलका भात, [illegible] ; कमई, मागुर सिंगी, [illegible], गुलर, परवर,

सफेद कोहड़ा, बैंगन, केलेके फूल आदिकी तरकारी, मक्खन, मट्ठा, दही, द्राक्षा, अनार, पक्का आम, पक्का पपीता, शरीफा, कच्चा नारियल आदि फल भोजन कराना। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग, मिठाई, खुरमा, दूध घी, मैदा, सूजी और चीनी बनायी कोई वस्तु खानेको देना। सवेरे धारोष्ण दूध और शरबत पीना विशेष उपकारी है। तिलतैल मर्द्दन, बहती नदी या प्रशस्त तलावमें स्नान, सुगन्ध द्रव्य, साफ हवा और चन्द्रकिरण सेवन, सन्तोषजनक बातें, गीतवाद्य श्रवण और अन्यान्य कार्य्य जिससे मन स्थिर रहे इस रोगमें वही सब करना उचित है।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक, तीक्ष्ण वीर्य्य, रूक्ष और अम्लद्रव्य भोजन, मेहनतका काम करना, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, रात दिन बैठे रहना, धूपमें बैठना और आग तापना, इच्छाके प्रतिकूल कार्य्यादि, घोड़ा आदिकी सवारीपर चढ़ना, मल, मूत्र, तृष्णा, निद्रा, क्षुधा आदिका वेग रोकना, रातका जागना, मैथुन और दतुवनसे मुख धोना आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

मदात्यय।

निदान और प्रकारभेद।—अवैध नियम और अपरिमित मात्रासे तथा बल और विचार न कर मद्यपान करनेसे

मदात्यय रोग उत्पन्न होता है*। इसके सिवाय क्रोध, भय, शोक, पिपासा, भारवहन, पैदल चलते२ थक जानेपर किम्वा मल मूत्रके वेगमें, अजीर्ण अवस्थामें, भोजनके बाद, दुर्व्वल अवस्थामें मद्यपान करनेसे भी मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। यह रोग चार भागमें विभक्त है।—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पान विभ्रम।

वात, पित्त और कफाधिक्य रोग लक्षण।—वाताधिक्य मदात्यय रोग हक्का, श्वास, शिर कम्प, पार्श्वशूल निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप होता है। पित्ताधिक्य मदात्यय रोगमें तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम और शरीर पीले रङ्गका होजाता है। कफाधिक्य मदात्ययमें कै, जीमतलाना, अरुचि, तन्द्रा, शरीर भारी मालूम होना अतिशय शीत और शरीर गीले वस्त्रसे लिपटा हुआ अनुभव होना है। सान्निपातिक मदात्ययमें यही सब लक्षण मिले हुये मालूम होते है।

परमद लक्षण।—परमद रोगमें कफके आधिक्यमें नाकसे कफस्राव, देह भारी, मुख वेस्वाद, मल मूत्रका रोध, तन्द्रा, अरुचि तृष्णा, मस्तकमें दर्द, और शरीरके सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है।

* स्निग्ध अन्न और मांस आदि भक्ष्य द्रव्यके साथ ग्रीष्म ऋतुमें शीतल मधुर रसयुक्त माध्वीकादि मद्य और शीत ऋतुमें तीक्ष्ण और उष्णवीर्य्य गौडिक या पिष्टकादि मद्य प्रसन्न चित्तसे पीना यही मद्यपानका नियम है। जिस मात्रासे बुद्धि स्मृति प्रीति स्वर अध्ययन या सङ्गीत शक्ति वर्द्धित हो और पान भोजन, निद्रा, मैथुन और अन्यान्य कार्य्योंमें आसक्ति हो वही उचित मात्रा है। इस रीतिसे मद्यपान करनेसे उपकार होता है विपरीत पान करनेसे उत्कट रोग उत्पन्न हो शरीरमें बल नष्ट होता है।

पानाजीर्ण लक्षण।—पानाजीर्ण रोगमें अत्यन्त उदराध्मान, उन्माद, कै, पेटमें जलन, पीये हुए मद्यका अपरिपाक, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

पान विभ्रम लक्षण।—पान विभ्रम रोगमें सब शरीर विशेष कर हृदयमें सूई गडानेकी तरह दर्द, कफस्राव, कण्ठसे धूम निकलनेकी तरह दर्द, मूर्च्छा, कै, ज्वर, शिर.शूल, दाह और सुरा या सुरासे बनाया कोई खाद्य और पिष्टकादि भोज्य द्रव्यसे द्वेष, यही सब लक्षण दिखाई देता है।

साङ्घातिक मदात्यय।—जिस मदात्यय रोगमे रोगी का ओष्ठ नीचेको झुक जाता है और ऊपर शीत तथा भीतर दाह, मुख तेल लगानेकी तरह चिकना, जिह्वा, ओष्ठ तथा दांत काला, नीला या पीले रंगका होना, तथा आंखे लाल होनेसे रोगीकी मृत्यु होती हे।

उपद्रव।—हिक्का, ज्वर, कै, कम्प, पार्श्वशूल, काम और भ्रम इन सबको मदात्यय रोगका उपद्रव कहते हैं।

चिकित्सा।—मद्यपान न करनाही मदात्यय रोगका श्रेष्ठ औषध है, अत्यन्त मद्यपान करनेसे मदात्यय रोगमें कम मात्रासे यथाविधि मद्यपान कराना। वातिक मदात्ययमें पहिलेका पीया हुआ मद्य जीर्ण होने पर सौंचल नमक, शोंठ, पीपल, गोलमिरच चूर्ण और थोडे पानीके साथ मद्यपान कराना। पैत्तिक मदात्ययमें चीनी, द्राक्षा और आंवलेके रसमें पुराना शीतवीर्य्य (ठण्ढा) मद्यपान कराना। सुगन्धित मद्य या अधिक जल मिश्रित मद्य किम्वा चीनी और मह्रत संयुक्त मद्य पैत्तिक मदात्ययमें हितकारी। मद्यके साथ खजूर, किसमिस, फालसा, अनारका रस और सत्तु मिलाकर पीनेसे पैत्तिक मदात्यय आराम

होता है। अथवा अधिक इक्षुरस मिश्रित मद्य पिलाकर थोडो देर बाद कै करानेसे भी पैत्तिक मदात्यय आराम होता है। श्लेष्मिक मदात्ययमें वमन कारक द्रव्य संयुक्त मद्य पिलाकर वमन कराना, फिर रोगोके बलानुसार उपवास कराना चाहिये। इस मदात्ययमें तृष्णा हो तो बाला, बरियारा, पाटला, कण्टकारी, अथवा शोठका काढा ठण्ढाकर पिलाना। चाभ, सोचल नमक, होंग, बड नोबुकी छाल, शोंठ और अजवाईनका चूर्ण मिलाकर मद्यपान करानेसे सब प्रकारका मदात्यय रोग आराम होता है। सब प्रकारके मदात्यय रोगका दोष परिपाकके लिये जवासा और मोथा, चेतपापडा, किम्वा सिर्फ मोथेका काढा पिलाना। अष्टाङ्ग लवण कफज मदात्ययका श्रेष्ठ औषध है। धानके लावाका चूर्ण पानोमें मिलाना फिर पिंड खजूर, किसमिस मुनक्का, इमली, अनार और आवलेका रस मिलाकर पोनेसे मद्यपान जनित सब प्रकारका रोग प्रशमित होता है।

शास्त्रीय औषध।—मदात्ययका दाह दूर करनेके लिये दाह नाशक योग समूह प्रयोग करना। फलत्रिकाद्य चूर्ण, एलाद्य मोदक, महाकल्यान वटी, पुनर्नवा घृत, वृहत् धात्री तैल और खोखर्ज्जुरासव सब प्रकारके मदात्ययमें विचार कर प्रयोग करना।

मत्तता निवारणोपाय।—मद्यपान कर तुरन्त घो चीनी मिलाकर चाटनेसे नशा नहो होती। कोदो धानको नशा सफेद कोहडेका पानी गुड मिलाकर पोनेसे दूर होती है। सुपारोको नशा पानी पोनेसे उतरती है, सूखा गोबर सुंघना और नमक खानेसेभी सुपारोको नशा दूर होती है। चीनो मिला या दूध पोनेसे धतुरेकी नशा शान्त होती है। गरम घी, कट-

दूबके पत्तेका रस, इमलोका पानो या कच्चे नारियलका पानो पोनेसे भाङ्गको नशा दूर होतो है। थोडो शराब पोनेसेभो भाङ्गको नशा तुरन्त छूट जातो है तथा शराबकोभो नशा नहो होतो।

पथ्यापथ्य।—वातिक मदात्ययमें स्निग्ध और उष्ण भात, तित्तिर, बटेर मुरगा, मोर या पानोके पास रहनेवाले जोवोंके मांसका रस, मछलोका रस्सा, पूरी, खट्टा और नमकयुक्त द्रव्य उपकारी है। ठण्ढा पानो पोना, स्नानभो करना। पैत्तिक मदात्ययमें ठण्ढाभात, चोनो मिलाया मूङ्गका जूस, मांसका रस पीनेको देना, शीतल शयन, उपरेशन शीतल वायु सेवन, शीतल जलसे स्नान और चन्दनादि शीतल द्रव्य अनुलेपन स्त्रोका आलिङ्गन उपकारी है। कफज मदात्ययमें पहिले उपवास, फिर सूखा अर्थात् घृतशून्य छागमांसका रस अथवा दाडिमादि अम्लरसयुक्त जङ्गली मांसका रस किम्वा घृतादि शून्य केवल गोलमरिच और अनारके रसमें मांस भूनकर उसी मांसके साथ अन्न भोजन उपकारी है, तथा जिस कार्य्यसे कफ शान्त रहे, कफज मदात्ययमें वही सब कार्य्य करना। गरम पानो पोनेको देना, स्नान बन्द करनाही अच्छा है, किसी किसी दिन गरम पानीसे स्नान करना चाहिये।

दाह।

संज्ञा और लक्षण।—विविध कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो, हाथ पैरका तरवा, आंख या सर्व्वाङ्गमें जलन उत्पन्न होतो

है। इसीको दाह रोग कहते है। दाह पित्तहीसे उत्पन्न होता है इस रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य होनेहीसे दाह होता है। शरीरमें रक्तको अत्यन्त वृद्धि होनेपरभो दाह रोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगोको प्यास, दोनो आंखे या सब शरीर ताम्रवर्ण, शरीर और मुखसे लोहेको तरह गन्ध ; यही सब लक्षण प्रकाशित होते है और रोगो अपने चारो तरफ आग जलानेको तरह कष्ट अनुभव करता है। प्यास लगने पर पानो न पीनेसे शरीरके सब पतले धातु क्रमश: चोण होते है, इससे पित्तशेष वर्द्धित हो देहके भोतर अधिक दाह उत्पन्न होता है। इस दाहसे गला, तालु और ओष्ठ सूखता है तथा रोगी जीभ बाहरकर हांफता है। रस रक्तादि धातुक्षय होनेसे भो एक प्रकारका दाह होता है; इसमें रोगो मूर्च्छित, तृष्णार्त्त, चोणस्वर और चेष्टाहोन हो जाता है। उपयुक्त चिकित्सा न करानेसे इस दाहमें मृत्युको सम्भावना है। अस्त्र घातादिसे हृदयादि कोष्ठमें रक्तपूर्ण होनेसे भयङ्कर दाह उपस्थित होता है। मस्तक या हृदय प्रभृति मर्म्मस्थानमें आघात जन्य दाह असाध्य है। जिस दाहमें भीतर दाह और बदन ठण्ढा हो वह दाह रोग भो असाध्य है।

चिकित्सा।—दाह रोगमें पेट माफ रखना बहुत जरूरो है धनिया २तोले आधा पाव पानोमें पहिले दिन शामको भिंगोना सवेरे वही पान मिश्री मिलाकर पोनेसे दाह रोग आराम होता है। गुरिचकारस, खेतपापड़ाका रस दाह नाश करनेमें अकसोर है। ज्वरमें दाह शान्तिका जो सब उपाय लिखे गये हैं, दाह रोगमें भो यही सब प्रयोग करना। इसके सिवाय शतधौत घृत या शतधौत घृतमें जौका सत्तु मिलाकर बदनमें मलना। पद्म-पत्र या केलेके पत्तेपर सुलाकर चन्दन जलमिश्र पंखेसे हवा करना।

बाला, पद्मकाष्ठ, खस और सफेद चन्दन सबका चूर्ण पानीमें मिलाकर स्नान कराना। चन्दनादि काढ़ा, त्रिफलाद्य कषाय, पर्पटादि काढ़ा, दाहान्तक रस और कांजिका तैल दाह रोगका प्रशस्त औषध है, ज्वर हो तो तैल या घृत मर्द्दन और स्नान मना है।

पथ्यापथ्य।—दाह रोगमें पित्तनाशक द्रव्य भोजन। तिक्त वस्तु खाना अतिशय उपकारी है। मूर्च्छा रोगमें जो सब भोजनविधि लिखा है, ज्वर न रहनेसे वही सब आहार देना। ठंढे पानीसे नहाना, शीतल जल पान, चीनीका शर्बत्, इक्षुका रस, दूध और माखन आदि शीतल द्रव्य व्यवहार करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना है, दाह रोगमें भी वही सब त्याग करना चाहिये।

उन्माद।

निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध भोजन, विषयुक्त द्रव्य भोजन, अरुचि द्रव्य भोजन, देव, ब्राह्मण, गुरु आदिकी अवमानना, अत्यन्त भय, हर्ष शोकादि कारणोंसे चित्त चोटमें विषम भावसे अङ्गविन्यास अर्थात् मुद्रादोष और बलवान मनुष्यसे युद्ध आदि विषम कार्य्योंमें अल्प सत्वगुण विशिष्ट मनुष्योंका वातादि दोषत्रय कुपित हो बुद्धिस्थान, हृदय और मनोवहा नाडीको दूषित करता है, इससे चित्तमें विकृति उपस्थित हो उन्माद रोग उत्पन्न होता है। यह मानसिक रोग है। बुद्धिमें भ्रान्ति,

चित्तमें अस्थिरता, व्याकुल दृष्टि, काममें अस्थिरता, असम्बन्ध वाक्य उच्चारण और हृदय शून्यता, यही सब उन्माद रोगके साधारण लक्षण हैं।

वातज उन्माद लक्षण।—निरन्तर चिन्तासे हृदय दूषित होनेके बाद रुक्ष, शीतल या अल्प भोजन, विरेचन, धातुक्षय उपवास आदि वायु वृद्धिकारक निदान सेवन करनेसे वातज उन्माद पैदा होता हैं। इस उन्मादमें बिना कारण हंसना, नाचना, गाना, बोलना, अङ्ग विक्षेप और रोना यही सब लक्षण लक्षित होते है, तथा रोगीका देह दुबला, रुखा और लालवर्ण होता है। आहार परिपाकके समय यह रोग बढ़ता है।

पैत्तिक उन्माद लक्षण।—वैसही चिन्तासे हृदय दूषित होनेपर तथा कटु, अम्ल, उष्ण और जिस द्रव्यका अम्लपाक हो वही सब द्रव्य भोजन और अजीर्णमें भोजन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पैत्तिक उन्माद रोग उत्पन्न होता है। इस उन्मादमें असहिष्णुता, आडम्बर, वस्त्र पहिरनेकी अनिच्छा, तर्जन, गर्जन, जोरसे दौड़ना, बदन गरम, क्रोध, छायेमें बैठना, शीतल वस्तु पान भोजनकी इच्छा और देह पीतवर्ण होना यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

कफज उन्माद लक्षण।—श्रमजनक कार्य्यसे जो कुम्हलानेपर अति भोजनादि कफ बढ़ानेवाले निदानसे हृदयका कफ दूषित और पित्त संयुक्त होनेसे कफज उन्माद उत्पन्न होता है। इसमें बोलना और काम काज कम करना, अरुचि, स्त्री सहवासकी इच्छा, निर्ज्जनमें रहनेकी इच्छा, निद्रा, औमतलाना, लारस्राव, त्वक, मूत्र, चक्षु, नख सफेद होना और आहारके बाद रोग बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

त्रिदोषज लक्षण।—अपने विकारक कारण समूहोंसे वातादि तीन दोष कुपित होनेसे सन्निपातज उन्माद उपस्थित होता है। इससे वही तीन दोषजात उन्माद के लक्षण मिले हुए मालूम होते है। त्रिदोषज उन्माद असाध्य हैं।

शोकज उन्माद लक्षण।—किसी कारणसे डर जाने पर या धनक्षय या बन्धुका नाश अथवा अभिलषित कामिनी प्रभृति न मिलनेसे, मन अत्यन्त आहत हो जो उन्माद रोग उत्पन्न होता है उसको शोकज उन्माद कहते है। इसमें रोगी कर्त्तव्य ज्ञानशून्य हो जाता है, अति गुप्तबात भी प्रकाश कर बैठता है और कभी गीत गाता है, कभी हंसता तथा कभी रोता है।

विषज उन्माद लक्षण।—विष या विषाक्त द्रव्य भोजन करनेसे विषज उन्माद पैदा होता है। इसमें रोगीको आंखे लाल, मुख काला, अन्तरमें दीनता, चेतना नाश, बल, इन्द्रिय शक्ति और कान्तिका ह्रास होता है।

सांघातिक लक्षण।—जिस उन्मादमें रोगी सर्व्वदा ऊर्द्ध या अधोमुख रहे और अतिशय कृश, दुर्ब्बल, तथा निद्राशून्य हो तो उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावना है।

भूतोन्माद।—उक्त कई प्रकारकी उन्मादके सिवाय भूतोन्माद नामक एक प्रकारका उन्माद है। मनुष्य शरीरमें ग्रहोंके आवेशसे भूतोन्माद उत्पन्न होता है। दर्पण स्फटिक प्रतिविम्ब या जीव शरीरमें जीवात्मा प्रवेशको तरह ग्रहगण भी रोगीके शरीरमें अदृश्य भावसे प्रविष्ट हो स्व स्व जाति विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण प्रकाश करते है। देव ग्रहोंको पूर्णिमा तिथि, आसुरग्रहोंका प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या, गन्धर्व्वग्रहोंको अष्टमी, यक्षग्रहोंको प्रतिपद, पितृग्रहोंको अमावास्या, नागग्रहोंको

पञ्चमी, राक्षसोंकी रात और पिशाचोंकी चतुर्द्दशी तिथि मनुष्य शरीरमें प्रवेश करनेका दिन है। भूतोन्माद रोगमें रोगीको वक्तृताशक्ति, बल, विक्रम, तत्वज्ञान और शिल्पज्ञानादि अमानुषिक भावसे वर्द्धित होते है। यही भूतोन्मादका साधारण लक्षण है।

देव, असुर, गन्धर्व्व, यक्ष, पितृ और ग्रहज उन्माद लक्षण।—देवग्रहजनित उन्माद रोगमें रोगी सर्व्वदा सन्तुष्ट, शुद्धाचार दिव्यमालाकी तरह शरीर गन्धविशिष्ट, तन्द्रा युक्त, संस्कृत भाषी, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि वरदाता और ब्राह्मणानुरक्त होता है।

असुर ग्रहजमें रोगी घर्म्माक्त देह, देव, द्विज, गुरु आदिका दोष भाषी, कुटिल दृष्टि, निर्भीक, दुष्टाचारी और प्रचुर पान भोजन करने पर भी तृप्त नहीं होता। गन्धर्व्व ग्रहजमें रोगी प्रसन्न चित्त नदी तीर या वनमें विचरणशील, सदाचारी, सङ्गीतप्रिय, गन्धमाल्यादिमें अनुरक्त और मृदु मधुर हंसते हंसते मनोहर नृत्य करता है। यक्षग्रहजमें रोगीका नेत्र लाल, लाल वस्त्र पहिरनेकी इच्छा, गम्भीर प्रकृति, द्रुतगामी, अल्पभाषी, सहिष्णु और तेजस्वी होता है, तथा सर्व्वदा किसको क्या दान करें यही कहता फिरता है। पितृ ग्रहजमें रोगी शान्तचित्त हो पितरोंका श्राद्ध तर्पणका अभिनय करता है, पितृभक्त तथा मांस, तिल, गुड़, पायस आदि भोजनकी इच्छा होती है। नागग्रहज रोगमें रोगी कभी कभी सर्पकी तरह पेटके बलसे चलता है और जीभसे ओठ बारम्बार चाटता है, तथा इस रोगमें रोगी क्रोधी और गुड़, मधु, दूध आदि द्रव्य खानेको मांगता है। राक्षस ग्रहजमें रोगी मांस, रक्त, मद्य प्रभृति भोजनका अभिलाषी, अत्यन्त निर्लज्ज, अतिशय निष्ठुर, अति बलवीर्य्यशाली, क्रोधी, सदाचारी और

रातको फिरना चाहता है। पिशाचदुष्ट उन्मादमें रोगी ऊर्द्ध-वाहु, उलङ्ग, कृश, रुक्षदेह, सर्व्वदा प्रलापभाषी, गात्र दुर्गन्धयुक्त, अत्यन्त अशुचि, भोज्य वस्तुमें अति लोभी, अति भोजनशील, निर्ज्जन वनमें भ्रमणकारी और विरुद्ध आचरणशील होता है तथा सर्व्वदा रोता और इधर उधर घूमता रहता है।

साध्यासाध्य।—जिस भूतोन्माद रोगीको दोनों आंखे चढ़ी, चञ्चल, फेन लेहनकारी, निद्रालु और कांपती रहती है, अथवा किसी ऊंचेस्थानसे गिरकर यदि ग्रहोंके द्वारा आविष्ट हो तो पीड़ा असाध्य जानना। १३ वर्ष तक उन्माद रोग अचिकित्सित रहनेसे सब प्रकारका उन्माद रोग असाध्य होजाता है।

चिकित्सा।—वातिक उन्माद रोगमें स्नेहपान, पैत्तिकमें विरेचन और श्लैष्मिक उन्मादमें शिरोविरेचन अर्थात् नस्य सूंघ कर कफ निकालना हितकारी है। रोज सवेरे पुराना घी पान करनेसे उन्माद रोगमें विशेष उपकार होता है। शिरीषफूल, लहसन, सोंठ, सफेद सरसों, बच, मजीठ, हलदी और पीपल यह सब द्रव्य पीसकर गोली बनाना, गोली छायामें सुखाकर पानीमें घिसकर नासलेना। इसका अञ्जन भी कर सकते है। तर्ज्जन, ताड़न, भयोत्पादन, वाञ्छित द्रव्य देना, सान्त्वना वाक्य हर्षोत्पादन और विस्मित करना उन्माद रोगमें विशेष उपकारी है। पुराने सफेद कोहड़ेको पीसकर सहतमें मिलाकर सेवन कराना। गोरैया (चटक) का छोटा बच्चा जिसको पङ्ख नही निकला है उसका मांस दूधमें पीसकर पिलाना। पीपल, गोलमिरच, सेंधानमक और गोरोचन समभाग सहतमें मिलाकर अञ्जन करना। सफेद सरसो, हींग, वच, डहरकरञ्ज, देवदारु, मजीठ,

हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, सफेद अपराजिता, लताफटकी की छाल, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, प्रियङ्गु, शिरीषकी छाल, हलदी और दारुहलदी, समभाग छाग दूधमें पीसकर पान, नस्य, अञ्जन और लेपमें व्यवहार करना, या पानीमें मिलाकर स्नान कराना, तथा उक्त द्रव्योंका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ विधि पूर्व्वक घीसे पाककर पीनेसे उन्माद रोग आराम होता है। देवग्रह, गन्धर्व्व ग्रह या पितृग्रहसे आविष्ट होनेपर किसी तरहका क्रूर कर्म्म, या तेज अञ्जन आदि प्रयोग करना उचित नहीं है। सारस्वत चूर्ण, उन्माद गजाङ्कुश, उन्माद गञ्जन रस, भूताङ्कुश रस, चतुर्भुज रस और वातव्याधि रोगोक्त चिन्तामणि, वातचिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख आदि औषध और पानीयकल्याणक घृत, चैतसघृत, महापैशाचिघृत, नारायण तैल, महानारायण तैल, मध्यमनारायण तैल, हिमसागर और विष्णु तैल आदि विचारकर प्रयोग करनेसे उन्मादरोग आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—जिस आहार विहारसे वायु शान्त हो पेट साफ रहे और शरीर चिकना हो वही सब आहार विहार उन्माद रोगीका पथ्य है। उन्माद रोगीको पानी और अग्निके पास या किसी ऊंचे स्थानपर रखना उचित नहीं है। मूर्च्छा रोगमें जो सब पानाहारके नियम लिख आये हैं उन्मादमें भी वही पालन करना चाहिये।

अपस्मार।

अपस्मारका लक्षण और निदान।—अपने अपने निदानके अनुसार वायु पित्त और कफ, अत्यन्त कुपित होनेसे अपस्मार रोग उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको "मिरगी" कहते हैं। ज्ञानशून्यता, दोनो आंखोंको विकृति, मुखसे फेन वमन और हात पैर पटकना यही कई एक अपस्मार रोगके साधारण लक्षण हैं। अपस्मार रोग उत्पन्न होनेके पहिले हृदय कम्पन, और शून्यता, पसीना निकलना, अत्यन्त चिन्ता, मोह, निद्रानाश यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं। अपस्मार चार प्रकार वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। अपस्मार रोग रोज प्रकाशित न होकर १२ दिन १५ दिन या १ मास अथवा उससे भी कमो वेशो दिनके अन्तरपर प्रकाशित होता है।

वातज लक्षण।—वातज अपस्मारमें कम्प, दांतो लगना, फेन वमन और श्वास जोरसे चलतो है, तथा रोगी चारो तरफ काला या अरुणवर्ण रूडा देह आदि नाना प्रकारको मिथ्या मूर्त्ति देखता है। पित्तजमें शरीर गरम, प्यास, मुख, आंख, मुखका फेन, पोतवर्ण तथा रोगीको सब वस्तु पीत या लोहित वर्ण अथवा चारो तरफ पोला या लोहित वर्ण युक्त मिथ्यारूप दिखाई देता है, तथा सारा जगत अग्निसे वेटित उसको मालूम होता है।

कफज लक्षण।—कफज अपस्मारमें रोगीका मुख, आंख और मुखका फेन सफेद रङ्ग, बदन शोतल, भार और रोमाञ्चित होता है तथा चारो तरफ श्वेतवर्ण मिथ्या मूर्त्ति दिखाई देती है। वातज पित्तजको अपेक्षा इसमें देरसे होशमें आता है।

यही तीन दोषजात अपस्मारके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होनेसे इसको सन्निपातज अपस्मार कहते हैं।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज अपस्मार, क्षीण व्यक्तिका अपस्मार और पुराना अपस्मार असाध्य है। अपस्मार रोगमें बार बार झोंका फरकना और नेत्र विकृति; यही सब लक्षण लक्षित होनेसे रोगीको मृत्यु होती है।

अपस्मार या हिष्टिरिया।—गर्भाशयकी विकृति, रजःस्रावका अभाव या कमी, स्वामीसे अस्नेह, निठुराचरण या इन्द्रिय चरितार्थ शक्तिकी कहा वैधव्य आदि नानाविध शोकादिसे मनःपीड़ा, देहमें खूनका आधिक्य या कमी, मलबद्धता, अजीर्ण आदि कारणोंसे युवती स्त्रीको भी एक प्रकारका अपस्मार रोग उत्पन्न होता है, इसको संस्कृतमें योषापस्मार और अङ्गरेजी में "हिष्टिरिया" कहते हैं।

हिष्टिरिया लक्षण।—यह रोग उपस्थित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, जृम्भा शारीरिक और मानसिक ग्लानि प्रकाश हो संज्ञानाश होता है। अपस्मार रोगकी तरह इसमें भी फेन वमन और आंखका तारा बड़ा नहीं होता। किसीको अकारण हंसी, रोदन, चिल्लाना, आत्मीयगणोंपर वृथा दोषारोप और अपनेको वृथा अपराधी समझ दूसरेसे क्षमा प्रार्थना आदि विविधि भ्रान्ति लक्षण भी दिखाई देते हैं। अकसर लोग यह लक्षण देखकर ::: अनुमान करते हैं। किसी किसी रोगिणीको पेटके नीचेसे एक गोला ऊपरको उठता हुआ मालूम होता है तथा शरीरके किसी स्थानमें दर्द मालूम होती है इसमें सफेद उजियाला देखने या ऊंची आवाज सुननेसे चमक उठती है और पुरुष सङ्ग-अतिरिक्त इच्छा होती है।

चिकित्सा।—रोग प्रकाश होते ही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो थोडे दिन जानेसे यह रोग प्रायः असाध्य हो जाता है। इसमें होश लानेके लिये मूर्च्छा रोगकी तरह आंख और मुखमें पानीका छींटा देना। इससे होश न आनेपर मेनसिल रसाञ्जन, कबूतरका बीठ, सहतमें मिला आंखमें लगाना। जेठ हींग, बच, तगरपादुका, शिरोष बीज, लहसन और कूठ गोमूत्रमें पीसकर अञ्जन या नास लेना। यह दो अञ्जन और नास उन्माद रोगमें भी उपकारी है। जटामांसीका नास या धूम लेनेसे पुराना अपस्मार भी आराम होता है। फांसी लगा मरनेवाले मनुष्यके गलेकी रस्सीका भस्म ठण्ढे पानीके साथ मिलाकर पीनेसे अपस्मारमें उपकार होता है। रोज सहतके साथ एक अनाभर वचका चूर्ण चाटकर दुग्धान्न भोजन, सफेद कोहडेके पानीमें जेठो मध पीसकर सेवन और दशमूलका काढ़ा पीनेसे अपस्मार रोग आराम होता है। कल्याण चूर्ण, वातकुलान्तक, चण्डभैरव रस, स्वल्प और वृहत् पञ्चगव्य घृत, महाचैतस घृत, ब्राह्मीघृत, पलंकषाद्य तेल, और मूर्च्छा रोग तथा वातव्याधिमें लिखी औषध, घृत और तैलादि दोष प्रकोपादिका विचारकर अनुपान विशेषके साथ अपस्मार रोगमें देना चाहिये।

योषापस्मारमें भी मूर्च्छा रोगकी तरह उपाय अवलम्बन करना। फिर मूर्च्छा और अपस्मार रोगोक्त औषध, घृत और तेल प्रयोग करना। रजो लोप होनेसे रक्तस्रावका उपाय करना चाहिये। हमारा मूर्च्छान्तक तैल और "कुसुदासव" योषापस्मारकी श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा और उन्माद रोगके पथ्यापथ्यकी तरह इसमें भी पालन करना।

वातव्याधि।

निदान।—रुच, शीतल, लघु या अल्प भोजन, अतिशय मैथुन, अधिक रात्रि जागरण, अतिशय वमन विरेचनादि सेवन, अधिक रक्तस्राव, माध्यातीत उल्लम्फन, अधिक तैरना, चलना या कसरत; शोक, चिन्ता किम्बा रोगादिसे धातुक्षय होना, मल-मूत्रादिका वेग रोकना, चोट लगना, उपवास और किसी तेज सवारीसे गिर जाना प्रभृति कारणोंसे वायु कुपित हो वातव्याधि रोग उत्पन्न होता है। वायु विकारको गिनती नहो है। शास्त्रमें ८० प्रकारका वातव्याधि लिखा है पर सबका नाम नहो पाया जाता, इससे शास्त्रमें वायुरोग जितने प्रकारके कथित हैं हम यहां उतनेही प्रकारके नाम और लक्षण आदि लिखते है, बाकीके नाम निर्दिष्ट न रहनेपर भी विचार पूर्व्वक वायु नाशक चिकित्सा करना चाहिये। कई प्रकारके वातव्याधिमें कफ और पित्तका विशेष संस्रव रहता है, चिकित्साके समय इसका भी विचार कर वही दोष नाशक औषध देना चाहिये।

आक्षेप, अपतन्त्रक और अपतानक लक्षण।—कुपित वायु नाडी समूहोंमें रहकर शरीरको वार वार इधर उधर फिरावे तो उसको आक्षेप वातव्याधि कहते है। जिस रोगमें वायु हृदय, मस्तक, और ललाटमें पीडा पैदाकर देहको धनुष की तरह नीचा और टेढ़ा करे उसको अपतन्त्रक कहते है। इस रोग में रोगी मूर्च्छित, निर्निमेष या निमोलित चक्षु और संज्ञाहीन हो जाता है तथा कष्टसे श्वास और कबूतरको तरह शब्द निकलता है। जिसमें दृष्टिशक्तिका नाश, संज्ञालोप और कण्ठसे अव्यक्त शब्द

निकलता है उसको अपतानक कहते है। इस रोगमें जब वायु हृदयमें आता है तभो संज्ञानाश आदि रोग प्रकाशित होते है तथा हृदयसे छुट जानेपर रोगी स्वस्थ होता है। कुपित वायु कफके साथ मिलकर समुदय नाड़ोको अवलम्बन कर जब दण्डकी तरह शरीरको स्तम्भित और आकुञ्चितादि शक्तिको नष्ट करता हैं तब उसको दण्डापतानक कहते हैं। जिस रोगमें देह धनुषकी तरह टेढा होता है उसको धनुस्तम्भ कहते है। अन्तरायाम औ वहिरायाम भेदसे धनुस्तम्भके दो प्रकार है। अति कुपित वेगवान वायु अङ्गुलि, गुल्फ, जठर, वक्षस्थल हृदय और गलेको स्नायु समूहोंको खोचनेसे रोगीका गर्दन सामनेको तरफ नोचा हो जाता है इसको अन्तरायाम कहते है। तथा इसमें रोगीको आखेंस्तब्ध, चक्षु बन्द होकर पार्श्वद्वय टूट पड़ता है और कफ निकलता है। वही वायु पीठके स्नायु समूहोंको खोचनेसे रोगी पीठकी तरफ टेढा हो जाता है इसको वहिरायाम कहते है। वहिरायाममें छाती, कमर और जङ्घा टूटनेकी तरह मालूम होती है; यह प्रायः असाध्य है। गर्भपात, अधिक रक्तस्राव या चोट लगना आदि कारणोंका धनुस्तम्भादि रोग असाध्य जानना।

पक्षाघात या एकाङ्ग वात लक्षण।—कुपित वायु देहके आधे भागमें फैलनेसे उस भागको नाड़ो और स्नायु समूह सङ्कुचितया सुख जाने तथा सन्धिस्थान टूटनेसे वह भाग बेकाम हो जाता है; इस रोगको पक्षाघात (लकवा) या एकाङ्ग वात कहते है। यह रोग दो प्रकारका होते देखा गया है, किसीके बायें या दहिने भागके एक भागमें और किसोका कमरके उपर या नीचे के किसी भागमें उत्पन्न होता है। पक्षाघात रोगमें वायुके साथ पित्तका अनुबन्ध रहनेसे दाह, सन्ताप और मूर्च्छा; तथा कफका

अनुबन्ध रहनेसे पोड़ित अङ्गमें शीतलता, शोथ और अङ्गोंकी गुरुता आदि लक्षण लक्षित होते है। पित्त या कफका अनुबन्ध न रहनेसे केवल वायुसे पक्षाघात उत्पन्न हो तो वहभी असाध्य जानना। शरीरके आधे भागमें न होकर सर्व्वाङ्गमें यह पीड़ा होनेसे इसको सर्व्वाङ्ग रोग कहते है।

अर्द्दित लक्षण।—सर्व्वदा जोरसे बोलना, कठिन द्रव्य चिबाना, हंसना, जम्हाई लेना, भारवहन तथा विषम भावसे शयनादि कारणोंसे वायु कुपित हो मुखका अर्द्धभाग और गर्द्दनको टेढा कर शिरःकम्प, वाक्यरोध और नेत्रादिमें विकृति उत्पादन करता है; इसको अर्द्दित रोग कहते है। मुखके जिस तरफ अर्द्दित रोग पैदा होता है उस तरफका गर्द्दन, डाढ़ी और दांतमें दर्द होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे लालास्राव, दर्द, कम्प, फरकन, हनुस्तम्भ (चहुआ बैठना) वाकरोध, श्रोष्ठद्वयमें शोथ और शूलकी तरह दर्द होता है। पित्तके आधिक्यसे मुख पीला, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा और दाह यही सब उपसर्ग दिखाई देते है। कफके आधिक्यसे गाल, मस्तक और मन्या (गरदनकी शिरा) में शोथ औरस्तब्ध होता है। जो अर्द्दित रोगो क्षीण, निमेषशून्य, अति कष्टसे अव्यक्तभाषी और कांपताहो अथवा जिसका रोग ३ वर्षका पुराना हो गया है ऐसे रोगीके आराम होनेकी आशा नही रहती।

हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ शिराग्रह और गृध्रसी लक्षण।—दतुवनके बाद जोभी करते समय या कड़ी वस्तु चिबानेपर किम्वा किसी तरहसे चोट लगनेपर हनुमूलका वायु कुपित हो हनुद्वय (दोनो चहुआ) को शिथिल करता है इससे मुख बन्द हो जाता है, खुलता नही, अथवा खुला रहनेपर

बन्द नहीं होता, इसको हनुग्रह कहते है। दिवा निद्रा, विषम भावसे गरदन रखना विक्रत या ऊर्द्ध नेत्रसे देखना आदि कारणोंसे कुपित वायु कफयुक्त हो मन्या अर्थात् गरदनको दोनो नाडियोंको स्तम्भित करता है, इससे गरदनका इधर उधर फिरना बन्द हो जाता है इस रोगको मन्याग्रह कहते है। कुपित वायु वाग्वाहिनो शिरामें जाने से जिह्वा स्तम्भरोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगोका खाना पीना और बोलना बन्द हो जाता है। गरदनके नाडियोमें कुपित वायु जानेसे शिरायें सब रूखो, वेदनायुक्त और कृष्णवर्ण होती है तथा रोगो शिर हिलाडुला नहो सकता। इसको स्वभावत: हो असाध्य जानना। जिस वातव्याधिमें पहिले स्फिक (चूतड) फिर क्रमश: कमर, पोठ, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैरोंको स्तब्धता, वेदना और सूई गडानेको तरह दर्द हो तो उसको गृध्रसो वात कहते है, ईसमें वाताधिक्य रहनेसे बारबार स्पन्दन तथा वायु और कफ दोनोंके आधिक्यसे तन्द्रा, देहका भारोपन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। बाहुके पोछेको तरफसे अङ्गुलो तक जो सब नाडो विस्तृत है, वायुसे वह सब शिरायें दूषित होनेसे, बाहु अकर्मण्य अर्थात् आकुञ्चन प्रसारणादि क्रियाशून्य होता है, इसको विश्वचो रोग कहते है। कुपित वायु और दुषित रक्त दोनो मिलकर जङ्घोमे सियारके सिरको तरह एक प्रकार शोथ पैदा होता है, इसको क्रोष्टुक शोर्षकहते है। कमरका कुपित वायु यदि एक पैरके उपर जङ्घाको बडो शिराको तानेतो खञ्ज और दोनो पैरके जङ्घाको बडी शिरायोंको तानेतो पङ्गु रोग उत्पन्न होता है। चलतो वक्त यदि पैर कांपेतो उसको लाय खञ्ज कहते है। इस रोगमें सन्धि समूह शिथिल होते जाते है। असम अर्थात् नोचे उपर पैर रखना या अधिक परिश्रमसे वायु

कुपितहो गुल्फमें दर्द पैदा करे तो उसको वातकण्टक कहते है। सर्व्वदा भ्रमण करनेसे पित्त, रक्त और वायु कुपित होनेसे पायदाह नामक रोग उत्पन्न होता हैं। दोनो पैर स्पर्शशक्तिहोन, बार बार रोमाञ्चित, झिन झिन और दर्द हो तो उसको पादहर्ष कहते है, साधारण झिन झिनके अपेचा इस रोगको तकलीफ देरतक रहती है। वायु और कफ ये दो दोष कुपित हो कन्धेका बन्धन स्तरुप सुखावेतो अमशोष रोग होता है, यह केवल वातज है। फिर वही कन्धेका कुपित वायु शिरा समूहोको सङ्कुचित करनेसे अववाहुक रोग उत्पन्न होता है। वायु और कफ ये दो दोषसे अवबाहुक रोग पेदा होता है। कफसंयुक्त वायु शब्दवाहिनो धमनी समूहो-को दूषित करनेसे मनुष्य गूंगा, नाकसे बोलना या तोतला भाषो होता है। जिस रोगमें मलाशय या मूत्राशयसे लेकर गुह्यदेश, लिङ्ग या योनि तक फाड़नेको तरह दर्द हो तो उसको तूनो तथा वही दर्द पहिले गुह्य, लिङ्ग या योनिसे उठकर प्रबल वेगसे पाका-शयमें जाय तो उसको प्रतितूनी कहते है। पाकाशयमें वायु बन्द रहनेसे उदर स्फोत, वेदनायुक्त और गुड़ गुड़ शब्द हो तो उसको आध्मान रोग कहते है। वही दर्द पाकाशयमें न हो आमाशयसे उठे और पेट या पार्श्वदय स्फोत न होतो उसको प्रत्याध्मान कहते है। कफसे वायु आवृत होनेसे प्रत्याध्मान रोग उत्पन्न होता है। नाभिके नोचे पत्थरके टुकड़े को तरह कठिन, उपरको तरफ फैला हुआ, उंचा तथा सचलया अचल ग्रन्थि विशेष उत्पन्न होनेसे उसको अष्ठोला कहते है। अष्ठोला टेढो होतो उसको प्रत्यष्ठोला कहते है। ये दोनो रोगमें मलमूत्र और वायु बन्द हो जाता है। सर्व्वाङ्ग विशेषकर मस्तक कांपनेसे उसको वेपथु तथा पेर, जङ्घा, उरु और करमूल मुरक जानेसे खल्ली कहते है।

साध्यासाध्य।—सब प्रकारका वातव्याधि कष्टसाध्य है; रोग उत्पन्न होते ही विधिपूर्व्वक चिकित्सा न करनेसे प्रायः असाध्य होजाता है। पक्षाघात (लकवा) आदि वातव्याधिके साथ विसर्प, दाह, अत्यन्त वेदना मलमूत्रका रोध, मूर्च्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य; अथवा शोथ, स्पर्श शक्तिका लोप, अङ्ग भङ्ग, कम्प, उदराध्मान प्रभृति उपद्रव मिला रहनेसे और रोगोका बल मांस क्षीण होनेसे प्राय' आराम होनेकी आशा नहो रहती है।

चिकित्सा।—घृत तैलादि स्नेह प्रयोग ही सब प्रकारके वातव्याधिको साधारण चिकित्सा है। अपतन्त्रक और अपतानक आदि रोगोंमें होशमें लानेके लिये तेज नास लेना उचित है। गोलमरिच, सैजनको बोज, विडङ्ग और तुलसोका छोटा पत्ता समान भाग चूर्णकर नास लेनेसे अपतन्त्रक आदि रोगमें होश आता है। बडीहर्रे, चाभ, रास्ना, सैन्धानमक और पैकल; इन सबका चूर्ण अदरखके रसमें मिलाकर पोनेसे अपतन्त्रक रोग आराम होता है। अपतानक रोगमें दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना, भोजनके पहिले गोलमरिचका चूर्ण खट्टे दहीमें मिलाकर पोना अपतानक रोगमें उपकारी है। पक्षाघात रोगमें उरद, कंवाचको जड, एरण्ड मूल और बरियाराके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिलाकर पिलाना। पीपलामूल, चितामूल, पोपल, सोंठ, रास्ना और सैन्धव इन सबका कल्क और उरदके काढ़ेके साथ यथाविधि तेल पाककर मालिश करना। अथवा उरद, कंवाचको जड, सतोना, एरण्डमूल, रास्ना सोया और सेंधानमक इन सबका कल्क और तेलका चौगूना उड़द और बरियाराका काढ़ा अलग अलग तैलमें पाककर मालिश करना। अर्द्दित रोगमें मुख खुला रहनेसे दोनो अङ्गूठेसे हनु

और दोनो तर्ज्जनोसे डाढो दबाकर मुख बन्द करना। हनु शिथिल हो जानेसे ज्योंका त्यों रहने देना। मुख स्वस्थ हो जानेसे खेद देना उचित है। लहसन कूटकर मक्खनके साथ खानेसे अर्द्दित रोग आराम होता है। बरियारा, उडद, कवांचको जड, गन्धतृण और एरण्डमूल इन सबका काढा पोनेसे और वही काढेको नास लेनेसे अर्द्दित, पक्षाघात और विश्वची रोग आराम होता है। मन्या स्तम्भ रोगमें कुक्कुट डिम्बके द्रव भागमें लवण और घो मिला गरमकर ग्रोवामें मालिश करना। असगन्धाकी जडका प्रलेप देनेसे और सरसोंका तैल मालिश करनेसे मन्यास्तम्भ आराम होता है। वाय्वाहिनो शिरा विकल होनेसे, घृत तैल प्रभृति स्निग्ध पदार्थका कुछ उपकारो है। विश्वची और अवबाहुक रोगमें दशमूल, बरियारा और उरद इन सबके काढेमें तैल और घृत मिलाकर रात्रि भोजनके बाद नास लेना। वायुशोथ रोगमें मरिचनके साथ दूध औटाकर पान करना। गृध्रसी रोगमें इनको आंचपर निर्गुण्डो-का काढा बनाकर पिलाना। एरण्डमूल, बेलकी छाल, बृहतो और कण्टकारी इन सबका काढा सोचल नमक मिलाकर पीनेसे गृध्रसोजन्य वङ्गण वस्तिका स्थाई दर्द आराम होता है। त्रिफलेके काढेके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पोनेसे गृध्रसो और ऊरुस्तम्भ आराम होता है। दशमूल, बरियारा, रास्ना, गुरिच और शोंठ इसके काढेके साथ एरण्ड तैल मिला पान करनेसे गृध्रसी, खञ्ज और पङ्ग रोग आराम होता है।

आध्मान रोगमें अजमका चूर्ण २ तोले, त्रिफलेकी जडका चूर्ण ८ तोले, चीनी ८ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करना। देवदारु या कूठ, सोवा, होंग और सेंधा नमक कांजीमें पोस गरम कर लेप करनेसे शूल और आध्मान रोग आराम होता है। प्रत्याध्मान रोगमें वमन, लङ्घन, पाचि,

दीपक, पाचक औषध प्रयोग और पिचकारी देना उपकारी है। शिराग्रह या शिरोग्रह रोगमें दशमूलका काढ़ा और बड़े नीबूके रसमें तैलपाककर मालिश करना। अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला रोगकी चिकित्सा गुल्म रोगकी तरह करना। तूनी और प्रतितूनी रोगमें स्नेह पिचकारी देना उचित है हींग और जवखार मिला गरम घी पान करना। खल्ली रोगमें तेलके साथ कूठ, सेंधानमक और चुक मिला गरम कर मालिश करना। वातकण्टक रोगमें जोंक प्रभृतिसे रक्त मोचन, एरण्ड तेल पान और गरम लोहेसे पीड़ित स्थानमें दागना उचित है। क्रोष्टकशीर्ष और पाददाह रोगकी चिकित्सा वातरक्त रोगकी तरह करना। मसूर और उड़दका आटा पानीमें घोटाकर लेप करनेसे पाददाह रोग शान्त होता हैं अथवा दोनो पैरमें मक्खन मालिश कर सेंक करना। पादहर्ष रोगमें कुब्ज प्रसारिणी तैल उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और तैलादि।—सब प्रकारकी वात व्याधिमें तैल मर्द्दन करना प्रधान चिकित्सा है तेलकी उपकारिता और रोगकी अवस्था विचारकर स्वल्प विष्णुतैल, बृहत् विष्णु तैल, नारायण तैल, मध्यनारायण तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, माषबलादि तैल, मध्यमाद्य तैल, महानारायण तैल, सिद्धार्थ तैल हिमसागर तैल, पुष्पराज प्रसारिनी तैल, कुब्ज प्रसारिणी तैल और महामाष तैल आदि प्रयोग करना। सेवनके लिये रास्नादि काढ़ा माषबलादि काढ़ा, कल्याणावलेह, स्वल्प रसोनपिण्ड, त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु, दशमूलाद्य घृत, छागलाद्य और बृहत् छागलाद्य घृत, चतुर्म्मुख रस, चिन्तामणि रस, वातगताङ्कुश, बृहत् वातगताङ्कुश योगेन्द्र रस, रसराज रस, चिन्तामणि रस, बृहत् वातचिन्तामणि रस आदि औषध विचारकर प्रयोग करना।

तरह क्रमशः सर्व्वाङ्गमें व्याप्त होता है। वातरक्तप्रकाशित होनेसे पहिले बहुत पसीना निकलना या एकदम पसीना बन्द होना, जगह जगह काला काला दाग और शून्यता, किसी कारणसे कहीं घाव होनेपर उसका जलदी आराम न होना और दर्द, गांठोकी शिथलता, आलस्य, अवसन्नता, जगह जगह फोड़िया निकलना और जानु, जङ्घा, ऊरु, कमर, कन्धा, हाथ, पैर, तथा सन्धिसमूहों में सूची विद्धवत् दर्द, फरकन, फाड़नेको तरह कष्ट, भारबोध, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, खजुली, सन्धियोंमें बार बार दर्दका पैदा होना और बदनपर चिंटी चलनेकी तरह मालूम होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है।

भिन्न भिन्न प्रकारके लक्षण।—वातरक्तमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे, शूल, स्फुरण, भङ्गवत् पीड़ा, रुक्ष शोथ, शोथ स्थानका काला या श्यामवर्ण होना, पीड़ाके सब लक्षण हो कभी अधिक कभी कम; नाड़ी, अङ्गुलि और सन्धियोंका सङ्कोच, अङ्ग वेदना, अत्यन्त यातना, शीतल स्पर्शादिसे द्वेष और अनुपकार, शरीर की स्तब्धता, कम्प, स्पर्श शक्तिकी कमी, यही सब लक्षण लक्षित होते है। रक्तका प्रकोप अधिक रहनेसे ताम्रवर्ण शोथ, उसमें कण्डु और क्लेद, स्राव, अतिशय दाह और सूची विद्धवत् वेदना, स्निग्ध और रुक्षक्रियासे रोगका शान्त न होना। पित्तके आधिक्यसे दाह, मोह, पसीना आना, मूर्च्छा, मत्तता और तृष्णा होती है। शोथ स्थान छूनेमें दर्द, शोथ रक्तवर्ण और दाहयुक्त, स्फीत, पाक और उष्मासे नष्ट होता है। कफके आधिक्यमें स्तैमित्य, गुरुता, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, सर्व्वाङ्ग चिकना, शीतल स्पर्श, खजुली और थोड़ा दर्द होता है। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यसे वही सब दोष मिले हुए मालूम होते है।

साध्यासाध्य।—एक दोषजात और थोड़े दिनका वातरक्त साध्य तथा रोग एक वर्षका होनेसे याप्य होता है। इसके सिवाय द्विदोषज वातरक्त भी याप्य है। त्रिदोषज वातरक्त रोगमें निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांस पचन, शिरोवेदना, मोह, मत्तता, व्यथा, तृष्णा, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, हिक्का, पङ्गुता, विसर्ग, शोथका पकना, सूचो विद्धवत् अत्यन्त यातना भ्रम, क्लान्ति, अंगुलियोंका टेढ़ा होना, स्फोटक, दाह, मर्म्मवेदना और अर्व्वुद यही सब उपद्रवयुक्त अथवा केवल मोह उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य है। जिस वातरक्तमें पादमूलसे जानुतक पोड़ा व्याप्त रहती है, त्वक दलित और विदीर्ण हो जाता है, वह भी असाध्य जानना।

चिकित्सा।—वातरक्त रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होते हो चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सबरूप प्रकाशित होनेसे प्रायः असाध्य हो जाता है। जिस स्थानको स्पर्शशक्ति नष्ट हो गई है वहा जोंक लगाकर या किसी अस्त्रसे काटकर रक्त निकालना चाहिये। अङ्ग सूख जानेपर या वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे रक्त निकालना उचित नहीं है। स्नेहयुक्त विरेचक औषध और स्नेह द्रव्यको पिचकारो देना वातरक्तमें हितकारो है। विरेचनके लिये तीन या पांच अथवा रोगीके बलके अनुसार उससे भी अधिक या कम बडोहरं पुराने गुडके साथ पोसकर खिलाना चाहिये। अमिलतासको गूदो, गुरिच और अडुसेको छालके काढ़ेके साथ रेडोका तेल पोनेसे विरेचन हो वातरक्त रोग आराम होता है। किसी स्थानमें दर्द रहनेसे गृहधूम, बच, कूठ, सोवा, हरिद्रा और दारुहरिद्रा एकत्र दूधमें पीसकर लेप करनेसेभी वातरक्त शान्त होता है। काढ़ा कल्क, चूर्ण या रस चाहे जिस उपायसे गुरिचका सेवन वातरक्तमें उपकारो है। अमृतादि, वासादि,

नवकार्षिक और पटोलादि काढ़ा, निम्बादि चूर्ण, कैशोर-गुग्गुलु, रसाभ्र गुग्गुलु, वातरक्तान्तक रस, गुड़ुच्यादि लौह, महा-तालेश्वररस, विश्वेश्वररस, गुड़ूचीघृत, अमृताद्य घृत, वृहत् गुड़ूच्यादि तैल, महारुद्र गुड़ूची तैल, रुद्रतैल, महारुद्र तैल और महापिण्ड तैल आदि औषध और कुष्ठ रोगोक्त पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु आदि कई औषध विचारकर वातरक्त रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूंग चनेकी दाल, तोतो तरकारी अथवा परवर, गुलर, करैला, सफेद कोहड़ा आदिकी तरकारी; नीमका पत्ता खेत पुनर्नवा और परवरके पत्तेको शाक खाना उपकारी है। रातको पूरी या रोटी और ऊपर कही तरकारी; कम मीठेका कोई पदार्थ खाना और थोड़ा दूध पीना चाहिये; जलपानके समय भिंगोया चना खाना वातरक्तके लिये विशेष उपकारी है। तरकारी आदि घीमें बनाना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—नये चावलका भात, गुरुपाक द्रव्य, अम्लपाक द्रव्य भोजन, मछली, मांस, मद्य, सोम, मटर, गुड़, दही, अधिक दूध, तिल, उड़द, मूली, खट्टा, लाल कोहड़ा, आलु, पियाज, लहसन, लाल मिरचा और अधिक मीठा भोजन, तथा मल मूत्रका वेग रोकना, आगके पास या धूपमें बैठना, कसरत, मैथुन क्रोध, दिवानिद्रा आदि वातरक्त रोगमें अनिष्ट-कारक है।

ऊरुस्तम्भ।

—:*:—

निदान।—अधिक शीतल, उष्ण, द्रव, कठिन, गुरु, लघु, स्निग्ध या रुक्ष द्रव्य भोजन; पहिलेका खाया पदार्थ अच्छी तरह परिपाक न होतेही भोजन, परिश्रम, शरीरको अधिक चलाना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण आदि कारणोंसे कुपित वायु, कफ और आमरक्तयुक्त पित्तको दूषित कर ऊरुमें जानेसे ऊरुस्तम्भ रोग पैदा होना हैं। इस रोगमें ऊरुस्तब्ध, शीतल, अचेतन, भाराक्रान्त और अतिशय वेदनायुक्त होता है तथा ऊरु (जङ्घा) उठाने या चलानेकी शक्ति नहीं रहती है, इसके सिवाय इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, बदनमें दर्द स्तैमित्य अर्थात् बदन गीले वस्त्रसे ढपा अनुभव, तन्द्रा, वमि, अरुचि, ज्वर, पैरको अवसन्नता, स्पर्शशक्तिका नाश और कष्टसे चलना यही सब लक्षण दिखाई देते है। ऊरुस्तम्भका दूसरा नाम आढ्यवात है। ऊरुस्तम्भ प्रकाशित होनेसे पहिले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, स्तैमित्य, ज्वर, रोमाञ्च, अरुचि, वमन तथा जङ्घा और ऊरु दुर्ब्बल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है।

मृत्यु सम्भव।—इस रोगमें दाह, सूची विद्धवत् वेदना, कम्प, आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोग के मृत्युकी सम्भावना है। यह रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा न करनेसे कष्टसाध्य हो जाता है।

चिकित्सा।—जिस क्रियासे कफको शान्ति हो और वायुका प्रकोप अधिक न हो वैसो चिकित्सा करना चाहिये। तथापि रुक्ष क्रियासे कफको शान्तकर फिर वायुको शान्त करना

चाहिये। पहिले स्वेद, लङ्घन और रुक्ष क्रिया करना उचित है। अतिरिक्त रूक्षक्रियासे वायु अधिक कुपित हो निद्रानाश प्रभृति उपद्रव उपस्थित होनेसे स्नेह स्वेद व्यवहार करना चाहिये। डहरकरञ्ज का फल और सरसों, किम्बा असगन्ध, अकवन, नोम या देवदारुको जड; अथवा दन्ती, मुहाकानी, रास्ना और सरसो; किम्वा जयन्ती, रास्ना, सैजनको छाल, वच, कुरैया और नोम; इसमेंसे कोई एक योग गोमूत्रमें पोस कर ऊरुस्तम्भमें लेप करना। सरसोका चूर्ण सहतके साथ मिला कर अथवा धतुरेके रसमें पोसकर गरम लेप करना। काले धतुरेको जड, पोस्तका ढेडो, लहसन, मिरच, कालाजिरो, जयन्ती पत्र, सैजनको छाल और सरसो यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पोसकर गरम लेप करनेसे ऊरुस्तम्भ आराम होता है। त्रिफला, पोपल, मोथा, चाभ और कुटको इन सबका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कुटको यह चार द्रव्यका चूर्ण आधा तोला सहतके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है। पीपला मूल, भेलावा और पोपल इसका काढा सहत मिलाकर पिलाना। भल्लातकादि और पिप्पल्यादि काढा, गुञ्जाभद्र रस, अष्टकट्वर तेल, कुष्ठाद्य तैल और महासैन्धवाद्य तैल ऊरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, कुरथी, मूंग चना और मसूरको दाल, परवर, गुल्लर, करैला, बैंगन, लहसन अदरख आदिको तरकारो, छाग, कबूतर या मुरगा आदिके मांसका रस, सहनेपर घो और थोडा मट्ठा खानेको देना। रातको पूरी या रोटो उपर कहो तरकारो, घो मैदा, सूजो और थोडो चीनी मिलाया पदार्थ, मोहनभोग, मिठाई आदि द्रव्य थोडा दे सकते है। जलपानमें किसमिस, छोहाडा, खजूर आदि कफ-

नाशक और वायु विरोधी फल खानेको देना। गरम पानी ठण्डा-कर पीनेको देना। स्नान जितना कम हो उतनाही अच्छा है। विशेष आवश्यक होनेसे गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। किन्तु वायुका प्रकोप अधिक होनेसे नदीमें स्नान और स्रोतके प्रतिकूलके तरफ तैरना उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक द्रव्य, कफजनक द्रव्य, मत्स्य, गुड़, दही, उड़द, पिष्टकादि, अधिक आहार और मल मूत्रका वेग रोकना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण और ओसमें फिरना आदि ऊरुस्तम्भ रोगमें अनिष्टकारक है।

आमवात।

निदान और लक्षण।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध आहार, स्निग्धान्न भोजन, अतिरिक्त मैथुन, व्यायाम, सन्तरणादि जलक्रीडा, अग्निमान्द्य, गमनागमन शून्यता आदि कारणोंसे खाये हुए पदार्थका कच्चा रस वायु द्वारा आमाशय और सन्धिस्थल प्रभृति कफ स्थानोंमें एकत्र और दूषित होनेसे आमवात रोग उत्पन्न होता है। अङ्गमें दर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, देहका भारी होना, ज्वर, अपरिपाक और शोथ; यही कई एक आम-वातके साधारण लक्षण है।

कुपित आमवातके उपद्रव।—आमवात अधिक कुपित होनेसे सब रोगका अपेक्षा अधिक कष्ट दायक होता है। इसमें हाथ, पैर, मस्तक, गुल्फ, कमर, जानु, ऊरु और सन्धिस्थानो में अत्यन्त दर्दयुक्त शोथ उत्पन्न होता है; तथा इसमें दुष्ट आम

जिस जिस स्थानमें जाता है उसी स्थानमें बिच्छूके काटनेकी तरह दर्द और अग्निमान्द्य, मुख नाकसे जलस्राव, उत्साह हानि, मुखका बेस्वाद होना, दाह, अधिक मूत्रस्राव, कुक्षिमें शूल और कठिनता, दिवा निद्रा, रातको अनिद्रा, पिपासा, जीमतलाना, भ्रम मूर्च्छा छातीमें दर्द, मलबद्धता, शरीरकी जड़ता, पेटमें शब्द होना और आनाह आदि उपद्रव उपस्थित होती है।

दोषभेद लक्षण।—वातज आमवातमें अधिक शूलवत् वेदना, पैत्तिकमें गात्र दाह, शरीर लाल होना; कफजमें गीला कपड़ा लपेटनेकी तरह अनुभव, गुरुता और कण्डु; यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते है। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यमे वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है। एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषज याप्य और सन्निपातज तथा सर्व्व देह गत शोथ लक्षणयुक्त आमवात असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पीड़ाके प्रथम अवस्थाही से चिकित्सा करना चाहिये। नही ता कष्टसाध्य हो जाता है। लङ्घन, स्वेदन और विरेचन आमवातको प्रधान चिकित्सा है। बालूकी पोटली गरमकर दर्दकी जगह सेंकना, अथवा कपासकी बीज, कुरथी, तिल, यव, लाल रेंडीका जड़, तीसी, पुनर्नवा और सनबीज; यह सब द्रव्य या इसमें से जय वस्तु मिले उसको कूट काञ्जीसे तरकर पोटली बनाना फिर एक हाड़ीमें काञ्जी रख एक बहु छिद्र वाला सिकोरा ढांक संयोग स्थानको मिट्टीसे बन्दकर देना, फिर वही काञ्जीकी हाड़ी आगपर रख तथा ढकनेके उपर वह पोटली रख गरमकर आमवातमें सेंकनेसे दर्द दूर होता है। इसको सङ्कर स्वेद कहते है। सोवा, वच, शोंठ गोक्षुर, वरुण छाल, पोत बरियारा, पुनर्नवा, शठी, गन्धाली, जयन्ती फल और हींग यह सब

द्रव्य काञ्जीमें पीस गरमकर लेप करना। कालाजीरा, पीपल, करञ्जके बीजकी गूदी और सोंठ, समभाग अदरखके रसमें पीस कर लेप करनेसे भी दर्द जलदी आराम होती है। तीनकांटेवाले सेंहुड़का दूध नमकमें मिलाकर दर्दकी जगह लगानेसे भी आराम होती है। विरेचनके लिये दशमूल और सोंठके काढ़ेमें आधी छटाक या कोष्ठानुसार उससे कम मात्रा रेंड़ीका तेल अथवा केवल रेंड़ीका तेल गरम दूधके साथ पिलाना। त्रिवृतके जड़का चूर्ण १२ मासे और सोंठ २ मासे; एकमें मिलाकर चार या ६ आने मात्रा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे भी विरेचनद्वारा आमवात शान्त होता है, अथवा केवल त्रिवृत चूर्णको त्रिवृतके काढेकी भावना देकर उक्त मात्रा काञ्जीके साथ सेवन कराना। चितामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, अतीस, और गुरिच, अथवा देवदारु, बची, सौंठ, अतीस और हरीतकी, इन सबका चूर्ण गरम पानीके साथ पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे आमवात आराम होता है। रास्नापञ्चक, रास्नासप्तक, रसोनादि कषाय और महारास्नादि क्वाथ आमवातका श्रेष्ठ औषध है। विरेचनकी आवश्यकता होनेसे ऊपर कहे काढ़ोंमें रेंड़ीका तेल मिलाकर पान कराना। हिङ्ग्वाद्य चूर्ण, अलम्बुषाद्य चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, अजमोदादि वटिका, योगराज गुग्गुलु, बृहत् योगराज गुग्गुलु, सिंहनाद्य गुग्गुलु, रसोनपिण्ड, महारसोनपिण्ड, आमवातारि वटिका, वातगजेन्द्रसिंह, प्रसारणी तैल, बृहत् सैन्धवाद्य तैल, विजय भैरव तैल और वातव्याधि कथित कुब्ज प्रसारणी और महामाष प्रभृति तैल आमवात रोगमें विचार कर प्रयोग करनेसे पीड़ा शान्त होती है। हमारा "वातारिमर्द्दन तैल" मालिश करनेसे आमवातका दर्द जलदी आराम होता है। गठिया, पक्षाघात प्रभृति वातव्याधिके दर्दमें

"वातारिमर्द्दन तैल" व्यवहार करनेसे सब दर्द जल्दी आराम होती है।

पथ्यापथ्य।—ऊरुस्तम्भ रोगमें जो पथ्यापथ्य कह आये है, आमवात रोगमें वही सब पालन करना। स्नान गरम पानीसेभी नहो करना। रूई और फलालेनसे दर्दके स्थानको बांधना चाहिये। ज्वर होतो भात बन्दकर सूखो रोटी, साबू आदि हलका पथ्य खानेको देना

शूलरोग।

संज्ञा और प्रकार भेद।—पेटमें शूल गड़ानेकी तरह दर्द जिस जिस रोगमें होता है, उसको शूलरोग कहते हैं। यह रोग आठ प्रकारका है; वातज, पित्तज, द्वन्द्वज, वातज पित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज, सन्निपातज और आमदोषजात। इस आठ प्रकारके सिवाय परिणाम शूल और अन्नद्रव नामका और दो प्रकारका शूलरोग है। शूलरोग मात्र अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

निदान।—व्यायाम (कसरत) घोड़ा आदि सवारीपर घूमना, अति मैथुन रात्रि जागरण, अतिशय शीतल जल पान, और मटर, मूग, अरहर, कोदो, रुक्ष द्रव्य, तिक्त द्रव्य, अङ्कुरित धानका भात आदि द्रव्य भोजन; संयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर भोजन, मल, मूत्र, वायु और शुक्रका वेग रोकना, शोक, उपवास और अतिशय हँसना या बोलना; यही

सब कारणोंसे वायु कुपित होकर वातज शूल उत्पन्न होता है। वातज शूलमें हृदय, पार्श्वद्वय, पीठ, कमर और वस्तिमें सूची वेधवत् या भङ्गवत् वेदना, मल और अधोवायुका रोध, आहार जीर्णहोनेपर शीत और वर्षा ऋतुमें पीड़ा बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

पित्तजशूल।—क्षार अति तीक्ष्ण और अति उष्ण द्रव्य भोजन, जिस द्रव्यका अम्लपाक हो ऐसा द्रव्य भोजन, सोम, पोसी तिल, कुरथी, भरटका जूस, कचू और अम्ल रस, मद्य और तैल पान, क्रोध, रौद्र, अग्नि सन्ताप परिश्रम और अति मैथुन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पित्तज शूल उत्पन्न होता है। इसमें नाभिमें दर्द, तृष्णा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा भ्रम और शोष अर्थात् आगके पास रहनेसे जैसे चूसनेकी तरह पीड़ा होती है वैसी पीड़ा, यही सब लक्षण लक्षित होते है। दोपहर, आधी रात, आहार पचनेके समय और शरत ऋतुमें यह शूल बढ़ता है।

श्लेष्मज शूल।—जलज या जल समीपजात जीवका मांस, फटा दूध, दही इक्षु रस, पिष्टक, खिचड़ी, तिल, तण्डुल और अन्यान्य कफ वर्द्धक द्रव्य भोजन करनेसे श्लेष्मा कुपित हो श्लेष्मज शूल उत्पन्न होता है। इससे आमाशयमें दर्द, जीमतलाना, कास, देहको अवसन्नता, मुख और नासिकासे जलस्राव, कोठकी स्तब्धता आदि लक्षण दिखाई देते है। आहार करने पर, सबेरे, शीत और वसन्त ऋतुमें कफज शूल अधिक प्रकुपित होता है।

त्रिदोषज शूल।—अपने अपने कारणसे वातादि तीन दोष एकसाथ कुपित होनेसे त्रिदोषज शूल पैदा होता है। इसमें उक्तसब लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज शूल असाध्य है।

आमज शूल लक्षण।—आमज अर्थात् अपक्व रसजात शूल रोगसे उदरमें गुड गुड शब्द होना वमन या वमन वेग, देहकी गुरुता, शरीर आर्द्र वस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, मलमूत्र रोध, कफस्राव और कफज शूलके अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होते है।

त्रिदोषज।—द्विदोषज शूलमें वातकफज शूल वस्ति, हृदय, पार्श्व और पीठ; पित्तकफज शूल कुक्षि, हृदय और नाभि तथा वातपित्तज शूल पूर्व्वोक्त वातज पित्तज शूलके निर्दिष्ट स्थानमें उत्पन्न होता है। वातपैत्तिक शूलमें ज्वर और दाह अधिक होतेहैं।

उक्त शूलोंमें एक दोषजात शूल साध्य, दो दोषजात शूल कष्टसाध्य, त्रिदोषज तथा अतिशय वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, देहकी गुरुता, ज्वर, भ्रम, अरुचि, कृशता और बलहानि आदि उपद्रवयुक्त शूलरोग असाध्य है।

परिणाम शूल।—आहारके परिपाक अवस्थामें जो शूल उत्पन्न होता। उसको परिणाम शूल कहते है। वायुवर्द्धक कारण समूह सेवित होनेसे वायु कुपित हो, कफ और पित्तको दूषित करनेसे यह शूल उत्पन्न होता है।

परिणाम शूलमें दोषाधिक्यके लक्षण।—परिणाम शूलमें वायुका आधिक्य रहनसे उदराध्मान, पेटमें गुड़गुड़ शब्द, मल मूत्रका रोध, मनकी अप्रसन्नता और कम्प, यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते है। स्निग्ध और उष्ण द्रव्य सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम दिखाई देता है। पित्तके आधिक्यमें तृष्णा, दाह, चित्तकी अप्रसन्नता, पसीना और शीतल क्रियासे पीडामें उपशम, यही सब लक्षण दिखाई देते है। कटु, अम्ल या लवण रस भोजनसे यह शूल उत्पन्न होता है। कफके आधिक्यसे वमन या वमनवेग, मूर्च्छा और अल्पक्षण स्थायी दर्द होती

है। कटू या तिक्त रस सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम होता है। दो या तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होनेसे तथा द्विदोषज या त्रिदोषज, परिणाम शूलमें रोगीका बल मांस या अग्निक्षीण होनेसे वह असाध्य होता है।

अन्नद्रव शूल लक्षण।—भुक्त द्रव्यका अपरिपाक होनेसे या परिपाकके समय अथवा अपक्व अवस्थाहीमें जो अनिर्दिष्ट शूल उत्पन्न होता है, उसको अन्नद्रव शूल कहते है यह शूल पथ्य भोजनादिसे शान्त नहो होता है। के करानेसे कुछ आराम मालूम होता है।

वातज शूल चिकित्सा।—शूलरोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। रोग पुराना होनेसे आराम होनेकी आशा नही रहती। वातज शूलमें पेटमें स्वेद करनेसे आराम मालूम होता है। मिट्टी पानीमें घोलकर आगपर रखना जब गाढ़ा हो जाय तब वस्त्रको पोटलीमें उसे रख सेंकना। अथवा कपास बीज, कुरथी, तिल, जौ, एरण्डमूल, तीसी, पुनर्नवा और शण बीज इन सब द्रव्यमें जो मिले उसका कांजीमें पीस गरम कर पोटलीमें बांधकर सेंकनेसे उदर, मस्तक, केहुनी, चूतड़, जानु, पैर, अङ्गुलि, गुल्फ, कन्धा और कमर की दर्द जलदी आराम होती हैं। बिल्वमूल, तिल और एरण्डमूल एकत्र कांजीमें पीस गरम कर एक पिण्ड बनाना; वह पिण्ड पेटपर फिरानेसे शूल आराम होता है। देवदारु, श्वेतवच, कूठ, सोवा, हींग और सेंधा नमक कांजीमें पीस गरम कर पेटपर लेप करनेसे वातज शूल आराम होता है। अथवा बेलकी जड़, एरण्डकी जड़ चितामूल, सोंठ, हींग और सेंधा नमक एकत्र पीसकर पेटपर ठण्ढा लेप करना। बरियारा, पुनर्नवा, एरण्ड मूल, हड़तो, कण्टकारी और गोखुरू

इसके काढ़ेमें हींग और सेंधा नमक मिलाकर पीना। सोंठ, एरण्ड मूल यह दो द्रव्यका काढ़ा हींग सोचल नमक मिलाकर पीनेसे तुरन्त शूल आराम होता है। हींग, चैकल, सोंठ, पीपल, सोचल नमक, अजवायन, यवाचार, हरीतकी और सैन्धव सबका समान वजन चूर्ण चार आनेभर मात्रा ताडीके साथ पीनेसे वातज शूल आराम होता है। हींग, चैकल, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, अजवाईन, सेंधव, सोचल और काला नमक, एकत्र बड नीबूके रसमें पीसकर दो आने या चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे भी वातज शूल शान्त होता है।

पित्तज शूल चिकित्सा।—पित्तज शूलमें परवरका पत्ता या नीमका कल्कयुक्त दूध, जल किम्बा इक्षुरस पिलाकर वमन कराना। मलबद्ध रहनेसे जेठीमध (मुलेठी) के काढ़ेके साथ उपयुक्त मात्रा एरण्ड तैल पिलाना। अथवा त्रिफला और अमिलतासके गूदेका काढ़ा घी, चीनी मिलाकर पिलाना। इससे शूल दाह और रक्तपित्त आराम होता है। मवेरे सहतके साथ शतमूलीका रस, किम्बा चीनीके साथ आंवलेका रस पीनेसे, अथवा सहतके साथ आंवलेका चूर्ण चाटनेसे पित्तज शूल आराम होता है। शतमूली, जेठीमध, बरियारा, कुशमूल और गोखुर इसका काढ़ा ठण्ढाकर पीनेसे पित्तज शूलकी दाहयुक्त पीड़ा दूर होती है। वृहती, कण्टकारी, गोखुर एरण्डमूल, कुश, काश और इक्षुवालिका, इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रबल पित्तज शूल भी शान्त होता है।

कफज शूल।—कफज शूलमें पहिले वमन और उपवास देना चाहिये। आमदोष हो तो लोधा, बच, कुटकी, हरीतकी और मूर्व्वाकी जड़ सब समान भाग पीस कर चार आनेभर मात्रा

गोमूत्रके साथ पिलाना। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, सैंधव, सौचल नमक, काला नमक और हींग एकत्र चूर्णकर दो आने या चार आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा बच, मोथा, चितामूल, हरीतकी, और कुटकी, इसका चूर्ण चार आनेभर, गोमूत्रके साथ सेवन कराना।

आमज शूल चिकित्सा।—आमज शूलकी भी चिकित्सा कफज शूलकी तरह करना। इसके सिवाय अजवाइन, सेंधा नमक, हरीतकी और शोंठ, एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। जिस औषधसे अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोगमें आमदोषका परिपाक और अग्नि वर्द्धित होता है आमज शूलमें भी वही औषध देना चाहिये।

त्रिदोष शूल चिकित्सा।—त्रिदोषज शूल, बिदारीकन्दका रस २ तोले और पक्के अनार का रस २ तोले, शोंठ, पीपल, गोलमरिच और सेन्धा नमकका चर्ण ⅟० भर तथा २ आने भर सहत एकत्र मिलाकर पीना। शङ्खभस्म १ मासा, सैन्धव लवण, शोंठ पीपल और गोलमरिच, इसका चूर्ण २ मासे और हींग २ या ३ रत्ती एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल शान्त होता है।

परिणाम शूल चिकित्सा।—परिणाम शूलमें एरण्डमूल, बेलकी जड, हहती, कण्टकारी बड़े नीबूकी जड, पाथरचूर और गोखुर मूल इन सबके काढ़ेमें जवाखार, हींग, सैन्धव और एरण्ड तेल मिलाकर पिलाना। इससे दूसरे स्थानोंकी दर्दभी शान्त होती है। हरीतकी, शोंठ और मण्डूर चूर्ण प्रत्येक समभाग घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल दूर होता है। शम्बुकादि गुडिका और नारिकेल चार परिणाम शूलको श्रेष्ठ औषध हैं।

हमारा शूलनिर्व्वाण चूर्ण।—अम्लद्रव शूलमें अम्लपित्त रोगको तरह चिकित्सा करना चाहिये। हमारा "शूलनिर्व्वान चूर्ण" सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल रोग जलदी आराम होताहै।

शास्त्रीय औषध।—सामुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डुर गुड़, शतावरी मण्डूर, वृहत् शतावरी मण्डूर, धात्री लौह (२ प्रकार) आमलकी खण्ड, नारिकेल खण्ड, वृहत् नारिकेल खण्ड, नारिकेलामृत, हरीतकी खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगजकेशरी, शूलवर्ज्जिनी वटी, पिप्पली घृत और शूलगजेन्द्र तैल यही सब औषध सब प्रारके शूलरोगमें विचार कर देना। ग्रहणी रोगोक्त श्रीबिल्व तैल भी शूल रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—पीड़ाकी प्रवल अवस्थामें अन्नाहार बन्द कर दिनको दूध वार्लि, दूध सागु और रातको दूध और धानका लावा खानेको देना। पित्तज शूलमें जो मतलाना, ज्वर, अत्यन्त दाह और अतिशय तृष्णा उपद्रव हो तो मधु मिलाकर जौकी लपसी पिलाना। हमारा "सजीवन खाद्य" शूलके प्रवल अवस्थामें देनेसे विशेष उपकार होता है। पीड़ाकी शान्ति होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मागुर, सिङ्गी, कोई आदि छोटी मछलीका रसा सूरण, याने ओल, परवर, बैंगन, गुल्लर, पुराना सफेद कोंहड़ा, सेजनका डण्डा, करेला केलेका फूल आदिकी तरकारी; आंवला केसरू, द्राक्षा, पक्का पपीता, नारियल और बेल आदि फल, गरम दूध, तिक्त द्रव्य, कच्चे नारियलका पानी और हींग आदि खानेको देना। तरकारी आदिमें सेंधा नमक मिलाना। तरकारी जितनी कम खाई जाय उतनाही अच्छा है। अर्थात् तरकारी बन्द कर केवल भातही खाना बहुत अच्छा है। रातको जौकी लपसी, दूध वार्लि, दूध सागु, दूध [illegible]का लावा या हमारा

"सञ्जीवन खाद्य" खानेको देना। जलपानमें कोहड़ेका मुरब्बा, गरीको बरफो और आवलेका मुरब्बा खानेको देना। इस रोगमें आहारके साथ जलपान न कर आहारके दो घण्टा बाद पानी पीना उपकारी है। सहनेपर शीतल या गरम पानी से स्नान करना।

निषिद्ध द्रव्य।—गुरुपाक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, सब प्रकारको दाल, शाक, बड़ी मछली, दही, रुच, कषाय और शीतलद्रव्य; अम्ल द्रव्य, लाल मिरचा तेज शराब, धूपमें फिरना, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मलमूत्रका वेग रोकना, रात्रि जागरण, शूल रोगमें अनिष्टकारक है।

उदावर्त्त और आनाह।

संज्ञा उदावर्त्त।—अधोवायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, डकार, जीमतलाना, शुक्र, क्षुधा, तृष्णा, दीर्घश्वास और निद्रा; इन सबका वेग धारण करनेसे जो जो रोग उत्पन्न होता है उसको उदावर्त्त कहते है।

भिन्न भिन्न वेग रोधमें पीड़ाके लक्षण।—अधोवायुका वेग रोकनेसे वायु, मूत्र और मलका रोध, पेटका फूलना, क्लान्ति, उदर और मर्व्वाङ्गमें दर्द, तथा अन्यान्य वातज रोग उत्पन्न होता है। मलवेग रोकनेसे पेटमें गुड़ गुड़ शब्द और शूलवेदना, गुदा काटनेकी तरह दर्द मलरोध, डकार और कभी कभी मुखसे मल निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

मूत्रवेग रोकनेसे मूत्राशय और लिङ्गमें शूल की तरह कष्टसे मूत्र आना या मूत्ररोध, शिर:पीड़ा, कष्टसे शरीरका बेकाबू होना और वंक्षन द्वय (दोनो पट्ठों) में खोचनेकी तरह कष्ट होता है। जम्हाईका वेग रोकनेसे वायुजनित मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, शिरोरोग और आंख, कान, नाक और मुखरोग उत्पन्न होता है। आनन्द या शोकादि कारणोंसे आसुका वेग रोकनेसे, मस्तकका भारी होना अति कष्टदायक पोनस और चक्षु रोग उत्पन्न होता है। छींकका वेग रोकनेसे मन्यास्तम्भ, शिरशूल, अर्द्दित रोग, अर्द्धावभेदक (आधा शीशी) और इन्द्रियोंको दुर्ब्बलता यही सब लक्षण लक्षित होते है। डकारका वेग रोकनेसे कण्ठ और मुख भरा रहना, हृदय और आमाशयमें सूची वेधवत् वेदना, अस्पष्ट वाक्य, नि:श्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, खजुली, कोठ, अरुचि, मेहुंआ आदि मुखमें काला काला दाग, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, जीमतलाना और विसर्प रोग उत्पन्न होता है। शुक्रवेग रोकनेसे मूत्राशय, गुह्य और अण्डकोषमें शोथ, दर्द, मूत्ररोध, शुक्राश्मरी, शुक्र क्षरण और नानाप्रकार कष्टसाध्य मूत्राघात रोग उपस्थित होते है। भूख रोकनेसे अर्थात् भूख लगने पर भोजन नहीं करनेसे तन्द्रा, अङ्गमें दर्द, अरुचि, श्रान्ति और दृष्टिशक्तिको दुर्ब्बलता आदि उत्पन्न होते है। प्यास रोकनेसे कण्ठ और मुखमें शोष, श्रवणशक्तिका नाश और छातोमें दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। परिश्रमके बाद दीर्घश्वासका वेग रोकनेसे हृद्रोग, मोह और गुल्मरोग उत्पन्न होता है। निद्रारोधसे जम्हाई, अङ्गमर्द, आंख और शिरका भारीपन तथा तन्द्रा उपस्थित होतो है।

अन्यविध प्रकार भेद।—उपर कहे उदावर्त्तके सिकोठाश्रित वायु रुक्ष, कषाय, कटु और तिक्त द्रव्य भोजनादि

कारणोंसे कुपित हो और एक प्रकारका उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। उससे भो यही कुपित वायुसे वात, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेदोवहा स्रोत समूह आहत और सूख जाता है, इसमें हृदय और वस्तिमें दर्द, जीमतलाना, अति कष्टसे वात, मूत्र, पूरीषका निकलना और क्रमशः श्वास, कास, प्रतिश्याय, दाह, मूर्च्छा, तृष्णा, ज्वर, वमन, हिचकी, शिरोरोग, मनकी भ्रान्ति, श्रवण इन्द्रियकी विकृति और अन्यान्य विविध वातज रोग उत्पन्न होते हैं।

आनाह संज्ञा और लक्षण।—आहार जनित अपक्व रस या पूरीष क्रमशः सञ्चित और विगुण वायु कर्त्तृक बद्ध हो यथाशय रूपसे नहीं निकले तो उसको आनाह रोग कहते हैं। अपक्व रस जनित आनाहमें तृष्णा, प्रतिश्याय मस्तकमें जलन, आमाशयमें शूल और भारीपन, हृदयमें स्तब्धता और डकार बन्द होना आदि लक्षण उत्पन्न होते है। मल सञ्चय जनित आनाह रोगमें कमर और पीठकी स्तब्धता मल मूत्रका रोध शूल, मूर्च्छा विष्ठावमन, शोथ, आध्मान, अधोवायुका रोध और अलसक रोगोक्त अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होते हैं।

उदावर्त्त चिकित्सा।—वायु अनुलोमक विधान ही उदावर्त्तकी साधारण चिकित्सा है। अधोवातरोध जन्य उदावर्त्तमें स्नेह पान, स्वेद और वस्ति (पिचकारी) प्रयोग करना। मयन फल, पीपल, कूठ, वच, और सफेद सरसों हरेकका समभाग सबके समान गुड़, पहिले गुड पानीमें घोलकर आगपर रखना, खूब औटनेपर थोड़ा दूध और वही सब चूर्ण मिलाकर वत्ती बनाना इसीको फलवर्त्ती कहते हैं। गुह्यद्वारमें यह वर्त्ती प्रयोग करनेसे सब प्रकारके उदावर्त्त रोग आराम होते हैं। मल वेग धारण जन्य उदावर्त्त रोगमें विरेचक और फलवर्त्ती देना, वदनमें

तैल मर्द्दन, अवगाहन, स्वेद और वस्तिकर्म्म करना चाहिये। मूत्र वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें अर्ज्जुन छालका काढा, ककडीके बीजका चूर्ण थोडा नमक मिला पानीके साथ सेवन, अथवा बचका चूर्ण सेवन करना। मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगोक्त सब औषध इसमें प्रयोग कर सकते हैं। जृम्भा वेग धारणके उदावर्त्तमें स्नेह, स्वेद और वायु नाशक अन्यान्य क्रिया भी करना। अश्रुवेग धारण जनित उदावर्त्तमें तीक्ष्ण अञ्जनादिसे अश्रु निकालकर रोगीको प्रसन्न रखना। छींक रोधमें मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्यका नास या सूर्य्य दर्शण आदि क्रियासे छींकना चाहिये। डकार रोधमें गुरिच, भूमि-कुष्माण्ड, असगन्ध, अनन्तमूल, शतमूली (प्रत्येक २भाग) माष-पर्णी, जीवन्ती और जेठीमध यह सब द्रव्य पीसकर वसा, घृत या मोमके साथ मिलाना फिर उसकी बत्ती बनाकर चुरटकी तरह पीना। वमन वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें वमन, लङ्घन, विरेचन और तैल मर्द्दन हितकारी है। शुक्रवेग धारण जन्य उदावर्त्तमें मैथुन, तैल मर्द्दन, अवगाहन, मद्यपान, मांस रस प्रभृति पुष्टिकर भोजन और पञ्च तृण मूलका कल्क चौगुने दूधमें औटाना दूध रहजानेपर वही दूध छानकर पिलाना। क्षुधा रोध जन्य उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण और रुचिजनक अन्न थोडा भोजन तथा सुगन्ध द्रव्य सूंघना भी उपकारी है। तृष्णा वेग धारणके उदा-वर्त्तमें कपूर मिला पानी या वरफका पानी, या यवागु पिलाना तथा सब प्रकारकी शीतलक्रिया इसमें उपकारी है। श्रमजन्य श्वास रोधज उदावर्त्तमें विश्राम करना और मांस रसके साथ अन्न भोजन करनेको देना। निद्रा रोधजन्य उदावर्त्त में चीनी मिला दूध पान, सम्बाहन (हाथ पैर दबाना) और सुखप्रद बिछौने पर सोना आदि उपाय करना चाहिये रुक्ष द्रव्यादि सेवनके उदाव र्त्तमें

पूर्व्वोक्त फलवर्त्ती या हींग मधु और सेंधा नमक एकत्र पीसकर वर्त्ती बनाना, फिर वर्त्तीमें घी लगाकर गूदामें रखना।

आनाह चिकित्सा।—आनाह रोगमेंभी उदावर्त्तकी तरह वायुकी अनुलोमता साधन और वस्तिकर्म्म तथा वर्त्ती प्रयोग आदि उपकारी है। त्रिवृत चूर्ण २ भाग, पीपल ४ भाग, हरीतकी ५ भाग और सबके समान गुड़, एकत्र मर्द्दन कर चार आने या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे आनाह रोग शान्त होता है। वच हरीतकी, चितामूल, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ समभाग सबका चूर्ण चार आने या दो आनेभर मात्रा सेवन करना। इसके सिवाय नाराचचूर्ण, गुडाष्टक, वैद्यनाथ वटी, वृहत् इच्छाभेदी रस, शुष्कमूलाद्यघृत और स्थिराद्यघृत, उदावर्त्त और आनाह रोगमें प्रयोग करना। हमारी सरलभेदीवटिका सेवन करनेसे हलका जुलाब हो उदावर्त्त और आनाह रोगमें विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—उदावर्त्त और आनाह रोगमें वायु शान्तिकारक अन्नपानादि आहार करना। पुराने चावलका गरम भात घी मिलाकर खाना। कोई, मागुर, शिङ्गी और मौरला आदि छोटी मछलीका शुरवा, छागमांस और शूलरोगोक्त तरकारी समूह और दूध आहार उपकारी है। मांस दूध एक साथ खाना अनिष्टजनक है। मिश्रीका शरबत्, कच्चे नारियलका पानी पक्का पपीता, शरीफा, इख, बेदाना, अनार आदि खानेको देना। रातको भूख हो तो वही सब अन्न खानेको देना। भूख अच्छी तरह न लगे तो दूधसागु, जौके आटेकी लपसी या दूध धानका लावा किम्वा थोड़ा मोहनभोग खानेको देना। सहनेपर ठण्ढा या गरम पानीसे स्नान, तेलमर्द्दन, तीसरे पहरको हवामें फिरना आदि उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—देरसे हजम होनेवाला पदार्थ, उष्णवीर्य्य

या रुक्ष द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, कसरत, पैदल चलना और क्रोध, शोक आदि मनोविघात कार्य्य करना इस रोगमें अनिष्टकारक है।

गुल्मरोग।

—:*:—

संज्ञा पूर्व्व लक्षण और प्रकार भेद।—हृदय, पार्श्व द्वय, नाभि और वस्ति इन पांचोंके भीतरी भागमें एक गोल गांठ पैदा होनेसे उसको गुल्मरोग कहते हैं। गुल्मरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अधिक डकार आना, मलरोध, भोजनमें अनिच्छा दुर्ब्बलता, उदराध्मान, पेटमें दर्द, गुड गुड शब्द होना और अग्निमान्द्य यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होतेहै गुल्म रोग पांच प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज और रक्तज। मल, मूत्र और अधो वायुका कष्टसे निकलना, अरुचि, अन्त्र कुजन, आनाह और वायुका ऊर्द्ध गमन, यही सब गुल्मरोगके सधारण लक्षण है। प्राय सब प्रकारके गुल्मरोगमें यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

वातज गुल्मके निदान और लक्षण।—अधिक या अल्प अथवा अनिर्दिष्ट समयमें रुक्ष अन्न, पान, भोजन, बलवान् मनुष्यके साथ युद्ध विग्रहादि कार्य्य, मल मूत्रका वेग धारण, शोक, आघातप्राप्ति, विरेचनादिसे अतिशय मलक्षय और उपवास; यही सब कारण से वातज गुल्म उत्पन्न होताहै। इस गुल्मकी अवस्थितिकी स्थिरता नही है; कभी नाभिमें, कभी पार्श्वमें, कभी वस्तिमें घूमता रहता है। इसकी आकृतिभी सर्व्वदा एक प्रकारको नही रहतो है। कभी बडा कभी छोटा होता रहता है। नाना

प्रकार यातना, मलरोध, अधोवायुका रोध, मुख और गलनालीका सूखना, शरीर श्याम या अरुणवर्ण, शीतज्वर, हृदय, कुक्षि स्कन्ध और मस्तकमें अत्यन्त दर्द तथा आहार पचने पर पीड़ाका अधिक प्रकोप आहार करते ही पीड़ा शान्त होती है।

पैत्तिक गुल्मके निदान और लक्षण।—कटु अम्ल, तीक्ष्ण, तथा विदाही (जो सब द्रव्यका अम्ल पाक होता है) और रूद्रव्य भोजन, क्रोध, अधिक मद्यपान, अत्यन्त धूप या अग्नि-सन्ताप सेवन, विदग्धाजीर्ण जनित अपक्व रसका आधिक्य और दूषित रक्त; यही सब कारणोंसे पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होताहै इसमें ज्वर पिपासा समस्त अङ्ग विशेषकर मुखका लाल होना, आहार परिपाकके समय अत्यन्त दर्द, पसीना निकलना, जलन और गुल्म स्थान छूनेसे अत्यन्त दर्द होता है। यह गुल्म कदाचित पकतेभी देखा गया है।

कफज गुल्म, निदान और लक्षण।—शीतल गुरुपाक और स्निग्धद्रव्य भोजन, परिश्रम शून्यता अधिक भोजन और दिवा निद्रा यही सब कारणोंसे कफज गुल्म उत्पन्न होता है। इस में शरीर आर्द्रवस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव शीत-ज्वर, शारीरिक अवसन्नता, वमन वेग, कास, अरुचि शरीरका भारबोध, शीतानुभव, अल्पवेदना, तथा गुल्म कठिन और उन्नत होताहै।

द्विदोषज और त्रिदोषज गुल्म लक्षण।—दो दोष वर्द्धक कारण मिश्रित भावसे सेवन करनेसे द्विदोषज गुल्म उत्पन्न होताहै। इसमें यही सब दोषके लक्षण मिले हुए लक्षित होते हैं। त्रिदोषज गुल्म भी वैसे ही तीन दोष वर्द्धक कारणसे उत्पन्न होता है। इस गुल्ममें अत्यन्त दर्द और दाह, पत्थरकी तरह कठिन भयङ्कर कष्टदायक और मन, शरीर, अग्निबलका क्षयकारक होता

है। यह गुल्म बहुत जल्दो पक जाता है। त्रिदोषज गुल्म असाध्य हैं।

रक्तगुल्मका निदान और लक्षण।—अपक्व गर्भ-स्राव किम्वा उचित समय पर प्रसव न होनेसे ; अथवा ऋतुकालमें अहितकारक आहार विहारादि आचरण करनेसे वायु कुपित हो रजो रक्तको दूषित करता है, इससे गर्भाशयमें रक्तगुल्म पैदा होता है। इसमें अत्यन्त दाह, दर्द और पैत्तिक गुल्मके अन्यान्य लक्षण भो दिखाई देते हैं। इसके सिवाय ऋतुबन्द होना, मुख पोला, स्तनका अग्रभाग काला, स्तनसेदूध निकलना, विविध द्रव्य भोजन को इच्छा, मुखसे जलस्राव, आलस्य आदि सब गर्भके लक्षण मालूम होते है, पर गर्भलक्षणके साथ केवल यही प्रभेद रहता है कि गर्भ-स्पन्दनमें किसो तरहका दर्द नही होता है और गर्भके बालकका सब अङ्ग एक ही वक्त स्पन्दित न हो हाथ पेर आदि एक एक अङ्ग स्पन्दित होते हैं। रक्तगुल्मके समस्त पिण्डमें दर्द और देरतक स्पन्दित होता रहता है।

असाध्य साङ्घातिक गुल्म।— गुल्म क्रमशः सञ्चित होकर यदि समस्त उदरमें व्याप्त होकर रस रक्तादि धातुका आश्रय ले, शिरा समूहोंसे आच्छादित और कछुयेको तरह वडाहोय और इसके साथ साथ यदि दुर्ब्बलता, अरुचि, वमन वेग, वमि, कास, बेचैनो, ज्वर, तृष्णा तन्द्रा और मुख नाकसे जलस्राव यह सब लक्षण प्रकाशित हो तो गुल्मरोग असाध्य जानना। गुल्म रोगो का हृदय, नाभि, हात और पैरमें शोथ तथा ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार अथवा श्वास, शूल, पिपासा, अरुचि, अकस्मात् गुल्मका विलोन होना और दुर्ब्बलता आदि लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगको मृत्यु जानना।

गुल्म चिकित्सा।—गुल्मरोगमें पहिले वायुके शान्तिका उपाय करना चाहिये। जहां दोषविशेषके लक्षणसमूह स्पष्ट प्रकाशित न होनेसे कौन दोषज गुल्म है इसका निर्णय न हो वहां वायु शान्तिके औषधादि प्रयोग करना। कारण वायुको शान्त करनेहोसे अन्यान्य दोष सब सहजमें शान्त होते है। दूध और बडो हर्रके चूर्णके साथ रेंड़ोका तेल पान करना और स्नेह स्वेद वातज गुल्ममें उपकारो है। सज्जोखार २ मासे, कूठ २ मासे और केतकीको जटाका खार ४ मासे रेंडोके तेलके साथ मिलाकर पोनेसे वातज गुल्म आराम होता है। सोंठ ४तोले, सफेद तिल१६ तोले और पुराना गुड ८ तोले एकत्र पोसकर आधा तोला या एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल आराम होता है। पैत्तिक गुल्ममें विरेचन उपकारो है। त्रिफलाके काढेके साथ त्रिवृत चूर्ण अथवा पुराने गुड़के साथ हरोतको चूर्ण सेवन करनेसे विरेचन हो पित्तज गुल्म शान्त होता है। गुल्म रोगमें दाह, शूलको तरह दर्द, स्वब्धता, निद्रानाश अस्थिरता और ज्वर प्रकाश होनेसे गुल्म पकनेपर है समझना; तब उसमें व्रण पकनेकेलिये उचित औषधदेना और पकजानेपर अन्तर्विद्रधिको तरह चिकित्सा करना। कफज गुल्ममें वमन, उपवास और स्वेद देना चाहिये। अग्निमान्द्य, थोड़ा दर्द, कोठ भारबोध, शरोर गोले वस्त्रसे आच्छादितको तरह अनुभव, जोम-तलाना, अरुचि आदि उपद्रवमें वमन कराना। वेल, श्योनाक, गाम्भारो, पाटला और गणियारो इन सबके जड़का काढा पीना कफज गुल्ममें हितकर है। अजवाइनका चूर्ण और काला नमक दहोके मट्ठेके साथ पोनेसे अग्निको दीप्ति और वायु, मूत्र, पूरो-षका अनुलोम होता है। कफज गुल्ममें तिल, एरण्डबोज और

सरसों पीसकर गरम लेपकर लोहेके पात्रसे सेंकना उपकारी है। हींग कूठ, धनिया, हरीतकी, चिहृतकी जड़ कालानमक, सेन्धा नमक, जवाखार और सोंठ, यह सब द्रव्य घीमें भूंज चूर्ण करना फिर दो आने या चार आने मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे गुल्म और तज्जनित उपद्रव दूर होते है। सज्जीखार आधा तोला और पुराना गुड़ आधा तोला एकत्र मिलाकर आधा ·· मात्रा सेवन करनेसे गुमरोग शान्त होता है। रक्त गुल्मकी चिकित्सा ११ महीने पीछे करना चाहिये कारण यह रोग पुराना होनेहीसे जलदी आराम होता है। इसमें पहिले स्नेहपान, स्वेद और स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। सोवा, करञ्जको छाल, देवदारु, वमनैठी और पीपल समभाग पीसकर त्रिफलेके काढ़ेके साथ पीनेसे रक्त-गुल्म आराम होता है; अथवा तिलके काढ़ेके साथ पुराना गुड़, हींग और वमनैठीका चूर्ण सेवन करना। गोलमरिच चूर्णके साथ आंवलेका रस पीनेसे भी उपकार होता है।

शास्त्रीय औषध।—हिङ्ग्वादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, वज्रक्षार। दन्ती हरीतकी, कांकायन गुडिका, पञ्चाननरस, गुल्म कालानल रस, बृहत् गुल्मकालानल रस, त्र्यषणाद्य घृत, नाराच घृत, त्रायमाणाद्य घृत और वायु शान्तिकारक स्वल्प विष्णु तैल आदि कई तैल गुल्मरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—जो सब द्रव्य वायु शान्तिकारक है वही गुल्मरोगका साधारण पथ्य है। पित्तज और कफज गुल्ममें जो सब द्रव्य पित्त और कफका अनिष्ट कारक नही हैं तथा वायु शान्तिकारक है ऐसा आहार देना चाहिये। दिनको पुराने महीन चावलका भात, घी, तित्तिर, मुरगा, बत्तक और छोटे पक्षीका

-मांस और शूलरोगोक्त सब तरकारी देना चाहिये। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग और दूध भोजन करना। कच्चे नारियलका पानी, मिश्रीका शर्ब्बत, पक्का पपीता, पक्का आम, शरीफा आदि पक्के फल खानेको देना। शीतल या गरम पानीसे सहनेपर स्नान करना उपकारी है। पेट साफ रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—अधिक परिश्रम, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, आतप सेवन, मैथुन और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो वही सब कार्य्य और वैसही आहारादि गुल्म रोगमें अनिष्ट कारक है।

हृद्रोग।

निदान लक्षण और प्रकारभेद।—अति उष्ण, गुरुपाक और कषाय कटुतिक्तरस भोजन, परिश्रम, छातीमें चोट लगाना, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन करना, मल मूत्रवेग धारण और निरन्तर चिन्ता करना यही सब कारणोंसे हृद्रोग उत्पन्न होता है। छातीमें दर्द और सर्वदा थुक थुक करना इस रोगका साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और क्रिमिजात भेदसे हृद्रोग पांच प्रकारके होते है।

त्रिविध दोषज हृद्रोग लक्षण।—वातज हृद्रोगमें हृदय आकृष्ट, सूची द्वारा विद्ध, दण्डादिसे पीड़ित, अस्त्र द्वारा

छिन्न, शलाका द्वारा स्फुटित; अथवा कुटारसे पाटितको तरह अनुभव होता है। पित्तज हृद्रोगमें हृदयमें ग्लानि, शरीर घूमनेकी तरह दर्द, सन्ताप, दाह, तृष्णा, कण्ठसे धूंआ निकलनेकी तरह अनुभव, मूर्च्छा, पसीना होना और मुख सूख जाता है। कफज हृद्रोगमें शरीर भारबोध, कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य और मुखका स्वाद मीठा होता है। त्रिदोषज हृद्रोगमें ऊपर कहे तीनों रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज हृद्रोग उत्पन्न होनेपर यदि तिल, दूध, गुड़ प्रभृति क्रिमिजनक आहारादि अधिक खानेमें आवे तो हृदयके किसी स्थानमें एक गांठ उत्पन्न हो उसमेंसे क्लेद और रस निकलता है, तथा उसी क्लेदादिसे क्रिमि उत्पन्न हो क्रिमिज हृद्रोग उत्पन्न होता है। इससे छातीमें तीव्र वेदना, सूची वेधवत् यातना, कण्डू, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, छातीके रसका वमन, अन्धकार देखना, अरुचि, दोनों आंखें काली और शोथयुक्त, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। क्लान्तिबोध, देहकी अप्रसन्नता, भ्रम, शोष और कफज क्रिमिके कई उपद्रव इस हृद्रोगके उपद्रव रूपसे प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा।—हृद्रोगमें अग्निवृद्धिकारक और रक्तजनक औषधादि प्रयोग करना आवश्यक है। घृत, दूध किम्वा गुड़के साथ अर्ज्जुन छालका चूर्ण ৶ आनेभर सेवन करनेसे हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्त शान्त होता है। कूठ, बड़े नीबूकी जड़, सोंठ, शठी और हरीतकी समभाग एकत्र पीसकर दूध, कांजी, घृत और लवण मिलाकर सेवन करनेसे वायुजन्य हृद्रोग प्रशमित होता है। हरीतकी, बच, रास्ना, पीपल, सोंठ, शठी और कूठका समभाग चूर्ण दो आनेसे चार आनेभर सादा पानीके साथ सेवन करनेसे हृद्रोग दूर होता है। पित्तज हृद्रोगमें अर्ज्जुन छाल, स्वल्प पञ्च-

मूल, बरियारा या मुलेठोके साथ दूध औटाकर वही दूध चीनी मिलाकर पिलाना। कफज हृद्रोगमें विवृत, शठो, बरियारा, रास्ना, हरीतकी और कूठका समभाग चूर्ण दो आने या चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीना। छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण दो आनेभर घीके साथ मिलाकर चाटनेसे कफज हृद्रोग आराम होता है। हींग, बच, काला नमक, शोंठ, पीपल, हरीतकी, चितामूल, जवाखार, सौचल नमक और कूठ इन सबका समभाग चूर्ण ⁄) आनेभर मात्रा जौके काढेके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज हृद्रोग भी आराम होता है। क्रिमिजात हृद्रोगमें विडङ्ग और कूठ चूर्ण दो आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीनेसे तथा क्रिमि रोगके अन्यान्य औषधसे भी आराम होता है। ककुभादि चूर्ण, कल्यानसुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, श्वदंष्ट्र घृत और अर्जुन घृत आदि हृद्रोगके श्रेष्ठ औषध है। बृहत् छागलाद्य घृत भी हृद्रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

विभिन्न कारणज वेदना चिकित्सा।—छातीमें चोट लगनेसे और कास या रक्तपित्त पीडाके पहिले छाती में दर्द हो तो छातीमें तार्पिन तेल मालिश कर पोस्तके ढेढोंके काढेमें फलालेन या कम्बल भिङ्गो निचोड कर सेंकना चाहिये। अदरख दो भाग और घरवा चावल एक भाग एकत्र पोसकर गरम लेप करना। कूटका चूर्ण सहतके साथ चाटना। दशमूलका काढा सैन्धव और जवाखार मिला कर पिलाना। लक्ष्मीविलास रस औषध सेवन और महादशमूल तैल किम्बा कास रोगोक्त चन्दनादि तेल छातीमें मालिश करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध पुष्टिकर और लघु आहार हृद्रोगमें देना चाहिये, ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे वातव्याधि कीतरह

पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना उचित है। छातीकी दर्दमें रक्तपित्त और कासरोगोक्त पथ्य व्यवस्था करना।

निषिद्ध कर्म्म।—रुक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, उपवास और परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि और धूप बैठना, मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

संज्ञानिदान और प्रकारभेद।—जिस रोगमें अतिशय कष्टसे पिशाब हो उसको मूत्रकृच्छ्र कहते है। तीक्ष्णद्रव्य या तीखा औषध सेवन; रुखा अन्न भोजन, रुखो शराब पोना, जला भूमिजात * जीवका मांस भोजन, पहिलेका खाया अन्न न पचनेपर फिर आहार करना, अरुचि, कसरत, घोडा आदि तेज सवारी पर चढना, मलमूत्रका वेग धारण आदि कारणोंसे यह रोग उत्पन्न होता है। मूत्रकृच्छ्र आठप्रकार; वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुक, पूरोषज, अश्मरोज और शुक्रज।

विभिन्न दोषजात रोग लक्षण।—वातज मूत्रकृच्छ्रमें दोनो पञ्जा, वस्ति और लिङ्गमें अत्यन्त दर्द और वार वार थोडा २ पिशाव होता है। पित्तजमें दर्द और जलनके साथ वार वार पीला या रक्तवर्ण पिशाब होता है। कफजमें लिङ्ग और बस्तिमें भारबोध, शोथ और पिच्छिल मूत्र होता है। सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें उक्त

* बरसातके पानीसे डूबे हुये स्थानको जलाभूमिजात कहते है।

तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते है। मूत्रवहा स्रोत कांटेसे क्षत या किसी तरह चोट लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है उसको आगन्तुक मूत्रकृच्छ्र कहते है। इससे वातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण लक्षित होते है। मलका वेग धारण करनेसे उदराध्मान और शूलयुक्त एकप्रकारकामूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है उसको पुरीषज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। अश्मरी अर्थात् पथरी रोगमें जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको अश्मरी कहते है। इससे छातीमें दर्द, कम्प, कुक्षिशूल, अग्निमान्द्य और मूर्च्छा यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। दूषित शुक्र मूत्रमार्गमें उपस्थित होनेसे शुक्रज मूत्रकृच्छ्र पैदा होता है। इसमें वस्ति और लिङ्गमें शूलवत् दर्द तथा अति कष्टसे पिशाब होता है।

मूत्राघात लक्षण।—पिशाव रुक रुक कर थोड़ा २ होना या पिशाव बन्द होनेसे उसको मूत्राघात कहते है। मूत्रकृच्छ्रके अपेक्षा इस रोगमें पिशावमें कष्ट कम होता है, इसका और मूत्रकृच्छ्र दोनोका निदान एकही प्रकार है। प्रमेहसे भी यह रोग होते देखा गया है। बूंद बूंद पिसाब होना, मूत्रके साथ रक्तजाना मूत्राशय फूलना, आध्मान, तीव्र वेदना, वस्तिमें पत्थरकी तरह गांठका पैदा होना, गाढ़ा पिसाब होना, मलगन्धि या मलमिश्रित पिसाब होना आदि नाना प्रकारके लक्षण मूत्राघात रोगमें प्रकाशित होते है। सब प्रकारका मूत्राघात अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

विभिन्न दोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा।—वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें गुरिच, सोंठ, आंवला, असगन्ध, और गोखरूके काढ़ेके साथ दहत मिलाकर पीना। पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें शतमूलीके रसमें चीनी मिलाकर पीना। ककड़ीको बीज मुलेठी

और दारु हलदीका चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ अथवा अथवा दारुहलदीका चूर्ण महत और आवलेके रसमें मिला कर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। शतावर्य्यादि और हरीतक्यादि काढा पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें विशेष उपकारी है। कफज मूत्रकृच्छ्रमें शमालुकी बीज मट्ठेके साथ, अथवा प्रधान चूर्ण अरवा चावलके धावनके साथ त्रिम्बागोखरूचूर्ण सोंठके काढ़ाके साथ पीना। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें हड़ती, कण्टकारी, अश्मठादि, मुलेठी और इन्द्रयवका काढा पीना। आगन्तुक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा वातज मूत्रकृच्छ्रकी तरह करना। गोखरू बीजके काढेमें जवाखार मिलाकर पीनेसे पूरीषज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्रमें गोखरू बीज, अमिलतासकी गूदी कुश, काम, जवासा, पाथरचूर और हरीतकी, इन सबका काढा या चूर्ण सहतके साथ मिलाकर सेवन करना। केवल पाथरचूरका रस या काढा अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र नाशक है। शुक्रज मूत्रकृच्छ्रमें सहतके साथ शिलाजीत सेवन करना। गोरच चाकुलाका काढा, सहत मिलाया जवाचार, मट्ठेके साथ गन्धक, जवाचार और चीनी; जवाचार और चीनी मिला सफेद कोहड़े का रस; गुड़के साथ आंवलेका काढ़ा अथवा हुड़हुड़की बीज बासी पानीसे पीस कर सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। नारियलका फूल अरवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे रक्तमूत्र आराम होता है। एलादि क्वाथ, वरुणाद्य लौह, कुशावलेह, सुकुमारकुमारक घृत और त्रिकण्टकाद्य घृत सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

मूत्राघात चिकित्सा।—मूत्राघात रोगमें मूत्रकृच्छ्र नाशक और अश्मरी नाशक औषध विचारकर प्रयोग करना।

मूत्ररोधहोनेसे तेलियाकी जड़ कांजीसे पोस नाभिपर लेप करना। लिङ्गके भ तर कपूरका चूर्ण रखना। सफेद कोंहड़ेके पानीके साथ जवाखार और चीनी मिलाकर पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है। ककड़ीकी बीज, सेन्धानमक और त्रिफला इन सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवनकरनेसे भी मूत्ररोध दूर होता है। चित्रकाद्य घृत, धान्यगोक्षुरकघृत, विदारी घृत, शिलीद्भिदादि तैल और उशीराद्य तैल, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध और पुष्टिकर आहार इस रोगमें उपकारी है। दिनको पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका शूरवा, छाग, या पक्षीके मांसका शूरवा, बेगन, परवर, गुल्लर, केलेका फूल आदिकी तरकारी, तिक्त शाक, पाती या कागजी नीबू खाना। रातको पूरी, रोटी, मोहनभोग, दूध और थोड़ा मीठा खाना। जलपानमें मक्खन, मिश्री, तरबूज पक्का मीठा फल आदि भोजन उपकारी है। सहनेपर रोज सबेरे कच्चे दूधमें पानी मिलाकर पीना या मिश्रीका शरबत पीना। रोज नदी या लम्बे चौड़े तालाबमें स्नान करना।

निषिद्ध कर्म।—रुक्षद्रव्य, गुरुद्रव्य, अम्लद्रव्य, दही, गुड़, अधिक मछली, उरदकी दाल, लाल मिरचा, शाकादि भोजन और मैथुन, घोड़ा आदिकी सवारी पर चढ़ना, कसरत, मलमूत्रका वेग रोकना, तेज शराब पीना, चिन्ता, रात्रि जागरण इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अश्मरी।

—o—

संज्ञा और पूर्व्वरूप।—कुपित वायु कर्त्तृक मूत्र और शुक्र किम्वा पित्त, कफ विशोषित हो पत्थरको तरह कड़ा होनेसे अश्मरी रोग होता है। चलित भाषामें इसको "पथरी" रोग कहते है, यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले वस्तिका फूलना, वस्तिके पासवाले स्थानोमें दर्द, मूत्रमें छाग गन्ध, कष्टसे पिशाव होना, ज्वर और अरुचि, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। अपने अपने कारणसे कुपित वायु पित्त, कफ और शुक्र यह चार पदार्थसे अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। सुतरां यह रोग वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज भेदसे चार प्रकारका है। नाभि और नाभिके नीचे, फोतेके नीचे सोवनपर तथा वस्तिके सुखमें दर्द, अश्मरीसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे विच्छिन्न धारसे मूत्र आना, पिशाव करती वक्त वेग देनेसे दर्द, मूत्रम॰ अश्मरी न रहनेसे थोड़ा लाल रङ्गका मूत्र निकलना आदि इसके साधारण लक्षण है। किसी प्रकारके अश्मरीसे मूत्रमार्गमें क्षत होनेसे पिशावमें रक्त दिखा॰ ॰ता है।

वातज पित्तज अश्मरी लक्षण।—वातज अश्मरी रोगमें अश्मरीको आकृति श्याम या अ॰ण वर्ण और छोटे कांटे उसमें पैदा होते है। इसमें रोगी दांत पीसता है, कांपता है, तकलीफसे चिल्लाता है, सर्व्वदा लिङ्ग और नाभि दबाये रहता है तथा पिशाव उतरनेके लिये कांखनेसे अधो वायु, मल और बूंद बूंद पिशाव होता है। पित्तज अश्मरी अतिशय उष्ण स्पर्श, रक्त, पोत या कृष्णवर्ण और भेलावेकी तरह आकृति होती है। इससे

वस्तिमें अत्यन्त जलन होती है। कफजमें शीतल स्पर्श, भारी, चिकनी और महुतकी तरह पिङ्गल या सफेद रंग तथा वस्तिमें सूई गड़नेकी तरह दर्द होती है; शुक्रकावेग रोकनेसे शुक्राश्मरी पैदा होती है; इससे वस्तिमें शूलवत् दर्द मूत्रकृच्छ्र और अण्ड-कोषमें शोथ होता है।

शर्करा और सिकता लक्षण।—यह अश्मरी अधिक दबानेपर क्षुद्र अंशोंमें विभक्त होनेसे शर्करा और अतिसूक्ष्म अंशोंमें विभक्त होनेसे उसको सिकता कहते है। वायुका अनुलोम रहनेसे शर्करा और सिकता पिशावके साथ निकल जाती है। पर वायुका अनुलोम न रहनेसे वही सब शर्करा या सिकता रुद्ध होती है तथा दौर्ब्बल्य, अवसाद, क्षशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डुता, तृष्णा, हृत्पीड़ा, जीमतलाना आदि उपद्रव उपस्थित होते है।

सांघातिक लक्षण।—अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगमें रोगीके नाभि और अण्डकोषमें शोथ, मूत्ररोध और शूलवत् वेदना यह सब लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीको मृत्यु जानना।

चिकित्सा।—अश्मरी रोग उत्पन्न होतेही औषध प्रयोग करना आवश्यक है, नहीतो थोड़े दिन बिना चिकित्साके रहनेसे फिर औषधसे आराम नही होता है, तब नस्तरसे पथरीको बाहर निकालना पड़ता है। इस रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होते ही स्नेह प्रयोग करना चाहिये। वातज अश्मरीमें वरुणछाल, सोंठ और गोखरू इसके काढ़ेमें जवाखार २ मासे और पुराना गुड़ २ मासे मिलाकर पीना। गोखरू, रेंड़का पत्ता, सोंठ और वरुण छाल इसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होती है। शर्करा रोगमें वरुण छाल, पाथरचूर, सोंठ और गोखरू इसके काढ़ेमें ।) भानेभर

जवाखार मिलाकर पीना। गोक्षुर बीज चूर्ण चार आनेभर भेडोके दूधमें मिलाकर सात दिन पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होती है। तालमूली अथवा गोरखचाकुली बासी पानीमें पीसकर पीनेसे किम्बा नारियलका फूल ४ मासे, जवाखार ४ मासे पानीमें पीस कर पीना अश्मरी रोगमें विशेष उपकारी है। मूत्रकृच्छ और मूत्रघात रोगोक्त कई योग और औषध अश्मरी आदि रोगमें विचारकर देना चाहिये। शुंठ्यादि क्वाथ, वरुणादि और वृहत् वरुणादि कषाय, एलादि काढ़ा, पाषाणवज्र रस, पाषाण भिन्न, त्रिविक्रम रस, वरुणाद्य घृत और वरुणाद्य तैल अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगका श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है अश्मरीमें भी वहीसब पालन करना चाहिये।

प्रमेह।

प्रमेह निदान।—एक दमभर भी परिश्रम न करना, रात दिन बैठे रहना, या बिछौनेपर पड़े रहना, अधिक निद्रा, दही दूध, जल जात और जलाभूमिजात जीवका मांस भोजन, नये चावलका भात खाना, बरसातका नया पानी पीना, गुड़ और अन्यान्य कफ वर्द्धक आहार विहारादिसे वस्तिगत कफ दूषित हो मेद, मांस और शरीरके क्लेदको दूषित करनेसे पित्तज प्रमेह तथा कफ और पित्त क्षीण होनेसे वायु कुपित हो वसा, मज्जा, ओज

और लसीका * पदार्थको वस्तिके मुहमें लानेसे वातज प्रमेह पैदा होता है। प्रमेह रोग २० प्रकार। इसमें उदक मेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैर्मेह और लालामेह यह १० प्रकार कफज, चारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह, और रक्तमेह यह ६ प्रकार पित्तज और वसामेह, मज्जामेह, चौद्रमेह, और हस्तिमेह यह चार प्रकार वातज प्रमेह है। सब प्रकारका प्रमेह उत्पन्न होनेसे पहिले दांत आंख कर्णादिमें अधिक मल सञ्चय, हाथ पैरमें जलन, देहका चिकना, प्यास और मुहका स्वाद मीठा होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। अधिक मात्रा से मूत्र आना और मूत्रको आविलता यह दो साधारण लक्षण प्रायः सब प्रमेहमें दिखाई देता है।

सर्व्वविध प्रमेहके लक्षण।—उदक प्रमेहका मूत्र गदला, कभी साफ, पिच्छिल, कभी सफेद पानीकी तरह गन्धहीन होता है। इक्षु प्रमेह इक्षु रसकी तरह मीठा होता है। सान्द्र प्रमेहका पिशाब देरतक रख छोड़नेसे गाढ़ा हो जाता है। वसा प्रमेह शराबकी तरह तथा उपर साफ और नीचे गाढ़ा मूत्र दिखाई देता है। पिष्टप्रमेहमें पिशाब करती वक्त रोगी रोमाञ्चित होता है और आटा घोलनेकी तरह सफेद या अधिक पिशाब होता है। शुक्रप्रमेहमें मूत्रशुक्रकी तरह या शुक्रमिश्रित होता है। सिकता मेहके मूत्रके साथ बालुकी तरह कड़ा पदार्थ निकलता है। *शीतप्रमेहमें मूत्र अतिशय शीतल, मीठा और बहुत होता है।* शनैर्मेहमें अति मन्द वेगसे थोड़ा थोड़ा मूत्र निकलता है। लाला-

* मांसके भिन्न भिन्न भागको वसा, हड्डीके बीचके पोल भागकी मज्जा, त्वक और मांसके मध्यवर्त्ती जलीय भागको लसीका और इन धातुके सार पदार्थको ओज कहते है।

मेहमें लालायुक्त तन्तुविशिष्ट और पिच्छिल पिशाब होता है। चारमेहका मूत्र खारे पानीकी तरह गन्ध, वर्ण स्वाद और स्पर्श युक्त होता है। नीलमेह नीलवर्ण और कालमेहमें काले रंगका पिशाब होता है। हारिद्रमेहमें मूत्र पीला, कटुरसयुक्त और पिशाब करती वक्त लिङ्गनालीमें जलन होता है। माञ्जिष्ठ मेहमें मजीठके पानीकी तरह लाल दुर्गन्धयुक्त मूत्र होता है। रक्त मेहमें मूत्र बदबूदार, गरम और खारा होता है वसामेहमें चर्बी की तरह अथवा चर्बी मिला मूत्र बार बार होता है, कोई कोई वसामेहको "सर्पिमेह" भी कहते हैं। मज्जामेहमें मूत्र मज्जाकी तरह या मज्जा मिला मूत्र होता है। चौद्र मेहमें मूत्र कषाय और मधुर रसयुक्त और रुच होता है। हस्तिमेहमें रोगी मत्त-हाथीकी तरह सर्व्वदा अधिक पिशाब करता है, मूत्रत्यागके पहिले किसी प्रकारका वेग नहीं होता। कभी कभी मूत्ररोध भी होते देखा गया है।

मेह रोगके उपद्रव।—१० प्रकारके कफज प्रमेहमें अजीर्ण, अरुचि, वमि, निद्रा, खांसीके साथ कफ निकलना और लिङ्गनालीमें सूची विद्धवत् वेदना घाव, अण्डकोषका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्लोद्गार, मूर्च्छा और मलभेद, तथा ४ प्रकारके वातज मेहमें उदावर्त्त, कम्प, छातीमें दर्द, आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, कास और श्वास यही सब उपद्रव उपस्थित होते है। उपद्रवयुक्त प्रायः सब प्रकारका प्रमेह कष्टसाध्य है।

मधुमेह।—सब प्रकारका प्रमेह, अचिकित्सित भावसे बहुत दिन तक रहने से मधुमेह रोग होता है। इसमें मूत्र मधुकी तरह गाढ़ा, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मीठा होता है तथा रोगीका शरीरभी मीठास्वादयुक्त होता है। मधु मेहमें जिस जिस

दोषका आधिक्य रहता है लक्षण भी उसी दोषके प्रकाशित होते हैं, इस अवस्थामें बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे रोगीके शरीरमें नाना प्रकारकी पिडिका उत्पन्न होती है। मधुमेह और पिडकायुक्त मेह असाध्य। पिता माताके दोषसे पुत्रको प्रमेह रोग होनेसे वह भी असाध्यही जानना। गुदा, मस्तक हृदय, पीठ और मर्मस्थानमें पिडिका उत्पन्न होनेसे और उसके साथ प्यास और कास आदि उपद्रव रहनेसे वहभी असाध्य होताहै।

चिकित्सा और मुष्टियोग।—प्रमेह रोग स्वभावत: ही कष्टसाध्य है। इससे रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। गुरिच का रस, आंवलेकारस नरम सेमलके मुसलीका रस आदि प्रमेह रोगके उत्कृष्ट मुष्टियोग है। त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथा इसका काढा मद्दतके साथ पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। मद्दत और हलदीका चूर्ण मिलाया आंवलेका रस भी विशेष उपकारी है। शुक्रमेहमें दूधके साथ शतमूलीका रस अथवा रोज सवेरे कच्चा दूध आधा पाव और पानी आधा पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है। पलाश फूल १ तोला, चीनी आधा ताता एक साथ ठन्धे पानीके साथ पीसकर पीनेसे भी सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। वङ्गभस्म प्रमेह रोगका उत्कृष्ट औषध है। सेमलके मुसलीका रस, मद्दत और हलदीके चूर्णके साथ २ रत्ती मात्रा वङ्गभस्म सेवन करनेसे प्रमेह रोग आराम होता ग।

मूत्ररोध चिकित्सा।—*प्रमेह रोगमें मूत्रका रोध होनेसे* ककडीके बीज, सेन्धा नमक और त्रिफला, इसका चूर्ण, चार आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करना। कुशावलेह और मूत्रकृच्छ्र रोगके अन्यान्य औषध भी इस अवस्थामें दे सकते है।

पाथरचूरके पत्तेका रस पीनेसे मूत्र साफ आता है, एलादि चूर्ण, मेहकुलान्तक रस, मेहमुद्गर वङ्गेश्वर, वृहद्वङ्गेश्वर, वृहत् हरशङ्कर रस, सोमनाथरस, चन्द्रप्रभावटिका, स्वर्णवङ्ग, वसन्त कुसुमाकर रस, चन्दनासव, दाड़िमाद्य घृत और और प्रमेहमिहिर तेल आदि रोगकी अवस्था विचारकर प्रमेह रोगमें देना चाहिये। हमारा "प्रमेह विन्दु" सब प्रकारका प्रमेह और सुजाकका उत्कृष्ट औषध है।

पिड़िका निवारण।—प्रमेहसे पिड़िका उत्पन्न हो तो गुल्लरका दूध अथवा सोमराज को बीज पीसकर उसका लेप करना। अनन्तमूल, श्यामालता, मुनक्का, बहत, सनाय, कुटकी, बड़ीहर्रे, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, हलदी, दारुहलदी और गोखरूकी बीज इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रमेह पिड़िका दूर होती है, शारिवादि लौह, शारिवाद्यासव और मकरध्वज रस इस अवस्थाका उत्कृष्ट औषध है। प्रमेह रोगके अन्यान्य औषध भी विचारकर दे सकते हैं। प्रमेह पिड़िकामें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मसूर, चनेकी दाल, छोटे मछलीका थोड़ा शुरवा, शशक, घुघु, बटेर, कुक्कुट, छाग और हरिण मांसका शुरवा, परवल, गुल्लर, वैगन, सेजनका डण्डा, केलेका फूल, नरम कच्चा केला आदिकी तरकारी और पाती या कागजी नीबू खाना प्रमेह रोगमें हितकर है। रातको रोटी, पूरी और उपर कही तरकारी तथा थोड़ा मोठा मिलाया दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य उपकारी है। जलपानमें आम्र, सिंघाड़ा, किसमिस, बदाम, खजूर, अनार, भिङ्गोया चना, थोड़े मोठेकामोहनभोग आदि आहार करना, सहनेपर स्नान भी करना।

निषिद्ध द्रव्य।—अधिक दूध, मठा, मछली, लाल मिरचा, शाक, अम्लद्रव्य, उरदको दाल, दही, गुड़ लौकी, तालफल और अन्यान्य कफवर्धक द्रव्य भोजन; मद्यपान, मैथुन, दिनको सोना, रातका जागना, धूपमें फिरना, मूत्रका वेग धारण और धूमपान प्रभृति इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शुक्र और मधुमेहका पथ्यापथ्य।—शुक्रमेह में पुष्टिकर आहार करना चाहिये, इससे रोगीका अ ग्नवल विचार कर ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। मधु मेहमें बहुमूत्र रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

गनोरिया या सुजाक।—दूषित योनि—वेश्या प्रभृतिके सहवाससे भी एक प्रकारका प्रमेह रोग होता है उसको हिन्दीमें "सुजाक" और अङ्गरेजीमें "गनोरिया" कहते हैं। सहवासके प्रायः सात दिनके भीतरही यह रोग दिखाई देता है। पहिले लिङ्गके अग्रभागमें सुरसुरी, लिङ्ग खोलनेसे या पिशाब करते वक्त या पिशाबके बाद दर्द होना, बार बार लिङ्गोद्रेक और पिशाब करनेकी इच्छा होती है, फिर लिङ्गनाभोमें घाव, लिङ्ग फूलना, लालरङ्ग, अण्डकोष और दोनों पट्ठोंमें दर्द, सर्व्वदा पीप रक्तादिका स्राव या क्लेदसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे मूत्ररोध या दोधार से मूत्रका निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। सुजाक पुराना होनेसे कष्ट क्रमशः कम हो जाता है। यह रोग बड़ा संक्रामक है अर्थात् इस रोग वाली स्त्रीके सहवाससे पुरुषको और पुरुषके सहवाससे स्त्रीको भी यह रोग उत्पन्न होता है।

भिन्न भिन्न अवस्थाकी चिकित्सा।—औपसर्गिक प्रमेहमें पहिले पिशाब साफ लानेका उपाय करना उचित है, साथ ही घाव आराम करनेकी भी दवा देना चाहिये। त्रिफलाका

काढ़ा, बबूलके लकड़ीका काढ़ा, पीपलके छालका काढ़ा, खैर भिङ्गोया पानी और दहीके पानीकी पिचकारी लेनेसे घावमें विशेष उपकार होता है। रोज सवेरे कबाबचीनीका चूर्ण ।) आनेभर, सोरा एक आनेभर और सनायका चूर्ण एक आनेभर फांक गरम पानी ठण्ढाकर दो घोंट पीना। रातको सोती वक्त कबाबचीनीका चूर्ण एक आनेभर, कपूर २ रत्ती, अफीम आधी रत्ती एकमें मिलाकर सेवन करावे। इससे साफ पिशाब उतरता है, तथा लिङ्गेन्द्रिके स्वप्नदोष और घाव आराम होता है। गोंदका पानी या बबूलके पत्तेके रसमें वङ्गेश्वर या मेहमुद्गर वटी सेवन करनेसे क्लेद, पीब रक्तादिका स्राव आदि जलदी आराम होता है। गुरिचका रस तेजपत्तेकी लकड़ी भिङ्गाये पानीके साथ वही सब औषध सेवन करनेसे भी जलन आराम होती है। लिङ्गका शोथ थोड़ा गरम त्रिफलाका काढ़ा या जायफलके काढ़ेमें डूबो रखनेसे आराम होताहै। सर्व्वदा कपड़ेसे लिङ्ग लपेटकर बांध रखना तथा उपरको उठा रखना चाहिये। पिशाब साफ लानेके लिये पाथरचूरके पत्तेके रसके साथ उक्त औषधि और कुशावलेह सेवन करना। हमारा "प्रमेहबिन्दु" सुजाकको अकसीर दवा है। इससे थोड़े दिनमें ही पीड़ा शान्त होती है।

आराम न होनेका परिणाम।—यह रोग जड़से आराम न होनेसे फिर क्रमशः शुक्रमेह, शुक्रतारल्य या ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। सब प्रकारकी शीतल क्रिया या स्नान करना इस रोगमें पथ्य नहीं है। इससे थोड़ी देरके लिये पीड़ा में आराम मालूम होनेपर भी परिणाममें गठिया या पङ्गु रोग होनेकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—पक्का केला एक, आंवलेका रस १ तोला, मधु ४ मासे, चीनी ४ मासे और दूध एक पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे बहुमूत्र रोग शान्त होता है। पक्का केला विदारीकन्द और शतमूली समभाग दूधके साथ खानेसे मूत्राधिक्य दूर होता है। गुल्लरका रस या बीजका चूर्ण जामुनके गुठलीके गूदीका चूर्ण केलेके जडका रस, आंवलेका रस, नरम ताड़फल और खजूरका रस, नरम अमरूद भिङ्गोया पानी, तथा भूने निनुआका रस बहुमूत्र निवारक है। हहङ्ग ज्वर, तारकेश्वर रस, सोमनाथ रस, हेमनाथ रस, वसन्तकुसुमाकर रस, बृहत् धात्री घृत, और कदल्याद्य घृत बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस। छाग हरिण मांसका शूरवा तथा गुल्लर निनुआ, कच्चा केला, परवर, सैजनकी शाक आदि तरकारी, मक्खन निकाला दूध पीना, आवला, जामुन कसेरू, पक्का केला, पानी या कागजी नीबू और पुरानी शराब भी सेवन करना। दन्तक्रिया, घोडा हाथीकी सवारी पर घूमना, पर्य्यटन, कसरत आदि इस रोगमें विशेष उपकारी है। पीडाके प्रबल अवस्थामें दिनको भात न खाकर जौके आटे की रोटी या केवल पूर्व्वोक्त दूध पीकर रहना चाहिये। गरम पानी ठण्डाकर पीना तथा सहनेपर उसी पानीसे स्नान करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, जलाभूमिजात मांस, दही, अधिक दूध, मिष्टद्रव्य, लाल कोहडा, लौकी, शाक, खट्टा, उरदकी दाल, लाल मिरचा भोजन और अविश्र जल पान, तीव्र सुरापान, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, अधिक निद्रा, मैथुन और आलस्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

शुक्रतारल्यका निदान।—कम उमरमें स्त्री सहवास, हस्तमैथुन या और कोई अन्याय रीतिसे शुक्र स्खलन, अतिरिक्त स्त्री सहवास आदि कारणोंसे शुक्रतारल्य रोग उत्पन्न होता है। इससे मल मूत्रके समयमें अथवा थोड़ा भी कामोद्रेक होनेसे शुक्रपात, स्त्रीदर्शन, स्पर्शण, या स्मरण मात्रसे रेतःपात, स्वप्नदोष, सङ्गम होते ही शुक्रपात, शुक्रकी तरलता और अग्निमान्द्य, कोष्ठबद्धता या अतिसार, अजीर्ण, शिरघूर्णन, आंखके चारो तरफ काला होना, दुर्ब्बलता, उद्यम शून्यता, तथा निर्ज्जन प्रियता यही सब लक्षण लक्षित होते है। पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें लिङ्ग शिथिल होनेपर शुक्रपात होता रहता है और लिङ्गोद्रेक शक्ति नष्ट हो जाती है, तथा फिर क्रमशः ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। भय, शोक या अन्य किसी मनके कारणसे, विद्वेषभाजन स्त्री सहवास, औपदंशिक पीड़ा या और कोई कारणसे शुक्रवाहिनी शिराविकृति, कामवेगसे उत्तेजित होनेपर मैथुन नही करना और अधिक कटु, अम्ल, उष्ण लवणरसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे भी ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है।

शुक्रतारल्य चिकित्सा।—शुक्रतारल्य रोगमें शुक्रकी रक्षा करना ही प्रधान चिकित्सा है। कच्ची सेमलकी मुसलीका रस, तालमूली चूर्ण विदारीकन्दका रस या चूर्ण, आंवलेका रस, कवांचकी बीज या सेठीमध चूर्ण प्रभृति द्रव्य शुक्रवर्द्धक और शुक्रतारल्य नाशक है।

ध्वजभङ्ग चिकित्सा।—मल मूत्रके समय शुक्रस्राव और ध्वजभङ्गमें उक्त अनुपानके साथ बृहद्बङ्गेश्वर, सोमनाथ रस, शुक्रमातृका वटी, कामचूडामणि रस, चन्द्रोदय मकरध्वज, पूर्णचन्द्र रस, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मन्मथाभ्र रस, मकरध्वज रस आदि औषध देना। अमृतप्राश घृत, बृहत् अश्वगन्धाघृत, कामदेव घृत, वानरी वटिका, कामाग्निसन्दीपन मोदक, मदन मोदक, शतावरी मोदक, रतिवल्लभ मोदक और श्रीगोपाल तथा पञ्चवसार तैल प्रभृति शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्गका उत्कृष्ट महौषध है। हमारा "रतिविलास" सेवन करनेसे शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोग जल्दी आराम होता है। स्वप्नदोषमें सोती वक्त कबावचीनी-का चूर्ण एक आनेभर, कर्पूर २ रत्ती और अफीम आधी रत्ती यह तीन द्रव्य मिलाकर अथवा केवल कबाव चीनीका चूर्ण ⁄) आनेभर मद्दतके साथ सेवन करना, अथवा हमारी "शिवदा वटिका" सेवन करनेसे स्वप्नदोष रोग आराम होता है।

सङ्गममें शीघ्र शुक्रपात निवारणके लिये पूर्व्वोक्त मोदक और नागवल्लादि चूर्ण, अर्ज्जकादि बटिका, शुक्रवल्लभ रस या कामिनी विद्रावण रस सेवन करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—सबप्रकारका पुष्टिकर आहार इस रोगका पथ्य है। दिनको पुराने चावलका भात, रोहित आदि बढ़िया मछली, छाग, मेष, चटक, कुक्कुट, कबूतर, बटेर तित्तिर आदिके मांसका शूरवा; मूग, मसूर और चनेकी दाल; हंसका अण्डा, छागका अण्डकोष, आलु, परवर, गुल्लर, बेगन, गोभो, शलगम, गाजर आदि घृतपक्व तरकारी खाना। रातको पूरी या रोटी और उपर कही तरकारी दूध और मीठा खाना उचित है।

जलपान।—जलपानमें घी, चीनी, सूजी या बेसनकी

वस्तु, अर्थात् खाजा, खुरमा और मोहनभोग तथा बेदाना, बदाम, पिस्ता, किसमिस, खजूर, अंगूर, आम, कटहल और पपीता आदि फल उपकारी हैं। अग्निबल विचारकर सब प्रकारका पुष्टिकर द्रव्य भोजन इस रोगमें उपकारी है, स्नान सहनेपर करना।

निषिद्ध द्रव्य।—अधिक लवण, लाल मिरचा, खट्टा, आग और धूपका उत्ताप लगाना, रात्रि जागरण, अधिक मद्यपान, मैथुन, और अधिक परिश्रम यह सब दोनो रोगमें विशेष अनिष्ट कारक है।

मेदोरोग

निदान।—निरन्तर कफजनक द्रव्य भोजन अथवा व्यायामादि किसी तरहका परिश्रम न करनेसे किम्वा दिनको सोना आदिसे, भुक्तद्रव्य अच्छी तरह हजम नही होनेसे मधुर रसयुक्त अपक्व रस उत्पन्न होता है, तथा उसी रसके चिकने पदार्थसे मेदकी वृद्धि हो मेदरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेद वृद्धिके कारण रसरक्तादिवाही स्रोत समूह बन्द हो जाते है, इससे अन्यान्य धातुभी पुष्ट नही होने पाता, केवल मेद धातुही क्रमशः वर्द्धित होनेसे मनुष्य अति स्थूल और सब कामकाजमें असमर्थ हो जाता है, क्षुद्रश्वास, प्यास मूर्च्छा, अधिक निद्रा अकस्मात् उच्छ्वासका रोध, अवसन्नता, अतिशय क्षुधा, पसीना निकलना, शरीरमें दुर्गन्ध,

श्रम और मैथुन शक्तिकी कमी आदि मेदरोगके आनुसङ्गिक लक्षण है।

मेदोवृद्धि का परिणाम फल।—मेदधातु अतिशय बढ़ जानेसे वातादि दोष समूह कुपित होकर प्रमेह पिडिका ज्वर और भगन्दर आदि उत्कट पीडा उपस्थित होनेसे प्राणनाशकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—जिससे शरीर क्षय और रूक्ष हो वही आचरण करना मेद रोगकी प्रधान चिकित्सा है। रोज सवेरे सहत मिलाया पानी पीनेसे मेदरोग आराम होता है। त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण तेल और नमक साथ मिलाकर कुछ दिन सेवन करनेसे भी मेदोरोग प्रशमित होता है। अथवा विडङ्ग, सोंठ, जवाखार, कान्तलौह भस्म, यव और आंवला, इन सबका सम-भाग चूर्ण सहतके साथ मिलाकर चाटना। गनियारीका रस या शिलाजतु सेवनसे भी मेदोरोगमें विशेष उपकार होता है। अमृतादि और नवक गुग्गुलु, त्र्यूषणाद्य लौह, वडवाग्नि लौह, और रस तथा त्रिफलाद्य तेल मेदोरोग दूर करनेके लिये प्रयोग करना चाहिये। महासुगन्धि तेल या हमारा हिमांशुद्रव बदनमें लेप करनेसे मेदजन्य दुर्गन्ध जड़से आराम होती है।

पथ्यापथ्य।—दिनको सांवा चावलका भात, अभावमें महीन चावलका भात, छोटी मछलीका शूरवा, गुल्लर, कच्चा केला, बेगन, परवर और पुराने सफेद कोहड़ेकी तरकारी, खट्टेमें इमली या कागजी नीबू। रातको जौके आटेकी रोटी और ऊपर कही तरकारी। मीठेमें सिर्फ थोड़ी मिश्री खाना। स्नान न करना ही अच्छा है, सहनेपर गरम पानी ठण्ढाकर स्नान करना

और गरम पानी पीना उचित है। परिश्रम, चिन्ता, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, व्यायाम और मैथुन यह सब कार्य्य मेदोरोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—यावतीय कफवर्द्धक और स्निग्धद्रव्य, दूध, दही, मक्खन, मांस, मछली, घृतपक्व द्रव्य, नारियल, पक्का केला और दूसरे पुष्टिकर द्रव्य भोजन, सुखकर बिछौनेपर शयन, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, सर्व्वदा उपवेशन, आलस्य और चिन्ताशून्यता इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कार्श्यरोग और औषध।—यहां कार्श्य रोगके विषयमें भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। रुक्षद्रव्य भोजन, अत्यन्त परिश्रम, अतिरिक्त चिन्ता, अधिक स्त्रीसहवास आदि कारणोंसे कार्श्यरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेदमांस आदि धातु क्षीन हो जाते है। असगंध कार्श्यरोगका एक उत्कृष्ट औषध है; दूध, घृत, या पानीके साथ असगंध का कल्क सेवन करना कार्श्य-रोगमें विशेष उपकारी है।

कार्श्यरोगमें हमारा अश्वगन्धारिष्ट।—धकातारल्य रोगमें जो सब औषधि कथित हैं, उसमें अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश घृत, और वातव्याधि कथित छागलाद्य घृत आदि पुष्टिकर औषध कार्श्यरोगमें प्रयोग करना चाहिये हमारा "अश्वगन्धारिष्ट" कार्श्य-रोगका अति उत्कृष्ट औषध है। असगन्धका कल्क १ सेर, काढा ६ सेर, और दूध ६ सेर यह तीन प्रकारके द्रव्यके साथ तिलतैल ४ सेर यथाविधि पाककर मालिश करनेसे क्रशाङ्ग पुष्ट होता है। इस रोगमें घी, दूध, मांस, मत्स्य, और अन्यान्य यावतीय पुष्टिकर आहार, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, परिश्रम-त्याग, निश्चिन्तता और सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे रहना उपकारी है। मांस ही कार्श्यरोगका

उत्कृष्ट पथ्य है। शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगोंमें पथ्यापथ्य क्लैब्य रोगमें पालन करना चाहिये।

उदर रोग।

निदान।—एकमात्र अग्निमान्द्यहीको सब प्रकारके उदर रोगका निदान कहा जा सकता है। इसके सिवाय अजीर्ण दोष-जनक अन्न भोजन और उदरमें पानीका सञ्चय, यही सब उदर रोगके कारण है। उक्त कारणोंसे सञ्चित वातादि दोष स्वेदवहा और जलवहा स्रोतः समूहोंको बन्द तथा प्राणवायु, अपान वायु और अग्निको दूषित कर उदर रोग पैदा करता है। इसके सिवाय प्लीहा और यकृत् अत्यन्त बढ़नेसे अन्त्रमें किसी तरहका घाव होनेसे तथा अन्त्रमें अधिक जल सञ्चय होनेसे भी उदर रोग उत्पन्न होता है। उदराधान, चलनेमें अशक्ति, दुर्ब्बलता, अतिशय अग्निमान्द्य, शोथ, सर्व्वाङ्गक्क अवसन्नता, अधोवायु और मलका अनिर्गम, दाह और तन्द्रा, यही सब उदर रोगके साधारण लक्षण है। उदर रोग ८ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहा और यकृत् जनित, मलसञ्चय जनित, क्षतज और उदरमें जल सञ्चयजनित।

वातज रोग लक्षण।—वातज उदर रोगमें हाथ, पैर नाभि और कुक्षिमें शोथ; कुक्षि, पार्श्व, उदर, क[illegible] सन्धि समूहोंमें दर्द; सूखा [illegible]सी, अङ्गमर्द, शरीर भारी मालूम होना, मलरोध, त्वक, चक्षु, मूत्र ।

या अरुण वर्णता, अकस्मात् उदर शोथका ह्रास या वृद्धि, उदरमें सूचीवेधवत् या भङ्गवत् वेदना, सूक्ष्म सूक्ष्म कृष्णवर्ण शिरा समूहोंकी उत्पत्ति, पेटमें मारनेसे वायु पूर्णकी तरह आवाज और दर्दके साथ वायुका इधर उधर फिरना। यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पित्तज रोग लक्षण।—पित्तोदरमें ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, मुखका कड़वा स्वाद, भ्रम, अतिसार, त्वक और आंख आदिका पीला होना, पेटमें पसीना, दाह, वेदना और उष्मायुक्त, कोमल स्पर्श; हरित, पीत या ताम्रवर्णकी शिरासे आच्छन्न और पेटसे उष्मा निकलनेकी तरह अनुभव होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। पित्तोदर जलदी पककर जलोदर होता है।

श्लेष्मज रोग लक्षण।—कफोदरमें सर्व्वाङ्गकी अवसन्नता, स्पर्शज्ञानका अभाव, शोथ, अङ्गकी गुरुता, निद्रा, वमनवेग, अरुचि, श्वास, कास, त्वक आदिका सफेद होना, और उदर बड़ा होना, स्तिमित, चिकना, कठिन, शीतलस्पर्श, भारी, अचल और सफेद शिरायुक्त होता है। कफोदर देरमें बढ़ता है।

दूष्य या त्रिदोषज उदर रोग लक्षण।—नख, लोम, मूत्र, विष्ठा आर्त्तव या किसी तरहके विषादि द्वारा दूषित अन्न भोजन करनेसे रक्त और वातादि दोषत्रय कुपित होकर त्रिदोषज उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें वातादि तीनो दोषके उदर रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होते है और रोगी पाण्डुवर्ण, कृश, पिपासासे गला सूखना तथा बार २ मूर्च्छित होता है। ठण्डके समय ठण्ढी हवा लगनेसे और बर्षात आंधीके दिनोंमें यही उदर रोग बढकर दाहयुक्त होता है। इसका दूसरा नाम दूष्योदर है

प्लीहोदरका निदान और लक्षण।—निरन्तर कफजनक द्रव्य और जो सब द्रव्यका अम्लपाक हो वैसा द्रव्य भोजन करनेसे कफ और रक्त दूषित होकर प्लीहा यकृतको बढ़ाता है। प्लीहा यकृत् बढ़ते बढ़ते जब पेट बढ़ता है तब सर्व्वाङ्गको अवसन्नता, मन्दज्वर, अग्निमान्द्य, बलक्षय, देहको पाण्डुवर्णता और कफपित्तजनित अन्यान्य उपद्रवभी उपस्थित होते हैं, तब उसको प्लीहोदर या यकृदुदर कहते हैं। प्लीहोदरमें पेटका वामभाग और यकृदुदरमें दक्षिण भाग बढ़ता है। इसमें वायुकाप्रकोप अधिक रहनेसे उदावर्त्त, आनाह और पेटमें दर्द; पित्तके प्रकोपमें मोह, तृष्णा, दाह, ज्वर और कफके प्रकोपमें गात्र गुरुता, अरुचि और पेटकी कठिनता; यही सब लक्षण लक्षित होते हैं।

बद्ध गुदोदर लक्षण।—शाकादि भोज्यद्रव्य या अन्नादिके साथ बाल किम्वा ककरी अन्तड़ीमें जानेसे अन्त्रनाड़ी क्षत हो जाती है, इससे गुह्य नाड़ीमें मल और दोष समूह सञ्चित हो बद्ध गुदोदर नामक मल सञ्चय जनित उदर रोग उत्पन्न होता। इसमें छाती और नाभिके बीचका भाग बढ़ता है और अति कष्टसे थोड़ा थोड़ा मल निकलता है।

क्षतज उदर रोग लक्षण।—अन्नके साथ कण्टकादि शल्य प्रविष्ट होकर यदि नाड़ीको भेद करें अथवा अतिरिक्त भोजन और जम्हाईसे अन्तड़ी मे भेद हो तो उस क्षत स्थानसे पानीको तरह स्राव होता है तथा नाभिके नीचेका भाग बढ़ता है, और गुह्यद्वारसे पानी स्राव होता है। इसका परिस्राव्युदर नामक क्षतज

की पिचकारी) वमन, विरेचन, अथवा निरूहण (रुक्ष पदार्थको पिचकारी) क्रियाके बाद अकस्मात् शीतल जल पान करना, किम्वा स्नेह पदार्थसे जलवहा स्रोत उपलिप्त होनेसे, वही स्रोत समूह दूषित होता है और वही दूषित नाडीमें जलस्राव होकर उदरकी वृद्धि होती हैं; इसको उदकोदर या जलोदर नामक जल-सञ्चय जनित उदर रोग कहते। इस रोगमें पेट चिकना, बडा, जल भरा रहनेकी तरह फूला और सञ्चालित होनेसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दयुक्त होता है। इसमें नाभिके चारो तरफ दर्द होताहै।

साध्यासाध्यता।—प्राय सब प्रकारका उदर रोग कष्ट-साध्य है; विशेषत: जलोदर और क्षतोदर रोग अतिशय कष्टसाध्य है, शस्त्रचिकित्साके सिवाय इसके आराम होनेकी आशा कम हैं। रोग पुराना होनेसे या रोगीका बलक्षय हो जानेसे सब उदर रोग असाध्य हो जाता है। जिस उदर रोगीकी आंखे फूली, लिङ्ग टेढ़ा, त्वक पतला, क्लेदयुक्त और बल, अग्नि, रक्त मास क्षीण हो जाय; अथवा जिस रोगीका पार्श्वद्वय भग्नवत्, अन्नसे द्वेष, अति-सार किम्वा विरेचन करानेसे भी कोष्ठ पूर्ण रहता है; यही सब उदर रोग असाध्य है।

विभिन्न दोषज उदर रोगकी चिकित्सा।—प्राय सब प्रकारके उदर रोगमें तीन दोष कुपित होते है, इससे वातादि तोन दोषके शान्तिकी चिकित्सा पहिले करना चाहिये। इसमें अग्निवृद्धिके लिये अग्निवर्द्धक औषध और विरेचनके लिये थोडा गरम दूध या गोमूत्रके साथ रेंडीका तेल पान कराना चाहिये। वातोदरमें पहिले पुराना घी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर सेंकना चाहिये। फिर विरेचन कराकर कपडेके टुकडेसे पेटको बांध रखना। वातोदरमें पीपल और सेन्धा नमकके साथ;

पित्तोदरमें घोनो ग्रौर गोलमिरचके साथ; कफोदरमें जवाईन, सैन्धानमक, जोरा ग्रौर त्रिकटुके साथ ग्रौर सन्निपातोदरमें त्रिकटु जवाचार ग्रौर सैन्धानमकके साथ मट्टा पिलाना। इससे देहका भारीपन ग्रौर ग्ररुचि दूर होती है। प्लीहोदर ग्रौर यक्वदुदरमें प्लीहा ग्रौर यक्वत् रोगोक्त चिकित्सा करना चाहिये। बद्धोदरमें पहिले स्वेद फिर तेलका जुलाब देना चाहिये। देवदारु, सैजन ग्रौर ग्रपा-मार्ग, ग्रथवा ग्रसगन्ध गोमूत्रमें पीसकर पोनेसे दूष्योदर प्रभृति सब प्रकारका भेदारोग आराम होता है। सबेरे महिषका मूत्र ग्रान्दाज एक छटांक पोनेसे भो सब प्रकारका उदर रोग दूर होता है। पुन-र्नवा, देवदारु, गुरिच, ग्रम्बष्ठा, बेलको जड़, गोत्तुर, वृहती, कण्टकारी, हल्दी, दारुहल्दी, पोपल, चितामूल ग्रौर ग्रडूसा इन सब द्रव्योंका समान चूर्ण गोमूत्र साथ सेवन करनेसे उदररोग प्रशमित होता है। दशमूल, देवदारु, शांठ, गुरिच पुनर्नवा ग्रौर बडो हर इन सबका काढा पोनेसे जलोदर शोथ, श्लीपद ग्रौर वात रोग आराम होता है। पुनर्नवा, नोमको छाल, परवरका पत्ता, शांठ, कुटकी, गुरिच देवदारु ग्रौर हरीतकी इन सबका काढा पोनेसे सब प्रकार उदर, सर्व्वाङ्ग शोथ, कास, शूल, श्वास ग्रौर पाण्डु रोग आराम होता है। उदर रोगमें दोषविशेषका विचारकर पुनर्नवादि क्वाथ, कुठादि चूर्ण, सामुद्राद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, त्रैलोक्यसुन्दर रस, इच्छाभेदो रस, नाराच रस, पिप्पल्याद्य लौह, शोथोदरादि लौह, चित्रकघृत; महाबिन्दुघृत, वृहत् नाराचघृत ग्रौर रसोन तेल प्रभृति ग्रो ध प्रयोग करना चाहिये। रोगो दुर्ब्बल होनेसे तेज जुलाब न देकर हमारी "सरलभेदो वटिका" प्रयोग करना उचित है।

पथ्यापथ्य।—उदर रोगमें लघुपाक ग्रौर ग्रग्निवृद्धि-

कारक आहार करना उचित है। पोड़ाकी प्रबल अवस्थामें केवल मानमण्ड, अभावमें केवल दूध अथवा दूध सागूदाना आदि आहार करना हितकर है। पोड़ा अधिक प्रबल न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगकी दालका जूस, परवल, बैगन, गुल्लर, सूरण, सेजनका डण्डा, छोटी मूली, श्वेत पुनर्नवा और अदरख आदिकी तरकारी थोड़ा नमक मिलाकर खाना चाहिये। रातको दूधसागू अथवा अधिक भूख हो तो २।१ पतली रोटी खानेको देना। गरम पानी पोना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।— पष्टकादि गुरुपाक द्रव्य, तिल, लवण सोम आदि द्रव्य भोजन और स्नान, दिवानिद्रा, परिश्रम; उदर रोगमें विशेष अनिष्टकारक।

शोथरोग।

निदान।—वमन विरेचनादि क्रिया, ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त, प्लीहा और यकृत् आदि पोड़ा, तथा उपवास और भोजनादिसे क्षय और दुर्ब्बल होनेपर, क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे, अथवा दही, कच्चा द्रव्य, मिट्टी, शाक, क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध और विष मिला द्रव्य भोजन करनेसे तथा वमन विरेचनादि उचित कालमें न करानेसे या असमयमें करनेसे, परिश्रम त्यागनेसे, गर्भस्राव होनेसे किम्वा मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे शोथ रोग पैदा होता है।

कुपित वायु, दुष्ट रक्त, पित्त और कफको बाहर की शिरा समूहों में लाकर तथा वायु भी वही दीर्घमें बद्ध होनेपर त्वक् और मांस फूलता है, इसीको शोथरोग कहते है। शोथ पैदा होनेके पहिले सन्ताप, शिरा समूहोंका फैलनेकी तरह यातना और शरीर भार-बोध यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अवयव विशेषकी स्फीतता, तथा भारबोध, बिना चिकित्साके भी कभी शोथकी निवृत्ति और फिर उत्पत्ति; शोथस्थान उष्ण स्पर्श, शिरायुक्त, विवर्णता और रोगीके शरीरमें रोमाञ्च होना आदि शोथ रोगके साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वात-श्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज और त्रिदोषज भेदसे शोथरोग ७ प्रकारका होता है।

वातज रोग लक्षण।—वातज शोथ एक जगह स्थिर नही रहता, ईससे बिना कारण भी कभी कभी आराम मालूम होता हैं; शोथके उपरका चमड़ा पतला, कर्कश, अरुण या कृष्णवर्ण स्पर्श शक्तिहीन और भिन्न भिन्न वेदना विशिष्ट होता है। यह शोथ दबानेसे बैठ जाता है। दिनको यह शोथ बढ़ता है और रातको कम हो जाता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज शोथ कोमल स्पर्श, गन्धयुक्त और शीत या अरुणवर्ण; तथा उष्णाविशिष्ट, दाहयुक्त और अति-शय यन्त्रनादायक होकर पक जाता है। इस शोथमें भ्रम, ज्वर, पसीना, पिपासा, मत्तता और दोनो आंखे लाल यही सब लक्षण लक्षित होते हैं।

कफज लक्षण।— कफज शोथ भार, एक स्थानमें स्थायी और पाण्डुवर्ण तथा इससे अरुचि, मुखादिसे लालस्राव, निद्रा, वमन और अग्निमान्द्य होता है। यह शोथ दबानेसे दब

जाता है, पर छोड देनेसे फिर उठता नही। रातको यह बढता है और दिनको कम हो जाता है। कफज रोग जैसे देरसे बढता है वैसही देरसे आरामभी होता है। इसी प्रकार दो दोषके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको वही दो दोषजात और तीन दोषके लक्षणोंमें त्रिदोषज मानना चाहिये।

अवस्थानभेद।—शोथजनक कोई दोष आमाशयमें रहे तो छातीसे ऊर्द्ध देह; पक्काशयमें रहे तो मध्य शरीरमें अर्थात् छातीसे पक्काशय तक; मलाशयमें रहे तो कमरसे पैरके तलवे तक; और सब शरीरमें विस्तृत रहनेमें सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—मध्यदेह या सर्व्वाङ्गका शोथ कष्टसाध्य। जो शोथ दहिने बायें या ऊपर नीचे विभागानुसार जिस किसी अर्द्धाङ्गमें उत्पन्न हो अथवा जो शोथ निम्न अवयवोंमें उत्पन्न होकर क्रमश ऊपरको विस्तृत होता रहे, उसी शोथसे प्राण नाशकी सम्भावना है। किन्तु पाण्डु प्रभृति अन्यान्य रोगके उपद्रव रूपसे यदि पहिले पैरसे शोथ होकर क्रमशः ऊपरके तरफ बढे तो वह मारात्मक नही है। स्त्रियोंको पहिले मुखसे उत्पन्न हो क्रमशः पैरके तरफ जो शोथ उतरता है वह उनका प्राण नाशक है। स्त्री या पुरुष जिस किसीको पहिले गुदामें शोथ होतो वह प्राण नाशक है। ऐसही कुक्षि, उदर, गलदेश और मर्म्मस्थान जात शोथ भीअसाध्य है। जो शोथ अतिशय स्थूल और कर्कश अथवा, जिस शोथमें श्वास, पिपासा, वमि दौर्ब्बल्य, ज्वर और अरुचि आदि उपद्रव उपस्थित होता हैं वह शोथभी असाध्य जानना। बालक, वृद्ध और दुर्ब्बल व्यक्तिका भी शोथ असाध्य ही होता है।

चिकित्सा।—किसी रोग विशेषके साथ शोथ रोग होने

से, उसी रोगको दवायोंके साथ शोथ नाशक औषध प्रयोग करना। मल मूत्र साफ रखना इस रोगमें विशेष आवश्यक है। वातिक शोथ में कोष्ठबद्ध होनेसे दूधके साथ रेड़ीका तेल पिलाना। दशमूलका काढ़ा वातज शोथमें विशेष उपकारी है। पित्तज शोथमें गोमूत्र-के साथ ℘) आनेभर त्रिवृतका चूर्ण सेवन करना; अथवा त्रिवृतकी जड़, गुरिच और त्रिफला का काढ़ा पीना। कफज शोथमें पुनर्नवा, शोठ, त्रिवृतकी जड़, गुरिच, बड़ीहर्रे और देवदारु; इसके काढ़ेमें गोमूत्र और ℘) आनेभर गुग्गुलु मिलाकर पिलाना। गोलमिरच चूर्णके साथ बेलके पत्तेका रस, नोमके पत्तका रस और सफेद पुनर्नवाका रस; यह सब शोथ रोगमें उपकारी है। सेहुंडके पत्तेका रस मालिश करनेसे शोथ शान्त होता है। पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवाष्टक, सिंहास्यादि काढ़ा, मानमण्ड, शोथारिचूर्ण, शोथारिमण्डूर, कंस हरीतकी, कट्वाद्य लौह, त्रिकट्वादि लौह, शोथकालानल रस, पञ्चामृत रस, दुग्धवटी और ग्रहणी रोगोक्त औषध स्वर्णपर्पटी आदि विवेचना पूर्वक प्रयोग करना चाहिये। पाण्डु जन्य शोथ रोगमें तक्रमण्डूर और सुधानिधि विशेष उपकारी है। दुग्धवटी और स्वर्णपर्पटी सेवन करती वक्त लवण पानी बन्दकर केवल दूध पोकर रहना चाहिये। ज्वरादि संस्रव न रहनेसे चित्रकाद्य घृत सेवन और शोथ स्थानमें पुनर्नवादि तैल और शुष्कमूलादि तैल आदि मर्द्दन कर सकते हैं।

पथ्यापथ्य।—उदर रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिख आये है शोथ रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये।

कोषवृद्धि।

—:*:—

संज्ञा और प्रकारभेद।—वायु अपने दोषसे कुपित हो पहेसे अण्डकोषमें आता है और फिर पित्तादि दोष दूष्यको कुपित कर अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत और वेदनायुक्त होनेसे उसको वृद्धि रोग कहते हैं। वृद्धिरोग ७ प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, मेदोज, रक्तज, मूत्रज और अन्त्रज।

प्रकारभेद लक्षण।—वातज वृद्धिरोगमें अण्डकोष बड़कर वायुपूर्ण चर्म्मपुटको तरह आकृतिविशिष्ट होता है और वह रुखा तथा सामान्य कारणसे उसमें दर्द होता है। पित्तज वृद्धिमें अण्डकोष पक्के गुलरको तरह लाल, दाह और उष्मायुक्त होता है। बेशी दिन रहनेसे पकजाता है। कफज वृद्धिमें अण्डकोष शीतल स्पर्श, भारी, चिकना, कण्डुयुक्त, कठिन और कम वेदनायुक्त होता है। रक्तज वृद्धि कृष्णवर्ण स्फोटक व्याप्त और पित्तज वृद्धिमें अन्यान्य लक्षणयुक्त होता है। मेदोज वृद्धि रोगमें अण्डकोषका आकार पक्के ताडफलकी तरह और वह मृदु स्पर्श तथा कफ वृद्धिके लक्षणयुक्त होता है। नियत मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्रजवृद्धि रोग पैदा होता है; इस वृद्धिसे चलती वक्त अण्डकोष जलपूर्ण चर्म्मपुटको तरह संक्षोभित, मृदुस्पर्श और वेदनायुक्त होता है। इसमें कभी मूत्रकृच्छ्रकी तरह दर्द होताहै और हिलानेसे नीचेको तरफ झुक जाता है। वायुकारक आहार, शीतल पानीमें अवगाहन, मलमूत्र वेग धारण या अनुपस्थित वेगमें वेग देन

वहन, पथ पर्य्यटन, विषम भावसे अङ्गविन्यास और दुःसाहसिक कार्य्य प्रभृतिसे वायु चालित हो जब मुद्रान्त्रका कियदंश सङ्कुचित हो नीचेकी तरफ वंक्षण सन्धिमें आता है तभी उस सन्धिस्थलमें ग्रन्थिरूप शोथ उत्पन्न होता है इसीको अन्त्रजवृद्धि कहते हैं, अन्त्र-वृद्धि अचिकित्स्य भावसे अधिक दिन रहनेसे अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत, वेदनायुक्त और स्तम्भित होता है। कोष दबानेसे या कभी आपही आप शब्द करते हुए वायु ऊपरकी तरफ उठता है और फिर कोषोंमें आकार शोथ उत्पन्न होता है। अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) असाध्य रोग है।

एकशिरा और वातशिरा।—अमावस्या या पूर्णिमा अथवा दशमी और एकादशी तिथिमें काम और सन्धिसमूह या हाथोंमें वेदना प्रभृति लक्षणयुक्त प्रबल ज्वर होकर एक प्रकार कोषवृद्धि उत्पन्न होता है ; ३।४ दिन बाद फिर वह आपही आप दूर होजाता है। एक कोष बढ़नेसे उसको चलित भाषामें एक-शिरा और दो कोष बढ़नेसे उसको वातशिरा कहते हैं।

वृद्धिरोग चिकित्सा।—यावतीय वृद्धिरोगके प्रथम अवस्थाहीमें चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो कष्टसाध्य होजाता है। सब वृद्धि रोगमें दूधके साथ तथा पित्तज और कफजमें दश-मूलके काढ़ेके साथ रेंड़ीका तैल पीना। कफज और मेदोज वृद्धिमें त्रिकटु और त्रिफलाके काढ़ेके साथ ॥) आनेभर जवाखार और ॥) आनेभर सेंधा नमक मिलाकर पीना यही श्रेष्ठ विरेचन है। मूत्रज वृद्धिमें अस्त्रविशेषसे भेदकर जलस्राव कराना अर्थात् "टेप" लेना आवश्यक है।

अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) जबतक कोषतक नहीं उतरता उसी समय तक चिकित्सा करनेसे आराम होता है। इसमें रास्ना,

मुलेठी, एरण्ड मूल, वरियारा, गोत्तुर; अथवा केवल वरियारेको जड दूधमें औटाना, फिर उसी दूधमें रेड़ीका तेल मिलाकर पिलाना। बच और सरसों; किम्वा सैजनकी छाल और सरसों अथवा छातिम बीज और अदरख; किम्वा सफेद अकवनकी छाल कांजीमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका वृद्धिरोग शान्त होता है। जयन्ती पत्र तावेपर गरम कर कोषमें बांधनेसे भी कोषवृद्धि रोग आराम होता है। हमारी "कोषवृद्धिकी दवा" सब प्रकारके वृद्धिरोगमें व्यवहार करनेसे सुन्दर उपकार होता है। भल्लातकीय, वृद्धिवाधिका वटी, वातारि, शतपुष्पाद्य घृत, गन्धर्व्व-हस्त तेल और श्लीपद रोगोक्त कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द मोदक आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। कोषमें मालिश करनेके लिये सैन्धवाद्य घृत, शोथ रोगोक्त पुनर्नवा और शुष्क मूलादि तैल व्यवहारमें लाना चाहिये। अन्त्रवृद्धिकी प्रबलावस्थामें "ट्रस" नामक यन्त्र लगाना उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने महीन चावलका भात; मूंग, मसूर, चना और अरहरकी दाल, परवर, बैगन, आलु, गाजर, गुल्लर, करेला, सेजनकी डण्डा, अदरख, लहसन आदिकी तरकारी अल्प परिमाण बीच बीचमें छागमांस, छोटी मछली और सब प्रकारका तिक्त और सारक द्रव्य आहार करना। रातको रोटी या पूरी और ऊपर कही तरकारी और थोड़ा दूध भोजन करना। गरम पानी ठण्ढाकर पीना और स्नान करना चाहिये। इस रोगमें सर्व्वदा लङ्गोट पहिरे रहना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—नये चावलका भात या और कोई गुरु-पाक द्रव्य, दही, उरद, पका केला और अधिक मीठा आदि द्रव्य भोजन, शीतल जलपान, भ्रमण, दिवा निद्रा, मलमूत्रका वेग

धारण, स्नान, अजीर्ण रहनेपर भी भोजन तैलाभ्यङ्ग आदि इस पीड़ामें अनिष्टकारक है।

गलगण्ड और गण्डमाला।

गलगण्ड लक्षण।—अपने अपने कारणोंसे कुपित वायु, कफ और मेद गलेमें अण्डकोषकी तरह जो लम्बा शोथ पैदा होता है उसको गलगण्ड कहते हैं। वातज गलगण्ड सूचीवेधवत् वेदना, कृष्णवर्ण, शिराव्याप्त, कर्कश, अरुणवर्ण और देरसे बढ़ता है; तथा रोगीके मुखका स्वाद फीका और तालु कण्ठमें शोष होता है। यह गलगण्ड पकता नहीं कदाचित् किसीका पकता है। कफज गलगण्ड बड़ा, सफेद, वजनदार, अन्यान्य कण्डूविशिष्ट, शीतल, बड़ी देरसे बढ़ना और अल्प वेदनायुक्त होता है। मुखका स्वाद, मीठा तथा तालु और गलेमें कफ भरा रहता है। मेदोज गलगण्ड, चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण, दुर्गन्ध, कण्डूयुक्त और अल्प वेदनाविशिष्ट जानना। इसका आकार लौकीकी तरह जड़ पतली और ऊपर मोटा होता है। शरीरके ह्रासवृद्धिके साथ साथ इसकी भी ह्रासवृद्धि होती रहती है तथा इसमें रोगीका मुख तेलकी तरह चिकना और गलेसे सर्व्वदा शब्द निकलता है। जिस गलगण्डमें रोगीके निश्वास प्रश्वासमें अति कष्ट, सर्व्वाङ्गकी कोमलता, देह क्षीण, आहारमें अरुचि, और स्वरभङ्ग हो तथा जिसकी बिमारी एक वर्षसे अधिक दिनकी है वह असाध्य जानना।

गण्डमाला।—दूषित मेद और कफ कन्धा, गलेको मन्यानामक शिरा, गला और बगलमें बेर और आंवलेकी तरह बहुतसी गांठें उत्पन्न होती है उसको गण्डमाला कहते है। गण्डमाला बहुत दिन पर पकते देखो गयी है। जिस गण्डमालाकी कोई गांठ पक जाय, कोई गांठ आराम हो जाय तथा फिर नहीं पैदा होय ऐसी अवस्था होनेसे उसको अपची कहते हैं। अपचीके साथ साथ पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमि आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। यदि कोई उपद्रव न हो तो आराम भी होता है।

अर्ब्बुद।—शरीरके जिस स्थानमें गांठकी तरह एक प्रकार क्षुद्र शोथ उत्पन्न होकर उसमें गांठ और गोल, अचल और अल्प वेदनायुक्त जो मांसपिण्ड उत्पन्न होता है उसको अर्व्वुद कहते है। गलगण्डको आकृतिसे यह बहुत मिलता है, इससे यहां इसी दो रोगके विषयमें लिखना आवश्यक है।

गलगण्ड चिकित्सा।—गलगण्ड रोगमें कफनाशक चिकित्सा करना विशेष आवश्यक है। हस्तिकर्ण पलाशकी जड, अरवे चावलके धोवनमें पीसकर गलगण्डमें लेप करना। अथवा सफेद सरसों, सेंजनकी बीज, तीसी, जौ और मूलीकी बीज; एकसङ्ग मट्ठेमें पीसकर लेप करना। पक्की तितलौकीका रस, काला और सेन्धानमक मिलाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग शान्त होता है। इसमें नित्यानन्द रस और अमृताद्य तैल पान तथा तुम्बी तैलका नास लेना चाहिये।

गण्डमाला चिकित्सा।—गण्डमाला रोगमें गलगण्ड नाशक लेप आदि प्रयोग करना। काञ्चन छालके काढ़ेमें सोंठ मिलाकर अथवा वरुण मूलके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीना।

सफेद अपराजिताकी जड गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पुराना गण्डमाला भी आराम होता है। इसमें काञ्चन गुग्गुलु सेवन, कुछुन्दरी और सिन्दुरादि तैल मर्द्दन तथा निर्गुण्डी और विम्बादि तैलका नस्य लेना विशेष उपकारी है।

अपची चिकित्सा।—गण्डमाला अपचीके रूपमें परिणत होनेसे सैजनकी छाल और देवदारु एकत्र कांजीमें पीसकर गरम लेप करना। अथवा सफेद सरसों, नीमका पत्ता, आगमें जलाया भेलावा, छागमूत्रमें पीसकर लेप करना। गुञ्जाद्य तैल और चन्दनाद्य तैल मर्द्दन अपची रोगमें विशेष उपकारी है।

ग्रन्थिरोग चिकित्सा।—ग्रन्थि रोगमें द्राक्षा या इक्षुरसके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करना, जामुनकी छाल, अर्जुन छाल और बेतकी छाल पीसकर लेप करना। दन्त मूल, चितामूल, सेहुडका दूध, अकवनका दूध, गुड, भेलावेकी बीज और हिराकस; यही सब द्रव्यका लेप करनेसे गांठ पकती है और उसमेंसे क्लेदादि निकलकर आराम हो जाता है। सज्जीखार, मूलीका भस्म और शङ्खचूर्णका लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्ब्बुद रोग आराम होता है। अर्ब्बुद रोगमें फस्त लेना चाहिये। गुलर या और कर्कश पत्रसे अर्ब्बुद घिसकर उसके ऊपर राल, प्रियङ्गु, लाल चन्दन, लोध, रसाञ्जन और मुलेठी एकत्र पीसकर सहत मिला लेप करना। बडका दूध, कूठ और पांगा नमक अर्ब्बुदमें लेपकर बडके पत्तेसे बांध रखना, सजनका बीज, मूलीकी बीज, सरसों, तुलसी, जौ और कनैलकी जड, एकत्र मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे अर्ब्बुद रोग आराम होता है। इन सब क्रियाओंसे ग्रन्थि और अर्ब्बुद रोगकी शान्ति न होनेसे नश्तर करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—गलगण्डादि रोगमें कोषवृद्धि रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये, इससे अलग नहीं लिखा गया।

श्लीपद।

दोषभेदसे श्लीपदके लक्षण।—श्लीपदका साधारण नाम "फील पा" है। इस रोगमें पहिले पट्ठेमें दर्द होता है, फिर पैर फूलता है। प्रथम अवस्थामें बहुतोंको ज्वर भी आता है। कफके प्रकोपहीसे यह रोग उत्पन्न होता है, तथापि वातादि दोषके आधिक्यानुसार भिन्न लक्षण भी इसमें लक्षित होता है। श्लीपदमें वायुका आधिक्य रहनेसे शोथस्थान काला, रूखा, फटा और तीव्र वेदनायुक्त होता है, तथा इसमें सर्व्वदा ज्वर तथा अकसर दर्दको भी ह्रासवृद्धि होती रहती है। पित्तके आधिक्यसे श्लीपद कोमल, पीतवर्ण दाहविशिष्ट और ज्वर संयुक्त होता है। कफके आधिक्यमें श्लीपद कठिन, चिकना, सफेद या पाण्डुवर्ण और वजनदार होता है।

असाध्य लक्षण।—जो श्लीपद बहुत बढ़गया हो अथवा क्रमशः बढ़कर ऊंचे ऊंचे शिखरयुक्त और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना, तथा जिस श्लीपदमें स्राव और कण्डू तथा जिसमें वातादि दोषजन्य समुदय उपद्रव उत्पन्न हों, ऐसा श्लीपद असाध्य जानना।

जिस देशमें अधिक परिमाण बरसातका पानी सञ्चित रहता

है और जिस देशकी आब हवा ठण्ढी है, प्राय: ऐसेही देशोंमें श्लीपद रोग अधिक पैदा होता है।

दोषभेद और चिकित्सा।—श्लीपद पैदा होतेही इलाज करना चाहिये नहीतो असाध्य हो जाता है। उपवास, विरेचन, स्वेद, प्रलेप और कफनाशक क्रिया समूह इस रोगका शान्तिकारक है। धातुरा, रेंड, श्वेतपुनर्नवा, सैजन और सरसो यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना; अथवा चितामूल, देवदारु, सफेद सरसो या सैजनके जड़को काल गोमूत्रमें पीस गरम कर लेप करना। सफेद अकवनको जड़, कांजीमें पीस लेप करनेसे भी श्लीपद आराम होता है। पित्तजन्य श्लीपद रोगमें मजीठ, मूलेठी, रास्ना, और पुनर्नवा यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप अथवा मदनादि लेप करना। बरियारेको जड़ ताड़के रससे पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका श्लीपद रोग आराम होता है। बड़ी हरें रेंडीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ खानेसे भी श्लीपद रोग आराम होता है। कणादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपद गजकेशरी, सौरेश्वर घृत और विडङ्गादि तैल आदि विचार कर श्लीपद रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—कोषवृद्धि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, श्लीपद रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

विद्रधि और व्रण।

विद्रधि या फोड़ाका निदान और प्रकारभेदसे लक्षण।—विद्रधिका साधारण नाम "फोड़ा" है। गुल्मके आकृतिको तरह और दाह, वेदना तथा अन्तमें पाकयुक्त शोथको विद्रधि कहते है। विद्रधि दो प्रकार, वाह्यविद्रधि और अन्तर्विद्रधि। कुपित वातादि दोष हड्डोमें रहकर त्वक, रक्त, मांस और मेदको दूषित करनेसे विद्रधि रोग उत्पन्न होता है। वाह्यविद्रधि शरोरके सब स्थानोंमें पैदा होती है। अन्तर्विद्रधि गुदा वस्तिमुख, नाभि, कुचि, दोनो पट्ठा, पार्श्व, प्लोहा, यकृत्, हृदय, क्लोम (पिपासा स्थान) यही सब स्थानो में उत्पन्न होती है। गुह्य नाड़ीमें विद्रधि उत्पन्न होनेसे अधोवायुका रोध, वस्तिमें होनेसे मूत्रकृच्छ्र और मूत्रको अल्पता, नाभिमें होनेसे हिक्का और पेटमें दर्दके साथ गुड गुड शब्द होना. कुचिमें होनेसे वायुका प्रकोप पट्ठेमें होनेसे कण्ठ और पीठमे तीव्र वेदना, पार्श्वमें होनेसे पार्श्वका सङ्कुचित होना, प्लोहामें होनेसे श्वासरोध, हृदयमें होनेसे सर्व्वाङ्गमें दर्द और काम, यकृतमें होनेसे श्वास हिक्का और क्लोममें होनेसे बार बार पानी पीनेको इच्छा होती है। यही सब विशेष लक्षणोंके सिवाय यन्त्रना आदि अन्यान्य लक्षण भी सब प्रकारके विद्रधिका एकही प्रकार जानना।

साध्यासाध्य निर्णय।—नाभिके उपर अर्थात् प्लोहा, यकृत्, पार्श्व, कुचि, हृदय और क्लोम स्थानमें जो सब अन्तर्विद्रधि

पैदा होती है, वह पककर फूटनेसे पीप रक्त निकलता है ; और नाभिकी नीचे याने वस्ति, गुदा, पट्ठा, आदि स्थानोंमें पैदा होनेसे गुदासे पीप आदिका स्राव होता है। मुखसे पीप आदिका स्राव होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु गुह्यद्वारके स्रावसे जीवनकी आशा रहती है। विद्रधि रोगमें उदराध्मान, मूत्ररोध, वमन, हिक्का, पिपासा, अत्यन्त वेदना और श्वास आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा कम जानना।

व्रण या क्षत।—व्रणका साधारण नाम "घाव" या क्षत है। जिस स्थानमें व्रण उत्पन्न होगा वह स्थान पहिले फूलता है फिर पककर आपही आप फूटकर या नस्तरसे घाव करनेसे उसे व्रणरोग कहते है। व्रण शोथ पकनेसे पहिले शोथस्थान थोड़ा गरम, कड़ा थोड़ा दर्द और बदनको तरह रंग होता है। पकनेके समय वह मानो आगसे जलाया जाना, नस्तरसे चीरना, चिंवटीसे काटना, दण्डादिसे मारना, सूची आदिसे गड़ाना, अङ्गुलीसे बिदीरना तथा दबानेकी तरहतकलीफ होती है। इसमें अत्यन्त दाह और उत्ताप होता है तथा वायुपूर्ण चर्मपुटकी तरह आध्मान हो उठता है। रोगी भी बिच्छू काटनेकी तरह छटपटाता है और ज्वर, तृष्णा, अरुचि आदिसे पीड़ित होता है। पक जानेपर वेदना और शोथ कम हो, लाल रंग, उपरके मांसमें सिकुड़न और फटासालूम होता है तथा दबानेसे शोथस्थान बैठ जाता है, भीतर पीप पैदा हो सूई गड़ानेकी तरह दर्द और खुजली पैदा होता है। पककर फूटनेपर या नस्तरसे पीप खून निकल जानेपर थोड़ा स्राव सूई गड़ानेकी तरह दर्द या जलन लिये घाव होता है। इस अवस्थामें प्यास, मोह, ज्वर आदि उपद्रव भी उपस्थित होते दिखाई देते है।

आरोग्य और उन्मुख लक्षण।—जो व्रण क्रमशः जीभके नीचेके भागको तरह कोमल, मसृण, चिकना, स्रावशून्य, समान, अल्प वेदनायुक्त हो वह आराम होता हैं और जो व्रण क्लेदशून्य, विदीर्णताशून्य और मांसाङ्कुरयुक्त व्रण आरोग्य उन्मुख जानना। व्रण दुर्गन्धविशिष्ट, पीपरक्त, स्रावयुक्त भीतरको धसं जाने पर या दीर्घकालमें भी आराम न होनेसे उसको दुष्टव्रण कहते है।

असाध्य और प्राणनाशक व्रण।—जिस व्रणसे वसा, चर्व्वी या मज्जा आदि निर्गत हो, और जो व्रण मर्मस्थानमें उत्पन्न हो, जिसमें अत्यन्त दर्द हो, जिस व्रणके भीतर दाह और ऊपर ठण्ढा किम्वा वाहर दाह भीतर ठण्ढा तथा जिस व्रणमें बल और मांसका क्षय, श्वास, कास, अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न हो वही सब व्रण असाध्य जानना; तथा जिस व्रणमें अगरु, अगरु, घी, चन्दन या चम्पकादि फूलकी तरह सुगन्ध निकले वह प्राण नाशक जानना। अस्त्रशस्त्रादिसे कोई स्थानमें घाव होनेसे या आगसे जल जानेपर जो व्रण होता है, उसको सद्योव्रण कहते हैं। सद्योव्रणसे वसा, चर्व्वी, मज्जा या पतला पदार्थ निर्गत होनेपर भी असाध्य नहो समझना। किन्तु मर्मस्थानमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है वह असाध्य जानना। इसके अन्यान्य लक्षण साधारण व्रणकी तरह समझना।

नाड़ीव्रण या नासूर।—व्रणशोथ पकनेपर उपयुक्त समयमें पीपरक्त न निकलनेसे वही पीप क्रमशः त्वक मांस, शिरा स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म प्रभृति स्थान समूहोंको विदीर्ण कर भीतरको जाता है; इससे उस व्रण स्थानसे भीतरको तरफ एक नाली उत्पन्न होती है; इसोको नाड़ीव्रण (नासूर) कहते है।

विद्रधि और व्रणशोथ चिकित्सा।—विद्रधि और व्रणशोथके अपक्वावस्थामें रक्त मोक्षण, मृदु विरेचन, औषध प्रयोग और स्वेद क्रियासे उसको बैठानेका उपाय करना चाहिये। जौ, गेहूं और मूंग पकाकर उसका लेप करना अथवा सेजनके जड़का लेप और स्वेद करनेसे विद्रधि बैठ जाता है। अपक्व अन्तर्विद्रधि में सेजनके जड़को छालका रस मधुके साथ पिलाना; अथवा सफेद पुनर्नवा की जड़ या वरुण छालको जड़का काढ़ा पिलाना। आकनादि मूल, मधु और अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे भो अपक्व अन्तर्विद्रधि आराम होता है। वरुणादि घृत सेवन करनेसे अन्तविद्रधिमें विशेष उपकार होता है। व्रणशोथके अपक्वावस्थामें धतूरेको जड़ और सेंधा नमक एकत्र पोसकर गरम लेप करना अथवा वड़, गुल्लर, पोपल, पाकड़ और वेत इन सबका छाल समभाग पीसकर थोड़ा घो मिलाकर लेप करना। इससे भी व्रणशोथ बैठ जाता है।

शोथ पकानेका उपाय।—प्रलेपादिसे न बैठनेपर विद्रधि या व्रणशोथ पकाकर पोप रक्त निकालना चाहिये। पकानेके लिये सनका बोज, मूलोको बोज, सेजनको बोज, तिल, सरसो, तिसो, जौ और गेहूं आदिको पुलटिस देना। पकनेपर नस्तर करनाहो अच्छा है। नहोतो करञ्ज, भेलावा, दन्तीमूल, चिता मूल, कनैलको जड़ और कबूतर, कौवा, या शकुनिको विठा पोसकर अथवा नायका दांत घिसकर उपयुक्त स्थानमें लगाना, इससे वही स्थान फूटकर पोप रक्त आदि निर्गत होता है। गेहूं और सेमल आदि पिच्छिल द्रव्यको छाल और मूल तथा गेहूं और उरद आदि द्रव्यका लेप देनेसे फैला हुआ पोप आदि आकृष्ट हो घावके मुंहसे बाहर निर्गत हो जाता है। चतस्थान धोनेके लिये

परवरका पत्ता, नीमका पत्ता या वटादिके छालका काढा व्यवहार करना। घाव धोनेपर करञ्जाद्य घृत, जीरक घृत, जात्याद्य घृत और तेल, विपरीत मल्ल तैल, व्रणराक्षस तैल, या हमारा "चतारि तैल" प्रयोग करना, इससे घाव जलदी सूख जाता है। व्रण दुषित होनेसे अर्थात् दुष्ट व्रणके लक्षण मालूम होनेसे नीमका पत्ता, तिल, दन्तीमूल और त्रिवृत मूल यह सब समभाग पीसकर थोडा नमक और सहत मिलाकर लेप करना। केवल अनन्तमूलका प्रलेप किम्बा असगन्ध, कुटकी, लोध कायफल, जेठीमध, लज्जालु लता और धाईफूलका प्रलेप देनेसे अथवा शतपर्णीका दूध लगानेसे भी दुष्टव्रण आराम होता है।

सद्योव्रण चिकित्सा।—सद्योव्रणके प्रथमावस्थामें उपयुक्त चिकित्सा होनेसे फिर वह घाव नहो होता। शस्त्रादिमें किसी स्थानमें घाव होनेसे जलकी पट्टी बाधनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। अपामार्गके पत्तेका रस, दन्ती पत्तेका रस और दूर्व्वाका रस प्रयोग करनेसे भी रक्तस्राव बन्द होता है। कपूर मिलाया शतधौत घीसे घाव भरकर बांध देनेसे घाव पकता नहो तथा तकलीफ दूर हो क्रमशः घाव भर आता हैं। इन सब क्रियाओंसे आराम न हो घाव होनेपर पूर्व्वोक्त प्रलेप और तैलादि प्रयोग तथा आगसे जले घावमें भी वही सब तैलादि प्रयोग करना चाहिये। आगसे जलते ही जले हुए स्थानमें तिल तेलके साथ जौ भस्म मिलाकर अथवा दूध और महिष नवनीतके साथ तिल पीस कर लेप करनेसे जलन शान्त होती है। जले हुए स्थानमें सहत लगाकर उपरमें जौचूर्ण लेपनेसे या केवल गुड अथवा चूर्णसे लेप करनेसे जलन दूर होता है।

नाड़ीव्रण चिकित्सा।—नाडीव्रण याने नासूरमें

हापरमालीका गोंद लगाना। सफेद रेंडका दूध आग खैर एकत्र मिलाकर लेप करना शृगालकूली, मैनफल, सूपारीकी छाल और सैन्धा नमक समभाग सेंहुड़ या अकवनके दूधमें मिलाकर बत्ती बनाना तथा वही बत्ती नासूरमें प्रवेश कर रखना। अथवा सेप-लोम जलाकर उसकी राख और तितलौकीके साथ तैल पाककर उसमें रुई भिगोकर नासूरमें रखना। सज्जिकाद्य तैल निर्गुण्डी तैल, हंसपादी तैल और हमारा "चतारि तैल" नासूरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ सप्ताङ्ग गुग्गुलु या हमारा "अमृतवल्ली कषाय" व्यवस्था कर सकते है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुरानि चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवल, बैगन, गुल्लर, कच्चा केला सेजनका डण्डा आदि घृतपक्व तरकारी, बलादि चीण होनेसे छाग आदि लघु मांसका रस आहार करना। रातको रोटी और वही सब तर-कारी, खानेको देना। गरम पानी ठण्ढा कर पान और बीच बीचमें जरूरत होनेसे उसी पानीसे स्नान करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—सब प्रकारका कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, दूध, दही, मत्स्य, पिष्टक और सबप्रकार मिष्टद्रव्य भोजन और दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, स्नान, मैथुन, पथ पर्य्यटन और व्यायाम आदि कार्य्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।

भगन्दर।

—:—

संज्ञा।—गुदासे दो अङ्गुल बादके स्थानमें नाड़ीव्रणको तरह एकप्रकार घाव उत्पन्न होता है, उसको भगन्दर कहते हैं। कुपित वातादि दोषोंसे पहले उस स्थानमें व्रणशोथ उत्पन्न होता है, फिर वह पककर फैल जानेसे अरुण वर्णका फेन और पोप आदि उसमें से स्राव होता है, घाव बड़ा होनेसे उसी रास्ते मल, मूत्र, शुक्र आदि निर्गत होता है। गुह्यदेशमें किसो प्रकारका घाव होकर पकनेपर वह भो क्रमशः भगन्दर हो जाता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—सब प्रकारका भगन्दर अति शय कष्टदायक और कष्टसाध्य है। जिस भगन्दरसे अधोवायु मल मूत्र और क्रिमि निकले तो उससे रोगोके प्राणनाशको सम्पूर्ण सम्भावना है। जो भगन्दर पहिले आवर्त्तनकी तरह आकार-विशिष्ट हो तो वह असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पकनेसे पहिले हो इसको चिकित्सा करना चाहिये, नहींतो नितान्त कष्टसाध्य होता है। अपकावस्थामें रक्तमोक्षण हो इसको प्रधान चिकित्सा है। पिडिका बैठानेके लिये वटपत्र या पानोके भोतर को ईंटका चूर्ण, सोंठ, गुरिच और पुनर्नवा यह सब द्रव्य पोसकर लेप करना। विद्रधि प्रभृति बैठानेके लिये जो सब उपाय कह आये हैं वह सब भो प्रयोग कर सकते हैं। बैठनेको आशा न रहनेसे शस्त्र करना चाहिये। अथवा पूर्व्वोक्त उपायोंसे पकाकर पोप आदि निकालना चाहिये। घाव आराम करनेके लिये सेहुंडका दूध, मकवनका दूध अथवा दारु-

हलदी का चूर्ण, यही सब द्रव्यको बत्ती बनाकर भगन्दरमें रखना। त्रिफलाके काढ़ेसे भगन्दर धोकर, त्रिफलाके काढ़ेमें बिल्ली या कुक्कुरकी हड्डी घिसकर लेप करना। नाड़ीव्रण नाशक सब प्रकारका तैल भगन्दरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सिवाय हमारा "चतार्दि तैल" प्रयोग करनेसे भी पीड़ा दूर होती है। इस रोगमें सप्तविंशतिक गुग्गुलु, नवकार्षिक गुग्गुलु और व्रण गजाङ्कुश रस आदि औषध अथवा हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब पथ्यापथ्य विहित है; भगन्दर रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये। अग्निबल क्षीण न होतो शृगाल मांस भोजन भगन्दर रोगमें विशेष उपकारी है।

उपदंश और व्रध्न।

—:०:—

निदान।—दूषितयोनि स्त्रीके साथ सहवास, ब्रह्मचारिणी सहवास, अतिरिक्त मैथुन, मैथुनके बाद लिङ्ग न धोना अथवा क्षार मिश्रित गरम पानीसे धोना और किसी कारणसे लिङ्गमें घाव होना आदि कारणोंसे उपदंश रोग पैदा होता है। इसी प्रकार दूषित पुरुष सहवास इत्यादि कारणोंसे स्त्रियोंको यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें पहिले लिङ्गके कोड़ी या उपरके

चमडेपर छोटो फुसरो पैदा हो फुसरोके चारो तरफ कडा हो जाता है तथा क्रमश: वह फुसरो पककर बढतो है, फिर उसमें से पोप क्लेद और जलवत् पदार्थ निर्गत होता है। चतस्थान अत्यन्त विवर्ण होनेके साथ साथ सामान्य ज्वर, वमनोद्रेक, अग्निमान्द्य, जिह्वा विकृतास्वाद और मैलो, हड्डोमें दर्द, शिर:पोडा और किसोको पट्ठेमें दर्द अथवा व्रण (बाघो) होता है। चतस्थानका मूलभाग कर्‌ा र मध्यस्थान थोडा नोचा और उसके चारो तरफ थोडा ऊचा होता है। यह रोग बहुत दिन तक अचिकित्सित भाव रहनेसे क्रमश: सर्व्वाङ्गमें फुसरोको उत्पत्ति जगह जगह चत या स्फोटक, नेत्ररोग, केश और लोमका चय, सन्धिस्थान समूहोंमें दर्द, पोनस और कभो कभो प्रकृत कुष्ठ रोग भी पैदा होता है; तथा अन्तमें उसो घावमें क्रिमि उत्पन्न हो लिङ्ग चय हो जाता है। इसी अवस्थामें रोगीका प्राण नाश होता है।

चिकित्सा।—उपदंश चत दूर करनेके लिले करञ्जाद्य घृत, विवर्चिकारि तैल और हमारा "चतारि घृत" और "चतारि तैल" प्रयोग करना। अथवा आंवला, हर्रो और बहेडा एक हाडोमें रख उपर ढकनोसे ढांककर आगमें जलाना, वही भस्म सहतमें मिलाकर घावमें लगाना, किम्वा रसाञ्जन और हर्रो महत में मिलाकर लगाना। बबूलके पत्तेका चूर्ण, अनारके छालका चूर्ण अथवा मनुष्य अस्थि चूर्ण व्यवहार करनेसे उपदंशका घाव आराम होता है। यही सब लेप या तैलादि प्रयोगके पहिले त्रिफलाका काढा किम्वा भीमराजका रस अथवा करवीर, जयन्ती, अकवन और अमिलतासके पत्तेके काढेसे घाव अच्छी तरह धोना चाहिये। खानेके लिये वराटि गुग्गुलु और रसशेखर रस औषध प्रयोग करना। ज्वर होतो ज्वर निवारक औषध भो उसोके साथ सेवन

कराना उचित है। रोग पुराना होनेसे सालसा सेवन कराना चाहिये। हमारा "वृहत् अमृतवल्ली कषाय और अमृतवल्ली कषाय" नामक सालसा उपदंश रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पारद सेवनका परिणाम।—उपदंश रोग जल्दी आराम होनेके लिये बहुतेरे लोग पारा सेवन कराते हैं। पारा यथारीति शोधित या सेवित न होनेसे, वह शरीरमें जाकर नानाप्रकारका उत्कट रोग पैदा करता है। हड्डोमें जलन, सन्धि समूह या सर्व्वाङ्गमें दर्द, शरीरके नाना स्थानमें घाव या फोडियोंको उत्पत्ति और काला या सफेद रंगका दाग, हाथ और पैरके तलवोंसे चमड़ा निकलना, मुख नाकमें घाव, पीनस, मुखरोग, दन्तच्युति, नासिका क्षय, शिरपीड़ा, पक्षाघात, अण्डकोषमें शोथ और कठिनता, जगह जगह गांठोंमें दर्द तरह शोथको उत्पत्ति, चक्षुरोग, भगन्दर, नानाप्रकार चर्म्मरोग और कुष्ठरोगतक अवश्य पारद सेवनसे उत्पन्न होते दिखाई देते हैं। पारद विकृतिमें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन कराना ही अच्छा है, कारण यह इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। इसके सिवाय कुष्ठरोगोक्त पञ्चतिक्त घृत आदि कई औषध विचार कर प्रयोग करना चाहिये। शोधित गन्धक ४ रत्ती मात्रा घीके साथ, रासका तैल १०।१२ बूंद दूधके साथ रोज सेवन करनेसे पारद विकृतिमें विशेष उपकार होता है। घाव आराम करनेके लिये पूर्व्वोक्त क्षत निवारक औषध और चर्म्मरोग शान्तिके लिये सोमराजी तैल, मरिच्यादि तैल, महारुद्र गुडूची तैल और कन्दर्पसार तैल बदनमें मालिश करना चाहिये।

अर्श कारण।—उपदंश होनेसे अकसर बवासीर होते दिखाई देता है। कफ जनक या गुरुपाक अन्न भोजन, सूखा या

सडा मांस भोजन, नीचे ऊंचे स्थानमें चलना, तेज चलना और पैरमें फोडा या किसी तरहकी चोट लगनेसे भी यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें वंचण सन्धि याने दोनो पट्ठोंमें शोथ और साथ ही ज्वर होता है। उपदंश जनित व्रध्न पक जाता है, पर दूसरे कारणोंसे बाघी पकते नही देखा है।

व्रध्न चिकित्सा।—उपदंशजनित व्रध्न पकाकर नस्तर-से काट पीप रक्त निकालनाही अच्छा है, नहीतो और और, रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। व्रणशोथ पकानेके लिये और पक-जानेपर, विदारण और घाव सुखानेके लिये जो सब योगादि लिख आये है, व्रध्न रोगमें भी वही सब प्रयोग करना। अन्यान्य व्रध्न अथवा उपदंश जनित व्रध्न भी किसी वक्त बठानेकी आवश्यकता हो तो, पैदा होतेही बैठानेकी ततबीर करनी चाहिये। जोंकसे रक्त मोचण या बडका दूध लगाना गन्धाविरोजा या मुरगीके अण्डेके द्रव भागकी पट्टी रखनेसे व्रध्न बैठ जाता है। नौसादर या सोरा चार आनेभर एक छटांक पानीमें मिलाकर कपड़ेको पट्टी भिंगोकर रखनेसे भी व्रध्न जल्दी बैठ जाता है, अथवा कालाजीरा, हीवेर, कूठ, तेजपत्ता और बेर; यही सब द्र काञ्जीमें पीसकर लेप करना। दर्दकी शान्तिके लिये मेंडीके दूधमें गेहू पीसकर लेप करना। ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरनाशक औषध देना।

पथ्यापथ्य।—इस बिमारीमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, अरहर और चनेकी दाल, परवर, गुल्लर, बैगन, पुराना सफेद कोहडा आदि घीमें बनी तरकारी; बीच बीचमें छाग कबूतर या मूरगाका मांस आहार करना। रातको रोटी और उक्त तरकारी खाना चाहिये ज्वर अधिक हो तो भात बन्द-कर रोटी या सागू आदि हलका आहार देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—निषिद्द्रव्य, शोतल द्रव्य, दूध और मछली भोजन और स्नान, मैथुन, दिवानिद्रा, व्यायाम आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कुष्ट और श्वित्र।

निदान।—खीर मछ्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य, भोजन द्रव, स्निग्ध, और गुरुपाक द्रव्य भोजन; नयी चावलका भात दही, मछली, लवण, उरद, मूली, मिठाल, तिल और गुड़ आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन और मलमूत्र वमनादि का वेग धारण, अतिरिक्त भोजनके बाद व्यायाम या धूपमें बैठना; आतपक्लान्त, परिश्रान्त, या भयार्त्त होनेपर विश्राम न लेकर ठण्ढा पानी पीना; अजीर्णमें भोजन, वमन विरेचनादि शुद्धिकार्य्यके बाद अहित आचरण, भुक्त अन्न जीर्ण न होनेके पहिले स्त्रीसङ्गम, दिवानिद्रा और गुरु ब्राह्मण आदिका अपमान आदि उत्कट पापाचरण; यही सब कारणोंसे कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। वातरक्त और पारद विकृतिसे भी कुष्ठरोग पैदा होता है।

पूर्व्व लक्षण।—कुष्ठरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अङ्ग विशेष अतिशय मसृण या खरस्पर्श, अधिक पसीना आना या पसीना एक दम बन्द होना, शरीरकी विवर्णता, दाह, कण्डु, बदनमें सुजली, सरसुरी अथवा चिंवटी चलनेकी तरह अनुभव। अङ्ग-

स्पर्शमें स्पर्शशक्तिका नाश, जगह जगह सूई गडानेकी तरह दर्द, जगह जगह बर्रे काटनेकी तरह दाग, क्लान्ति बोध, किसी प्रकारका घाव होनेसे उसमें भयानक दर्द, घावकी जल्दी उत्पत्ति और आराम होनेमें देर, सामान्य कारणसे भी घावका प्रकोप, घाव सूख जाने पर भी उस स्थानमें रूखापन, रोमाञ्च और कृष्णवर्णता यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं।

महाकुष्ठके प्रकार और भेद लक्षण।—कुष्ठरोग अपरिसंख्येय होनेपर भी संक्षेपतः १८ प्रकारका निर्दिष्ट है। जिसमें कापाल, औडुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरिक, सिध्म और काकन नामक सात प्रकारके कुष्ठको महाकुष्ठ कहते हैं। बाकी ११ प्रकारका क्षुद्र कुष्ठ है। कापाल कुष्ठ, थोडा काला और थोडा अरुण वर्ण, रूक्ष, खरस्पर्श सूई गडानेकी तरह दर्द और पतला त्वकविशिष्ट होता है। औडुम्बर कुष्ठ गुल्लरके रंगकी तरह दाह, कण्डुयुक्त और इसमें व्याधि स्थानके लोम पिङ्गल वर्ण होता है। मण्डल कुष्ठ थोडा सफेद, थोडा लाल, आर्द्र, क्लेदयुक्त, उन्नत, मण्डलाकार और परस्पर मिला हुआ होता है। ऋष्यजिह्व कुष्ठ हरिणके जीभकी तरह आकृतिविशिष्ट कर्कश, प्रान्तभागमें लाल और बीचमें काला दाग और वेदनायुक्त होता हैं। पुण्डरीक कुष्ठ लाल कमलके फूलकी तरह आकृतिविशिष्ट सफेद मिला लाल रङ्ग और ऊंचा। सिध्मकुष्ठ देखनेमें लौकीके फूलकी तरह और सफेद मिला लाल रङ्गका चमडाविशिष्ट व्याधिस्थान घिसनेसे उसमेंसे चूर्णकी तरह पदार्थ निकलता है, यह रोग छातीमें अधिक होता है। काकन कुष्ठ घुंघुचीकी तरह भीतर काला और प्रान्तभागमें लाल रंग, तीव्र वेदनायुक्त, यही कुष्ठ पकता है।

सब प्रकारका कुष्ठ जब रसधातुमें प्रवेश करता है तब अङ्गकी विवर्णता, रुक्षता, स्पर्श शक्तिका नाश, रोमाञ्च और अधिक पसीना यही सब लक्षण प्रकाशित होते है; फिर खून गाढ़ा होनेसे कण्डु और अधिक पीप सञ्चय। मांसगत होनेसे कुष्ठकी पुष्टि और कर्कशता, मुखशोष, पिड़िकाकी उत्पत्ति, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और घाव पैदा होता है। मेदोगत होनेसे हस्तक्षय, गतिशक्तिका नाश, अङ्गकी वक्रता और घावके स्थानकी विकृति और अस्थि तथा मज्जागत होनेसे नासाभङ्ग, चक्षुकी रक्तवर्णता क्षतस्थानमें क्रिमिकी उत्पत्ति और स्वरभङ्ग होता है।

साध्यासाध्य निर्णय। कुष्ठरोग रस, रक्त और मांसगत होनेतक आराम होनेकी सम्भावना है। मेदोगत कुष्ठ याप्य। अस्थि और मज्जागत तथा उसमें क्रिमि, तृष्णा, दाह और मन्दाग्नि उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। जिस कुष्ठरोगीका कुष्ठ विदीर्ण, स्रावयुक्त, चक्षु लाल और स्वरभङ्ग हो उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

क्षुद्रकुष्ठोंके प्रकार भेदसे लक्षण। उक्त सात महाकुष्ठके सिवाय बाकी ११ प्रकारके क्षुद्र कुष्ठोंमें जिस कुष्ठमें पसीना नहीं होता और जो अधिक स्थानमें व्याप्त रहता है तथा जिसकी आकृति मछलीके चोइयांकी तरह होती है उसे भी एक प्रकारका कुष्ठ कहते हैं। हाथीके चमड़ेकी तरह रूखा, काला और मोटा, कुष्ठको चर्मकुष्ठ कहते है। जिस कुष्ठमें हाथ पैर फट जाता हैं, तीव्र दर्द होता है, उसको वैपादिक कुष्ठ कहते है। श्याम वर्ण रूखा, सूखा और सूखे घावकी तरह खरस्पर्श कुष्ठको किटिभ कुष्ठ कहते है।

कण्डुविशिष्ट, रक्तवर्ण स्फोटक द्वारा व्याप्त कुष्ठको अलसक

कहते हैं। ऊंचा, मण्डलाकार, कण्डूयुक्त और रक्तवर्ण फोड़ियोंसे व्याप्त कुष्ठको दद्रुमण्डल, तथा रक्तवर्ण, शूलवेदनाकी तरह दर्द, कण्डुयुक्त स्फोटक व्याप्त, सर्व्वसह और जिसमें मांस गलकर गिरता है उस कुष्ठको चर्मदल कहते हैं। दाह, कण्डु और स्रावयुक्त छोटी छोटी फोड़ियांको पामा और उसमें तीव्र दाह और स्फोटक होनेसे कच्छू (खजुली) कहते हैं। कच्छू हाथ और चूतड़में अधिक होता है। श्याम या अरुण वर्ण पतला चर्मविशिष्ट स्फोटकको विस्फोटक कहते हैं। लाल या श्याम वर्ण तथा दाह और वेदनायुक्त बहु व्रणको शतारु कहते हैं। विचर्चिक नामक क्षुद्र कुष्ठ श्याम वर्ण, स्रावयुक्त तथा कण्डू और पिड़का विशिष्ट होता है, यही पैर में पैदा होनेसे उसको विपादिका कहते हैं। वस्तुतः १८ प्रकारके कुष्ठोंमें सिध्म, दद्रु, पामा या कच्छू, विचर्चिका या विपादिका, शतारु और विस्फोटक यही छ प्रकारके कुष्ठको सहज क्षुद्र कुष्ठ कहना उचित है। इसके सिवाय और भी कई एक क्षुद्र कुष्ठ शास्त्रमें परिगणित है इन सबको भी महा कुष्ठकी तरह समझना चाहिये।

अवस्थाभेदसे चिकित्सा।—कुष्ठरोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सम्पूर्ण रूपसे पीड़ा प्रकाश होनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है। इस रोगमें मञ्जिष्ठादि और अमृतादि क्वाथ, पञ्चनिम्ब, अमृत गुग्गुलु, पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु, अमृत भल्लातक, अमृताङ्कुर लौह, तालकेश्वर, महा तालकेश्वर, रसमाणिक्य और पञ्चतिक्त घृत तथा कुष्ठस्थानमें मालिश करनेके लिये महासिन्दुराद्य तेल, सोमराजी तेल, मरिचादि तेल, कन्दर्पसार तेल और वात रोगोक्त महागुड़ूची तेल व्यवहार कर सकते है। कुष्ठस्थानमें प्रलेप करनेके लिये हरीतकी, हरि-

करञ्जको बोज, चकवडको बोज और कूठ; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना, अथवा मैनसिल, हरिताल, गोलमिरच, सरसोका तैल, अकवनका दूध, यह सब द्रव्य पोस कर किम्बा डहरकरञ्ज बोज, चकवड़को बोज और कूठ यह तीन द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना। गोमूत्र पान और चावलमुगराके तैलका मर्द्दन, कुष्ठ और कण्डू आदि रोगमें विशेष उपकारी है। दादको दूर करनेके लिये विडङ्ग, चकवडको बोज, कूठ, हलदी, सेन्धा नमक और सरसो; यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करना। चकवडको बोज, आंवला, राल और सेंहुडका दूध; यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रुरोग आराम होता है। हमारा "दद्रुनाशक चूर्ण" व्यवहार करनेसे भी दाद जलदी आराम होता है। चकवडको बीज, तिल, सफेद सरसो, कूठ, पीपल, सोचल और काला नमक यह सब द्रव्य दहीके पानीमें तीन दिन भिंगो रखना फिर उसका लेप करनेसे दद्रु और विचर्चिका रोग आराम होता है। अमिलतासका पत्ता कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किटिभ और सिध्म रोग दूर होता है। गन्धक चूर्ण और यवाक्षार चूर्ण सरसोके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्मरोग आराम होता है। मूलीको बोज अपामार्गके रसके साथ अथवा दहीमें पीसकर लेप करनेसे भी सिध्मरोग आराम होता है। अकवनके पत्तेका रस और हलदीका कल्क सरसोके तेलमें औटाकर मालिश करनेसे पामा, कच्छू और विचर्चिका आराम होता है। नरम अडूसेका पत्ता, हलदी, गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पामा, कच्छू रोगमें विशेष उपकार होता है। हमारा "घतारि तैल" पामा, कच्छू और विचर्चिका रोगमें विशेष उपकारी है।

श्वित्र या धवल और किलास।—पूर्वोक्त अष्टादश

प्रकारके कुष्ठरोगके सिवाय श्वित्र और किलास नामक और भी दो प्रकारके कुष्ठ रोग है। श्वित्र रोगका साधारण नाम "धवल" है। इससे शरीरमें जगह जगह सफेद दाग और किलास रोगमें थोडा लाल रंगका दाग होता है। जिन कारणोंसे कुष्ठरोग पैदा होता है श्वित्रादि रोग भी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होते है। श्वित्रादि रोग पुराना और निर्लोम स्थान अर्थात् गुदा, लिङ्ग, योनि, हाथ पैरका तरवा और ओठमें उत्पन्न होनेसे असाध्य जानना। जिस श्वित्रके दाग सब परस्पर असंयुक्त और जिसके उपरको लोम समूह श्वेतवर्ण न हो कृष्णवर्ण होती है तथा थोडे दिनका पैदा हुआ और जो आगसे जला नहो है इसोके आराम होनेको सम्भावना है। घुंघची दाना और छागलनादि गोमूत्रके साथ पोसकर लेप करनेसे श्वित्र और किलास रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय कुष्ठ रोगोक्त यावतीय सिध्मनाशक प्रलेप समूह और कन्दर्पसार तेल इसमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त रोगोक्त पथ्यापथ्य कुष्ठ प्रभृति रोगमें भी पालन करना चाहिये। यह रोग अतिशय संक्रामक है, इससे कुष्ठरोगीके साथ एक बिछौने पर शयन, उपवेशन, एकत्र भोजन, बदनमें निश्वासादि लगाना, रोगोका पहिरा कपड़ा पहिरना और उसके साथ मैथुन कदापि नहो करना चाहिये।

शीतपित्त।

संज्ञा और पूर्व्व लक्षण।—सर्व्वाङ्गमें बर्रै काटनेकी तरह शोथ और अतिशय कण्डू विशिष्ट लाल रंगका एक प्रकार ददोरा हो खुजलाया करता है, उसीको शीत पित्त तथा चलित भाषामें इसको "आमवात" कहते हैं। किसी किसी जगह सूची-वेधवत् वेदना, वमन, ज्वर और दाह भी होता है। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पिपासा, अरुचि, वमन वेग, शरीरका अवसाद, गौरव और आंखि लाल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं।

उदर्द्द और कोठ।—उदर्द्द और कोठ नामक औरभी दो प्रकारका रोग इसी जातिका है। शीतल वायु सेवन आदि कारणोंसे वायु और कफ, प्रकुपित हो वायुके आधिक्यसे शीतपित्त और कफके आधिक्यसे उदर्द्द रोग उत्पन्न होता है। यह दो रोगके लक्षण प्रायः एकही प्रकारके होते हैं। वमन क्रियासे अच्छी तरह वमन न होनेसे उत्कृष्ट पित्त और कफ शीतपित्तके लक्षणयुक्त जो सब शोथ पैदा होते हैं उसको कोठ कहते हैं। कोठ बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होनेसे उसको उत्कोठ कहते हैं।

चिकित्सा।—इस रोगमें अजीर्ण जन्य आमाशय पूर्ण रहनेसे परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काढ़ा पिलाकर के करना। विरेचनके लिये त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल समभाग मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करना। बदनमें

सरसोंका तेल मर्द्दन और गरम पानीसे स्नान उपकारी है। पुराने गुड़के साथ अदरखका रस पीना, २ तोले गौके घीके साथ ≠) आने भर गोलमरिच चूर्ण रोज सवेरे सेवन ; हरिद्राखण्ड, बृहत् हरिद्रा खण्ड और आर्द्रखण्ड सेवन और दूर्व्वा, हरिद्रा एकत्र पीस कर लेप अथवा सफेद सरसों, हल्दी चाकुन्दाका बीज और काली तिल एकत्र पीसकर सरसोंका तेल मिलाकर लेप करनेसे शीतपित्त आदि रोगमें विशेष उपकार होता है। दस्त साफ रखना इसमे बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—इन सब रोगोंमें तिक्तरसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी, और नीमका पत्र भोजन उपकारी है। वातरक्त पीडामें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, इस रोगमें भी वही सब द्रव्य पानाहार करना। गरम पानीसे स्नान और गरम कपडेसे शरीरको ढांके रखना विशेष उपकारी है।

अम्लपित्त।

निदान और लक्षण।—क्षीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध द्रव्य भोजन और दूषित अन्न, अम्लरस, अम्लपाक तथा अन्यान्य पित्त प्रकोप कारक पानाहारसे पूर्व्व सञ्चित पित्त विदग्ध हो अम्लपित्त रोग पैदा होता है। इस रोगमें भुक्त द्रव्यका अपरिपाक, क्लान्तिबोध, वमन वेग, तिक्त या अम्लरसयुक्त डकार, देहका भारीपन, छाती और गलेमें जलन और अरुचि यही सब लक्षण

सर्व्वतोभद्र लौह, पिप्पली घृत, द्राक्षाद्य घृत, श्रीबिल्व तैल आदि विचारकर अम्लपित्त रोगमें व्यवहार कराना। शूल रोगोक्त धात्री लौह, आमलकी खण्ड आदि औषध भी इसमें प्रयोग कर सकते है; हमारा शूल निर्व्वाण चूर्ण" अम्लपित्त रोगका विशेष उपकारी औषध है।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य।—शूलरोगोक्त पथ्यापथ्यही इसमें पालन करना उचित है। तिक्तरस भोजन इसमें विशेष उपकारी है। वातज अम्लपित्तमे चीनी और सहतके साथ धानके लावाका चूर्ण भोजन हितकर है। यव और गोधूमका मण्ड आदि लघुपथ्य इसमें देना चाहिये। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" इस रोगमें उपयुक्त पथ्य है।

निदान।—सब प्रकारका गुरुपाक द्रव्य, अधिक लवण, मिष्ट, कटु और अम्लरस तथा तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, मैथुन और मद्यपान आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

विसर्प और विस्फोट।

विसर्पका निदान और प्रकारभेद।—सर्व्वदा लवण, अम्ल, कटु और उष्णवीर्य्य द्रव्य सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित हो विसर्प रोग पैदा होता है। इस रोगमें शरीरके किसी स्थानमें स्फोटककी तरह उत्पन्न हो नानास्थानमें विसृत होता है। विसर्प-रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज। इन सबों वातपित्तज

विसर्पको अग्नि विसर्प, वातकफजको ग्रन्थि विसर्प और पित्त कफजको मर्द्दमक कहते है।

विभिन्न दोषजात लक्षण।—वातज विसर्पमें वातज्वरकी तरह मस्तक, हृदय, गात्र और उदरमें दर्द, शोथ, धक धक करना, सूचीवेधवत् या भङ्गवत् वेदना, श्रान्तिबोध और रोमाञ्च होना यही सब लक्षण लक्षित होते है। पैत्तिक विसर्प अतिशय लाल रंग और जल्दी बढ़ता है, तथा पित्तज्वरके लक्षण समूह प्रकाशित होते है। कफज विसर्प कण्डुयुक्त चिकना और कफज ज्वरके लक्षणयुक्त होता है। सन्निपातज विसर्पमें तीनो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते है।

अग्नि विसर्प।—अग्नि विसर्प नामक वातपित्तज विसर्प में ज्वर, जीमतलाना, मूर्च्छा, अतिसार, पिपासा, भ्रम, गांठोमें दर्द, अग्निमान्द्य, अन्धकार-दर्शण और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। इसके सिवाय सर्व्वाङ्ग शरीर जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त मालूम होना; शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विरहत हो, वह स्थान कोयलेकी तरह काला रंग, कभी नीला या लालभी होते देखा गया है, तथा उसके चारो तरफ आगसे जलनेकीतरह फफोले होते है। इस विसर्पका अकसर हृदयादि मर्म्म स्थानोपर हमला होनेसे वायु प्रवलहो सर्व्वाङ्गमें दर्द, संज्ञा और निद्रानाश तथा श्वास और हिक्का पैदा होती है। इसीतरह तकलीफ भोगते भोगते रोगी अवसन्न और संज्ञाहीन हो मृत्युमुखमें जाताहै।

ग्रन्थि-विसर्प।—ग्रन्थि-विसर्प नामक वातकफ विसर्पमें दीर्घ वर्त्तुलाकार, स्थूल, कठिन या र लाल रङ्गको ग्रन्थियें गो अर्थात् गांठे होती है। इसमें अत्यन्त पीड़ा, प्रबल ज्वर, श्वास, कास, अतिसार मुखशोष, हिक्का, वमन, भ्रम, ज्ञानका वैपरीत्य,

आतप सेवन और ऋतु पर्य्याय आदि कारणोंसे वातादि दोष समूह विशेष कर पित्त और रक्त कुपित हो विस्फोटक रोग उत्पन्न होता है। इसमें शरीरके किसी स्थानमें या सर्व्वाङ्गमें आगसे जलेको तरह फफोले पैदा होते हैं और ज्वर भी होता है।

दोषभेदसे लक्षण।—वातज विस्फोटक कृष्णवर्ण तथा मायहो उसके शिरोवेदना, अत्यन्त शूल, ज्वर, तृष्णा, सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है। पित्तज विस्फोट पाण्डुवर्ण, अल्प वेदना, और कण्डु युक्त होता है, यह देरसे पकता है, तथा वमन, अरुचि, और शरीरकी जड़ता आदि उपस्थित होते हैं। द्विदोषज विस्फोटमें इसी तरह दो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज विस्फोट कठिन, रक्तवर्ण, अल्प पाकविशिष्ट तथा उसका मध्यभाग नीचा और प्रान्तभाग ऊंचा; दाह, तृष्णा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर प्रलाप कम्प और तन्द्रा यही सब लक्षण इसके साथ प्रकाशित होते हैं। रक्त दूषित होनेसे घुंघुचीकी तरह लालरङ्ग और पित्तविसर्पके लक्षणयुक्त एक प्रकार रक्तज विसर्प उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें एक दोषज विसर्प साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज, रक्तज तथा बहु उपद्रवयुक्त विसर्प असाध्य जानना।

विसर्प चिकित्सा।—विसर्प रोगमें कफका आधिक्य रहनेसे वमन और पित्तके आधिक्यमें विरेचन देना चाहिये। वमन के लिये परवरका पत्ता नीम और इन्द्रयव; अथवा पीपल, मदन फल और इन्द्रयव, इसका काढ़ा पिलाना। विरेचनके लिये त्रिफलाके काढेके साथ घी ⸗) आनेभर और त्रिवृतचूर्ण चार आने भर मिलाकर पीना इससे ज्वरकोभी शान्ति होती है। वातज

विवर्णता, मूर्च्छा, अङ्गभङ्ग, और अग्निमान्द्य यही सब लक्षण उपस्थित होते है।

कर्द्दमक।—कर्द्दमक नामक पित्तश्लेष्मज विसर्प पीत, लोहित, या पाण्डुवर्ण पिडकामे व्याप्त, चिकना, काला या रुक्षवर्ण, मलिन, शोथयुक्त, गुरु, भीतर पका हुआ, अतिशय उष्णस्पर्श, क्लिन्न, विदीर्ण, कीचकी तरह कालारङ्ग और मुर्देकी तरह दुर्गन्धयुक्त होती है फिर क्रमशः इस रोगमें मांस गलकर गिर जानेसे शिरा और स्नायु सब दिखाई देता है, तथा साथही ज्वर, जडता, निद्रा, शिरोवेदना, देहका अवसाद, आक्षेप, मुखको लिप्तता, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थिवेदना, पिपासा, इन्द्रिय-समूहोंका भारीबोध, अपक्व मल निर्गम और स्रोत समूहोंकी लिप्तता, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

क्षतज विसर्प।—शस्त्र, नख, और दन्त आदिसे किसी जगह घाव होनेसे कुरथीकी तरह काली या लाल रङ्गकी फोडिया पैदा होते देखी गयी है; वह भी एक प्रकारका पित्तज विसर्प है।

उपद्रव।—ज्वर, अतिसार, वमन, क्लान्ति, अरुचि, अपरिपाक, और त्वकमांस विदीर्ण होना यही सब विसर्प रोगके उपद्रव है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें वातज, पित्तज और कफज विसर्प साध्य है। किन्तु मर्मस्थानमें होनेसे कष्टसाध्य हो जाता है। त्रिदोषज, क्षतज, और वातपित्तज अग्निविसर्प असाध्य जानना।

विस्फोटकका निदान और लक्षण।—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (अम्लपाकी) रुक्ष, क्षार या अपक्व द्रव्य भोजन; पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन;

आतप-सेवन और ऋतु पर्य्यय आदि कारणोंसे वातादि दोष समूह विशेष कर पित्त और रक्त कुपित हो विस्फोटक रोग उत्पन्न होता है। इसमें शरीरके किसी स्थानमें या सर्व्वाङ्गमें आगसे जलेकी तरह फफोले पैदा होते है और ज्वर भी होता है।

दोषभेदसे लक्षण।—वातज विस्फोटक कृष्णवर्ण तथा साथही उसमें शिरोवेदना, अत्यन्त शूल, ज्वर, तृष्णा, सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है। पित्तज विस्फोट पाण्डुवर्ण, अल्प वेदना, और कण्डु युक्त होता है, यह देरसे पकता है, तथा वमन, अरुचि, और शरीरकी जड़ता आदि उपस्थित होते हैं। द्विदोषज विस्फोटमें इसी तरह दो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज विस्फोट कठिन, रक्तवर्ण, अल्प पाकविशिष्ट तथा उसका मध्यभाग नीचा और प्रान्तभाग ऊंचा; दाह, तृष्णा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर प्रलाप कम्प और तन्द्रा यही सब लक्षण इसके साथ प्रकाशित होते हैं। रक्त दूषित होनेसे घुंघुचीकी तरह लालरङ्ग और पित्तविसर्पके लक्षणयुक्त एक प्रकार रक्तज विसर्प उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें एक दोषज विसर्प साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज, रक्तज तथा बहु उपद्रवयुक्त विसर्प असाध्य जानना।

विसर्प चिकित्सा।—विसर्प रोगमें कफका आधिक्य रहनेसे वमन और पित्तके आधिक्यमें विरेचन देना चाहिये। वमनके लिये परवरका पत्ता नीम और इन्द्रयव; अथवा पीपल, मदनफल और इन्द्रयव; इसका काढ़ा पिलाना। विरेचनके लिये त्रिफलाके काढ़ेके साथ घी ॥) आनेभर और त्रिवृतचूर्ण चार आनेभर मिलाकर पीना इससे ज्वरकीभी शान्ति होती है। वातज

विसर्पमें रास्ना, नीलोत्पल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलेठी और वरियारा यह सब समभाग घी और दूधके साथ पीसकर लेप करना। पित्तज विसर्पमें बडकोसोर, गुरिच, केलेका फूल और कमलके डण्ड़ाकी गांठ एकत्र पीसकर शतधौत घीमें मिलाकर लेप करना। कफज विसर्पमें त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खसकी जड, वराहक्रान्ता, कनैलकी जड और अनन्तमूल, इन सब द्रव्योंका लेप देना। द्विदोषज और त्रिदोषज विसर्पमें भी वही सब पृथक दोष-नाशक द्रव्य विचारकर लेप करना। सब प्रकारके विसर्पमें पद्मकाष्ठ, खसकी जड, मुलेठी और लाल चन्दन इन सबका काढा अथवा वड, पीपर, पाकर, गुल्लर और वकुल इन सबके पल्लवका काढा सेवन विशेष उपकारी है। शिरीष, मुलेठी, तगरपादुका, लाल चन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और वाला, यही दशाङ्ग प्रलेप सब प्रकारके विसर्पमें प्रयोग होता है। चिरायता, अडूसेकी छाल, कुटकी, परवरका पत्ता, त्रिफला, लाल चन्दन, नीमकी छाल इन सबका काढा पीनेसे सब प्रकारका विसर्प और तज्जनित ज्वर, दाह, शोथ, कण्डु, तृष्णा और वमन आराम होता है।

विस्फोटक चिकित्सा।—विस्फोट शान्तिके लिये चावलके धोवनमें इन्द्रयव घोसकर लेप करना चाहिये, लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, शिरीषछाल और जातिपुष्प इन सब द्रव्योंका लेप करनेसे विस्फोटका दाह शान्त होताहै। शिरीष-छाल, तगरपादुका, देवदारु और बभनेठी इन सब द्रव्योंका प्रलेप सब प्रकारके विस्फोटमें उपकारी है। शिरीषछाल, गुल्लर और जामुनकी छाल, इन सब द्रव्योंका प्रलेप और काढेका परिषेक विस्फोट रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और हमारा चतारि तैल।— विसर्प और विस्फोट रोगमें अमृतादि कषाय, नवकषाय गुग्गुलु, काला तिल, रुद्ररस, वृषाद्य घृत और पञ्चतिक्त घृत सेवन, तथा घावमें करञ्ज-तैल या हमारा "चतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये। हमारा "अमृतवल्ली-कषाय" पीनेसे दोनो रोग जल्दी आराम होते है।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त और कुष्ठरोगमें लिखित पथ्यापथ्य, विसर्प और विस्फोट रोगमें भी पालन करना चाहिये।

रोमान्ती और मसूरिका।

रोमान्तीके संज्ञा और लक्षण।—चलित भाषामें रोमान्तीको छोटीमाता, और मसूरिकाको बड़ीमाता कहते है। रोमकूपके उन्नतिकी तरह छोटी छोटी लाल फोडियाको रोमान्ती अर्थात् छोटीमाता कहते है, तथा छोटीमाता निकलनेके पहिले ज्वर और सर्व्वाङ्गमें दर्द होता है, अकसर २।३ दिन तक एकज्वर होकर ज्वर शान्त होते ही बदनमें दिखाई देती है; पहिले कपाल और डाढ़ीमें निकल कर फिर सर्व्वाङ्गमें प्रकाशित होती है। रोमान्ती ज्वरमें कोष्ठरोध या उदरामय, अरुचि, काम और कष्टसे श्वास-निर्गम यही सब लक्षण प्रकाश होते है। रोमान्ती

अच्छी तरह बाहर न निकलनेसे थोड़ा कष्टसाध्य होती है। यह रोग बाल्यावस्थामें अधिक होता है।

बड़ीमाताके निदान और लक्षण।—खीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, दूषित अन्न, सोम, शाक और कटू, अम्ल, लवण और चार द्रव्य भोजन पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन और कूट ग्रहोंकी कुदृष्टि आदि कारणोंसे मसूरिका अर्थात् बड़ीमाता उत्पन्न होती है। मसूरिकाकी पिड़िका समूहोंकी आकृति मसूरकी तरह। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले ज्वर, कण्डु, सर्व्वाङ्गमें दर्द, चित्तकी अस्थिरता, भ्रम, त्वक स्फीत और लाल रंग तथा दोनो आंखें लाल, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं। मसूरिका धातुकी अवलम्बन कर उत्पन्न होती है, इस लिये इसमें नानाप्रकारके भेद दिखाई देते हैं।

रसधातुगत या दूलारोमाता।—रसधातुगत मसूरिका जलविम्बकी तरह अर्थात् छोटे छोटे फफोलेकी तरह होती है और फूट जानेसे पानी निकलता है। यह सुखसाध्य है। चलित भाषामें इसको दुलारोमाता कहते हैं। रक्तगत मसूरिका लाल और पतले चर्म्मयुक्त होती है यह जल्दी पकजाती है और फूटने पर रक्तस्राव होता है। रक्त अधिक दूषित न होनेसे यह भी सुखसाध्य है। मांसगत मसूरिका कठिन, स्निग्ध और मोटे चर्म्म विशिष्ट, इससे बदनमें शूलवत् वेदना, तृष्णा, कण्डू, ज्वर, और चित्तकी चञ्चलता होती है। मेदोगत मसूरिका, मण्डलाकार, कोमल, किञ्चित अधिक ऊंची स्थूल और वेदनायुक्त होती है। इसमें अत्यन्त ज्वर, मनोविभ्रम, चित्तकी चञ्चलता और सन्ताप यही सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्राकृति, गात्रसम वर्ण, रूक्ष, चिवड़ेकी तरह चिपटी और

थोड़ी ऊंची ; इसमें अत्यन्त मोह, वेदना, चित्तकी अस्थिरता, मर्म्मस्थान छिन्न होनेकी तरह और सर्व्वांङ्गमें भ्रमर काटनेकी तरह तकलीफ होती है। शुक्रगत मसूरिका चिकनी, सूक्ष्म, अत्यन्त वेदनायुक्त और देखनेमें पकेकी तरह पर पकी नहीं होती, इसमें सर्व्वाङ्ग गीले कपड़ेसे आच्छादनकी तरह अनुभव, चित्तकी अस्थिरता, मूर्च्छा,दाह, और मत्तता यही सब उपद्रव प्रकाशित होते है।

दोषाधिक्यसे पिड़काकी अवस्था।—मसूरिकामें वायुके आधिक्यसे पिडिका श्याम या अरुणवर्ण, रुक्ष, तीव्र वेदनायुक्त और कठिन होती है, तथा देरसे पकती है। पित्तके आधिक्यसे स्फोटक लाल, पीत या कृष्णवर्ण और दाह तथा उग्रवेदनायुक्त होता है ; यह जल्दी पकती है तथा सन्धिस्थान और अस्थिसमूह तोड़नेकी तरह दर्द ; कास, कम्प, चित्तकी अस्थिरता, क्लान्ति, तालु, ओठ और जिह्वामें शोथ, तृष्णा, और अरुचि यही सब उपद्रव उपस्थित होते है। कफके आधिक्यसे स्फोटक श्वेतवर्ण, चिकना, अतिशय स्थूल, कण्डू और अल्प वेदना युक्त होता है; यह देरसे पकता है, इसमें कफस्राव, शरीर आदि वस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव, शिरोवेदना, गात्रकी गुरुता, वमनवेग, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य आदि उपद्रव दिखाई देते है। रक्तके आधिक्यमें मलभेद, अङ्गमर्द, दाह, तृष्णा, अरुचि, मुखमें घाव होना, आंखे लाल, तीव्र वेगसे दारुण ज्वर और पित्तज मसूरिकाके अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होते है। तीनो दोषका आधिक्य रहनेसे मसूरिका लाल रंग चिवड़ेकी तरह चिपटी और मध्यभाग नीचा, अत्यन्त वेदना और सुगन्ध स्रावयुक्त होती है। यह बहुत परिमाण उत्पन्न होती है और देरसे पकती है। चर्म्मदल नामक एक प्रकारकी मसूरिक होती है उसमें

कण्ठरोध, अरुचि, स्तम्भितभाव, प्रलाप; और चित्तकी अस्थिरता यही सब लक्षण उपस्थित होते है।

साध्यासाध्य।—उक्त मसूरिकामें त्रिदोषज, चर्मदल, और मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रगत मसूरिका असाध्य। तथा जो मसूरिका रोगमें कई मूंगेकी तरह लाल रंग, कई जामूनकी तरह काली, कई तमाल फलकी तरह होती है यह सब असाध्य जानना। जिस मसूरिका रोगमें कास, हिक्का, चित्तकी विभ्रमता और अस्थिरता, अति कष्टप्रद तीव्रज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, गात्रघूर्णन, अतिनिद्रा, मुख, नासिका, और आंखसे रक्तस्राव, और कण्ठमें घुर घुर शब्द होना और अति वेदना सहित स्वासनिर्गम यही सब उपद्रव प्रकाशित होते है, उसको भी असाध्य ही समझना। मसूरिका-रोगी अतिशय तृष्णार्त्त और अपतानकादि वातव्याधिग्रस्त होनेसे, अथवा मुखको छोड़ केवल नासिकासेही दीर्घश्वास लेनेसे उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

आरोग्यान्तमें शोथ।—मसूरिका आराम होनेपर किसी किसीके केहुनो, हाथका कब्जा, कन्धेमें शोथ होता है, वह अतिशय कष्टदायक और दुश्चिकित्स्य है।

चिकित्सा।—इस दो रोगमें अधिक रुक्षक्रिया या अधिक शीतल क्रिया करना उचित नही है। अधिक रुक्षक्रियासे माता अच्छी तरह नही निकलती, इससे पोड़ा कष्टदायक होती है; और अधिक शीतलक्रियासे रोग कष्टदायक होता है, तथा अधिक शीतलक्रियासे सर्दी खांसी होकर तकलीफ बढ़ती है। माता अच्छी तरह नही निकलनेसे कच्ची हलदीका रस, तेलाकूचाके पत्तेका रस, या शतमूलीका रस मक्खनके साथ मिलाकर मालिश करना। इस अवस्थामें तुलसीके पत्तेके रसके साथ अज-

थाईन पोसकर लगाते देखा है। फोडाके प्रथमावस्थामें मेथी भिंगोया पानी कूठ और बनतुलसीका काढा किम्वा कूठ, बनतुलसी, पानका जड और मानके जडका काढा पिलानेकी रीति है। छोटोमातावालेको वच, हून, बांसको नौल, जौ, अडूसेकी जड, वनौरकी बीज, ब्रह्मोशाक, तुलसीका पत्ता, अपामार्ग और लाह यह सब द्रव्यका धूप देना चाहिये। सर्दी खांसी हो तो मुलेठोके काढेके साथ मकरध्वज या लक्ष्मीविलास रस सेवन करना।

प्रथम अवस्थाकी चिकित्सा।—मसूरिकाके प्रथमावस्थामें कांटा कुम्हाड नामक लताके काढेमें ৶) आनेभर हींग मिलाकर पिलाना। सुपारीकी जड, करञ्जकी जड, गोचुरकी जड अथवा अनन्तमूल पानोमें पोस कर सेवन कराना। वातज मसूरिकामें दशमूल, अडूसा, दारुहरिद्रा, खसको जड, अमिलतास, च, धनिया और मोथा; यह सब द्रव्यका काढा पिलाना तथा मजीठ, बड, पाकर, सिरोष और गुलरकी छाल यह सब द्रव्यका लेप करना। मसूरिका पकने पर गुरिच, मुलेठो, रास्ना, वृहत् पञ्चमूल, रक्तचन्दन, गांभारी फल और वरियारकी जड इन सबका काढा अथवा गुरिच, मुलेठी, द्राक्षा, इक्षुमूल और अनार यह सब द्रव्यका काढा पिलाना। पित्तज मसूरिकामें नीमकी छाल, खेतपापडा, अकवन, परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, खसकी जड, कुटकी, आंवला, अडूसेकी छाल और जवासा इसका काढा ठण्ढाकर थोडी चिनी मिलाकर पीना। सिरोष, सर, पीपल और बड इन सबका छाल ठण्ढे पानीमें पीसकर घी मिला लप करनेसे पित्तज मसूरिका का व्रण और दाह दूर होता है। कफज मसूरिकामें अडूसा, मोथा, चिरायता, त्रिफला, इन्द्रयव, जवासा, परवरका पत्ता और नीमकी छाल इन सबका काढा

पिलाना और शिरीषको छाल, गुलरको छाल, खेर और नीमका पत्ता पीसकर लेप करना। गुड़के साथ बेरका चूर्ण खानेसे सब प्रकारको मसूरिका पकजाती है। परवरका पत्ता, गुरिच, मोथा अडूसेकी छाल, जवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और खेतपापड़ा इन सबका काढ़ा पीनेसे अपक्क माता भी पक जाती है, और पकी माता शीघ्र सूखजाती है, तथा इससे ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। दाह शान्तिके लिये कलमी शाकका रस बदनमें लगानेसे विशेष उपकार होता है।

पीप निवारणोपाय।—मसूरिकासे पीप निकलेतो बड़ गुलर, पीपर, पाकर और बकुल (मौलसरी) के छालका चूर्ण चतस्थानमें लगाना। अडूजो कण्डेको राख अथवा गोवरका मिहीन चूर्ण लगानेसे भी घाव जल्दी सूखता हैं। इस अवस्थामें चत नाशक अन्यान्य औषध भी प्रयोग करना चाहिये। मातामें क्रिमि उत्पन्न होनेसे, धूना, देवदारु, चन्दन, अगरू और गुग्गुलु आदिका धूप देना। मसूरिका एक दफे निकल कर एकाएकी लीन हो जानेसे निम्बादि और काञ्चनादि क्वाथ पिलाना। मसूरिका रोगोको खदिरकाठके काढ़ेसे शौचादि कराना उपकारी है।

चक्षुजात मसूरिकाकी चिकित्सा।—आंखमें मसूरिका होनेसे गोखुर, वाकुला और मुलेठोका काढ़ा दोनो आंखमें देना। मुलेठी, त्रिफला, मूर्व्वाको जड़, दारुहल्दी, दालचिना, खसको जड़, लोध, मजीठ, यह सब द्रव्यके काढ़ेसे दोनो आंखें धोना।

आगन्तुक रोग चिकित्सा।—इस रोगमें अरुचि रहनेसे खट्टे अनारका रस और खैरकाठका काढा ठंढा पीना विशेष उपकारीहै। मुखरोग या कण्ठरोग रहनेसे जावित्री,मंजीठ, दारुहल्दी,

सुपारी, शमीकी छाल, आंवला और मुलेठी, इन सब का काढा सहत मिलाकर कुल्ला कराना। टहतके साथ पीपल और हरीतकी चूर्ण चाटनेमें मुख और कण्ठ शुद्ध होता है। जयणादि चूर्ण, सर्व्वतोभद्र, इन्दुकलावटी, एलाद्यरिष्ट, छोटी माता और बडी माता रोगमें विचारकर प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

पथ्यापथ्यमें हमारा सञ्जीवन खाद्य।—रोगके प्रथमावस्थामें भूखके अनुसार दूधसागु, दूधबार्लि या हमारा "सञ्जीवन खाद्य" आदि लघु पथ्य खानेको देना। फिर क्षुधावृद्धि और ज्वरादिके अनुसार भात आदि खानेको देना। परवर, बैगन, कच्चा केला, गुल्लर आदिकी तरकारी और बेदाना, किसमिस, नारङ्गी, अनारस आदि द्रव्य खाना चाहिये। बदन पर मोटा कपडा रखना तथा रहनेका घर प्रशस्त और बिछौना साफ रखना चाहिये।

निषिद्धद्रव्य।—मत्स्य, मांस, उष्णवीर्य्य द्रव्य, गुरुपाक द्रव्य भोजन और तेल मर्द्दन, वायु सेवन इस रोगमें मना है। मसूरिका अतिशय संक्रामक व्याधि है। इसमें रोगीसे हरवख्त दूर रहना चाहिये।

संक्रामकका प्रतिरोध।—इस रोगके आक्रमणसे बचनेका उपाय "छपाना"। स्त्री बांये तरफ पुरुष दहिने तरफ हरीतकी की बीज धारण करनेसे मसूरिकाके आक्रमणका भय कम रहता है।

क्षुद्ररोग।

—:*:—

अजादि।—बालकोंके शरीरमें मूंगको तरह गोल, चिकना, गात्र समवर्ण गठीला और वेदनाशून्य एक प्रकारको फोड़िया उत्पन्न होती है, उसको अजगल्लिका कहते हैं। जौकी तरह मध्यभाग स्थूल, कठिन गठीली जो सब पिड़िका मांसल स्थानमें उत्पन्न होती है उसको यवप्रख्या कहते हैं। अवक्र, उन्नत, मण्डलाकार अल्प पूययुक्त और घनसन्निविष्ट पिड़िका समूह उत्पन्न होनेसे उसको अन्धालजी कहते हैं। यह तीन प्रकार व्याधि वातश्लेष्मज है। पक्के गुल्लरको तरह रंग, दाहयुक्त, मण्डलाकार और विदीर्ण पिड़िकाका नाम विहता; यह पित्तज व्याधि है। कछुवेकी तरह आकृतिविशिष्ट अति कठिन और पांच छ एकसाथ मिली हुई फोड़ियाका नाम कच्छपिका; यह भी वातश्लेष्मज है। ग्रीवा, स्कन्ध, हाथ, पैर, सन्धिस्थान और गलेमें वल्मीककी तरह शिखरयुक्त पिड़काको वल्मीक कहते हैं; यह त्रिदोषज व्याधि है। प्रथमावस्थामें इसकी चिकित्सा न करनेसे क्रमशः वर्द्धित, अग्रभाग उन्नत, बहुमुख, स्राव और वेदनायुक्त होता है। कमलके छत्तेमें जैसे कमलको बीज समूह मण्डलाकार रहतो है,वैसही मण्डलाकार पिड़िका उत्पन्न होनेसे उसको इन्द्रविद्धा कहते हैं, यह वातपैत्तिक रोग है। मण्डलाकार, उन्नत, लाल, वेदनायुक्त गो॰ ड़का व्याप्त व्याधिको गर्द्दभिका कहते हैं, यह वातपित्तज व्याधि है। हनु अर्थात चहुआके सन्धिस्थलमें अल्प वेदनायुक्त और चिकना जो ग्रोथ उत्पन्न होता है उसको पाषाणगर्द्दभ कहते हैं, यह वातश्लेष्मज

रोग है। कानमें उग्र वेदनायुक्त जो पिडिका उत्पन्न हो भीतरका भाग पकजाता है, उसको पनसिका कहते है। विसर्पकी तरह क्रमश: विस्तृतिशील, दाह और ज्वरयुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है उसको जालगर्दभ या अग्निवात कहते है, इसके उपरका चमडा पतला और यह अकसर पकता नही कदाचित् कोई पकताभी है; यह रोग पित्तजनित है। उग्र वेदना और ज्वरयुक्त जो सब पिडिका मस्तकमें, उत्पन्न होती है उसका नाम इरिवेल्लिका, यह त्रिदोषज है। बाहु, पार्श्व, स्कन्ध, बगलमें क्षष्णवर्ण वेदनायुक्त जो स्फोटक पैदा होता है उसको गन्धमाला कहते है; यह फोडा पित्तज है। बगलमें जलते हुए अङ्गारेकी तरह एक प्रकार स्फोटक पैदा हो चर्म विदीर्ण होकर भीतर अत्यन्त दाह और ज्वर होता है, इस रोगका नाम अग्निरोहिणी,यह त्रिदोषज और असाध्य है। ८दिनसे १५ दिन तक इस रोगसे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। वायु और पित्त कर्त्तृक नखका मांस दूषित हो पकनेसे अत्यन्त दाह होताहै, इसका नाम चिप्प; चलित भाषामें "अङ्गुलि खोया" कहते है। नखका मांस अल्प दूषित होनेसे पहिले नखका दोनो कोना, फिर सब नख नष्ट या खराब होनेसे उसको कुनख कहते है। पैरके उपर थोडा शोथ, गात्र समवर्ण, अन्तरमें पका जो रोग पैदा होता है उसका नाम अनुशयी। बगल और पट्ठोंमें भूमि कुष्माण्डकी तरह जो शोथ होता है उसका नाम विदारिका; यह त्रिदोषजहै। जिस रोगमें दूषित वायु और कफ, मांस, शिरा, स्नायु और मेदको दूषित करनेसे पहिले कई एकगांठ पैदा होता है; फिर वह गांठ विदीर्ण होकर उसमेंसे घी, मद्दत और चर्ब्बीको तरह स्राव होनेसे धातुक्षय हो मांस सूख जाता है; सुतरां यह सब ग्रन्थिस्थान अतिशय कठिन होता है, इसको शर्कराबुर्द कहते

है, इस अर्ब्बुदको शिरामें दुर्गन्ध, सडा या नानाप्रार स्राव दिखाई देता है, कभो कभो रक्तस्रावभो होता है।

पाददारी।—सर्ब्बदा नङ्गे पैर पैदल चलनेवालोंका पैर रुखा हो फट जाता है; इसको पाददारी कहते है। कङ्कर या कांटेसे पैरके तलवेमें चोट या घाव लगनेसे पैरके तलवेमें जो बेरके बोजको तरह गांठ पैदा होतो है, उसको बदर या बैरको बोज कहते है। रातदिन पैर पानीमें भिंगा रहनेसे पैरके अङ्गु लियोंकी सन्धि सड कर उसमें खुजलाहट और दर्द पैदा होनेसे उसको अलस कहते है। कुपित वायु और पित्त केशके जडमें जाकर यदि सिरका बाल गिरा दे और खराब कफ और रक्तसे लोमकूप बन्द हो जाय और फिर उस जगह केश नही निकलेतो, उसको इन्द्रलुप्त या खालित्य; और चलित भाषामें "टाक" कहते है। केशभूमि कठिन, कण्डुयुक्त, और फट जानेसे उसको दारुणक रोग तथा चलित भाषामें "रुसो" कहते है यह बात कफज व्याधि है। मस्तकमें बहु क्लेदयुक्त व्रण समूह उत्पन्न होनेसे उसको अरुंषिका कहते है। कफ, रक्त और क्रिमिसे यह रोग उत्पन्न होता है। क्रोध, शोक और श्रमादि कारणसे देहको उष्मा और पित्त शिरोगत होनेसे केश बेवक्त पकजाता है; उसको पलित रोग कहते है। युवकोंके मुखपर सेमलके कांटेको तरह एक प्रकार फोडिया पैदा होतो है उसको युवानपिडका या "वयोव्रण" कहते है। कफ वायु और रक्तके दोषसे यह पैदा होतो है, अतिरिक्त शुक्रक्षयही इस रोगका प्रधान कारण है। चमडके उपर पद्मके कांटेको तरह कण्टकाकीर्ण, पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त और गोलाकार जो मण्डल उत्पन्न होता है उसको पद्मिनीकण्टक कहते है; यह बात कफज व्याधि है। चमडेके उपर उरदको तरह थोडा

ऊंचा, काला, वेदनाशून्य और मण्डलाकार एकप्रकार फोड़िया पैदा होती है, उसको माषक कहते हैं। वायुके प्रकोपसे यह पीड़ा पैदा होती है। चमड़ेके ऊपर तिलको तरह काले रङ्गका जो दाग होता है उसको तिल कहते हैं, यह त्रिदोषज व्याधि है। वदनमें श्याम या कृष्णवर्ण, वेदनाशून्य मण्डलाकार जो चिह्न होता है उसको मच्छ या सेंहुआ कहते हैं; यह रोग पहिले बूंद बूंद उत्पन्न हो फिर बढ़ता है। क्रोध और परिश्रम आदि कारणोंसे वायुपित्त कुपित हो मुख श्याम वर्ण, अनुन्नत और वेदनाशून्य एक प्रकार मण्डलाकार चिह्न पैदा होता है उसको मुखव्यङ्ग या बोदकर कहते हैं। यही बोदकर अधिक काला होनेसे उसको नीलिका कहते हैं। नीलिका शरीरमेंभी होती है।

परिवर्त्तिका।—लिङ्ग अतिशय मर्दित, पीडित या किसी तरह चोट लगनेसे लिङ्ग चर्म्म दूषित और परिवर्त्तित होकर लिङ्गमणिके नीचेका भाग गाठकी तरह लम्बा हो जाता है, उसको परिवर्तिका कहते हैं। इसमें वायुका आधिक्य रहनेसे दर्द, कफके आधिक्यमें कड़ा और कण्डूयुक्त होता है। सूक्ष्ममुख योनि आदिमें गमन या और कोई कारणसे यदि लिङ्गचर्म्म उलट जाय तथा मुद्रित नहो तो उसको अवपाटिका कहते हैं। कुपित वायु लिङ्ग चर्म्ममें रहनेसे लिङ्गमणि विवृत नही होता तथा अत्यन्त दर्द, मूत्रस्रोत बन्द, अथवा पतली धारसे मूत्र निकलता है। इसको निरुद्धप्रकाश कहते हैं। मलवेग धारण करनेसे अपान वायु कुपित हो मलमार्गको बन्द या सूक्ष्म द्वार होनेसे अतिकष्टसे मल निकलता है उसको सन्निरुद्ध गुद कहते हैं। बच्चोंके गुदाका मलमूत्र घर्म्मादि न धोनेसे गुदामें खजुली पैदा होती है। फिर वह खुजलानेसे वहां घाव हो स्राव होने लगता है, उसको अहिपूतनक रोग कहते

है। स्नान या बदन साफ न रहनेसे अण्डकोषका मैल पसीनेसे क्लिन्न हो उसी स्थानमें खुजली होती है, खुजलानेसे घाव हो स्राव होनेसे उसको वृषण कच्छू कहते है। अतिशय कुंथन या अधिक मलभेदसे रुक्ष या दुर्ब्बल रोगीको गुदनाली निकल आनेसे उसको गुदभ्रंश रोग कहते है। जिस रोगसे सर्व्वाङ्गमें घाव हो, घावका प्रान्तभाग लाल तथा दाह, खुजली, तीव्र वेदना और ज्वर हो उसको वराहदंष्ट्रक रोग कहते है।

क्षुद्ररोग चिकित्सा।—अजगल्लिका रोगमें नये कटैलीके कांटेसे फोडिया छेद देनेसे वह पककर जल्दी आराम हो जाती है। अडूसेको जड और बालम खीरेको जड पीसकर लेप करनेसे अजगल्लिका आराम होता है। अनुशयी रोगमें कफज विद्रधिको तरह और विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्द्दभी, जालगर्द्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धमाला रोगमें पित्त विसर्पको तरह चिकित्सा करना। नीलका पेड और परवरका जड पीसकर घी मिला लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगकी दर्द आराम होती है। बार बार जोंक आदिसे खून निकालना और सैजनके जडकी छाल तथा देवदारुका प्रलेप करनेसे विदारिका, पनसिका और कच्छपिका रोग दूर होता है। अन्धालजी, यवप्रख्या और पाषाणगर्द्दभ रोग पहिले सेंककर फिर मैनसिल, देवदारु और कूठ यह तीन द्रव्य पीसकर लेप करना। पकनेपर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना। पाषाण गर्द्दभ रोगमें वातश्लेष्मिक शोधनाशक प्रलेप उपकारी है। वल्मीक रोगमें शस्त्रसे उखाडकर उस स्थानको जलाना; फिर मैनसिल, हरताल, भेलावा, छोटी इलायची, अगुरु, रक्तचन्दन और जावित्री, इन सबके कल्कके साथ नीमका तेल पकाकर घावमें मर्द्दन करना। पाददारी रोगमें मोम, चर्व्वी, घी और यवक्षारका बार बार करना। अथवा राल और सेन्धा नमक चूर्ण, सहत, घी और

तेलके साथ मिलाकर पैरमें घिसना। अलस रोगमें पैर थोडी देर कांजीमें भिंगो रखना फिर परवरका पत्ता, नोमकी छाल, हिराकस और त्रिफला पीसकर बार बार लेप करना। शूरणके डण्ठेका दूध अलस रोगमें विशेष उपकारो है। मेहदोका पत्ता और हलदी एकत्र पोसकर लेप करनेसेभी अलस रोग जल्दो आराम होता है। कैरको गुठलो नस्तरसे बाहर निकालकर गरम तेल या आगसे वह स्थान जला देनेसे आराम होता है। चिप्प रोगमें गरम पानीका संक देकर काटना और चतस्थानमें रालका चूर्ण या व्रणनाशक तेल प्रयोग करना। एक लोहेके बरतनमें हलदो और बडी हर्रे घिसकर बार बार लेप करनेसे चिप्प रोग आराम होता है। गम्भारोका कोमल पत्ता लपेटकर बांध देनेसे भो चिप्परोग जल्दो आराम होता है। कुनख रोगमें नखमें सोहागेका चूर्ण भरना; अथवा सोहागा और हापरमालो एकत्र पोसकर लेप करना। पद्मकांटा रोगमें पद्मका डण्ठा जलाकर उसको राखका लेप अथवा नीमको छाल और अमिलतासका पत्ता पोसकर बार बार मर्दन करना। नोमको जड, परवरको जड पोसकर घो मिलाकर लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगका दर्द आराम होती है। अहिपूतन रोगमें त्रिफला और खैरके काढ़ेसे घाव बार बार धोना और रसाञ्जन, मुलेठो एकत्र पोसकर लेप करना। गुदभ्रंशरोगमें निकलो हुई नाड़ीमें गोकी चर्व्वी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर नाडो भोतरको ढकेल देना। गुददारमें एक टुकडा चमडा छिद्रकर बांधनेसे विशेष उपकार होता है। चाङ्गेरोघृत सेवन, मूषिकाद्य तैल गुदामालोमें मर्दन करनेसे गुदभ्रंश रोग आराम होता है। परिवर्त्तिका रोगमें परिवर्त्तित लिङ्गचर्म्ममें घो लगाकर उबाले हुए उरदका स्वेद करना, मांस कोमल होनेसे लिङ्गचर्म्म बैठाकर थोडा गरम मांसका लेप

करना। अवपाटिका रोगमें परिवर्त्तिकाकी तरह चिकित्सा करना। निरुद्धप्रकाश रोगमें सोना, लोहा आदिका छिद्रयुक्त नल घृतादिसे अभ्यक्त कर मूत्रमार्गमें प्रवेश करनेसे मूत्र निकलता है। मूत्रद्वार बढानेके लिये एक दिन अन्तरपर क्रमशः वही नल स्थूनतर प्रवेश करना चाहिये। अङ्गरेजोमें इस प्रकार नल प्रवेश करनेको "कोथिटार" पास करना कहते हैं। सन्निरुद्ध गुद रोगमें भी यह प्रवेश करना चाहिये। चर्म्मकील, मापक और तिल शस्त्रसे उखाड़ कर चार या आगसे जलाना चाहिये; रेड़के डण्ठेसे शङ्ख-चूर्ण घिसकर अथवा सांपको केंचुलीको राख घिसनेसे मापक रोग आराम होता है; युवानपिडिकामें लोध, धनिया, बच, गोरो-चन, मरिचचूर्ण अथवा सफेद, सरसो, बच, लोध, सेंधानमक एकत्र पीसकर मुखमें लेप करना। सेमर वृक्षका चोखाकांटा, मसूरको दाल दूधमें पीसकर लेप करनेसे युवानपिड़िका आराम होतो है। सेंहुआमें लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध, प्रियङ्गु, बडका नरम पत्ता और कमी, मसूरकी दाल एकत्र पीसकर लेप करना। हरिद्राद्य तैल, कनकतेल, कुङ्कुमाद्य तैल आदिसे भी युवानपिडिका, व्यङ्ग और नोलिका आदि रोग आराम होता है। अरुंषिका रोगमें सिर मुडाकर नीमके काढेसे व्रणसमूह धोना फिर घोडेकी लीदका रस और सेंधानमक एकत्र मिलाकर लेप करना; अथवा पुरानी सरसोंकी खली और मूरगीका वोट गोमूत्रमें पीसकर लेप करना। द्विहरिद्राद्य तैल इस रोगमें विशेष उप-कारी है। सिरकी रूसी कोदो धानकी राख पानीमें घोल कर वही चार पानीसे सिर धोना और केसर, मुलेठो, तिल और आंवला यह सब द्रव्यका प्रलेप करना। त्रिफलाद्य तेल और वह्नि तेल इस रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रलुप्त या टाक रोगमें

सूई गड़ाना या गुल्लर आदि कर्कश पत्तेसे घिसकर घाव कर फिर लालघुंघची पीसकर लेप करना। बकरीका दूध, रसाञ्जन और पुठदग्ध हाथीदांतभस्म एकत्र मिलाकर लेप करनेसे टाकमेंभी केश उत्पन्न होता है। स्नुह्याद्य तैल, मालत्याद्य तैल और यष्टि-मध्वाद्य तैल टाक रोगमें प्रयोग करना। पालित्य रोग विनाशके लिये अर्थात् सफेद केश काला करनेके लिये त्रफला, नील वृक्षका पत्ता, लोहा और भीमराज समभाग छाग मूत्रकी भावना देकर केशमें लगाना। महानीलतैल इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। हमारा केशरञ्जन तैल यथाविधि व्यवहार करनेसे दारुणक, इन्द्रलुप्त और पालित्य रोग आराम होता है। कच्छ, अग्निरोहिणी और इरि-वेल्लिका रोगमें पैत्तिक विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। पनसिका रोगमें पहिले स्वेद करना फिर मैनशिल,कूठ, हल्दी और देवदारु इन सब द्रव्योंका लेप करना। पकनेपर नस्तरसे पीप आदि निकाल कर व्रणकी तरह चिकित्सा करना। शर्करार्व्वुदकी चिकित्सा अर्व्वुद रोगकी तरह करना। वृषणकच्छू रोगमें राल,कूठ, सेंधानमक और सफेद सरसों यह सब द्रव्य पीसकर मर्द्दन करना तथा पामा और अहिपूतन रोगकी तरह चिकित्सा करना। हमारा "स्रतारि तैल" और मरिचादि तैल लगानेसे भी रोग आराम होता है। अहिपूतन रोगमें हीराकस, गोरोचन, तुतिया, हरिताल और रसाञ्जन यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करना। शूकरदंष्ट्रक रोगमें हल्दी और भंगरैयाका जड़ ठण्ढे पानीमें पीसकर गायके घीके साथ सेवन कराना। विसर्प रोगकी तरह अन्यान्य चिकित्सा भी करना। न्यच्छ अर्थात् सेंहुआ रोगमें सोहागेका लावा और सफेद चन्दन अथवा सोहागेका लावा और सहत मिलाकर मर्दन करना। सिध्म रोगोक्त अन्यान्य प्रलेप भी इसमें प्रयोग कर सकते

है। सप्तच्छदादि तैल, कुङ्कुमादि घृत, सहचर घृत और हमारा "हिमांशु द्रव" सेहुंआकी अकसीर दवा है।

क्षुद्र रोगाधिकारोक्त पीड़ा समूहोंकी चिकित्सा संक्षेपमें लिखी गयी ; यह सब चिकित्साके सिवाय रोगका दोष और अवस्था-विशेषादि विचारकर बुद्धिमान चिकित्सक अन्यान्य औषधभी इसमें प्रयोग करें।

पथ्यापथ्य।—रोगविशेषका दोष दुष्य विचार कर वही वही दोषके उपशमकारक पथ्य सेवन और उसी दोषवर्द्धक पथ्यापथ्य समूहोंका त्याग करना चाहिये।

मुखरोग।

मुखरोग संज्ञा और निदान।—ओष्ठ, दन्तवेष्ठ, (मसूढ़ा) दन्त, जिह्वा, तालु, कण्ठ प्रभृति मुखके भीतरी अवयवोंमें जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको मुखरोग कहते है। मत्स्य, क्षीर, दही आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन करनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो मुखरोग उत्पन्न होता है। अधिकांश मुखरोगमें कफका ही प्राधान्य रहता है।

ओष्ठगत मुखरोगका प्रकारभेद और लक्षण।—ओष्ठगत मुखरोगमें—वातज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कर्कश, श्याम-वर्ण, रुच, जड़वत्, सूई गड़ाने की तरह दर्द और कठोर होना

हैं। पित्तज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय पोतवर्ण; वेदना, दाह और पाकयुक्त फोड़ियोंसे व्याप्त होता है। कफज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय शीतल, श्वेताभ, गुरु, पिच्छिल, कण्डुयुक्त, वेदनाशून्य और त्वक-सम वर्ण पिडकायुक्त होता है। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कभी पीला, कभी सफेद और कभी नाना प्रकारको पिड़कायुक्त होता है। रक्तकोपज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय पके खजूर फलके रंगको तरह पिड़िका व्याप्त और रक्तस्रावयुक्त होता है। मांस दोषज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय गुरु, स्थूल और मांसपिण्डकी तरह ऊंचा तथा ओष्ठप्रान्तद्वयमें क्रिमि उत्पन्न हो क्रमशः बढ़ता है। मेदो-जनित ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय भारी, कण्डुयुक्त और घीके ऊपरीभाग की तरह सफेद रंग होता है तथा सर्व्वदा निर्म्मल स्राव होता रहता है। किसी तरहके आघातसे यदि ओष्ठरोग उत्पन्न हो तो पहिले उसमें फट जाने की तरह या कुठाराघात की तरह दर्द होती है, फिर दोष कुपित हो अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होते हैं।

दन्तगत मुखरोगके लक्षण और प्रकार भेद।—

दन्तवेष्ट अर्थात् मसूढ़ेमें जो सब रोग उत्पन्न होते हैं, उसमें शीताद नामक रोगमें अकस्मात् मसूढ़ेसे रक्तस्राव होकर दन्तमांस क्रमशः सड़कर दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, श्यामवर्ण और कोमल हो मसूढ़ा गिर पड़ता है। कफ और रक्तदूषित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। दो या तीन दांतके जड़में शोथ होने से उसको दन्त-पुप्पुटक रोग कहते हैं; यह भी कफज व्याधि है। जिस रोगमें दांत हिलता है और दन्तमूलसे रक्त पीप निकलता है, उसको दन्तवेष्ट रोग कहते हैं। दांतकी खराबीसे यह रोग उत्पन्न होता है। दांतके जड़में दर्द और शोथ को रक्तज व्याधि कहते हैं। जिस रोगमें दांत हिले तथा तालु, दांत और ओष्ठ क्लेदयुक्त हो,

उसको महाशौषिर कहते है ; यह त्रिदोषज रोग है। दन्तमांस गलकर उसमे से खुन निकले तो उसको परिदर कहते है, यह रक्त पित्त और कफको खराबीमे पैदा होता है। मसूडेमें दाहयुक्त फोडिया होनेसे तथा तज्जन्य दांत गिर पड़नेसे उसको अपकुश कहते है, यह रक्तपित्तज पोड़ा है। मसूढा किसी तरह घिस जानेसे यदि प्रवल शोथ हो या दांत हिले तो उसको वैदर्भ कहते है ; यह अभिघातज पीड़ा है। वायुके प्रकोपसे प्रबल यातना सहित जो एक एक अधिक दांत हनुकुहरमें निकता है, उसको खलो वर्द्धन कहते है, निकल आनेपर फिर इसमें किसो तरहका दर्द नही रहता है। यह दांत अधिक उमरमें उठता है, इससे इसको अक्लि दांत कहते है। कुपित वायु दांतका आश्रय कर क्रमश: विषम और विकटाकार दांत निकलनेसे उसको कराल रोग कहते है ; यह असाध्य व्याधि है। हनुकुहरस्थ अखोर दन्त मूलमें अति पोडादायक प्रवल शोथ हो लार निकलनेसे उसको अधिमांस कहते है, यह कफज पोडा है। यह सब पीडाके सिवाय मसुडेमें नाना प्रकार नाडोव्रण नामर आदि उत्पन्न होते है।

दन्तगत रोग समूहोमें दालननामक दन्तरोगमें दांत विदोर्ण को तरह तकलोफ होती है, यह वातरोग है। क्रिमिदन्तक रोगमें दांतमें काला छिद्र होता है, दन्तमूलमें अतिशय दर्द लिये शोथ तथा उसमें से लारस्राव और अकस्मात् दर्दका वढना यही सब लक्षण लक्षित होते है, यह भी वातपित्तज व्याधि है। भञ्जनक रोगमें मुख टेढा और दांत टूट जाता है ; यह वातश्लेष्मज व्याधि है। दन्तहर्ष रोगमें दन्तसमूह शोत, उष्ण, वायु और अम्लस्पर्श सहन नह कर सकता अर्थात् दांत सुरसुराता है ; यह वात पित्तज पोडा है। मसूढा दूषित हो मुखके भोतर और बाहर दाह

और वेदनायुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है; उसको दन्तविद्रधि कहते है। इस रोगमें मलोत्पत्ति और स्राव होता है। विदीर्ण होनेसे इसमेंसे पीपरक्त निकलता है। वायु और पित्तसे दन्तगत मलशोषित हो कङ्कर को तरह खरस्पर्श होनेसे उसको दन्तशर्करा कहते है, यही दन्तशर्करा फट जानेसे उसके साथ दांतका भी थोडा अंश फट जानेसे उसको कपालिका कहते है। इसी पीडामें क्रमश: सब दांत गिर पडते है। दुष्टरक्त और पित्तसे कोई दांत जल जानेकी तरह काला या श्याम वर्ण होनेसे उसको श्यामदन्तक कहते है।

जिह्वागत मुखरोगके लक्षण और निदान।—

जिह्वागत रोग समूहोंमें वायुजनित जिह्वा स्फुटित, रसास्वादनमें असमर्थ और कांटेदार होती है। पैत्तिक रोगमें जिह्वा लाल रंग, दाहजनक और दीर्घाकार कण्टक समूहोंसे व्याप्त होती है। श्लेष्मज जिह्वारोगमें जिह्वा गुरु और सेमरके कांटे की तरह मांसाङ्कुर विशिष्ट होती है। कुपित कफ और रक्तसे जिह्वाके नीचे भयानक शोथ होनेसे उसको अलास कहते है। यह रोग बढ़ जानेसे जिह्वा-मूल पककर स्तम्भित होता है। ऐसेही दूषित कफ रक्तसे जो शोथ जिह्वाके नीचे उत्पन्न हो जिह्वाको उन्नत, तथा शोथ, दाह, कण्डु और लालास्राव होता है। उसको उपजिह्वा कहते हैं।

तालुगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

तालुगत रोग समूहोंमें दुष्टकफ और रक्तसे तालुमूलमें जो शोथ उत्पन्न होता है वह क्रमश: बढकर वायुपूर्ण चर्मपुटके आकृतिकी तरह होनेसे उसको गलशुण्ठी कहते है। इस रोगके साथ तृष्णा और कास उपद्रव भी रहता है। कफ और रक्त कुपित हो तालु-मूलमें वनकपासके आकृतिकी तरह तथा दाह और सूचीवेधवत्

वेदनायुक्त जो शोथ पैदा होता है उसको तुण्डोकेरो कहते है; यह भी पकजाता है। रक्तदुष्टिसे लालरंग अवतिस्थूल तथा ज्वर और तोव्र वेदना युक्त जो शोथ तालुमें उत्पन्न होता है; उसको अध्रुव कहते है। कफप्रकोपसे तालुमें थोड़ा दर्द लिये और कछुवेकी तरह शोथ क्रमशः उत्पन्न हो देरसे बढ़ता है; उसको कच्छपरोग कहते है। रक्तप्रकोपसे तालुमें मांसाङ्कुर उत्पन्न होनेसे; उसको रक्तार्व्वुद कहते है। कफदुष्टिसे तालुमें मांसवृद्धि होता उसको मांसघात कहते है। इसमें दर्द किसो तरहको नहो होती। दुष्ट कफ और मेदसे तालुमें बेर की तरह और वेदनाशून्यशोथको तालुपुप्पुट कहते है। जिस तालुरोगमें तालु बारबार सूखता रहता है; बदौर्ध होनेको तरह दर्द और रोगोको श्वास उपस्थित होतो उसको तालुशोष कहते हैं। वायुके प्रकोपसे यह रोग पैदा होता है। पित्तके अधिक प्रकोपसे तालु पकजानेसे उसको तालुपाक कहते है।

कण्ठगतमुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद —

वायु पित्त और कफ यह तीन दोषके प्रकोपसे कण्ठमें नानाप्रकारके रोग पैदा होते है। उसमें अधिकांश ही शस्त्रसाध्य और असाध्य जानना। कण्ठरोग समूहोमें रोहिणी और अधिजिह्व नामक दो रोग आराम नहो होता। यहा हम केवल वही दो रोगके लक्षण आदि लिखते है। कण्ठरोगमें कुपित दोषसे मांस और रक्त दूषित हो जोभके चारो तरफ मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है, उसको रोहिणो कहते है। वहो सब मांसाङ्कुर अधिक बढ़कर क्रमशः कण्ठरोध हो रोगोके प्राणनाशको सम्भावना है। अधिजिह्व जिह्वाके उपरोभागमें उत्पन्न होता है। जिह्वाके अग्रभाग को तरह इसको आकृति होतो है, तथा पकनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—मुखके भीतर जो सब रोग उत्पन्न होता है इसको सर्व्वसर मुखरोग कहते है। वायुके आधिक्यसे मुखभरमें सूचिवेध की तरह वेदनायुक्त छोटी छोटी फोडिया पैदा होती है। पित्ताधिक्यमें वही सब फोडिया पीत या रक्तवर्ण हो इसमें दाह होता है, कफाधिक्यसे फोडियोंमें अल्प वेदना, कण्डु और रङ्ग बदन की तरह होता है।

ओष्ठगत मुखरोग चिकित्सा।—वातज ओष्ठ रोगमें तेल या घीमें मोम मिलाकर मर्द्दन करना। लोहवान, राल, गुग्गुल, देवदारु और जेठीमधु (मुलेठी) इन सब द्रव्योंका चूर्ण थोरे थोरे ओष्ठपर घिसना। मोम और गुडके साथ लाल, तेल या घीमें पकाकर लेप करनेसे ओष्ठका सूचीविधवत् दर्द, कर्कशता और पीप खून आना बन्द होता है। पित्तज ओष्ठ रोगमें तिक्त द्रव्यका पान भोजन तथा शीतल द्रव्यका प्रलेप करना। पित्तज विद्रधिकी तरह इसको चिकित्सा करना चाहिये। कफज ओष्ठ रोगमें त्रिकटु, सज्जीखार और यवाखार यह तीन द्रव्यमें सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। मेदजनित ओष्ठ रोगमें अग्निका सेंक करना उपकारी है। प्रियङ्गु, त्रिफला और लोध इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। ओष्ठके घावमें राल, गेरू, धनिया, तेल, घृत, सेन्धानमक और मोम एकत्र पकाकर लेप करना। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें जिस दोषका अधिक प्रकोप हो पहिले उसकी चिकित्सा कर फिर दूसरे दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये। पक जानेपर व्रणरोग की तरह चिकित्सा करना।

दन्तगत मुखरोग चिकित्सा।—दन्तरोग समूहों में शीताद रोगमें सोंठ, सरसो और त्रिफलाके काढ़ेका कुल्ला करना। मोथा, लोध, पीपल, मैनसिल, प्रियङ्गु, तेजपत्ता इसका चूर्ण

महत मिलाकर लेप करनेसे शीताद रोगका सड़ा मांस निकल जाता है। कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, वराहक्रान्ता, अकवन, चाभ और हलदी इन सबके चूर्णसे दांत घिसनेसे रक्तस्राव, कण्डु और दद आराम होती है। दन्तपुप्पुट रोगकी प्रथम अवस्थामें रक्तमोक्षण और मधु मिलाकर पञ्च लवण और जवाखार चूर्ण घिसना उपकारी है। चलदन्त रोगमें बड, पीपल प्रभृति दूधवाले वृक्षके काढेसे कुल्ला करना या मौलसरीका कचा फल चिबाना। दन्त-तोद और दन्तहर्ष रोगमें तेलादि वायु नाशक द्रव्यका कुल्ला करना। मौलसरी छालके काढेका कुल्ला और पीपल चूर्ण, घी और महत एकमें मिलाकर मुहमें धारण करनेसे दन्तशूल आराम होता है। दन्तवेष्ट रोगमें रक्तमोक्षण, बड और अश्वत्थादि वृक्षके काढेमें घ, महत और चिनी मिलाकर कुल्ला करना तथा लोध, लालचन्दन, मुलेठी और लाह इसका चूर्ण महतमें मिलाकर आहिस्ते आहिस्ते घिसना विशेष उपकारी है। शौषिर रोगमें रक्तमोक्षण बटादिके काढेका कुल्ला करना और लोध मोथा, रसाञ्जन चूर्ण महतमें मिलाकर लेप करना। परिदर और उपकुश रोगको चिकित्सा शीताद रोगकी तरह करना चाहिये। उपकुश रोगमें पीपल, सफेद सरसो और सोंठ गरम पानीमें पीस कर कुल्ला करना। दन्त वैदर्भ, अधिदन्त, अधिमांस और शुषिर रोग असाध्य है। दन्त नाली रोगमें जिस दांतमें नाली हो वह दांत उखाड डालना किन्तु उपरका दांत उखाडना उचित नहीं है। जाविती, माजूफल और कुटकी इसका काढा मुखमें धारण करनेसे और लोध, खेर, मजीठ, मुलेठा, इन सब द्रव्यके साथ तेल पकाकर लगानेसे दन्तनाली आराम होती है। दन्तशर्करा रोगमें दन्तमूलमें किसी तरह की तकलीफ न हो इस ख्यालमें काटना तथा महत मिला लाहका

चूर्ण घिसना। कपालिका रोगकी चिकित्सा दन्तहर्षकी तरह करना। क्रिमिदन्तक रोगमें होंग गरम कर लेप करना। हहतो, कुकरौंधा, एरण्डमूल और कण्ट कारीके काढेमें तेल मिलाकर कुल्ला करना। द्रोण पुष्पका रस, समुद्र फेन, मधुत और तेल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतके कीड नष्ट होते है। मेंहुडकी जड चिबाकर दांतके नीचे दबा रखनेसे कीडा गिरजाता है। केंकडेका पैर पीसकर दांतमे लेप करनेसे नीदमें दांतका घिसना दूर होता है। अथवा केंकडेका पैर गायके दूधमें औटाना दूध खूब गाढा होनेपर दोनो पैरमें लेपकर सोना, इसमें भी दन्तशब्द दूर होता है। दन्तरोगाशनि चूर्ण, दन्तसंस्कार चूर्ण और हमारा "दन्तधावन चूर्ण" सब प्रकारके दन्तरोगका उत्कृष्ट औषध है।

जिह्वागतमुखरोग चिकित्सा—वातज जिह्वा रोगमें वातज ओठ रोगकी चिकित्सा करना चाहिये। पत्तिक जिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना, फिर सतावर, गुरिच, भूमिकुष्माण्ड, मरिवन, पिठवन, असगन्ध, कांकडाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरिया, बरियारा, पीत बरियारा, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इन सब द्रव्यका चूर्ण और काढा जिह्वामें घिसना। श्लैष्मिक जिह्वा रोगमें भी इसी तरह कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना चाहिये फिर पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, गोलमिरच, गजपिप्पली, ममालुका बीज, बडीइलायची, अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो घोडनीमका फल, होंग, बारङ्गी, मूर्व्वामूल, अतीष, वच, विडङ्ग और सेंधानमकके काढेका कुल्ला करना। मानभस्म, सेंधानमक और तेल एकत्र मिलाकर जीभमें घिसना तथा बडा नीबू आदि अम्ल द्रव्यका केशर थोडा सेंहुडका दूध मिलाकर चिबानेसे जिह्वाकी

जड़ता दूर होती है। उपजिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर फिर जवाखार घिसना अथवा त्रिकटु, बड़ोहर और चितामूल इन सबका चूर्ण घिसना या इन सब द्रव्योंमें तैल पकाकर लगानेसेभी उपजिह्वा रोग आराम होता है।

तालुरोग।—प्राय सब तालुरोग बिना नस्तरके आराम नहीं होता। जिसमें गलशुण्ठी रोगमें हरसिङ्गारका जड़ चिबानेसे अथवा बच, अतीस, अकवन, रास्ना, कुटकी, नीमकी छाल इनके काढ़ेका कुल्ला करनेसे आराम होता है। वातज रोहिणी रोगमें खून निकाल कर नमक घिसना और गरम तेलका कुल्ला करना हितकर है। पैत्तिक रोहिणी रोगमें लाल चन्दन, चिनी और महत एकत्र मिलाकर घिसना तथा दाख और फालसेके काढ़ेका कुल्ला करना। श्लैष्मिक रोहिणी रोगमें झूल (मकड़ीका जाला) और कुटकी चूर्ण घिसना तथा अपराजिता, विड़ङ्ग, दन्ती सेंधानमक तेलमें औटाकर इसका नास लेना औरकुल्ला करना। रक्तज रोहिणीमें पैत्तिक की तरह चिकित्सा करना। अधिजिह्व रोगकी चिकित्सा उपजिह्वकी तरह जानना; सोंठ, मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्य, लवण और उष्णद्रव्य घिसनेसे अधिजिह्व रोग शान्त होता है। कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण, क्षारगुडिका और यव क्षारादि गुटी व्यवहारसे यावत ह कण्ठरोग आराम होता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—सर्व्वसर मुखरोगमें परवरका पत्ता, जामुनका पत्ता, आमका पत्ता और मालती पत्तेके काढ़ेसे कुल्ला करना। जायफल, गुरिच, दाख, जवासा दारुहल्दी और त्रिफलाके काढ़ेमें महत मिलाकर कुल्ला करनेसे मुखके भीतरका घाव दूर होता है। पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रयवका चूर्ण मुखमें रखनेसे भी मुखपाक, व्रण, क्लेद और दुर्गन्ध दूर होती

है। सप्तच्छदादि, पटोलादि, क्वाथ, खदिर वटिका, वृहत् खदिर वटिका, बकुलाद्य तैल सब प्रकारके मुखरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—रोग विशेषमें दोषका आधिक्य विचारकर वही दोष नाशक पथ्य देना। साधारणतः कफनाशक द्रव्य मुख-रोगमें विशेष उपकारक है।

निषिद्ध कर्म्म।—मुखरोगमें अधिक खट्टा, मछली, दही दूध, गुड, उडद, और कठिन द्रव्य भोजन, अधोमुख शयन, दिवा-निद्रा और दतुवनसे मुख धोना अहितकर है।

कर्णरोग।

—:o:—

कर्णशूल लक्षण।—कर्णगत वायु चारो तरफ घूमनेसे कानमें कष्टदायक दर्द उत्पन्न होता है और उसके साथ जो दोष रहता है उसी दोषके लक्षण प्रकाशित होते है, इसीको कर्णशूल कहते है। कानमें भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदिके शब्दकी तरह नाना-प्रकारके शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णनाद कहते है। केवल वायु अथवा वायु कफ यही दो दोषमें शब्द वहा स्रोत आवृत होकर बाधिर्य्य रोग पैदा होता है; इस रोगमें श्रवणशक्ति नष्ट हो जाती है। कानमें बांसुरीकी तरह शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णक्ष्वेड कहते है। मस्तकमें आघात, जलमग्न होना अथवा कानमें फोडा

ही एक जगहपर कानसे पीप, रस, पानी आदि निकलनेसे उसको कर्णस्राव कहते हैं। सर्व्वदा कानमें खुजली हो तो उसको कर्णकण्डू कहते है। पित्तकी उष्मासे कानका कफ सूखकर कानमें एक प्रकार मल पैदा होता है उसको कर्णगूथ कहते है। स्नेह पदार्थादि प्रयोगसे कर्णगूथ द्रव हो मुख और नाकसे निकल जाने पर उसको कर्णप्रतिनाह कहते है। इसके साथही अर्धावभेदक उपस्थित होता है। पित्त प्रकोपसे कान क्लेदयुक्त और पूतिभावापन्न होनेसे उसको कर्णपाक जानना। चाहे जिस कारणसे कानसे दुर्गन्ध पीप आदि निकलेतो उसको पूतिकर्ण कहते है। कानमें मास रक्तादि सड़कर कीड़े पैदा होनेसे उसको क्रिमिकर्णक रोग कहते है। इस पीड़ाके सिवाय विद्रधि, अर्ब्बुद और कीट प्रवेश या आघातादि कारणोंसे नानाप्रकार का रोग कानमें उत्पन्न होता है

कर्णरोग चिकित्सा।—अदरखका रस आधा तोला, सहत चार आनेभर, सैन्धानमक एक रत्ती और तिल तेल चार आनेभर यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर कानमें भरनेसे कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य्य और कर्णक्ष्वेड रोग आराम होता है। लहसन, अदरख, सैजनकी छाल, मूली, करैला इन सबमें कोई एकका रस थोड़ा गरम कर कानमें डालनेसे दर्द दूर होता है। अकवन पत्तेके पुटमें सेंहुड़का पत्ता जलाकर अथवा अजवनके पत्तेमें घी लगाकर आगमें झुलसाना फिर उसके गरम रससे कान भरदेनेसे कर्णशूल आराम होता हैं। कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड और बाधिर्य्य रोगमें कड़ुवा तेल अथवा वात रोगोक्त महामाष तैल कानमें डालना। गुडमिश्रित सोंठके काढ़ेका नास लेना विशेष उपकारी है। वट, पीपल, पाकड़, गुल्लर और बेतसके छालका चूर्ण, कयैथका रस, और सहत एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्ण दूर होता

है। कर्णगूथ रोगमें पहिले तैलसे मल फूलाना फिर शलाकासे उसको निकाल डालना। कानके कोड़े दूर करनेके लिये हुड़हुड़, निसिन्दा और ईशनाङ्गलाके जडके रसमें त्रिकटू चूर्ण मिलाकर कानमें डालना। सरसोंका तैल डालना और बैगनका धूंआ लगाना क्रिमिकर्णकमें विशेष उपकारी है।

कर्णवेधज शोथ।—कर्णवेधके समय उचित स्थानमें कर्णविद्ध न होनेसे शोथ और दर्द होता है, इसमें जेठीमध, जौ, मजीठ और रेंडका जड एकत्र पीसकर घी और सहत मिला लेप करना। पकने पर व्रण रोगकी तरह चिकित्सा करना।

शास्त्रीय औषध।—भैरव रस, इन्द्रवटी, सारिवादि वटी, दीपिका तैल, अपामार्ग चार तैल शम्बूक तैल, निशातैल और कुष्ठाद्य तैल; रोगविशेष पर विचार कर देना।

पथ्यापथ्य।—कर्णरोग समूहोंके दोषका आधिक्य विचार कर पथ्यापथ्य स्थिर करना। कर्णक्ष्वेड, बाधिर्य आदि वायुप्रधान कर्णरोगमें वातव्याधिकी तरह और कर्णपाक, कर्णस्राव आदि श्लेषप्रधान रोगमें आमवातादि पीडाकी तरह पथ्यापथ्य व्यवस्था करना।

नासारोग।

पीनस लक्षण।—जिस रोगमें कफ वायुसे शोषित हो नासिकाको रुद्ध कर धूंआ निकलनेकी तरह यातना अनुभव हो,

तथा नाक कभो सूखी, कभो गीली होती रहे और घ्राणशक्ति, आस्वाद शक्ति नष्ट हो जाय, उसको पीनस रोग कहते है। पीनसके अपक्कावस्थामें सिरका भारीपन, अरुचि, पतला स्राव, स्वरकी चीणता और नासिकासे बार बार पानी निकलता है। पक्कनेपर कफ घना हो नाकके छिद्रमें विलीन होकर स्वर साफ होता है, किन्तु अपक्कावस्थाके कई एक लक्षण इसमें मिले हुए रहते है। दुष्ट रक्त, पित्त और कफसे वायु तालुमूलमें दुषित और पूतिभावापन्न हो, मुख और नाकसे निकलनेपर उसको पूतिनस्य कहते है। जिस रोगमें नाकके दुष्टपित्तसे नाकमें पिड़िका समूह और दारुण घाव हो अथवा जिस रोगसे नासिका पूतिभावापन्न और क्लेदयुक्त हो उसको नासापाक कहतेहैं। वातादि दोषोंसे दूषित होनेपर अथवा ललाटमें किसी तरहसे चोट लगनेसे पीप रक्त निकलता है उसको पूयरक्त रोग कहते है। शृङ्गाटक नामक नासा रोग में मर्म्मस्थानका कफानुगत वायु दूषित होनेसे नाक जोरसे बोलती है उसको चवथु (छींक) कहते है। तेजवस्तु सूंघना,सूर्य्य दर्शण, बत्ती डालनेसे भी छींक आती है, उसको आगन्तुक चवथु कहते है। मस्तकमें पहिलेका सञ्चित गाढ़ा कफ सूर्य्यकी गरमी या पित्त से विदग्ध होनेपर लवण रसयुक्त नाकसे निकलता है इसको भ्रंशथु रोग कहते है। जिस नासा रोगसे नासिकामें अत्यन्त दाह तथा अग्निशिखा और धूंआ निकलनेकी तरह दर्दके साथ गरम श्वास निकले तो उसको दीप्त कहते है। वायु और कफसे निश्वास मार्ग बन्दहोजानेपर उसको प्रतिनाह कहते है। नासिकासे गाढ़ा या पतला पीला या सफेद कफ निकले तो उसको नासास्राव कहते है। नासा स्रोत और तद्गत कफ वायुसे शोषित और पित्तसे प्रतप्त होनेपर अति कष्टसे निश्वास प्रश्वास निकलता है; इसको नासा शोष कहते

है। मलमूत्रादि वेग धारण, रात्रि जागरण, दिवानिद्रा, शीतल जलका अधिक व्यवहार, शैत्यक्रिया, ओसमें फिरना, मैथुन, रोदन आदि कारणोंसे मस्तकका कफ घनीभूत होनेपर वायु कुपित हो तुरन्त प्रतिश्याय रोग पैदा होता है। तथा वायु, पित्त, कफ और रक्त पृथक पृथक् या मिलकर क्रमश मस्तकमें सञ्चित और अपने अपने कारणोंसे कुपित होनेसे कालान्तरमें प्रतिश्यायरोग उत्पन्न होता है। प्रतिश्याय होनेसे पहिले छींक, शिरका भारीपन, स्तब्धता, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, नाकसे धूआ निकलनेको तरह अनुभव, तालुमें जलन और नाक मुखसे पानीका स्राव आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होते हैं। वातिक प्रतिश्यायमें नासिका विबद्ध और आच्छादितकी तरह मालूम होती है, पतला स्राव और गला, तालु, ओंठ म शोष ललाटमें सूई गडानेकी तरह दर्द, वारबार छींक आना, स्वरभङ्ग और नाक मुखसे मानो सधूम अग्नि निकलती है। रोगी भी काला, पाण्डुवर्ण और सन्तप्त हो जाता है। श्लेष्मिक प्रतिश्याय में नाकसे पाण्डुवर्ण और शीतल कफ बहुत निकलता है, रोगीका शरीर और दोनो आंखे शुक्लवर्ण, शिर भारी, कण्ठ, ओंठ, तालु और मस्तकमें अत्यन्त खुजली होती है। प्रतिश्याय रोग पक्व या अपक्व चाहे जिस अवस्थामें अकारण बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होता रहे तो उसको सन्निपातिक जानना। रक्तज प्रतिश्यायमें नाकसे रक्तस्राव, आंखोंका लाल होना, मुख और निश्वासमें दुर्गन्ध तथा घ्राणशक्तिका नाश हो जाता है।

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम।—जिस प्रतिश्यायके निश्वासमें दुर्गन्ध, घ्राण शक्तिका लोप और नासिका कभी आर्द्र, कभी सूखी, कभी बद्ध, कभी विवृत होनेसे उसको दुष्ट और कष्टसाध्य जानना। यथासमय दवा न करनेसे प्रतिश्याय दुष्ट और

असाध्य हो जाता है तथा उसमें छोटे छोटे कीड़े पैदा होनेसे क्रिमिज शिरोरोगके लक्षण समूह प्रकाशित होते हैं। प्रतिश्याय अधिक गाढ़ा होनेसे क्रमशः वाधिर्य्य, नेत्रहीनता, नानाविध उत्कट नेत्ररोग, घ्राणशक्तिका नाश, शोथ, अग्निमान्द्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होता है।

नासार्शः।—अर्शरोगोक्त मांसाङ्कुरकी भांति नाकमें भी एक प्रकार मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है उसको नासार्शः कहते हैं। चलित भाषामें इसको "नासारोग" या नासाज्वर नामक एक प्रकार रोग होता है इसमें नाकके भीतर लाल रङ्गका एक शोथ हो उसके साथ प्रबल ज्वर, गरदन, पीठ, और कमरमें दर्द, सामनेकी तरफ झुकनेसे तकलीफ होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं, यह भी एक प्रकार नासार्शः रोगके अन्तर्भूत है।

नासारोग चिकित्सा।—पीनसरोग उत्पन्न होते ही गुड़ और दहीके साथ गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। कायफल, कूठ, काकड़ा शिङ्गी, सोंठ, पीपल, मिरच, जवासा और कालाजीरा, इसका चूर्ण या काढ़ेमें अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे पीनस, स्वरभेद, नासास्राव, हलीमक आदि रोग शान्त होते हैं। व्योषाद्यचूर्ण नामा रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रयव, हींग, मिरच, लाह, तुलसी, कुटकी, कूठ, बच, सैजनकी बीज और विडङ्ग चूर्णका नास लेनेसे पूतिनस्य रोग आराम होता है। शिग्रुतैल और व्याघ्री तैलका नास भी पूतिनस्यमें उपकारी है। नासापाक रोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करना तथा वटादि क्षीरि वृक्षकी छाल पीसकर घी मिलाकर लेप करना। पूयरक्त रोगमें रक्तपित्त नाशक नस्य ग्रहण और उसी रोगोक्त औषधादि सेवन करना। क्षवथु रोगमें सोंठ, कूट, पीपल,

वेलका जड, द्राक्षा इनका काढा और कल्कके साथ यथाविधि घृत, गुग्गुलु और मोम मिलाकर धूम देना चाहिये। घीका भूंजा आंवला काञ्जीसे पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे नाकसे खूनका जाना बन्द होता है। प्रतिश्याय रोगमें पीपल, सेजनकी बीज, विडङ्ग और मिरचके चूर्णका नास लेना, शठी, भूईं आमला और त्रिकटु इनका चूर्ण घी और पुराने गुडके साथ सेवन करना अथवा पुटपक्व जयन्तीपत्र तैल और सेंधानमक के साथ रोज सेवन करना चाहिये। त्रिकटु और हरीतकी और महालक्ष्मीविलासरस प्रतिश्याय रोगका श्रेष्ठ औषध है। नासार्श रोगमें करवीराद्य तैल और चित्रकतैल प्रयोग करना। नासा रोगमें सूईसे नाकके भीतरका रक्तपूर्ण शोथ छेदकर खून निकालना, फिर नमक मिला अकवनका दूध या सरसोंका तैल अथवा तुलसीके पत्तेके रसको नास लेना। ज्वर न छूटनेसे ज्वरनाशक औषध सेवन करना। आहवारि रस और चन्दनादि लौह नामा ज्वरका उत्कृष्ट औषध है। दूर्व्वादि तैलका नास लेना इसमें विशेष उपकारी है। जिनको अकसर यह रोग होता है वे रोज दतुवनके समय मसूढ़ेसे थोडा खून निकाले और सुन्धनी सूंघनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—पीनस, प्रतिश्याय प्रभृति कफ प्रधान नासा रोगमें कफ शान्तिकारक पथ्य देना। थोडाभी कफका उपद्रव हो तो भात न देकर रोटी या इससे भी अधिक रूखा और हलका पथ्य देना। पूयरक्त और नासापाक प्रभृति पित्तप्रधान नासा रोगमें पित्तनाशक और रक्तपित्त शान्तिकारक पथ्य देना। नासाज्वरमें अधिक बचक्रिया उचित नहो है, तथापि ज्वर प्रबल रहनेसे पहिले २।१ दिन भात न देकर हलका पथ्य देना अच्छा है।

नेत्ररोग।

—:※:—

नेत्ररोग निदान।—आतपादिसे सन्तप्त हो तुरन्त स्नान करना, बहुत देरतक दूरकी वस्तुकी देखना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण; आंखमें पसीना, धूलि और धूमका प्रवेश, वमनका वेग रोकना या अतिरिक्त वमन, रातको पतला पदार्थ भोजन, मल, मूत्र और अधोवायुका वेग धारण, सर्व्वदा रोना, क्रोध या शोक, शिरमें चोट लगना, अतिशय मद्यपान, ऋतुविपर्य्यय, अश्रुवेग धारण आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो नानाप्रकार नेत्र-रोग पैदा होते हैं। नेत्ररोग बहुसंख्यक है, जिसमें अधिकांश ही असाध्य और असाध्य है। इससे साधारणत: कई एक औषध और साध्य नेत्ररोग की चिकित्सा यहां लिखते है।

नेत्राभिष्यन्द।—नेत्राभिष्यन्द या "आंख आना" यह रोग अकसर दिखाई देता है; वातज, पित्तज, कफज और रक्तज भेद से यह रोग ४ प्रकार है। वातज अभिष्यन्द में आंखमें सूई गडानेकी तरह दर्द, जडता, रोमहर्ष, आंखका गड़ना, रुक्षता, शिरवेदना, शुष्कभाव और शीतल अश्रुपात यही सब लक्षण प्रकाश होते हैं। पित्तज अभिष्यन्दमें आंखमें जलन, घाव, शीतल स्पर्शादि की इच्छा, आंखसे धूम निकलनेकी तरह दर्द और अधिक अश्रु-पात आदि लक्षण लक्षित होते है। कफज अभिष्यन्दमें उष्ण स्पर्शादिकी इच्छा, भारबोध, चक्षुमें शोथ, कण्डू, कीचड आना, आंख शीतल और बार बार पिच्छिल स्राव, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। रक्तज अभिष्यन्दके लक्षण पित्तज अभिष्यन्दकी

तरह जानना। अभिष्यन्द रोग क्रमशः बढ़जानेसे अधिमन्थ हो-जाता है, इसमें अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण रहनेके सिवाय आंख और मस्तकका अर्द्धभाग मानो उत्पाटित और मथित होना मालूम होता है। आंखें फूलकर पके गुल्लरको तरह लाल रंग, कण्डू-विशिष्ट, किचड़ैलो, शोथयुक्त और पकजाने पर उसको नेत्रपाक रोग कहते है। अधिक खट्टा खानेसे पित्तप्रकुपित हो अम्लाध्युषित नामक एक प्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होता है, इसमें आंखका भीतरी भाग ईषत् नोलवर्ण और प्रान्तभाग लालरंग हो पकजाता है तथा दाह और शोथ बराबर बना रहता है।

रात्र्यन्ध पीड़ा।—निरन्तर उपवास या अल्प भोजन, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्नि और धूप लगना, सफेद रोशनी देखना, अतिरिक्त परिश्रम, रात्रि जागरण अतिशय मैथुन या अवैध उपायसे शुक्रपात, अत्यन्त चिन्ता, अधिक क्रोध या शोक और प्रमेह या और कोई बिमारीसे बहुत दिन तक भोगनेके सबब धातु-क्षय प्रभृति कारणोंसे दृष्टिशक्ति कम हो जाती है। इसमें दूरकी वस्तु या छोटी वस्तु दिखाई नहीं देती अथवा रातको कोई चीज नजर नहीं आती है। रातको दिखाई न देनेसे उसको रात्र्यन्ध (रतौंन्धो) कहते है।

अभिष्यन्द चिकित्सा।—जनेलका नरम पता तोड़-नेसे जो रस निकलता है, वह आंखमें लगानेसे अथवा दारुहलदो का काढ़ा किम्बा स्तनदूधमें रसाञ्जन घिसकर आंखमें लगानेसे अभिष्यन्दका अश्रुस्राव, दाह और दर्द आराम होता है। सैन्धव, दारुहलदो, गेरुमिट्टो, हरीतकी और रसाञ्जन, एकत्र मर्दन कर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंखका शोथ और दर्द शान्त होता है। अथवा गेरुमिट्टो, लाल चन्दन, सोंठ, सफेद मिट्टी

और बच, पानीमें पीसकर लेप करनेसे रक्ताभिष्यन्द आराम होता है।

हमारा नेत्रबिन्दु अभिष्यन्दको श्रेष्ठ दवा।—आंखें लाल होनेसे फिटकिरीका पानी या गुलाब जल आंखमें देना तथा हमारा "नेत्रबिन्दु" सब प्रकार के नेत्राभिष्यन्दका श्रेष्ठ औषध है। पोस्तकी ढेंडी उबाला पानीका स्वेद करनेसे आंखका शोथ आराम होता है। नेत्रपाक, अधिमन्थक आदि रोगमें भी यही सब औषध प्रयोग करना। शिरमें दर्द हो तो शिरोरोगोक्त कई औषध और महादशमूल आदि तैल व्यवहार करना।

नेत्ररोग चिकित्सा।—नेत्ररोग पक जानेसे अर्थात् शोथ, दर्द कण्डू, अश्रुपात प्रभृति छूट जानेसे अञ्जन लगाना चाहिये। हल्दी, दारुहल्दी, सुनैठी, द्राक्षा और देवदारु यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर अञ्जन करना। बबूल का काढ़ा गाढ़ाकर सहत मिलाकर अञ्जन करनेसे आखसे पानी जाना बन्द होता है। बेलके पत्तेका रस आधा तोला, सैन्धा नमक २ रत्ती और गायका घी ४ रत्ती ताम्बेके बरतनमें कौड़ीसे घिसकर आंचमें गरम करना, फिर स्तनदूध मिलाकर अञ्जन लगानेसे आंखका शोथ, रक्तस्राव, दर्द और अभिष्यन्द आराम होता है। चन्द्रोदय और वृहत् चन्द्रोदयवर्त्ति, चन्द्रप्रभावर्त्ति तथा नागार्ज्जुन अञ्जन लगानेसे नाना प्रकारका चक्षुरोग शान्त होता है। विभीतक्यादि, वासकादि और वृहत् वासकादि काढ़ा, महात्रिफलाद्य घृत, नयन-चन्द्र लौह आदि औषध नेत्ररोगमें विचार कर प्रयोग करना। नेत्र रोगमें सहत और त्रिफलाचूर्ण सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

दृष्टिशक्तिकी दुर्ब्बलतामें हमारा केशरञ्जन तैल।—दृष्टिशक्तिकी दुर्ब्बलतामें महात्रिफलाद्य घृत, अश्वगन्धा

घृत, बृहत् छागलाद्य घृत, मकरध्वज, विष्णुतैल नारायण तेल और हमारा "केशरञ्जन तेल" आदि वायु नाशक और पुष्टिकर औषध प्रयोग करना। रातान्धता, (रतौंधो) में भी यही सब औषध सेवन करना, या रसाञ्जन, हलदी, दारुहरिद्रा, मालती पत्र और नीमके पत्तेको गोमयके रसमें बत्ती बनाकर अञ्जन करना। रोज ग्रामको पानका रस ३।४ बूंद आंखमें डालनेसे रतौंधो आराम होती है। पान या केलेके फलमें जुगनू कीड़ा रोगीको बेमालूम खिलानेसे भी रतौंधी आराम होती है

पथ्यापथ्य।—अभिष्यन्द आदि रोगमें लघु, रुक्ष और कफनाशक द्रव्य भोजन कराना। ज्वरादि उपसर्ग हो तो लङ्घन कराना। मछली, मांस, खट्टा, शाक, उरद, दही और गुरुपाक द्रव्य भोजन तथा स्नान, दिवानिद्रा, अध्ययन, स्त्रीसङ्गम, धूपमें फिरना आदि अनिष्टकारक है।

दृष्टिदौर्बल्य और रतौंधी रोगमें पुष्टिकर, स्निग्ध और वायुनाशक द्रव्य भोजन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—रुक्षमेवा, व्यायाम, रौद्रादिका आतप सेवन, तेज रोशनी देखना, परिश्रम, पर्य्यटन, अध्ययन स्त्रीसहवास आदि धातुक्षयकारक कार्य्य इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शिरोरोग।



शिरोरोग संज्ञा।—शूलवत् दर्दकी तरह मस्तकमें जो रोग पैदा होता है, उसको शिरोरोग कहते है। वातज शिरोरोग से मस्तक में यकायक दर्द होता है, रातको यह दर्द बढने पर शिरमें कपडा बाधना और स्नेह स्वेद करनेसे दर्द शान्त होता है। पित्तज शिरोरोग में मस्तक जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त और आंख नाकसे नकलनेकी तरह तकलीफ होती है। यह शैत्यक्रियासे और रातको कुछ शान्त होता है। कफज शिरोरोग में मस्तक कफलिप्त, भारी, बंद रहनेकी तरह दर्द और शीतल स्पर्श तथा दोनो आंखे फूल जाती है। सन्निपातज शिरोरोग में यही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है। रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरोरोगके लक्षण उपस्थित होते है और मस्तक में भयानक दर्द होती है।

क्षयज लक्षण।—शिरका रक्त, चर्ब्बी और वायु अतिरिक्त क्षय हो भयानक कष्टदायक और कष्टसाध्य शिरःशूल पैदा होता है; उसको क्षयज शिरोरोग कहते है। क्रिमिज शिरोरोग में कीडे पैदा होते है, इससे दर्द, सूई वेधवत् यन्त्रणा, टनटनाहट और नाकसे पानी मिला हुआ पीप स्राव होता है।

सूर्य्यावर्त्त लक्षण।—सूर्य्योदयके वक्त जिस शिरोरोगमें आंख और भौंमें थोडा थोडा दर्द आरम्भ हो तथा सूर्य्य जैसे जैसे ऊपर उठे दर्द भी वैसही बढने लगे, फिर सूर्य्य जितना पश्चिम को तरफ उतरते जाय वैसही दर्द भी कम होती जाय तो उसे

सूर्य्यावर्त्त कहते हैं। सुतरां दोपहर को इस रोगकी वृद्धि और शामको निवृत्ति होती है।

अनन्तवात।—पहिले गरदनके पीछे दर्द आरम्भ हो तुरन्तही ललाट और भौंमें पैदा हो तथा गालके पास कम्पन, हनुग्रह और नानाप्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होनेसे उसको अनन्तवात नामक रोग कहते हैं। रूखा भोजन, अध्यशन, पूर्व्व वायु और हिम सेवन, मैथुन, मलमूत्रादिका वेग धारण, परिश्रम, व्यायाम आदिसे कुपित, केवल वायु अथवा वायु और कफ मस्तकके आधे हिस्सेमें जाकर एक तरफको मन्या, भौं, ललाट, कान, आंख और शङ्खदेशमें भयानक दर्द पैदा होती है इसको अर्द्धावभेदक (अधकपारी) कहते हैं। पहिले शङ्खदेश (कनपट्टी) में दारुण वेदना और दाहयुक्त रक्तवर्ण शोथ उत्पन्न हो एकाएकी शिरःशूल और कण्ठरोध उपस्थित होनेसे उसको शिरोरोग कहते हैं। उपयुक्त चिकित्सा न होनेसे तीन दिनमें इस रोगसे रोगी मरजाता है।

शिरोरोगकी चिकित्सा।—वातज शिरोरोगमें वायुनाशक घृत पान और तैल मर्द्दन उपकारी है। कुड़, रेंडकी जड़ कांजीमें पीसकर अथवा मुचकुन्द फूल पानीमें पीसकर लेप करना। पैत्तिक शिरोरोगमें घी या दूधके साथ उपयुक्त मात्रा त्रिवृताका चूर्ण सेवनकर विरेचन कराना चाहिये। दाह हो तो शतध त घी मालिश करना, तथा कमुद, उत्पल आदि शीतल पुष्पका लेप करना। लालचन्दन, खसकी जड़, मुलेठी, वरियारा, व्याघ्रनखी और नीलोत्पल दूधमें एकत्र पीसकर अथवा आंवला और नीलोत्पल पानीमें पीसकर लेप करनेसे पैत्तिक शिरोरोग आराम होता है। श्लैष्मिक शिरोरोगमें कायफलका नास लेना। पीपल, सोंठ, मोथा, मुलेठी, सोआ, नीलोत्पल और कूठ, यह सब द्रव्य

एकत्र पानीमें पीसकर लेप करनेसे भी कफज शिरोरोग तुरन्त आराम होता है। वातपैत्तिक शिरोरोगमें स्वल्प पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। वातश्लैष्मिक शिरोरोगमें वृहत पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। त्रिदोषज शिरोरोगमें ऊपर कही सब दवाएं मिलाकर व्यवहार करना। त्रिकटु, कूठ, हल्दी, गुरिच और असगन्ध, इसका काढा नाकके राह पीनेसे अथवा सोंठ चूर्ण ३ माशे दूध ८ तोले एकत्र मिलाकर नास लेनेसे त्रिदोषज शिरो रोग आराम होता है। पित्तज शिरोरोगको तरह रक्तज शिरो रोगकी चिकित्सा करना चाहिये। क्षयज शिरोरोगमें अमृतप्राश घृत, वृहत छागलाद्य घृत आदि धातु पोषक औषध सेवन और वातज शिरोरोग नाशक लेप करना चाहिये। क्रिमिज शिरोरोगमें अपामार्ग तैल या सोंठ, पीपल, मिरच, करजबीज, और सैजनको बीज गोमूत्रमें एकत्र पीसकर नास लेना तथा और भी क्रिमि-नाशक अन्यान्य औषध प्रयोग करना चाहिये।

सूर्य्यावर्त्त, अर्द्धावभेदक और अनन्तवात रोगमें अनन्तमूल, नीलोत्पल, कूठ और मुलेठी काजीमें पीसकर घी मिलाकर लेप करना, अथवा हुड़हुड़का बीज हुड़हुड़के रसमें पीसकर लेप करना। भङ्गरैया का रस और बकरीका दूध समभाग धूपमें गरम कर नास लेना। दूधके साथ तिल पीसकर नास लेनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि रोग आराम होता है। चीनी मिलाया दूध, नारियलका पानी, ठण्ढा पानी या घी इसमेंसे किसी एकका नास लेनेसे अर्द्धाव भेदक रोग आराम होता। समभाग विडङ्ग और काली तिल एकत्र पीसकर नास लेना, अथवा चुल्हेकी जली मिट्टी और गोल-मिरचका चूर्ण समभाग मिलाकर नास लेनेसे भी अर्द्धावभेदक आराम होता है। शङ्ख रोगमें भी यही चिकित्सा उपकारी है।

इसके सिवाय दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, नीमका पत्ता खसकी जड और पद्मकाष्ठ पानीमें पीसकर कनपटीमें लेप करना। नाकसे घी पान और मस्तकपर बकरीका दूध या ठण्ढा पानी सिञ्चन यह रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध।—शिरःशूलादि वज्ररस, अर्द्धनाडी नाटकेश्वर, चतुर्गत्तक रस, मयुराद्य घृत, षड्बिन्दु तैल और वृहत् दशमूल तैल सब प्रकारके शिरोरोगका उत्कृष्ट औषध है। अवस्थाविशेष विचारकर यही सब औषध प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—कफज, क्रिमिज और त्रिदोषज शिरोरोगके सिवाय अन्यान्य शिरोरोगमें वायुप्रधान रहता है सुतरां वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य इन सब रोगोंमें विचारकर देना चाहिये। कफजादि कफप्रधान शिरोरोगमें रुक्ष और लघु आहार करना तथा स्नान, दिवानिद्रा, गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कफवर्द्धक आहार विहार परित्याग करना। क्रिमिज शिरोरोगमें क्रिमिरोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

स्त्रीरोग।

प्रदर निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, मद्यपान, पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन, कच्चा पदार्थ खाना गर्भपात, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्य्यटन, सवारीपर अधिक

चढ़ना, शोक उपवास, भारवहन अभिघात, अतिनिद्रा आदि कारणोंसे प्रदररोग उत्पन्न होता है, इसका दूसरा नाम असृग्दर है। अङ्गमर्द और दर्द लिये योनिद्वार से स्राव होना यही सब प्रदरके साधारण लक्षण है। कच्चा रसयुक्त, चिपकता हुआ पीला रंग या मांसके धोवनकी तरह स्रावको कफज प्रदर कहते है। जिसमें पीला नीला, काला या लाल रंगका गरम स्राव, दाह और दर्द आदिके साथ वेगसे स्राव हो वह पित्तज और जिसमें रुखा, अरुणवर्ण, फेनीला, तथा मांसके धोवन की तरह दर्दके साथ निकले उसको वातज प्रदर कहते है। सन्निपातज प्रदर रोगमें सहत घी या हरितालके रंगकी तरह अथवा मज्जा या शव गन्धयुक्त स्राव होता है यह असाध्य जानना। प्रदर रोगिणी का खून और बल घटजाने पर भी निरन्तर स्राव होनेसे तथा तृष्णा, दाह औरज्वरादिउपद्रव उपस्थित होनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है।

वाधक लक्षण।—यह भी प्रदर रोगके अन्तर्भूत है। वाधक रोग नानाप्रकार दिखाई देता है। किसीमें कमर, किसी में नाभिके नीचेका भाग, पार्श्वद्वय, दोनो स्तनोंमें दर्द और कभी कभी एक या दो मासतक लगातार रक्तस्राव होता रहता है। किसी वाधकमें आंख, हाथका तलवा, और योनिमें जलन लम्बेदार रक्तस्राव तथा कभी कभी महीनेमें दोवार ऋतु होता है; किसीमें मानसिक अस्थिरता, शरीरका भारीपन, अधिक रक्तस्राव, हाथ पैरमें जलन, कृशता, नाभिके नीचे शूलवत् दर्द और कभी कभी तीन या चार मासपर ऋतु होता है तथा किसी वाधकमें बहुत दिनपर ऋतु होना पर उपवासमें थोड़ा रक्तस्राव, दोनो स्तनोंकी गुरुता, स्थूलता, देहमें कृशता और योनिमें शूलवत् दद यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

शुद्धऋतु लक्षण।—हरमहीनेमें ऋतु होकर पांच दिनतक रहे तथा दाह और वेदना न हो, खून चिटचिटा तथा कम और थोड़ा न हो, खूनका रंग लाहके रंगकी तरह तथा कपड़ा उसमें रंग फिर पानीसे धोतेही छूट जाय वही ऋतु शुद्ध जानना। इसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम मालूम होनेही से अशुद्ध जानना।

योनिव्यापक रोग।—योनिव्यापक अनुपयुक्त आहार विहार, खराब रज और बीज दोष आदि कारणोंसे स्त्रियोंको नानाप्रकार योनिरोग उत्पन्न होता है। जिस योनिरोगमें अत्यन्त कष्टके साथ फेनीला रज निकले उसको उदावर्त्त कहते है। जिसमें रज दूषित हो सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है उसको बन्ध्या। विप्लुता नामक योनिरोगमें योनिमें सर्व्वदा दर्द बना रहता है। परिप्लुता रोगमें मैथुनके वक्त अत्यन्त दर्द होता है। यह चारो वातज योनिरोगमें योनिकर्कश, कठिन, शून और सूचीवेधवत् दर्द होता है। लोहितक्षय नामक योनिरोगमें अतिशय दाह और रक्त क्षय होता है। वामिनी योनिरोगमें वायुके साथ रक्त मिला शुक्र निकालता है। प्रस्रंसिनीमें योनि अपने स्थानसे नीचेकी तरफ लम्बी होती है तथा वायुके उपद्रव इसमें होते है; इस रोगमें सन्तान प्रसव कालमें बड़ी तकलीफ होती है। पुत्रघ्नी रोगमें बीच बीचमें गर्भका सञ्चार होता है पर वायुसे रक्तक्षय होकर गर्भ नष्ट हो जाता है। यह चार पित्तज योनिरोगमें अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर उपस्थित होता है। अत्यानन्दा नामक योनिरोगमें अतिरिक्त मैथुनमें भी तृप्ति नहीं होती। योनिमें कफ और रक्तसे मांसकन्दकी तरह ग्रन्थिविशेष उत्पन्न होनेसे उसको कर्णिक रोग कहते। अचरणा रोगमें मैथुन के समय पुरुषके पहिलेही

स्त्रीका रज गिर जाता है इससे वह स्त्री बीज ग्रहणमें समर्थ नहीं होती। अतिरिक्त मैथुनसे बीज ग्रहण शक्ति नष्ट हो जानेसे उसको अतिचरणा कहते है। यह चारो कफज योनिरोगमें योनि पिच्छिल, कण्डुयुक्त और अत्यन्त शीतल स्पर्श होती है। जिस स्त्रीको ऋतु नही होता उसका स्तन कम उठता है और मैथुनके वक्त योनि कर्कश स्पर्श मालूम होती है, ऐसे योनिको षण्डी कहते है। कम उमरमें और छोटी योनिद्वारवाली स्त्री स्थूल लिङ्ग पुरुषके साथ सहवास करनेसे उसकी योनि फोतेकी तरह लटक आती है उसको अण्डली रोग कहते है। अति विस्तृत योनिको महायोनि और छोटे छेदवाली योनिको सूचीवक्त्रा कहते है।

योनिकन्द।—दिवानिद्रा, अतिरिक्त क्रोध, अधिक व्यायाम, अतिशय मैथुन और किसी कारणसे योनिमें घाव होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो योनिमे पीप रक्तके रंगकी तरह, मान्दारफलके आकारकी तरह एक प्रकार मांसकन्द पैदा होता है उसको योनिकन्द कहते है। वायुके आधिक्यसे कन्द रूखा विवर्ण और फटा होता है। पित्तके आधिक्यसे कन्द लाल रंग, दाह और ज्वर भी होता है। कफके आधिक्यसे नीलवर्ण और कण्डुयुक्त होता है। त्रिदोषके आधिक्यमें यही सब लक्षण मिले हुए मालूम होते है।

भिन्न भिन्न रोगमें प्रदर चिकित्सा।—*वातज* प्रदररोगमें दही ६ तोले, सोचर नमक ⁄) आनेभर, कालाजीरा, मुलेठी और नीलोत्पल प्रत्येक चार आनेभर इकट्ठा आधा तोला एकत्र मिलाकर २ तोले मात्रा दो घण्टा अन्तर पर सेवन कराना। पित्तज प्रदरमें अडूसेका रस अथवा गुरिचके रसमें चीनी मिलाकर पिलाना। रक्तप्रदरमें रसाञ्जन, और चौराई की जड़ समभाग

अरविचावलके धोवनके साथ सेवन करना। रक्तप्रदरमें खास होतो उसी योगमें अभनैठी और सोंठ मिलाना चाहिये। गुल्लरका रस, लाह भिङ्गोया पानी आदि पीनेसे प्रदर रोगका रक्तस्राव जल्दी बन्द होता है। *अशोक छाल २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना* एक पाव रहे तब एक सेर दूध मिलाकर फिर औटाना पानी जल-जानेपर उतार लेना रोगिणीका अग्निबल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्रदररोगका रक्तस्राव बन्द होता है। दार्व्वादि क्काथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्ण, पुष्यानग चूर्ण, प्रदरारि लौह, प्रदरान्तक लौह, अशोकघृत, मितकल्याण घृत, और हमारा "अशोकारिष्ट" सब प्रकारके प्रदररोगमें विचारकर देना चाहिये। अजीर्ण, अग्निमान्द्य, ज्वर आदि उपद्रव हो तो घी सेवन करना उचित नहीं है। वायुका उपद्रव या पेडूमें दर्द हो तो प्रियङ्ग्वादि या प्रमेहमिहिर तैल महा उपकारी है। वाधकरोगमें रक्तस्राव अधिक हो तो प्रदररोगोक्त औषध देना चाहिये। रजोरोध होनेसे ओड़हुलका फूल कांजीमें पीसकर सेवन करना और मुस-ब्बर, हीराकस, अफीम, दालचिनी, हरेक का चार आनेभर चूर्ण पानीमें घोटना फिर २ रत्ती मात्राकी गोली बना कर एक गोली सवेरे और एक शामको पानीके साथ देना।

योनिरोग चिकित्सा।—वातप्रधान योनिरोगमें वायु-नाशक घृतादि सेवन कराना। गुरिच, त्रिफला, दन्तीके काढ़ेसे योनि धोना और तलरयादुका, वार्ताकू, कूठ, सैन्धव और देव-दारुका कल्क विधिपूर्व्वक तैलमें पकाकर रुईका फाहा तैलमें भिगोकर योनिमें रखना। पित्तप्रधान योनिरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा और रुईका फाहा घीमें भिङ्गोकर योनिमें रखना। कफ-प्रधान योनिरोगमें रूच और उष्णवीर्य्य औषध प्रयोग करना तथा

पीपल, गोलमिरच, उड़द, सोंआ, कूठ, सेन्धानमक एकत्र पीसकर तर्ज्जनी अङ्गुलीके बराबर बत्ती बनाकर योनि में रखना। कर्णिनी नामक योनिरोगमें कूठ, पीपल, अकवनका पत्ता, सेन्धानमक बकरे के दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखना। सोंआ और　　पत्ता पीसकर तिलका तेल मिला लेप करनेसे विदीर्ण योनि आराम होती है। करेलेका जड़ पीस कर लेप करनेसे अन्त प्रविष्ट योनि बाहर आती है। प्रसंसिनी नामक योनिरोगमें चुहेकी चर्व्वी मालिश करनेसे अपने स्थानमें आजाती है। योनिकी शिथिलतामें वच, नीलोत्पल कूठ, गोल मिरच, असगन्ध और हल्दी समभाग एकत्र पीसकर लेप करना और कस्तुरी जायफल, कपूर किम्बा मदनफल और कपूर सहत में मिलाकर योनिमें भरना। योनिका दुर्गन्ध निवारण करनेके लिये आम, जामुन, कयेथ, बड़ानीबू और बेलका नरम पत्ता, मुलेठी, मालतीफूल; इन सबका कल्क यथाविधि घीमें पाककर उसी घीमें रुईका फाहा भिगोकर योनिमें रखना। बन्ध्यारोगमें असगन्धका काढ़ा दूधमें औटाना फिर घी मिलाकर ऋतु स्नानके बाद सेवन करना। कन्दरोगमें त्रिफलेके काढ़ेमें सहत मिलाकर योनि धोना। गेरू मिट्टी, आमकी गुठली, त्रिडङ्ग, हल्दी, रसाञ्जन और कटफल इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर लेप करना चुहेका टटका मांस तिलके तेलमें पकाना, मांस अच्छी तरह तेलमें मिल जानेपर उतार लेना, फिर उसी तेलमें कपड़ा भिगोकर योनिमें रखनेसे कन्दरोग आराम होता है। फलघृत, फलकल्याण घृत, कुमारकल्पद्रुम घृत आदि योनिरोगमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—प्रदर आदि रोगमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर और चनेकी दाल; केलेका फूल, कच्चाकेला,

करेला, गुल्लर, परवर, पुराना कोंहडा आदिकी तरकारी; सहने-पर बीच बीचमें छाग मांसका रस देना। मछलीका रसा भी थोड़ा देना चाहिये। रातको रोटी आदि भोजन कराना। सहनेपर ३।४ दिनके अन्तरपर गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। ज्वरादि उपसर्ग हो तो हलका आहार देना तथा स्नान बन्द करना।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक और कफजनक द्रव्य, मछली मिठाई, लालमिरचा, अधिक लवण, दूध आदि आहार और अग्नि-सन्ताप, धूपमें फिरना, ओसमें बैठना, दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, पथपर्य्यटन, मद्यपान, ऊंचे स्थानपर चढ़ना और उतरना, विशेषकर मैथुन, मलमूत्रका वेग धारण, सङ्गीत और जोरसे बोलना, सब प्रकारके स्त्रीरोगमें अनिष्टकारक है।

रजोरोध होनेसे स्निग्धक्रिया आवश्यक है। उड़द, तिल, दही कांजी, मछली और मांस भोजन इस अवस्थामें उपकारी है।

गर्भिणी चिकित्सा।

गर्भिणी चिकित्साकी दुरूहता।—गर्भावस्थामें औरतों को ज्वर, शोथ, उदरामय, वमन, शिरका घूमना, रक्त-स्राव, गर्भवेदना आदि नाना प्रकारके रोग उपस्थित होते है। साधारण अवस्थाकी तरह हरेक रोगकी दवा देनेसे इस रोगमें उपकार नही होता; तथा गर्भस्थ शिशुको नानाप्रकारके विपदकी

आशङ्का बनी रहती है। इसलिये प्रधान प्रधान कई एक रोगकी चिकित्सा जानना उचित है।

गर्भावस्थामें ज्वरकी चिकित्सा।—गर्भावस्थामें ज्वर हो तो मुलेठी, लालचन्दन, खसका जड़, अनन्तमूल, पद्मकाठ और तेजपत्तेका काढ़ा सहत और चीनी मिलाकर पिलाना। अथवा लालचन्दन, अनन्तमूल, लोध और द्राक्षाका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। एरण्डादि क्वाथ, गर्भचिन्तामणिरस, गर्भविलासरस, गर्भपियूषवल्ली, गर्भिणीके ज्वर शान्तिके लिये प्रयोग करना, ज्वर रोगोक्त काढ़ा और गोलियोंमें जिसका वीर्य्यमृदु है विशेष विचारकर वह सबभी दे सकते है। अतिसार या ग्रहणी रोगमें आम और जामुनके छालके काढेमें धानके लावाका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। वृहत् ह्रीवेरादि क्वाथ, लवङ्गादि चूर्ण, दुन्दुभिश्वररस और अतिसारादि रोगोक्त मृदुवीर्य्य कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलरोध होनेसे आम, पक्काबेल, किसमिस, पक्का पपीता, गरम दूध आदि सारक द्रव्य देना। विशेष जरूरत हो तो थोड़ा रेंडीका तेल दूधके साथ मिलाकर पिलाना, अधिक दस्त आनेसे गर्भस्रावका डरहै, इसमें विचारकर अधिक दस्त न हो ऐसी दवा देना। शोथमें सूखी मूली, पुनर्नवा, गोखुरबीज, ककड़ीकी बीज और खीरेकी बीजका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। शोथमें सेहुडके पत्तेका रस मालिश करना। गर्भावस्थामें वमन होना स्वाभाविक नियम है इससे उसके लिये कोई औषध प्रयोग नहीं करना। रोज सबेरे मिश्रीका शर्बत या दूध पीनेसे वमन कम होता है। रोज अधिक कष्टकर वमन होनेसे धानके लावाका चूर्ण द्राक्षा और चीनी पानीमें खूब मिलाना फिर छान लेना, यही पानी थोड़ा थोड़ा पिलाना; अथवा द्राक्षा, विशा

चन्दन, खीरेकी बीज, इलायची और सौंफ यह सब द्रव्य पानीमें खूब मलकर थोडा थोडा पिलाना तथा गर्भविलास, नारायण आदि तैल मर्दन करना। सिर भारी मालूम होतो यही सब तैल या हमारा केशरञ्जन और मूर्च्छान्तक तैल सिरमें मालिश करना।

मासभेदसे गर्भसे रक्तस्रावकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें रक्तस्राव हो तो मुलेठी, शाकबीज क्षीरकाकोली और देवदारु इन सब द्रव्योंके साथ दूध मिलाकर पिलाना। द्वितीय मासमें रक्तस्राव होतो काली तिल, मजीठ और शतावर; तृतीय महीनेमें क्षीरकाकोली, और अनन्तमूल, चतुर्थ मासमें अनन्तमूल, श्यामालता, रास्ना, बभनेठी और मुलेठी; पञ्चम मासमें वृहती, कण्टकारी, गाम्भारी फल, वटादि क्षीरी वृक्षकी छाल और गूदा तथा घी। षष्ठ मासमें चकवड, वरियारा, सेंजनकी बीज, गोक्षुर और मुलेठी; सप्तम मासमें सिङ्घाडा, मृनाल, किसमिस, कसेरु, मुलेठी और चीनी; अष्टम मासमें कईथ, बेल वृहती, परवरका पत्ता, इक्षुमूल, कण्टकारी; नवम मासमें मुलेठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, श्यामालता और दशम मासमें दूधमें सोंठ मिला अ टाकर पिलाना।

मासभेदसे गर्भवेदनाकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें दर्द हो तो, श्वेतचन्दन, चीनी और मयनफल, समान भाग अरवेचावलके धोवनमें मिलाकर पिलाना। अथवा तिल, पद्मकाष्ठ, और शालि तण्डुल यह सब द्रव्य दूधके साथ पीसकर दूध चीनी और सहत मिलाकर पिलाना, फिर दूध भात खिलाना। द्वितीय मासमें दर्द होनेसे पद्म, सिङ्घाड़ा, कसेरु, अरवे-चावलके पानीसे पीसकर पिलाना। तृतीय मासमें दर्द हो तो सतावर २ भाग, आंवला १ भाग एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ

सेवन कराना। अथवा पद्म, नीले कमलका फूल और शालुक चीनीके शर्ब्बतमें पीसकर सेवन कराना। चतुर्थ मासमें नीला कमल, शालुक, कण्टकारी और गोक्षुर अथवा गोक्षुर, कण्टकारी, वाला और नीला कमल, यह सब द्रव्य दूधमें पीसकर सेवन कराना। पञ्चम मासमें, नीला कमल और क्षीरकाकोली दूधके साथ पीसकर दूध, घी और सहत मिलाना अथवा नीला कमल, घृतकुमारी और शीतल चीनी समभाग पानीमें पीसकर दूधमें मिला पिलाना। षष्ठम मासमें बड़े नीबूका बीज, प्रियङ्गु, लालचन्दन और नीला कमल दूधमें पीसकर किम्वा चिरोंजी, द्राक्षा और धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाकर खिलाना। सप्तम मास में शतमूली और पद्ममूल पीसकर दूधके साथ किम्वा कयेथ, सुपारी की जड़, धानका लावा, और चीनी ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। अष्टम मासमें सप्तम मासका द्रव्य अरवेचावलके धोवनमें पीसकर सेवन कराना। नवम मासमें एरण्डमूल कांजीमें पीसकर पिलाना। दशम मासमें नीलोत्पल, मुलेठी, और मूग चीनीका शर्ब्बत या दूधमें पीसकर सेवन कराना, एकादश मासमें मुलेठी, पद्मकाठ, मृणाल और नीला कमल, कुठ, वाराहक्रान्ता और चीनी यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर दूधमें मिलाकर सेवन कराना। द्वादश मासमें चीनी विदारीकन्द काकोली और क्षीरकाकोली यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर सेवन कराना।

नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासका कर्त्तव्य।—नवममें द्वादश मास तक प्रसवका काल है, इसमें इसी समयमें गर्भवेदना उपस्थित होनेसे वह प्रसव वेदना है वा नहीं इसका विचार कर औषध प्रयोग करना। प्रसव वेदनामें किसी प्रकारका औषध देना उचित नहीं है।

वे समय गर्भपात और कुक्षिशूल चिकित्सा।
—वे समय गर्भपात होनेसे हांडी आदि बनानेके लिये तयार की हुई मिट्टी आधा तोला, एक पाव बकरी का दूध और चार आनेभर सहत एकत्र मिला कर पिलाना। अथवा वाला, अतीस, मोथा, मोचरस और इन्द्रयव, इन सब द्रव्योंका काढा पिलाना। इससे कुक्षिशूल भी आराम होता है। गर्भस्राव हो जानेपर कसेरु, सिङ्घाडा, पद्मकेशर, नीला कमल, मुगानी और मुलेठी, यह सब द्रव्य दूधमें औटाकर पिलाना इससे गर्भस्राव का शूल आराम होता है।

अति रक्तस्राव चिकित्सा।—गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसव होनेपर अतिरिक्त रक्तस्राव हो तो बन्द करना, नहीं तो इससे प्रसूतिके मृत्यु की सम्भावना है। रक्त बन्द करनेके लिये प्रसूतीका पेडू खूब दबाकर मलना। पेडूपर ठण्ढे पानीकी धार गिराना और भिगोया कपडा रखकर बार बार पानीसे तर करते जाना। नौसादर और सोरा पानीमें भिगो कपडेमें बांध पेडूपर रखना। पिचकारीसे ठण्ढा पानी गर्भाशयमें देना, कबूतरके बीटका चूर्ण २ रत्ती अरवैचावलके पानीके साथ सेवन करना। रोगिणी उठने बैठने न पावे हरवक्त पडी रहे। प्यास मालूम होनेपर ठण्ढा पानी जितना मांगे उतना पीनेको देना।

प्रसवमें विलम्ब चिकित्सा।—प्रसवमें देर होनेसे ईशलाङ्गलाकी जड कांजीमें पीसकर दोनो पैरमें लेप करना। अडुसे की जड, कमर में बांधना, अथवा अडूसेकी जड पीसकर, नाभि, वस्ति और योनिमें लेप करना। कांजीमें घरका जाला अथवा बडे नीबूकी जड और मुलेठी घीके साथ किम्वा फालसा, सरिवन, अकवन, ईशलाङ्गला और अपामार्ग इसमेंसे कोई एक

द्रव्यका जड, नागदानाकी जड और चितामूल समभाग पीसकर चार आनेभर खिलानेसे जलदी प्रसव होता है।

मृतसन्तान प्रसव व्यवस्था।—गर्भस्थ शिशु गर्भमें मरजानेपर प्राय: प्रसव नहीं होता, अकसर अस्त्रकी जरूरत पडती है। गर्भिणीके शिरमें सेहुडका दूध देनेसे मरा हुआ सन्तान प्रसव होता है। पीपल और बच पानीमें पीसकर रेंडीका तैल मिलाकर नाभिमें लेप करनेसे तथा नागदानेकी जड और चितामूल सम-भाग पीसकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मृत सन्तान प्रसव होता है।

रजोदर्शन करनेका उपाय।—उचित समयमें रजो दर्शन न होनेसे तितलौकी, सांपकी केंचुली, घोषालता, सरसों और कडुआ तेल; यह सब द्रव्यका धूप योनिमें देना। अङ्गुलिमें केश लपेटकर कण्ठमें घिसना। ईशलाङ्गलाकी जड़ पीसकर लेप करनेसे भी गेर गर पड़ती है।

मक्कल्ल शूल चिकित्सा। प्रसवके बाद वस्ति और शिरमें अत्यन्त वेदना होनेसे उसको मक्कल्ल शूल कहते है। घी या गरम पानीके साथ जवाखार सेवन करानेसे, किम्बा पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता सोंठ, मिरच, गजपिप्पली सफालुके बीज, एलाइची, अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सर्षप, बड़ीनीम, हींग, कमनेठो, मूर्व्वा, अतीस, बच, विडङ्ग और कुटकी, यह सब द्रव्यका काढा नमक मिलाकर पीनेसे मक्कल्ल शूल दूर होता।

वायुप्रकोप शान्तिका उपाय।—गर्भावस्थामें थोड़ाभी वायुका प्रकोप होनेसे गर्भिणीका शरीर और गर्भ सूखजाता है अच्छी तरह बढने नही पाता। इससे मुलेठी और गाम्भारी फल दूधमें औटाकर पिलाना अथवा गुरिच, विदारीकन्द, अश्वगन्ध,

अनन्तमूल, सतावर, पिठवन, मापपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी, यह सब द्रव्य यथाविधि घीमें पकाकर सेवन कराना।

पथ्यापथ्य और कर्त्तव्य कर्म।—गर्भावस्थामें कई एक साधारण नियम पालन करना गर्भिणी मात्रका कर्त्तव्य है। हलका अथवा पुष्टि कर और रुचिकर द्रव्य आहार करना। अधिक परिश्रम या एकदम परिश्रम त्याग करना नही चाहिये। जिस कामसे श्वास प्रश्वास देरतक बन्द रखना पडे, अधिक वेग देना हो किम्वा पेडू दबे ऐसा काम करना नही चाहिये। पैदल या तेज सवारीमें अधिक दूर तक जाना भी अनिष्ट कारक है। सर्व्वदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये, भय, शोक और चिन्ता रात्रि जागरण आदिसे मनमें दुःख होनेसे सन्तानका अनिष्ट होता है। उपवास, जागरण, दिवानिद्रा, अग्नि सन्ताप, मैथुन, भारवहन कठिन शय्यामें शयन, ऊंचे स्थानपर चढना और मूत्रादि वेग धारण कदापि उचित नहि है।

गर्भावस्थामें जो रोग उत्पन्न हो पथ्यापथ्य भी उसी रोगका पालन करना चाहिये। उपवासवाले रोगमें हलका आहार देना पर उपवास कराना अच्छा नही।

गर्भ या गर्भिणी सूख जानेसे घी, दूध, हंसका अण्डा और छाग, कुक्कुट आदिका मांस आदि पुष्टिकर पथ्य भोजन करनेको देना।

प्रसवान्तका कर्त्तव्य।—प्रसवके बाद प्रसूतीको थोडे दिन बडी सावधानीसे रखना चाहिये। प्रसवके दिनसे तीन दिन तक दूध या दूधसावुदाना आदि हलका आहार देना उचित है। प्रसव दिनके बाद बाकी दो दिन दूधभात भी दे सकते है। फिर क्रमशः सुन्दर पथ्य देना चाहिये। पांच दिन तक स्नान बन्द रखना,

तथा फिर भी १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और सोंठ, गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपड़ा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

कारणविधल रोग।—प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगाना, शैत्यक्रिया अपक्व द्रव्य भोजन अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिका रोग पैदा होते है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, शूल, आनाह, बलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्रवेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि सब रोग जो प्रसवके बाद उत्पन्न होते है, उसको सूतिका रोग कहते है।

सूतिकागृह निर्माण चिकित्साका अङ्ग है।—स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकान के कोनेमें एक छोटीसी अस्थियाली कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नही है, ऐसे घरमें हवा धूप न आनेसे तथा आगका धूआ और गरमी, बालकका मलमूत्र और २।३ आदमीके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कीर्ण

घरकी हवा खराब हो प्रसूती और बालक दोनोको नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होते है। साफ, सूखा कमसे कम ७।८ हात लम्बा, ५।६ हाथ चौडा और ५।६ हात ऊंचा, उत्तर द्वारी या दक्षिणद्वारी सामने सामने दो दो जङ्गलाविशिष्ट सूतिकागृह वनाना चाहिये; जिसकी कुरसी जमीनसे हाथभर ऊंची और मजबूत होना चाहिये, दरवाजा और जङ्गलेमें किवाड़ लगा रहे, ऐसा घर न बनसके तो मकानमें जो कोठरी साफ सुथरी और हवादार हो वही स्थिर करना चाहिये। घरमें धूंआ न हो ऐसे अङ्गारेकी बोरसी घरमें रखना। प्रसूतीके सोने आदिके लिये एक खटिया रखना चाहिये नहीतो खड या पोवाल रखकर उसके उपर बिछौना करना। बालकका मलमूत्र सर्व्वदा बाहर फेकना। रातको जाडेके दिनोमें हवाके वख्त जङ्गला बन्द रखना तथा दूसरे वक्त खुला रखना चाहिये। यह सब नियम पालन करनेसे सूतिका रोगकी आशङ्का कम रहती है।

सूतिका ज्वर चिकित्सा।—सूतिका ज्वरमें सूतिका दशमूल या सहचरादि काढ़ा सूतिकारिरस, हृहत्सूतिकाविनोद और ज्वर रोगोक्त पुटपक्व विषम ज्वरान्तकलौह आदि कई औषध प्रयोग करना। गात्रवेदना शान्तिके लिये दशमूलका काढ़ा और और लक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है। कास शान्तिके लिये सूतिकान्त रस और कास रोगोक्त शृङ्गाराभ्र आदि कई औषध प्रयोग करना। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगमें अतिसारादि रोगोक्त कई औषध और जीरकादिमोदक, जीरकाद्यरिष्ट, सौभाग्यशुण्ठी मादक प्रयोग करना। सूतिका रोगमें जिस रोगका आधिक्य दिखाई दे वही वही रोग नाशक औषध विचार कर प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—सूतिका रोगमें रोग विशेषके अनुसार पथ्यापथ्यपालन करना चाहिये। साधारण सूतिकावस्थामें पुराने चावलका भात, मसूर उरदका जूस, बैगन, नरम मूली, गुलर, परवल और कच्चे केलेकी तरकारी, अनार और अग्निदीपक तथा वातश्लेष्मनाशक द्रव्य आहार और वातश्लेष्मनाशक क्रिया समूह भी पालन करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक और तीव्र वीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्निसन्ताप, परिश्रम, शीतल सेवा और मैथुन सूतिका रोगमें मना है। प्रसवके बाद ३।४ मास तक प्रसूतीको सावधानीसे रखना चाहिये।

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि।

—o—

थनैल।—अपने अपने प्रकोप कारणके अनुसार वातादि दोषत्रय कुपित हो गर्भवती या प्रसूता स्त्रीके स्तनमें आश्रय लेनेसे नानाप्रकार विद्रधि (फोड़ा) उत्पन्न होता है। प्रचलित भाषामें इसको थनैल कहते है।

दूषित स्तनलक्षण।—अनुचित आहार विहारादि कारणोसे वातादि दोष समूह स्तनदूधको दूषित करनेसे उसको स्तन्यदुष्टि कहते है। वायुदूषित स्तन्य कषाय रसविशिष्ट और पानीमें डालनेसे पानीमें न मिलकर ऊपर तैरता है। पित्तदूषित स्तन्य कटु, अम्ल या लवणास्वाद और पीतवर्ण रेखायुक्त होता है। श्लेष्मदूषित स्तन्य गाढा और लस्सेदार यह

पानीमें डूब जाता है। ऐसही या त्रिदोषज मिले हुए दो या तीन दोषके लक्षण मालूम हो तो द्विदोषज स्थिर करना। यही दूध पीनेसे बालको भी नानाप्रकार रोग उत्पन्न होता है। जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा पाण्डुवर्ण, मधुर रस और निर्मल वही दूध निर्दोष है, बालक को वही दूध पान करनेको देना चाहिये।

थनैलको चिकित्सा।—थनैल रोगमें स्तनमें शोथ होतेही दूध गार डालना। जोंक लगाना राखालशशाको जड या हल्दो धतूरेका पत्ता एकत्र पीसकर लेप करना। विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब योगादि लिख आए हैं वही सब योग इसमें भी प्रयोग करना। पकजानेपर शस्त्रप्रयोग या औषध से पीव आदि निकाल कर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना।

दूषित स्तना चिकित्सा।— ध वायुकर्तृक दूषित होनेसे दशमूलका काढा पिलाना पित्तदूषित स्तनमें गुरिच, शत मूली, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, लालचन्दन, और अनन्तमूल, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना। कफदूषित स्तनमें त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी, बभनेठी, देवदारु, वच और थकवन, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना। द्विदोषज या त्रिदोषज स्तन्यदुष्टिमें ऐसही मिले हुए द्रव्योका काढा पिलाना।

शुष्क स्तना चिकित्सा।—स्तनदूध सूख जानेपर वनकपास की जड और इक्षुमूल समभाग कांजीमें पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन कराना अथवा हल्दी, दारुहल्दी, चकवड, इन्द्र यव और सुमठो यह सब द्रव्यका काढा किम्वा वच, मोथा, अतीस, देवदारु, सोंठ, सतावर और अनन्तमूल यह सब द्रव्यका काढा पिलाना।

पथ्यापथ्य।—स्तनरोगमें विद्रधि रोगको तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। स्तनदुष्टिमें दोषके आधिक्यानुसार वही वही दोषनाशक और सूतिका रोगका साधारण पथ्यापथ्य प्रति पालन करना चाहिये।

बालरोग।

बालरोगदूषित स्तनाज।—प्रसूता या धात्रोका स्तन दूषित होनेसे, वही दूषित स्तन पानकर बच्चोंको नानाप्रकारका रोग पैदा होता है। वातदुष्ट स्तन्यपान करनेसे बालक वातरोगाक्रान्त, चोणस्वर और क्षमाङ्ग होता है, तथा उसके मलमूत्र और अधोवायु निकलनेमें कष्ट होता है। पित्तदुष्ट स्तन्यपान करनेसे, पसीना, मलभेद, तृष्णा, गात्रसन्ताप, कामला और अन्यान्य पित्तजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। कफदुष्ट स्तन्यपान करनेसे लालास्राव निद्रा, जड़ता, शूल, दूध कै, आंखे सफेद और विविध श्लेष्मजन्य रोग पैदा होते है। दो या तीन दोषमें स्तन्य दूषित होनेसे दो या तीन दोषके लक्षण मिले हुए प्रकाशित होते हैं।

कुकूनक।—दूषित दूध पान, सूतिकागृहका दोष, घोस लगाना आदि कारणोंसे बच्चोंके आंखकी बरौनोमें कुकूनक नामक रोग पैदा होता है। इससे आंखमें कण्डू, बार बार आंखसे जल स्राव, बालक कपाल आंख और नाक घिसता रहता है तथा धूपको तरफ नहीं देखता और न आंख खोलता है।

तालुकण्टक।—बच्चोंके तालुमें कफ दूषित होनेसे तालुकण्टक नामक रोग पैदा होता है। इसमें तालु बैठजाता है, स्तन्य पानमें द्वेष, स्तन्यपान करनेमें कष्टबोध होना, पिपासा, मलभेद, आंख, कण्ठ और मुखमें दर्द, दूध कै करना, और गरदन गिर पड़ना आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

पारिगर्भिक।—बालक गर्भवती माता या धात्रीका स्तन-दूध अधिक पीवेतो पारिगर्भिक नामक रोग पैदा होता है। इसमें कास, अग्निमांद्य, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम, उदर वृद्धि यही सब लक्षित होते है।

दन्तोद्गम रोग।—पहिले पहल दांत निकलतीवक्त बहुतेरे बालकको ज्वर, उदरामय, वमन, वदन तोड़ना, शिरोवेदना, नेत्ररोग आदि विविध रोग दिखाई देते है।

दूध फेंकना।—बच्चे दूध पानकर कैकरदें तो उसको चलित भाषामें "दूध फेंकना" कहते हैं। पहिले इसमें फटा दूध या दहीकी तरह दूध तथा खट्टी बदबू रहती है। थोड़े दिन बाद क्रमशः पानीको तरह पतला कै होता है और जो खाता है तुरन्त वही निकल जाता है, पेटफूला और बोलता है, दस्त साफ नहीं अथवा कभी कभी अधिक दस्त होता है। शरीर क्षीण, वर्ण पाण्डु और स्वभाव जिद्दी हो जाता है तथा शरीर ठण्डा और चमड़ा रूखा होता है।

तड़काके लक्षण।—बालकों को "तड़का" नामक एक प्रकार रोग होता है। उसका साधारण लक्षण मूर्च्छा और हाथ पैरकी ऐंठन है। नाना कारणोंमें यह रोग पैदा होता है। ज्वर या और कोई कारणसे शरीरका उत्ताप बढ़नेसे, डर लगनेसे,

शरीरमें कहो चोट लगनेसे या दर्द होनेसे, फोड़ा या क्रिमि इनेसे और बहुत दिन तक बिमार रहना आदि कारणोंसे बालक दुर्ब्बल होजानेपर तड़का रोग पैदा होता है। तड़का आरम्भ होतेहो बालक बेहोश, मुखका रंग सफेद, हाथकी अङ्गलो मुट्ठीबन्धो, पैरको अङ्गलो टेढ़ो और हाथ पैर ऐठता रहता है। एक मिनटसे पांच मिनट तक यह रहता है। बहुतेरोंको एक बार हो नहो आता है बार बार होता रहता है। कई जगह तड़का होनेसे पहिले कई एक पूर्व्वरूप अनुभव होता है, नींदमें चमक उठना, आंखें टेढ़ी होना और अङ्गलोसिकुड़जाना आदि तड़का का यह पूर्व्वरूप है।

क्रिमि।—बालकके पेटमें छोटे छोटे कोड़े पैदा होते है, मलद्वारमें खुजलाहट और नाकमें सुरसुराहट होतीहै किसो किसो वक्त बालक नाक मलते मलते रो उठता है। क्रिमि बड़ो होनेसे बालक सोते सोते चमक उठता है; दांत घिसता है और मुखमें दुर्गन्ध आतो है; कभो कभो चिपकता हुआ सबुज रंगऔर तैल-मिला दस्त होता है।

धनुष्टङ्कार निदान।—कुत्सित सूतिकागृहमें साफ हवाके अभावसे आर्द्रता दुर्गन्ध आदि कारणोंसे और बालकको तेल लगाकर अधिक सेंकना और बालकके शरीरमें ओस लगनेसे धनुष्टङ्कार नामक रोग पैदा होता है। जन्मके बाद ८ दिनके भोतर यह रोग दिखाई देता है। इसमें पहिले बालकका चहुआ अटक जाता है फिर पोठको रोढ़ कठिन और टेढ़ी होती है, हाथ पैर कड़ा और ऐठता है। हाथ पैरकी अङ्गलो टेढ़ो, मुख टेढ़ा और बालक को छूनेया हिलानेसे पीड़ा बढ़ती है, इस रोगमें ऐसहो कोई बालक आराम होता है।

ग्रहपीड़ा।—बालकके शरीरमें विविध ग्रहावेश होना आयुर्वेद शास्त्रमें स्वीकृत है। बालक ग्रहसे पीड़ित होने पर कभी उद्विग्न, कभी डर, कभी रोना, कभी नख आदिसे जननी धात्री या अपना हाथ पैर नोचता है, बार बार फेंक वमन और शरीर क्षीण हो जाता है। रातको नींद नहं आती, आंखे फूल जाती है, दस्त पतला होता है, गला बैठ जाता है, बदनसे रक्त और मासको बू आती है। यह सब रोगके सिवाय ज्वर और अति सार आदि अन्यान्य प्रायः सब रोग बालक को पैदा होते है।

शिशुचिकित्साकी कठिनता।—बालक किसी प्रकारकी तकलीफ सह नहीं सकता, इससे उसका रोना और पीड़ित स्थानमें बार बार हाथ लगाना आदि चेष्टा और निपुणतासे विचार कर रोगकी परीक्षा करना चाहिये। गलेमें दर्द होनेसे बालक बार बार गलेमें हाथ लगाता है। शिरःपीड़ा होनेसे कपालका चमड़ा सिकुड़ जाता है और बालक बार बार शिरमें हाथ लगता है और कान खींचता है। चंगा बालक बार बार रो उठनेसे उसका पेट दर्द करता है जानना। दूध पीनेवाले बच्चेको प्यास लगनेसे वह बार बार जीभ बाहर निकलता है। सर्दी होकर नाक बन्द होनेसे बालक दूध पीते वक्त मुंहसे सांस लेनेके लिये बार बार स्तन छोड़ देता है। तीन चार महीनेतक का बालक रोनेसे उसके आंखसे पानी नहीं निकलता, फिर निकलता है। तीन चार महीनेसे अधिक उमरके बालक को रोते वक्त आंखसे पानी न निकले तो उसका रोग कठिन जानना। बालककी नाड़ी स्वभावत: ही अति द्रुत रहती है; इससे नाड़ी परीक्षासे उसका रोग निर्णय करना सबै चिकित्सकके लिये अत्यन्त कष्टकर है। ज्वरा-

दिकी परीक्षाके वक्त थर्मामिटर लगानाही अच्छा है। सांस लेती वक्त बालकके नाकका छेद बड़ा होनेसे और नाक हिलनेसे उसकी खांसी अति गुरुतर है तथा श्वास फेंकनेमें कष्ट होता है जानना। बालकका पेट स्वभावत: ही थोड़ा मोटा होता है, उससे भी अधिक मोटा होनेसे यकृत् प्लीहा या अजीर्ण की आशङ्का करना उचित है। इसी प्रकार विविध लक्षणसे बालकोंके रोगकी परीक्षा करना चाहिये।

धात्रीनिर्व्वाचन।—माताका दूध दूषित होनेसे बालक को पिलाना उचित नहीं है। उसके बदले कोई दुग्धवती धात्री (दाई)का दूध पिलाना। धात्रीनिर्व्वाचनमें कई बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। धात्रीकी उमर २० से ३२ वर्ष तक होना चाहिये। इससे अधिक या कम उमरकी धात्रीका दूध शुद्ध नहीं होता। धात्रीके शरीरमें किसी तरहका रोग हो तो उसका दूध नहीं पिलाना। जिस बालकके लिये धात्री रखना हो उसी उमरका और मोटा ताजा बालक धात्रीका रखना चाहिये। धात्रीके स्तन-द्वय दुग्धपूर्ण और दबानेसे दूध गिर पड़े तथा धात्रीका स्वभाव चरित्र निर्दोष और चित्त सन्तुष्ट होना चाहिये, ऐसी धात्री न मिलनेसे अथवा धात्रीका दूध दूषित होनेसे बकरीका दूध किम्वा पानी मिलाकर गायका दूध पिलाना। सौरीके बालकको माके दूधका अभाव होतो गायके दूधमें उतनही चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे पेट फूले तो सौंफ भिंगोया पानी १ तोला एक छटांक दूधमें मिलाकर पिलाना। इसी प्रकार स्तन्य छुड़ानेसे पित स्तनपानजनित रोग क्रमशः दूर होता है। तालु बैठ नेसे हरीतकी बच और कूठ इसका चूर्ण मधु और स्तनदूधमें मलाकर पिलाना।

आंख आनेकी चिकित्सा।—बच्चोंकी आंख आनेसे या कुकूनक रोग होनेसे गरम पानीकी पतली धार आधा हाथ ऊंचेसे देना और आंख धोना। गरम पानीमें कपड़ा भिंगोकर आंखका कीचड़ निकालना। एक रत्ती तूतिया एक छटांक साफ पानीमें मिलाकर एक शीशीमें भरना, यही पानी दिनभरमें २।३ बार आंखमें बूंद बूंद कर डालना। सेवारके रसमें कपड़ा भिंगोकर उसका काजल पाड़कर वही आंखमें लगाना। दारुहल्दी, सोया और गेरुमिट्टी बकरीके दूधमें पीसकर आंखके बाहर लेप करना।

पारिगर्भिक।—पारिगर्भिक रोगमें पहिले माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये। अग्निवृद्धिके लिये अग्निमान्द्य रोगोक्त यमानीपञ्चक, हिङ्गाष्टक चूर्ण आदि मृदुवीर्य्य औषध अल्पमात्रा सेवन कराना। दूधके साथ चूनेका पानी या सौंफका अर्क मिलाकर पिलाना। अतिसार आदि रोग इस अवस्थामें लक्षित हो तो उसमें वह रोग नाशक औषध प्रयोग करना। कुमारकल्याण रस, सेवन करानेसे पारिगर्भिक आदि रोग आराम होते हैं।

दन्तोद्भेदज रोग चिकित्सा।—दांत निकलनेके वक्त ज्वर, उदरामय आदि पीड़ामें एकाएकी कोई औषध प्रयोग करना उचित नहीं है। कारण दांत निकल आनेपर सब रोग आपही आप आराम हो जाते हैं। धवईका फूल, पीपल चूर्ण सहतमें मिलाकर या आंवलेका रस मसूड़ेमें घिसनेसे दांत जल्दी निकलता है। अन्यान्य रोगोंके लिये दवा देनेकी आवश्यकता हो तो दन्तोद्भेदगदान्तक, कुमारकल्याण और पिप्पल्याद्य घृत विचार

कर प्रयोग करना। दांत निकलनेमें अधिक देर होनेसे या तक-लीफ अधिक मालूम होनेसे वह स्थान चीर डालना।

दूध फेंकनेकी चिकित्सा।—दूध फेंकना आराम कर-नेके लिये दूधमें चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे आराम न हो तो दूध बन्दकर मांसका शूरुवा पिलाना। इस्ती और कण्टकारी फलका रस या पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और सोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण सहत और घीमें मिलाकर थोडा थोडा चटाना। आम्रकेशी, धानका लावा और सेन्धा नमक इन सबका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे दूध फेंकना बन्द होता है। टटका सरसोंका तेल दिनभरमें ३।४ बार पेटपर मालिश करना और एक टकड़ा फलालेन पेटमें लपेट रखना।

तड़काकी प्रथम चिकित्सा।—तडका उपस्थित होनेसे पहिले होशमें लानेका उपाय करना चाहिये। कलछी या लोहेकी सलाई आदि गरम कर कपालमें थोड़ा थोड़ा सेंक देना, आंखपर ठण्डे पानीका छीटा देना, यदि इससे भी होशमें न आवेतो नौसादर और चूना एकमें मिलाकर बालकके नाकके पास रखना इसके सूंघनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। फिर जिस रोगके कारणसे तडका हुआ है उसको तकलीफ दूर करना चाहिये। अतिरिक्त ज्वरसे तडका होनेपर आंख, मुख, शिर, पीठकीरीढ़ और मस्तकके पीछे ठण्डे पानीका छीटा देना। तेल और पानी एकत्र मिलाकर सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। बालकको प्यास मालूम हो तो भरपूर पानी पीनेको देना। इन सब क्रियाओंसे शरीरका उत्ताप कमहोजानेपर तडका होनेका डर नहीं रहता। नाताकतीके सबबसे तडका होनेपर राईका चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर उसी पानी में बालक को ठेहुनातक डूबो रखना। बालक हिलने डोलने

न पावे। इसके बाद मयदा और राईका चूर्ण समभाग थोड़े पानीमें मिलाकर पेरके तलवेमें पट्टी लगाना। बगल और हाथ पैरमें सेंक करना। हाथ पैर और छातीमें शोंठका चूर्ण मालिश करना। क्रिमि या दूसरे किसी सबबसे तड़का होनेपर सहन हो ऐसे गरम पानीमें बालकको गलेतक डुबा रखना और आधा हाथ ऊंचेसे उसके शिरपर ठण्ढे पानीकी धार देना। ५।६ मिनिट तक ऐसा कर बदन पोंछकर सुलादेना।

तड़कामें दस्त कराना।—सब प्रकारका तड़का आराम होनेपर दूधके साथ थोड़ा रेंडीका तेल मिलाकर पिलाना चाहिये। तड़काके बार बार हमलेसे बचानेके लिये चौगुने पानी में थोड़ी सञ्जीवनी सुरा अभावमें ब्राण्डि मिलाकर बालकको पिलाना चाहिये।

क्रिमिनाशक उपाय।—क्रिमिनाशके लिये भांटपत्ते-का रस या अन्यान्य क्रिमनाशक औषध प्रयोग करना। क्रिमि छोटी हो तो नमक की पिचकारीसे विशेष उपकार होता है। एक छटांक पानीमें थोड़ा नमक मिलाकर एक छोटी कांचकी पिचकारीसे बालकके मलद्वारमें देना। पिचकारीके मुहमें तेल लगाकर मलद्वारमें देना चाहिये। पानी तुरन्तही गिर न पड़े इससे मलद्वारको २।३ मिनिट अङ्गुठेसे दबा रखना। इसी तरह २।३ दिन पिचकारी देनेसे क्रिमिनाश होती है।

धनुष्टङ्कार चिकित्सा।—धनुष्टङ्कारमें होशमें लानेके लिये तड़का रोगोक्त उपाय करना। फिर माताका दूध पिलाना। बालक दूध खींच न सके तो दूध गारकर सीपसे दूध पिलाना। स्तनदूधके अभावमें गौका दूध पिलाना। विरेचक औषध न खा सके तो रेंडीके तेलमें थोड़ा तार्पिनका तेल मिलाकर पेटमें

मालिश कर ठण्ढा पानी देना। रेडीका तेल पिलाकर दस्त कराना बहुतही उपकारी है। नींद आनेके लिये नाभिके उपर गाजा या भाग पीसकर पुलटिस बाधना। चौगूनी मृतसञ्जीवनी सूरा या ब्राण्डी पिलानेसे भी नीद आती है। चाहे जैसे हो बालकको सुलाना चाहिये। बालक सुरा पान न करें तो मलद्वारमें पिचकारी देना। गरम पानीसे स्नान और सर्व्वाङ्गमें वायुनाशक कुब्जप्रसारिणी आदि तैल मर्द्दन विशेष उपकारी है।

ग्रहावेशमे कर्त्तव्य।—ग्रहावेश जनित पीडामें ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहशान्तिका उपाय करना। यासुरामासी, वच, कूठ, शिलाजीत, हल्दी, दारुहल्दी, शठी चम्पक, मोथा इन सब द्रव्योंके काढेसे स्नान कराना। इसको "सर्व्वौषधि स्नान" कहते है। अष्टमङ्गलघृत पान करानेसे भी ग्रहावेशकी शान्ति होती है।

बालकको ज्वर चिकित्सा।—बालकके ज्वरमें भद्र मुस्तादि काथ, रामेश्वर रस, बालरोगान्तक रस और ज्वररोगोक्त अन्यान्य मृदुवीर्य्य औषध उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना। ज्वरातिसार रोगमें धातक्यादि और बालचतुर्भद्रका चूर्ण सेवन कराना चाहिये। अतिसारमें वराहक्रान्ता, धवईका फूल और पद्मकेशर इसके कल्कका यवागू बनाकर सेवन करना। बकरीका दूध और जामुनके छालका रस समान भाग मिलाकर पिलाना। अथवा बेलकी गिरी, इन्द्रयव, बाला, मोचरस और मोथा, यह सब द्रव्य मिलाकर एक तोला, एक पाव बकरीका दूध और एक सेर पानीके साथ औटाना, दूध बाकी रहनेपर छानकर पिलाना। इसस ग्रहणी रोग भी आराम होता है। प्रवाहिका अर्थात् आमाशय रोगमें धानके लावाका चूर्ण मुलेठीका चूर्ण, चीनी और सहत यह सब द्रव्य अरवेचावलके धोवनके साथ सेवन कराना।

सफेद जीरा और राळका चूर्ण गुडके साथ सेवन कराना। ग्रहणी रोगकी शान्तिके लिये मिरच एक भाग, सोंठ २ भाग और कुरैया की छाल ४ भाग; इन सब द्रव्योंका चूर्ण गुड और मट्ठेके साथ सेवन कराना। अतिसारनाशक अन्यान्य औषध भी ग्रहणी रोगमें प्रयोग करना। बालकुटजावलेह और बालचाङ्गेरी घृत नामक औषध पुराना अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणीरोगमें विशेष उपकारी है। बेलकी गिरी और आमकी गुठलीके गूदेके काढ़ेके साथ धानकी लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर सेवन करानेसे भेद वमन दूर होता है। बेर, आमरूल, काकमाची और कएथ का पत्ता पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे भी बच्चोंका भेद वमन आराम होता है। आनाह और वातिक शूलरोगमें सेन्धव, बेलकी गिरी, इलायची, हींग और बभनेठी, इन सबका चूर्ण घीके साथ सेवन या पानीके साथ पान कराना। तृष्णारोगमें अनारबीज, जीरा और नागेश्वर इन सबका चूर्ण चीनी और सहतके साथ चटाना। हुचकी होनेसे गेरूमिट्टीका चूर्ण सहतके साथ चटाना चितामूल, सोंठ, दन्तीमूल और गोरखचाकुला, इन सब द्रव्यका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा द्राचा, जवासा हरीतकी और पीपल इन सबका चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर चटानेसे हिक्का, श्वास और कासरोग आराम होता है। बृहतीफल, कण्टकारीफल और पीपल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण सहतके साथ चटाना। कूठ, अतीस, काकडाशिङ्गी, पीपल और जवासा, इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटानेसे सब प्रकारकी खांसी आराम होती है। कण्टकारीका रस और काढ़ेमें मकरध्वज सेवन करानेसे कास और तत्संयुक्त ज्वर भी आराम होता है। कण्टकारीघृत सेवन करानेसे भी कास, श्वास आदि पीड़ामें विशेष

उपकार होता है। कास रोगोक्त कई मृदुवीर्य्य औषध और ज्वर रहनेसे ज्वरनाशक औषध थोडी मात्रा विचार कर देना। बच्चोंको पिसाब साफ न होनेसे अर्थात् मूत्रकृच्छ्र हो तो पीपल, मिरच, चीनी, सहत, छोटी इलायची, सैन्धव यह सब एकत्र मिलाकर चटाना। मुहमें घाव होनेसे सोहागा सहतमें मिलाकर रोज २।३ दफे लगाना। भेडीका दूध लगानेसे भी मुहका घाव जल्दी आराम होता है। कान पकनेसे अर्थात् कानसे पीप निकले तो गरम पानी या कच्चा दूध और पानी एकत्र मिलाकर पिचकारीसे कान धोना, फिर एक पतली सींकमें कपडा लपेटकर कान भीतरसे पोंछकर २।३ बूंद दवा डालना। महावरका पानी गरमकर कानमें भर देनेसे अथवा फिटकिरीका पानी कानमें देनेसे कानका पकना बन्द होता है। पामा और विचर्च्चिका आदि चर्म्मरोग होनेसे वही रोगनाशक प्रलेप और हमारा क्षतारि तैल आदि क्षतनिवारक तैल प्रयोग करना। बालक उपयुक्त मात्रा मोटा ताजा न हो तो अश्वगन्धाघृत सेवन कराना। थोडे दिनका बालक स्तनपान न कर सकेतो आंवला और हर्रीतकी चूर्ण घृत और सहत मिलाकर जीभमें घिसना। इस रीतिसे मुख साफ करदेनेसे बालक स्तनपान करसकता है।

बालककी औषधकी मात्रा।—ऊपर लिखे चूर्ण और औषध की मात्रा एक मासके बालकको एक रत्ती और फिर हरेक मासमें एक एक रत्तीभर मात्रा बढाना। एक वर्षसे अधिक उमरमें हरेक महीने एक एक मासा मात्रा बढाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—स्तन्यपायी बालकको जो जो रोग हो उसको दूध पिलानेवाली दाईको भी वही वही रोगका पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। बालकको किसी रोगमें उपवास कराना

उचित नहीं है। उपवास देनेके लायक रोगमें अल्प आहार देना चाहिये। अतिसार प्रभृति रोगमें गायके दूधके बदले बकरीका दूध पिलाना। यहभी अच्छी तरह हजम न हो तो एरारुट और हमारा "सञ्जीवन खाद्य" खिलाना चाहिये।

स्तनपान विधि।—सद्योजात स्वस्थ बालकको पहिले पहल गायका दूध पिलाना नहीं चाहिये। स्तनदूध पान कराना ही यथेष्ट है। स्तनपान करानेका समय निर्दिष्ट करना अच्छा है। पहिले थोड़े दिन विशेष नियमसे न चलनेपर भी एक मासके बाद समय निर्देश करना उचित है। दिनको २ घण्टाके अन्तरपर और रातको ३ घण्टा अन्तरपर स्तनपान कराना चाहिये। तीन महीनेके बालकको दिनको चार बार और रातको तीन बार स्तनपान करना। चार महीनेके बाद रातको दो बारसे अधिक स्तनपान करानेकी आवश्यकता नहीं है।

स्तनपान बन्द करना।—नौमाससे पहिले बालकको स्तनपान बन्द करना उचित नहीं है, एक वर्षके बाद स्तनपान बन्द करना अच्छा है। स्तनपान एकाएकी बन्द न कर क्रमशः बन्द करना चाहिये।

बालकके पीनेका दूध।—अवस्थानुसार गायका दूध या बकरीका दूध थोड़ा बालकको पिलाना। गदहेका दूध पिलाना उचित नहीं है। सद्योजात बालकको दूधके बराबर पानी और चूनेका पानी मिला गरमकर थोड़ी मिस्री या चीनी मिलाकर पिलाना। प्रत्येक बार दूध तयार कर पिलाना। बालक सात दिनका होनेपर पानी न मिलाकर खाली चूनेका पानी मिलाना। डेढ़मासतक दूधके तीन भागका एक भाग चूनेका पानी मिलाना। फिर पांचवें महीने तक चार भागका एक भाग

चूनेका पानी मिलाना। इसके बाद चूनेका पानी मिलानेकी जरूरत नहीं रहती है।

आवश्यकीय बातें।—प्रथम दो महीने तक दिनको ३ बार और रातको दो बार दूध पिलाना। अनियमित रूपसे बार बार दूध पिलाना उचित नहीं है। बालक अपनी इच्छासे जितना पीवे उतनाही पिलाना चाहिये जोरकर पिलानेसे नुकसान हो सकता है। दो मासकी उमरके बाद दिनको चार बार और रातको एक दफे दूध पिलाना। ६।७ मासकी अवस्थामें अर्थात् सामनेका दो दांत निकलने पर दूधके सिवाय और भी हलका आहार थोड़ा थोड़ा देना चाहिये। दूध सांबूदाना मोहनभोग सहने पर थोड़ा थोडाकर देना चाहिये। फिर दूध भात या खीर थोड़ा देना उचित है। दो वर्षकी उमर न होनेतक भात या रोठी खानेको देना उचित नहीं है।

शिशुचर्य्या।— बालकके सोनेका घर साफ और लम्बा चौड़ा होना चाहिये जिसमें अच्छी हवा प्रतिवाहित हो सके। जाड़ा और बरसातमें रातको घरका जंगला बन्द रखना तथा बालकको कुरता पहिराना, दुसरे मौसममें आवश्यक नहीहै। कुरता ढीला रखना चाहिये। सहनेपर ठण्डे पानीसे स्नान कराना चाहिये ३।४ वर्षकी उमर तक दिनको सोने देना उचित है। अपने आपसे चलना सीखनेसे पहिले जोर कर नहीं चलाना इससे अङ्ग विकृत होनेकी आशङ्का है। धमका कर या भकाऊ आदि बहुत नामसे डराना उचित नहीं है। अकारण खिलाना, या अधिक कुदाना मना है। खेलनेके उपयुक्त उमर तक खेलने देना।

वैद्यक-शिक्षा।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

परिभाषा।—आयुर्वेद शास्त्रोक्त औषधादि प्रस्तुत और प्रयोग करनेकी प्रणाली कई एक साधारण नियमोंके वशवर्ती है। जिससे विस्तृत रूपसे लिखा जाय उसको परिभाषा कहते हैं। यहां परिभाषाध्यायके यावतीय जानने लायक विषय विस्तृत रूपसे आलोचित होते हैं।

परिमाण विधि।—३ सर्षपका एक यव। ३ यव या ४ धानका १ रत्ती। ६ रत्तीका एक आना। १० रत्ती का एक माषा। (सुश्रुतके मतसे ५ रत्तीका एक माषा होता है) ४ माषाका १ शाण (आधा तोला) २ शाणका १ कोल (एक तोला) २ कोलका १ कर्ष (दो तोला)। २ कर्षको एक शुक्ति (चार तोला) २ शुक्तिका १ एक पल (आठ तोला)। २ पलका एक प्रसृति (एक पाव)। २ प्रसृतिका एक अंजली या कुडव (आधा सेर)। २ कुडवका एक शराव (एक सेर)। २ शरावका एक प्रस्थ। ४ प्रस्थका एक आढ़क (८ सेर)। ४ आढक का एक द्रोण (३२ सेर)। दो द्रोणका एक कुम्भ (६४ सेर)। १०० पलका एक तुला (१२॥ सेर)। २००० पलका एक भार। २ कुम्भका एक द्रोणी या गोणी (३ मन ८ सेर)। ४ गोणीका एक खारी (१२ मन ३२ सेर)।

अनुक्त विषयमें ग्रहण विधि।—जिस औषधके निर्दिष्ट द्रव्य समूहोंमें जिसका परिमाण लिखा न हो वह और सब दवाओंके परिमाणमें लेना चाहिये। औषध सेवनका समय निर्धारित न रहनेसे सबेरे औषध सेवन करना। द्रव्यका कौन अङ्ग लेना होगा लिखा न रहनेसे जड़ लेना। औषध पाक करने या रखनेके पात्रका उल्लेख न हो तो मिट्टीका पात्र लेना। द्रव्यका मूल लेतो वक्त जो सब मूल बड़ो और जिसमें काठ है उसका काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना तथा जो सब मूल छोटी और पतली है उसका काठभाग समेत लेना चाहिये। अङ्ग विशेषका उल्लेख रहनेसे वही अङ्ग ग्रहण करना। द्रव पदार्थ विशेषका उल्लेख न रहनेसे पानी लेना चाहिये। द्रव्य विशेषका विशेष परिचय लिखा न रहनेसे उत्पल शब्दमें नीलोत्पल पूरीष रसमें गोमय रस, चन्दनमें लाल चन्दन, सर्षपमें सफेद सरसो, लवणमें सेन्धा नमक, मूत्रमें गायका मूत्र, दूध और घोमें गायका दूध घी लेना चाहिये। मांस ग्रहणमें चौपायी जन्तुमें स्त्रीजातिका और पक्षीमें पुंजातिका मांस ग्रहण करना। किन्तु छाग मांसमें नपुंसक छागका मांस और शृगाल मांसमें पुंशृगालका मांस ग्रहण करना। नपुंसक छागका अभाव होनेसे वन्ध्या छागोका मांस लेसकते है। प्राय सब औषध नया ग्रहण करना उचित है। सिर्फ गुड़, घृत, सहत, धनिया, पीपल और होंग; यह सब द्रव्य पुराना लेना चाहिये।

द्रव्यका प्रतिनिधि।—पुराने गुड़के अभावमें नया गुड़ चार पहर धूपमें रखकर लेना। सौराष्ट्र मृत्तिकाके अभावमें पद्मपर्पटी, तगर पादुकाके अभावमें हरसिङ्गार, लोहेके अभावमें मण्डूर, सफेद सरसोंके अभावमें लाल सरसो, चाभ और गजपिप्पलीके अभावमें पिप्पलामूल, सुञ्जतिका अभावमें मानमिट्टी, कुङ्कुमके अभावमें

हरिद्रा, मुक्ताके अभावमें सीपका चूर्ण, हीराके अभावमें चुन्नी या कोडीका भस्म, स्वर्ण और रौप्यके अभावमे लौहभस्म, पुष्कर मूलके अभावमें कूठ, रास्नाके अभावमें बादरी जडी रसाञ्जनके अभावमें दारुहल्दीका काढा, पुष्पके अभावमें नरम फल, मेदके अभावमें असगन्ध, महामेद अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभावमें गुरिच, ऋषभकके बदलेमें विदारीकन्द, ऋद्धिके बदले में बरियारा, वृद्धिके बदलेमें गोरखचाकुला, काकोली और क्षीर-काकोलीके अभावमें शतावर, रोहितक छालके बदलेमें नीमकी छाल, कस्तूरीके बदलेमें खटाशी और अन्यान्य दूधके अभावमें गायका दूध लेना चाहिये। इन सब द्रव्योंके सिवाय और किसी द्रव्यके अभावमें उस द्रव्यके समान गुणवाला दूसरा द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। मैनावा असह्य होनेसे उसके बदलेमें लालचन्दन देना।

काढ़ा बनानेकी विधि।—काढेमें जितनी दवायें हों वह सब समभाग मिलाकर दो तोले होनी चाहिये। जैसे दो द्रव्यमें प्रत्येक एक तोला, चार द्रव्यमें प्रत्येक आधा तोला। इसी नियमसे जितनी दवायें हों सब मिलाकर दो तोले लेना। फिर वह सब द्रव्य ३२ तोले पानीमें औटाना तथा ८ तोले पानी रहते उतारकर छान लेना। काढेमें कोई वस्तु मिलाकर लेना होतो काढ़ा पीती वक्त मिलाना चाहिये। मिलानेवाली दवाकी मात्रा आधा तोला। एक द्रव्य मिलाना हो तो ॥) तोला, दो द्रव्य मिलाना हो चार आनेभर, पर रोगीके वलके अनुसार इसकी मात्रा कमभी कर सकते है। काढा एक दिन बनाकर २।३ दिन पीना उचित नही है। रोज नये द्रव्यका नया काढा बनाना चाहिये।

शीतकषाय प्रस्तुत विधि।—शीतकषाय बनाना होतो वैसही दो तोले द्रव्य कूटकर १२ तोले पानीमें पहिले दिन शामको भिंगो रखना तथा सबेरे छानकर सेवन करना। फांट कषाय प्रस्तुत करना हो तो वही कूटी हुई दवायें ४ चौगूने गरम पानीमें डी देर भिंगो रखना फिर छानकर सेवन करना। कच्ची या । दवा पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते है। कच्चा द्रव्य कूटकर उसका रस लेनेको स्वरस कहते है। काढेसे स्वरसतकको पञ्चकषाय कहते है। किसी द्रव्यका रस पुटपकसे लेना हो तो वही सब द्रव्य कूटकर जामून या बडके पत्तेमें लपेट रस्सीसे मजबूत बांधकर उपरसे एक या दो अङ्गुल मिट्टी लपेटना। फिर सुखा कर आगमें जलाना आगकी गरमीसे मिट्टी लाल रंग होनेपर भीतरका द्रव्य निकालकर रस निकाल लेना।

चूर्ण औषध प्रस्तुत विधि।—औषधका चूर्ण करना हो तो, सब द्रव अलग अलग अच्छी तरह सुखा और कूटकर कपडेसे छान लेना; फिर जो सब द्रव्य एकत्र मिलाना हो वह सब एक एक कर निर्द्दिष्ट परिमानसे लेकर एकत्र मिलाना। किसो चूर्ण में भावना देनेकी व्यवस्था रहने पर उसमें निर्द्दिष्ट द्रव्यको भावना देकर सुखाकर चूर्ण करना।

वटिका औषध प्रस्तुत विधि।—वटिका बनाना हो तो, निर्द्दिष्ट द्रव्य समूहके चूर्णमें द्रव पदार्थ विशेष को भावना देकर खलमें अच्छी तरह घोटना, फिर यव, सर्षप या गुञ्जा आदिके बराबर गोली बनाना। किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे केवल पानीमें खल करना। गोलीका परिमाण न लिखा हो तो प्रायः एक रत्ती परिमाण गोली बनाना। भावना देनेकी रीति—जो सब चूर्ण पदार्थमें भावना देना हो, वह किसो

द्रव्यके रस या काढ़ेमें अच्छी तरह भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखना। ऐसही जिस औषधमें जितने दिन भावना देना हो उतने दिन तक रोज भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखकर खल करना।

मोदक प्रस्तुत विधि।—जो सब मोदक औषध पाक करना नहो हैं, वह निर्द्दिष्ट परिमित अथवा अनिर्द्दिष्ट स्थलमें चूर्ण द्रव्यका दूना गुड़ और समान सहतमें खलकर निर्द्दिष्ट मात्रासे गोली बनाना, तथा जो सब मोदक पाक करना हो, उसमें पहिले गुड या चीनो चूर्णके दूने पानीमें औटाना। पक्की चाशनी हो जानेपर नीचे उतारकर उसमें चूर्ण डालकर अच्छी तरह मिलना चाहिये। किसी किसी जगह चाशनी आगपर रहते हो चूर्ण मिलाते है। मोदक प्रस्तुत हो जानेपर घृत भावित बरतन या आधुनिक चीनी मिट्टीके बरतन में रखना।

अवलेह प्रस्तुत वधि।—अवलेह बनाना हो तो पहिले काढ़ा तयार कर फिर उसे औटाकर गाढ़ा करना। चीनीसे अवलेह बनाना हो तो चूर्ण पदार्थको चौगुनी चीनी या गुड़का रस बना लेना। किसी द्रव पदार्थके साथ अवलेह बनाना हो तो वह भी चूर्णका दूना लेना चाहिये। मोदककी तरह अवलेहकी भी चाशनी पक्की होनी चाहिये।

गुग्गुलु पाक विधि।—पहिले गुग्गुलका मल आदि पदार्थ निकालकर दशमूलके गरम काढ़ेमें मिलाकर छान लेना अथवा गुग्गुलु कपडेमें ढीला बांधकर दोलायन्त्रमें अर्थात् हांड़ीमें फुला देना तथा गायका दूध या त्रिफलाके काढ़ेमें पाककर छान लेना, फिर धूपमें सुखाकर घी मिलाना। इस रीतिसे गुग्गुलु शोधा जाता है। यही शोधित गुग्गुलु आगमें पाक करनेका उपदेश हो

तो करना, उपदेश न हो, तो नही करना, निर्दिष्ट चूर्णादि पदार्थके साथ मिलालेनेही से गुगुलु तैयार होता है।

पुटपाक विधि।—एक गज गहिरा एक गढा खोदना, फिर उसका तीन भाग कण्डेसे भरना तथा उसके उपर दवाका मुषा रखकर उस मुषेके उपरसे कण्डा रख गढा भर देना, फिर उसमें आग लगाना। जब सब कण्डा राख हो जाय तब वह मुषा बाहर कर उसके भीतरकी दवा निकाल लेना। मुषावस्त्र और मिट्टीसे अच्छी तरह लपेटना चाहिये। गढेका मुख एक हाथ और नीचेका भाग १॥ हाथ चौडा होना चाहिये। इसीको गज-पुट कहते है।

वालुका यन्त्रसे औषध पाक विधि।—वालुका यन्त्र या लवण यन्त्रमें औषध पाक करना हो तो एक हांडीमें बालु या लवण भरना तथा उसके उपर औषधिका मुषा रखकर निर्दिष्ट समयतक आगपर चढाना। मुषेको कपडा और मिट्टीसे लेप करना।

सुरा प्रस्तुत विधि।—सुरा बनाना हो तो, कलवारकी तरह शराब चुआनेवाला यन्त्र बनाकर उससे चुआ लेना। आसव और अरिष्ट चुआना नही पडता है केवल निर्दिष्ट समयतक धान्य-राशि या जमीनमें गाडकर सडा लेनेसे तयार होता है।

स्नेहपाक विधि।—तैल और घृत पाक करनेसे पहिले उसकी मूर्च्छा करना आवश्यक है। तिलके तेलकी मूर्च्छा करना हो तो, लोहेकी कढाई या दूसरे किसी पात्रमें तेल हलकी आंच पर चढाना; तेल निस्फेन होजानेपर नीचे उतार कर थोड़ा ठण्ढा होनेपर, उसमें पिसी हुई हल्दीका पानी फिर वैसही मठीज और क्रमशः पिसा हुआ लोध, मोथा, मालुका, आंवला, बहेडा,

हरीनकी, केवड़ेका फूल, बड़कीलोर और बाला; यह सब द्रव्य थोड़ा थोड़ा मिलाकर तेलका चौगूना पानी देकर पाक करना; थोड़ा पानी रहते ही नीचे उतारना। फिर ७ दिनतक कोई पाक नही करना। मूर्च्छाके लिये मजीठ आदि द्रव्योंके वजन,— जितना तेल हो उसके १६ भागका एक भाग मजीठ। और दूसरे द्रव्य मजीठका चौथाई भाग लेना, अर्थात् तेल ४ सेर हो तो मजीठ एक पाव और दूसरे द्रव्य सब एक एक छटांक लेना चाहिये।

वायुनाशक तैलपाक विधि।—वायुनाशक तैल पाक करनेमें मूर्च्छित तेलका आठवां भाग आम, जामुन, कैथ और बड़े नीबू का पत्ता चौगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहते उतारकर छानकर उसी काढ़ेके साथ मूर्च्छित तेल और एक दफे औटाना चाहिये।

सर्षप तैल मूर्च्छा विधि।—सर्षप तैलकी मूर्च्छामें यथाक्रम हल्दी, मजीठ, आंवला, मोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, बाला, नालुका और बहेड़ा; यह सब द्रव्य, और रेंडीके तेलकी मूर्च्छामें मजीठ, मोथा, धनिया, त्रिफला, जयन्ती पत्र, बनखजूर, बड़कीलोर, हल्दी, दारुहल्दी, नालुका, केवड़ेका फूल, दही और कांजी, यह सब देना चाहिये। ४ सेर सरसोंके तेलमें मजीठके सिवाय बाकी सब द्रव्य दो दो तोले और ४ सेर रेंडीके तेलमें मजीठके सिवाय अन्यान्य द्रव्य ४ तोले मात्रासे मिलाना। मजीठ सब तेलमें समान परिमाण से देना उचित है, अर्थात् ४ सेर तेलमें एक पाव मजीठ देना।

घृतमूर्च्छा विधि।—घृतमूर्च्छामें घी आगपर चढ़ा फेनिल होनेपर नीचे उतार थोड़ा ठण्ढा होनेपर पहिले हल्दीका

पानी, फिर नीबूका रस और उसके बाद पिसी हुई हरीतकी आंवला, बहेड़ा, और मोथा डालना, तथा तेलको तरह चौगुना पानी देकर फिर औटाना चाहिये। ४ सेर घीमें सब द्रव्य ८ तोले मिलाना।

आवश्यकीय बातें।—मूर्च्छाके द्रव्य समूह अच्छी तरह छान कर, तेल या घीके साथ क्वाथ पाक करना चाहिये जितने क्वाथके साथ पाक करनेको विधि निर्दिष्ट हो उसके प्रत्येक के साथ अलग अलग पाक करना चाहिये। पहिले क्वाथ द्रव्य तैलादिका दूना लेकर उसके आठ गूने पानीके साथ अर्थात् ४ सेर क्वाथ द्रव्य ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहने पर छान लेना; फिर उसी काढेके साथ तैलादि पाक करना। क्वाथ पाकके बाद विधिके अनुसार दूध, दही, काञ्जी, गोमूत्र और रस आदि द्रव पदार्थके साथ तैलादि पाक करना। ये सब द्रव्यका परिमाण निर्दिष्ट न रहनेसे प्रत्येक द्रव्य स्नेहके समान लेना। किन्तु क्वाथादि और कोई द्रव पदार्थके साथ पाक करनेकी विधि न रहनेसे केवल दूधहीके साथ विहित रहनेसे स्नेह पदार्थका चौगूना दूध लेना चाहिये। कोई कोई दूध पाकके समय दूधमें चौगूना पानी मिलाकर पाक करनेका उपदेश देते है। इसके बाद कल्क पाक करना उचित है। सूखा या कच्चा द्रव्य पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते है। स्नेह पदार्थके साथ मिलाकर स्नेह पाक करना; अर्थात् ४ सेर स्नेह पदार्थमें १ सेर कल्क द्रव्य, ४सेर द्रव पदार्थके साथ मिलाना। कल्क द्रव्यके साथ किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे चौगूने पानीके साथ कल्क पाक करना। कल्क पाक करते वख्त जब कल्क द्रव्य अङ्गुलीसे बत्ती या गोली बन जाय और आगमें देनेसे किसी तरहका शब्द न हो तो पाक

शेष जानना। तब चुल्हेसे नीचे उतार रखना और सात दिनके बाद कल्क द्रव्य छान लेना।

गन्धपाक विधि।—अधिकांश तेलमें सबसे पीछे एक दफे गन्धपाक करनेकी विधि है। कूठ, नालुका, खटासी, खसकी जड़, सफेद चन्दन, जटामांसी, तेजपत्ता, नखी, कस्तूरी जायफल, शीतलचीनी, कुङ्कुम, दालचीनी, लताकस्तूरी बच, छोटी इलायची, अगरु, मोथा, कपूर, गठिवन, धूप सरल, गुंटवरोसा, लौंग, गन्धमात्रा, छड़ीला, सोवा, मेथी, नागर मोथा, शठी, जावित्री, शैलज, देवदारु और जीरा यह सब तथा गन्ध-द्रव्योंमें छड़ीला, कुङ्कुम, नखी, खटासी, इलायची, सफेद चन्दन, कस्तूरी, और कपूरके सिवाय और सब द्रव्य पीसकर या चूर्ण बनाकर कल्क पाककी तरह चौगूने पानीमें औटाना। खटासी पाकके वक्त तेलमें देना और सीज जानेपर निकाल डालना। पाक शेष होनेपर छड़ीला, कुङ्कुम, नखी, इलायची, सफेद चन्दन और कस्तूरी यह सब द्रव तेलमें डालकर पांच दिनके बाद छान लेना। घृत पाकमें गन्ध पाककी विधि नहीं है।

औषध सेवन काल।—रोग और रोगीके अवस्थानुसार भिन्न भिन्न समयमें औषध सेवन कराना चाहिये। पित्त और कफके प्रकोपमें तथा विरेचनादि शुद्धि कार्य्यके लिये सवेरे औषध सेवन कराना चाहिये। अपान वायु दूषित होनेसे भोजनके पहिले, समान वायुके प्रकोपमें भोजनके मध्यमें अर्थात् भोजन करते वक्त, व्यान वायु कुपित होनेसे भोजनके बाद, उदान वायुके प्रकोपमें शामको भोजनके साथ और प्राणवायुके प्रकोपमें शामको भोजनके बाद औषध सेवन कराना चाहिये। हिक्का, आक्षेप और कम्प रोगमें भोजनसे पहिले और पीछे औषध सेवन करानेका उपदेश

है। अग्निमान्द्य और अरुचि रोगमें भोजनके साथ औषध सेवन कराना चाहिये। अजीर्ण नाशक औषध रातही को सेवन करने की विधि है। तृष्णा, वमि, हिक्का, श्वास और विष रोगमें मुहुर्मुहु औषध सेवन कराना आवश्यक है।

साधारणतः प्रायः सब औषध सवेरेही सेवन करानेकी प्रथा है, पर २।३ औषध रोज सेवन कराना हो तो विचार कर कोई सवेरे कोई उसके २।३ घण्टे बाद और कोई तीसरे पहरको दिया जाता है।

अनुपान विधि।—बहुतेरी दवायें सेवन करनेके बाद कोई एक पतला पदार्थ पीने की विधि है, उसीको अनुपान कहते हैं। किन्तु साधारणतः सब महत प्रभृति जो सब द्रव पदार्थमें औषध मिलाकर सेवन कराया जाता है वही अनुपान शब्दमें व्यवहृत होता आया है। औषध मात्र अनुपान विशेषके साथ देनेसे वह थोड़ेही देरमें अधिक कार्यकारक होता है; इससे प्रायः सब औषध अनुपान विशेषके साथ सेवन कराना चाहिये। जो रोग नाशक औषध हो अनुपान भी वही रोग नाशक व्यवस्था करना चाहिये। कफ ज्वरमें अनुपान महत, पानका रस अदरखका रस और तुलसी पत्रके रसमें देना। पित्त ज्वरमें परवरका रस, खेतपापड़ेका रस या काढ़ा, गुरिचका रस और नीमकी छालका रस या काढ़ा। वातज्वरमें महत, गुरिच का रस और चिरायता भिंगोया पानी आदि का अनुपान देना। विषम ज्वरमें महत, पीपलका चूर्ण, तुलसीके पत्तेका रस, हरसिंगारके पत्तेका रस, वेलके पत्तेका रस और गोलमरिच का चूर्ण आदि अनुपान देना। अतिसार रोगमें वेलकी छाल, धवईका फूल और कुरैया। कास, कफप्रधान श्वास और प्रतिश्याय आदि रोगमें अडूसेका पत्ता, तुल-

सोका पत्ता, पान और अदरखका रस; अडूसेको छाल, बभनेठो, मुलेठी, कटेली, कटफल और कूठ आदि द्रव्यका काढ़ा और बच, तालिश पत्र, पोपल, काकड़ाशिङ्गो और वंशलोचन आदिका चूर्ण। वायुप्रधान श्वासमें बहेड़ेका काढ़ा या बहेड़ेके बोजके गूदेका चूर्ण और सहत। रक्तभेद, रक्त वमन और रक्तस्राव दूर करनेके लिये अडूसेके पत्तेका रस, विशल्यकर्णीका रस या काढ़ा, दूबका रस, बकरीका दूध और मोचरसका चूर्ण। शोथ रोगमें बेलके पत्तेका रस, सफेद पुनर्नवा का रस या काढ़ा, सूखी मूलीका काढ़ा और गोलमिरच चूर्ण। पाण्डू और कामला आदि रोगमें खेतपापड़ाका रस या गुरिचका रस आदि। मलभेद करानेके लिये निसृत मूलका चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, सनाय भिंगोया पानी या काढ़ा, कुटकीका काढ़ा, हरोतकी भिंगोया पानी या गरम दूध। मूत्र विरेचन अर्थात् पिशाब साफ करानेके लिये स्थलपद्मके पत्तेका रस पत्थर चूरके पत्तेका रस, सोरा भिंगोया पानी, कबावचीनीका चूर्ण और गोक्षुर बीज, कुशमूल, कासमूल, खसकी जड़ और काली ऊखके जड़का काढ़ा आदि। बहुमूत्र निवारणके लिये गुलरके बीजका चूर्ण, जामुनके बीजका चूर्ण, मोचरस, कच्ची हल्दीका रस, आंवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस, दारुहल्दीका चूर्ण, मजीठ और असगन्धका काढ़ा, घिसा हुआ सफेद चन्दन, गोंद भिंगोया पानी, कदम छालका रस और कसेरूका रस। प्रदर रोगमें गुरिचका रस, अशोक छालका काढ़ा और रक्त शोधक अन्यान्य औषध। रजःस्राव करानेके लिये सुसब्बर, उलटा कमल, लताफिटकिरीका पत्ता और ओड़उलके फूलका रस। अग्निमान्द्य रोगमें अजवाईन, अजमोदा और सोफ भिंगोया पानी, तथा पीपल, पिपला मूल, गोलमिरच, चाभ, सोंठ और हींगका

चूर्ण। क्रिमि रोगमें विडङ्ग चूर्ण, अनारके जडका काढा और अनारसका पत्ता, खजूरका पत्ता, चम्पाका पत्ता और निसिन्दा पत्तेका रस। वमन रोगमें बडो इलायचीका काढा या चूर्ण। वायु रोगमें त्रिफला भिंगोया पानी, सतावरका रस, बरियारेका काढा, बिदारीकन्द, आमला या त्रिफला भिंगोया पानी। शुक्र-वृद्धि और शरीर पुष्टिके लिये मक्खन, दूधकी मलाई, दूध, कौंवाच-की बीज, बिदारीकन्द, असगन्ध, सेमरकी मुसलीका रस और अनन्तमूलका काढा अनुपान व्यवस्था करना।

अवस्था विशेष की व्यवस्था।—रोग और रोगीकी अवस्था विचारकर उक्त अनुपानोंमें काढा या भिंगोया हुआ पानी एक छटांक, द्रव्यका रस २ तोले या एक तोला और चूर्ण एक आना या आधा आनेभर प्रयोग करना। चूर्ण अनुपानके साथ उपयुक्त मधु मिलाना चाहिये पित्तके आधिक्यके सिवाय अन्यान्य सब अवस्थामें मधु देना चाहिये। वटिका और चूर्ण औषधमें ही यह सब अनुपान व्यवहृत होता है। मोदक, गुग्गुलु और गुड आदि औषध, अवस्था विशेषके अनुसार ठण्ढा पानी, गरम पानी और गरम दूधके साथ सेवन कराना। घृत केवल एक छटांक गरम दूध और चार आनेभर चीनीके साथ मिलाकर पीना चाहिये।

धातु आदिका शोधन और मारण विधि।

—o—

सर्व्व धातु शोधन विधि।—स्वर्णादि धातुका बहुत पतला पत्तर काटना फिर आगमें गरम कर यथाक्रम तैल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र और कुरथीके काढेमें बुझाना, इसी प्रकार तीन बार करनेसे सब धातुका शोधन होता है। रागा जल्दी गल जाता है, इससे इसका पत्तर न बनाकर केवल गलाकर तैलादि पदार्थोंमें बुझाना।

स्वर्णभस्म।—शोधित सोनेके पत्तरको कैंचीसे छोटा छोटा टुकडा कर काटना, फिर समभाग पारेके साथ मर्द्दन कर एक गोला बनाना। एक मिट्टीके कटोरेमें सोनेके वजन बराबर गन्धक चूर्ण रख उपर वह गोला रखना, फिर ऊपर से गन्धक चूर्ण भर मिट्टीका लेप करना तथा ३० लड्डी कण्डेके पुटमें फूकना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकालकर फिर वैसही पारेके साथ खलकर गन्धक मिला पुटपाक करना। इसीतरह १४ बार मर्द्दन और पुटपाक करनेसे स्वर्णका भस्म तयार होता है।

रौप्य भस्म।—सोनेकी तरह चांदीका भी पत्तर बनाकर समभाग पारेके साथ मर्द्दन करना। फिर समानभाग हरिताल, गन्धक और नीबूके रसमें खल कर सोने की तरह फूकना। इसी तरह २१ पुट देनेसे चांदीको भस्म तयार होता है।

ताम्रभस्म।—समभाग पारा गन्धक की कज्जली बडे नीबूके रसमें घनकर विशुद्ध ताम्बेके पत्रमें इसी कज्जलीका लेप

कर मिट्टीके बरतनमें रखना तथा उपरसे ढकना रख पुटपाकमें फूंकना। पारा गन्धक के अभावमें बड़े नीबूके रसमें हिङ्गुल मिलाकर उसीका लेप वारनेका भी उपदेश है। ताम्रभस्म तयार होनेपर उसका अमृतीकरण करना चाहिये, इससे वमन, भ्रम और विरेचन आदि ताम्र सेवन जनित उपद्रव नही होता। जारित ताम्र किसी खट्टे रसमें खलकर एक गोला बनाना फिर वह गोला एक सूरणके भीतर रख सूरणके चारो तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर गजपुटमें फूंकना, इसीको अमृतीकरण कहते है। पित्तल और कांसा भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

वङ्ग भस्म।—लोहेकी कढाईमें रांगा गलाना और क्रमशः उसमें रांगेके समान हल्दी का चूर्ण, अजवाईनका चूर्ण, जीरेका चूर्ण, इमलीके छालका चूर्ण और पीपलके छालका चूर्ण एक एक कर डालना तथा लगातार चलाते रहना। सफेद रंग और साफ चूर्ण हो जानेपर रांगेका भस्म तयार हुआ जानना। जस्ता भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

सीसक भस्म।—लोहेकी कढाईमें सीसा और जवाखार एकत्र धीमी आंचपर चढाना, सीसेको राख न होनेतक बार बार उसमें जवाखार मिलाकर हिलाना चाहिये। लाल रंग होजाने पर नीचे उतार कर पानीसे धो फिर आंचपर सुखा लेना। इस रीतिसे सीसेका पीला भस्म तयार होता है। काला भस्म करना हो तो, सीसा आंचपर गल जानेसे मैनसिल का चूर्ण मिलाकर चलाना जब धूलेकी तरह हो जाय तब नीचे उतार रखना, फिर गन्धक का चूर्ण मिलाकर नीबूके रसमें खलकर पुटपाक करना। यह दोनो प्रकारका भस्म औषधादिमें प्रयोग होता है।

लौह भस्म।—पूर्व्वोक्त विधिके अनुसार लोहा शोधकर

अर्थात् लोहेका पत्र एक एक बार गरम कर क्रमशः दूध, कांजी, गोमूत्र और त्रिफलाके काढ़ेमें तीन तीनबार बुझाना। दूध, कांजी और गोमूत्र लोहेका दूना और लोहेका आठगूना त्रिफला, चोगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहने पर छान लेना। इसी तरह निषेक कार्य्यके बाद लोहपत्रका चूर्णकर २० बार गजपुटमें फूंकना, प्रत्येक बार गोमूत्रकी भावना देना चाहि । लोहा जितनी बार फूंका जायगा उतनही उसका गुणभी अधिक होगा। सहस्र पुटित लौह सबसे अधिक उपकारी और सब कार्य्यमें प्रशस्त है।

अभ्र भस्म।—भस्मके लिये क्षणाभ्र लेना। पहिले क्षणाभ्र आंचमें जलाकर दूधमें देना फिर तबक अलग अलग कर चौराईके रसमें या किसी अम्ल रसमें ८ पहर भावना देनेसे अभ्र शोधित होता है। फिर वही शोधित अभ्रके चार भागका एक भाग शालिधान्यके साथ एक कम्बलमें बांधकर तीन दिन पानीमें भिंगो रखना, फिर हाथसे मर्द्दन करनेसे बहुत छोटा छोटा बालूकी तरह अभ्रकण निकलता है। वही भस्म करने योग्य है। इस अभ्रको धान्याभ्र कहते हैं। धान्याभ्र गोमूत्रमें मर्द्दन कर गजपुटमें फूंकनेसे अभ्रभस्म तयार होता है। जबतक अभ्र भस्मका चन्द्र अर्थात् चमकीला अंश नष्ट न होजाय तबतक औषधादिमें व्यवहार करना उचित नहीं है। सहस्रपुटित अभ्र सब काममें प्रयोग करना चाहिये। अभ्रभस्मका अमृतीकरण विधि —त्रिफलाका काढ़ा २ सेर, गायका घी एक सेर और जारित अभ्र सवासेर यह सब द्रव्य एकत्र लोहेकी कढ़ाईमें धीमी आंचपर चढ़ाना, पाक शेषमें चूर्ण हो जानेपर अमृतीकरण शेष हुआ जानना।

मण्डूर।—लोह जलाते वक्त उसमेंसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर कहते है। सौवर्षसे अधिक दिनका पुराना मण्डूर औषधके लिये ग्रहण करना। ६० वर्षका पुराना भी ले सकते है, किन्तु इससे कम दिनका मण्डूर कदापि नही लेना। मण्डूर आगमें सात बार गरम कर गोमूत्रमें बुझाना। फिर वही मण्डूर चूर्णकर गजपुटमें फूकनेसे औषधके उपयोगी होता है।

स्वर्ण माक्षिक।—तीनभाग स्वर्णमाक्षिक और एक भाग सेन्धा लवण बड़े नीबूके रसमें मर्द्दनकर लोहपात्रमें पाक करना, पाकके समय बार बार हिलाना। लोहपात्र जब लाल हो जाय तब स्वर्णमाक्षिक विशुद्ध हुआ जानना। फिर वही स्वर्णमाक्षिक कुरथीके काढ़ेसे किम्वा तिलके तेलमें अथवा मट्ठा किम्वा बकरीके दूधमें मर्द्दनकर गजपुटमें फूकना। रौप्य-माक्षिक कांकरोल, मेढाश्रृङ्गी और बड़े नीबूके रसमे भिंगोकर तेज धूपमें रखनेसे विशुद्ध होता है।

तुतियाकी शोधन विधि।—बड़े नीबूके रसमें खल-कर लघु पुटमें पाक कर तीन दिन दहीके पानीको भावना देनेसे तुतिया शुद्ध तथा औषध के काम लायक होती है।

शिलाजीत शोधन।—गोमूत्रकी तरह गन्ध, काला रंग, तिक्त और कषाय रस, शीतल, स्निग्ध, मृदु और भारी हो ऐसो शिलाजीत लेना। शिलाजीत पहिले एक पहर गरम पानी में भिंगो रखना, फिर कपड़ेसे एक मिट्टीके बरतनमें छानकर दिनभर धूपमें रखना। शामको पानीके उपरवाला मलाईकी तरह पदार्थ एक बरतन में निकाल लेना, इसी तरह रोज धूपमें रखकर उसमेंको सब मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिला-

जीत है। असल शिलाजीत आगमें देनेसे लिङ्गको तरह उपर को उठता है तथा उसमेंसे धूआ नही निकलता।

सिन्दूर शोधन—दूध और किसो खट्टे रसको भावना देनेसे सिन्दूर शुद्ध होता है।

रसाञ्जन शोधन ।—रसाञ्जन चूर्ण बड़े नीबूके रसमें मिलाकर दिनभर धूपमें रखनेसे अथवा पानोमें मिलाकर छान लेनेसे भो शोधित होता है।

सोहागा शोधन—आगपर रख इसका लावा हो जानेसे यह शुद्ध होता है। फिटकिरी भो इसो तरह शुद्ध होती है।

शङ्खादि शोधन—शङ्ख, शुक्ति (सोप) और कपर्द्दक (कौड़ो) काञ्जोमें एक पहर दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। तथा मिट्टोके बरतनमें रख आगमें जला लेनेसे भस्म तयार होता है।

समुद्रफेन शोधन —कागजो नीबूके रसमें पोसनेसे समुद्रफेन शुद्ध होता है।

गेरुमिट्टी—गायके दूध घिसनेसे अथवा गायके घोमें भून लेनेसे गेरुमिट्टी शुद्ध होती है।

हिराकस—भङ्गरइयाके रसमें एक दिन भिंगोनेसे हिराकस शुद्ध होता है।

खर्पर ।—सात दिन दोना यन्त्रमें गोमूत्रके साथ औटानेसे खपरिया शुद्ध होता है, फिर आगपर चढा, गल जानेपर क्रमशः सैन्धव चूर्ण देना और पलासको लकड़ीसे चलाना, राखको तरह हो जानेपर नोचे उतार लेनेसे खर्पर तयार होता है।

हीरक भस्म ।—कटेली की जड़में हीरा रखकर कुरथी या कोदोके काढे में तोन दिन दोना यन्त्रमें औटानेसे हीरा शुद्ध होता है। फिर वही हीरा आगमें खूब गरम कर हींग और सेन्ध

मण्डूर।—लोह जलाती वक्त उसमेंसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर कहते है। सौवर्षसे अधिक दिनका पुराना मण्डूर औषधके लिये ग्रहण करना। ६० वर्षका पुराना भी ले सकते है किन्तु इससे कम दिनका मण्डूर कदापि नही लेना। मण्डूर आगमें सात बार गरम कर गोमूत्रमें बुझाना। फिर वही मण्डूर चूर्णकर गजपुटमें फूकनेसे औषधके उपयोगी होता है।

स्वर्ण माक्षिक।—तीनभाग स्वर्णमाक्षिक और एक भाग सैन्धा लवण बड़े नीबूके रसमें मर्द्दनकर लौहपात्रमें पाक करना, पाकके समय बार बार हिलाना। लोहपात्र जब लाल हो जाय तब स्वर्णमाक्षिक विशुद्ध हुआ जानना। फिर वही स्वर्णमाक्षिक कुरथीके काढ़ेसे किम्वा तिलके तेलमें अथवा मट्ठा किम्वा बकरीके दूधमें मर्द्दनकर गजपुटमें फूकना। रौप्य-माक्षिक काकरोल, मेढाशृङ्गी और बड़े नीबूके रसमें भिगोकर तेज धूपमें रखनेसे विशुद्ध होता है।

तुतियाकी शोधन विधि।—बड़े नीबूके रसमें खल-कर लघु पुटमें पाक कर तीन दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे तुतिया शुद्ध तथा औषध के काम लायक होती है।

शिलाजीत शोधन।—गोमूत्रकी तरह गन्ध, काला रंग, तिक्त और कषाय रस, शीतल, स्निग्ध, मृदु और भारी हो ऐसी शिलाजीत लेना। शिलाजीत पहिले एक पहर गरम पानी में भिंगो रखना, फिर कपड़ेसे एक मिट्टीके बरतनमें छानकर दिनभर धूपमें रखना। शामको पानीके उपरवाला मलाईकी तरह पदार्थ एक बरतन में निकाल लेना, इसी तरह रोज धूपमें रखकर उसमेंको सब मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिला-

जीत है। असल शिलाजीत आगमें देनेसे लिङ्गकी तरह ऊपर को उठता है तथा उसमेंसे धूंआ नहीं निकलता।

सिन्दूर शोधन—दूध और किसी खट्टे रसकी भावना देनेसे सिन्दूर शुद्ध होता है।

रसाञ्जन शोधन।—रसाञ्जन चूर्ण बड़े नीबूके रसमें मिलाकर दिनभर धूपमें रखनेसे अथवा पानीमें मिलाकर छान लेनेसे भी शोधित होता है।

सोहागा शोधन—आगपर रख इसका लावा हो जानेसे यह शुद्ध होता है। फिटकिरी भी इसी तरह शुद्ध होती है।

शङ्खादि शोधन—शङ्ख, शुक्ति (सीप) और कपर्द्दक (कौड़ी) कांजीमें एक पहर दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। तथा मिट्टीके बरतनमें रख आगमें जला लेनेसे भस्म तयार होता है।

समुद्रफेन शोधन —कागजी नीबूके रसमें पीसनेसे समुद्रफेन शुद्ध होता है।

गेरुमिट्टी—गायके दूध घिसनेसे अथवा गायके घीमें भून लेनेसे गेरुमिट्टी शुद्ध होती है।

हिराकस—भङ्गरइयाके रसमें एक दिन भिंगोनेसे हिराकस शुद्ध होता है।

खर्पर।—सात दिन दोला यन्त्रमें गोमूत्रके साथ औटानेसे खपरिया शुद्ध होता है, फिर आगपर चढ़ा, गल जानेपर क्रमशः सैन्धव चूर्ण देना और पलासकी लकड़ीसे चलाना, राखकी तरह हो जानेपर नीचे उतार लेनेसे खर्पर तयार होता है।

हीरक भस्म।—कटेली की जड़में हीरा रखकर कुरथी या कोदोके काढ़ेमें तीन दिन दोला यन्त्रमें औटानेसे हीरा शुद्ध होता है। फिर वही हीरा आगमें खूब गरम कर हींग और सैन्ध

नमक मिलाये कुरथीके काढेमें डुबाना, इसी तरह २१ बार डुबानेसे हीराभस्म तयार होता है। वैक्रान्त भी इसी तरह शुद्ध और भस्म होता है।

अन्यान्य रत्न शोधन।—अन्यान्य रत्न जयन्ती पत्तेके रसमें एक पहर दोलायन्त्रमें औटा कर शुद्ध करना, फिर आगमें गरम कर यथाक्रम घिकुआरके रसमें चौलाईके रसमें और स्तनदूध में सात सात बार बुझालेनेसे भस्म तयार होता है।

मीठाविष शोधन—विषका छोटा छोटा टुकरा कर तीन दिन गोमूत्रमें भिगोनेसे शुद्ध होता है, गोमूत्र रोज बदलना चाहिये। फिर उसकी छाल निकाल डालना।

सर्पविष शुद्धि—काले सर्पका विष पहिले सरसोंके तेलमें मिला कर धूपमें सुखाना, फिर पानका रस, अगस्तीपत्रका रस और सूंठ के काढ़ेकी यथाक्रम तीन तीन बार भावना देनेसे शुद्ध होता है।

जयपाल शुद्धि—जमालगोटाके बीजके मध्यभागमें जो पतला पत्ता रहता है वह निकालकर दोलायन्त्रमें दूधमें औटानेसे शुद्ध होता है।

लांगलीविष—दिनभर गोमूत्रकी भावना देनेसे शोधित होताहै।

धतुरेका बीज—कूटकर गोमूत्रमें चार पहर भिंगो रखनेसे धतुरेकी बीज शुद्ध होतो है।

अफीम—अदरखके रसकी १२ दफे भावना देनेसे शोधित होताहै।

भाग—पहिले पानीमें खूब साफ धोकर सुखा लेना फिर दूध की भावना देकर सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

कुचिला—घीमें भून लेनेसे कुचिला शोधित जानना।

गोदन्त शोधन।—एक हांडीमें थोड़ा गोबर रखना उसके उपर एक पान रखकर गोदन्त रखना तथा हांडीका मुह

बान्धकर कदड़ा और मिट्टीका लेपकर चार पहर आगमें रखनेसे गोदन्त ऊपरको संलग्न हो जायगा, वही विशुद्ध गोदन्त जानना। दारुमुज नामक विष हरितालकी तरह शोधन करना।

भल्लातक शोधन—पक्का भेलावा जो पानीमें डूब जाय वह लेना, फिर ईंटके चूर्णमें घिसने से शुद्ध होता है।

नखी शोधन।—गोबरका रस या गोबर मिलाये पानीमें नखी औटाना, तथा धोकर सुखा लेना फिर घीमें भूनकर गुड़ और हरीतकीके पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखनेसे शुद्ध होता है।

हींग शोधन—लोहेकी कढ़ाईमें थोड़े घीमें भूनना, हिलाते हिलाते तब लाल हो जाय जब शुद्ध जानना।

नौसादर शोधन।—नौसादर चूनेके पानीमें दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। अथवा गरम पानीमें घुलकर मोटे कपड़े से छान वह पानी एक बरतनमें रखना, ठण्ढा हो जानेपर नीचे जो पदार्थ जम जाय उसीको शुद्ध नौसादर जानना।

गन्धक शोधन।—लोहेकी कलछीमें थोड़ा घी गरम कर उसमें गन्धक चूर्ण देना तथा गन्धक गल जानेपर पानी मिलाये दूधमें डालना। इसी तरह सब गन्धक गलाकर दूधमें डाल देना तथा अच्छी तरह धोकर सुखा लेनेसे गन्धक शोधित होता है।

हरिताल शोधन।—पहिले सफेद कोंहड़ेके रसमें फिर क्रमश: चूनेका पानी और तेल एक एकबार दोला यन्त्रमें औटानेसे हरिताल शुद्ध होता है। वंशपत्र हरिताल केवल सात दिन चूनेके पानीसे भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हिङ्गुल शोधन—हिङ्गुल चूर्ण नीबूका रस और भैंसका दूध, अथवा भेड़ीके दूधको सात बार भावना देनेसे शुद्ध होता।

हिङ्गुलसे पारा निकालना।—हिङ्गुलसे पारा निकालना। बड़े नीबूका रस अथवा नमकी पत्तेके रसमें एक पहर खलकर एक हाँडोमें रखना तथा उसके उपर दूसरो हाँडी पानो भरो रख सयोग स्थलको मिट्टीसे अच्छो तरह बन्द करना। उपरके हाँडोका पानो गरम न हो इसलिये पानो बदलते रहना। इसो रीतिसे हिङ्गुलका पारा उपरवालो हाँडाके पेंदोमें लग जायगा। उसको निकाल लेना। यह पारा बहुत शुद्ध जानना इसको स्वतन्त्र रूपसे शोधन करना नहो पड़ता।

पारा शोधन।—अन्यान्य पारा पहिले घिकुआर, चीतामूल, लाल सरसो, वृहतो और त्रिफला इन सबके काढ़ेमें खल करना, फिर मकड़ीका जाला, ईंटका चूर्ण, कालाजोरा, मेष रोमका भस्म, गुड़ सैन्धव और कांजीके साथ तोन दिन मर्द्दन करना। फिर पारेका चौथाई हिस्सा हरिद्रा चूर्ण और घिकुआरके रसमें मर्द्दन करना। साधारणतः इसो रीतिसे पारा शोधा जाता है।

शोधित पारेका ऊर्द्धपातन विधि।—पारा शोधित करनेमें कई प्रकार पातनक्रिया करना चाहिये। तीनभाग पारा और एकभाग ताम्बा एकत्र बड़े नीबूके रसमें खलकर एक गोला बनाना, वह पिण्ड एक हांडोमें रख उसके उपर पानी भरी दूसरी हांडी रख सन्धिस्थान मिट्टोसे बन्द कर हाड़ो चुल्हे पर रखना। उपरके हांडोका पानी गरम होनेसे गरम पानी निकालकर ठण्ढा पानी देना। इस रीतिसे नीचेवाली हांडोका पारा जलभरी हांडोको पेंदोमें लग जाता है, वही पारा ग्रहण करना। इसोको पारेका ऊर्द्धपातन विधि कहते है।

सब द्रव्योंके साथ पारा खलकर कोंचको तरह होने पर एक हांडीके बोचमें लेप करना। दूसरी पानोभरी हांडीपर पहिलो हांडी-पर औंधी रख सन्धिस्थान मिट्टोसे बन्द करना, फिर एक गढेमें दोनो हांडो गाड उपरसे आगका थोडा अङ्गारा रखना। गरमी पाकर उपरके हांडोका पारा नीचेवालो पानीभरो हांडोमें गिर जायगा। इस प्रोक्रयाको पारेका अधःपतन कहते है।

तिर्य्यक्पातन विधि।—*तिर्य्यक्पातन,* एक घडेमें शोधित पारा और दूसरे घडेमें पानीभर दोनोंके मुहपर मिट्टीका ढकना रख कपडमिट्टोसे बन्द करना; फिर दोनो घडेके गलेमें छेदकर बांसको नलीका दो भाग दो छेदमें लगा सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हांडोमें आग लगानेसे पारा नलीके रास्तेसे पानी भरे घडेमें चला जायगा। इसीको तिर्य्यक्पातन कहते है। पारेका यह तीन प्रकार पातन विधि होनेसे वह शुद्ध होता है।

कज्जली प्रस्तुत विधि।—शोधित पारा और शोधित गन्धक समभाग अच्छी तरह खल करना, दोनो मिलकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारेको चमक बिलकुल जाती रहे तब कज्जली तयार हुई जानना। औषध विशेषमें गन्धक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है। वहां पारेका दूना गंधक मिलाकर कज्जली बनाना, औषध बनानेके नियमोंमें कज्जली जहां नही लिखी है अलग अलग पारा और गंधक लिखा है वहां पारा और गधक की कज्जली बनाकर व्यवहारमें लाना चाहिये।

रससिन्दूर।—शोधित पारा ४ भाग, शोधित गन्धक एक भाग और हानिम गन्धक एक भाग एक दिन खलकर कज्जली

बनाना फिर एक काले काचका दलदार बोतलका गिर थोडा काटकर लगातार तीनबार कपडा और मिट्टी लगाकर सुखा लेना, तिसके बाद उसमें कज्जली भरकर बालुभरी हाडीम रखना। बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये तथा हाडीके नीचे कानी अङ्गुली जासके इतना बडा छेद करना। फिर वह बालु भरी बोतलवाली हाडी चुल्हेपर चढा, चार दिन तक आच देना अर्थात् पहिले बोतलसे धूआ निकलकर नीले रगकी शिखा होगी फिर धूआ वगैरह बन्द हो लाल रगकी आच निकाले तब पाक शेष हो रससिन्दूर तयार हुआ है जानना, तब नीचे उतार कर बोतलको तोड उपरकी तरफ लगा हुआ सिन्दूर रगका पदार्थ निकाल लेना, इसी को रससिन्दूर कहते हैं।

मकरध्वज प्रस्तुत विधि।—सोनेके पत्तरका टुकडा ८ पल और पारा ८ पल पहिले खल करना फिर उसके साथ १६ पल गन्धक मिला खल करना, कज्जली तयार होनेपर विकु आरके रसमें खल करना। फिर रससिन्दूरको तरह बोतलमें भरकर तीन दिन बालुका यन्त्रमें फूकना। रससिन्दूरकी तरह इसकाभी पाक शेष अनुमान करना। मकरध्वजको पूरो मात्रा १ यव, ६ अनुपान विशेषके साथ सब रोगोंमें प्रयोग होता है।

षडगुण वलिजारण विधि।—बालुभरी हाडीमें मिट्टीका एक भाड रख पहिले उसमें पारेका समभाग गन्धक देना, गन्धक गलकर तेलक तरह हो जानेपर पारा देना, ऐसही क्रमश पारा ६ गूना देनेपर बालुभरी हांडी नीचे उतार कर पारेका भांड अलग करना तथा उसके नीचे एक छेद कर पार निकाल लेना। इसीको षडगुण वलिजारित पारा कहते है।

एससे मकरध्वज तयार होनेसे इसको षडगुण बलिजारित मकरध्वज कहते हैं।

बिना शोधित द्रव्यका अनिष्ट।—जो सब द्रव्योंकी शोधन विधि लिखो गई है उसमें कोई भो दवा बिना शोधे दवा-योंमें प्रयोग नहो करना तथा धातु आदि जो सब द्रव्य भस्म करनेको विधि लिखो है वह सब द्रव्यका भस्म प्रयोग करना; अन्यथा प्रयोग करनेसे विविध अनिष्ट होता है।

यन्त्र-परिचय।

औषध तयार करनेके लिये नानाप्रकार के यंत्रोंकी जरूरत पडती है। यहा हम सब प्रकारके यंत्रोंकी तस्वीर और नाम व्योरेवार लिखते है।

एक हाडीमें पानी भरकर गढेमें रखना, तथा दूसरी हाडीमें

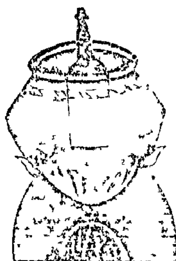
भूधर यन्त्र



दवा लपेटकर, पहिली हाडीके उपर औंधी रख सयोग स्थलको मिट्टीमे बन्द करना। फिर उपरवाली हाडीके ऊपर आगका अगारा रखनेसे उसका औषध नीचेवाली पानीभरी हाडीमें क्रमशः गिर जायगा। पारेकी अध पतन विधि इसी यन्त्रसे होता है।

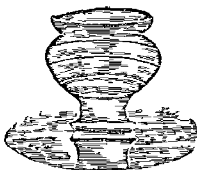
एक हाडीमें कांचकी यन्त्र अर्थात् औषधपूर्ण और मिट्टी

बालुका यन्त्र।

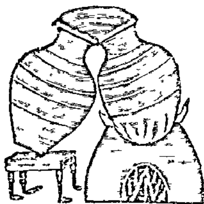


लपेटा बोतल रखो, बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये। फिर हाडी चूल्हेपर चढाकर निर्दिष्ट समय तक आग पर रखना। इसीको बालुकायन्त्र कहते है। इसी यन्त्रमें रस सिन्दूर और मकरध्वज आदि तयार होता है।

एक हाथ गहिरा गढा खोदकर उसमें एक हाडी रखो, तथा दूसरी हाडीमें औषध भर उसका मुह एक छेदवाल ढकनेसे बन्दकर नीचेवाली हाडी पर औंधी रख सयोग स्थल अच्छी तरह मिट्टीसे बन्द करो तथा मिट्टीसे गढा भरकर उपरवाली हाडीपर आगका जलाओ इससे उपरवाली हाडीकी दवा ढकनेके छेदसे नीचेवाली हाडीमें गिर जायगी। आग ठण्ढी होनेपर गढेसे हाडी निकाल भीतर की दवा निकाल लेना। इसीको पातात यन्त्र कहते है।

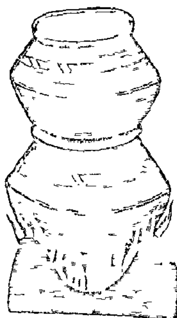

पाताल यन्त्र।

दो लम्बी हाडी एकमें पारा और दूसरीमें पानीभर दोनो हाडीका मुह टेढाकर मिलाना तथा सयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हाडीमें आच लगातेही पारा उडकर पानीभरी हाडीमें क्रमश चला जायगा। इसीको तिर्य्यकपातन यन्त्र कहते है। दोनो हाडीके गलेमें नल लगाकर भी एक प्रकार तिर्य्यकपातन यन्त्र वनता है। जिसका विवरण तिर्य्यक-पातन विधिमें लिख आए हैं।


तिर्य्यकपातन यन्त्र।

एक हाण्डीमें पारा दूसरी हाण्डीमें पानीभर उसके ऊपर रखना तथा संयोगस्थल मिट्टीसे

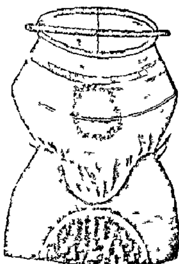
विद्याधर यन्त्र।



रच्छी तरह बन्दकर, दोनो हाण्डी चूल्हेपर चढाना। ऊपर वा ी हाण्डीका पानी गरम ह ने से बदल देना। इस तरह नीचेवाली हाण्डीका पारा ऊपर व ली की पेंदीमें लग जायगा। पा त शेषमें हाण्डी ठण्ढी होनेसे नीचे उतार कर पदोका पारा न काल लेना। इसको विद्य धर यन्त्र कहते है। पारेकी ऊर्द्ध पातनक्रिया इसी यन्त्रसे हात है

जो सब पदार्थं दोलायन्त्रसे पाक करना हो उसकी एक पोटली बनाना और हाण्डीका

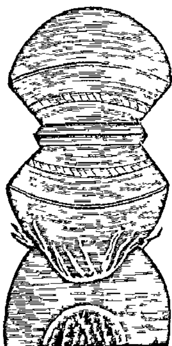
दोलायन्त्र।



आधा अंश निर्दिष्ट द्रव्य पदार्थ या चूर्णसे पूर्ण करना यथा मुह पर लम्बी लकडी रख उसमें वह प टली बाधकर हाण्डीमें लटका देना। फिर हाडी चूल्हेपर रख आग लगाना। इसीको दोला यन्त्र कहते है। अनेक पदार्थ स्विन्न या सिद्ध करनेके लिये यह यन्त्र व्यवहृत होता है।

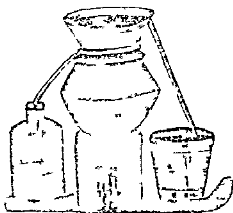
डमरू यंत्रमें उपरवाली हाडो नीचेवाली हाडीपर औंधा रखना तथा संयोग स्थल मिट्टीसे बन्द करना। नीचेवाली हाडीमें पारा आदि पदार्थ और उपरवाली हाडी खाली रहे। नीचे वाली हांडी चूल्हेपर रख उपरवाली पर पानी की धार देनेसे नीचेकी हाडी का पारा उपरवाली हाडी में लग जायगा। डमरू और विद्याधर यंत्र प्राय एकही काममें व्यवहृत होता है।

डमरू यन्त्र।



वकयंत्रमें जो सब पदार्थ पाक करना हो उस पदार्थसे आधी हाडी पूर्ण करना तथा उसके उपर दो नलवाला पात्र रख संयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। नलवाले पात्रके किनार के नीचे एक अङ्गुल चौडी कार्निस रहना चाहिये, उसी कार्निस पर एक नल लगा

वकयन्त्र।



उसका प्रान्तभाग बोतलमें रखना; तथा उसी पात्रके उपर चारो तरफ दो अङ्गुल ऊंचा किनारा लगाकर और एक नल लगाना इसका प्रान्तभाग एक वरतनमें रखना, फिर उस हांडीके नीचे हलकी आंच देना तथा उपरवाले पात्रमें बार बार पानी देना। उपरवाले नलसे वही पानी पात्रमें आ गिरेगा। इसीको वकयंत्र कहते है। शराब और अर्क इसी यंत्रसे उतारा जाता है।

एक घडेके उपर दूसरा छोटा घडा औंधारख सयोगस्थल मिट्टी से अच्छी तरह बन्द करना तथा उपरके घडेमें एक छिद्रकर एक नल लगाना यह नल एक पात्रमें घुमाते हुए एक बोतलमें लाना। इसीको नाडीकायंत्र कहते है। दूसरे पात्रमें अर्थात् जिस पात्रमें नल घुमें उसमें पानी भरा रहे। आंच लगानेसे भाफ उपर उठ कर नलसे बाहर हो पानीके बरतनमें ठण्ढा होनेसे पानी हो जायगा तथा नलके प्रान्तभागसे बाहर निकलेगा। तब वहां एक बोतल रख वह पानी लेना चाहिये। इस यंत्रसे भी सुरा अर्क आदि उतारा जा सकता है।

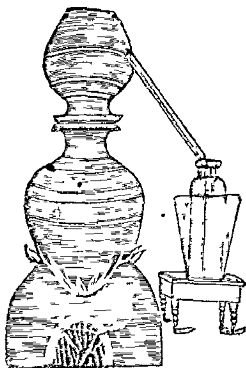
नाडिकायंत्र।



कवची यंत्र।—न बहुत बडा और न बहुत छोटा एक मोटा बोतल, मिट्टी और कपडेसे अच्छी तरह लपेटकर सुखा लेना। उसीको कवचीयंत्र कहते है। रससिन्दूरादि पाक करनेमें इसकी जरूरत पडती है। इसमें दवा भर बालुकायंत्रमें पाक करना चाहिये।

वारुणी यन्त्र प्राय नाड़िका यंत्रकी तरह होता है। पर नाड़िका यंत्रका नल एक पात्रमें गेरूडो मारे रहता है, इसमें उसके बदले बोतल हो ठण्डा पानी भरे एक पात्रमे रखना। नलसे भाफ आकर पानीभरे पात्रमें बोतल रहनेसे ठण्ढपाकर साफ पानी हो जाता है। सुतरा नाड़िका यन्त्र और वारुणी यन्त्र दोनो एकही प्रकारके कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

वारुणी यन्त्र।



अन्धमूषायन्त्र। फूसकी राख २ भाग, दीमककी मिट्टी १ भाग, मण्डूर १ भाग, सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध २ भाग और मनुष्य केश एकत्र खलकर गोस्तनकी तरह एक प्रकार पात्र बनाना। इसीको मूषा कहते है। मूषा सूख जानेसे उसमें पारा आदि पदार्थ रख दूसरा मूषा उसके उपर औंधारख दोनोका सयोग स्थान मूषा बनानेके उपादानसे अच्छी तरह वन्द करना। इसीको अन्धमूषा कहते है। अधमूषाको वज्रमूषा भी कहते है।

पारिभाषिक संज्ञा।

—o—

वाक्य प्रयोगके सुबीतेके लिये कई लम्बे चौड़े विषय और कतिपय बहुसंख्यक पदार्थोंका एक एक छोटा नाम रखा गया है। वही यहां "पारिभाषिक संज्ञा" नामसे अभिहित कर उसका विस्तृत विवरण लिखते है।

दोष—वायु, पित्त और कफ यह तीन शरीर दोष और रजः तम यह दो मानस दोष नामसे अभिहित है। त्रिदोष शब्दका उल्लेख रहनेसे वायु, पित्त और कफ यह तीन द ष जानना।

दुष्य।—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा और शुक्र यह सात पदार्थको दुष्य कहते है। रोग मात्रमें इनमेसे कोई एक अवश्यही दुषित होता है। प्रवक्षत अवस्थामें ये सब शरीरको धारण करते है इससे इनका दूसरा नाम धातु है।

मल।—मल, मूत्र, स्वेद, क्लेद और सिङ्घानक आदि पदार्थको मल कहते है, इसका नाम किट्ट भी है। किसी किसी जगह वातादि दोषत्रय भी मल नामसे अभिहित होते है।

कोष्ठ।—आमाशय, ग्रहणी नाडी, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय (प्लीहा और यकृत्) हृदय, फुस्फुस और गुह्यनाडी, यह आठ स्थानको कोष्ठ कहते है।

शाखा।—रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और त्वक यह सात अवयवको शाखा कहते है।

पञ्चवायु।—पञ्चवायु।—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान; नाम भेदसे शरीरमें पांच प्रकार वायु है। प्राण वायु मस्तक, छाती और कण्ठमें रहकर बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और चित्तवृत्तिको चलाना, छींक, डकार, निश्वास आदिका निकालना और अन्नादि पदार्थको पेटमें लेजाता है। उदान वायुका स्थान छाती; नासिका, नाभि और गलेमें यह विचरण करता है। वाक्प्रभृति कार्य्योद्यम, उत्साह और स्मरण आदि उदान वायुके कार्य्य है। व्यान वायुका स्थान हृदय किन्तु यह अति वेगवान है इससे यह सर्व्वदा समस्त देह विचरण करता है। चलना, उठना, बैठना, आंख बन्द करना और बोलना और प्रायः यावतीय क्रिया व्यान वायुको है। समान वायु पाचकाग्निके पास कोष्ठके सब स्थानोंमें विचरण करता है और अपक्व अन्न आमाशयमें लेजाकर उसका परिपाक और मलमूत्र निकालना आदि कार्य्य करता है। अपान वायुका स्थान गुह्यदेश, नितम्ब, वस्ति लिङ्ग और ऊरुमें यह विचरण करता है तथा आर्त्तव, मल, मूत्र और गर्भको निकालता है।

पञ्चपित्त।—पञ्चपित्त।—शरीरका पित्त कार्य्यभेदके अनुसार पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक, भ्राजक ये पांच प्रकारमें विभक्त है। जो पित्त आमाशय और पक्वाशयमें रहकर खाये हुए पदार्थको पचाता है उसको अग्नि और जो अन्नको पचाकर उसका सार और मल अलग अलग विभक्त करता है तथा रञ्जकादि बाकी ४ प्रकारके पित्तोंको बढाता है उसको पाचक कहते है। जो पित्त आमाशयमें रह कर रसको रक्तवर्ण बनाता है उसका नाम रञ्जक है। जो पित्त हृदयमें रहकर बुद्धि, मेधा और अभिमानादि द्वारा अभिप्रेत विषयोंको कराता है उसका

नाम साधक है। जो पित्त आखमें रहकर रूपको देखता है उसको आलोचक कहते है और जो पित्त त्वचामें रहकर त्वचाकी दीप्ति बढाता है उसको भ्राजक कहते है।

पञ्चश्लेष्मा।—पञ्चश्लेष्मा।—शरीरका कफभी भिन्न भिन्न कार्य्यके अनुसार अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक ये पाच नामसे विभक्त हैं, जो कफ छातीमें रहकर अपने क्लेद पदार्थसे सन्धिस्थ द अन्यान्य स्थानके कार्य्यमें मदद देता है उसको अवलम्बक कहते है। जो आमाशयमें रहकर कठिन अन्नकी नरम करता है उसको क्लेदक कहते है। जो रसनामें रहकर मधुरादि रसका अनुभव कराता है उसका नाम बोधक है। जो मस्तकमें रहकर चक्षु आदि इन्द्रिय समूहोका तृप्तिसाधन करता है उसका नाम तर्पक और जो कफ सन्धिस्थानमें रहकर सन्धिस्थानका मिलन आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य करता है उसको श्लेषक कहते है।

त्रिकट—शोंठ पपल अर गोलमिरच यह तीन द्रव्यको त्रिकटु या त्र्यूषण कहते है।

त्रिफला—आवला, हर्रा और बहेडा ये तीन द्रव्यका नाम त्रिफला।

त्रिमद—बाभिरङ्ग, मोथा और चीतामूल यह तीनको त्रिमद कहते है।

त्रिजात—दालचीनी, बडीलायच और तेजपत्ता इनको त्रिजात या त्रिसुगन्ध कहते है।

चातुर्जात—दालचीनी, बडीलायची, तेजपत्ता और नागकेशर ये ४ द्रव्यको चातुर्जात कहते है।

चातुर्भद्रक—सोंठ, अतीस, मोथा और गुरिच यह चार द्रव्यका नाम चातुर्भद्रक हैं।

पञ्चकोल—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और सोंठ यह पांच द्रव्यको पञ्चकोल कहते है।

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल—बेर, अनार, इमली और थैकल यह चार अम्ल पदार्थको चतुरम्ल और इसके साथ जम्बीरी नीबू मिलानेसे पञ्चम्ल कहते है।

पञ्चगव्य—दही, दूध, घृत, गोमूत्र और गोमय, यह पांचको पञ्चगव्य कहते है।

पञ्चपित्त—वराह, छाग, महिष, रोहित मछली और मयूर यह पांच जीवके पित्तको पञ्चपित्त कहते है।

लवणवर्ग—एक लवणका उल्लेख हो तो सैन्धव, द्विलवण शब्दमें सैन्धव और सौवर्चल, त्रिलवणमें सैन्धव, सौवर्चल और काला नमक; चतुर्लवणमें सैंधव, सौवर्चल, कालानमक और सामुद्र; पञ्च लवणमें सैंधव, सौवर्चल काला नमक, सामुद्र और औद्भिद यह पांच प्रकार लवण जानना। लवणवर्गका उल्लेख रहनेमें यही पांचो ग्रहण करना।

क्षीरिवृक्ष—गुल्लर, बड, पीपर, पाकड और वेतस यह पांचको क्षीरिवृक्ष कहते है।

स्वल्पपञ्चमूल—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह पांच पदार्थको स्वल्प पञ्चमूल कहते है।

वृहत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाटला और गणियारी, यह पांच द्रव्यको वृहत् पञ्चमूल कहते है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यह पांचको तृण पञ्चमूल कहते है।

विषघ्न कषाय—हल्दी, मजीठ, रास्ना, छोटी इलायची, श्यामा-लता, लालचन्दन, निर्मली फल, शिरोष, समालू और छातिम यह दस द्रव्य विषनाशक है।

स्तन्यजनन कषाय—खसकी जड, शालिधान, साठीधान, ईक्षुवालिका, दर्भ, कुशकी जड, काशकी जड, गुरिच, कण्डा और गंधतृण यह दस स्तनदुग्धजनक है।

स्तन्यशोधन कषाय—अकवन, शोंठ, देवदारु, मोथा, मूर्व्वा-मूल, गुरिच, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, यह दस स्तन्यदूधका शुद्धिकारक है।

शुक्रजनन कषाय—जीवक, ऋषभक, काकोली, चीरकाकोली, मरिवन, पिठवन, मेदा, बांदरो, जटामांसी और काकड़ासिङ्गी, यह दस द्रव्य शुक्रवर्द्धक है।

शुक्रशोधन कषाय—कूठ, एलवालुक, कटफल, समुद्रफेन, कद-मका गोंद, ईख, खागड़ा, कुलेखाड़ा, मौलसरीका फूल और खसकी जड यह दस शुक्रशोधक है।

स्नेहोपग कषाय—द्राक्षा, मुलेठी, गुरिच, मेदा, बिदारीकन्द, काकोली, चीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी; यह द्रव्य स्नेहोपग अर्थात् स्नेहक्रियामें व्यवहृत होता है।

स्वेदोपग कषाय—सैजन, एरण्ड, अकवन, श्वेतपुनर्नवा, रक्त-पुनर्नवा, यव, तिल, कुरथी, उरद और बैर; यह दस स्वेदोपग अर्थात् स्वेदक्रियामें व्यवहृत होता है।

वमनोपग कषाय—मदन, मुलेठी, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, कदम्ब, जलवेतस, तेलाकुचा, शणपुष्पी, अकवन और अपामार्ग; यह दस द्रव्य वमनोपग अर्थात् वमन कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

विरेचनोपग कषाय—द्राक्षा, गाम्भारी फल, फालसा, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, बड़ी बेर, छोटी बेर, शैयाफूल और पीलूफल यह दस द्रव्य विरेचनोपग अर्थात् जुलाबमें व्यवहृत होता है।

आस्थापनोपग कषाय—त्रिहतमूल, बेल, पीपल, कूठ, सरसो, बच, इन्द्रयव, सोवा, मुलेठी और मैनफल यह दस द्रव्य आस्थापनोपग अर्थात् वस्तिक्रिया (पिचकारी) में व्यवहृत होता है।

अनुवासनोपग कषाय—रास्ना, देवदारु, बेल, मैनफल, सोवा, श्वेतपुनर्नवा, गोक्षुर गणियारी और श्योनाक छाल, यह दस द्रव्य अनुवासनोपग अर्थात् स्नेह पिचकारीमें व्यवहृत होता है।

शिरोविरेचनोपग कषाय—लताफिटकिरी, नकछिकनी, मिरच, पीपल, विडङ्ग, सैजनकी बीज, सरसो, श्वेत अपराजिता, अपामार्गकी बीज और नील अपराजिता, यह दस द्रव्य शिरोविरेचन अर्थात् नस्यक्रियामें उपयोगी है।

छर्दिनिग्रह कषाय—जामुनका पत्ता, आमकापत्ता, बड़ा नीबू, खट्टी बेर, अनार, यव, मुलेठी, खसकी जड़, सौराष्ट्रमृत्तिका और धानका लावा; यह दस वमन निवारक है

हिक्कानिग्रह कषाय—शठी, कूठ, बेरके गुठलीका गूदा, कण्टकारी, बृहती, बान्दरी, हरीतकी पीपल, जवासा और काकड़ाशिङ्गी; यह दस हिक्का (हुचकी) निवारक है।

पुरीष संग्रहणीय कषाय—प्रियङ्गु, अनन्तमूल, आमकी गुठल मुलेठी, मोचरस, वाराहकान्ता, धवईफूल, पमनेठी और पद्मकेशर यह सब द्रव्य पुरीष संग्राहक अर्थात् मलरोधक है।

पुरीष विरजनीय कषाय—जामुनकी छाल, शल्लकी छाल, कवांच, मुलेठी, मोचरस, गन्धाबिरोजा, जली मिट्टी, बिदारी·

कन्द, नीला कमल और तिनाछिलकेका तिल; यह दश द्रव्य पुरीष विरजनीय अर्थात् दोषके कारण मलका रंग विकृत होनेसे इससे प्रकृत वर्ण होता है।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय—जामुनकी बीज, आमकी गुठली, पाकड़, बड़, अमड़ा, गुल्लर, पीपर, भिलावा, अस्तकुचा और खैर; यह दस द्रव्य मूत्रसंग्राहक है।

मूत्रविरेचनीय कषाय—शादरी, गोक्षुर, वकफूल, हुडढड, पाथरचूर, शरमूल, कुशमूल, काशमूल, गुरिच और दर्भमूल, यह मूत्रविरेचक है।

मूत्रविरजनीय कषाय—थोड़ा सूखा पद्म, नीला कमल, लाल पद्म, श्वेत उत्पल, सुगन्धयुक्त नीलोत्पल, श्वेतपद्म, शतदल पद्म, मुलेठी, प्रियङ्गु और धवईफूल; यह दस द्रव्य मूत्रकी विवर्णता नाशक है।

कासहर कषाय—द्राक्षा, हरीतकी, आंवला, पीपल, अमिलतास, काकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, लाल पुनर्नवा, सफेद पुनर्नवा, और भूई आवला; यह दस द्रव्य कासनाशक है।

श्वासहर कषाय—शठी, कूठ, अम्लवेतस, इलायची हींग, अगुरु, तुलसी, भूई आमला, जीवन्ती और शङ्खपुष्पी; यह दस द्रव्य श्वासनाशक है।

शोथहर कषाय—पाटला, गणियारी, बेल, श्योनाक, गाम्भारी, कण्टकारी, वृहती, सरिवन, पिठवन और गोक्षुर; यह दस द्रव्य शोथनाशक है।

ज्वरहर कषाय—अनन्तमूल, चीनी, अकवन, मजीठ, द्राक्षा, चिरौंजी, फालसा, हरीतकी, आवला और बहेड़ा; यह दस द्रव्य ज्वर नाशक है।

श्रमहर कषाय—द्राक्षा, खजूर, चिरौंजी, बेर, अनार, काकगुल्लर, फालसा, ईख, जौ और साठीधान; यह दस द्रव्य श्रान्त नाशक है।

दाहप्रशमन कषाय—धानका लावा, श्वेतचन्दन, गाम्भारी फल, मुलेठी, चीनी, नीलोत्पल, खसकी जड, अनन्तमूल, गुरिच और वाला; यह दस द्रव्य दाह निवारक है।

शीतप्रशमन कषाय—तगरपादुका, अगुरु, धनिया, सोंठ, अजवाईन, बच, कण्टकारी, गणियारी, स्योनाक और पपल; यह दस द्रव्य शीत निवारक है।

उदर्द प्रशमन कषाय—गाव, पियाल फल, खैर, पवडी खैर, छातिम शाल, अर्जुन पीतशाल और जङ्गली बबूल; यह दस द्रव्य उदर्द रोग नाशक है।

अङ्गमर्द प्रशमन कषाय—शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, एरण्डमूल काकोली, लालचन्दन, खसकी जड, इलायची और मुलेठी यह दस द्रव्य अङ्गमर्द निवारक है।

शूल प्रशमन कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, गोलमिरच, अजवाईन, अजमोदा, जीरा और शालिंचा; यह दस द्रव्य शूल निवारक है।

शोणित स्थापन कषाय—सहत, मुलेठी, केशर सोचरस, जली मिट्टी वा मोम्बी मिट्टी, लोध, गेरुमिट्टी, प्रियङ्गु, चीनी और धानका लावा यह दस द्रव्य रक्तरोधक है।

वेदनास्थापन कषाय—शाल, कायफल, कदम्ब पद्मकाठ, पुन्नाग, मोचरस, सिरीष, बेतस, एलवा और अशोक; यह दस द्रव्य वेदनास्थापक अर्थात् जहांको दर्द आराम न होनेसे विपत्तिकी आशङ्का है वहां यह सब द्रव्य प्रयोग करना चाहिये।

संज्ञास्थापन कषाय—हींग, कटफल, जङ्गलीबबून, बच, चोरपुष्पी, ब्रह्मीशाक, भूतकेशी, जटामांसी, गुग्गुलु और कुटकी; यह दस द्रव्य संज्ञास्थापक है।

प्रजास्थापन कषाय—बड़ा खीरा, ब्रह्मीशाक, दूर्व्वा, श्वेतदूर्व्वा, पाटला, आमला, हरीतकी, कुटकी, बरियारा और प्रियङ्गु; यह दस द्रव्य प्रजासंस्थापक अर्थात् गर्भस्राव आदि निवारक है।

वयःस्थापन कषाय—गुरिच, हरीतकी, आंवला, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतमूली, थानकुनी, शालपाणी और पुनर्नवा; यह दस द्रव्य वयःस्थापक अर्थात् जरा प्रभृति निवारक है।

विदारी गन्धादिगण—शालपानी, विदारीकन्द, गोरक्षचाकुला, शतमूली, अनन्तमूल, श्यामालता, जीवक, ऋषभक, माषोणी, मुगानी, बृहती, कण्टकारी, पुनर्नवा, एरण्डमूल, गोवालकी लत्ता, त्रिकुटी, कवाच इन सबको विदारी गन्धादि कहते हैं। यह बन स्पति पित्त, वायु, शोथ, गुल्म अङ्गमर्द और ऊर्द्धश्वास और खांसी आदि रोगोंको आराम करता है।

आरग्वधादिगण—कवाच, मैनफल, केवड़ेका फूल, कुरैया, अकवन, कांटेदार बैगन, रक्तलोध, मुर्व्वा, इन्द्रयव, छातिमकी छाल, नीमकी छाल, पीतभाटी, नीलभाटी, गुरुच, चिरायता, महाकरञ्ज, नाटाकरञ्ज, डहर करञ्ज, परवरकी लत्ती, चिरायतेकी जड़, करैला, इन सबको आरग्वधादिगण कहते हैं यह कफ, विष, मेह, कोढ़, ज्वर, कै, खजुली इन सबको आराम करता है।

वरुणादिगण—वरुण, नीलभाटी, सैंजन, रक्तसैंजन, जयन्त, मेढाशृङ्गी, डहरकरञ्ज, करञ्ज, मुर्व्वा, गणियारी, श्वेतभाटी, पीतभाटी, तेलाकुचा, अकवन, बड़ी पीपल, चालमूल, शतमूली, बेलकी गिरी, काकड़ाशृङ्गी, कुशमूल, बृहती, कण्टकारी,

इन सबको वरुणादिगण कहते है। इससे कफ मेदोरोग, शिरका दर्द, गुल्म और अन्तर्विद्रधि रोग आराम होता है।

वीरतर्व्वादिगण—अर्ज्जुनकी छाल, नीलझाटी, पीतझाटी, कुशमूल,फुनगी, गुरिच, नरकटकी जड़, काशमूल, पाथरचूर, गणियारी, मुर्रा, अकवन, गजपीपल, शिवनाक, सफेद झाटी, नीला कमल ब्रह्मी और गोक्षुर इनको वीरतर्व्वादिगण कहते है। इससे वायुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात आराम होता है।

सालसारादिगण—साल, आसन, खैर, पपड़िया खेर, तमाल, सुपारी, भोजपत्र, मेषशृङ्गी, तिनिस, चन्दन, लालचन्दन, शिसा शिरीष, पियाशाल, धव, अर्ज्जुन, साल, सगवान, करञ्ज, डहरकरञ्ज, लताशाल, अगुरु और कालिया काष्ठ, इन सबको सालसारादिगण कहतेहै। इससे कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, कफ और मेदोरोग दूर होताहै।

लोध्रादिगण—लोध, सावर लोध, पलाश, शिवनाक, अशोक, वारङ्गी, कायफल, एलवा, कैवर्त्त मोथा, शल्लकी, जिङ्गिनी, कदम्ब, शाल और कदली, इन सबको लोध्रादिगण कहते है, यह मेदो रोग, कफ और योनिदोष निवारक, स्तम्भनकारक, व्रण-शोधक और विषनाशक है।

अर्कादिगण—अकवन, सफेद अकवन, करञ्ज, डहर करञ्ज, हाथीसुंड, अपामार्ग, बभनेठी रास्ना, विदारीकन्द, वीनुटा, अकवन हस्त, इङ्गुदी हस्त, इनको अर्कादिगण कहते है, इससे कफ मेदोरोग क्रमि और कुष्ठरोग आराम होता है। तथा यह व्रण रोगमें विशेष उपकारी है।

सुरसादिगण—तुलसी, सफेद तुलसी, क्षुद्रपत्र तुलसी, वन-तुलसी, काली तुलसी, गन्धतृण, कालकासुंदी, अपामार्ग, नाग-दाना, विडङ्ग, कायफल, मरसी, सम्हालु, कुकसीमा, कुद्दाकानी,

जमनेठो, पाचोवल, काकमाचो और कुचिला इसको सुरसादिगण कहते हैं। यह क्रमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास, कास रोग निद्रा, रक्त और व्रण शोधक है।

मुष्कक्रादिगण—घण्टापाटला, पलाश, धव चीतामूल, धतुरा, शिमी, सेहुड और त्रिफला इनको मुष्ककादिगण कहते हैं यह मेदोरोग, प्रमेह, अर्श, पाण्डु, सर्करा और अश्मरीरोग निवारक है।

पिपल्यादिगण—पीपल, पोपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोठ, गोलमिरच, बडी पीपल रेंगनी, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव अकवन, जीरा, सरसो, बडी नीमका फल, जमनेठो, हीग, मूर्व्वा, अतीस, बच, विडङ्ग, कुटको इनको पिपल्यादिगण कहते हैं। इससे कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि गुल्म और शूल दूर होता है। यह आमदोषका पाचक और अग्निका उद्दीपक है।

एलादिगण—इलायची, तगरपादुका, कुठ, जटामांसी, गन्धतृण, दालचिनी, तेजपत्ता, नागकेशर, प्रियङ्गु, रेनुका, नखी, सेहुड, चोरपुष्पी, गठिवन, गन्धाबिरोजा, चोरक नामक गंधद्रव्य, बाला, गुग्गुलु, राल, घण्टापाटला कुन्दुरखोटी, अगुरु, पुकशाक, खसकी जड़, देवदारु केशर और नागेश्वर, इन सबको एलादिगण कहते हैं। इससे वायु, कफ, विषदोष, खजुली, फोडा और कुष्ठरोग दूर हो शरीरकी कान्ति उज्वल होती है।

वचादिगण—बच, मोथा, अतीस, हरीतकी, देवदारु और नागकेशर इसको वचादिगण कहते हैं।

हरिद्रादिगण—हल्दी दारुहल्दी, पिठवन, इन्द्रयव और मुलैठी इसको हरिद्रादिगण कहते हैं।

उक्त वचादि और हरिद्रादिगण स्तनदुग्ध शोधक आमातिसार नाशक और दोषपाचक है।

श्यामादिगण—अनन्तमूल, श्यामालता, त्रिवृतमूल शङ्खपुष्पी, लोध, कमलागुडि, बडी नोम, सुपारी चुहाकानी गवाक्षी, अमिलतास, करञ्ज, डहर करञ्ज, गुरिच, नवमालिका, शरट्ण, राल, बीजताड़क, सेहुंड़ और मत्यानासी, इनको श्यामादिगण कहते है। यह गुल्म, विषदोष आनाह, उदररोग, उदावर्त्त निवारक और विरेचक है।

बृहत्यादिगण—बृहती, कण्टकारी इन्द्रयव, अकवन और मुलेठो, इनको बृहत्यादिगण कहते है। इससे पित्त, कफ, अरुचि, वमन, वमनोद्वेग और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

पटोलादिगण—परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, मूर्व्वा, गुरिच, अकवन और कुटकी इनको पटोलादिगण कहते है। यह पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, वमन, कण्डु और विषदोष निवारक है।

काकोल्यादिगण—काकोली, चीरकाकोली, जोवक, ऋषभक, मुगानी, माषोणी, मेदा, महामेदा, गुरिच, काकडाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरियाकाष्ठ, ऋद्धि, वृद्धि, द्राचा, जोवन्ती और मुलेठी इनको काकोल्यादिगण कहते है। यह रक्तपित्त और वायुनाशक तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकर, शुक्र और रतिशक्ति जनक, स्तन्यवर्द्धक और कफकर है।

ऊषणादिगण—चारमृत्तिका, सन्धव लवण, शिलाजतु, श्वेत हिराकस, रक्त हिराकस, हीग और तुतिया इनको ऊषणादिगण कहते है। इससे कफ, मेदरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्म रोग दूर होता है।

अञ्जनादिगण—अञ्जन, रसाञ्जन, नागकेशर, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, खसकी जड, पानी आंवला, कुङ्कुम और मुलेठी इनको अञ्जनादि

कहते है। इससे रक्तपित्त, विष और भीतर का दाह शान्त होता है।

परूषकादिगण—फालसा, किसमिस, कायफल, अनार, पलाश वृक्ष, निर्मली फल, शिरीष, कायफल, आंवला, हरीतकी और बहेडा इनको परूषकादिगण कहते है। इससे वायु, मूत्रदोष और पिपासा दूर हो भूखबढती है।

प्रियङ्ग्वादिगण—प्रियङ्गु, बराहक्रान्ता, धवईफूल, नागकेशर, रक्तचन्दन, पतङ्गवृक्ष, मोचरस रसाञ्जन, टोकापानी, स्रोतोञ्जन, पद्मकेशर, मजीठ और श्यामालता इसको प्रियङ्ग्वादिगण कहते है।

अम्बष्ठादिगण—अकवन, धवईफूल, बराहक्रान्ता, श्योनाक, मुलेठी, वेलकी गिरी, लोध, साबर लोध, पालाश, तूतवृक्ष और पद्मकेशर इनको अम्बष्ठादिगण कहते है। उक्त दोनो गण पक्वातिसार नाशक व्रण रोधक और भग्नस्थान संयोजक है।

न्यग्रोधादिगण—बट, गुलर, अश्वत्थ, पाकर, मुलेठी, आमडा अर्जुन, आम, कोपाम्र, पिडिंशाक, तेजपत्ता, बडा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, शल्लकी, लोध, साबर लोध, भिलावा, पलाश, मेषशृङ्गी इनको न्यग्रोधादिगण कहते है। यह व्रणनाशक, मलरोधक, भग्नस्थान संयोजक, तथा रक्तपित्त, दाह, मेदोरोग और योनिदोष निवारक है।

गुडूच्यादिगण—गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, चन्दन और पद्मकाष्ठ इनको गुडूच्यादिगण कहते है इससे सब प्रकारका ज्वर, दमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उत्पलादिगण—नोलोत्पल, रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सुगन्धि नीलोत्पल, कुवलय, (थोड़ा नीला श्वेतोत्पल) श्वेतपद्म और

मुलेठी, इसको उत्पलादिगण कहते हैं। इससे दाह, रक्तपित्त, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छा दूर होता है।

मुस्तादिगण—मोथा, हलदी, दारुहलदी, हरीतकी, आंवला बहेडा, कूठ, मल्यानासी, बच, श्रकवन, कुटकी, बडा करौंदा, अतीस, इलायची, मेलावा और चीतामूल इसको मुस्तादिगण कहते हैं। यह कफनाशक योनिदोष निवारक, स्तन्यशोधक और पाचक है।

आमलक्यादिगण—आंवला, हरीतकी, पीपल और चीतामूल इनको आमलक्यादिगण कहते हैं। यह सब प्रकारका ज्वर, कफ और अरुचिका नाशक तथा चक्षु हितकर, अग्नि उद्दीपक और रतिशक्ति वर्द्धक है।

त्रपादिगण—वङ्ग, सीसक, ताम्र, रौप्य कान्तलौह, स्वर्ण और मण्डूर इसको त्रपादिगण कहते हैं। यह दूषित विषदोष, क्रिमि, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेह रोग नाशक हैं।

लाक्षादिगण—लाक्षा, जम्बीर, कुरैया, करवीर, कायफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नीम, क्षातिम, मालती, वला और गुलर इन सबको लाक्षादिगण कहते हैं। यह कषाय तिक्त, मधुर रस, कफ और पित्तजनित पीडा नाशक, कुष्ठ और क्रिमि निवारक तथा दुष्टव्रण शोधक है।

त्रिफला—हरीतकी, आंवला और बहेडा ये तीनको त्रिफला कहते हैं। यह वायु, कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ, विषम ज्वरनाशक, चक्षु हितकर और अग्नि उद्दीपक है।

त्रिकटु—पीपल, मिरच और शोंठ यह तीन द्रव्यको त्रिकटु कहते हैं। त्रिकटुसे कफ, मेदोरोग, प्रमेह, कुष्ठ, चर्मरोग, गुल्म, पीनस और मन्दाग्नि दूर होता है।

स्वल्प पञ्चमूल—गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, सरिवन और पिठवन यह पांच द्रव्यके मूलको स्वल्पपञ्चमूल कहते है। यह कषाय तिक्त-मधुर रस, वायुनाशक, पित्तप्रशमक, बलकर और पुष्टिकारक है।

महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी। यह पांचद्रव्यके मूलको महत् पञ्चमूल कहते है। यह तिक्त मधुर रस, कफ वायुनाशक, लघुपाक और अग्नि उद्दीपक है।

दशमूल—स्वल्प और महत् पञ्चमूलको मिलानेसे दशमूल होता है। यह श्वास, कफ, पित्त और वायुनाशक आमदोष पाचक और सर्व्वज्वर निवारक है।

वल्ली पञ्चमूल—सरिवन, अनन्तमूल, हल्दी, गुरिच और मेषश्रृङ्गी, इन सबके मूलको वल्ली पञ्चमूल कहते है।

कण्टक पञ्चमूल—करौंदा, गोक्षुर, नीलझाटी, शतमूली और कालिया कडा, इनके मूलको कण्टक पञ्चमूल कहते है।

बल्ली पञ्चमूल और कण्टक पञ्चमूल रक्तपित्त, शोथ सब प्रकार का प्रमेह और शुक्रदोष निवारक है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश नरकट कण्डा और इक्षु, इन सबके मूलको तृणपञ्चमूल कहते है। यह दूधके साथ देनेसे मूत्र दोष और रक्तपित्त जल्दी आराम होता है।

विशेषत यह पाचमूलमे स्वल्प और महत् पञ्चमूल वायुनाशक तृणपञ्चमूल पित्तनाशक और कटक पञ्चमूल कफनाशक है।

यवक्षार।—जौके छिलकेको राख एक सेर ६४ सेर पानीमें मिलाकर मोटे कपडेमे वह पानी क्रमश २१ दफे छान लेना। फिर यह पानी किसी पात्रमे रख औटाना पानी जलकर चूर्णवत् पदार्थ बाकी रहनेपर उसको यवक्षार कहते है।

यवक्षार गरम पानीमे मिलाकर थोडी देर रखनेसे नीचे जम

जाता है फिर उपरका पानी आहिस्तेसे निकाल कर सुखा लेनेसे यवक्षार शोधित होता है। अन्यान्य पदार्थका चार बनानेकी रीति प्राय: इस तरह है।

वज्रक्षार।—यवक्षार और सोरा एक बरतनमें रख आग-पर चढाना पानीको तरह गल जानेपर उसमें फिटकिरीका चूर्ण मिलाना इससे उसका मैला कटकर उपरको उठनेपर वह झारेसे आहिस्ते बाहर निकाल देना। फिर किसो चोड़े पात्रमें ढालकर वह जमा देनेसे उसको वज्रक्षार कहते है। यह अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शोथ आदि विविध रोगनाशक है।

बुद्धिमान चिकित्सक रोग और रोगोकी अवस्था विचार कर इस अध्यायकी सब दवायोंका काढा लेप और इसके साथ तैल घी आदि पाककर प्रयोग करनेसे उपयुक्त उपकार प्राप्त होवेंगे।

पथ्य प्रस्तुत विधि।

यवागू।—थोडा कूटा हुआ चावल या जौके चावलका यवागू तयार करना। माण्ड, पेय और लपसी यह तीन प्रकारका यवागू होता है। चावल १८ गूने पानीमें खूब सिजाकर छान लेनेसे माण्ड होता है, ११ गूने पानीमें खूब सिजा लेनेसे पेय कहते है और ८ गूने पानीमें सिजानेसे लपसो कहते है। पेय और लपसी छानी नहीं जाती। यवागू पानीकी तरह होनेसे पेय और गाढा होनेसे लपसी कहते है।

धानके लावाका मांड—टटका धानका लावा थोड़े गरम पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखना, फिर कपड़ेमें छाननेसे जो मांडकी तरह पदार्थ निकलेगा उसको धानके लावाका मांड कहते है।

वार्लि और एरारूट।—वार्लि और एरारूट बनाना हो तो पहिले गरम पानीमें खूब मिला लेना, फिर दूध, मिश्री मिलाकर औटाना। सागू बनानेकी भी रीति यही है, पर सागू थोड़ी देर ठण्ढे पानीमें भिङ्गोकर सिजाना चाहिये।

माणमण्ड।—माणकन्दका चूर्ण दो भाग और चावलका चूर्ण एक भाग १८ गुने पानीमें औटानेसे माणमण्ड तयार होता है। यवागू आदि पथ्य रोगीकी अवस्था विचारकर मिश्री, कागजी नीबूका रस ३।४ बूंद या छोटी मछलीका शूरवा अथवा मांसका रस मिलाकर दिया जाता है।

उपवास या यवागू आदि हलके भोजनके बाद अन्न पथ्य देना हो तो चावल पांच गुने पानीमें सिजाना चावल खूब गलजानेपर मांड निकाल डालना। तरकारी आदिमें भी थोड़ा तेल और नमक मिलाना चाहिये।

दालका जूस।—मूंग और मसूरका जूस बनाना हो तो, दाल १८ गुने पानीमें सिजाना तथा तेल, नमक और मसाला बहुत कम मिलाना। ३।४ तेजपत्ता, थोड़ी गोलमिरच और थोड़ी पिसी हुई धनियाके सिवाय और कोई मसाला देना उचित नहो है।

मांसका रस।—रोगके अवस्थानुसार छाग, कबूतर या मुरगा आदिके कोमल मांसका छोटा छोटा टूकड़ा कर उसकी चर्व्वी निकाल उपयुक्त पानीमें अन्दाज एक घण्टा भिंगो रखना; फिर उसमें थोड़ा नमक, हल्दी और समूची धनिया मिला मुह

बन्दकर हल्की आंचमें सिझाना। सुसिद्ध होनेपर एक पात्रमें रस और दूसरे पात्रमें मांस निकाल रखना। फिर मांस अच्छी तरह मसलकर उसका भी रस दूसरे पात्रवाले रसमें मिला देना। थोड़ी देर बाद रसके ऊपर चर्बी दिखाई देगी, वह एक साफ कपड़ेके टुकड़ेसे निकाल लेना। रोगीकी अवस्थाके अनुसार ३।४ तेज-पत्ता और राईकी फोड़न देकर थोड़ा गोलमिरचका चूर्ण मिलाना। इसीको मांस रस कहते हैं। आजकल बोतलमें भरकर मांस रस बनानेकी एक प्रकार रीति है, उसे भी तयार कर सकते हैं। मांस रस एक दफे बनाकर ५।६ घंटेके बाद फिर वह कामका नहीं रहता। जरूरत होनेपर फिरसे बनाना चाहिये।

आटेकी रोटी।—जल्दी हजम होनेवाली रोटी बनाना हो तो, पहिले आटा एक घटातक उपयुक्त पानीमें भिंगो रखना, फिर खूब मसलकर गोला बनाना, तथा एक बरतनमें पानी चूल्हेपर चढ़ा वह गोला १५।२० मिनट सिझाकर बाहर निकाल लेना। फिर उस गोलेको अच्छी तरह मसलकर पतली रोटी बनाकर सेंक लेना। यह रोटी बहुत जल्द हजम होती है और किसी तरह का बदहजमीका डर नहीं रहता है।

ज्वराधिकार।

वातज्वरमें।

विल्वादि पञ्चमूल। वेल, श्ररलु, गाम्भारी, पाटला (पद्) ओर गणियारी (एरणी) यह पाच वृक्षके जडकी छाल २ तोले, आधासेर पानीमें औटाना आधा पाव रहते उतार कर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

किरातादि। चिरायता, मोथा, गुरिच, वृहती, कटकारी, गोखुरु, मरिवन, पिठवन ओर शोंठ, यह काढा वातज्वर नाशक है।

रास्नादि। रास्ना, अमिलतास, देवदारु गुरिच, एरण्ड ओर पुनर्नवा, इन सबके काढेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वात ज्वर आराम होता है, तथा तज्जनित वदनको दर्द आदिभी निवृत्ति होता है।

पिप्पल्यादि। पीपल, गुरिच ओर शोंठ किम्बा पीपल, अनन्त मूल, द्राचा, सोश ओर सम्भालुकी वीज, यह दोमें किसी एकका काढा पीनेसे भी वातज्वर आराम होता है।

गुडूच्यादि। वातज्वरके सातवें दिन जब सम्पूर्ण लक्षण प्रकाशित हो तब गुरिच, पीपलामूल ओर शोंठका काढा देना चाहिये।

द्राचादि। द्राचा, गुरिच, गाम्भारी, गुलर ओर अनन्तमूल; इस काढेमें गुड मिलाकर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

पित्तज्वरमें।

कट्फलादि। इन्द्रयव, कटफल, लोध, अकवन, परवरका पत्ता और मजीठ; यह काढा पीनेसे पित्तज्वरका दाप परिपाक होताहै।

लोध्रादि। लोधकी छाल, उत्पल, गुरिच, पद्मकाठ और अनन्त-मूलका काढा थोडी चीनी मिलाकर पिलानेसे पित्तज्वर दूर होताहै।

पटोलादि। पित्तज्वरमें दाह और पिपासा प्रबल होतो पर-वरका पत्ता, यव धनिया और मुलेठोका काढा पिलाना।

दुरालभादि। जवासा, पितपापडा प्रियङ्गु, चिरायता, अडूसा और कुटकीके काढेमें चीनी मिलाकर पिलानेसे तृष्णा, रक्तपित्त, ज्वर और दाह प्रशमित होता है।

त्रायमाणादि। गुलर, मुलेठो पोपलामूल, चिरायता, मोथा महुवेका फूल और बहेडाका काढ़ा चीनी मिलाकर पीनेसे पित्त ज्वर आराम होता।

श्लेष्मज्वरमें।

पिप्पल्यादिगण। पीपल पीपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ, गोलमिरच, गजपीपल, मभालुकी बीज इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन ओरा, सरसी बडी नीमका फल, हींग, बभनेटी, मूर्व्वा, अतीस, बच, विडङ्ग और कुटकी; इन सबको पिप्पल्यादिगण कहते है। इससे श्लेष्मज्वर दूर होता है तथा कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल आराम होता है।

कट्फलादि। कुटकी, चीतामूल, नीमका फल, हल्दी, अतीस, कट्फल, इन्द्रयव, मूर्व्वा और परवरका पत्ता; इन सबके काढेमें गोलमिरचका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे कफज्वर नाश होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतसे कुटकीसे वचतक एक योग और कूठसे परवरके पत्तेतक दूसरा योग है।

निम्बादि। नीमको छाल, सोंठ, गुरिच, देवदारु, शठी, चिरायता, कूठ, पीपल और वृहतीका काढ़ा कफज्वर नाशक है।

वातपित्त ज्वरमें।

नवाङ्ग। सोंठ, गुरिच मोथा, चिरायता, सरिवन, पिठवन कंटकारी और गोक्षुरका काढा पीनेसे वातज्वर जलदी आराम होता है।

पञ्चभद्र। गुरिच पित्तपापड़ा, मोथा चिरायता और सोंठ; इनका काढा वातपित्त ज्वरमें उपकारी है।

त्रिफलादि। त्रिफला सेमरको जड़ रासन अमिलतासका फल और अडूसेका काढा वातपित्त ज्वर नाशक है।

निदिग्धिकादि। कंटकारी वरियारा, रास्ना, गुरुर, गुरिच और मसूर (किसीके मतमें श्यामालता) के काढेसे वातपित्त ज्वर आराम होता है।

मधुकादि। मुलेठी अनन्तमूल, श्यामालता, द्राक्षा, महुवेका फूल, लालचन्दन, उत्पल गाम्भारी पद्मकाष्ठ लोध, आंवला, हरीतकी, बहेड़ा, पद्मकेशर, फालसा और खसको जड़; रातको साफ पानीमें भिगोना और सबेरे छान लेना, इसमें महत, धानकी लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर खिलानेसे पित्तजनित तृष्णा, वमन, भ्रम आदि उपद्रव जल्दी प्रशमित होता है।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

गुडूच्यादि। गुरिच, नीमको छाल, धनिया, पद्मकाष्ठ और लालचन्दनका काढा पीनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर प्रशमित होता है। तथा अरुचि, ह्दी, पिपासा और दाह दूर होता है।

मुस्तादि। वातश्लेष्म ज्वरमें वमन दाह और मुखशोष रहनेसे मोथा, पित्तपापड़ा, सोंठ, गुरिच और जवासेका काढा पिलाना।

दार्व्यादि। वातकफ ज्वरमें हिक्का, मुखशोष, गलग्रहता, कास, श्वास और मुखप्रसेक हो तो देवदारु, खेतपापड़ा, बभनेठी, मोथा, बच, धनिया कटफल, हरीतकी, शोंठ और नाटाकरंज; इनका काढ़ा हींग और सहत मिलाकर पिलाना।

चातुर्भद्रक। कफका वेग प्रबल हो तो चिरायता, शोंठ, मोथा और गुरिचका काढ़ा पिलाना।

पाठासप्तक। ज्वरका वेग प्रबल हो तो चिरायता, शोंठ, गुरिच, अकवन, बाला और खसको जड़का काढ़ा उपकारी है।

कण्टकार्य्यादि। कंटकारी, गुरिच, बभनेठी, शोंट, इन्द्रयव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, मोथा, परवरका पत्ता और कुटकी का काढ़ा पिलानेसे दाह तृष्णा, अरुचि, कास और हृदय तथा पार्श्व वेदना दूर होती हैं।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें।

पटोलादि। परवरका पत्ता, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी अकवन और गुरिचका काढ़ा पित्तश्लेष्म ज्वर, अरुचि, वमन, कण्डू और विषदोष नाशक है।

अमृताष्टक। गुरिच, नोमको छाल इन्द्रयव, परवरका पत्ता, कुटकी, शोंठ, लालचन्दन और मोथाके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पोनेसे पित्तश्लेष्म ज्वर दूर होता है; तथा तज्जनित वमन, अरुचि, तृष्णा, वमनवेग और दाह प्रशमित होता है।

पञ्चतिक्त। कंटकारी, गुरिच शोंठ चिरायता और कुट यह पञ्चतिक्त काढ़ा पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर आराम होता है।

नये ज्वरमें।

ज्वराङ्कुश। पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग,

जमालगोटेकी बीज ४ भाग ; यह सब दन्तीमूलके काढेमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान चीनीका शर्बत।

स्वच्छन्द भैरव। पारा, गन्धक, मीठाविष, जायफल और पीपल ; समभाग पानीमें खलकर आधी रत्ती वजनकी गोली बनाना, अनुपान अदरखका रस, पानका रस और मधु।

हिंगुलेश्वर। पीपल, हिंगुल और मिठाविष ; समभाग पानीमें खलकर आधी रत्तीकी गोली बनाना। यह मधुमें देनेसे वातिक ज्वर आराम होता।

अग्निकुमार रस।—गोलमिरच २ मासे, वच २ मासे, कुठ २ मासे, मोथा २ मासे, और मीठा विष ८ मासे, अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आमज्वरके प्रथमावस्थामें सोंठका चूर्ण और मधु ; कफज्वरमें अदरखका रस ; पीनस और प्रतिश्यायमें भी अदरखका रस, अग्निमान्द्यमें लौंगका चूर्ण ; शोथमें दशमूलका काढा ; आमातिसारमें धनिया और सोंठका काढा ; पक्वातिसारमें कुरैया का काढा और मधु ; ग्रहणी रोगमें सोंठका चूर्ण ; सन्निपातके पहिली अवस्थामें पीपलका चूर्णऔर अदरखका रस ; खांसीमें कण्टकारीका रस ; श्वासमें सरसोंका तेल और पुराना गुड़। इसकी केवल दो गोली सेवन करनेसे रोगीको आराम मालूम होता है। सब प्रकारके रोगोंमें आमदोषके शान्तिके लिये यह औषध देना चाहिये। इससे अग्निवृद्धि होती है, इससे इसका नाम अग्निकुमार रस रखा गया है।

श्रीमृत्युञ्जय रस।—विष (मीठा विष) १ भाग, गोलमिरच एक भाग, पीपल एक भाग, अजवाइन जीरा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा १ भाग, हिंगुल २ भाग, (यहां हिंगुल

जम्बीरी नीबूके रसकी भावना देकर लेना, यदि इसमें १ भाग पारा मिलाया जाय तो द्विगुन मिलानेकी जरूरत नहीं है) अद-रखके रसमें खुब खलकर मूगके बराबर गोली बनाना। इसका साधारण अनुपान सहत, वातज्वरमें दहीका पानी, सन्निपातमे अदरखका रस, जीर्ण ज्वरमें जम्बीरी नीबूका रस, विषम ज्वरमें काला जीराका चूर्ण और पुराना गुड, इसकी पूरीमात्रा ४ गोली है, पर बूढे, बालक और दुर्ब्बल मनुष्यको एकही गोली देना चाहिये। यदि कफका आधिक्य न हो तथा रोगी सबल हो तो कच्चे नारियलका पानी और चीनीके साथ सेवन कराना। इससे वातपैत्तिक दाह भी दूर होता है।

सर्व्वज्वराङ्कुश वटी।—पारा, गोलमिरच, सोंठ, पीपल, जमालगोटेकी छाल, चीता और माथा, इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवनकर शरीर कपड़ेसे ढांके रखना चाहिये। इससे आठ प्रकारका ज्वर, प्राकृत, वैकृत विषम आदि सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

चण्डेश्वर रस।—पारा, गन्धक, मीठा विष और ताम्बा, यह सब समभाग लेकर एक पहर खल करना, फिर अदरखके रसकी ७ बार और ममालू पत्रके रसकी ७ सात बार भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अद-रखका रस। इससे सब प्रकारका ज्वर जल्दी आराम होता है।

चन्द्रशेखर रस।—पारा एकभाग गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा २ भाग, गोलमिरच २ भाग और सबके समान चीनी, रोहित मछलीके पित्तकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी

गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस और ठंढापानी। इससे अत्युग्र पित्तश्लेष्मज्वर तीनदिनमें आराम होता है।

वैद्यनाथ वटी।—पारा आधा तोला और गन्धक आधा तोला खलकर कज्जली बनाना, फिर कुटकीका चूर्ण २ तोले मिलाकर करेलीका रस अथवा त्रिफलाके काढ़ेकी तीन दफे भावना देकर मटरके बराबर गोली बनाना। अनुपान पानका रस किम्बा करेलीका रस और गरम पानी। दोषका बलाबल विचारकर एकसे चार गोलीतक देनेकी व्यवस्था है। यह बालकोंके लिये हलका जुल्लाब है।

नवज्वरेभसिंह।—पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा, गोलमिरच, पीपल और सोंठ प्रत्येक समभाग, मीठा विष आधा भाग (कोई कोई समष्टिका आधा विष कहते है।) २ दिन पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे घोरतर नवज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं।

मृत्युञ्जय रस।—पारा एकभाग गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा ४ भाग विष ८ भाग; धतूरेकी बीज १६ भाग, त्रिकटू ६२ भाग धतूरेके रसमें खलकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। इससे सबप्रकारका ज्वर आराम होता है। कच्चे नारियलका पानी और चीनीसे वातपैत्तिक ज्वर, सहतसे श्लैष्मिक ज्वर और अदरखके रसमें देनेसे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

प्रचण्डेश्वर रस।—विष, पारा और गन्धक समान वजन दोपहर खलकर समालू पत्तेके रसकी २१ दफे भावना देना तथा इसकी तिलकी बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखके रसमें यह नवज्वरकी अकसीर दवा है।

त्रिपुरभैरव रस।—विष एक भाग, सोहागा २ भाग, गन्धक ३ भाग, तांबा ४ भाग, दन्तीबीज ५ भाग; दन्तीके काढ़ेमें एक पहर खलकर ३ रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस अथवा सोंठ, पीपल और गोलमिरचका काढ़ा और चीनी। इससे नवज्वर मन्दाग्नि, आमवात, शोथ, विष्टम्भ, अर्श: और क्रिमि दूर होता है।

शीतारि रस।—पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा एक भाग, जमालगोटेको बीज २ भाग, सैंधव एक भाग, मिरच एक भाग, इमलीकी छालका भस्म १ भाग और मीठाविष एक भाग, यह सब द्रव्य जम्बीरी नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनको गोली बनाना। यह वातश्लेष और शीतज्वरको उत्कृष्ट औषध है।

कफकेतु।—शङ्खभस्म, सोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा आदि एक एक भाग, मीठाविष ५ भाग यह आदीके रसमें तीन दफे खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान आदिका रस, इससे कफ जन्य कण्ठरोध, शिरोरोग और भयानक सन्निपात दूर होता है।

प्रताप मार्त्तण्ड रस—मीठा विष, हिङ्गुल और सोहागा समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। इससे ज्वर तुरन्त आराम होता है।

ज्वरकेशरी।—पारा, गन्धक, मीठाविष, सोंठ पीपल, मिरच, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और जमालगोटेकी बीज, प्रत्येक समभाग भङ्गरइयाके रसमें खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। बच्चोंके लिये सरसों बराबर। पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात ज्वरमें मिरच और दाहज्वरमें पीपल और जीरेके काढ़ेमें

विरेचनके लिये प्रयोग करना। साधारणतः यह केवल गरम पानीके साथ प्रयुक्त होता है।

ज्वरमुरारि।—हिङ्गुल मीठाविष, शोंठ पीपल, मिरच, सोहागेका लावा और हरीतकी, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर जमाल गोटेको बीज पानीके साथ खलकर उरदके बराबर गोली बनाना। आदीके रसके साथ :विरेचनके लिये दिया जाता है। यह भी सद्य; ज्वर निवारक है।

सन्निपात ज्वरमें।

क्षुद्रादि—कण्टकारी, गुरिच, शोंठ और कूठका काढ़ा पीनेसे सन्निपात ज्वर, काम, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल आराम होता है; यह वातश्लेष्मिक ज्वरमें भी दिया जा सकता है।

चातुर्भद्रक—चिरायता, शोंठ मोथा और गोलमिरचका काढा पीनेसे :सान्निपातिक ज्वर आराम होता है। यह कफाधिक्य सन्निपातमें प्रशस्त है।

नागरादि—शोंठ, धनिया, बभनेठी, पद्मकाष्ठ, लालचन्दन, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, बरियारा, कुटकी, मोथा, गजपीपल, अमिलतास, चिरायता, गुरिच, दशमूल और कण्टकारीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीनेसे त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर आराम होता है।

चतुर्दशाङ्ग—पुराना ज्वर या वातश्लैष्मिक सन्निपात ज्वरमें पूर्व्वोक्त दशमूल और किराताादिगण अर्थात् चिरायता, मोथा, गुरिच और शोंठ के काढेके साथ आधा तोला निशोथका चूर्ण मिलाकर पीनेको देना।

वातश्लेष्महर अष्टादशाङ्ग—वात कफाधिक्य सान्निपातिक ज्वरमें हृदय और पार्श्ववेदना तथा कास, श्वास, हिक्का और

वमनवेग रहनेसे पूर्वोक्त दशमूल, शठी काकडाशिङ्गी कूठ,जवासा, बभनेठी, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी, यही अष्टादशाङ्ग का काढा देना।

पित्तश्लेष्महर-अष्टादशाङ्ग—चिरायता, देवदारु, दशमूल, शोठ, मोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनिया और गजपीपलके काढेसे तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह और मोह आदि उपद्रवयुक्त सान्निपातिक ज्वर जल्दी आराम होता है।

भार्ग्यादि—बभनेठी, हरीतकी, कुटकी कूठ, पितपापडा, मोथा, पीपल, गुरिच दशमूल और शोंठका काढा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर नाश होता है, तथा सततादि घोरतर ज्वर, वहिस्थ और शीत संयुक्त ज्वर तथा मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथभी विनष्ट होता है।

शठ्यादि—शठी, कूठ, वृहती, काकडाशिङ्गी जवासा, गुरिच, शोंठ, आकनादि, चिरायता और कुटकी यह शठ्यादि काथ सान्निपातिक ज्वर नाशक है।

वृहत्यादि—वृहती, कण्टकारी, कूठ, बभनेठी शठी काकडा शिङ्गी, जवासा, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी; यह वृहत्यादि काथ सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर और उसके उपद्रव कासादि दूर होते है।

व्योषादि—शोठ, पीपल, मिरच, त्रिफला परवरका पत्ता, नीमकी छाल, अडूसा, चिरायता, गुरिच और जवासाका काढा त्रिदोषज्वर नाशक है।

त्रिवृतादि—निशोथ गोरख ककंटी, त्रिफला, कुटकी और अमिलतासके काढेमे, जवाखार मिलाकर पीनेसे त्रिदोषजनित ज्वर आराम होता है।

अभिन्यास ज्वरमें।

कारव्यादि—कालाजीरा कूठ एरण्डमूल बड़ा गुम्मर शोंठ गुरिच दशमूल शठी, काकडाशिङ्गी जवासा और पुनर्नवा गोमूत्रमें औटाकर पीनेसे घोरतर अभिन्यास ज्वर आराम होता है।

शृङ्ग्यादि। काकडाशिगी बभनेठी हरीतकी कालाजीरा पीपल चिरायता पितपापड़ा देवदारु बच कूठ जवासा काय फल, शोंठ मोथा धनिया कुटकी इन्द्रयव, अकवन रेणुका गजपीपल, अपामार्ग पीपलामूल चीतामूल, बड़ा खीरा अमिल तास नीमकी छाल, बकुची विडङ्ग, हल्दी दारुहल्दी अज वाईन, अजमोदाके काढेमें हींग और आदीका रस मिलाकर पीनेसे उत्कट अभिन्यास ज्वर, तेरह प्रकारका सन्निपात ज्वर और तन्द्रा, मोह, हुचकी, कर्णशूल, श्वास कास आदि उपद्रव शान्त होता है।

स्वल्पकस्तूरी भैरव—हिंगुल विष सोहागेका लावा जावत्र जायफल मिरच पीपल और कस्तूरी प्रत्येक द्रव्य समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती प्रमाण गोली बनाना। यह सन्निपात ज्वरमें आदीके रसमें देना।

वृहत् कस्तूरी भैरव।—कस्तूरी, कपूर धवइका फूल तावा केवाच बीज चादो सोना, मोती मूगा लोहा अकवन बिडग मोथा शोंठ आला हरिताल और आवला इन सबका समभाग चूर्ण मदारके पत्तेके रसम खलकर १ रत्ती वजन की गोली बनाना अनुपान आदिका रस इससे सब प्रकारका ज्वर तथा और कइ प्रकारके रोग आराम होते है।

श्लेष्माकालानल रस।—हिङ्गुलोत्थ पारा, गन्धक, तांबा, तुतिया, मैनसिल, हरिताल, कटफल, धतूरेको बीज, हींग, स्वर्णमाक्षिक, कूठ, निशोथ, दन्ती, शोंठ, पीपल, मिरच, अमिलतास, वङ्ग और सोहागेका लावा, यह सब द्रव्य सेहुंडके दूधमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे कफोल्वण सन्निपात आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते है।

कालानल रस।—पारा, गंधक, अभ्र, सोहागेका लावा, मैनसिल, हिंगुल, काले सर्पका विष, दारमुज विष और ताम्बा, प्रत्येक २ तोला लेकर बहुत महीन चूर्ण करना। लाङ्गली मूल, घोषालताका मूल, लाल चीताकी जड, नरम भूंई आंवला, बभनैठो, अकवनकी जड और पञ्चतिक्त रसको भावना देकर राईके बराबर गोली बनाना। इससे सन्निपातका विकार शान्त होता है।

सन्निपात भैरव।—पारा, विष, गंधक, हरिताल, बहेडा, आंवला, हर्रा, जमालगोटेको बीज, निशोथ मूल, सोना, तांबा, सीसा, अभ्र, लोहा, मदारका दूध, लांगली और स्वर्णमाक्षिक; यह सब द्रव्य समभाग लेकर नीचे लिखे प्रत्येक काढ़ेको ३० बार भावना देकर मटर बाराबर गोली बनाना।

भावनाके द्रव्य—चकवन, श्वेत अपराजिता, मुण्डरी, हुडहुड, कालाजीरा, काकजङ्घा, श्योनाक छाल, कूठ, शोंठ, पीपल, मिरच, वहची, लाल सूर्यमणि फूल, श्रीखण्डचण्डन, समालू, रुद्रजटा, धतूरा और दन्ती; इससे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

वेताल रस।—पारा, गंधक, विष, मिरच और हरिताल, समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली

बनाना। इससे साध्यासाध्य १२ प्रकारका सान्निपातिकज्वर और तज्जनित मूर्च्छा आदि शान्त होता है।

सूचिकाभरण रस।—कालकूट विष, काले सर्पका विष और दारमुज, प्रत्येक एक भाग, हिंगुल ३ भाग, रोहित मछली, वराह, महिष, छाग और मोरके पित्तकी क्रमशः भावना देकर सरसोंके बराबर गोली बनाना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी या मिश्रीका शर्बत। इसको सेवन कर तिलतैलका मर्द्दन और अन्यान्य शीतल क्रिया करना चाहिये। इससे विकारग्रस्त मृतप्राय रोगीभी आराम होते देखा गया है।

अघोरनृसिंह रस।—ताम्बा १ भाग, वङ्ग एक भाग, लोहा २ भाग, अभ्र चार भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग, पारा १ भाग, गंधक एक भाग, मैनशिल एकभाग, काले सर्पका विष ४भाग त्रिकटु ४ भाग, कुचिला १२ भाग और कालकूट विष ८८ भाग, यह सब, द्रव्य, रोहित मछली, महिष, कपूर और शूकरका पित्त और चीताके रसमें एक एक पहर भावना देकर सरसो बराबर गोली बनाकर धूपमें सुखा लेना अनुपान कच्चे नारियलका पानी। इससे १३ प्रकारका सन्निपात, हैजा और अतिसार आदि रोग आराम होता है।

चक्री (चाकी)।—पारा, गंधक, विष, धतूरेको बीज, मिरच, हरिताल और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर दन्तीके काढ़ेकी भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे साध्य और असाध्य १३ प्रकारका सान्निपातिक ज्वर आराम होता है।

ब्रह्मरन्ध्र रस।—पारा गंधक, अभ्र, हरिताल, हिंगुल, मिरच, सोहागेका लावा और सेंधानमक प्रत्येक समभाग सबके

समान विष, तथा समष्टोका चौथा हिस्सा महिषके पित्तमें खल करना। ब्रह्मरन्ध्र रस शरीर थोडा चोर कर लगानेसे सन्निपातके विकारको अज्ञानता दूर होती है। रोगीको उख आदि शीतल द्रव्य देना चाहिये।

मृगमदासव।—मृतसञ्जीवनी ५० पल, सहत २५ पल, पानी २५ पल, कस्तूरी ४ पल, मिरच, लवण, जायफल, पीपल और दालचिनी प्रत्येक २ पल, यह सब एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख, फिर छान लेना। यह उचित मात्रासे विसूचिका, हुचकी और सन्निपातिक ज्वरमें दिया जाता है।

मृतसञ्जीवनी सुरा।—एक वर्षसे भी अधिक पुराना गुड ३२ सेर, कुटी हुई बबूलकी छाल २० पल, अनारकी छाल, अडूसेकी छाल, मोचरस, वराहकान्ता, अतीस, असगंध, देवदारु, बेलकी छाल, श्योन्याककी छाल, पाटलाकी छाल, शरिवन, पिठवन, छहती कण्टकारी, गोखुर, बैर, बडे खीरेको जड़, चीतामूल, आलकुशी बीज और पुनर्नवा यह सब मिलाकर १० पल लेना तथा कूटकर १५६ सेर पानीमें मिलाकर बडे मिट्टीके बरतनमें रख मुह बन्द करना। १६ दिनके बाद कूटी हुई सुपारी ४ सेर, धतूरेकी जड, लौंग, पद्मकाठ, खस, लालचन्दन, सोवा, अजवाईन, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, शठी, जटामांसी, दालचिनी, इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, शोंठ, मेथी, मेष-शृङ्गी और चन्दन प्रत्येक २ पल; कूटकर मिलाना तथा मुह बन्द कर देना, फिर ४ दिनके बाद बकयन्त्रमें चुआकर शराब बनाना। बल, अग्नि और उमरके अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करना। इससे घोर सन्निपात ज्वर और विसूचिका आदि नानाप्रकारके

रोग आराम होता है तथा शरीरकी कान्ति, बल, पुष्टि और दृढ़ता होती है।

स्वच्छन्दनायक।—पारा, गंधक, लोहा और चांदी समभाग लेकर नीचे लिखे द्रव्यके रसकी भावना देना। हुड़हुड़ समालू, तुलसी, श्वेत अपराजिता, चीतामूल, अदरख, लाल चीतामूल, भांग, हरीतकी, काकमाची और पञ्चतिक्त। एक कटोरेमें रख बालुकायन्त्रमें फूकना। इसके चूर्ण की मात्रा एक मासा। इसमें अभिन्यास नामक सन्निपात आराम होता है। बकरीका दूध और मूगका जूस रोगीको पथ्य देना।

जीर्ण और विषम ज्वर।

—o—

निदिग्धिकादि।—कण्टकारी, सोंठ और गुरिचके काढ़ेमें एक आनाभर ष पलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे विषमज्वर, जीर्णज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य और पीनस रोग आराम होता है। इससे कईग रोग आराम होता है इस लिये शामको पिलाना चाहिये। रातके ज्वरमें यह काढ़ा शामको और दूसरेमें सवेरे पिलाना। पित्तप्रधान मालूम हो तो पोपलके बदलेमें मधु मिलाना।

गुडूच्यादि—गुरिच, मोथा, चिरायता, आंवला, कण्टकारी, सोंठ, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, गणियारी छाल, कुटकी, इन्द्रयव और जवासाके काढ़ेमें

४) आनेभर पीपलका चूर्ण और सहत २ मासे मिलाकर पीनेमे वातज, पित्तज, द्वन्द्वज और चिरोत्पन्न रात्रिज्वर आराम होता है।

द्राचादि—जीर्णज्वरमें काम, श्वास, शोथ और अरुचि हो तो; द्राचा, गुरिच, शठी, काकडाशिङ्गी, मोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, अम्बष्ठा, चिरायता जवासा, खस, धनिया, पद्मकाष्ठ बाला, कण्टकारी, कूठ और नीमकी छाल; यह अष्टादशाङ्ग काढा देना।

महौषधादि—सोंठ, पिपलामूल, तालमूली, मार्कण्डिका अमिलतास, बाला और हरीतकी। इन सबकी काढेमें जवाचार मिलाकर पिलाना। यह पाचक, रेचक और विषम ज्वर नाशक है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, मुलेठी, कुटकी, मोथा और हरीतकी; इसका काढा अथवा त्रिफला, गुरिच और अडूसेका काढा, किम्वा दोनों प्रकारका मिला हुआ काढा विषम ज्वर नाशक है।

वृहत् भार्ग्यादि—भारंगी, हरीतकी, कुटकी, कूठ, पित्त पापडा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और सोंठका काढा पीनेमे धातुगत सततादि घोरतर ज्वर, वह्निम्य और शीतसंयुक्त ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथ आराम होताहै।

भार्ग्यादि—भारंगी, कूठ, रास्ना, बेलकी छाल, अजवाईन, सोंठ, दशमूल और पीपल; इसका काढा पीनेसे विषम ज्वर सान्निपातिक ज्वर और तज्जनित काम, श्वास, अग्निमान्द्य, तन्द्रा हृदय और पार्श्वशूल आदि उपद्रव दूर होते है

मधुकादि—मुलेठी, लालचन्दन मोथा, आमला, धनिया, खस गुरिच और परवरके पत्तेके काढेमे २ मासे सहत और

२ मासे चीनी मिलाकर पोनेसे आठ प्रकारका ज्वर, सततादि ज्वर आदि जल्दी आराम होता है।

दाक्षादि।—नीलपुष्प, देवदारु, इन्द्रयव, मजीठ, श्यामालता, अस्वष्ठा, शठी, शौंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्मकाष्ठ, हड़जोड़, धनिया, मोथा, सरलकाष्ठ सैजनकी छाल, बाला, कण्टकारी, पित्तपापड़ा, दशमूल, कुटकी, अनन्तमूल, गुरिच और कूठके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे धातुस्थ विषम ज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, ऐकाहिक ज्वर और द्वाहिक ज्वर, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, वमन युक्त ज्वर, क्षयजनित ज्वर सततक और दुःसाध्य जीर्ण ज्वर आराम होता है।

दार्व्यादि।—दारुहल्दी, इन्द्रयव, मजीठ, बृहती, देवदारु, गुरिच, भूईं आंवला, पित्तपापड़ा, श्यामालता, हरसिंहारका पत्ता, गजपीपल, कण्टकारी, नीमकी छाल, मोथा, कूठ, शौंठ, पद्मकाष्ठ, शठी, अडूसे का मूल, त्रायमाणा, हड़जोड़, चिरायता, भेलावा, अस्वष्ठा, कुशमूल, कुटकी, पीपल और धनियाके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर और शीत, कम्प, दाह, कार्श्य, पसीना निकालना, वमन, ग्रहणी, अतिसार, कास, श्वास, कामला, शोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि, आठ प्रकारका शूल, बीस प्रकारका प्रमेह, प्लीहा, अग्रमास, यकृत और हलीमक आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते हैं।

महौषधादि—शौंठ, गुरिच, मोथा, लालचन्दन, खस और धनियाके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसे तृतीयक (एक दिन अन्तरका) ज्वर आराम होता है।

उशीरादि—तृतीयक ज्वरमें तृष्णा और दाह हो तो खस,

लालचन्दन, मोथा, गुरिच, धनिया और शोंठके काढेमें चोनी तथा सहत मिलाकर पीनेसे तृतीयक ज्वर आराम होता है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, नोमको छाल, किसमिस, श्यामालता, त्रिफला और अडूसेके काढेमें चीनी और सहत मिला कर पोनेसे भी तृतीयक ज्वर आराम होता है।

वासादि—अडूसेकी छाल, आवला, सरिवन, देवदारु, हरीतकी और शोठ, इसका काढा चीनो और सहत मिलाकर पीनेसे चातुर्थक अर्थात् दो दिन अन्तरका ज्वर आराम होता है।

मुस्तादि—मोथा, अम्बष्ठा और हरीतकीका काढा किम्बा दूधके साथ त्रिफलाका काढ़ा पोनेसे भी चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

पथ्यादि—हरोतको, सरिवन, शोंठ, देवदारु, आवला और अडूसेका काढ़ा, चीनी और सहत मिलाकर पोनेसे चातुर्थक ज्वर जल्दी आराम होता है।

निदिग्धिकादि—निदिग्धिकादिगण (सरिवन, पिठवन, वृहती कण्टकारी, गोखुर) हरीतको और बहेड़ेके काढेमें यवक्षार और पोपलका चूर्ण २ मासे मिलाकर पीनेसे प्लीहा और यकृत्युक्त ज्वर आराम होता है, तथा प्लीहा आदि भी उपशम होता है।

सुदर्शन चूर्ण।—कृष्णागुरु (अभावे अगुरु), हल्दी, देवदारु, बच, मोथा, हरीतकी, जवासा, काकडासिङ्गी, कण्टकारी, शोंठ, त्रायमाणा, खेतपापडा, नोमको छाल, पोपलामूल, वाला, शठी, कूठ, पोपल, मूर्वामूल, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, सेजनकी बीज, नीलोत्पल, इन्द्रयव, शतमूली, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, सरलकाठ, खस, दालचीनी, सौराष्ट्र मृत्तिका, सरिवन, अजवाइन, अतीस, बेलकी छाल, गोलमिरच गन्धतृण,

आंवला, गुरिच, कुटकी, चीतामूल, परवरका पत्ता और पिठवन; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण और सबके बराबर चिरायतेका चूर्ण मिलाना। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है। मात्रा।/) आने भरसे आधा तोला तक। इससे सब प्रकार जीर्ण और विषम ज्वर, विरुद्ध औषध सेवन जनित ज्वर, प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि जल्दी आराम होता है।

ज्वरभैरव चूर्ण।—सोंठ, त्रायमाना, नीमकी छाल जवासा, हरीतकी, मोथा, बच, देवदारु, कण्टकारी, काकडासिंगी, शतावर, पितपापडा, पीपलामूल, इन्द्रवारुणीकी जड, कूठ, शठी, मूर्व्वामूल, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, लाल चन्दन, वरुणपाटला, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, चीतामूल, सैजनको बीज, बरियारा अतीस, कुटकी, तालमूली, पद्मकाष्ठ अजवाईन, खरिवन, गोलमिरच, गुरिच, बेलकी छाल, वाला, पद्म-पर्पटी, तेजपत्ता, दालचीनी, आंवला, पिठवन, परवरकापत्ता, गन्धक, पारा, लोहा अभ्रक और मैनसिल; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण तथा समष्टिका आधा चिरायतेका चूर्ण एकत्र मिलाना। दोषका बलाबल विचार कर चार आने भरसे ॥) तक मात्रा प्रयोग करना। इससे भी सुदर्शण चूर्णकी तरह सब प्रकारका ज्वर आराम होता है। अधिकन्तु उदर, अन्त्रवृद्धि, पांडु, रक्तपित्त, चर्म्मरोग, शोथ, शिरःशूल और वातव्याधि प्रभृति रोगभी आराम होता है।

चन्दनादि लौह—लालचन्दन, वाला, अम्बष्ठा, खस, पीपल मोथा समभाग तथा सबके बराबर लोहा मिलाकर पानीमें खल कर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे जीर्ण और विषम ज्वर जलदी आराम होता है।

सर्व्वज्वरहर लौह ।—चीतामूल बहेड़ा, आंवला, हरीतकी, सोंठ, पीपल, मिरच, बिडङ्ग, मोथा गजपीपल, पिपला मूल, खस, देवदारु, चिरायता, परवरका पत्ता, बाला, कुटकी, कण्टकारी, सेजनको बीज, मुलेठो और इन्द्रयव ; प्रत्येक समभाग सबके बराबर लोहा मिलाना। फिर पानीके साथ खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। इससे सब प्रकारका ज्वर, प्लीहा, यकृत और अग्रमांस आराम होता है।

वृहत सर्व्वज्वरहर लौह ।—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, सोना, चांदी और शोधित हरिताल प्रत्येक २ तोले, कान्तलोह, आठ तोले ; यह सब द्रव्य करेलोका पत्ता, दशमूल, पित्तापापड़ा, त्रिफला, गुरिच पान काकमाची, समालुका पत्ता, पुनर्नवा और अदरख ; इन सबका स्वरस या काढ़ेको सात दिन भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह महौषध सेवन करनेसे ज्वर चाहे जैसाही क्यों न हो सात दिनमें अवश्य आराम होता है। अनुपान पुराना गुड़ और पीपलका चूर्ण।

पञ्चानन रस ।—विष २ तोले मिरच ४ तोले, गन्धक २ तोले, हिङ्गु १ तोला, ताम्बा २ तोले, यह सब द्रव्य मदारके रसमें भावना देकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। इससे प्रबल ज्वरभी आराम होता है। इसको देकर शीतक्रियादि करना चाहिये।

ज्वराशनि रस ।—पारा, गन्धक, सेन्धानमक, मीठाविष और ताम्बा प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर लोहा और अभ्रक एकत्र मिलाकर ; लोहेका खल और लोहेके दण्ड़से समान् पत्तेके रसमें खल करना। फिर पारेके वजन बराबर गोलमिरचका चूर्ण

मिला मर्द्दनकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। इससे बहुत दिनका पुराना ज्वर, विषम ज्वर, धातुस्थ प्रवल ज्वर दाहज्वर, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ,श्वास और कास जल्दी आराम होता है।

ज्वरकुञ्जर पारीन्द्र ।—पारा, २ तोले, अभ्र १ तोला, चांदी, स्वर्णमाक्षिक, रसाञ्जन, गेरुमिट्टी, मैनसिल, गन्धक और सोना; यह सब प्रत्येक ४ तोले नीचे लिखे द्रव्योंके स्वरसकी तीन तीन बार भावना देकर ४ रत्ती वजनकी गोली बनाना। भावना के द्रव्य—मदार, तुलसीका पत्ता, पुनर्नवा, गणियारी, भूंई आंमला घोषालता, चिरायता, पद्मकी गुरिच, इग्नलाङ्गला, लताफिटकिरी, मुगानि और गन्धतृण। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और क्षयरोग आराम होता है।

जयमङ्गल रस ।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक सोहागेक लावा, ताम्बा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक और गोलमिरच प्रत्येक ℘) और चांदी ℘) एकमें मिलाकर धतूरेके पत्तेका रस हरसिङ्गारके पत्तेका रस दशमूलका काढा और चिरायताके काढेकी तीन तीन बार भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान जीराका चूर्ण और सहत। इससे चाहे जैसा ज्वर क्यों न हो अवश्य आराम होता है। यह बल और पुष्टि बढ़ानेमें भी उत्कृष्ट औषध है।

विषम ज्वरान्तक लौह ।—पारा २ भाग गन्धक २ भाग, ताम्बा १ भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग और लोहा ६ भाग, जयन्ती पत्तेका रस, तालमखानेके पत्तेका रस, पानका रस, अदरखका रस और अडूसेके रसकी अलग अलग पांच दफे

भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना। इससे विषम ज्वर गुल्म और प्लीहा आराम होता है। अधिकन्तु यह अग्निकारक, हृदयकी उत्कर्षता जनक, बल और पुष्टिकारक है।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह।—हिङ्गुलोत्थ पारा १ तोला, गन्धक एक तोला, इनकी कज्जली बनाकर पर्प्पटीकी तरह फूकना। इसके साथ चौथाई तोला सोना; लोहा, अभ्र और ताम्बा प्रत्येक २ तोले; बङ्ग, गेरूमिट्टी और प्रवाल प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य पानीमें खलकर सीपमें बन्दकर मिट्टीका लेपकर २०।२५ गोयठेमें फूक लेना। इसकी मात्रा २ रत्ती; अनुपान पीपलका चूर्ण हींग और सेंधानमक। इससे सब प्रकारका ज्वर पाण्डु कामला शोथ प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी आदि कई प्रकारके रोग जल्दी आराम होता है।

कल्पतरु रस।—पारा गन्धक विष और ताम्बा प्रत्येक समभाग, पञ्चपित्त अर्थात् बराह, छाग, महिष रोहूमछली और मोरके पित्तकी यथाक्रम ५ दिन ममालूके पत्तेके रसकी ७ दिन और अदरखके रसको ३ दिन भावना दे सरसोंके बराबर गोली बनाकर छायामें सुखा लेना। दोष अग्नि और उमर विचारकर लगातार २१ दिनतक एक एक गोली सेवन कराना तथा पसीना निकलनेतक कपड़ा ओढ़कर सोना चाहिये। पसीना निकल जानेपर बिछौनेसे उठकर दहीमें चीनी मिलाकर पिलाना। इसका अनुपान पीपलका चूर्ण और गरम पानी। इससे जीर्णज्वर विषम ज्वर ज्वरातिसार, पाण्डु और कामला आराम होता है। श्वास काम और शूलयुक्त रोगीको यह देना उचित नहीं है।

वाहिकारि रस।—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग

मैनशिल १ भाग, हरताल १ भाग, अतीस ४ भाग, लोहा २भाग और चांदी आधा भाग; यह सब द्रव्य नीमकी छालके रसमें खल कर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अतीसका काढा। इसमे तराहिकादि सब प्रकारका विषम ज्वर नाश होता है।

चातुर्थ्यकारि रस।—पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, हरिताल प्रत्येक समभाग, सोना पारेका आधा भाग, यह सब एकत्र कर काला धतूरा और मौलसरी फूलके रसमें खलकर २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनाना। अनुपान चम्पेका रस। इससे चौथैया आदि विषम ज्वर आराम होता है। ज्वर छूटजाने पर तराहिकारि और चातुर्थकारि सब प्रकारका रस देना चाहिये।

अमृतारिष्ट।—गुरिच, १२॥ सेर। दशमूल १२॥ सेर, २५६ सेर पानीसे औटाना २४ सेर पानी रहनेपर नीचे उतारकर छान लेना। फिर उसी काढ़ेमें ३१॥ सेर गुड़ २ सेर कालाजीरा १ पाव पित्तपापड़ा, छातिमछाल, सोंठ, पीपल, मिरच, मोथा, नागेश्वर, कुटकी, अतीस, इन्द्रयव, प्रत्येक १ पल, उसमें मिला मुह बन्दकर १ महीना रखना। यह अरिष्ट सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

अङ्गारक तेल।—तिलका तेल ४ सेर, कांजी १६ सेर, काथार्थ मुर्व्वाकी जड़, लाह, हरदी, दारुहरदी, मजीठ इन्द्रवारुणकी जड़, हरती, सेंधानिमक, कूठ, रासन, जटामांसी और सतावर, सब मिलाकर १ सेर पीसकर, १६ सेर पानीमें औटाना, पाकशेष होनेपर तेल छान लेना। फिर कपूर, छड़ीला, नखी, प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिला रखना। यह तेल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

वृहत् अङ्गारक तैल—तिलका तैल ४ सेर, पानी १६ सेर, सूखी मूली पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, शोठ और अङ्गारक तैलोक्त सब द्रव्यका कल्क एक सेर। यह तैल मर्द्दन करनेसे ज्वर, शोथ और पाण्डु रोग आराम होता है।

लाक्षादि तैल—तिलका तैल ४ सेर, कांजी २४ सेर, लाह, हलदी और मजीठ का कल्क एक सेर, पानी ४ सेर यथाविधि पाक करना। इससे दाह और शीतज्वर आराम होता है।

महालाक्षादि तैल।—तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढा १६ सेर (लाह ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, सोंफ, हलदी मूर्व्वाकी जड,कूठ, समालुकी बीज, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा और लाल चन्दन प्रत्येक दो तोलेका कल्क। तैलपाक समाप्त होनेपर यथाविधि छडीला, नखी और कपूर प्रत्येक दो तोले तेलमें मिला रखना। यह तैल मालिश करनेसे ज्वर और अन्यान्य रोग प्रशमित होता हैं।

किराताद्रि तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायतेका काढा ४ सेर; मूर्व्वाकी जड, लाह, हलदी, इन्द्रवारुणी की जड, वाला, कूठ, रास्ना गजपीपल, मिरच, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, सैन्धानमक, सौचल नमक, कालानमक, चहुसेकी छाल, सफेद अकवनकी जड, श्यामालता, देवदारु, गडतुम्बी सब मिलाकर एक सेरका कल्क। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु और शोथ आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

वृहत् किरातादि तैल।—सरसोंका तैल ८ सेर, चिरायता १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; मूर्व्वामूल ४ सेर,

पानी ६४ सेर शेष ८ सेर, कांजी ८ सेर, लाहका काढ़ा ८ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका पानी ८ सेर; कल्कार्थ चिरायता, गजपीपल, रास्ना, कूठ, लाचा, इन्द्रवारुणीकी जड़, मजीठ हल्दी, मूर्व्वामूल, मुलेठी, मोथा, पुनर्नवा, सेंधानमक, जटामांसी, हड़ताल, कालानमक, वाला, शतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगन्ध, सोवा, सम्हालुके बीज, देवदारु, खस, पद्मकाठ, धनिया, पीपल, वच, शठी, त्रिफला, अजवाईन, अजमोदा, कांकड़ाशिंगी, गोखुर, करिवन, पिठवन, दन्तीमूल, विडङ्ग, जीरा, काला जीरा, नीमकी छाल, छीविर और जवाखार प्रत्येक ४ तोले। पाक शेष होनेपर गन्धद्रव्य मिलाना। यह तैल मर्द्दन करनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर, प्लीहा, शोथ, प्रमेह ज्वर और पाण्डुरोग आराम होता है।

दशमूल षट्पलक घृत।—दशमूल ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, जवाखार, प्रत्येक ८ तोले दूध ८ सेर; यह सब द्रव्यके साथ विधिपूर्व्वक ४ सेर घृत पाक करना, यह घृत विषमज्वर, प्लीहा, काश, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नाशक है।

वासाद्य घृत।—अडूसा, गुरिच, त्रिफला, त्रायमाणा और जवासा सब मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना, शेष १६ रखना। कल्कार्थ पीपलामूल, द्राक्षा, लालचन्दन, नीला कमल और शोंठ सब मिलाकर १ सेर। दूध ८ सेर। विधिपूर्व्वक इसके साथ ४ सेर घृत पाक करना। यह जीर्ण ज्वर नाशक है;

पथ्यलाद्य घृत।—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, लालचन्दन, मोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, भजटा (भुंई

अंवरा), अनन्तमूल, षतीस, मरिचन, द्राचा, आवला, वेलकी छाल, त्रायमाणा और कण्टकारी, सब मिलकर एक सेर, दूध १६ सेर विधिपूर्व्वक पाक करना। इससे जीर्णज्वर, श्वास, कास, हिक्का, क्षय, शिरःशूल, अरोचक, अग्निवैषम्य और अङ्गसन्ताप दूर होता है।

यह सब घृत पहिले आधा तोला मात्रासे सेवन कराना। सहने पर क्रमशः मात्रा २ तोलेतक देना चाहिये। अनुपान गरम दूध।

प्लीहा और यकृत्।

माणकादि गुड़िका।—एक वर्षका पुराना मानकण्ड, अपामार्गके जडकी राख, गुरिच, अडूसेकी जड, मरिचन, संधानमक चीतामूल, सोंठ और ताडके जटाका चार प्रत्येक ६ तोले, कालानमक, सौवर्चल नमक, जवक्षार और पीपल, प्रत्येक २ तोले; इन सबका चूर्ण १६ सेर गोमूत्रमें पाककर, मोदककी तरह गाढा होनेपर नीचे उतार लेना, ठण्ढा होनेपर ३ पल सहत उसमें मिलाना। इसकी आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा यकृत् आदि नानाप्रकारके उदर रोग आराम होते है।

वृहत मानकादि गुड़िका।—पुराना मानकन्द, अपामार्गका चार, मरिचन, चीतामूल, सेंहुडकी जड, सोंठ, सैंधानमक,

ताड़के जटाका क्षार, विडंग, ह्रीबेर, चाभ, वच, काला नमक, सोवर्चल नमक, जवाक्षार, पीपल, शरपुङ्ख, जीरा और पालिधामदार की जड़, प्रत्येक ४ तोला, एकत्र १४ सेर गोमूत्रमें पाक करना मोदक की तरह गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ, शठी, त्रिवृत, दन्तीमूल और इन्द्रवारुणी की जड़ प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २४ तोले सहत मिलाना। इसको आधा तोला मात्रा गरम पानीमें प्रयोग करना। इससे यकृत्शूल और पार्श्वशूल आराम होता है।

गुड़पिप्पली।—विड़ंग, त्रिकटु, कुठ, हींग, पञ्चलवण, जवाक्षार, सज्जिक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, चीतामूल, गजपीपल, कालाजीरा, ताड़केजटाकी राख, कोहड़ेके डालकी राख, अपमार्ग भस्म और इसलीकी छालका भस्म, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर पीपलका चूर्ण, सब समष्टीका दूना पुराना गुड़ एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ प्लीहा आदि रोगमें देना चाहिये।

अभयालवण।—नीमकी छाल, पलाशकी छाल, सेहुंड़की छाल, अपामार्ग, चीतामूल, वरुणकी छाल, गणियारीकी छाल, बथुआ शाक, गोखरु, वृहती, कंटकारी, नाटा, हाफरमाली, कुरैयाकी छाल, घोषालता और पुनर्नवा यह सबको कूट एक हांड़ीमें रख तिलकी लकड़ीके आंचसे राख करना। यह राख २ सेर, ६५ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतारकर क्रमशः २१ दफे छान लेना। इस क्षार पानीमें सेंधानमक २ सेर, बड़ी हर्रेका चूर्ण एक सेर और गोमूत्र २६ सेर मिलाना। गाढ़ा होनेपर कालाजीरा, त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण ४ तोले मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम

पानीके साथ देनेसे प्लीहा, गुल्म, आनाह, अष्ठीला और अग्निमांद्य आदि आराम होता है।

महामृत्युञ्जय लौह।—पारा, गन्धक और अभ्रक प्रत्येक आधा तोला, लोहा १ तोला, ताम्बा २ तोले, जवाखार, सज्जीखार, सैन्धानमक, काला नमक, कोडीका भस्म, शङ्खभस्म, चीतामूल, मैनसिल, हरिताल, हींग कुटकी, निसोत, इमलीके छालका भस्म, इन्द्रवारुणी की जड, धला आंकडाका मूल, अपामार्ग भस्म, अम्लवेतस, हलदी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, इन्द्रयव, हरीतकी, अजमोदा, अजवाईन, तूतिया, शरपुङ्ख और गुरिचके रसकी भावना दे २ पल सहत मिलाकर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाना यह दोष विशेषके आधिक्यानुसार उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करनेसे विषम ज्वर, कास, श्वास, और गुल्म आदि पीडा आराम होती है।

वृहत् लोकनाथ रस।—पारा १ तोला, गन्धक ३ तोले, अभ्रक १ तोला, घिकुआरके रसमें खलकरो फिर ताम्बा २ तोले, लोहा २ तोला और कौडीका भस्म ८ तोले मिलाकर काकमाचीके रसमें खलकर एक गोला बना सुखाकर फिर वह गोला गजपुटमें फूकना। २ रत्ती मात्रा अनुपान सहत। इससे प्लीहा, यकृत् और अग्रमास रोग आराम होता है।

यकृदरि लौह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, ताम्बा १ तोले, पतोलोवृक्षके जडकी छाल ८ आठ तोले और अन्तर्धूमसे भस्मकिया कछुआर मृगका चर्म ८ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर ८ गुञ्जा बराबर गोली बनाना। दोषानुसार उपयुक्त अनुपानसे प्रयोग करना।

वृहत प्लीहारि लौह।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक, जमालगोटा, सोहागा और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला; तांबा, मैनसिल और हलदी प्रत्येक २ तोले एकत्र खलकर, दन्तीमूल, विहतमूल, चीतामूल, समालुका पत्ता, त्रिकटु, अदरख, और भीमराज यथासम्भव इन सबके रस या काढ़ेकी अलग अलग भावना देकर बेरकी गुठली बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे पाण्डु, कामलादि रोग प्रशमित होते है।

यकृत प्लीहोदरहर लौह।—लोहा एकभाग, लोहेका आधा भाग अभ्रक, अभ्रकका आधा भाग रससिन्दूर, अभ्रक और लोहाके समष्टिका तिगुना त्रिफला, इसे समष्टिके ६ गुने पानीमें औंटाना अष्टमांस रहनेपर उतार कर उसके साथ समान भाग घी और लोहा तथा अभ्रकका दूना सतावरका रस और दूध मिलाकर फिर औंटाना। (लोहेका आधा भाग औंटाते वक्त देना बाकी आधा भाग रख छोड़ना) गाढा होने पर वही आधा भाग लोहा और सूरण, कापालिका,, चाभ, विड़ङ्ग, लोध, प्रपुन्न, अम्बष्ठा, चीतामूल, शोठ, पञ्चलवण, यवाचार, बीजदारक, अजवाईन और मोम प्रत्येक लोहा और अभ्रकके बराबर मिलाना। विचार कर दो आनेसे चार आनेतक मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होताहै। प्लीहोदर निवारणके लिये यह मानकन्द, और शिमि-कन्दके रसमे खलकर दो दफे पुटमें फूंकनेपर काममें लाना चाहिये।

वज्रक्षार।—सामुद्र, सैन्धा, सांभर और सौवर्चल नमक, सोहागा, जवाचार और सज्जीचार प्रत्येकके समभाग को अकवन और सेहुंड़के दूधकी ३ दिन भावना दे सुखा लेना फिर बन्द ताम्बेके पात्रमें फूकना। फिर दो गुना वजन त्रिकटु, त्रिफला,

अलग अलग बनाना। फिर सोहागा, जवाखार, सज्जीखार, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, गन्धबोल, मीठाविष, समुद्रफेन, सोरा, फिटकिरी, शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभि चूर्ण, मैनसिल, हीराकस, यह सब द्रव्य सम-भाग लेकर वेतसके रसकी भावना दे कर एक बोतलमें रखो। फिर बोतल कपड़ेसे लपेटकर सात दिन गरम स्थानमें रखना, सात दिनके बाद वारुणीयन्त्रसे चुआ लेना। एक रत्ती मात्रा पानके साथ सेवन करनेसे कास, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, रक्तपित्त, उरःक्षत, गुल्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, शूल और आमवात आदि रोग आराम होता है।

चित्रकघृत।—घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये चीतामूल १२॥ सेर, पानी २४सेर शेष ६सेर, कांजी ८सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ पीपल मूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, तालीशपत्र, जवाखार सेंधानमक, जीरा काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच, सब मिलाकर १ सेर यथाविधि पाक करना। इस घीसे प्लीहा, यकृत् उदराध्मान, पाण्डु, अरुचि और शूल आदि पीड़ामें उपकार होता है।

प्रकारका अतिसार, ज्वर, वमन, शूल और भयङ्कर श्वास कास विनष्ट होता है।

कलिङ्गादि।—ज्वरातिसार और दाहमें नीचे लिखा काढ़ा देना। इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, चिरायता, बाला और जवासा; अथवा इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल, गोखुरु, पीपल, धनिया, बेलकी गिरी, अवठा और अजवाइन; किंवा सोंठ, गुरिच, चिरायता, बेलकी गिरी, बाला और इन्द्रयव, मोथा, अतीस और खस, यह योगत्रयका काढ़ा विचारकर प्रयोग करना। इस योगत्रयमें पहिले योगका नाम कलिङ्गादि है।

मुस्तकादि—मोथा, बेलकी गिरी, अतीस, अम्बष्ठा, चिरायता और इन्द्रयवके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे ज्वरातिसार निवृत्त होता है।

घनादि—मोथा, बाला, अम्बष्ठा, अतीस, हरीतकी, नीला कमल, धनिया, कुटकी, सोंठ और इन्द्रयवका काढ़ा ज्वरातिसार नाशक है।

पञ्चक—ज्वरातिसारमें वमन हो तो सरिवन, पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी और अनारके फलकी छालका काढ़ा देना।

कुटजादि—कुरैयाकी छाल, सोंठ, मोथा, गुरिच और अतीस का काढ़ा पीनेसे ज्वरातिसार आराम होता है।

व्योषादि चूर्ण—सोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भोंगराज, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, दारुहलदी और अतीस प्रत्येक समान भाग सबके बराबर कुरैया-के जड़की छालका चूर्ण; एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा चावल-के पानीके साथ पीनेसे या इसे सहतमें मिलाकर चाटनेसे ज्वराति-

सार, तृष्णा, अरुचि, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ रोग आराम होता है। यह पाचक और मल-संग्रहक है।

कलिङ्गादि गुड़िका।—इन्द्रयव, बेलको गिरी, जामुन और आमकी गुठलीका गूदा, कयेथका पत्ता, लाह, हलदी, दारु-हलदी, बाला, कायफल, श्योनाक छाल, लोध, मोचरस, शङ्खभस्म, धवईका फूल और बड़कोसोर, यह सब द्रव्य समभाग ले चावलके पानीमें पीसकर दो मासे वजनकी गोली बना छायामें सुखा लेना। इससे ज्वरातिसार, रक्तातिसार और पेटकी दर्द आराम होता है।

मध्यम गङ्गाधर चूर्ण।—बेलकी गिरी. सिङ्घाडा, अनारका पत्ता, मोथा, अतीस, सफेद राल, धवईका फूल मिरच, पीपल, सोंठ, दारुहल्द चरायता, नीमकी छाल, जामुनकी छाल, रसांजन, इन्द्रयव इस्वष्ठा, वराहक्रान्ता, बाला मोचरस भाग और भङ्गराज प्रत्येक समभाग तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण सबके बराबर एकत्र मिलाना। एक आनाभर मात्रा अनुपान बकरीका दूध, मण्ड या सहत। इससे ज्वरातिसार अतिसार ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

वृहत् कटजावलेह।—कुरैयाके जड़की छाल १२॥० सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर रहनेपर छान लेना, इसमें २॥ सेर चीनी मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। अम्बष्ठा, वराहक्रान्ता, बेलकी गिरी, धवईका फूल, मोथा, अनारके फलकी छाल, अतीस, लोध मोचरस, सफेद राल, रसांजन धनिया खस और बाला; यह सब द्रव्यके प्रत्येकका चूर्ण २ तोले। ठण्ढा होनेपर एक पाव सहत मिलाकर भांड़में रखना। इससे सब प्रकारका

अतिसार, ग्रहणी, रक्तस्राव, ज्वर, शोथ, वमन, अर्श, अम्लपित्त, शूल और अग्निमान्द्य रोग विनष्ट होता है।

मृतसञ्जीवनी वटिका—पीपल एकभाग, वत्सनाभ विष एकभाग, हिंगुल २ भाग, यह तीनो द्रव्य जामुनके रसमें खलकर मूलीके बीज बराबर गोली बनाना। यह वटिका ठण्ढे पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, विसूचिका और सान्निपातिकज्वर दूर होता है।

सिद्ध प्राणेश्वर रस।—गन्धक पारा और अभ्रक प्रत्येक ४ मासे, सज्जीखार, सोहागेका लावा, जवाखार, पांचो लवण, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, अजवाईन, विडङ्ग और सोवा प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा; एकत्र पानीमें खलकर एकमासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। औषध सेवनके बाद गरम पानी पीना। इससे प्रबल ज्वरातिसार और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

कनकसुन्दर रस—हिंगुल, मिरच, गन्धक, पीपल, सोहागेका लावा, मिठाविष और धतूरेकी बीज, यह सब समभाग ले भांगके रसमें एक पहर खलकर चने बराबर गोली बनाना। इससे तीव्रज्वर, अतिसार, ग्रहणी और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य दही या मट्ठा और भात।

गगनसुन्दर रस—सोहागेका लावा, हिंगुल, गन्धक और अभ्रक समभाग ले मदारके रसको तीन दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सफेद राल२ रत्ती और मधु। इससे रक्तातिसार और आमशूल दूर होता है। यह अग्निवर्द्धक है। पथ्य मट्ठा और बकरीका दूध।

आनन्दभैरव—हिंगुल, मिरच, सोहागेका लावा, विष और पीपल समभाग पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान कुरैयाके छालका चूर्ण और सत्तु। इससे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

मृतसञ्जीवन रस।—पारा एकभाग, गन्धक एकभाग, मीठाविष चौथाई भाग, और सबकी बराबर अर्थात् मत्रा दो भाग अभ्रक; धतूरेके पत्तेका रस और गन्धनाकुलीके रसमें एक एक पहर खल करना, तथा धवईफूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, बाला, अजवाईन, धनिया, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा, हरीतकी, पीपल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, कयेथवेल और कच्चा अनार, यह १६ द्रव्य, प्रत्येक २ तोले कूटकर चौगूने पानीमें औटाना, चतुर्थांश रहनेपर इसी काढ़ेसे उक्त पारा आदिको तीन दिन भावना देकर एक मिट्टीके बरतनमें रख मुंह मिट्टीसे बन्दकर इसको आंचपर बालुकायन्त्रमें पाक करना। इस औषधका नाम मृत-सञ्जीवनी रस है। इसको एक रत्ती मात्रा अतिसारनाशक द्रव्यके अनुपानके साथ देनेसे सब प्रकारका दुर्निवार अतिसार आराम होता है।

अतिसार।

आमातिसारमें

पिप्पल्यादि—पीपल, सोंठ, धनिया, अजवाईन, हरीतकी और बच यह सब द्रव्य समभाग अर्थात् सब मिलाकर दो तोले अच्छी तरह कूटकर पूर्व्वोक्त नियमसे काढा बनाना। इससे आमातिसार आराम होता है।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, बेलकी गिरी, हींग, जो, मोथा और लालचीता, इन सबका काढा पीनेसे आमातिसार आराम होता है।

पथ्यादि—आमातिसारमें हरीतकी, देवदारु, बच, मोथा, सोंठ और अतीसका काढा पिलाना।

यमान्यादि—अग्निकी दीप्ति और आमरसको पचानेके लिये अजवाईन, सोंठ खस, धनिया, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, मरिवन और पिठवनका काढा प्रयोग करना।

कलिङ्गादि—कुरैयाकी छाल, अतीस, हींग, बड़ीहर्र, सोवर्चल नमक और बच, इन सबका काढा पीनेसे शूलकी दर्द, स्तम्भ और मलकी विबद्धता नाश तथा अग्निकी दीप्ति और आमदोषका परिपाक होता है।

त्र्यूषणादि—प्रबल अतिसारमें सोंठ, पीपल, मिरच, अ हींग, बरियारा, सोवर्चल नमक और बड़ी हर्र, इन सबका चूर्ण समान भाग गरम पानीमें देना।

वातातिसारमें।

पूतिकादि—वातातिसारके शान्तिके लिये करञ्ज, पीपल, सोंठ, बरियारा, धनिया और बड़ी हर्र; इन सबका काढा देना।

पथ्यादि—प्रवल वातातिसारमें बडी हरं, देवदारु, वच, शोंठ, अतीस और गुरिचका काढ़ा प्रयोग करना।

वचादि—वच, अतोस, मोथा, इन्द्रयवका काढ़ा वातातिसार को उत्कृष्ट औषध है।

पित्तातिसारमे।

मधुकादि—पित्तातिसारमें मुलेठी, कायफल, लोध, कच्चे अनारका फल और छिलका। इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीके साथ देना।

बल्वादि—आमपित्तातिसारमें बेलको गिरी, इन्द्रयव, मोथा, बाला और अतीसका काढा पिलाना।

कट्फलादि—कायफल, अतीस, मोथा, कुरैयाकी छाल, और शोंठ इन सबके काढेमें थोडा सहत मिलाकर पीनेसे पित्तातिसार की निवृत्ति होती है।

कञ्चटादि—चौराईका पत्ता, अनारका पत्ता, जामुनका पत्ता, सिंघाड़ेका पत्ता, बाला, मोथा और शोंठ, इन सबके काढ़ेमें सहत मलाकर पीनेसे अति प्रवल अतिसारभो बन्द होता है।

किराततिक्तादि—चिरायता, मोथा, इन्द्रयवके काढ़ेमें रसाञ्जन और सहत मिलाकर पीनेसेभी पित्तातिसार आराम होता है।

तविषादि—अतीस, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीमें लेनेसे पित्तातिसार बन्द होता है।

कफातिसारमें।

पथ्यादि—हरीतकी, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, वच, मोथा, इन्द्रयव और शोंठका काढ़ा या कल्कसे कफातिसार दूर होता है।

कृमिघ्नादि—विडङ्ग, वच, बिल्वमूल, धनिया और कायफल-का काढ़ा भी कफातिसार नाशक है।

चव्यादि—चाभ, अतीस, शोंठ, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, और बड़ी हर्रका काढा पीनेसे कफातिसार और वमन निवृत्त होता है।

सान्निपातातिसार।

समङ्गादि—बराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, शोंठ, बाला, धवई का फुल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बेलकी गिरी इन सबका काढा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

पञ्चमूली बलादि—पञ्चमूल (पित्ताधिक्य में स्वल्प पञ्चमूल और वातकफाधिक्यमें वृहत् पञ्चमूल), बरियारा, बेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, शोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाकी छाल, और इन्द्रयवका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूल उपद्रवयुक्त श्वास और दारुण कास आराम होता है।

शोकादिजातिसार।

पृश्निपर्ण्यादि—पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी, धनिया, नीला कमल, शोंठ, विडङ्ग, अतीस, मोथा, देवदारु, अम्बष्ठा और कुरैयाकी छालके काढेमें गोलमिरच का चूर्ण मिलाकर पीनेसे शोकजातिसार आराम होता है।

पित्तकफातिसार

मुस्तादि—मोथा, अतीस, मूर्वा, बच और कुरैयाकी छालके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकफातिसार आराम होता है।

समङ्गादि—बराहक्रान्ता, धवईका फूल, बेलकी गिरी, आमकी गुठली और पद्मकेसर; किम्वा बेलकी गिरी, मोचरस, लोध और कुरैयाकी छाल; इन सबका काढा अथवा चावल भिंगोये पानीमें कल्क पीनेसे पित्तकफातिसार और रक्तस्राव बन्द होता है।

वातकफातिसार।

चित्रकादि—चीता, अतीस, मोथा, वरियारा, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बड़ी हर्रका काढ़ा वातकफातिसार नाशक है।

वातपित्तातिसार।

कलिङ्गादि कल्क—वातपित्त'तिसारग्रस्त रोगीको इन्द्रयव,वच, मोथा, देवदारु और अतीस; यह सब द्रव्य समभाग पीसकर चावल भिंगोये पानीके साथ पिलाना।

पक्कातिसार।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, बेलकी गिरी, बाला और मोथा का काढ़ा पिलानेसे आम और शूलविशिष्ट पुराना अतिसार भी बन्द होता है।

कुटज पुटपाक।—कीड़ोंको न खाई हुई, कच्ची और मोठी कुरैयाके जड़की छाल कूटकर चावल भिंगोये पानीमें तर करना फिर जामुनके पत्तेसे लपेट कर चारो तरफ गाढ़ी मिट्टीका लेपकर पुटपाक करना। उपरकी मिट्टी जब लाल हो जाय तब बाहर निकाल उसका रस निचोड़ लेना। इसके दो तोले रसमें थोडा सहत मिलाकर देना। यह सब प्रकारके अतिसारकी प्रधान औषध है।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतार कर छान लेना। तब इसी काढ़ेको फिर औटाना गाढ़ा होनेपर इसमें सोंचर नमक, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, पीपल, धवईका फूल इन्द्रयव और जीरा, इन सबका चूर्ण १ तोले मिलाकर उतार लेना। मात्रा

एक तोला सहतके साथ चटाना। इससे पका, कच्चा, नानावर्ण और वेदनायुक्त अतिसार तथा दुर्निवार्य्य ग्रहणी आराम होता है।

कुटजाष्टक।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर उसमें नीचे लिखी दवाओंका चूर्ण मिलाना। मोचरस, अम्बष्ठा, बराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी और धवईका फूल, प्रत्येक ८ तोले। इससे सब प्रकारका अतिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि आराम होता है। अनुपान गरम दूध या ठण्ढा पानी, वस्तिदोषमें भातका माड और रक्तस्रावमें बकरीका दूध।

नारायण चूर्ण।—गुरिच, बघारेकी बीज, इन्द्रयव, बेलकी गिरी, अतीस भङ्गराज, शोंठ और भागका पत्ता, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आना या दो आने मात्रा, शोंठ अथवा महतके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार शोथ, पाण्डु, कामला अग्निमान्द्य और ज्वर आदि पीडा दूर होती है।

अतिसार वारण रस—हिंगुल, कपूर, मोथा और इन्द्रयव इन सब द्रव्योंकी अफीम भिंगोये पानीकी भावना देकर एक रत्ती वजन सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफलादि वटिका—जायफल, पिण्डखजूर और अफीम सम भाग पानके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मट्ठा। इससे प्रबल अतिसार बन्द होता है।

प्राणेश्वर रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागेका लावा, सोवा, अजवाईन और जीरा प्रत्येक ४ तोले; जवाखार, हींग, पञ्च लवण, विडङ्ग, इन्द्रयव, रान और चीता प्रत्येक २ तोले, यह

सब द्रव्य पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे अतिसार आराम होता है।

अमृतार्णव रस।—हिंगुलोत्थ पारा, लोहा, गन्धक, सोहागेका लावा, शठी, धनिया, बाला, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा और अतीस ; प्रत्येक एक तोला, बकरीके दूधमें पीसकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। धनिया, जीरा, भांग, शालबीज चूर्ण, सहत, बकरीका दूध, ठण्ढा पानी, केलेके जड़का रस ; अथवा कण्टकारीके साथ सबेरे लेना चाहिये। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल ग्रहणी, अर्श और अम्लपित्त आराम होता है।

भुवनेश्वर—सेंधानमक, त्रिफला, अजवाईन, बेलकी गिरी और धूमसल यह सब द्रव्य पानीमें पीसकर एक मासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानी, इससे भी सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफल रस।—पारा, गन्धक, अभ्रक, रससिन्दूर, जायफल, इन्द्रयव धतूरेकी बीज, सोहागेका लावा, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, भाम्रकेशी, बेलकी गिरी, शाल बीज, अनारकी छाल और जीरा ; यह सब द्रव्य समभाग, भांगके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान कुरैया की छालका काढ़ा। यह आमातिसार नाशक तथा अग्निदीप्तिकारक है। रक्तग्रहणी रोगमें बेलके गिरीका काढ़ा और सहतके अनुपानसे तथा अतिसारमें सोंठ और धनियाके काढ़ेमें यह गोली देना।

अभयन्टसिंह रस—हिंगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागेका लावा, गन्धक, अभ्रक और पारा प्रत्येक समभाग, सबके बराबर अफीम ; यह सब द्रव्य नीबूके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी

गोली बनाना। भुने हुए जीरेका चूर्ण और सहतमें देनेसे अतिसार और संग्रह ग्रहणी आराम होता है।

कर्पूर रस—हिंगुल अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर; यह सब समभाग लेकर पानीमें घोंस कर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। कोई कोई इसमें एकभाग सोहागेका लावा भी मिलाते हैं। ज्वरातिसार, अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणी रोग का यह महौषध है।

कुटजारिष्ट।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, मुनक्का ६० सेर महुयेका फूल १० पल, गाम्भारीकी छाल १० पद, पानी १९६ सेर, शेष ६४ सेर; इस काढेमें धवईका फुल १० पल और गुड़ १२॥ सेर मिला मुह बन्दकर एक मास रख छोडना। फिर उसे छान लेना। इस अरिष्टसे दुर्निवार ग्रहणी, रक्तातिसार और सब प्रकारका ज्वर आराम हो अग्निकी वृद्धि होती है।

अहिफेनासव—महुवेकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल; यह सब द्रव्य एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख छोड़ना, फिर छान लेना।

षडङ्ग घृत—इन्द्रयव, दारुहल्दी, पीपल, सोंठ, लाह और कुटकी; यह ६ द्रव्योंके कल्कमें यथाविधि घी पाककर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है। यह घी सेवनके बाद यवागू पथ्य देना चाहिये।

ग्रहणी।

शालपर्णादि कषाय—सरिवन, पिठवन, बेलकी गिरी, धनिया और सोंठ इसका शृतकषाय पीनेसे वातज ग्रहणी और उसके उपद्रव उदराधान और शूलवत् वेदना प्रशमित होता है।

तिक्तादि—कुटकी, सोंठ, रसाञ्जन, धवईका फूल, हरीतकी, इन्द्रयव, मोथा, कुरैयाकी छाल और अतीसका काढा पीनेसे सब प्रकार ग्रहणीरोग और उसके उपद्रव गुह्यशूल आदि आराम होता है।

श्रीफलादि कल्क—बेलके गिरीके कल्कमें थोडा गुड और सोंठका चूर्ण मिलाकर मट्ठेके साथ सेवन करनेसे अति उग्र ग्रहणी रोग आराम होता है

चातुर्भद्र कषाय—गुरिच, अतीस, सोंठ और मोथा, इसका काढ़ा आमदोषयुक्त ग्रहणी नाशक, मलसंग्राहक, अग्निदीपक और दोषपाचक है।

पञ्चपल्लव—जामुन, अनार, सिंघाडा, अम्बष्ठा और कांचडादि पत्तेमें नरम बेलका फल लपेटकर पानीमें उबालना, दूसरे दिन उसी बेलका गूदा थोडा गुड और सोंठका चूर्ण मिलाकर खानेसे तथा भोजनके बाद उसका पानी पीनेसे सब प्रकारका अतिसार और प्रबल ग्रहणी रोग आराम होता है।

चित्रक गुडिका—चीतामूल, पीपल, जवाखार, सज्जीखार सेंधा, सोवर्चल, काला, औद्भिद और सामुद्रलवण, त्रिकटु, हींग, अजमोदा, और चाभ, यह सब द्रव्योंके चूर्णको नीबूका रस अथवा

अनारके रसकी भावना देकर चार आने मात्राकी गोली बनाना। यह आम परिपाचक और अग्निवर्द्धक है।

नागरादि चूर्ण—सोंठ, अतीस, मोथा, धवईका फूल रसाञ्जन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा और कुटकी इन सबका समभाग चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीका रक्तभेद, अर्श, हृद्रोग और आमाशयके रोग आराम होते हैं। मात्रा ।) आनेसे ॥) तक।

रसाञ्जनादि चूर्ण—रसाञ्जन अतीस, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल सोंठ और धवईका फूल, इन सबका चूर्ण सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणी, रक्तातिसार, पित्तातिसार और अर्शरोग आराम होता है।

शट्यादि चूर्ण—रास्ना, हरीतकी, शटी, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक और पीपलामूलका समभाग चूर्ण बडे नीबूका रस और अम्लरसके साथ लेनेसे कफज ग्रहणी शान्त होती है।

पिप्पलीमूलादि चूर्ण—पीपलामूल, पीपल, जवाखार, सज्जीखार सेंधानमक, काला नमक, सोवर्चल नमक, औद्भिद और सामुद्रलवण, बडे नीबूकी जड़, हरीतकी, रास्ना, शटी, गोलमिरच और सोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण समभाग गरम पानीके साथ सवेरे सेवन करनेसे कफज ग्रहणी विनष्ट तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

मुण्डयादि गुड़िका—गोरखमुण्डी, सतावर, मोथा, कवांच बीज, चोरोहच गुरिच, मुलेठी और सैन्धव, सबका समभाग चूर्ण, भूनी भांग दो गुनी, यह सब द्रव्य दशगुने दूधमें घृत भाण्डमें पाक करना, जबतक गोला न हो जाय तबतक हलकी आंचपर रखना।

पाक समाप्त होनेपर सहतके साथ सेवन करानेसे वातपित्तज ग्रहणी दूर होता है।

कर्पूरादि चूर्ण—कपूर, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, रास्ना, पांचोनमक, हरीतकी, सज्जीखार, जवाखार और बडा नीबू सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, वातकफज ग्रहणी दोष दूर होकर बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

तालीशादि वटी—तालीशपत्र, चाभ और गोलमिरच प्रत्येक एक एक पल, पीपल और पीपलामूल प्रत्येक २ पल, सोंठ ३ पल और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, तेजपत्ता) प्रत्येक २ तोले, इन सबके चूर्णमें तीगूना गुड मिलाकर गोली बनाना। इससे वातकफजनित उत्कट ग्रहणी, वमन, काश, श्वास, ज्वर, अरुचि, शोथ, गुल्म, उदर और पाण्डुरोग आराम होता है।

भूनिम्बादि चूर्ण—चिरायता २ तोले, कुटकी, त्रिकटु, मोथा और इन्द्रयव प्रत्येक १ तोला और कुरैयाकी छाल १६ तोले एकत्र चूर्ण बनाकर उपयुक्त मात्रा गुडके गाढे शरबतके साथ पीनेसे ग्रहणी गुल्म, कामला, ज्वर पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार रोग आराम होता है।

पाठाद्य चूर्ण।—पाठा, बेलकी गिरी, चीतामूल त्रिकटु, जामुनकी छाल, अनारकी छाल, धवईका फूल, कुटकी, मोथा, इन्द्रयव, दारुहल्दी और चिरायता, इन सबका समभाग चूर्ण और सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणी, अरोचक और अग्निमान्द्य विनष्ट होता है।

स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण।—मोथा, सैन्धानमक, सोंठ, धवईका फूल, लोध, कुरैयाकी छाल, बेलकी गिरी, मोचरस, पाढा,

इन्द्रयव, वाला, श्यामलेमी, अतीस और बराहक्रान्ता, इन सबका समभाग चूर्णकर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ देना। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, संग्रह ग्रहणी और सूतिका रोग आराम होता है।

बृहत् गङ्गाधर चूर्ण।—बेलकी गिरी, मोचरस, अम्बष्ठा, धवईका फूल, धनिया, बराहक्रान्ता, शोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, नरम अनारके फलकी छाल, कुरैयाको छाल, पारा और गन्धक, प्रत्येक समभाग खल करना। अनुपान चावल भिंगोये पानी या माठेके साथ। इससे आठ प्रकारका ज्वर, अतिसार, और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

स्वल्प लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, अतीस बेलकी गिरी, मोथा, अम्बष्ठा, मोचरस, जीरा, धवईका फूल, लोध, इन्द्रयव, वाला, धनिया, सफेदराल, काकड़ासिङ्गी, पीपल शोंठ, बराहक्रान्ता, जवाखार, सेंधानमक और रसाञ्जन; यह सब द्रव्य समभाग ले चूर्णकर एकत्र मिलाना। अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानी अथवा बकरीका दूध। इससे अग्निमान्द्य, संग्रह ग्रहणी, सशोथ अतिसार, पाण्डु, कामला, कास, श्वास, ज्वर, वमन, विषमिषा, अम्लपित्त, शूल और सन्निपातिक सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

बृहत् लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, अतीस, मोथा, पीपल, गोलमिरच, सैन्धव, सोवा धनिया, कायफल, शूठ, रसाञ्जन, जावित्री कालाजीरा, सौवर्चललवण धवईका फूल, मोचरस, अम्बष्ठा, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, चीतामूल, काला नमक, तितलौकी, बेलकी गिरी, दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, अजमोदा, अजवाईन, बराहक्रान्ता, इन्द्रयव, शोंठ, अनारके फलको

छाल, जवाखार, नीमकी छाल सफेद राल, सज्जीखार, समुद्रफेन, सोहागेकालावा, बाला, कुरैयाकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, कुटकी तथा शोधित अभ्र, लौह, गन्धक और पारा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण। अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानी। इससे उत्कट ग्रहणी, सब प्रकारका अतिसार, ज्वर, अरोचक, अग्नि मान्द्य, कास, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिक्का, प्रमेह, श्लीमक, पाण्डु, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, शोथ, पीनस, आमवात, अजीर्ण और प्रदर आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते है।

नायिका चूर्ण।—पांचोनमक प्रत्येक सवा तोला, त्रिकटु, २ तोले, गन्धक १ तोला, पारा आधा तोला, भांगका पत्ता ८॥ तोले, इन सबका चूर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा एक मासासे आरम्भ कर आधा तोला तक। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक और ग्रहणी नाशक है।

जातीफलादि चूर्ण।—जायफल, विडङ्ग, चीतामूल, तगरपादुका, तालीश पत्र, लालचन्दन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हरीतकी, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, भांगका चूर्ण ७ पल और चीनी सबके बराबर एकत्र मर्दन करना। इससे ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, कास, क्षय, श्वास, अरोचक, पीनस, वातकफरोग और प्रतिश्याय निवारित होता है।

जीरकादि चूर्ण।—जीरा, सोहागेका लावा, मोथा, अम्बष्ठा, बेलकी गिरी, धनिया बाला, मोथा, अनारका छाल, बराहक्रान्ता, धवईका फूल, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, मोचरस, उत्पल, अभ्र, गन्धक और पारा प्रत्येक समभाग

और समष्टीके बराबर जायफल का चूर्ण यह सब द्रव्य एकत्र मिला मर्द्दन करना। इससे दुर्निवार ग्रहणी, सब प्रकार का अतिसार, कामला, पाण्डु और मन्दाग्नि का नाश होता है।

कपित्थाष्टक चूर्ण।—अजवाईन, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची नागकेशर, सोंठ मिरच चीतामूल, बाला, कालाजीरा धनिया और सौवर्च्चलनमक, प्रत्येक एक एक तोला, अम्लवेतस, धवईफूल, पीपल, बेलकी गिरी, अनारकाछिलका और गावक्षाल प्रत्येक दो दो तोले, चीनी ६ तोले कथेयका गूदा ८ तोले, एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अतिसार ग्रहणी क्षय गुल्म कण्ठरोग काम श्वास अरुचि और हिक्कारोग प्रशमित होता है।

दाड़िमाष्टक चूर्ण—वंशलोचन २ तोले, दालचीनी तेजपत्ता, बड़ी इलायची और नागेश्वर प्रत्येक आधा तोला, अजवाईन धनिया कालाजीरा पीपलामूल और त्रिकट, यह सब मिलाकर आठ तोले, अनारकाछिलका ८ पल और चीनी ८ पल ; एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कपित्थाष्टक चूर्णोक्त सब रोग दूर होता है।

अजाज्यादि चूर्ण—जीरा २ पल, जवाखार २ पल सोया २ पल, अफीम २ पल, सदारको जड़का चूर्ण ४ पल, यह सब चूर्ण एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे अतिसार, रक्तातिसार ज्वरातिसार, ग्रहणी और वसूचिका रोग विनष्ट होता है।

कुटजावलेह।—कुटज (चोराई) एक सेर, तालमूली एक सेर, १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर रहनेपर नीचे उतार छान लेना। इस काढेमें एकसेर चीनी मिलाकर पाक करना चौथाई हिस्सा रहनेपर उसमें वराहक्रान्ता, धवईफूल, अम्बष्ठा, बेलकी गिरी, पीपल, भाग, अतीस जवाखार सौवर्च्चल

नमक, रसांजन और मोचरस प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिलाना। इसको मात्रा दोष, काल और उमर विचारकर स्थिर करना। पाक शेष तथा ठंढा होनेपर एकपाव सहत मिलाना। यह सब प्रकार-का अतिसार, संग्रहग्रहणी, अम्लपित्त, उदरशूल और अरोचक नाशक है।

दशमूल गुड़।—दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें पुराना गुड़ १२॥ सेर और अदरखका रस ४ सेर मिलाकर धीमी आंचमें औटाना। अवलेहको तरह गाढ़ा होनेपर पीपलामूल, मिरच, शोठ, हींग विडङ्ग, अजमोदा, जवा-चार: सज्जीखार, चीतामूल चाभ और पञ्चलवण, यह सब द्रव्य प्रत्येक एक एक पल मिलाकर चलाना तथा पाक समाप्त होनेपर स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला। इसमें अग्निमान्द्य, शोथ, आमजग्रहणी, शूल, प्लीहा, उदर, अर्श और ज्वर आराम होता है।

मुस्तकाद्य मोदक।—त्रिकटु त्रिफला, चीतामूल, लौंग, जीरा, कालाजीरा अजवाईन, अजमोदा सौंफ, पान, सोवा, शतमूली, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, मेथी और जायफल, प्रत्येक २ तोले मोथा ४८ तोले, चीनी १॥ सेर। यथाविधि पाककर मोदक बनाना; मात्रा आधा तोलासे एक तोलातक। यह शामको ठण्डे पानीमें लेनेसे ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, अरोचक, अजीर्ण, आमदोष और विसूचिका रोग आराम हो देहका बल, वर्ण और पुष्टि सम्पादन करता है।

कामेश्वर मोदक।—आवला, सैन्धव, कूठ, कटफल, पीपल, शोठ, अजवाईन अजमोदा मुलेठी, जीरा, कालाजीरा धनिया। शठी, कांकड़ासिंगी, बच, नागेश्वर, तालीशपत्र, दालचीनी तेजपत्ता, इलायची, मिरच, बड़ीहर्र और बहेड़ा, प्रत्येक का

चूर्ण समभाग; सबके बराबर थोड़ी भूंजी हुई बीज समेत भांगका चूर्ण, तथा समष्टिके दो गुनी चीनी चीनीको चाशनी गाढ़ी हो नेपर उक्त सब चूर्ण मिलाना, फिर थोड़ा घी और सहत मिला मोदक तयार कर भूंजी तिलका चूर्ण और कपूरसे अधिवासित करना। इससे ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोगोंकी शान्ति, बल, वीर्य और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है।

मदन मोदक।—घीमें भूंजी हुई सबीज भांगका चूर्ण २१ तोले, त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, कूठ, धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, कट्फल, नागेश्वर, अजमोदा, अजवाईन, मुलेठी, मेथी, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला, चीनी ४२ तोले, पाकयोग्य पानीमें औटाना, पाकशेष होनेसे घी और सहत मिलाकर मोदक बना दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची का चूर्ण मिलाना। उपयुक्त मात्रा सबेरे सेवन करनेसे वात कफ रोग, कास, सब प्रकारका शूल, आमवात और संग्रहग्रहणी विनष्ट होता है।

जीरकादि मोदक।—जीरा ८ पल, घीमें भूंजी भांगके बीजका चूर्ण ४पल, लोध्र, टंग, अभ्र, सौंफ, तालीशपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता इलायची, नागेश्वर, लौंग, कंडोला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, द्राक्षा, शठी, सोहागेका लावा, मुलेठी, वंशलोचन, वाला, गोरचचाकुला, त्रिकटु, धवईकाफूल, बेलकी गिरी, अर्जुनकी छाल, कौवा, देवदारु, कपूर, विडङ्ग, जीरा, मोचरस, कुटकी, पद्मकाष्ठ और नालुका प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले और समष्टिकी दूनी चीनी, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा सबेरे ठण्डे पानीके साथ लेनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी,

अग्निमान्द्य, अतिसार, रक्तातिसार, विषमज्वर, अम्लपित्त और सब प्रकारका उदर रोग आदि पोड़ा दूर होती है।

वृहत जीरकादि मोदक।—जीरा, कालाजीरा, कूठ, सोंठ, पोपल, मिरच, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, लौंग, कडोला, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जावित्री, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामासी, सोवर्चल नमक, शठी, धनिया, देवताड़, मूरामांसी, द्राक्षा, नखी, सोआ, पद्मकाष्ठ, मेथी, देवदारु, वाला, वालुका, सेन्धानमक, गजपीपल, कपूर, प्रियङ्गु, *प्रत्येक एक एक भाग, लं हा, अभ्र और वंग प्रत्येक २ भाग;* सब चूर्णके बराबर भूंजे हुए जीराका चूर्ण। समष्टी को दूनी चीनीको चाशनीकर उक्त सब चूर्ण तथा घो और सहत मिलाकर मोदक बनाना। अनुपान गायका घो और चीनी। इससे अस्सी प्रकारका वायुरोग चालीस प्रकारका पित्तज रोग, सब प्रकारका अतिसार, शूल, अर्श, जीर्णज्वर, विषमज्वर, सूतिकारोग, प्रदर आदि नानाप्रकार का रोग दूर होता है।

मेथी मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कायफल, कूठ, कांकड़ाशिंगी, अजशाईन, सैन्धव, कालानमक, तालीशपत्र, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, मुरामांसी, कपूर, और लालचन्दन, इन सबका चूर्ण समभाग तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण। यह मोदक पुराने गुड़में बनाना, पाक शेष होनेपर घो और सहत मिलाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, पाण्डु, कास, यक्ष्मा और कामला रोग आराम होता है।

वृहत् मेथी मोदक।—त्रिफला, धनिया, मोथा, सोंठ मिरच, पीपल, कायफल, सेंधा नमक, काकड़ाशिंगी, जीरा, कालाजीरा, कूठ, अजवाईन, नागेश्वर, तेजपत्ता, तालीशपत्र, कालानमक, जायफल, दालचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोवा, सुरामासी मुलेठी, पद्मकाष्ठ, चाभ, सौंफ, और देवदारु, प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर मेथीका चूर्ण तथा सब समष्ठीकी दूनी चीनीकी चाशनीमें यह सब चूर्ण मला नीचे उतार घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा आधा तोला, इससे अग्निमान्द्य, आमदोष, आमवात, ग्रहणी, प्लीहा, पाण्डु, अर्श, प्रमेह, कास, श्वास, सर्दी, अतिसार और अरोचक रोग आराम होता है।

अग्निकुमार मोदक।—खसकी जड़, बाला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, नागेश्वर, जीरा, कालाजीरा, काकड़ाशिंगी, कायफल कूठ, शठी, त्रिकटु, बेलकीगिरी, धनिया, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलौह छड़ीला, वंशलोचन, इलायची, जटामासी, रास्ना, तगरपादुका, वाराहक्रान्ता, बरियारा, अभ्र, मुरामासी और वग यह सब द्रव्य प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीका आधा भाग भांगका चूर्ण, तथा सब चूर्णको दूनी चीनी। पाकशेष होनेपर सहत मिला मोदक बनाना। ठण्ढा पानी अथवा बकरीके दूधमें आधा तोला मात्रा सवेरे सेवन करानेसे दुर्निवार ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमांद्य, क्लीवत्व, विषमज्वर, आनाह, शूल, यकृत् प्लीहा, उदर, अठारह प्रकारका कुष्ठ, उदावर्त्त और गुल्म रोग आराम होता है।

ग्रहणीकपाट रस।—सोहागेका लावा, जवाखार,

गन्धक, पारा, जायफल, खैर, जोरा, सफेदराल, कंवाचकीबीज और वकपुष्प, प्रत्येक द्रव्यका आधातोला चूर्ण; बेलका पत्ता, कपासका फल, शालिंच, कटेरी शालिंचमूल, कुरैयाकी छाल चौराईपत्तेके रसमें मर्द्दन कर एकरत्ती वजनकी गोली बनाना। यह औषध ७ दिन देना तथा औषध खानेके बाद आधपाव दही पिलाना, इससे सब प्रकारकी ग्रहणी, आमशूल, ज्वर, कास, श्वास, शोथ और प्रवाहिका आदि नानाप्रकारके रोग आराम होते है।

संग्रह ग्रहणीकपाट रस।—मोती, सोना, पारा, गन्धक, सोहागेका लावा, अभ्रक, कौडी भस्म और विष प्रत्येक १ तोला; शंख भस्म ८ तोले, सब एकत्रकर अतीसके काढ़ेकी भावना दे एक गोला बना गजपुटमें फूकना, आग ठण्ढी होनेपर औषध निकालकर लोहेके पात्रमें धतूरा, चीता और तालमूलीके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान वाताधिक्य ग्रहणीमें घी और गोलमिरच; पित्ताधिक्य ग्रहणी में सहत और पीपल तथा कफाधिक्य ग्रहणीमें भांगका रस या घी मिलाया त्रिकटु। इससे ग्रहणी, क्षय, ज्वर, अर्श, मन्दाग्नि, अतिसार, अरोचक, पीनस और प्रमेह नष्ट होता हैं।

ग्रहणीशार्द्दूल वटिका—जायफल, लोहा, जीरा, कूठ, सोहागेका लावा, कालानमक, दालचीनी, इलायची, धतूरेको बीज और अफीम, प्रत्येक समभाग; गंधालीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना; इससे ग्रहणी, नानाप्रकार अतिसार और प्रवाहिका रोग आराम होता।

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका।—पारा, लोहा, गन्धक, शङ्खभस्म, सोहागेका लावा, हींग, स्ठी, तालिशपत्र, मोथा, धनिया, जीरा, सैन्धानमक, धवईका फूल, अतीस, सोंठ, गृहधूम, हरी-

तकी, मैलाशा, तेजपत्ता, जायफल, लौंग, दारुचीनी, इलायची, वाला, बेलगिरी और मेथी ; यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना, यह ग्रहणी, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कण्डु, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और क्रिमिरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निजनक है।

अग्निकुमार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, सोहागेका लावा, लौहभस्म, अजमोदा और अफीम प्रत्येक समभाग ; सबके बराबर अभ्रभस्म ; एकत्र चीतामूलके काढेमें एक पहर खलकर गोलमिरचके बराबर गोली बनाना। इससे अजीर्ण और ग्रहणी रोग दूर होता है।

जातीफलाद्य वटी।—जायफल, सोहागेका लावा, और धतूरेकी बीज प्रत्येक एक तोला अफीम २ तोले, यह सब द्रव्य गन्धानो पत्तेके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह गोली ग्रहणी रोगमें सहतके साथ और दोषानुसार अनुपान विशेषके साथ सब प्रकारके अतिसारमें भी प्रयोग कर सकते है। गोली सेवनके बाद दही और भात भोजन कराना चाहिये।

महागन्धक।—पारा २ तोले, गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाना। कज्जलीमें थोड़ा पानी मिला एक लोहेके पात्रमें रख गरम करना फिर जायफल, जावित्री और नीमका पत्ता प्रत्येक का चूर्ण २ तोले इसमें मिलाना। फिर दो सीपमें यह औषध बन्दकर केलेका पत्ता लपेट मिट्टीका लेप करना। सूखजानेपर गजपुटमें फूंकना, उपरकी मिट्टी लाल हो जानेपर दवा आगसे निकालकर एकदफे घोर खल करना। इसकी पूरी मात्रा २ रत्ती। ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, काम, श्वास, और बालकोंके उदरामय रोगोंमें इससे विशेष उपकार होता है।

महाभ्र वटी ।—अभ्रक, ताम्बा, लौह, गन्धक, पारा, मैनसिल, सोहागेका लावा, जवाखार और त्रिफला प्रत्येक ८ तोले, मीठाविष आधा तोला ; एकत्र मर्द्दन कर भांग, सोमराजी, भृंगराज, बेलका पत्ता, पालिधायच, गनियारी, बिधारा, धनिया, खुलकुड़ी, निर्गुण्डी, नाटाकरञ्ज, धतूरेका पत्ता, श्वेत अपराजिता, जयन्ती, अदरखें, अडूसा और पान यथासम्भव इन सबके पत्तेका रस, या काढ़ेकी अलग अलग भावना देकर थोड़ा गिला रहनेपर ८ तोले गोलमिरचका चूर्ण मिला, एक रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान विशेषके साथ यह ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, शूल, शोथ, अग्निमान्द्य, आमवात और प्रदर आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

पीयूषवल्ली रस ।—पारा, गन्धक, रौप्य, लोहा, सोहागा, रसाञ्जन, स्वर्णमाक्षिक लौंग, लालचन्दन, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा, धनिया, वराहक्रान्ता, अतीस, लोध, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दालचीनी, जायफल, शोंठ, नीमकी छाल, धतूरेकी बीज, अनारकी छाल, धवई फल, और कूठ प्रत्येक आधा तोला ; इन सबको एकत्र मिला कसेरुका रस और बकरीके दूधकी भावना देकर चने बराबर गोली बनाना। भूंजा बेल और गुड़के साथ देनेसे रक्तातिसार, ग्रहणी और रक्तप्रदर आदि विविध पीड़ा इससे आराम होती है।

श्रीनृपतिवल्लभ ।—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्रक पारा, गंधक, और ताम्बा प्रत्येक एक पल, गोलमिरच २ पल एकत्र बकरीका दूध और आंवलेके रसकी

भावना देकर एक आनाभरकी गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, शूल, कास, श्वास, शोथ, भगन्दर, उपदंश और गुल्म आदि पीड़ा आराम होती है।

वृहत नृपवल्लभ।—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्र, सीसा, चीतामूल, मोथा, सोहागेका लावा, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, वंग, तेजपत्ता, कालाजीरा, अजवाईन, सोंठ, सैंधव, गोलमिरच और ताम्बा प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म आधा तोला, इन सब द्रव्योंकी चक्रमर्द और आंवलेके रसकी भावना दे चने बराबर गोली बनाना। इससे भी ग्रहणी, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि उदरामय रोग आराम होता है।

ग्रहणीवज्रकपाट—पारा, गंधक, जवाखार, अजवाईन, अभ्रक, सोहागेका लावा और जयन्ती समभाग ले जयन्ती, भीमराज, और जम्बीर नीबूके रसमें एक एक दिन खलकर गोला बनाना। धीमी आंचमें गोला गरम कर ठण्ढा हो जानेपर भांग, नेमर और हरीतकीके रसकी सात सातदफे भावना देना। उपयुक्त मात्रासे महतके साथ देनेसे ग्रहणी रोग विनष्ट होता है।

राजवल्लभ रस—जायफल, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, सोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्र, ताम्बा, पारा, गंधक, गोलमिरच, तेवडी और रौप्य, प्रत्येक समभाग आंवलेके रसकी भावना दे दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह औषध अनुपान विशेषके साथ देनेसे ग्रहणी, गुल्म, शूल, अतिसार और अर्श आदि पीड़ा आराम होती है।

चांगेरी घृत—घी ४ सेर, चौपतियासाक का रस १६ सेर, दही १६ सेर, कल्कार्थ सोंठ, पीपल, चीतामूल, गजपीपल, गोखुर, धनिया, बेलकी गिरी, पम्बठा और अजवाईन सब मिला-

कार एक सेर ; यथाविधि घृत पाककर प्रयोग करनेसे ग्रहणी, प्रवाहिका और वातकफजनित रोग आराम होता है।

मरिचाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूल ६ सेर, पानी ३२ सेर, शेष ८ सेर ; दूध ८ सेर और गोलमिरच, पीपलामूल, सोंठ, पीपल, भेलावा, अजवाईन, विडङ्ग, गजपीपल, छोंहे, सौवर्चल, काला, सेंधव और कटेलानमक, चाभ, जवाचार चीतामूल और वच प्रत्येक ४ तोले वधि पाक करना। यह अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्लीहा और का नाशक है।

महाषट्पलक घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर चुक्र ४ सेर, दूध ४ सेर, दही ४ सेर और कांजी ४ सेर। कल्कार्थ पञ्चकोल, सौवर्चल, सेन्धव, काला और पाङ्गानमक, हौवेर, अजमोदा, जवाचार, हींग, जीरा, कालाजीरा, और अजवाईन प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि पाक करना। इससेभी ग्रहणी, अर्श, श्वास, काम और क्रमि आदि रोग आराम होते है।

विल्वतैल ।—तिलका तेल ४ सेर, वेलका गूदा ६। सेर और दशमूल ६ सेर एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर ; अदरखका रस ४ सेर, कांजी ४ सेर, दूध ४ सेर। कल्कार्थ धवईफूल, वेलगिरी, कूठ, शटी, रासा, पुनर्नवा, त्रिकटु, पीपलामूल, चीतामूल, गजपीपल, देवदारु, बच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपत्ता, अजमोदा, और अष्टवर्ग प्रत्येक चार चार तोले, इनकी आचपर यथाविधि पाक करना। यह मंग्रह ग्रहणी, अतिसार, गुल्म और सूतिका आदि बहुरोग नाशक है।

ग्रहणीमिहिर तैल ।—तिलका तेल ४ सेर, काथार्थ कुरयाको छाल किम्वा धनिया, १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, अथवा तक्र (मट्ठा) १६ सेर ; कल्कार्थ धनिया, धवईका

फूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, खसकी जड़, मोथा, बाला, मोचरस, रसवत, बेलकी गिरी, नीलोत्पल, तेजपत्ता, नागेश्वर, पद्मकेशर, गुरिच, इन्द्रयव, श्यामालता, पद्मकाठ, कुटकी, तगरपादुका, कुरैयाकी छाल, दालचीनी, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदम्बकी छाल, अजवाईन और जीरा प्रत्येक २ तोले, यथाविधि पाक करना। ग्रहणी आदि विविध रोगोंमें यह प्रयोग होता है।

वृहत ग्रहणीमिहिर तैल।—तिलका तेल ४ सेर; काथार्थ कुरयाकी छाल और धनिया प्रत्येक १२॥ सेर; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना प्रत्येक का शेष १६ सेर, मट्ठा १६ सेर और कल्कार्थ धनिया, धवइका फूल लोध, वराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, लौंग, बाला, सिंघाडा, रसवत, नागेश्वर, पद्मकाठ गुरिच, इन्द्रयव, प्रियङ्गु, कुटकी, पद्मकेशर, तगरपादुका शरमूल, भृङ्गराज, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल और कदमकी छाल, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाक करना। यह तैल ग्रहणीमिहिर तैलसे भी विशेष उपकारी है।

दाड़िमाद्य तैल।—तिलका तेल १६ सेर; अनारके फलकी छाल, बाला, धनिया और कूरैयाकी छाल प्रत्येकका काढा ८ सेर मट्ठा ८ सेर और कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चाभ, जीरा, सेंधव, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, सौफ, जटामांसी, लौंग, जावित्री, जायफल, धनिया अजवाईन, अजमोदा, बाला, कचूर, अतीस, खुरकुटी, सिंघाड़े का पत्ता, हस्ती, कण्टकारी, आमकी छाल, जामुनकी छाल, मरिचन, पिठवन, वराहक्रान्ता, इन्द्रयव, सतावर, धवईका फूल, बेलकी गिरी, मोचरस, तालमूली, कुरैयाकी छाल, वरियारा, गोक्षुर, लोध, अम्बष्ठा,

खदिर काष्ठ, गुरिच और सेमरको छाल, प्रत्येक ४ तोले, अरवाचावल भिंगोये चौगुने पानीमें यथाविधि पाक करना। यह ग्रहणी, अर्शः, प्रमेह आदि बहुविध रोग निवारक है।

दुग्धवटी।—पारा, गन्धक, मीठाविष ताम्रा, अभ्रक, लोहा, हरिताल, हिंगुल, सेमरका खार और अफीम; प्रत्येक समभाग दूधमें खलकर आधा जौ बराबर गोली बनाना। यह दूधके अनुपानके साथ देनेसे शोथ युक्त ग्रहणी आदि रोग आराम होता है। इसमें पानी पीना और नमक खाना मना है। [प्यास लगेतो पानीके बदले दूध पीना चाहिये। दाल-तर्कारीके बदले] केवल दूधभात या दूधमें औटाया दूसरा पदार्थ मंड आदि पथ्य देना उचित है। पानी और नमक बन्द करना कठिन मालूम हो तो, सेन्धानमक केसुरियाके रसमें भूनकर वही नमक दाल और तरकारीमें बहुत थोड़ा मिलाकर देना तथा पानी गरम कर बहुत मागनेपर थोड़ा पीनेको देना चाहिये।

लौहपर्पटी।—पारा २ तोले और गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाकर उसमें २ तोले लोहाभस्म मिलाना। लोहेकी कलछीमें घी लगाकर आगपर रख कज्जली गला लेना, फिर वह कज्जली गरम रहतेही, गोबरके उपर केलेका पत्ता रख उसपर ढालना तथा उपरसे दूसरा केलेका पत्ता रखकर गोबरसे ढांक देना। थोड़ी देर बाद जो चिपटा पदार्थ जम जायगा उसीको लौह पर्पटी कहते हैं। मात्रा एक रत्तीसे आरम्भकर थोड़ा थोड़ा बढ़ाना, अनुपान ठण्ढा पानी या धनिया और जीरेका काढ़ा। इससे ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, पाण्डु, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होते हैं।

स्वर्णपर्पटी।—पारा ८ तोले और सोनेका भस्म १तोला, एकत्र खूब मर्द्दन कर उसमें ८ तोले गंधक मिला कज्जली बनाना। फिर लौह-पर्पटीकी तरह पर्पटी बनाकर उसी मात्रासे प्रयोग करना। इसमें ग्रहणी, यक्ष्मा, शूल, आदि रोग आराम होता है।

पञ्चामृत पर्पटी।—गंधक ८ तोले, पारा ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक एक तोला और ताम्बा आधा तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर पूर्व्ववत् पर्पटी बनाना। २ रत्ती मात्रा घी और मधुके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, अरुचि, वमन और पुराना अतिसार आदि रोगोंका नाश होता है।

रसपर्पटी।—समभाग पारा और गन्धक को कज्जली बनाकर पूर्व्ववत् पर्पटी तयार करना। यहभी ग्रहणी आदि विविध पीडानाशक है। मात्रा २ रत्ती। पर्पटी सेवनके समयमें भी दुग्धवटीकी तरह जलपान और लवण भोजन परित्याग करना चाहिये।

विजय पर्पटी।—गंधक के चूर्ण को भंगरैया के रसको ७ वार अथवा ३ वार भावना देकर सुखा लेना। फिर वही गन्धक लोहेके पात्र में गलाकर भंगरैयाके रसमें डालना। थोडी देर बाद निकालकर सुखा लेना। यह गन्धक ८ तोले, शोधित पारा ४ तोले, चांदीका भस्म २ तोले, सोनेका भस्म १ तोला, वैक्रान्त भस्म आधा तोला और मोती चार आनेभर एकत्र खल कर कज्जली बनाना। बेरकी लकडीके अंगारेपर इसे गलाकर पर्पटी तयार करना। यह पर्पटी यथानियम २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे दुर्निवार ग्रहणी शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषम ज्वर और प्रमेह आ

विविध रोग निराकृत होते है तथा रोगी क्रमशः बल और पुष्टि लाभकर थोड़ेही दिनोंमें चङ्गा हो जाता है। यह औषध सेवन करनेसे स्त्रीसहवास, रात्रिजागरण, कसरत और तिक्त द्रव्य तथा कफजनक द्रव्य भोजन निषिद्ध है। व्यञ्जनादि पथ्य देना हो तो धनिया, हींग, जीरा, सोंठ, सैंधव और घीसे पाक करना चाहिये। वायु कुपित होनेसे विशेष विचार कर कच्चे नारियलका पानी थोड़ा देना, नहीतो दूधके सिवाय और कोई पदार्थ नहीं पिलाना।

अर्श (बवासीर)।

चन्दनादि काढ़ा—लालचन्दन, चिरायता, जवासा और नागरमोथा प्रत्येक आधा तोला यथाविधि औटाकर पिलाना। यह खूनी बवासीर नाशक है।

मरिचादि चूर्ण—गोलमिरच, पीपल, कूठ, सेंधव, जीरा, सोंठ, बच, हींग, विडङ्ग, हरीतकी, चीतामूल और अजवाईन, इन सबका चूर्ण २ तोले और पुराना गुड़ ४ तोले, एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे देना।

स्वर्णपर्पटी।—पारा ८ तोले और सोनेका भस्म १तोला, एकत्र खूब मर्द्दन कर उसमें ८ तोले गंधक मिला कज्जली बनाना। फिर लौह,पर्पटीकी तरह पर्पटी बनाकर उसी मात्रासे प्रयोग करना। इससे ग्रहणी, यक्ष्मा, शूल, आदि रोग आराम होता है।

पञ्चामृत पर्पटी।—गंधक ८ तोले, पारा ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक एक तोला और ताम्बा आधा तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर पूर्ववत् पर्पटी बनाना। २ रत्ती मात्रा घी और मद्दतके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, अरुचि, वमन और पुराना अतिसार आदि रोगोंका नाश होता है।

रसपर्पटी।—समभाग पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर पूर्ववत् पर्पटी तयार करना। यहभी ग्रहणी आदि विविध पीडानाशक है। मात्रा २ रत्ती। पर्पटी सेवनके समयमें भी दुग्धवटीकी तरह जलपान और लवण भोजन परित्याग करना चाहिये।

विजय पर्पटी।—गंधक की चूर्ण को भंगरैया के रसकी ७ बार अथवा ३ बार भावना देकर सुखा लेना। फिर वही गन्धक लोहेके पात्र में गलाकर भंगरैयाके रसमें डालना। थोडी देर बाद निकालकर सूखा लेना। यह गन्धक ८ तोले, शोधित पारा ४ तोले, चादीका भस्म २ तोले, सोनेका भस्म १ तोला, वैक्रान्त भस्म आधा तोला और मोती चार आनेभर एकत्र खल कर कज्जली बनाना। बेरकी लकडीके अंगारेपर घी गलाकर पर्पटी तयार करना। यह पर्पटी यथानियम २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे दुर्निवार ग्रहणी शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषम ज्वर और प्रमेह आदि

दशमूल गुड़—दशमूल, चीतामूल और दन्तीमूल, प्रत्येक ५ पल, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते छानकर उसी काढ़ेके साथ १२॥ सेर गुड़ औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिवृत चूर्ण २ सेर और पीपलका चूर्ण एक सेर मिलाना। इसकी मात्रा आधा तोला।

नागनाद्य मोदक—सोंठ, भेलावा और विधारा की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण दो गूने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा पानीके साथ देना।

स्वल्प शूरण मोदक—गोलमिरच दो भाग, सोंठ चार भाग, चीतामूल ८ भाग, जंगली जिमिकन्द १६ भाग और सबके बराबर गुड़, एकत्र मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा पानीके साथ देना, इससे अर्श, गुल्म, शूल, उदर रोग, श्लीपद, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होते हैं।

वृहत शूरण मोदक।—जिमिकन्द का चूर्ण १६ तोले, चीतामूल ८ तोले, बेलकी गिरी ४ तोले, गोलमिरच २ तोले; त्रिफला, पीपल, शतावर, तालीस पत्र, भेलावा और विडङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले, तालमूली ८ तोले, विधाराकी बीज १६ तोले, दालचीनी २ तोले और इलायची २ तोले, यह सब द्रव्य १८० तोले पुराने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा एक तोला ठण्ढे पानीके साथ। इससे स्वल्प शूरणोक्त रोग समूह तथा शोथ ग्रहणी, प्लीहा, कास और श्वास आदि रोगभी आराम होते हैं।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना, ८ सेर रहते छानकर फिर औटाना, गाढा हो जानेपर भेलावा, विडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, रसाञ्जन, चीतामूल, इन्द्रयव, बच, अतीस और बेलकी गिरी प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले। पुराना

समशर्कर चूर्ण—छोटी इलायची एक भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपत्ता ३ भाग, नागेश्वर ४ भाग, गोलमिरच ६ भाग, और शोंठ ७ भाग, एकत्र चूर्णकर समष्टीके बराबर चीनी मिलाना। यह चार आनेभर अथवा अवस्था विशेषमें उससे भी अल्पाधिक मात्रा पानीसे देना।

कर्पूराद्य चूर्ण।—कपूर, लौंग, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, जायफल, खसकी जड़, शोंठ, कालजीरा, कृष्णागुरु, वंश लोचन, जटामांसी, नीला कमल, पीपल, चन्दन, तगरपादुका, बाला और शीतलचीनीका चूर्ण एकत्रकर सब द्रव्यकी आधी चीनी मिलाना। यह वातार्शको श्रेष्ठ औषध है तथा अतिसार, गुल्म, ग्रहणी और हृद्रोग आदि पीड़ा नाशक है।

विजय चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, बिड़नून, बच, हींग, अम्बष्ठा, जवाखार, हरिद्रा, दारहल्दी, चाभ, कुटकी, इन्द्रयव, चीतामूल, सोवा, पांचो नमक, पीपलामूल, बेलकी गिरी और अजवाईन, सब समभाग एकत्र चूर्णकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श ग्रहणी, वातगुल्म, कास, श्वास हिक्का और पार्श्वशूल आदि विविध पीड़ा नाश होतो है।

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज फलका गूदा, चीतामूल, सैन्धव, शोंठ, इन्द्रयव और श्योनाक (शोना) छाल; इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा मट्ठेके साथ देनेसे भी रक्तार्श आराम होता है।

भल्लातामृतयोग—गुरिच, ईशलांगला, काकड़ाशिङ्गी, बड़ी खलकुड़ी, गुञ्जापत्र और केतकी पत्रके साथ भेलावेको नरम बीज एक दिन खूब खलकर २ मासे प्रयोग करनेसे रक्तार्श आराम होता है।

धतूरेको बीज, हिङ्गुल और सोहागा; समभाग नीबूके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

पञ्चानन वटी—रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताम्बा और गन्धक; प्रत्येक एक एक तोला, शोधित भेलावा ५ तोले; ८ तोले जङ्गली जिमिकन्दके रसमें खलकर एक मासा वजन की गोली बनाना।

नित्योदित रस—पारा, गन्धक, ताम्बा, लोहा, अभ्रक और मीठाविष प्रत्येक समभाग, तथा सबको बराबर भेलावा, सब एकत्र खलकर जिमिकन्द और मानकन्दके रसको तीन दिन भावना दे उरद बराबर गोली बनाना, अनुपान घी।

दन्त्यरिष्ट।—दन्तीमूल आठ तोले और दशमूल प्रत्येक ८ तोले, एकत्र कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना। औटाती वक्त हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक आठ तोले एकत्र कूटकर मिलाना, फिर १६ सेर पानी रहते छान कर इसमें पुराना गुड़ २॥ सेर मिलाकर घीके बरतनमें मुंह बन्दकर रखना। १५ दिनके बाद १ भरी मात्रासे प्रयोग करना।

अभयारिष्ट।—हरीतकी एक सेर, आंवला २ सेर, कपित्थ की गिरी १० पल, इन्द्रवारुणी ४ तोले; विड़ङ्ग, पीपल, लोध, गोलमिरच, एलचा, प्रत्येक दो दो पल; यह सब द्रव्य एकत्र ६ मन १० सेर पानीमें औटाना ६४ सेर रहते, उतारकर छान लेना। फिर उसमें २५ सेर पुराना गुड़ मिला घृत भावित पात्रमें १५ दिन रखना। पूर्व्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदर शोथ, अग्निमान्द्य और क्रिमि आदि रोग दूर होते हैं।

गुड़ ३॥ सेर, घी एक सेर और सहत एक सेर, यह सब एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा ठण्ढा पानी, मट्ठा, अथवा बकरीके दूधमें देनेसे रक्तार्श: रक्तपित्त, और रक्तातिसार आदि रोग नष्ट होते है।

प्राणदा गुड़िका।—सोंठ ३ पल, गोलमिरच ४ पल, नागेश्वर ४ तोले, पीपलामूल २ पल, तेजपत्ता १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी १ तोला, खसकी जड़ १ तोला, पुराना गुड़ ३० पल; यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा प्रयोग करना। अनुपान दूध या पानी। कोष्ठबद्ध हो तो सोंठके बदले बड़ीहर्रे देना।

चन्द्रप्रभा गुड़िका।—विडङ्ग, चीतामूल, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चाभ, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, शठी, बच, स्वर्णमाक्षिक, सैन्धव, सौवर्चल नमक जवाखार, सज्जीखार, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गजपीपल और अतीस, प्रत्येक २तोले; शिलाजीत ८ पल, शोधित गुग्गुलु २ पल लोहा २ पल, चीनी ४ पल, वंशलोचन १ पल, दन्तीमूल, त्रिवृत, दालचीनी, तेजपत्ता और ईलायची सब मिलाकर एक पल; कज्जली ८ तोले अथवा रससिन्दूर ८ तोले यह सब एकत्र खल करना। मात्रा पहिले ४ रत्ती फिर सहनेपर बढा देना। अनुपान घी और सहत।

रसगुड़िका।—रससिन्दूर एकभाग, गोलमिरच विडङ्ग, और अभ्रक प्रत्येक ३ भाग; एकत्र जङ्गली पालकी शाकके रसमें घलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह अर्श और अग्निमान्द्य नाशक है।

कासीफलादि वटी—जायफल, लौंग, पीपल, सेन्धव, सोंठ-

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

वडवानल चूर्ण—सेंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चाभ ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग और हरीतकी ७ भाग; इन सबका चूर्ण सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति होती है। मात्रा एक आनासे चार आनेभर तक। अनुपान गरम पानी।

सैन्धवादि चूर्ण—सेंधानमक, हरीतकी, पीपल और चीतामूल; इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, अग्निको अतिशय दीप्ति होती है। इससे नया चावलका भात, घृतपक्व पदार्थ और मछली आदि भी थोड़े ही देरमें हजम होता है।

सैंधवाद्य चूर्ण—सैंधव, चीतामूल, हरीतकी, लौंग, मिरच, पीपल, सोहागा, सोंठ, चाभ, अजवाइन, सौंफ और वच; यह १२ द्रव्योंका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर २१ दिन नीबूके रसकी भावना देना। यह चूर्ण २ मासे, गरम पानी, नमक मिलाया मठ्ठा, दहीका पानी या कांजीके साथ सेवन करनेसे, सद्यः अग्निकी दीप्ति होती है।

हिङ्गाष्टक चूर्ण—त्रिकटु, अजवाईन, सैन्धव, जीरा, काला जीरा और हींग; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाना। भोजनके समय पहिले ग्रासमें यह चूर्ण और घी मिलाकर खानेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३

चव्यादि घृत—घी ४ सेर, दही १६ सेर, पानी १६ सेर; कल्कार्थ चाभ, त्रिकटु, अम्बष्ठा, जवाखार, धनिया, अजवाईन, पीपलामूल, कालानमक, सेंधानमक, चीतामूल, बेलकी छाल और हरीतकी सब मिलाकर एक सेर यथानियम पाककर सेवन करनेसे मल और वायुका अनुलोम होता है तथा गुदभ्रंश, गुह्य शूल, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होती है।

कुटजाद्य घृत—घी ४ सेर, कल्कार्थ इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, नागकेशर, नीलाकमल, लोध और धवईका फूल सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि पाक करना। यह रक्तार्श निवारक है।

कासीश तैल—तिलका तैल १ सेर, कांजी ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, दन्तीमूल, सैंधव नमक, कनैलकी जड़ और चीतामूल प्रत्येक एक छटांक, यथाविधि पाक करना, प्रयोग करनेके वक्त अँकवनका दूध थोड़ा मिला लेना चाहिये।

बृहत् कासीशाद्य तैल—तिलका तैल ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, सैंधव, पीपल, सोंठ कूठ, ईशलाङ्गला, पत्थरचुर, कनैल दन्तीमूल, विडङ्ग, चीतामूल, हरिताल, मैनसिल, सनाय और सेहुंडका दूध सब मिलाकर एक सेर गोमूत्र १६ सेर; एकत्र यथाविधि पाक करना।

अग्निमुख लवण।—चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल, और कूठ, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, सबके बराबर सेन्धव नमक, एकत्र सेहुंडके दूधकी भावना देकर, सेहुंडके डण्डेमें भर मिट्टीका लेपकर आगमें रखना। जलजानेपर बाहर निकाल चूर्ण करना। इस चूर्णकी मात्रा २ रत्ती। गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है तथा प्लीहा और गुल्म आदि नानाप्रकारके रोग नाश होते हैं।

वाड़वानल रस—शोधित पारा २ तोले और शोधित गंधक २ तोलेकी कज्जली तथा पीपल, पांचोनमक, गोलमिरच, त्रिफला जवखार, सज्जीखार और सोहागा प्रत्येक दो तोले एकत्र चूर्ण कर निर्गुण्डीके पत्तेके रसकी एक दिन भावना दे, एकरत्ती वज़न की गोली बनाना। यह अग्निमांद्य नाशक है।

हुताशन रस—गंधक एकभाग, पारा एकभाग, सोहागेका लावा एक भाग, विष ३ भाग, मिरच ८ भाग; यह सब द्रव्य एकत्र नीबूके रसमें एक दिन खलकर मूंगके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूचिका, अजीर्ण, अग्निमांद्य, शिरःपीड़ा और सन्निपात आदि रोगमें प्रयोग होता है।

अग्नितुण्डी वटी—पारा, विष, गंधक, अजवाईन, त्रिफला, सज्जीखार, चीतामूल, सेंधानमक, जीरा, सोवर्चल नमक, विडङ्ग, कटेलानमक और सोहागेका लावा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, एकत्र बड़े नीबूके रसमें खलकर गोलमिरच बराबर गोली बनाना।—इससे अग्निमांद्य रोग दूर होता है।

लवङ्गादि मोदक—लौंग, पीपल, सोंठ, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा नागकेशर, तगरपादुका, इलायची जायफल, वंग·

भाग, शोठ ४ भाग, अजवाइन ५ भाग, हरीतकी ६ भाग, चीता मूल ७ भाग, कुठ ८ भाग, एकत्र चूर्ण करना। दधिमण्ड, सुरा या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

वृहतअग्निमुख चूर्ण।—यवाचार, सज्जीखार, चीता मूल, अम्बष्ठा, करञ्जमूल की छाल पाचोनमक, छोटी इलायची, तेजपता, वंसनेठी, विडङ्ग, हीग, कूठ, शठो, दारुहल्दी, तेवडो, मोथा, वच इन्द्रयव, आवला, जोरा, गजपीपल, कालाजीरा, अम्लवेतस, इमली, अजवाइन, देवदारु, हरीतकी, चतीस, अनन्त मूल, होवेर अमिलतास का गूदा, तिलके लकडीका खार, सजने जडकी छालका खार, कुलेखाडाका खार, पलाशका खार, वनपलास को खार और गरम गोमूत्रमें भिगोया मण्डूर यह सब द्रव्य सम भाग ले; ३ दिन नोबूके रसकी, ३ दिन काञ्जीकी और ३ दिन अद रखके रसकी भावना दे चूर्ण कर लेना। यह चूर्ण २ तोले मात्रा भोजनके द्रव्याम मिलाकर वो डालकर खानेसे अजीर्ण, अग्नि मान्द्य, प्लोहा, गुल्म, अष्ठोला और अर्श आदि पीडा शान्त होती है।

भास्कर लवण।—पीपल, पीपलामूल, धनिया, काला जीरा, सेंधानमक, कालानमक, तेजपत्ता तालीश पत्र और नागके शर प्रत्येक २ पल, सोवर्चल नमक ५ पल, गोलमिरच, जीरा और शोठ प्रत्येक एक पल, दालचीनी ४ पल अम्लवेतस २ पल, इन सब द्रव्योंका चूर्ण एकत्र मिलाकर मठठा या काञ्जीके साथ सेवन करनेसे वातकफ, वातगुल्म, वातशूल, प्लीहा और पाण्डुरोगादि नानाप्रकारकी पीडा आराम हो अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है।

बनाना। यह गोली सहत और ५ लौंगके चूर्णमें मिलाकर चाटना। इससे सब प्रकारका अजीर्ण, आमवात, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त और मन्दाग्नि दूर होती है।

टङ्कनादि वटी—सोहागेका लावा, सोंठ, पारा, गन्धक, मीठाविष और गोलमिरच; प्रत्येक समभाग एकत्र मदारके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

शङ्खवटी—पारा २ तोले, गन्धक १ तोला, विष ६ तोले, गोलमिरच ८ तोले, शङ्खभस्म ८ तोले, सोंठ १० तोले तथा सज्जीखार, हींग, पोपल, सैन्धव, सोवर्चल नमक, कालानमक, सेंधा और सांभरनमक प्रत्येक १० तोले कागजो नीबूके रसकी भावना दे गोली बनाना। इससे ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होकर अग्निकी वृद्धि होती है।

महाशङ्ख वटी।—पीपलामूल, चीतामूल, दन्तीमूल, पारा, गंधक, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पांचोनमक, गोलमिरच, सोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग और इमलीके छालकी राख; प्रत्येक एक तोला, शङ्खभस्म २ तोले; यह सब द्रव्यमें अम्लवर्ग अर्थात् अम्लती नीबू, बिजौरा नीबू, चुकपालकी, चांगेरी (चौपतिया शाक) इमली, बैर और करञ्जके रसकी भावना देकर बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। खट्टे अनारका रस, मट्ठा, दहीका पानी, शराब, सीधू, कांजी अथवा गरम पानीके अनुपानसे देना। इससे अग्निवृद्धि होकर अर्श, ग्रहणी, क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, कास, पाण्डु, कामला आदि रोग दूर हो जाते है।

लोचन, कायफल, तेजपत्ता, पद्मवीज, लालचन्दन, शीतल चीनी, अगुरु, खसकी जड, अभ्र, कपूर, जावित्री मोथा, जटामासी, जीका चावल, धनिया और सोवा प्रत्येक का समभाग चूर्ण, और चूर्णकी दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। इससे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, कामला, अरुचि और ग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं।

सुकुमार मोदक—पीपल पीपलामूल, सोंठ, गोलमिरच, हरीतकी, आवला चीतामूल, अभ्र गुरिच और कुटकी सबका चूर्ण १ तोला, दन्तीचूर्ण ६ तोले तेवडीचूर्ण १६ तोले, चीनी २४ तोले; सहत मिलाकर मोदक बनाना। इससे वाताजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त और आनाह रोग प्रशमित होता है।

त्रिवृतादि मोदक—तेवडीमूल, पीपलामूल, पीपल, चीता मूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल गुरचकी चीनी ५ पल, सोंठका चूर्ण ५ पल और गुड ३० पल, इसका मोदक बनाना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलेतक। यह अतिशय अग्निवृद्धि कारक है।

मुस्तकारिष्ट— मोथा २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर यह काढा छानकर उसमें ३७॥सेर गुड, धवईकाफूल १६ पल, अजवाईन, सोंठ, गोलमिरच, लौंग, मेथी, चीतामूल, जीरा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल मिलाना, फिर मुह बन्दकर एक महीना रख द्रवांश छान लेना। इससे अजीर्ण, अग्निमांद्य, विसूचिका और ग्रहणी रोग आराम होते है।

सुधासागर रस—त्रिकटु, त्रिफला, पाचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागेका खार पारा सैंधव, प्रत्येक एक एक भाग, विष २ भाग; एकत्र पानीमें खलकर एकरत्ती बराबर गोली

बनाना। यह गोली सहत और ५ लौंगकी चूर्णमें मिलाकर चाटना। इससे सब प्रकारका अजीर्ण, आमवात, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त और मन्दाग्नि दूर होती है।

टङ्गणादि वटी—सोहागेका लावा, सोंठ, पारा, गन्धक, मीठाविष और गोलमिरच; प्रत्येक समभाग एकत्र मदारके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

शङ्खवटी—पारा २ तोले, गन्धक १ तोला, विष ६ तोले, गोलमिरच ८ तोले, शङ्खभस्म ८ तोले, सोंठ १० तोले तथा सज्जीखार, हींग, पीपल, सैंधव, सौवचल नमक, कालानमक, सेंधा और पांगानमक प्रत्येक १० तोले कागजी नींबूके रसकी भावना दे गोली बनाना। इससे ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होकर अग्निकी वृद्धि होती है।

महाशङ्ख वटी।—पीपलामूल,चीतामूल,दन्तीमूल, पारा, गंधक, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, पांचोनमक, गोलमिरच, सोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग और इमलीके छालकी राख; प्रत्येक एक तोला, शङ्खभस्म २ तोले; यह सब द्रव्यमें अम्लवर्ग अर्थात् अमलती नीबू, बिजौरा नीबू, चुकापालकी, चांगेरी (चौपतिया शाक) इमली, बैर और करञ्जके रसकी भावना देकर बेरकी गुठली बराबर गोली बनाना। खट्टे अनारका रस, मट्ठा, दहीका पानी, शराब, सीधू, कांजी अथवा गरम पानीके अनुपानसे देना। इससे अग्निवृद्धि होकर अर्श, ग्रहणी, क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, कास, पाण्डु, कामला आदि रोग दूर हो जाते हैं।

भास्कर रस।—विष, पारा, त्रिफला, गंधक, त्रिकटु, सोहागा और हीरा, प्रत्येक एकभाग, लौह, मंडूभस्म, अभ्र और कौडीभस्म प्रत्येक २ भाग; सबके बराबर लोणचूर्ण; इन सबको ७ दिन शरबती नीबूके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। इसे पानके साथ चिबाकर खाना चाहिये। इससे अग्निकी दीप्ति और सब प्रकारका शूल, विसूचिका और अग्निमान्द्य रोगमें विशेष उपकार होता है।

अग्नि घृत।—पीपल, पीपला मूल, चीता, गजपीपल, हींग, चाभ, अजवाईन, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, और हौवेर; प्रत्येक का कल्क चार चार तोले, कांजी ४ सेर, मठ्ठा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, दही ४ सेर, घी ५ सेर, यथाविधि पाक करना। यह घी मन्दाग्निमें विशेष उपकारी है। इससे अर्शः, गुल्म, उदर, ग्रन्थि, अर्व्वूद, अपची, कास, ग्रहणी, शोथ, मेद, भगन्दर, वस्ति और कुक्षिगत रोग समूह आराम होते है।

विसूचिका।

अहिफेनासव—महुवेके फूलकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल, यह द्रव्य एकत्र एक पात्रमें रख मुंह बन्दकर एकमास रखना; फिर द्रव्यांश छान लेना। इससे उग्र अतिसार और प्रबल विसूचिका रोग आराम होता है।

फांककर मोथेका काढ़ा पीना। यह औषध सेवन करनेसे ३ दिनमें क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिघ्नरस—विड़ङ्ग, किंशुक, पलाशबीज और निमबीज यह सब द्रव्य चुहाकानीके रसमें खलकर ६ गुंजा बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्ग लौह—पारा, गन्धक, गोलमिरच, जायफल, लौह, पपल, हरिताल, शोंठ और वङ्ग, प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर सोरा, तथा सब द्रव्यके बराबर विड़ङ्ग उक्त पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नाश होती है।

क्रिमिघातिनी वटिका—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा ३ तोले, विड़ङ्ग ४ तोले, बभनेठीको बीज ५ तोले केंडा ६ तोले, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह औषध सेवनके बाद पियास लगनेसे मोथा अथवा चूहाकानीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीना। इससे बहुत जल्दी क्रिमि नष्ट होती है।

त्रिफलाद्य घृत—घी ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला तेवड़ी, दन्तीमूल, वच और कमीला सब मिलाकर एक सेर यथाविधि पाककर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्ग घृत—हरीतकी २६ पल, बहेड़ा १६ पल, आंवला १६ पल, विड़ङ्ग १६ पल, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ मिलाकर १६ पल, दशमूल १६ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, घृत ४ सेर, कल्कार्थ सैन्धानमक २ सेर, चीनी एक सेर यथाविधि पाक करना। यह घी पान करनेसे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विडङ्गतैल—सर्षपतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ विडङ्ग, गन्धक और मैनसिल सब मिलाकर, एकत्र पाक करना। यह तैल मस्तकमें लगानेसे केशके कीड़े नष्ट होते हैं।

धुस्तर तेल—सरसोका तेल ४ सेर, धतूरेके पत्तेका रस १६ सेर, कल्कार्थ धतूराका पत्ता एक सेर एकत्र औटाना। यह तैल मस्तकमें मर्द्दन करनेसे भी केशके कीड़े नष्ट होते है।

पाण्डु और कामला।

फलत्रिकादि कषाय—त्रिफला, गुरिच, अडूषा, कुटकी, चीता और नीमकी छाल के काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाडु और कामला रोग प्रशमित होता है।

वासादि कषाय—अडूसा, गुरिच, नीमकी छाल, चिरायता और कुटकोके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और कफज रोग आराम होते है।

नवायस लौह—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग और चीतामूल, प्रत्येक एक एक तोला, लोहा ३ तोले सबका चूर्ण एकत्र मिलाना। मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और घी।

विन्ध्यवासी लौह।—मण्डूर एक पल, चीनी एक पल कान्तलौह, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, हरीतकी, आमला, बहेड़ा, चीतामूल, मोथा और विडङ्ग; प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें गायका घी एक पल और सहत एक पलके साथ लोहेके दण्डसे मर्द्दनकर लगातार २१ दिन धूप और ओसमें रख कर पाक करना। मिट्टीके बरतनमें भी रख सकते है। मात्रा

एक मासा, भोजनके पहिले ग्रासके साथ सेवन करना। इससे पांडु, कामला और हलीमक आदि रोग आराम होते है। भोजन के साथ सेवन करनेसे विशेष कष्ट और भोजनमें अप्रवृत्ति होनेसे दूसरे समय दूधके अनुपानसे देना।

धात्रीलौह—आंवला, लौहचूर्ण, सोंठ, पीपल, गोलमिरच हल्दी, सहत और चीनी, यह सब द्रव्य एकत्रकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग आरोग्य होता है।

अष्टादशाङ्ग लौह—चिरायता, देवदारू, दारुहल्दी, मोथा, गुरिच, कुटकी, परवलका पत्ता, जवासा, खेतपापडा, नीम, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, चीता, आंवला, बहेडा, हरीतकी और विडङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, चूर्णकी समष्टीके बराबर लौह चूर्ण, घी और सहत मिलाकर गोली बनाना। यह सेवन करनेसे पाण्डु, हलीमक, शोथ और ग्रहणी रोग आराम होता है। अनु पान मठ्ठा।

पुनर्नवा मण्डूर।—शोधित मण्डूर ५ पल, पाकार्थ गोमूत्र पांचसेर, आसन्न पाकमें पुनर्नवा, तेवडीमूल, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, विडङ्ग, देवदारू, चीतामूल, कूठ, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चाभ, इन्द्रयव, कुटकी, पीपलामूल और मोथा प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिला खूब चलाकर नीचे उता रना। मात्रा ४ मासे। इससे पाण्डु और शोथ, आदि अनेक रोग आराम होते है।

पाण्डु पञ्चानन रस।—लौह, अभ्रक, ताम्बा, प्रत्येक एक एक पल, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, चाभ, कालाजीरा, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, तेवडीमूल, मानकन्दमूल, इन्द्रयव कुटकी, देवदारू, बच और मोथा, प्रत्येक दो दो तोले, सब समष्टी

का दूना मण्डूर, मण्डूरका आठगुना गोमूत्र, पहिले गोमूत्रमें मण्डूर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर लोहा, अभ्रक आदि द्रव्य मिलाना। गरम पानीके साथ सवेरे सेवन करना चाहिये। इससे पाण्डु हलीमक और शोथ आदि रोग शान्त होते है।

हरिद्राद्य घृत—भैंसका घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर; कल्कार्थ हलदी, त्रिफला, नीमकी छाल, बरियारा और मुलेठी सब मिलाकर एक सेर। मात्रा आधा तोला। यह घी सेवन करनेसे कामला नष्ट होता है।

व्योषाद्य घृत—त्रिकटु, बेलकी छाल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, मोथा, लौहचूर्ण अम्लष्ठा, विडङ्ग, देवदारु, बिछोटी और अभनेठी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर। यह घी पीनेसे मृत्तिका भक्षण जनित पाण्डुरोग आराम होता है।

पुनर्नवा तैल—तिलका तेल ४ सेर, क्वाथार्थ श्वेतपुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, देवदारु, रेणुक, कूठ, पुनर्नवामूल, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, पद्मकाठ, तेजपत्ता और नागेश्वर, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाककर मालिश करनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और जीर्णज्वर आराम होता है।

रक्तपित्त।



धान्यकादि हिम—धनिया, आंवला, अडूसा, किसमिस और खेतपापडा, इन सबका शीतकषाय पीनेसे, रक्तपित्त, ज्वर, दाह और शोथ आराम होता है।

ह्रीवेरादि क्वाथ—बाला, निलोत्पल, धनिया, लाल चन्दन, मुलेठी, गुरिच, खसकी जड़ और तेवडोके क्वाढ़ेमें चीनो और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त जल्दी आराम होकर तृष्णा, दाह और ज्वर दूर होता है।

अटरूषकादि क्वाथ—अडूसेके जड़की छाल, किसमिस और हरीतकीका काढ़ा, चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास, कास और रक्तपित्त आराम होता है।

एलादि गुडिका—इलायची एक तोला, तेजपत्ता १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोले, चीनी मुलेठी, पिण्डखजूर द्राक्षा, प्रत्येक एक एक पल, सबके चूर्णमें सहत मिलाकर गुडिका बनाना, दोषोंका बलाबल विचार कर मात्रा स्थिर करना। इससे कास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, रक्तवमन और तृष्णा आदि रोग आराम होते हैं।

कुष्माण्ड खण्ड।—सफेद कोंहड़ा कोसा, पानी निचोड़ा तथा धूपमें थोड़ी देर सुखाया हुआ १०० पल, ४ सेर घीमें भूनना, लाल होनेपर कोंहड़ेका पानी १५ सेर, चीनी १२॥ सेर मिलाकर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर नीचे लिखे द्रव्यके चूर्ण मिला खूब चलाकर ठण्ढा होनेपर दो सेर

सहत मिलाकर घीके बरतनमें रखना। प्रक्षेप द्रव्य—पोपल, शोंठ और जीरा प्रत्येक दो दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, गोलमिरच और धनिया प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले। मात्रा एक तोलासे दो तोलेतक। अग्नि और बलका विचार कर मात्रा स्थिर करना। छागादि दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। यह हृष्य, पुष्टिकर, बलप्रद और स्वरदोष निवारक है। यह औषध सेवन करनेसे रक्तपित्त और क्षयादि नानाप्रकारके रोग आराम होते है।

वासा कुष्माण्ड खण्ड।—अडूसेके जडकी छाल ६४ पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, सफेद कोहड़ा किसाहुआ ५० पल, ४ सेर घीमें भूनकर, १०० पल चीनी, अडूसेका काढ़ा और किसाहुआ कोहड़ा यह तीन द्रव्य एकत्र औटाना, फिर उपयुक्त समयमें मोथा, आंवला, वंशलोचन, बारङ्गी, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची इन सबका चूर्ण दो दो तोले, एलवा, शोंठ, धनिया और मिरच प्रत्येक एक एक पल और पोपल ४ पल उसमें मिला कर खूब चलाकर नीचे उतार लेना। ठण्डा होनेपर एक सेर महत मिलाना। इससे काम, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग आराम होता है।

खण्डकाद्य लौह।—शतावर, गुरिच, अडूसेके जडकी छाल, मुण्डरी, वरियारा, तालमूली, खदिर काठ, त्रिफला, बारङ्गी और कूठ, प्रत्येक पांच पांच पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर इस काढ़ेमें मैनसिलके साथ फंका हुआ कान्तलौह अथवा स्वर्णमाक्षिक १२ पल, चीनी १६ पल, घी १६ पल, एकत्र पाक करना, गाढ़ा होनेपर शिलाजीत, दालचीनी, कांकड़ाशिंगी, विडङ्ग, पिपल, शोंठ और जायफल प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल

और त्रिफला, धनिया, तेजपत्ता, गोलमिरच, नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले उसमें मिलाना। गाढ़ा होनेपर दो सेर सहत मिलाना। मात्रा दो आनेसे चार आनेभर तक। दूधके साथ सेवन करनेसे दुर्निवार रक्तवमन, रक्तस्राव, अम्लपित्त, शूल, वातरक्त, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, क्षय, कास श्वास आदि पीड़ा आराम होती है। यह पुष्टिकारक बलवर्द्धक, कान्ति और प्रीतिजनक तथा चक्षु हितकर है।

रक्तपित्तान्तक लोह—अभ्रभस्म, लोह, माक्षिक, रसताल और गन्धक समभाग, इन सबको मुलेठी द्राक्षा और गुरिचके काढ़ेमें एक दिन खल करना। एक मासा मात्रा चीनी और सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर और दाह आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं। (पारा, गन्धक, हरिताल, और दारमुश विष एकत्रमर्द्दनकर बालुकायन्त्रमें एक पहर पाक करनेसे एक प्रकारका पीला पदार्थ होता है उसको रसताल कहते हैं)।

वासाघृत—अड़ूसेकी छाल, पत्र और मूल मिलाकर ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ अड़ूसेका फूल ४ पल, घी ४ सेर; यथाविधि पाक करना। यह घी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त रोग शान्त होता है।

सप्तप्रस्थ घृत—शतावर, बाला, द्राक्षा, भूमिकुष्माण्ड, ऊख और आंवला; प्रत्येकका रस चार चार सेर, घी ४ सेर; यथाविधि औटाना। फिर चौथाई वजन चीनी मिलाकर मात्रा आठ आनेभरसे दो तोलेतक सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत, क्षय, पित्तशूल आदि रोग दूर होते हैं। यह बल, शुक्र और ओजःवृद्धि कारक भी है।

ह्रीवेराद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढ़ा

१६ सेर, दूध ४ सेर, कल्कार्थ बाला, खसकी जड़, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्ता, नागेश्वर, वेलकी गिरी, नागरमोथा, शठी, लालचन्दन, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, त्रिफला, सोंठ, बहेड़ाकी छाल, आमकी गुठली और लालकमलकी जड़, प्रत्येक दो दो तोले यथाविधि पाककर यह तैल मालिश करनेसे त्रिविध रक्तपित्त, कास, श्वास और उरःक्षत रोग आराम होता है तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती।

राजयक्ष्मा।

लवङ्गादिचूर्ण।—लौंग, शीतलचीनी, खसकी जड़, लालचन्दन, नगरपादुका, नीलोत्पल, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगरू, दालचीनी, नागेश्वर, सोंठ, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, चीनी ८ भाग एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास और ग्रहणी आदि रोग शान्त होता है। यह रोचक, अग्निदीपक, वृष्यकर, बलप्रद, शुक्रजनक और त्रिदोषक, वृष्यकर, बलप्रद, शुक्रजनक और त्रिदोषनाशक है।

सितोपलादिलेह—दालचीनी एक भाग, इलायची दो भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, चीनी १६ भाग एकत्र घी और शहतके साथ चाटनेसे अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास, कर्णशूल और क्षयादि रोग प्रशमित होता है। यह हाथ पैर और ऊर्द्धग रक्तपित्तमें प्रशस्त है।

वृहद्वासावलेह ।—अडूसेके जडकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, चीनी १२ सेर; त्रिकटु, दालचीनी, तेज पत्ता, इलायची, कटफल, मोथा, कूठ, कमीला, श्वेत जीरा, काला जीरा, तेवडी, पीपलामूल, चाभ, कुटकी, हरीतकी, तालीशपत्र और धनिया; प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले यथाविधि पाक करना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा एक तोला, अनुपान गरम पानी; इससे राजयक्ष्मा, स्वरभङ्ग, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं।

च्यवनप्राश ।—बेलकी छाल, गणियारी की छाल, श्यो-नाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, बरियारिकी छाल, सरिवन पिठवन, मुगानि, मापाणी, पीपल, गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, काकडाशिंगी, बिदारीकन्द, द्राक्षा, जीवन्ती, कूठ, अगरु, हरी तकी, गुरिच, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, शठी, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोत्पल, लालचन्दन, भूमिकुष्माण्ड, अडूसेकी छाल, काकोली और काकमाची, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; ५०० या सात सेर १२ छटाक आंवलेकी पोटली, यह सब एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १५ सेर पानी रहते उतारकर काढा छान लेना और आवला पोटलीसे निकाल बीज अलगकर ६ पल घी और ६ पल तेलमें अलग अलग भूनकर सिल पर पीस लेना। फिर मिश्री ५० पल, ऊपर कहा काढा और पिसा हुआ आंवला एकत्र पाक करना। गाढा होनेपर वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल, दालचीनी २ तोले, तेजपत्ता २ तोले, इलायची २ तोले, नागेश्वर २ तोले, इन सबका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेप उसमें सहत ६ पल मिलाकर घीके पात्रमें रखना। इसकी

मात्रा आधा तोलासे २ तोले तक। अनुपान बकरीका दूध। इससे स्वरभङ्ग, यक्ष्मा और शुक्रगत दोष आदि शान्त होता है तथा अग्निवृद्धि, इन्द्रिय सामर्थ, वायुकी अनुलोमता, आयुकी वृद्धि और बूढाभी जवानकी तरह बलवान होता है। यह दुर्ब्बल और चीण व्यक्तिके हकमे अति उत्कृष्ट औषध है।

द्राचारिष्ट—द्राचा ६। सवा छ सेर, पानी १२८ सेर, शेष ३२ सेर। इस काढेमें २५ सेर गुड मिलाना, तथा दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, प्रियङ्गु, मिरच, पीपल और कालानमक प्रत्येक एक एक पल इसमें मिलाकर चलाना तथा घीके बरतनमें रख मुह बन्धकर एक महीना रख छोडना। फिर छानकर काममें लाना। इससे उरःचत, चयरोग, कास, श्वास, और गलरोग निराकृत हो बलकी वृद्धि तथा मल साफ होता है।

बृहत् चन्द्रामृत रस—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले, कपूर आधा तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, लोहा २ तोले, विधारे की बीज, जीरा, विदारीकन्द, शतमूली, तालमखाना, बरियारेकी जड, लौंग, भांगकी बीज और सफेद राल प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य सहतमें खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और सहत।

चयकेशरी—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग, प्रत्येक एक एक तोला बकरीके दूधमें पीसकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत, इससे चयरोग दूर होता है।

मृगाङ्क रस—पारा १ तोला, स्वर्णभस्म ३ तोले, सोहागा २ मासे; यह सब कांजीमें पीसकर गोली बनाकर सुखा लेना फिर सुपेमें रख लवण यन्त्रमें पाक करना। मात्रा ४ रत्ती। १०

दाना गोलमिरच या १० पीपलका चूर्ण और सहतमें मिलाकर चाटना।

महामृगाङ्क रस।— स्वर्णभस्म एक भाग, पाराभस्म २ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक ४ भाग, प्रवाल ७ भाग, सोहागेका लावा ४ भाग; यह सब द्रव्य अम्लैती नीबूके रसमें ३ दिन खलकर गोला बनाना और वह गोला तेज धूपमें सुखाकर मूषामें रख ४ पहर लवण यन्त्रमें पाक करना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकाल लेना। इसके साथ हीरा (अभावमें वैक्रान्त) एक भाग मिलाना। मात्रा २ रत्ती, अनुपान गोलमिरच और और घी किम्वा पीपलके चूर्णके साथ मिरच और घी। इससे यक्ष्मा, ज्वर, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, स्वरभेद और कास आदि नानाप्रकारके रोग शान्त होते है।

राजमृगाङ्क रस।—पारा ३ तोले स्वर्ण १तोला ताम्बा १तोला, मैनसिल २ तोले, हरताल २ तोले और गन्धक २ तोले। यह सब द्रव्य एकत्र खलकर बड़ी कौड़ीमें भरकर उसका मुह बकरीके दूधमें सोहागा पीसकर उससे बन्द करना। फिर एक हांड़ीमें रख उसका मुह बन्दकर मिट्टीका लेपकर गलपुटमें फूंकना ठण्ढा होनेपर चूर्ण करना; मात्रा दो रत्ती। अनुपान घी सहत और १० पीपल या १९ गोलमिरचके साथ इससे सब प्रकारका क्षयरोग नाश होता है।

काञ्चनाभ्र—सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, प्रवाल, रौप्य, हरीतकी, कस्तूरी और मैनसिल, प्रत्येक समभाग, पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, प्रमेह, कास आदि पीड़ा शान्त होकर बलवीर्य्य बढ़ता है।

वृहत् काञ्चनाभ्र रस।—सोना, रससिन्दूर मोती, लोहा, अभ्रक, मूगा, वैक्रान्त, ताम्बा, रौप्य, वङ्ग, कस्तूरी, लौंग, जाविती और एलची यह सब द्रव्य एकत्र घीकुआरके रसमें केशु रियाके रसमें और बकरीके दूधमें ३ दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, श्वास, कास, प्रमेह और यक्ष्मा आदि रोग शान्त होता है।

रसेन्द्रगुडिका।—शोधित पारा २ तोले जयन्ती और अदरखके रसमें खलकर गोला बनाना, फिर जलकणी और काक माचीके रसको अलग अलग भावना दे तथा भगरैयाके रसकी भावना दिये हुए गन्धकका चूर्ण एक पल, उक्त पारेमें मिलाकर कज्जली बनाना, फिर छागदूध २ पलमें खलकर उरद बराबर गोली बनाना। अनुपान छागदूध किम्बा अडूसेके पत्तेका रस और सहत। इससे क्षयकास रक्तपित्त अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

वृहत् रसेन्द्रगुडिका।—४ तोले पारा, घिकुआरका रस, त्रिफलाचूर्ण, चीताका रस राइका चूर्ण, भूंल, हल्दीका चूर्ण दटका चूर्ण, अनन्तमूलके पत्तेका रस और अदरखके रसमें अलग अलग खलकर गाढे कपडेमें छान लेना। फिर जयन्ती जल कणी और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना देकर धूपमें सुखा लेना। तथा भगरैयाके रसमें शोधा हुआ गन्धक एक पल, गोलमिरच, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, तुतिया, हरिताल और अभ्रक प्रत्येक चार चार तोले, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान आदीका रस। औषध सेवनके बाद दूध और मांसका जूस पिलाना चाहिये।

इससे क्षयकास, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, क्रिमि और पाण्डु आदि रोग नष्ट हो बलवीर्य्य बढ़ता है।

हेमगर्भपोट्टली रस—रससिन्दूर ३ भाग, सोनेका भस्म १ भाग शोधित ताम्र एक भाग, गन्धक एक तोला, यह सब द्रव्य चीताके रसमें खलकर टीपइके बाद कौड़ीमें भरकर सोहागेसे मुह बन्दकर हांड़ीमें रख गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर चूर्ण २ रत्ती वजन सेवन करना। इससे राजयक्ष्मा आराम होता है।

रत्नगर्भ पोट्टली रस।—रससिन्दूर, हीरा, सोना चांदी, सीसा, लोहा, ताम्बा, मोती, स्वर्णमाक्षिक, मूंगा और शङ्ख-भस्म, समभाग आदीके रसमें ७ दिन खलकर कौड़ीमें भर उसका मुह अकवनके दूधमें पिसा हुआ सोहागेसे बन्दकर हांड़ीमें रख उसका मुह बन्दकर गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर निर्गुण्डीके रसमें सातबार, आदीके रसमें सातबार और चीताके रसको सात बार भावना देकर सुखा लेना। इसको मात्रा २ रत्ती अनुपान मधु और पीपलका चूर्ण अथवा घी और गोलमिरचका चूर्ण। इससे कृच्छ्रसाध्य यक्ष्मा, आठ प्रकारका महारोग और ज्वरादि नानाप्रकार पीड़ा शान्त होती है। (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणी इन आठ रोगोंको महारोग कहते हैं।)

सर्व्वाङ्गसुन्दर रस।—पारा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा दो भाग (सोहागे लवैका चूर्ण कपड़ेसे छाक लेना) मोती, मूंगा और शङ्ख प्रत्येक एक भाग और स्वर्णभस्म आधा भाग इन सब द्रव्यको कागजी नीबूके रसको भावना देकर गोला बनाना तथा मूषेमें बन्दकर गजपुटमें तेज आंचमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर लोहा आधा भाग और लोहेका आधाभाग हिंगुल उसमें मिलाना।

मात्रा २ रत्ती। अनुपान पीपलका चूर्ण, सहत घी, पानका रस, चीनी अथवा आदीका रस। इससे राजयक्ष्मा, वातिक और पैत्तिकज्वर, सन्निपात, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, भगन्दर और कास आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते है।

अजापञ्चक घृत—बकरीका घी ४ सेर, बकरीके बीटका रस ४ सेर, छागमूत्र ४ सेर, छाग दूध ४ सेर और छागदधि ४ सेर, एकत्र पाककर एक सेर जवाखारका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। मात्रा एक तोला। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बलागर्भ घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ८ सेर, बकरीके मांसका काढ़ा ४ सेर, दूध ४ सेर। कूटे हुए बरियारेका कल्क एक सेर यथानियम पाक करना। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और उत्कट कासरोग आराम होता है।

जीवन्त्याद्य घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ-जीवन्ती मुलेठी, द्राक्षा, इन्द्रयव, शठी, कण्टकारी, गोक्षुर, बरियारा, नीलोत्पल, भूंईआंमला, जवासा और पीपल सब मिलाकर २ सेर। यह घी पीनेसे ११ प्रकारका उग्रयक्ष्मारोग आराम होता है।

महाचन्दनादि तैल।—तिलका तेल १६ सेर, कल्कार्थ लालचन्दन सरिवन, पिठवन, कण्टकारी, इहती, गोक्षुर, मुगानी, माषाणी बिदारीकन्द, असगन्ध, आंवला, शिरीषछाल, पद्मकाष्ठ, खस, सरलकाष्ठ, नागेश्वर] गन्धाली, मूर्व्वामूल, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, बाला बरियारा, गुलशकरी, पद्ममूल पद्मडण्डा और शालूक मिलाकर ४० पल, श्वेत बरियारा ५० पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, बकरीका दूध, शतावरका रस, लाहका काढा, कांजी और दहीका पानी प्रत्येक १७ सेर। हरिण, छाग

और शयक प्रत्येकका मांस पाठ आठ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, (इन सबका काढ़ा अलग अलग रखना) कल्कार्थ श्वेत-चन्दन, अगरु, शीतलचीनी, नखी, छड़ीला, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, मृणाल हलदी, दारुहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल रक्तोत्पल, तगरचण्डी, कूठ, त्रिफला, फालसाफल, मूर्व्वामूल, नालुक, देवदारु, सरलकाठ, पद्मकाठ, खस, धाईफूल, बेलकी गिरी रसाञ्जन, मोथा, शिलारस, बच, मजीठ, लोध, सौंफ, जीवन्ती, प्रियङ्गु, शठी इलायची, कुङ्कुम, खटासी, पद्मकेशर, रास्ना, जावित्री, सोंठ और धनिया, प्रत्येक ४ तोले। पाकशेष होनेपर इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेतचन्दन जातीपुष्प, खटासी शीतलचीनी, अगरु, लताकस्तूरी, कुङ्कुम, कस्तूरी, यह सब गन्ध द्रव्य मिला पाक करना। पाकके अन्तमें छानकर केशर, कस्तूरी और कपूर थोड़ा मिला रखना, यह तैल मालिश करनेसे राज-यक्ष्मा, रक्तपित्त और धातुदौर्व्वल्यादि रोग आराम होते हैं।

कासरोग।

कटफलादि काढ़ा—कायफल, गन्धतृण, बारङ्गी, मोथा, धनिया बच हरीतकी, काकड़ाशिङ्गी, खेतपापड़ा, सोंठ और देवदारु, इन सबके काढ़ेमें मधु और हींग मिलाकर पीनेसे वातश्लैष्मिक कास और कण्ठरोग नष्ट होता है।

मरिचादि चूर्ण—गोलमिरच का चूर्ण २ तोले, पीपलका

चूर्ण १ तोला, अनारके बीजका चूर्ण ८ तोले, पुराना गुड़ १६ तोले और जवाखार १ तोला; यह सब द्रव्य एकत्र मर्दनकर यथायोग्य मात्रा देनेसे अति दुःसाध्य कास और जिस कासमें पीव आदि निकलता है वहभी आराम होता है।

समशर्कर चूर्ण।—लौंग २ तोले, जायफल २ तोले, पीपल २ तोले, गोलमिरच ४ तोले, सोंठ ४ पल इन सबका चूर्ण तथा सबके बराबर चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र खल करना। इससे कास ज्वर, अरुचि, प्रमेह गुल्म, अग्निमान्द्य और ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

वासावलेह।—अडूसेकी छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, चीनी १ सेर और घी एक पाव मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण एक पाव मिलाकर नीचे उतारना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृच्छूल ज्वर और रक्तपित्त आदि रोग नाशक है।

तालीशादि मोदक।—तालीश-पत्र १ तोला, गोलमिरच २ तोले, सोंठ ३ तोले, पीपल ४ तोले, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक आधा तोला, चीनी आधा सेर एकत्र चूर्णकर सेवन करनेसे कास श्वास और अरुचि आराम हो भूख बढ़ती है। इसमें चीनीके समान पानी मिलाकर यथानियम मोदक बनाना, यह चूर्ण की अपेक्षा हलका है। यह मोदक सेवन करनेसे कास, श्वास, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणी प्लीहा शोथ, अतिसार, जीमचलाना और शूल आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है। (कोई कोई इसके साथ वंशलोचन भी मिलाते है, पैत्तिक कासमें वंशलोचन मिलाना भी उचित है।)

चन्द्रामृत रस।—त्रिकटु, त्रिफला चाभ, धनिया, जीरा, सेंधानमक; प्रत्येक एक एक तोला, पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले, सोहागेका लावा ८ तोले, गोलमिरच ४ तोले; यह सब बकरीके दूधमें पीसकर ८ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान रक्तोत्पल, नीलोत्पल, कुरथी और अदरख किसी एकका रस अथवा पीपलका चूर्ण और सहत। इससे नानाविध कास, रक्तवमन, स्वास सहित ज्वर, दाह, भ्रम, गुल्म और जीर्णज्वर आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है। यह अग्निवर्द्धक, बलकारक और वर्णकारक है। औषध सेवनकर, अडूसा, गुरिच, भारङ्गी, सोया और कण्टकारी सब मिलाकर २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहते छानकर सहत मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

कासकुठार रस—हिंगुल, गोलमिरच, गन्धक, त्रिकटु और सोहागा; यह सब द्रव्य एकत्र पानीमें खलकर २ रत्तीकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सन्निपात और सब प्रकारका कासरोग नष्ट होता है।

शृङ्गाराभ्र।—अभ्रक १६ तोले, कपूर, जावित्री, वाला, गजपीपल तेजपत्ता, जटामांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागेश्वर, कूठ और धवईफूल; प्रत्येक आधा तोला, हरीतकी, आंमला, बहेड़ा और त्रिकटु, प्रत्येक चार आनेभर, इलायची और जायफल प्रत्येक एक तोला, गन्धक एक तोला, पारा आधा तोला; यह सब द्रव्य पानीमें खलकर भिंगे चने बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरख और पानका रस। औषध सेवनके बाद थोड़ा पानी पीना चाहिये। इससे कासादि विविध रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्यकी वृद्धि होती है।

बृहत् शृङ्गाराभ्र।—पारा, गन्धक, सोहागा, नागकेशर, कपूर, जायफल, लौंग, तेजपत्ता, धतूरेकी बीज (कोई २ स्वर्णभस्म भी मिलाते है) प्रत्येक दो दो तोले, अभ्रभस्म ८ तोले, तालीशपत्र, मोथा, कूठ, जटामांसी, दालचीनी, धाईफूल, इलायची, त्रिकटु, त्रिफला और गजपीपल, प्रत्येक चार चार तोले, एकत्र पीपलके काढ़ेमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह दालचीनीका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदर, शोथ, ज्वर, ग्रहणी, कास, श्वास और यक्ष्मा आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

सार्व्वभौम रस—शृङ्गाराभ्रमें स्वर्ण या लोहा २ मासे मिलानेसे उसको सार्व्वभौम रस कहते हैं।

कासलक्ष्मीविलास।—वङ्ग, लोहा, अभ्रक, ताम्बा, कांसा, पारा, हरिताल, मैनशिल और खपरिया प्रत्येक एक एक पल, एकत्र केशरियाका रस और कुलथीके काढ़ेको ३ दिन भावना देना। फिर इसके साथ इलायची, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, अजवाईन, जीरा, त्रिकटु, तगरपादुका, दालचीनी और वंशलोचन प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर फिर केशरियाका रस और कुलथीके काढ़ेमें खलकर चेने बराबर गोली बनाना; अनुपान ठण्डा पानी। यह राजयक्ष्मा, रक्तकास, श्वास, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, अर्श और प्रमेह आदि रोग नाशक तथा अग्निकारक और बलवर्द्धक है।

समशर्कर लौह।—लौंग, जायफल, कूठ, अजवाईन, त्रकट, चीतामूल, पीपलामूल, अडूसेके जड़की छाल, कण्टकारी, धानका लावा, काकड़ाशिङ्गी, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागि-

खर, हरीतकी, शठी, शीतलचीनी, मोथा, लोहा, अभ्रक और जवाखार प्रत्येकका एक एक भाग चूर्ण और समष्टीके बराबर चीनी एकत्र मिलाकर घृत भाण्डमें रखना। यह सब प्रकारका कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग-नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निवृद्धिकारक है। मात्रा ४ मासे।

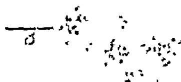
वसन्ततिलक रस।—स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रक २ तोले, लोहा ३ तोले, पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, वङ्ग २ तोले, मोती ४ तोले; यह सब द्रव्य अडूसा, गोचर और ईखकी रसमें खलकर वज्रमूषेमें रख जङ्गली कंडेकी आंचसे गजपुटमें एक पहर फूंकना। फिर बाहर निकालकर कस्तूरी ४ तोले, मिलाकर खल करना। यह कास और क्षयकी महौषध है। मात्रा २ रत्ती।

वृहत कण्टकारी घृत।—कण्टकारी जड़, पत्ता और शाखाकाढा १६ सेर, घी ४ सेर, कल्कद्रव्य बरियारा, त्रिकटु, विडङ्ग, शठी, चीता, सौवर्चल नमक, जवाखार, बेलकी छाल, आंमला, कूठ, श्वेतपुनर्नवा, हरतकी, बड़ीहर्रे, यवक्षारेन, अनार, ऋद्धि, द्राक्षा, रक्तपुनर्नवा, चाभ, अडूसा, अम्लवेतस, काकड़ासिङ्गी, भूईआंमला, बारङ्गी, रासा और गोखुर, यह सब द्रव्य मिलाकर एक सेर, अच्छी तरह कूटकर इसके साथ घी पाक करना। इस घीसे सब प्रकारका कास, कफरोग, हिक्का, श्वास आदि रोग नष्ट होते है।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढा १६ सेर। कल्कार्थ—कूठ, शठी, बेलकी जड़, तुलसी, शोंठ पीपल, मिरच और हींग प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि घृत पाककर सेवन करनेसे धातक्षयोत्थ, कास और सब प्रकारका श्वास दूर होताहै।

चन्दनाद्य तैल।—तिलोंका तैल ८ सेर। कल्कार्थ—श्वेतचन्दन, अगरु, तालीश पत्र, नखी, मजीठ, पद्मकाष्ठ, मोथा, शठी लाह, हल्दी और लालचन्दन, प्रत्येक एक पल। क्वाथार्थ वारुणी, बड़ सैकी छाल, कण्टकारी, बरियारा, गुरिच सब मिलाकर १२॥ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर; इसी काढ़ेके साथ कल्क औटाना, कल्क पाक करनेमें दूसरा पानी देनेकी कोई जरूरत नहो है। तैल औट जानेपर गन्धद्रव्य मिलाकर फिर औटाना। गन्धद्रव्यमें शिलारस, कुङ्कुम, मधु, नखी, श्वेतचन्दन, कपूर, इलायची और लौंग, यह सब द्रव्य तैल नीचे उतारकर मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे यक्ष्मा और कास रोग आराम हो बल वर्णका वृद्धि होती है।

वृहत् चन्दनाद्य तैल।—तिलोंका तैल ४ सेर, लाह २ सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर; दही १६ सेर। कल्कार्थ—लालचन्दन, वाला, नखी, कूठ, मुलेठी, सैलज, पद्मकाष्ठ, मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदारु, शठी, इ यची, खटाशी, नागेश्वर, तेजपत्ता, शिलारस, मुरामासी काकड़ाशिंगी, प्रियङ्गु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, लताकस्तूरी, लौंग, अगरु, कुङ्कुम, दालचीनी, रेणुक और मालुका, प्रत्येक दो दो तोले अच्छी तरह कूटकर १६ सेर पानीमें औटाना। गन्धद्रव्य मिलाकर पाकशेष करना। ठण्ढा होनेपर कस्तूर आदि गन्धद्रव्य देना चाहिये। इसे मालिश करनेसे रक्तपित्त, क्षय, श्वास और कास आराम होता है।



हिक्का और श्वास।

भार्गी गुड़।—बारंगीकी जड़ १२॥ सेर, दशमूल प्रत्येक सवा सेर, बड़ीहर्रे १०० इसको ढीली पोटली बांध ११६ सेर पानीमें औटाना २८ सेर पानी रहते नीचे उतार छान लेना। फिर इसी पानीमें उक्त हर्रे और १२॥ सेर गुड़ मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले और जवाखार ४ तोले मिलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर तीन पाव सहत इसमें मिलाना। मात्रा एक तोलासे ४ तोलेतक और हर्रे एक एक खाना। इससे प्रबल श्वास और पञ्चकासादि रोग दूर होते है।

भार्गी शर्करा।—बारंगीकी जड़ सवा छ ६। सेर, अड़ूसेकी छाल ६। सेर, कण्टकारी ६। सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। ४ चर्मगोदड़का मांस, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। दोनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें चीनी २ सेर मिलाकर औटाना। गाढ़ा होनेपर नीचे उतार उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तालीशपत्र नागेश्वर, बारंगीकी जड़, बच गोखुर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, जीरा, अजमार्द्दन, अजमोदा, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, कूठ और काकड़ाशिंगी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाना। रोग विचारकर उपयुक्त अनुपानके साथ आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा सेवन करना। इससे प्रबल श्वास, पञ्चप्रकार कास, हिक्का, यक्ष्मा और जीर्णज्वर आराम हो शरीर पुष्ट होताहै।

शृङ्गीगुड़ घृत।—कण्टकारी, गुरुची, अड़ूसेके जड़की छाल और गुरिच प्रत्येक छ छ छटाक, सतावर एक सेर चौदह

छटांक, वाराही सवा सेर, गोखुर, पिपलामूल प्रत्येक आठ तोले, पाटला छाल २४ तोले; यह सब द्रव्य कूटकर ३२ सेर पानीमें औटाना आठ सेर पानी रहते नीचे उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ सवा सेर, घी १० छटांक और दूध सवा सेर मिलाकर औटाना। गाढ़ा होनेपर कांकड़ासिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपत्ता ३ तोले, लौंग ४ तोले, वंशलोचन ४ तोले, सोंठ ७ तोले व पल ७ तोले, तालीशपत्र ३ तोले, जावित्री १ तोला, यह सब द्रव्यका चूर्ण डालकर नीचे उतार लेना, तथा ठण्ढा होनेपर आठ तोले सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे प्रबल श्वास, उपद्रवयुक्त पांच प्रकारके कास, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग आराम होते है।

पिप्पलाद्य लौह—पीपल, आमला, मुनक्का, बैरकी गुठलीकी गिर, मुलेठी, चीनी, विडङ्ग और कूठ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, लोहा ८ तोले पानीमें खलकर ५ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोष विचारकर अलग अलग अनुपानोंके साथ देनेसे, हिक्का, वमन और महाकास आराम होता है। यह हुचकी की महौषध है।

महाश्वासारिलौह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक १तोला, चीनी ४ तोले, सहत ४ तोले और त्रिफला, मुलेठी, मुनक्का, पीपल, बैरके गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, विडंग, इलायची, कूठ और नागेश्वर, प्रत्येकका मिहीन चूर्ण एक एक तोला; यह सब द्रव्य लोहेके खरलमें २ पहर खल करना। मात्रा चार रत्तीसे २ मासेतक। सहतके साथ सेवन करनेसे महाश्वास पांचप्रकार कास और रक्तपित्तादि रोग निश्चय आराममें होते है।

श्वासकुठार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, मिरच और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण अादोके रसमें

खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। श्रादीके रसमें देनेसे वातरक्तजनित श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासभैरवरस—पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु, मिरच, चाभ और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोल बनाना। अनुपान पानी। इससे श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासचिन्तामणि।—लोहभस्म ४ तोले गन्धक २ तोले अदरख २ तोले पारा १ तोला स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मोती आधा तोला, सोना आधा तोला, यह सब द्रव्यको कण्टकारीका रस, बकरीका दूध और मुलेठीके काढेको भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और बहेड़ेका चूर्ण। यह श्वास, कास और यक्ष्मारोगमें विशेष उपकारी है।

कनकासव।—धतूरेका फल, पत्ता, जड़ और शाखा कूटा हुआ ३२ तोले, अडूसेके जड़को छाल ३२ तोले, मुलेठी, पीपल, कण्टकारी, नागेश्वर, सोंठ और तालीशपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६ तोले। धवईका फूल १ सेर, मुनक्का २॥ सेर, पानी १२८ सेर, चीनी २॥ सेर सहत ६। सेर, यह सब द्रव्य एक पात्रमें रख मुह बन्दकर एकमास बाद द्रव्याग्र छान लेना, इससे सब प्रकारका श्वास, कास और रक्तपित्त, आदि नाना प्रकारके रोग दूर होते है।

हिंस्राद्य घृत।—घी ४ सेर दूध ८ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ चाभ, हरीतकी पीपल, कुटकी, गन्धतृण पलाश, चीतामूल शठी, सोंचर नमक, भूईआमला, सेंधानमक बेलकी गिरी तालीशपत्र जीवन्ती और वच प्रत्येक २ तोले, हींग आधा

तोला; यथानियम औटाकर पोनेसे हिक्का, श्वास, शोथ, वातज अर्श:, ग्रहणी और हृदय पार्श्वशूल दूर होता है।

स्वरभङ्ग।

मृगनाभ्यादि अवलेह—कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग और वंशलोचन; इन सबका चूर्ण घी और सहतमें मिलाकर चाटनेसे वाकस्तम्भ और स्वरभंग शान्त होता है।

चव्यादि चूर्ण—चाभ, अम्लवेतस त्रिकटु, इमली, तालीश पत्र, जीरा, वंशलोचन, चीतामूल, दालचीनी और इलायची, यह सब द्रव्य समभाग पुराने गुड़में मिलाकर खानेसे, स्वरभंग, पीनस और कफज अरुचि आराम होती हैं।

निदिग्धिकावलेह।—कण्टकारी १२॥ सेर, पीपलामूल ६ सेर, चीता ३ सेर २ छटांक यह सब द्रव्य एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहते उतार कर छान लेना, तथा उसमें पुराना गुड़ ८ सेर मिलाकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण ४ सेर, त्रिजातक (दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची) एक सेर, गोलमिरचका चूर्ण ८ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्डाहोनेपर आधा सेर सहत मिलाना। अग्निका बल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे स्वरभेद, प्रतिश्याय, कास और अग्नि-मान्द्य आदि रोग दूर होते हैं।

ताम्रभस्म।—अभ्रभस्म ८ तोलेको कण्टकारी, वरियारा, गोक्षुर, घृतकुमारी पीपलामूल, भंगरैया, अडूसा, बेरका पत्ता, आंमला, हल्दो और गुरिच प्रत्येकके आठ आठ तोले रसकी अलग अलग भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे सब प्रकारका स्वरभंग, श्वास, कास, हुचकी आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं।

सारस्वत घृत।—ब्रह्मीशाककी जड और पत्तेका रस १६ सेर, घो ४ सेर। हल्दी, मालतीका फूल, कूठ, तेवडीकी जड और बडीहर्रे प्रत्येकका कल्क आठ आठ तोले; पीपल, विडंग, सैंधव, चीनी और बच प्रत्येक दो दो तोले इसको आंचपर औटाना। इसके पीनेसे स्वरविकृति, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और प्रमेह आदि नानाप्रकारके रोग दूर ह तिशक्ति बढती इसको ब्राह्मी घृत भो कहते हैं।

भृंगराजाद्य घृत।—घो ४ सेर, भंगरैया,गुरिच, अडूसेकी जड, दशमूल और कासौंदी (कासमर्द) इन सब द्रव्योंका काढा १६ सेर, पोपलका कल्क ४ सेर, एकत्र यथानियम पाककर ठण्ढा होनेपर ४ सेर शहत मिलाना। उपयुक्त मात्रायह घी सेवन करनेसे स्वरभंग और कासरोग आराम होता है।

—o—

अरोचक।

यमानीषाडव।—अजवाइन, इमली, सोंठ, अम्लवेतस, अनार और खट्टी बेर प्रत्येक दो दो तोले; धनिया, सौवर्चल नमक,जीरा और दालचीनी प्रत्येक एक एक तोला, पोपल १००, गोलमिरच

२००, चीनी ३२ तोले, यह सब द्रव्य एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अरोचक रोग आराम होता है।

कलहंस।—सैजनकी बीज १८, गोलमिरच १०, पीपल २०, अदरख ८ तोले, गुड़ ८ तोले, कांजी ८ सेर और कालानमक ८ तोले एकत्र मिलाकर इसके साथ चातुर्जात चूर्ण ८ तोले मिलाना, इससे स्वरभंगमें भी विशेष उपकार होता है।

तिन्तीड़ो पानक।—बीजशून्य इमली ५ पल, चीनी १० पल, पीसी धनिया ४ तोले, अदरख ४ तोले दालचीनी १ तोला, तेजपत्ता १ तोला, इलायची १ तोला, नागेश्वर १ तोला और पानी ६ सेर १० छटांक एकत्र मिलाना तथा थोड़ा गरम दूध मिलाकर छान लेना, फिर कपूर आदि सुगन्धि द्रव्य मिलाकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना।

रसाला।—खट्टी दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी आठ तोले, सहत आठ तोला, गोलमिरचका चूर्ण ४ तोला, सोंठ ४ तोले और चातुर्जातक प्रत्येक एक एक तोला एकत्र मिलाना। इसे भी कर्पूरादिसे सुवासित करना चाहिये।

सुलोचनाभ्र—अभ्रभस्म १ तोला, हीरक भस्म १ तोला; चाभ, बेर, खसकी जड़, अनार, आंवला, चीरतिया, बड़ा-नीबू, प्रत्येक १० तोला, एकत्र खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना, उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे अरुचि, श्वास, कास, स्वरभेद, अग्निमान्द्य, अम्लपित्त, शूल, वमन, दाह अम्लरी, अर्श और दौर्बल्य आदि रोग दूर होते हैं।

वमन।

एलादि चूर्ण।—इलायची लौंग, नागेश्वर, बेरकी बीजकी गिरी, धानका लावा, प्रियगु, मोथा, लालचन्दन और पीपल, प्रत्येक का चूर्ण समभाग एकत्रकर चीनी और सहतमें मिलाकर चाटना।

रसेन्द्र।—जीरा, धनिया पीपल, सहत त्रिकटु और रससिन्दूर समभाग खलकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना।

वृषध्वज रस।—पारा, गंधक, लोहा, मुलेठी, चन्दन, आमला छोटी इलायची, लौंग सोहागा, पीपल और जटामासी समभाग खरिवन और इसुके रसको अलग अलग सात सात दिन भावना देकर फिर बकरीके दूधमें एक पहर खल करना। मात्रा २ रत्ती की गोली बनाना, अनुपान खरिवनके साथ देना।

पद्मकाद्य घृत।—पद्मकाठ, गुरिच, नीमकी छाल, धनिया और चन्दन इन सब द्रव्योंका काढा और कल्कमें यथाविधि ४ सेर घी पाककर उपयुक्त मात्रा देनेसे वमन अरुचि, तृष्णा और दाह आदि सब दूर होते है।

तृष्णारोग।

कुमुदेश्वर रस।—ताम्र २ भाग और वङ्ग १ भाग एकत्र मुलेठीके काढेकी भावना दे २ रत्ती मात्रा देना। अनुपान—

चन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटी इलायची और नागेश्वर प्रत्येक समभाग और सबकी बराबर धानका लावा, १६ गूने पानीमें औटा ना आधा पानी रहनेपर छानकर उसमें महत और चीनी मिलाना। इस काढ़ेके अनुपानमें देनेसे तृष्णा और वमन रोग आराम होता है।

मूर्च्छा भ्रम और सन्नास।

सुधानिधि रस—रससिन्दूर और पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा महतके साथ देना।

मूर्च्छान्तक रस—रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्णभस्म शिलाजीत और लौहभस्म सब द्रव्य समभाग, सतावर और बिदारीकन्दके रसकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। सतावरका रस और त्रिफला भिगोये पानी आदि वायुनाशक अनुपानमें देना।

अश्वगन्धारिष्ट।—असगन्ध ५० पल, तालमूली २० पल, मजीठ, बडीहर्र, हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, रास्ना, बिदारीकन्द, अर्जुनछाल, मोथा और तेवडी प्रत्येक १० पल; अनन्तमूल श्यामालता, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बच, चीतामूल प्रत्येक आठ

आठ पल, यह सब द्रव्य १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना, ६४ सेर पानी रहनेपर उतारकर छान लेना, फिर उसमें धवईकाफूल १६ सेर, सहत ३७॥ सेर, त्रिकटु प्रत्येक २ पल; दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक ४ पल, प्रियङ्गु ४ पल और नागेश्वर २ पल, यह सब द्रव्य मिलाकर पात्रका मुह बन्दकर एक मास रखना; फिर छानकर एक तोलासे ४ तोले तक मात्रा प्रयोग करना।

पुनर्नवाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध ४ सेर, पुनर्नवा का काढा १२ सेर और सुनेठो का कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना, उपयुक्त मात्रा सेवन करने मदात्यय रोग दूर होकर वीर्य्य और ओजकी वृद्धि होती है।

वृहत् धात्रीतैल।— तिलका तैल ४ सेर; आंवला, शतावर और विदारीकंद प्रत्येक का रस चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, वरियारा, असगन्ध, कुरथी, जौ और उरद प्रत्येकका काढा चार चार सेर; कल्कार्थ—जीवनीयगण, जटामासी, मजीठ, ईन्द्रवारुणी की जड, श्यामालता, अनन्तमूल, शैलज, धोवा, पुनर्नवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, इलायची, दालचीनी, पद्ममूल, केलेकाफूल, बच, अगरु, हरीतकी और आंवला इन सबका कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना।

श्रीखण्डासव।—श्वेतचन्दन, गोलमिरच, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, चीतामूल, मोथा, खसकी जड, तगरचण्डी द्राक्षा, लालचन्दन, नागेश्वर, अम्बष्ठा, आमला, पीपल, चाभ, लौंग, एलवा और लोध प्रत्येक चार चार तोले कूटकर १२८ सेर पानीमें भिंगाना, फिर मुनक्का ६० पल, गुड ३७॥ सेर और धवईफूल १२ पल मिला पात्रका मुह वंदकर एक मासके वाद द्रव्याश छान लेना। मात्रा एक तोलासे ४ तोलेतक अवस्थानुसार प्रयोग करना।

दाहरोग।

—o—

चन्दनादि काढ़ा—चन्दन, दवनपापड़ा, खसकी जड, बाला, मोथा, कमलकी जड, कमलका डण्डा, सौंफ, धनिया, पद्मकाठ और आंवला मिलाकर दो तोले, आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव पानी रहनेपर छानकर सहत मिला पीनेको देना।

त्रिफलाद्य—त्रिफला और अमिलतासके गूदाके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे दाह, रक्तपित्त और पित्तशूल आराम होता है।

पपटादि—दवनपापडा, मोथा और खसकी जड़; इन सबका काढ़ा ठण्डाकर पीनेसे दाह और पित्तज्वर आराम होता है।

दाहान्तक रस—पारा ५ तोले और गन्धक ५ तोले अम्बिती नीबूके रसमें खलकर पानके रसको भावना देना, फिर इस कज्जली को तांबेके पत्रमें लपेटना सूख जानेपर गजपुटमें फूंकना। भस्म हो जानेपर २ रत्ती मात्रा अदरखका रस और त्रिकटु चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाह, सन्ताप और पित्तज मूर्च्छा शान्त होती है।

सुधाकर रस—रससिन्दूर, अदरख, सोना और मोतीका भस्म प्रत्येक समभाग, त्रिफला भिंगोये पानी और सतावरके रसको सातबार भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे दाह, आमरक्त और प्रमेह रोग आराम होता है।

कांजिक तैल—तिलका तेल ४ सेर, १४ सेर कांजीके साथ औटाकर मालिश करनेसे दाहज्वर आराम होता है।

———

उन्माद ।

सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजवाईन, अजमोदा, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटू, पाठा और शंखपुष्पी ; प्रत्येक समभाग और सबकी बराबर वचका चूर्ण ब्रह्मीशाक के रसकी ३ बार भवना दे सुखाकर चूर्ण करना। उपयुक्त मात्रा घी और सहतके अनुपानमें देना।

उन्माद गजांकुश ।—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले एकत्र मिलाकर खल्व गजपुटमें फूंकना, फिर धतूरेकी बीज २ तोले, अभरख २ तोले, गंधक २ तोले और मीठाविष २ तोले उसमें मिलाकर ३ दिन पानीमें खल करना। एक रत्ती मात्रा वायुनाशक अनुपानमें देना।

उन्मादभञ्जन रस ।—त्रिकटु, त्रिफला, गजपीपल, विडङ्ग, देवदारु, चिरायता, कुटकी, कण्टकारी, मुलेठी, इन्द्रयव, चीतामूल, बरियारा, पिपलामूल, खसकी जड, सेजनकी जड, तेवडीमूल, इन्द्रवारुणी की जड, वंग, चांदी, अभरख और मूंगा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर लोह एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना।

भूतांकुश रस ।—पारा, लोहा, चांदी, ताम्बा और मोती प्रत्येक एक एक तोला; हीरा दो मासे, हरिताल, गंधक, मैनसिल, तुतिया, तिलांजन, समुद्रफेन, रसांजन और पांचोनमक प्रत्येक एक एक तोला, यह सब द्रव्य भङ्गरैया, इन्तीका रस, और मोजके दूधमें खलकर एक गोला बनाना, सूख जानेपर गजपुटमें फूकना।

२ रत्ती मात्रा अदरखके रसमें मिलाकर चटावे फिर उपरसे दश-मूलकी काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। तथा सर्व्वाङ्ग में सरसोंका तेल मालिश कर तितलौकी का बफारा लेना चाहिये

चतुर्भुज रस।—रससिन्दूर २ भाग, सोना एक भाग, मैनसिल १ भाग, कस्तूरी एक भाग और हरताल एक भाग; एकत्र घीकुआरके रसमें एक दिन खलकर गोला बना उपरसे रेंड़का पत्ता लपेटकर ३ दिन धानमें रखना। फिर चूर्णकर २ रत्ती मात्रा सहत और त्रिफलाके चूर्णमें प्रयोग करना।

पानीय कल्याणक और क्षीरकल्याण घृत।—घी ४ सेर; इन्द्रवारुणीकी जड़, त्रिफला, सम्भालुकी बीज, देवदारु, एलवा, मरिवन, नगरचण्डी, हलदी, दारुहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल, प्रियङ्गु नीलाकमल, इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारको बीज, नागेश्वर, तालीशपत्र, वृहती, मालतीफूल, विडंग, पिठवन, कूठ, लालचन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी १६ सेर यथाविधि पाक करना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यही घी दूने पानी और चौगुने दूधमें औटा लेनेसे उसे क्षीरकल्याण घृत कहते हैं।

चैतस घृत—घी ४ सेर गम्भारीके सिवाय बाकी ८ दशमूल, रास्ना, रेंड़की जड, बरियारा, मूर्व्वामूल और सतावर; प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेका चौगुना दूध और पानीय कल्याणक के कल्क समूहके साथ यथाविधि पाक करना।

शिवाघृत।—घी ४ सेर; गीदड़का मांस ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर और दशमूल ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर; बकराका दूध ४ सेर मुलेठी, मजीठ, कूठ, लालचन्दन,

पद्मकाठ, बरियारा, बड़ीहर्रं, आमला, हड़ती, तगरचण्डी, विड़ङ्ग, अनारको बोज, देवदारू, दन्तोमूल, मखालुके बोज, तालोशपत्र, नागेश्वर, श्यामालता, इन्द्रायणी, की जड़, सरिवन, प्रियंगु, मालतोफूल, काकोलो, पद्म, नोलपद्म, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलवा और पिठवन; प्रत्येक का दो दो तोले कल्क; यथाविधि औटाना। यह उन्माद आदि वायुरोग में उपकारी है।

महापैशाचिक घृत ।—घृत ४ सेर; जटामासी, हरीतकी, भूतकेशी, स्वतपद्म या ब्रह्मीशाक, कवांचको बीज, बच, त्रायमाना, जाविलो, काकोलो, कुटकी, छोटी इलायची, विदारीकंद, सौंफ, सोआ, गुग्गुलु, शतावर, आंवला, रास्ना, गन्धरास्ना, गन्धाली, विछौटी और सरिवन सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, घी यथाविधि औटाकर उन्माद और अपस्मार आदि रोगमें प्रयोग करना।

अपस्मार।

कल्यान चूर्ण—पञ्चकोल, मिरच, त्रिफला, कालानमक, सेंधा नमक, पोपल विड़ङ्ग, पूतिकरञ्ज, अजवाइन, धनिया और जोरा; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाना, मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

वातकुलान्तक—कस्तुरी, मैनसिल, नागकेशर, बहेड़ा, पारा, गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग प्रत्येक दो दो तोले एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। वायुनाशक अनुपानके साथ देना।

चण्डभैरव—पारा, तामा, लोहा, हरताल, गन्धक, मैनसिल और रसाञ्जन समभाग गोमूत्रमें खलकर, फिर दो भाग और गन्धक मिलाकर थोडी देर लोहेके पात्रमें औटाना। मात्रा दो रत्ती, अनुपान हींग, सौवर्चल नमक और कूठका चूर्ण मिलाकर २ तोले तथा गोमूत्र और घृत।

खल्पपञ्चगव्य घृत—गायका घी ४ सेर, गोबरका रस ४ सेर, गायकी खट्टी दही ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, पानी १६ सेर यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला।

बृहत् पञ्चगव्य घृत।—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुरैयाकी छाल, अपामार्गकी जड़, नीलवृत्त, कुटकी, अमिलतास एक पल, गुलरकी जड़, कूठ और जवासा प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; बारङ्गी पाठा, त्रिकटु, तेवडीकी जड दंजल बीज, गजपीपल, अरहर मूर्व्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता चीतामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रोहितक गन्धद्रण और मयनफल प्रत्येकका दो दो तोले कल्क। गोबरका रस ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर और गौकी दही ४ सेरके साथ गायका घी ७ सात सेर यथाविधि औटाना।

महाचैतसघृत।—शनकी बीज, तेवडीकी जड़, एरण्डमूल, शतावर, रास्ना, पीपल और सैजनकी जड़, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर। विदारीकन्द, मुलेठी, मेद, महामेद, काकोली, चीरकाकोली, चीनी, पिंडखजूर, मुनक्का, शतावर, ताडका गूदा, गोक्षुर और चैतस घृतके सब कल्कद्रव्य मिलाकर एक सेर, एकत्र यथाविधि पाक करना।

ब्राह्मीघृत—घी चार सेर, ब्राह्मीशाकका रस १६ सेर, कल्कार्थ,

वच, कूठ और चोरपुष्पी मिलाकर एक सेर; यथाविधि पाक करना।

पलङ्कषाद्य तैल—कल्कार्थ-गुग्गुलु, वच, बड़ीहर्रे, बिछौटीकी जड़, अकवनकी जड़, सरसों, जटामांसी, भूतकेशी, ईशलाङ्गला, चोरपुष्पी, लहसुन, अतीस, दन्ती, कूठ और गिद्ध आदि मांसभोजी पक्षीकी विष्ठा, सब मिलाकर एक सेर और छागमूत्र १६ सेरके साथ, ४ सेर तिलका तैल तथाविधि पाककर मालिश करना।

वातव्याधि।

रास्नादि काढ़ा—रास्ना, गुरिच, अमिलतास, देवदारु, रेंड़की जड़ और पुनर्नवा; इन सबके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना।

माषबलादि—उड़द, बरियारा, केवाचकी जड़, गन्धतृण, रास्ना, असगन्ध और रेंडकी जड़, इन सबके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिला नाकके रास्ते अथवा असमर्थ रोगोको मुखसे पिलाना।

कल्याणलेह—हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोदा, मुलेठी और सेन्धानमक, इन सबका समभाग चूर्ण घी मिलाकर चाटना। मात्रा आधा तोला।

स्वल्प रसोनपिण्ड—छिलका निकाला तथा पीसाहुआ लहसन १२ तोले, हींग, जीरा, सेंधानमक, सोंचर नमक और त्रिकटु, प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा, यह सब एकत्र खलकर आधा आधा तोला रेंड़के जड़के साथ देना।

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुल—बबूलकी छाल, असगन्ध ह्रीवेर, गुरिच, सतावर, गोक्षुर, बिधारेको बीज, रास्ना, सोंया, शठी, अजवाईन, और शोंठ प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला; गुग्गुल १२ तोले और घी ६ तोले। पहिले घीके साथ गुग्गुल मिलाकर पीछे और सब दवायोंका चूर्ण मिलाना; मात्रा आधा तोला, अनुपान गरम दूध या गरम पानी।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध, ४ सेर, दशमूलका काढ़ा १२ सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

छागलाद्य घृत—घी १६ सेर, छागमांस ५० पल, दशमूलका काढ़ा ५० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ४ सेर, शतादर का रस १६ सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

वृहत् छागलाद्य घृत।—घी १६ सेर, छागमांस,दशमूल, बरियारा और असगन्ध प्रत्येक द्रव्य १०० पल, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर अलग अलग पात्रमें रखना। फिर १६ सेर दूध और सतावरका रस १६ सेर प्रत्येक पात्रमें मिलाकर औटाना और एकत्र कल्क पाक करना। कल्कद्रव्य—जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का क कोली, क्षीरकाकोली, नीलाकमल, मोथा, लालचन्दन, रास्ना, मोगानी, मापाणी, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, त्रिफला, तगरपादी, तालीशपत्र, पद्मकाष्ठ, इलायची, तेजपत्ता, शतावर, नागेश्वर, जातीपुष्प, धनिया, मजीठ, अनार, देवदारु, सम्भालुकी बीज, एलवा, वायविड़ङ्ग और जीरा, प्रत्येक ४ तोले पाकशेष और ठंढा होनेपर छानकर

२ सेर चीनी मिलाना। यह घी ताम्रपात्रमें हलकी आंचपर औटाना चाहिये।

चतुर्मुख रस।—पारा, गन्धक, लोहा और अभ्रक प्रत्येक एक एक तोला, सोनेका भस्म दो मासे; एकत्र घीकुआरके रसमें खलकर गोला बना उपरसे रेंडका पत्ता लपेटकर धानके ढेरीके भीतर ३ दिन तक रख देना। तीन दिन बाद बाहर निकाल २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान सहत और त्रिफलेका पानी।

चिन्तामणि चतुर्मुख—रससिन्दूर २ तोले, लोहा एक तोला, अदरख एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें मर्द्दनकर गोला बना रेंड़का पत्ता लपेट उपर कहे मुताबिक धानमें रखना। मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और त्रिफलाका पानी।

वातगजाङ्कुश—पारा, लोहा, स्वर्णमाचिक, गन्धक, हरताल, बड़ीहर्र, काकड़ाशिङ्गी, मिठाविष, त्रिकटु, गनियारी और सोहागेका लावा, एकत्र गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक एक दिन खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और छोटी हरेका काढ़ा।

बृहत् वातगजाङ्कुश—पारा, अभ्रक, लोहा, ताम्बा, हरताल, गन्धक, सोना, सोंठ, बरियारा, धनिया, कायफल, बड़ीहर्र प्रत्येक दो दो भाग, मीठाविष, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, मिरच और सोहागेका लावा प्रत्येक समभाग गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके रसमें एक दिन खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस।

योगेन्द्र रस—रससिन्दूर १ तोला, सोना, लोहा, अभ्रक, मोती और बङ्ग प्रत्येक आधा आधा तोला, एकत्र घिकुआरके

रसकी भावना दे ऊपर कही रीतिसे धानमें ३ दिन रख २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान त्रिफलका पानी और चीनी।

रसराज रस।—रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रक २ तोला और सोना १ तोला; एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर इसकी साथ लोहा, चांदी, वङ्ग, असगन्ध लौंग, जावित्री और चोरकाकोली प्रत्येक आधा तोला मिलाना, फिर काकमाचोके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान दूध या चीनीका शर्बत।

चिन्तामणि रस।—रससिन्दूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोला, लोहा एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अवस्था विचारकर वायुनाशक अनुपानके साथ देना। इससे प्रमेह, प्रदर, सुतिका आदि रोगमें भी उपकार होता है।

वृहत् वातचिन्तामणि—सोना ३ भाग, चांदी २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोहा ५ भाग मूंगा ३ भाग, मोती ६ भाग और रससिन्दूर ७ भाग; एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान विचारकर देना।

स्वल्प विष्णुतेल—तिलका तेल ४ सेर, गाय या बकरीका दूध १६ सेर; सरिवन, पिठवन, बरियारा, सतावर, रेंडकी जड, बड़हलो, कण्टकारी, पोईको जड, गुलसकरी और भांटीमूल प्रत्येक से एक एक तोलाका कल्क, यथाविधि औटाकर वातज रोगमें प्रयोग करना।

वृहत विष्णुतैल।—तिलका तेल १६ सेर, सतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, पानी ३२ सेर। मोथा, असगन्ध, जीवक ऋषभक, शठी, काकोली, चीरकाकोली, मुलेठी, सौंफ, देवदारु,

पद्मकाष्ट, शैलज, जठामासी, इलायची, दालचीनी, कूठ, वच, लाल-चन्दन, केशर, मजीठ, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, रेणुका, सरिवन, पिठवन, मागोनी, मापोणी, कुन्दरखोटी, गैठेला और नखी प्रत्येकके एक एक पलका कल्क; यथाविधि औटाकर सब प्रकारके वायु-रोगोंमें प्रयोग करना।

नारायण तैल।—तिलका तेल १६ सेर, शतावरका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर वेल, गणियारी, श्योनाक, पाडला और नीम इन सबकी छाल और गम्भारी, असगन्ध, वृहती, कण्टकारी, वरियारा, गुलशकरी, गोखुर और पुनर्नवा प्रत्येक १० पल, २५६ सेर पानी, शेष ६४ सेर यह काढा, तथा सोवा, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वच, लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, पिठवन, मागोनी, मापोनी, रास्ना, असगन्ध, सैंधव और पुनर्नवाकी जड़ प्रत्येकके दो दो पलका कल्क, गायका दूध १४ सेर और शतावरका रस १६ सेर यथाविधि औटाना।

मध्यमनारायण तैल।—तिलकातेल ३२ सेर; वेल, असगंध, वृहती, गोखुर, श्योनाक वरियारा, नीम, कण्टकारी, पुनर्नवा, गुलशकरी, गणियारी, गंधाली और पाटला, इन सबकी जड २॥ अढ़ाई सेर एकत्र १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना तथा ३मन आठ सेर पानी रहते उतार लेना। बकरी या गायका दूध ३२ सेर सतावरका रस ३२ सेर; कल्कार्थ रास्ना, असगंध, सौंफ, देवदारु, कूठ, सरिवन, पिठवन, मागोनी, मापोनी, अगरु, नागेश्वर, सेंधानमक, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, शैलज, लालचन्दन कूठ, इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगरपादुका, मोथा, तेजपत्ता, भड़रेया, जीवक ऋषभक, काकोली, चीरकाकोली, ऋद्धि वृद्धि, मेद, महामेद, बाला, वच, पलाशमूल, गठेला, श्वेतपुनर्नवा और

चोरकांवकी प्रत्येक दो दो पल, यथानियम ओटाकर, सुगंधके लिये कपूर- केशर और कस्तूरी प्रत्येक एक एक पल मिलाना।

महानारायण तैल —तिलका तेल ४ सेर, शतावर, सरिवन, शठी, वरियारा, रेंडकी जड, कण्टकारी, कण्टकरैजा की जड, गुलशकरी और भाटोमून, प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, गाय या बकरीका दूध ८ सेर, शतावरका रस ६४ सेर ; तथा पुनर्नवा, वच, देवदारू, सोवा लालचन्दन, अगरू, शैलज, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, वरियारा, असगन्ध, सेंधव और रास्ना, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना।

सिद्धार्थक तैल—तिलका तेल ४ सेर, शतावरका रस ८ सेर, दूध १६ सेर, आदीका रस ४ सेर, सोवा, देवदारू, जटामांसी, शैलज, वरियारा, लालचन्दन, तगरपादुका कूठ इलायची, सरिवन, रास्ना, असगंध, वाराहक्रान्ता, श्यामालता, अनन्तमूल, पिठवन, वच, गंधतृण, सेंधानमक और सोंठ मिलाकर एक सेरका कल्क यथानियम औटाना।

हिमसागर तैल ।—तिलका तेल ४ सेर, सेर, शतावर, विदारीकन्द, सफेद कोंहडा, आंवला, सेमरकी जड, गोखुर और केलेकी जड, प्रत्येक का रस ४ सेर, नारियलका पानी ४ सेर, दूध १६ सेर ; लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, मजीठ, सरलकाठ, अगरू, जटमांसी, मूरामासी, शैलज, मुलेठी, देवदारू, नखी,बडी-हर्रे, खटासी, विडिंगाक, कुन्दुरखोटी, नालुका सतावर, लोध, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, लौंग, जावित्री, सौंफ, शठी, चन्दन, गेंठेला और कपूर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; यथाविधि पाक करना। यह वायुरोगोंका श्रेष्ठ औषध है।

वायुच्छायासुरेन्द्र तैल।—तिलका तेल ४ सेर, बरियारा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह दो काढा और मजीठ, लाल चन्दन, कूठ, इलायची, देवदारु, शैलज, सेंधानमक, बच, काकोली, पद्मकाष्ठ, कावाडाशिङ्गी, तगरपादुका, गुरिच, मोगानी, मापोनी, सतावर, अनन्तमूल, श्यामालता, सोवा और पुनर्नवा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथारीतिसे औटाना। यह तैल विविध वायुरोगनाशक तथा चोण शुक्र पुरुष और सोणार्तवा स्त्रियोंके लिये विशेष उपकारी है।

माषबलादि तैल।—तिलका तैल ४ सेर, उरद, बरियारा, रास्ना, दशमूल गन्धाली और सोवा; प्रत्येकका काढा चार चार सेर, दही ४ सेर दूध ४ सेर, लाहका रस ४ सेर, काञ्जी ४ सेर; शतावर और बिदारीकन्द प्रत्येक का रस दो दो सेर तथा सोवा, सौफ, मेथी, रास्ना, गजपीपल, मोथा असगन्ध, खसकी जड मुलेठी, सरिवन, पिठवन, और भूंईआवला, प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथारोति तेलमें मिलाकर औटाना।

सैन्धवाद्य तेल—तिलका तैल ४ सेर, काञ्जी ३२ सेर, तथा सेधानमक २ पल, सोंठ पाच पल, पिपलामूल २ पल, चितामूल २ पल और भेलावा २० का कल्क यथारोति औटाना, यह ग्टध्रसी आदि वातरोग नाशक है।

पुष्पराजप्रसारिणी तैल।—तिलका तैल ४ सेर, गन्धाली १०० पल पानी ६४ सेर शेष १६ सेर गाय या भैसका दूध १६ सेर, पद्म और शतावर प्रत्येक का रस ४ सेर तथा सोवा, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, गन्धाली की जड, जटामासी, मेलावेकी

जड़ प्रत्येक दो दो पल, यथाविधि औटाना। इससे लुला, पङ्गु, गृध्रसी और अर्दित आदि वायुरोग तथा वात कफके रोग समूह दूर होते है।

महामाष तैल।—तिलका तेल ४ सेर, उरद ४ सेर, दशमूल ६। सेर, बकरेका मांस ३० पल, एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते नीचे उतार लेना। उरद और बकरेके मांसको अलग पोटली बांधकर औटाना चाहिये। दूध १६ सेर तथा रेंडकी जड़, कंवाचकी जड़, सोआ, सेंधा, काला, सोवर्चल नमक, जीवनीयगण, मजीठ, चाम, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु पीपलामूल, रास्ना, मुलेठी, देवदारु, गुरिच, कूठ, असगंध, बच और शठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर लकवा, अर्दित, कम्प, गृध्रसी, अववाहुक आदि वायुरोगमें प्रयोग करना।

वातरक्त

अमृतादि काढ़ा—गुरिच, सोंठ और धनिया प्रत्येक दो दो तोले; १६ गुने पानीमें औटाना ४ गुना पानी रहते छान लेना, और ८ तोले पिलाना।

वासादि—अडूसा, गुरिच और अमिलतास का फल, इन सबके काढ़ेमें आधा तोला रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना।

नवकार्षि।—आंवला, हर्रा, बहेड़ा, नोमको छाल, मजीठ, वच, कुटकी गुरिच और दारुहल्दी, प्रत्येक "५ रत्तोका एक मासा" इसी हिसाबसे एक कर्ष अर्थात् तेरह आना २ रत्तीभर ले १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते न चे उतार ८ तोले मात्रा प्रयोग करना।

पटोलादि—परवलका पत्ता, कुटको, सतावर, त्रिफला और गुरिचके काढेसे वातरक्त और तज्जनित दाह दूर होता है।

निम्बादि चूर्ण।—नीमकी छाल, गुरिच, हड़ोहर आंवला और सोमराजो प्रत्येक एक एक पल, सोंठ, वायविडङ्ग, कचथड की जड़, पीपल, अजवाईन, वच, जीरा, कुटकी, खैरकी लकड़ी, सैन्धव, यवक्षार, हलदी, दारुहल्दी, मोथा देवदारू और कूट प्रत्येक दो दो तोले, इन सबका चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गुरिचके अनुपानके काढेके अनुपानमें देनेसे आमवातका शोथ, पिलही और गुल्म आदि रोग शान्त होते हैं।

कैशोर गुग्गुलु।—ढीली पोटलीमें बंधा हुआ महिषाक्ष गुग्गुलु २ सेर, त्रिफला २ सेर, गुरिच ४ सेर, एकत्र ९६ सेर पानी में औटाकर ४८ सेर पानी रहते उतार लेना। औटाती वक्त बीच बीचमें हिला देना उचित है। फिर छानकर पोटलीके गुग्गुलुमें घी मिलाकर उक्त काढेमें मिला लोहेके बरतनमें औटाना, गाढा होनेपर इसके साथ त्रिफलाके प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, त्रिकटुका चूर्ण १२ तोले, विड़ंग ४ तोले, तेवड़ीमूल २ तोले, दन्तीमूल दो तोले और गुरिच ८ तोले मिलाकर एक सेर घी मिलाना। चना भिंगोया पानी, गुरिचका काढा अथवा दूधके अनुपानमें एक तोला मात्रा प्रयोग करना चाहिये।

रसाभ्र गुग्गुलु।—गुरिच दो सेर पानी १६ सेर शेष ८ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, यह दो काढा एकत्र मिलाकर उसमें गुग्गुलु एक सेर, पारा, गन्धक और लौहभस्म प्रत्येक ४ तोले तथा अभ्रक भस्म ८ तोले मिलाकर औटाना गाढा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, गुरिच इन्द्रवारुणी की जड वायविडंग नागेश्वर और तेवडी को जड प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर घलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गुरिचका काढा। यह वातरक्त और कुष्ठ रोगका श्रेष्ठ औषध है।

वातरक्तान्तक रस।—पारा, गन्धक, लोहा, मोथा, मैनसिल, हरताल, शिलाजीत, वायविडङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, समुद्र-फेन, गदहपुन्ना, देवदारू चीतामूल दारुहलदी और श्वेत अपरा जिता, यह सब द्रव्यको त्रिफलाका काढा और भङ्गरैयाके रसकी तीन तीन बार भावना देकर उरद बराबर गोली बनाना। यह औषध घी और नीमका पत्ता, फूल और छालके काढेके अनुपानमें प्रयोग करना।

गुडूच्यादि लौह—गुरुचकी चीनी, त्रिफला, त्रिकटु, विमद प्रत्येक एक एक तोला, लाहा १० तोले, एकत्र पानीमें घलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गुरिचका काढा या धनिया और परवरके पत्तेका काढा।

महातालेश्वर रस।—हरिताल भस्म और गन्धक प्रत्येक समभाग एकत्र मिला दोनोंके बराबर ताम्रभस्म मिलाना, फिर एक मिट्टीके कटोरेमें रख दूसरा कटोरा ढाप मिट्टीसे लेपकर बालुका यन्त्रमें फकना। मात्रा दो रत्ती अनुपान विशेषके साथ ...से वातरक्त, कुष्ठ व्रण आदि पीडा शान्त होती हैं। हरताल

भस्म करनेकी विधि—हरताल ८ तोला, मीठाविष २ तोले, एकत्र अङ्कोटक (ढेरा) के रसमें खलकर एक गोली बनाना, फिर एक हांडी में १६ तोले पलाशका खार रखकर उपर वह गोला रखना तथा उसके उपरसे २४ तोले चिरचिडीका खार रखना, तथा हांडीके उपरएक ढकना ढांक मिट्टीसे लेपकर सुखा लेना और चुल्हेपर रख २४ घण्टे आंच लगाना। इससे हांडीके ढकनेके नीचे कपूर की तरह पदार्थ जम जायगा, उसीको हरिताल भस्म कहते हैं। २ रत्ती मात्रा हरिताल भस्म अनुपान विशेषसे साथ देनेसे वातरक्त कुष्ठ, विस्फोट, विचर्चिका ; शोथ, हलीमक, शूल, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग दूर होते हैं।

विश्वेश्वर रस।—पारा १० तोले, गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, मिठा विष ५ तोले, पलाश बीज ५ तोले और कटेली, कनेलकी जड, धतूरा, हड़जोड़की लता, नीलवृक्ष, जटामांसी, दालचीनी, कुचिला और भेलावा प्रत्येक १० तोलेका एकत्र चूर्ण करना। मात्रा २ या ३ रत्ती सेवन करनेसे वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरुचि और सब प्रकारके विषम रोग आराम होते है।

गुडूची घृत—घी ४ सेर, गुरिचका काढा १६ सेर, दूध ४ सेर और गुरिचका कल्क एक सेर यथाविधि औटाना।

अमृताद्य घृत—घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, पानी १२ सेर, गुरिच, सुलेठी, मुनक्का, त्रिफला, सोंठ, बरियारा, अडूसा, अमिलतास, श्वेत पुनर्नवा, देवदारु, गोक्षुर, कुटकी, सतावर, पीपल, गाम्भारी फल, रास्ना, तालमखाना, एरण्ड, बिधारा, मोथा और नीलोत्पल, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि पाक कर उपयुक्त मात्रासे अन्नादि भोज्यवस्तुके साथ सेवन करना।

वृहत् गुडूची तैल।—तिलका तेल ४ सेर, गुरिच १०० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा, दूध १६ सेर ; असगंध, विदारीकन्द, काकोली, चीरकाकोली, सफेद चन्दन, सतावर, गुलशकरी, गोखुर, वृहती, कण्टकारी, वायविडङ्ग, त्रिफला, रास्ना, वायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, गेंठेला, त्रिकटु, छाकुच-बीज, यलकुडी, इन्द्रवारुणी की जड, मजीठ, लालचन्दन, हलदी, सोवा और छातियानकी छाल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथा-विधि औटाना यह नस्य और मालिश करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोट, विसर्प तथा हाथ पैरका जलन आराम होता है।

महारुद्र गुड़ची तैल।—सरसोका तेल ४ सेर, गुरिच १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर ; गोमूत्र ४ सेर, गुरिच, सोमराजी की बीज, दन्तीमूल, कनेलकी जड, त्रिफला, अनारकी बीज, नीमकी छाल, हलदी, दारुहलदी, वृहती, कण्टकारी, गुल-शकरी, त्रिकटु, तेजपत्ता, जटामासी, पुनर्नवा, पीपलामूल, मजीठ, असगंध, सोवा, लालचन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, छातियानकी छाल और गोबरका रस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि अ टाना। इसे वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विसर्प आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

रुद्र तैल।—सरसोका तेल ४ सेर, गुरिच २ सेर, पानी, १६ सेर, शेष ४ सेर ; दूध ४ सेर, अडूसेका रस ४ सेर ; पुनर्नवा, हलदी, मोथा, बैगन, वृहती, दाल्चीनी, करेलो, कंरञ्ज, निर्गुण्डी, अडूसेकी जड, चिरचिरी, परवरका पत्ता, धतूरा, अनार-का छिलका, जयन्तीमूल, और त्रिफला प्रत्येक ४ तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना, फिर कृष्णागुरु, शठी, काकोली, न्दन, गेंठेला,

नखी, खटासी, नागेश्वर, और कूठ, इन सब द्रव्योंसे यथाविधि गंधपाक करना। यह तैल मालिश करनेसे अस्थिमज्जागत कुष्ठ, हाथ पैरका घाव, पामा, विचर्चिका, कण्डू, मसूरिका, दाद और गात्रवैवर्ण्य आदि विविध रक्त और त्वक्कोपजनित पीडा शान्त होती है।

महारुद्र तैल ।—सरसोंका तेल ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर, गुरिच ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढा; पुनर्नवा, हलद मछान, धार्ताकू, अनारकी छाल, वृहती, कण्टकारी, नाटामूल, अडूसेकी छाल, निर्गुण्डी, परवरका पत्ता, धतूरा, चिरचिरीकी जड, जयन्ती, दन्ती और त्रिफला प्रत्येक चार चार तोले, मिठाविष १६ तोले, त्रिकटु प्रत्येक तीन तीन पल, ४ सेर पानीसे यथाविधि औटाना। यह भी वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विविध चर्मरोग नाशक है।

महापिण्डतैल ।—सरसोंका तेल ४ सेर, गुरिच, मोम राजी और गंधाली प्रत्येक १२॥ सेर ; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। शिलारस, रास्न, निर्गुण्डी, त्रिफला, भांग, वृहतीमूल, काकोली, पुनर्नवा, चीतामूल, पीपलामूल, कूठ, हलदी, दारुहलदी, चन्दन, लालचन्दन, खटासी, करञ्ज, सफेद सरसों, सोमराजी बीज, चकुन्द बीज, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कौंचबीज, असगन्ध, सरलकाठ, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इस तेलके मालिश करनेसे वातरक्तादि विविध पीडा शान्त होती है।

ऊरुस्तम्भ।

—*—

भल्लातकादि काढ़ा—भेलावा, गुरिच, सोंठ, देवदारु, हरीतकी, पुनर्नवा और दशमूल; यथाविधि इन सबका काढ़ा बनाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है।

पिप्पल्यादि—पीपलामूल और भेलावेकी जड़के काढ़ेमें सहत मिलाकर पीना। ये तीन द्रव्योंका कल्क भी सहतके साथ चटाया जासकता है।

गुञ्जाभद्रक रस—पारा १॥ तोला, गन्धक ६ तोले, घुङ्घची ३ तोले, जयपालका बीज आधा तोला; यह सब द्रव्य जयन्ती पत्र, जम्बीरी नीबू, धतूरेका पत्ता और काकमाचीके रसकी एक एक दिन भावना दे घीमें खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान हींग, सेंधानमक और सहत।

अष्टकट्वर तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, दही ४ सेर, कट्वर अर्थात् दहीका मट्ठा ३२ सेर; पीपलामूल और सोंठ प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाना। यह तेल मालिश करनेसे ऊरुस्तम्भ और गृध्रसी रोग आराम होता है।

कुष्ठाद्य तैल—सरसोंका तेल ४ सेर; कूठ, नवनीतखोटी, बाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागेश्वर, अजमोदा और असगन्ध मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर सहतके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग विनष्ट होता है।

महासैन्धवाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, सैन्धव, कठ, सोंठ, वच, बारंगी, मुलेठी, सरिवन, जायफल, देवदारु, सोंठ,

शठी, धनिया, पीपल, कायफल, कूठ, अजवाईन, अतीस, एरण्ड-मूल, मीनहच और नीलाकमल, सब मिलाकर एक सेर; कांजी १६ सेर; यथाविधि औटाकर पाग नस्य मर्द्दन करनेसे वक्रस्तम्भ, आमवात और पक्षाघात आदि पीड़ा शान्त होती है।

आमवात।

—:o:—

रास्नापञ्चक—रास्ना, गुरिच, एरण्डमूल, देवदारु और सोंठ, यह पांच द्रव्योंको रास्नापञ्चक कहते हैं। यह सब प्रकारका आम-वात नाशक है।

रास्नासप्तक—रास्ना, गुरिच, अमिलतासका फल, देवदारु, गोक्षुर, एरण्डमूल और पुनर्नवा इन सबको रास्नासप्तक कहते हैं। इसके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे जङ्घा, ऊरु, त्रिक और पृष्ठ शूल आराम होता है।

रसोनादि कषाय—लहसन, सोंठ और निर्गुण्डीका काढ़ा आमवातकी श्रेष्ठऔषध है।

महारास्नादि क्वाथ।—रास्ना, एरण्डमूल अडूसा, जवासा, शठी, देवदारु, बरियारा, मोथा, सोंठ, अतीस, हर्रा, गोक्षुर, अमिलतास, सौंफ, धनिया, पुनर्नवा, असगन्ध, गुरिच, पीपल, विधारा, सतावर, वच, झिंटी, चाभ, वृहती और कण्ट-कारी; इन सब द्रव्योंमें रास्नाके सिवाय बाकी सब द्रव्य समभाग रास्ना दो भाग; आठ गुने पानीमें औटाना आठ भागका एक भाग पानी रहते उतार कर सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। अजमोदादि

वटक और अलम्बुषाद्य चूर्णके अनुपानमें भी यह दिया जाता है। आमवात आदि वातवेदना इससे शान्त होती है।

हिङ्ग्वाद्य चूर्ण—हींग एक भाग, चाभ दो भाग, काला नमक ३ भाग, पीपल ४ भाग, जीरा ६ भाग और कूठ ७ भाग एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा गरम पानी या उक्त काढ़ेके अनुपानसे देना।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डरी, गोखुर, गुरिच, विधारेकी बीज, पीपल, सोवडी, मोथा, वरुनमूल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा दहीका पानी, मट्ठा या कांजीके अनुपानमें देना, इससे पिलही, गुल्म, आनाह, अर्श और अग्निमान्द्य आदि पीडा आराम होती है।

वैश्वानर चूर्ण—सेंधानमक २ भाग, अजवाईन २ भाग, अजमोदा ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हर्रा १२ भाग, एकत्र चूर्णकर गरम पानी या उक्त अनुपानसे प्रयोग करना। यह भी अलम्बुषादिकी तरह विविध रोग नाशक है।

अजमोदादि वटक।—अजमोदा, गोलमिरच, पीपल, देवदारु, चीतामूल, सोया, सैन्धव और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल, सोंठ १० पल, विधारेकी बीज १० पल, हर्रा पांच पल और सबके बराबर गुड। पहिले गुडमें थोडा पानी मिलाकर औटाना चाशनी होनेपर सबका चूर्ण मिलाकर आधा तोला वजनकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी।

योगराजगुग्गुलु —चीतामूल, पीपलामूल, अजवाईन, काला जीरा, विडङ्ग, अजमोदा, जीरा, देवदारु, इलायची, चाभ, सैन्धव, कूठ, रास्ना, गोक्षुर, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दाल-

चीनी, खसकी जड़, जवाखार, तालीशपत्र और तेजपत्ता प्रत्येकका समभाग चूर्ण और सबके बराबर गुग्गुलु। पहिले गुग्गुलु घीमें अच्छी तरह मिलाना फिर सब चूर्ण मिला तथा थोडा घी मिलाकर मर्द्दन करना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध या उक्त काढ़ा।

वृहत् योगराज गुगगुलु।—त्रिकटु त्रिफला, अम्बठा, सोवा, हलदी, दारुहलदी, अजमोदा, वच, हींग, हीवेर, जगपीपल, छोटी इलायची, शठी धनिया, काला नमक, सोवर्चल नमक, सेंधानमक, पीपलामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, समुद्रफेन, लोहा, राल, गोक्षुर, रास्ना, अतीस, शोंठ, जवाखार, अम्लवेतस, चीतामूल, कूठ, चाभ, महादा, अनार, एरण्डमूल, असगन्ध, तेवड़ी, दन्तीमूल, बेरके बीजकी गिरी, देवदारु, हलदी, कुटकी, मूर्व्वामूल, वायमाणा, जवासा, विड़ङ्ग, वङ्गभस्म, अजवाइन, अडूसेकी छाल और अभरख भस्म प्रत्येकका चूर्ण समभाग; और सबके बराबर गुग्गुलु। घीमें मर्द्दन कर ऊपर कहे अनुसार तयार करना तथा पूर्व्वोक्त मात्रा और अनुपानसे प्रयोग करना।

सिंहनाद गुगगुलु।—हर्रा, आंवला और बहेड़ा प्रत्येक चार चार सेर तथा सरसोंके तेलमें मर्द्दित एक सेर गुग्गुलुकी पोटली ८६ सेर पानीमें औटाना २४ सेर रहते नीचे उतार तथा छानकर इसी काढ़ेमें पोटल का गुग्गुलु मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, त्रिछोटी की जड़, गुरिच, चीतामूल, तेवड़ी, दन्तीमूल, चाभ, सूरन, मानकन्द, पारा और गन्धक प्रत्येक चार चार तोले; जयपाल बीज १००० एक हजार अच्छी तरह चूर्णकर उसमें मिलाकर हिलाना। मात्रा चार आनेभर अनु-

पान गरम पानी या गरम दूध। इससे विरेचन हो आमवात आराम होता है।

रसोनपिण्ड।—लहसन १२॥ सेर, सफेद तिल आधा सेर; हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक, सोवा, कूठ, पीपलामूल, चीतामूल, अजमोदा, अजवाइन और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; चूर्ण एक पात्रमें रख उसमें २ सेर तिलका तैल २ सेर कांजी मिलाकर १६ दिनतक धानके राशिके भीतर रखना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी। इससे श्वास, कास, शूल आदि पीड़ा शान्त होती है।

महा रसोनपिण्ड।—लहसन १०० पल, सफेद तिल ५० पल, गायके दहीका मट्ठा १६ सेर; त्रिकटु, धनिया, चाभ, चीतामूल, गजपीपल, अजमोदा, दालचीनी, इलायची और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, चीनी ८ पल, घी ८ पल तिलका तेल ८ पल, कांजी २० पल, सफेद सरसों ४ पल, राई ४ पल, हींग दो पल, पांचोनमक प्रत्येक दो दो तोले, यह सब द्रव्य एकत्र धूपमें सुखाकर धान्यराशिमें १२ दिन रख देना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

आमवातारि वटिका—पारा, गन्धक, लोहा, ताम्बा, तुतिया, सोहागा और सैंधव प्रत्येक समभाग; सबका दूना गुग्गुल, चतुर्थांश तेवड़ीका चूर्ण और चीतामूलका चूर्ण; यह सब द्रव्य घीमें मिलाकर मर्द्दन करना। चार मासेभरकी गोली। अनुपान त्रिफला भिंगोया पानी। यह औषध पाचक और विरेचक है।

वातगजेन्द्रसिंह—अदरख, लोहा, पारा, गन्धक, ताम्बा, सीसा, सोहागा, मीठाविष, सैंधव, लौंग, हींग और जायफल प्रत्येक एक एक तोला, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, त्रिफला और

जीरा प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य चिकुआरके रसमें मर्द्दन कर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे आमवात और अन्यान्य वायुविकार आराम होता है।

वृहत् सैन्धवाद्य तेल—रेंडीका तेल ४ सेर, सोवाका काढ़ा ४ सेर, कांजी ८ सेर, दही ८ सेर; सैन्धव, गजपीपल, रास्ना, सोवा, अजवाइन, सफेद राल, मिरच, कूठ, सोंठ, सौवर्च्चल नमक, काला नमक, बच, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कूठ और पीपल, प्रत्येक ४ तोले; यथानियम औटाकर पान, अभ्यङ्ग और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करना।

प्रसारिणी तेल—रेंडीका तेल ४ सेर, १६ सेर गंधालीके रसमें प ाना; आधा तोला मात्रा दूधमें मिलाकर पीनेसे आमवात और सर्व्व प्रकारके श्लेष्मिक रोग शान्त होते है।

विजयभैरव तैल।—पारा, गन्धक, नीमकी छाल और हरिताल प्रत्येक दो तोले, कांजीसे पीसकर कपड़ेके एक टुकड़े में लेपकर सुखा लेना फिर उसकी बत्ती बनाकर बत्तीके अग्रभागमें तेल लगाकर जलाना, तथा जलती हुई बत्तीपर थोड़ा थोड़ा तेल देते रहना, इस रीतिसे नीचेके पात्रमें जो तेलका बूंद गिरेगा उसीका नाम विजय भैरव तेल है। उक्त द्रव्योंमें एक भाग अफीम मिलाकर तेल तयार करनेसे उसे महाविजयभैरव तैल कहते है। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका वातरोग आराम होता है।

शूलरोग।

सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जी चार, सौवर्चल नमक, सांभर, कालानमक, दन्तीमूल और जिमिकन्द प्रत्येक समभाग ; और सबका चौगूना दही, दूध और गोमूत्र प्रत्येक समभाग एकत्र सब मिलाकर इसको आंचमें औटाना। चूर्णकी तरह होजानेपर नीचे उतार लेना। मात्रा दो आने या चार आनेभर गरम पानीसे देना। इससे सब प्रकारका शूल आराम होता है।

शम्बुकादि गुड़िका—शम्बुक भस्म, सोंठ, पीपल, मिरच, सेंधव, काला, सौवर्चल, सामुद्र और औद्भिद लवण प्रत्येक समभाग, कलमीशाक के रसमें खलकर एक आनेभर की गोली बनाना। सबेरे या भोजनके वक्त यह गोली खानेसे परिणाम शूलमें आशु उपकार होता है।

नारिकेल चार—पानीभरा नारियलमें सेंधानमक भरना तथा ऊपरसे मिट्टीका लेपकर सुखा लेना, फिर कण्डेकी आंचमें उसे जला लेना, तथा नारियलके भीतरका नमक और गूदाके बराबर पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आनाभर मात्रा पानीके साथ लेनेसे परिणाम शूल आराम होता है।

तारामण्डूर गुड़—शोधित मण्डूर ८ पल, गोमूत्र १८ पल, गुड़ ८ पल, उपयुक्त पानीमें औटाना, पाक शेष होनेपर वायविडङ्ग चीतामूल, चाभ, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाकर धीमी आंच देना, पानी सूख जानेपर नीचे उतार

स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला भोजनसे पहिले बीचमें या पीछे सेवन करना।

शतावरी मण्डूर—मण्डूर चूर्ण ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ४ पल, एकत्र यथारीतिसे औटाना तथा पिण्डकी तरह होजानेपर उतार लेना। भोजनके पहिले मध्य और शेषमें प्रत्येक बार एक आनाभर मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल दूर होता है।

वृहत् शतावरी मण्डूर।—पहिले मण्डूर गरम कर त्रिफलाके काढेमें डालकर शोधन करना, फिर वही मण्डूर ७ पल, दूध ८ पल, आंवलेका रस ८ पल और घी ४पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, पीपल और बडी हर्रं; प्रत्येकका चूर्ण चार चार आनेभर मिलाना। शतावरी मण्डूरकी तरह सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल और अम्लपित्त आराम होता है।

धात्रीलौह—आंवलेका चूर्ण ८ पल, लौहभस्म ४ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल सबको आंवलेके रसकी सातवार भावना देना, सूख जानेपर चूर्णकर मात्रा चार आनेभर अनुपान घी और सहत भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें सेवन करना।

औटाया हुवा धात्रीलौह।—कुटा हुआ यव तण्डुल ४ पल, पानी १६ पल, शेष ४ सेर, सतावरका रस, आंवलेका रस या काढा, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, विदारीकन्द का रस, घी और इक्षुरस प्रत्येक ४ पल और शोधित मंडूर चूर्ण ६ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, दालचिनी, तेजपत्ता, इलायची, गजपीपल, मोथा, बडीहर्र, लोध, अभरख त्रिकटु रेणुका, त्रिफला, तालीशपत्र, नागेश्वर कुटकी, मुलेठी, र ,

असगन्ध और चन्दन प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिलाना तथा अच्छी तरह चलाकर नीचे, उतार लेना। मात्रा चार आनेभर भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें अन्न या दूधके साथ सेवन करना।

आमलकी खण्ड।—उबाला हुआ पका भतुवा ५० पल, २ सेर घीमें भूनकर फिर आंवलेका रस ४ सेर, भतुवेका पानी ४ सेर और चीनी ५० पल एकत्र मिलाकर छान लेना तथा इसी रसमें भूंजा हुआ भतुवा औटाना। पाकशेष होनेपर उसमें पीपल, जीरा और सोंठ प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल, मिरच का चूर्ण १ पल, तालीशपत्र, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर और मोथा प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिला ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध। इससे सब प्रकारकी शूल और अम्लपित्त रोग आराम होता है।

नारिकेल खण्ड।—पिसा हुआ पक्के नारियलका गूदा ८ पल आध पाव घीमें थोड़ा भूंज लेना। फिर कच्चे नारियलका पानी ४ सेर, चीनी आधा सेर एकत्र मिलाकर छान लेना। तथा इसी रसमें भूंजा हुआ नारियलका गूदा औटाना, पाकशेष होनेपर इसमें धनिया, पीपल, मोथा, वंशलोचन, जीरा और काला जीरा प्रत्येक आधा तोला, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक एक एक मासे मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध।

वृहत् नारिकेल खण्ड।—सिलापिष्ट पक्के नारियलका गूदा ८ पल, ५ पल घीमें भूनना, फिर कच्चे नारियलका पानी १६ सेर व नी एक सेर मिलाकर छान लेना। इसी रसमें भूना

हुआ नारियल और सोंठका चूर्ण ४ पल तथा दूध दो सेर मिल-कर धीमी आंचमें औटाना। पाकशेष होनेपर वंशलोचन, त्रिकटु, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, धनिया, पीपल, गजपीपल और जीरा प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। मात्रा आधा तोला, इससे शूल, अम्लपित्त, जीमतलाना और हृद्रोग आदि पीडा दूर हो बल, शुक्र आदि बढता है।

नारिकेलामृत।—पिष्ट और वस्त्र निष्पीडित सुपक्व नारियलका गूदा ४ सेर, ४ सेर घीमें भूनना, फिर कच्चे नारियल का पानी ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, चीनी १२॥ सेर और सोंठका चूर्ण २ सेरके साथ एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल; आंवला, जीरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा; प्रत्येक का चूर्ण ६ तोले इसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। यह परिणाम शूलका श्रेष्ठ औषध है।

हरीतकी खण्ड—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इला-यची, नागेश्वर, अजवाईन, त्रिकटु, धनिया, सौंफ, सोवा और लोग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, -बेवड़ो और सनायका चूर्ण दो दो पल, बड़ीहर्रका चूर्ण ८ पल, चीनी ३२ पल; यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध।

शूलगजकेशरी।—पारा दो तोले और गन्धक ४ तोलेकी कज्जली बना, अम्बेती नीबूके रसमें खल करना, फिर एक, छ तोले वजनके ताम्रपुटके मध्यभागमें वह कज्जलीका लेप करना, तथा एक हांडीमें पहिले थोड़ा सेंधानमक देकर उपर यह ताम्र-पुट रख उसके उपर भी थोड़ा सेंधानमक डालकर हांडीका मुंह

मिट्टीसे बन्द करना। गजपुटसे हांड़ी फूंककर दूसरे दिन ताम्र पुटका चूर्ण करना। इसको ४ रत्ती माता सेवन करनेसे कष्टसाध्य शूलभी आराम होता है। यह औषध सेवन कर हींग, सोंठ, जीरा, वच और गोलमिरचका चूर्ण आधा तोला गरम पानीसे लेना उचित है।

शूलवज्रिणी वटिका—पारा, गंधक और लोहा प्रत्येक चार चार तोले; सोहागा, हींग, सोंठ, त्रिकटु, त्रिफला, शठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला। यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें खलकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या ठण्डा पानी।

शूलगजेन्द्र तैल—तिलका तेल आठ सेर; एरण्डमूल, दशमूलका प्रत्येक द्रव्य पांच पांच पल, पानी ५५ सेर, शेष १३॥ सेर, जौ ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; दूध १६ सेर और सोंठ, जीरा, अजवाइन, धनिया, पीपल, वच, सेंधव और बेरका पत्ता प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करना।

उदावर्त्त और आनाह।

नाराच चूर्ण—चीनी ८ तोले, तेउड़ी चूर्ण २ तोले और पीपल चूर्ण ४ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला माता भोजनके पहिले सहतमें मिलाकर चाटना।

गुल्मरोग।

हिङ्गादि चूर्ण—हींग एक भाग, बच दो भाग, कालानमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग और कूठ १५ भाग एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गरम पानीसे सेवन करना।

बचादि चूर्ण—बच, हर्रा, हींग, सेंधानमक, अम्लवेतस, जवाखार और अजवाइन; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे सेवन करनेसे गुल्मरोग आराम होता है।

वज्रक्षार।—सामुद्रलवण, सेंधव लवण, कटैला नमक, जवाखार, सौवर्चल नमक, सोहागेका लावा और सज्जीखार प्रत्येक समभाग; सीजका दूध और मदारके दूधकी तीन तीन दिन भावना देकर सुखा लेना। फिर मदारका पत्ता लपेटकर एक हांडीमें रखना तथा हांडीका मुंह बन्दकर चुल्हेपर रख सब द्रव्य अन्तर्धूमसे जलाना। यह क्षार ५ पल और त्रिकटु, त्रिफला अजवाइन, जीरा और चीतामूल प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रामें वाताधिक्य गुल्ममें गरम पानी, पित्ताधिक्यमें घी, कफाधिक्यमें गोमूत्र, त्रिदोषमें कांजी और उदावर्त्त, प्लीहा, अग्निमान्द्य और शोथादि रोगमें ठण्ढ पानीके अनुपानसे प्रयोग करना।

दन्ती हरीतकी ।—ढीली पोटलीमें बंधा हुआ २५ हर्रा, दन्तीमूल २५ पल, चीतामूल २५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढेमें २५ पल गुड मिलाकर उक्त हर्रा डालकर औटाना। पाकशेष होनेपर, तेवडी का चूर्ण ४ पल, तिलका तेल ४ पल, पीपलका चूर्ण ४ तोले और सोंठका चूर्ण ४ तोले मिलाकर उतार लेना ठण्ढा होनेपर सहत ४ पल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाना। मात्रा एक हर्रा और आधातोला गुड। इससे विरेचन हो गुल्म, प्लीहा, शोथ, अर्श, हृद्रोग आदि पीडा दूर होती है।

काङ्कायन गुड़िका ।—शठी, दन्तीमूल, चीतामूल, अडहर, सोंठ, बच और तेवडीकी जड, प्रत्येक एक एक पल, हींग ३ पल, जवाखार २ पल अम्लवेतस २ पल; अजवाईन, जीरा, मिरच और धनिया प्रत्येक दो दो तोले तथा काला जीरा और अजमोदा प्रत्येक आधा तोला एकत्र नीबूके रसमें खलकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी। कफज गुल्ममें गोमूत्रके साथ, पितज गुल्ममें दूधके साथ, वातज गुल्ममें काजीके साथ, और रक्तज गुल्ममें गरम दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

पञ्चानन रस—पारा, तुतिया, गन्धक जयपाल बीज, पीपल और अमिलतासका गूदा समभाग सीजके दूधकी भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। आवलेका रस या इमलीके पत्तेके रसके अनुपानमें देनेसे रक्तगुल्म आराम होता है।

गुल्म कालानल रस ।—पारा, गन्धक, हरिताल, ताम्बा, सोहागा और जवाखार प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले, सोया, पीपल, सोंठ, मिरच, गजपीपल, बडोहर, बच, और कूठ,

मल्ले क का चूर्ण एक एक तोला यह सब द्रव्य ; दवनपापड़ा, सोया, सोंठ चिरचिरा और अम्बष्ठाकी काढ़ेको भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। मात्रा ४ रत्ती बड़ोहरे भिगोये पानीमें देनेसे सब प्रकार का गुल्म आराम होता है, यह वातगुल्मका उत्कृष्ट औषध है।

गुल्मकालानल रस।—अवरख, लोहा, पारा, गन्धक, मालागा, कुटकी, वच, जवाखार, सज्जीखार सैंधव, कूठ, त्रिकटु, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, दालचीनी, और खैर ; प्रत्येकका सम भाग चूर्ण ; जयन्ती, चीता और धतूरेके पत्तेके रस की भावना दे ; ४ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा सबेरे एक गोली पानी या दूधमें देनेसे पांच प्रकारका गुल्म, यकृत्, प्लीहा, उदर, आमवात, पाण्डु, शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, अरुचि, प्रमेह, तथा जीर्ण और विषम ज्वर आदि आराम होतेहैं।

त्र्यूषणाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध १६ सेर ; त्रिकटु त्रिफला, धनिया, विडङ्ग, चव्य और चीतामूलका कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें देनेसे वातगुल्म आराम होता है।

नाराच घृत—घी एक सेर ; चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, निवडोमूल, कण्टकारी, थोहरका दूध और विडङ्ग प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क और पानी ४ सेर यथाविधि औटाना। गरम पानी या जाङ्गल मांस रसमें सेवन करनेसे वातगुल्म और उदावर्त्त रोग आराम होता है।

त्रायमाणाद्य घृत।—घी एक सेर, त्रायमाणा ४ पल, पानी ४० पल शेष ८ पल ; आंवलेका रस एक सेर, दूध एक सेर और कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भुई आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, लालचन्दन और नीलाकमल प्रत्येक दो दो

तोलेका कल्क यथारीति औटाना। इस घीके सेवन करनेसे पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग और कामला आदि पीड़ा दूर होती हैं।

हृद्रोग।

ककुभादि चूर्ण—अर्जुन छाल, बच, रास्ना, बरियारा, गुल शकरी, हर्रा, शठी, कूठ, पीपल और शोंठ, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गायके घीके साथ सेवन करना।

कल्याणसुन्दर रस—रससिन्दुर, अबरख, चांदी, ताम्बा, सोना और हिङ्गुल, प्रत्येक समभाग; एक दिन चीताके रसऊ और ७ दिन हाथीशुंडाके रसकी भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम दूधमें देनेसे हृदगत रोग आराम होता है।

चिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, अबरख, लोहा, वङ्ग और शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, सोना चार आने और चांदी आठ आनेभर एकत्र चीताका रस, भङ्गरैयाका रस और अर्जुन छालके काढ़ेकी सात सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। गेहुंके काढ़ेमें यह देनेसे यावतीय हृद्रोग और प्रमेह रोग आराम होता है।

हृदयार्णव रस—पारा, गन्धक और ताम्रभस्म प्रत्येक सम-भाग; एकत्र त्रिफलाका काढ़ा और काकमाचीके रसकी एक

एक दिन भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना अर्जुनछाल का रस या काढ़ेमें यह सेवन करनेसे हृद्रोग शान्त होता है।

विश्वेश्वर रस—सोना, अबरख, लोहा, वङ्ग, पारा, गंधक और वैक्रान्त प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र कपूरके पानीकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे हृदय और फुसफुसकी विविध पीड़ा शान्त होती है।

श्वदंष्ट्राद्य घृत।—घी ४ सेर; गोखुर, खसकी जड़, मजीठ, बरियारा, गम्भारी की छाल, गंधतृण, कुशमूल, पिठवन, ऋषभक और सरिवन, प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, दुध १६ सेर कंवाच बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, सतावर, ऋद्धि, मुनक्का, चीनी, मुण्डरी और मृणाल सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मात्रा आधा तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे यावतीय हृद्रोग उरःक्षत, क्षय, शोथ, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि पीडा शान्त होती है।

अर्जुन घृत—घी ४ सेर; अर्जुन छाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; यह काढ़ा और अर्जुन छालका कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर सब प्रकारके हृद्रोगमें प्रयोग करना।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

एलादि काढ़ा—इलायची, पीपल, मुलेठी, पत्थरचूर, रेणुका गोखुर, अडूसा और एरण्डमूलके काढ़ेमें शिलाजीत और चीनी

मिलाकर पोनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्रवात और अश्मरी रोग आराम होता है।

वृहत् धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, विदारोकन्द, मुलेठी, गोक्षुर, कुशमूल, कालो इक्षुमूल और हर्रीके काढ़ेमें आधा तोला चीनो मिलाकर पिलाना।

धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, विदारोकन्द, मुलेठी और गोक्षुरके काढ़ेमें आधा तोला चीनी मिलाकर मूत्रकृच्छ्र आदि रोगमें सेवन कराना।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—पारा, गन्धक और जवक्षार एकत्र मिलाकर चीनो और मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता हैं।

तारकेश्वर—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग, अवरख, जवासा, जवाखार, गोक्षुर बीज और हर्रा समभाग, भतुवेका पानी, तृण-पञ्चमूलका काढ़ा और गोक्षुर रसकी एक एक दफे भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान सहत और गुल्लरके बीज का चूर्ण एक आनाभर।

वरुणाद्य लौह।—वरुणछाल १६ तोले, आंवला १६ तोले, धवईका फूल ८ तोले, हर्रा ४ तोले, पिठवन २ तोले, लोहा २ तोले और अवरख २ तोले एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना। यह मूत्रदोष निवारक, बलकारक और पुष्टिकर है।

कुशावलेह।—कुश, काश, खस, कालो जख और सर-कण्ड प्रत्येककी जड़ १० पल, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर; इस काढ़ेमें २ सेर चीनो मिलाकर औटाना। गाढ़ा होजानेपर नीचे उतारकर मुलेठी, ककड़ीको बीज, कोहड़ेको बीज, खीरेकी बीज,

वंशलोचन, आंवला, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, यरूपकाल, गुरिच और प्रियङ्गु; प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाकर हिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान पानीके साथ देनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात अश्मरी और प्रमेह आदि पीड़ा दूर होती है।

सुकुमार कुमारक घृत।—पुनर्नवा १०० पल और दशमूल, शतावर, वरियारा, असगन्ध, तृणपञ्चमूल, गोखुर, सरिवन, गुलशकरी, गुरिच और सफेद वरियारा, प्रत्येक १० पल, एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहने उतार कर छान लेना, फिर इस काढ़ेमें ३२ सेर गुड़ और रेंडीका तेल ४ सेर मिलाना तथा मुलेठी, अदरख, मुनक्का, सेंधानमक और पीपल प्रत्येक १६ तोलेका कल्क और अजवाईन आधा सेरके साथ ८ सेर घी यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले आधा तोला मात्रा सेवन करना। इससे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, कटिस्तम्भ, मल-काठिन्य; लिङ्ग, पक्षा और योनिशूल, गुल्म, वायु और रक्तदुष्टि जन्य पीड़ा आदि दूर हो बलवृद्धि और शरीर पुष्ट होता है।

त्रिकण्टकाद्य घृत।—घी ४ सेर, गोखुर दो सेर, एरण्डमूल दो सेर, तृणपञ्चमूल २ सेर, प्रत्येकको अलग अलग औटाना। फिर सतावरका रस ४ सेर, भतुवेका रस ४ सेर और इक्षुरस ४ सेरके साथ औटाना। पाक शेष होनेपर गरम रहते ही छानकर उसमें दो सेर गुड़ मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध, इससे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

चित्रकाद्य घृत।—घी १६ सेर, दूध ६४ सेर; चीता-मूल, अनन्तमूल, वरियारा, तगरपादुका, मुनक्का, इन्द्रवारुणी,

पीपल, चिवफला, (गुलशकरी) मुलेठी और आंवला प्रत्येक दो दो तोलेका क यथाविधि औटाना। तथा ठण्ढा होनेपर छान लेना। फिर इसके साथ चीनी दो सेर और वंशलोचन दो सेर मिलाना। यह घी अ धा तोला मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रदोष, शुक्रदोष, योनिदोष और रक्तदोष दूर हो शुक्र और आयुकी वृद्धि होती है।

धान्यगोचुरक घृत—घी ४ सेर, धनिया और गोक्षुर चार चार सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; यह काढ़ा और गोक्षुर धनिया प्रत्येक आधा सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्राघातादि पीड़ामें प्रयोग करना।

विदारी घृत।—घी ४ सेर, विदारीकन्द, अड़सा, कूटेकी जड़, शर्वती नीबू, गन्धतृण, पाथरचूर, लताकस्तूरी, अकवन, गजपीपल, चीतामूल, पुनर्नवा, बच, रास्ना बरियारा, गुलशकरी, कसेरू, सृपाल, सिङ्घाडा, भूईआंवला, सरिवन और शर, इचु, दर्भ, कुश और कासकी जड़ प्रत्येक दो दो पल; पानी ६४ सेरमें औटाना शेष १६ सेर। तथा सतावरका रस ४ सेर, आंवले का रस ४ सेर, दूध ८ सेर; चीनी ६ पल, मुलठी, पीपल, मुनक्का, गम्भारी, फालसा, इलायची, जवासा, रेणुका, केशर, नागेश्वर और जीवनीयगण प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना। यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, शुक्र दोष, योनिदोष रजोदोष और चय आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

शिलाह्लिदादि तैल—तिलका तेल ४ सेर पुनर्नवा और सतावरका रस १६ सेर, पाथरचूर, एरण्डमूल और सरिवन मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना, आधा तोला

मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

उशीराद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर ; फल, पत्ता और मूल सह गोक्षुर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, खसकी जड़ १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मट्ठा ४ सेर ; तथा खसकी जड़, नगरपादुका, कूठ, मुलेठी, लालचन्दन, बहेड़ा, हर्रा, कण्टकारी, पद्मकाष्ठ, नीलाकमल, अनन्तमूल, वरियारा, असगंध, दशमूल, सतावर, विदारीकन्द, काकोली, गुरिच, गुलशकरी, गोक्षुर, सोवा, सफेद वरियारा और सौंफ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें मर्द्दन करना।

अश्मरी।

शुण्ठ्यादि काढ़ा—सोंठ, गनियारी, पाथरचूर, सैजनछाल, वरुणछाल, गोक्षुर, हर्रा और अमिलतासका फल, इन सबके काढ़ेमें हींग, जवाखार और सैंधानमक मिलाकर पीनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा आराम होती है।

वृहत् वरुणादि—वरुणछाल, सोंठ, गोक्षुर बीज, तालमूली, कुरथी और पाषाणभेद, इन सबके काढ़ेमें चार आनेभर चीनी और चार आनेभर जवाखार मिलाकर पीनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, और वस्तिशूल आराम होती है।

पाषाणवज्र रस।—पारा एकभाग और गन्धक दो भाग श्वेतपुनर्नवाके रसमें एक दिन खलकर एक हांडीमें रखना, तथा दूसरी हांडी ऊपरसे औंधीरख मिट्टीसे लेप करना, फिर एक गढेमें हांडीको रख ऊपर कण्डेकी आंच लगाना। पाक शेष होनेपर गुडके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान इन्द्रवारुणीके जडका काढा अथवा कुरथीका काढ़ा, अश्मरी और बस्तिशूल रोगमें प्रयोग करना।

पाषाणभिन्न।—पारा एक पल, गन्धक २ पल और शिलाजीत एक पल, एकत्र श्वेतपुनर्नवा, अडूसा और श्वेत अपराजिताके रसमें एक एक दिन खलकर सूख जानेपर एक भाण्डमें रख मुंह बन्द करना। दूसरी हांड़ीमें पानी देकर बीचमें वह भाण्ड लटकाकर आगपर रखना। फिर निकालकर मूंइआवलेका फल, इन्द्रवारुणीकी जड और दूधके साथ एक एकबार खलकर २ रत्ती बराबर गोली दूध अथवा कुरथीके काढेमें देना।

त्रिविक्रम रस—शोधित ताम्बा और बकरीका दूध समभाग लेकर एकत्र औटाना, दूध निःशेष होजानेपर ताम्बेके बराबर पारा और गन्धक की कज्जली मिलाना, फिर निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना तथा इस गोलेको एक पहर वालुका यन्त्रमें पाक करना। २ रत्ती मात्रा मर्व्वतो नीबूकी जडका रस या पानीके अनुपानमें सेवन करनेसे अश्मरी और शर्करा रोग दूर होता है।

कुलत्थाद्य घृत।—घी ४ सेर, बरुणछाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा और कुरथी, सेंधानमक, विडङ्ग, चीनी, तगरपादुका, जवाखार, कोहड़ेको बीज और गोखुर बीज,

प्रत्येक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाना, मात्रा एक तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मत्राघात दूर होता है।

वरूणघृत।—घी ४ सेर, वरूणछाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, वरूणकी जड़की छाल, केलेकी जड़, बेलकी छाल, पञ्चतृणमूल, गुरिच, शिलाजीत, पांकड़ोकी बीज, बांसकी जड़, तिलके लकड़ीका खार, पलाशका खार और जूहीकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा दूर होतीहै

वरूणाद्य तैल—वरूणकी छाल, पत्ता, फुल और फल इसमेंसे जो मिले वह और गोक्षुर ये दो द्रव्यके काढ़े यथाविधि तैलपाक कर बस्ति और पतस्थानमें मालिश करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है।

प्रमेह।

एलादि चूर्ण—इलायची, शिलाजीत, पीपल और पत्थरचूर, इन सबका समभाग चूर्ण आधा तोला मात्रा चावल भिंगोय पानीके साथ सेवन करनेसे प्रमेह जल्दी शान्त होता है।

मेहकुलान्तक रस।—बङ्ग, अभरक, पारा, गन्धक, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकटु, त्रिफला, तेवड़ी, रसवत, विडङ्ग,

मोथा, वेलकी गिरी, गोक्षुर बीज और अनारकी बीज प्रत्येक एक एक तोला, शिलाजीत ८ तोले, एकत्र जङ्गली कंकडोके रसमें मर्द्दनकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। बकरी का दूध, आंवलेका रस और कुरथीका काढ़ा आदि अनुपानमें देनेसे प्रमेह मूत्रकृच्छ्रादि रोग शान्त होता है।

मेहमुद्गर वटिका।—रसाञ्जन, कालानमक, देवदारु, वेलकी गिरी, गोक्षुर बीज, अगर, चिरायता, पीपलामूल गोक्षुर, त्रिफला और तेवड़ीकी जड़, प्रत्येक एक एक तोला, लौहचूर्ण ११ तोले और गुग्गुलु ८ तोले, एकत्र घीके साथ खलकर दो आनेभरकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या पानी। इससे प्रमेह मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और अश्मरी आदि रोग आराम होता है।

वङ्गेश्वर—रससिन्दूर और वङ्ग समभाग पानीमें खलकर एक आनेभरकी गोली बनाना उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके प्रमेह रोगमें प्रयोग करना।

वृहत् वङ्गेश्वर—वङ्ग, पारा, गन्धक, रौप्य कपूर और अबरख प्रत्येक दो दो तोले, सोना और मोती प्रत्येक आधा तोला, एकत्र कसेरुके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और सोमरोग आदि पीड़ा दूर होती है।

सोमनाथ रस।—पालिधा रसमें सोधा हुआ हिङ्गुलोत्थ पारा २ तोले और सुहागानीके पत्तेके रसमें सोधा हुआ गन्धक दो तोलेकी कज्जली बना, इसके साथ ८ तोले लोहा मिलाकर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर उसमें अबरख, वङ्ग, रौप्य, खर्पर, स्वर्णमाक्षिक और स्वर्ण प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर घिकुआर और खुलकुड़ीके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाकर

उपयुक्त अनुपानके साथ प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना।

इन्द्रवटी—रससिन्दूर, वङ्ग और अभ्रकभस्म प्रत्येक समभाग, एकत्र सेमरके मुसरीके रसमें एक दिन खलकर मासिभरकी गोली बनाना। सहत और सेमरके मुसलीके चूर्णके साथ सेवन करनेसे प्रमेह और मधुमेह दूर होता है।

स्वर्णवङ्ग।—पारा, नौसादर और गन्धक प्रत्येक सम भाग। पहिले वङ्ग आगपर गलाना फिर उसमें पारा देना, दोनो मिल जानेपर नौसादर और गन्धक का चूर्ण मिलाकर खल करना। फिर एक कांचकी शीशेमें भरकर शीशीको कपड मिट्टीकर सुखा लेना, तथा मकरध्वजकी तरह वालुका यन्त्रमें पाक करना। स्वर्ण वर्णकी तरह उज्वल पदार्थ तयार होनेसे उसे स्वर्णवङ्ग जानना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह शुक्रतारल्य आदि पीडा दूर हो बलवर्ण की वृद्धि होत है।

वसन्तकुसुमाकार रस।—सोना ३ भाग, चांदी २ भाग, वङ्ग, सीसा और लोहा प्रत्येक तीन तीनभाग, अबरख, प्रवाल और मोती प्रत्येक चार चार भाग, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर यथाक्रम गायका दूध, ऊखका रस, अडूसेकी छालका रस, लाहका काढा, केलेके जडका रस, केलेके फूलका रस, कमल का रस, मालतीफूलका रस और कस्तूरी, इन सब द्रव्योंकी अलग अलग भावना दे २रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान घी, चीनी और सहत। यह पुराने प्रमेहको दवा है। चीनी और चन्दनके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्तादि रोगभी शान्त होता है।

प्रमेहमिहिर तैल।—तिल तैल ४ सेर, लाह ८ सेर पानी ६४ सेर मेथ १६ सेर, सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर,

दही १६ सेर ; सोवा, देवदारु, मोथा, हलदी, दारुहलदी, मूर्व्वा-मूल, कूठ, असगन्ध, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन रेणुका, कुटकी मुलेठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, बमनेठी, चाभ, धनिया, इन्द्रयव, करञ्ज बीज, अगरु, तेजपत्ता, त्रिफला, नालुका, बाला बरियारा, गुलशकरी, मजीठ, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, लोध, सौंफ, बच, जीरा, खसकी जड़, जायफल, अडूसेकी छाल और तगरपादुका ; प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; यथाविधि पाककर प्रमेह, विषम ज्वर और दाह आदि विविध पीड़ामें मर्द्दनार्थ प्रयोग करना।

सोमरोग।

— § —

तारकेश्वर रस—रससिन्दूर, लोहा, वङ्ग और अबरख, प्रत्येक समभाग मधुके साथ एकदिन खलकर मासेभरकी गोली बनाना। मधु और गुल्लरके बीजका चूर्ण एक आनेभर मिलाकर सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

हेमनाथ रस—पारा, गन्धक, सोना और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक एक एक तोला, लोहा, कपूर, प्रवाल, और वंग प्रत्येक आधा तोला, एकत्र अफीमके काढ़ेकी, केलेके फुलके रसको और गुल्लरके रसको सात सातबार भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

बृहत् धात्री घृत।—घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर अभावमें २ सेर आंवला १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर पानी रहते उतार कर वही काढ़ा लेना। बिदारीकन्दका रस ४ सेर,

सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, लघुपञ्चमूल का काढ़ा ४ सेर; तथा इलायची, लोंग, त्रिफला, कथैद, बाला, सरलकाष्ठ, जटामांसी, केलेका जड़ और कमलको जड़, प्रत्येक ६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाना, तथा छानकर मुलैठो, तेवड़ी, जवाखार और विधारेको जड़, प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल और चोनी ८ पल उसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर ८ पल सहत मिलाना। आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा यह घी सेवन करनेस; बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और तृष्णा, दाह आदि शान्त होतो है।

कदल्यादि घृत।—घी ४ सेर, केलेका फूल १२॥ सेर केलेकी जडका रस ६४ सेरशेष १६ सेर यह काढा; तथा लालचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामासी, कदलीमूल, इलायची, लोंग, हर्रे, आंवला, नीलोत्पल की जड़, सिंघाड़ेकी जड़, बड़, पीपर, गूलर, पाकड़, पियाल, वयसा, आम, जामुन, बेर, मौलसरीका फूल, महुआ, लोध, अर्जुन, कुन्द, कुटकी, कदम्ब, सिरीष और पलास प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे बहुमूत्रादि यावतीय मूत्रदोष दूर होते है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

शुक्रमातृका वटी।—गोखुरबीज, त्रिफला, तेजपत्ता, इलायची, रसवत, धनिया, चाभ, जीरा, तालीशपत्र, सोहागा और अनार की बीज, प्रत्येक २ तोले, गुग्गुलु २ तोले, पारा, पथरस, अभ्रक और लोहा, प्रत्येक ८ तोले; एकत्र घन

रसमें खलकर २ रत्ती मात्रा अनारका रस, बकरीका दूध या पानीके अनुपान में सेवन करनेसे शुक्रस्राव,प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है ।

चन्द्रोदय मकरध्वज ।—जायफल, लौंग, कपूर और गोलमिरच प्रत्येक एक तोला, सोना दो आनेभर, कस्तूरी दो आनेभर, रससिन्दूर ४।० तोले ; एकत्र खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। मक्खन मिश्री या पानका रस आदि अनुपानके साथ यह औषध सेवन करनेसे विविध पीड़ा शान्त हो बलवीर्य्य और अग्निकी वृद्धि होती है।

पूर्णचन्द्र रस ।—पारा ४ तोले, लोहा ८ तोले, अभ्रख ८ तोले, चांदी २ तोले, वङ्ग ४ तोले, सोना, ताम्बा और कांसा प्रत्येक एक एक तोला ; जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगु और मोथा प्रत्येक दो दो तोले ; यह सब द्रव्य एकत्र विकुआरके रसमें खलकर त्रिफलाका काढ़ा और एरण्डमूलके रसकी भावना देना, फिर एरण्डके पत्तेमें लपेटकर धान्याग्नि में तीन दिन रखना। तीन दिन बाद चने बराबर गोली बनाना। पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल और आयु बढ़ता है, तथा प्रमेह, बहुमूत्र, ध्वजभंग, अग्निमान्द्य, आमवात, अजीर्ण, ग्रहणी, अम्लपित्त, अरुचि, जीर्णज्वर, हृत्शूल और विविध वायुविकार आराम होता है।

महालक्ष्मीविलास रस ।—अभ्रख ८ तोले, गंधक ४ तोले, वंग २ तोले, रौप्य १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र आधातोला, कपूर ४ तोले, जावित्री जायफल विधारेकी बीज और धतुरेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले तथा सोना एक तोला ; एकत्र पानके रसमें मर्दनकर २ रत्ती बराबरकी गोली बनाना।

पानका रस अथवा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रक्षय, लिंगशैथिल्य, सन्निपात ज्वर और यावतीय शुक्राश्रित व्याधि निराकृत होती है। मुमूर्षु अवस्थामें जब शरीर शीतल होजाता है, उस वक्त इस औषध से विशेष उपकार होता है।

अष्टावक्र रस।—पारा एक तोला, गंधक २ तोले, सोना एक तोला, रौप्य आधा तोला, सीसा, तांबा, खर्पर और वंग प्रत्येक चार आनेभर; यह सब द्रव्य एकत्र बटाकुरके रसमें एकपहर, घिकुआरके रसमें एक पहर, खलकर मकरध्वजकी तरह पाक करना। पाकशेष होनेपर अनारके फूलकी तरह रंग होता है। २ रत्ती मात्रा पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल, पुष्टि, मेधा और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा वलिपलित आदि रोग दूर होता है।

मन्मथाभ्र रस।—पारा, गन्धक और अभ्रख प्रत्येक ४ तोले, कपूर और वङ्ग प्रत्येक एक तोला, तांबा आधा तोला, लोहा २ तोले और बिधारेको बीज, जीरा, विदारीकन्द, सतावर, तालमखाना, वरियारा, कवाच, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांगकी बीज, सफेद राल, और अजवाईन प्रत्येक आधा तोला, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग आराम होता है।

मकरध्वज रस।—शोधित सोनेका पतला पत्तर एक पल, पारा एक पल और गन्धक २४ पल; एकत्र लालरंगके कपास फूलके रसमें और घिकुआरके रसमें खलकर मकरध्वजकी तरह फूकना। फिर वही मकरध्वज एक तोला, कपूर, लौंग, मिरच और जायफल प्रत्येक ४ तोले, कस्तूरी ६ मासे एकत्र खलकर २

रत्ती मात्रा पानके रसमें सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग दूर होता है।

अमृतप्राश घृत।—घी ४ सेर, छागमांस १२॥ सेर और असगन्ध १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रहते छानकर रखना। बकरीका दूध १६ सेर; बरियारेकी जड़, गोधूम, असगन्ध, गुरिच, गोखुर, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालाङ्कुर, त्रिफला, कस्तूरी, कवाच बीज, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, मजीठ, तगरपादुका तालीशपत्र, इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी, नागेश्वर, जातीपुष्प, रेणुका, सरलकाठ, जावित्री, छोटी इलायची, नीलाकमल, अनन्तमूल, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गुलर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, तथा मूर्च्छाके लिये केशर ४ तोले, यथाविधि औटाकर छान लेना फिर एक सेर चीनी मिलाकर आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्ग, शुक्रहीनता, आर्त्तवहीनता और चीण रोगादि दूर होते है।

वृहत् अश्वगन्धा घृत।—घी ४ सेर, असगन्ध १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६; छागमांस २५ सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, दूध १२ सेर; तथा काकोली, चीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जीवक ऋषभक, कवाच की बीज, इलायची, मुलेठी, मुनक्का मागोनी, माषोनी, जीवन्ती, पीपल, बरियारा, सतावर और बिदारीकन्द सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथा-विधि औटाना पाकशेष होनेके थोड़ी देर पहिले एक दफे छानकर फिर औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर आधा सेर चीनी मिलाना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे उक्त रोग सब आराम होते हैं।

कामेश्वर मोदक।—कूठ शुंठि, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, तालमूली गोक्षुर, तालमखाना, सतावर, कसेरू, अजवाइन, धनिया, मुलेठी, गुलशकरी, तिल, सौंफ, जायफल, सैन्धव, बारंगी, काकडाशिंगी, त्रिकटु जीरा, कालाजीरा, चीतामूल दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, पुनर्नवा, गजपीपल, मुनक्का, शठी, कायफल, सेमरकी जड, त्रिफला और कंवाच की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण; समष्टीका चौथा हिस्सा अभ्रभस्म तथा समष्टीके दोभागका एकभाग भांगका चूर्ण, समष्टीके आठभाग का एकभाग गन्धक और समष्टीकी दूनी चीनी; यह सब द्रव्य उपयुक्त घी और सहतमें मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोलासे २ तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्यस्तम्भ होता है।

कामाग्निसन्दीपन मोदक।—पारा, गन्धक, अबरख जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, पञ्चलवण, शठी अजवाइन, अजमोदा, वायविडङ्ग, और तालीशपत्र प्रत्येक दो दो तोले; जीरा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग और जायफल, प्रत्येक ४ तोले; बिधारेकी बीज और त्रिकटु प्रत्येक ६ तोले; धनिया, मुलेठी, सौंफ और कसेरू प्रत्येक ८ तोले; सतावर, बिदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाशकी छाल, गुलशकरी, कंवाचकी बीज और गोक्षुर बीज प्रत्येक १० तोले; समष्टीके बराबर सबीज भांगका चूर्ण, तथा सर्व समष्टीके बराबर चीनी; उपयुक्त घी और सहत तथा २ तोले कपूर मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा चार आनेभरसे १ तोलातक गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अपरिमित शुक्र और मैथुनशक्ति वृद्धि होती है तथा मेह, ग्रहणी, कास, अम्लपित्त, शूल, पार्श्वशूल, अग्निमान्द्य और पीनस आदि रोग दूर होते हैं।

मदनमोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, कूठ, सैन्धव, धनिया, शठी, तालीशपत्र, जायफल, नागेश्वर, मेथी, थोड़ा भूना हुआ सफेद और कालाजीरा प्रत्येक समभाग है; सबके बराबर घीमें भूनी सबीज भांगका चूर्ण; एकत्र उपयुक्त घी और महतमें मिलाना, फिर उसमें दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और थोड़ा कपूर मिलाकर सुगन्धित करना। यह मोदक चार आनेभरसे १ तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्तिकी वृद्धि तथा कास, शूल, संग्रहणी और वातश्लेष्मज पीड़ा शान्त होती है।

मदनानन्द मोदक।—पारा, गन्धक, लोहा, प्रत्येक एक एक तोला; अबरख ३तोले; कपूर, सैंधव, जटामांसी, आंवला इलायची, सोंठ, पीपल, मिरच, जावित्री, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलेठी, बच कूठ, हलदी, देवदारु, हिजल बोज, सोहागा, वारंगी, सोंठ, नागेश्वर, कांकड़ासिंगी, तालीशपत्र, मुनक्का, चीतामूल, दन्तीबोज, बरियारा, गुयनकरी, दालचीनी, धनिया, गजपीपल, शठी बाला, माया, गन्धाली, विदारीकन्द, सतावर, असगन्धकी जड़, कौंवाच बीज, गोखुर बोज, विधारेकी बोज और भांगकी बीज प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, यह सब चूर्ण सतावरके रसमें खलकर सुखा लेना, फिर सब चूर्णके चार भागका एकभाग सेमरके मुसरीका चूर्ण, सेमरके मुसरीका चूर्ण मिले हुए सब चूर्णका आधा भांगका चूर्ण तथा सब चूर्णको दूनी चीनी। पहिले उपयुक्त बकरीके दूधमें चीनी मिलाकर औटाना चासनी पाकमें चूर्ण मिलाना। पाकशेष होनेपर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची नागेश्वर, कपूर, सैंधव और त्रिकटु चूर्ण थोड़ा थोड़ा मिलाना। ठण्ढा होनेपर घी और महत मिला

रखो। मात्रा चार आनेभरसे आधा तोलातक दूधके साथ। इससे शुक्र और रतिशक्ति वृद्धि हो सूतिका, अग्निमान्द्य और कास आदि विविध रोग आराम होते हैं।

रतिवल्लभ मोदक।—चीनी दो सेर, सेमलवरका रस ४ सेर, भांगका काढ़ा ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, घी ५ पल, भांगका चूर्ण ५ पल, आंवला, जीरा कालाजीरा, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कौंवाच बीज, गुलशकरी, तालके गुठलीका अङ्कुर, कसेरू, सिंघाड़ा, त्रिकटु, धनिया, अभरख, वङ्ग, हरी मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, पिण्डखजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलेठी, कूठ, लौंग, सैंधव, अजवाइन, अजमोदा, जीवन्ती और गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोले। एकत्र औटाना पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर मधु दो पल, थोड़ा कस्तूरी और कपूर मिलाकर मोदक तयार करना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे पूर्व्वोक्त उपकार होता है।

नागवल्लयादि चूर्ण—पानकी जड़, बरियारीकी जड़, मूर्व्वामूल, जावित्री, जायफल, मुरामांसी, चिरचिड़ीकी जड़, काकोली, क्षीरकाकोली, कङ्कोल, खसकी जड़, मुलेठी और वच, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सोनेके आधा घण्टा पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ होता है।

अर्ज्जकादि वटिका।—बनतुलसीकी जड़, चोरकाकी जड़, गोगुल्डीकी जड़, कसेरूकी जड़, जायफल, लौंग, विडङ्ग, गजपीपल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची नागेश्वर, वंशलोचन, अनन्तमूल, तालमूली, सतावर, बिदारीकन्द और गोखुर बीज, यह सब द्रव्य बबूलके गोंदमें, घूमकर एक मासा बराबर गोली

बनाना। दूध अथवा सुरामण्ड अनुपानके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और शुक्रवृद्धि होता है।

शुक्रवल्लभ रस—पारा, गन्धक, लोहा, अबरख, चादी सोना, और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक आधा तोला, वंशलोचन दो तोले, भागके बीज का चूर्ण ८ तोले; एकत्र भांगके काढेमें खलकर मासे बराबर गोली बनाना। अनुपान दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्य स्तम्भ और रतिशक्ति वृद्धि होती है।

कामिनीविद्रावन रस—अकरकरा सोंठ, लौंग, केसर, पीपल जायफल, जावित्री और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोले; हिंगुल और गन्धक प्रत्येक आधा तोला और अफीम ८ तोले, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। सोनेके पहिले दूधके साथ एक गोली सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और रतिशक्ति बढती है।

पल्लवसार तैल।—तिलका तेल, त्रिफलाका काढा, लाहका काढा, भगरैया का रस, सतावरका रस, भतुवेका पानी, दूध और कांजी प्रत्येक ४ सेर। पीपल हर्रे मुनक्का, त्रिफला, नीलाकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली प्रत्येक एक एक तोलाका कल्क यथाविधि औटाकर कपूर, नखी कस्तूरी, नग्वाबिरोजा, जावित्री और लौंग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। यह वायु और पित्तजनित विविध रोग और शूल प्रमेह मूत्रकृच्छ्र तथा ग्रहणी आदि पीडा नाशक है।

श्रीगोपाल तैल।—तिलका तेल १६ सेर, सतावर का रस, भतुवेका पानी, और आंवलेका रस या काढा १६ सेर, असगन्ध, कटसरैया और बरियारा प्रत्येक १०० पलका कल्क; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। बृहत्

पञ्चमूल, कण्टकारी, मूर्व्वामूल केकड़ेकी जड़, नाटा करञ्ज की जड़ और पालिधा छाल प्रत्येक १० पल ६४ सेर पानी, शेष १६ सेर; असगन्ध, चोरकंचुकी, पद्मकाठ, कण्टकारी, बरियारा, अगरु, मोथा, खटासी, शिलारस, अगरु, लालचन्दन, सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्व्वामूल, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली क्षीराकाकोली, मासोणी, मोपोणी, जीवन्ती, मुलेठी, त्रिकटु, केसर, कस्तुरी, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, शैलज, नखी, नागरमोथा, मृणाल, नीलाकमल, खसकी जड़, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु,वच, अनारका बीज, धनिया, ऋद्धि, दौना, और छोटी इलायची, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। यह तेल मालिश करनेसे यावतीय वायुरोग प्रमेह, शूल और ध्वजभङ्ग आराम होता है।

मेदरोग।

अमृतादि गुग्गुल—गुरिच एकभाग, छोटी इलायची दो भाग, विड़ङ्ग ३ भाग, कुरैया ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, हर्रा ६ भाग, आंवला ७ भाग और गुगुल ८ भाग, एकत्र मधुके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदरोग और भगन्दरादि पीड़ा शान्त होती है।

नवकगुग्गुलु—त्रिकटु, चीतामूल, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग और गुगुल समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग, श्लेष्मादोष और आमवात आराम होता है।

त्र्यूषणादि लौह—त्रिकटु, भांग, चाभ, चीतामूल, काला नमक, औद्भिद लवण, सोमराजी, सैन्धव और सोवर्चल नमक प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर लौहभस्म एकत्र मिलाकर ४ रत्ती माता घी और सहतके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग और प्रमेह आदि पीडा शान्त होती है।

त्रिफलाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर; तुलसी या कालोतुलसी का रस १६ सेर; त्रिफला, अतोस, मूर्व्वामूल, अडूसेकी छाल, नोमकी छाल, अमिलतासका गूदा, बच, छातिम छाल, हलदी, दारुहलदो, गुरिच निर्गुण्डी, पीपल, कूठ, सरसो और सोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क यथाविधि औटाकर पान अभ्यङ्ग, नस्य और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करनेसे शरीर की स्थूलता और कंडू आदि पीडा दूर होते है।

उदररोग।

—o—

पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, परवर का पत्ता, हर्रा, नोमको छाल, मोथा, सोंठ और गुरिच; इस काटेमें गोमूत्र और गुग्गुल मिलाकर पीनेसे उदर-रोग, शोथ, कास, श्वास, शूल और पांडुरोग आराम होता है।

सामुद्राद्य चूर्ण—फटेला, सौवर्चल, सैन्धव लवण, जवाचार, अजवाईन, अजमोदा, पोपल, चीतामूल, सोंठ, हींग और काला नमक प्रत्येक समभाग; घी मिलाकर चार आनेभर माता भोजन

के पहिले ग्रासमें मिलाकर खानेसे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण और ग्रहणी आराम होती है।

नारायण चूर्ण।—अजवाईन, धनिया, कालाजीरा, सौंफ, पीपलामूल, अजमोदा, शठी, वच, सोवा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतामूल, जवाखार, सज्जीखार पांचोनमक, और वायविडंग प्रत्येक एक एक भाग, कूठ दो भाग, तेवड़ी २ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, इन्द्रायण दो भाग, चर्मकषा ४ भाग एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे उदररोग, बेरके काढेसे गुल्म रोगमें, मलभेदमें दहीके पानीके साथ, अर्शरोग में अनारके रसमें, उदर और मलद्वारके दर्दमें थैकल भिगोये पानीके साथ तथा अजीर्ण अनाह आदि रोगोंमें गरम पानी साथ सेवन करना।

इच्छाभेदी रस—शोठ, गोलमिरच, पारा, गंधक और सोहागा प्रत्येक एक एक तोला, जयपाल ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान चीनीका शर्बत। जयचुल्लू, चीनीका शर्बत पियेगे उतनाही दफे दस्त होगा। पथ्य दहीका मट्ठा और भात।

नाराच रस—पारा, सोहागा, और गोलमिरच, प्रत्येक एक एक तोला, गन्धक, पीपल और शोंठ प्रत्येक दो दो तोले, जयपाल बीज ८ तोले, एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। चावल भिंगोये पानीके साथ देनेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

पिप्पलाद्य लौह—पिपलामूल, अभ्रक, त्रिकटु, त्रिफला, विडंग और सैन्धव प्रत्येक समभाग; और इनके बराबर लौह एकत्र पानीमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके उदर रोगमें प्रयोग करना।

शोथोदरारि लौह—पुनर्नवा, गुरिच, चीतामूल, गुलशकरी, माणकन्द, सेंजनकी जड़, हुड़हुड़की जड़ और अकवनकी जड़ प्रत्येक एक एक सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें लौहभस्म एक सेर, घी एक सेर, अकवनका दूध एक पाव, सेहुंडका दूध आध सेर गुग्गुलु एक पाव और पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले की कज्जली मिलाकर औटाना। पाकशेष होनेपर जयपालका बीज, ताम्रभस्म, कंकुष्ठ, चीतामूल, जंगली सूरण, शरपुंखा, पलाशबीज, चीरई, तालमूली, त्रिफला, विड़ङ्ग, तेवडोमूल, दन्तीमूल, हुड़हुड, गुलशकरीकी जड़, पुनर्नवा, हड़जोड़, इन सबका चूर्ण एक सेर। रोग और रोगीकी अवस्थानुसार मात्रा और अनुपान विचारकर प्रयोग करनेसे शोथ, उदर, पाण्डु, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर और गुल्म आदि रोग दूर होते हैं।

महाविन्दु घृत—घी दो सेर, सेहुंड़का दूध २ पल, कम्पिल्लक १ पल, सैन्धव ४ तोले, तेवड़ी १ पल, आंवलेका रस आध सेर और पानी ४ सेर; यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

चित्रक घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर; चीतामूल ८ तोले और जवाखार ८ तोलेका कल्क यथा विधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे उदर रोग नाश होता है।

रसोन तैल।—तैल ४ सेर; लहसन १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती, हींग, सेंधानमक, चीतामूल, देवदारु, वच, कूठ, लालसैंजन, पुनर्नवा, सोवर्चल नमक, विड़ङ्ग, अजवाईन और गजपीपल प्रत्येक एक एक पल, तेवडोमूल १६ पलका कल्क; यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा

सेवन करनेसे सब प्रकारका उदर रोग, पार्श्वशूल, वायुका दर्द, क्रिमि, अन्त्रवृद्धि, उदावर्त्त और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग शान्त होता है।

शोथ।

पथ्यादि काढ़ा—हरीतकी, हलदी, वारंगी, गुरिच, चीतामूल, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु और शोंठका काढ़ा पीनेसे सर्व्वांग गत शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीमकी छाल परवरका पत्ता, शोंठ, कुटकी, गुरिच, दारु हलदी और हरीतकी, इन सबका काढ़ा पीनेसे सार्व्वांगिक शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास और पाण्डु-रोग शान्त होता है।

सिंहास्यादि काढ़ा—अडूसेकी छाल, गुरिच और कण्टकारी; इन सबके काढ़ेमें मधु मिलाकर पीनेसे शोथ श्वास, कास, ज्वर और वमन दूर होता है।

शोथारि चूर्ण—सूखीमूली, चिरचिरा, त्रिफला, दन्तीमूल विड़ंग, चीतामूल और मोथा, प्रत्येक समभाग; चार आनेभर मात्रा बेलके पत्तेके रसमें सेवन करनेसे शोथ और पांडु रोग आराम होते हैं।

शोथारि मण्डूर।—गोमूत्रमें सातबार शोधा हुआ मण्डूर ८ पल त्रिफला, माणकन्द, आदी और जंगली सूरणके रसको तीन तीनवार भावना दे, ७ सेर गोमूत्रमें औटाना, गाढ़ा

होनेपर त्रिफला, त्रिकटु और चाभ प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर १६ तोले मद्दत मिलाना। उपयुक्त मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे सब्वदोषज और सर्व्वांगगत शोथ दूर होता है।

कांस हरीतकी।—दशमूल ८ सेर पोटलीमें बंधा-हुआ हर्रा १००, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढा छानकर १२॥ सेर गुड़ मिलाकर छान लेना फिर १०० हर्रा इसमें औटाना। गाढ़ा होनेपर ३० तोले त्रिकटु, जवाखार, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २ सेर सहत मिलाना। मात्रा एक हर्रा और एक तोला अवलेह गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शोथ, उदर प्लीहा, गुल्म और श्वास आदि रोग शान्त होता है।

त्रिकट्वादि लौह—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विड़ंग कुटकी, चीतामूल, देवदारु, तेवड़ो और गजपीपल, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण, समष्ठीका दूना लौह; एकत्र दूधमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दूधके अनुपानमें देनेसे शोथ विनष्ट होता है।

शोथकालानल रस—चीतामूल, इन्द्रयव, गजपीपल, सेंधव, पीपल, लौंग, जायफल, सोहागा, लोहा, अबरख और पारा प्रत्येक दो दो तोले; एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान तालमखानेके जड़का रस, इससे ज्वर, कास, श्वास, शोथ, प्लीहा और प्रमेहरोग आराम होता है।

पञ्चामृत रस।—पारा एक तोला, गंधक एक तोला, सोहागेका लावा ३ तोले और मिरच ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें सेवन कर-

जैसे शोथ, जलोदर, शिर:शूल, पीनस, ज्वरातिसार संयुक्त शोथ, गलग्रह और विविध श्लैष्मिक रोग शान्त होता है।

दुग्धवटी।—मीठाविष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहा पांच रत्ती और अबरख ६०, रत्ती एकत्र दूधके साथ खल-कर दो रत्ती बराबर गोलीं बनाना, अनुपान दूध। दूधभात भोजन करनेसे शोथ, ग्रहणी, अग्निमान्द्य और विषम ज्वर आराम होता है। रोग आराम न होनेतक नमक खाना बन्द रखना।

तक्रमण्डूर।—भांगका चूर्ण ४ तोले, लौहचूर्ण ४ तोले, बांसकी जड़, कृष्णागुरु, नीमकी छाल, चिजताड़ककी जड़ और समुद्रफेन प्रत्येक दो दो तोले; तेजपत्ता, लौंग, इलायची, सोवा, सौंफ, मिरच, गुरिच, मुलेठी, जायफल, शोंठ और सेंधानमक, प्रत्येक एक एक तोला; सब एकत्र कर श्वेत पुनर्नवाके रसकी भावना दे बैरके गुठली बराबर गोली बनाना। केशुरियाका रस या मट्ठेके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ आराम होता है। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी बन्द रखना।

सुधानिधि रस।—धनिया, बाला, मोथा, शोंठ और सैंधव प्रत्येक एक एक तोला, मण्डूर १० तोले, एकत्र मर्द्दनकर गोमूत्र, केशुरियाका रस, श्वेतपुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रस और थुलकुड़ीके रसमें यथाक्रम १४ बार भावना देना। मात्रा ४ मासे, मट्ठा या केशुरियाके रसके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ, ग्रहणी, पांडु, कामला, ज्वर और अग्निमान्द्य दूर होता है। पथ्य—मठठा और भात। नमक और पानी मना है। प्यास लगेतो मठठा पीना।

चित्रकाद्य घृत।—घी ४ सेर; चीतामूल, धनिया, अजवाइन, अम्लठा, जीरा, त्रिकटु, पीपल, बेलकीगिरी, अनारके

फलकी छाल, जवाखार, पिपलामूल और चाभ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी १६ सेर, यथा विधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शोथ, गुल्म अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होते हैं।

पुनर्नवादि तैल।—तिलका तैल ४ सेर पुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहलदी, प्रियंगु पद्मकाष्ठ, रेणुका, कूठ, पुनर्नवा, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दाल चीनी, लोध, तेजपत्ता, नागेश्वर, वच, पीपलामूल, चाभ चीतामूल, मोवा, वाला, मजीठ, रास्ना और जवासा, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे शोथ, पाण्डु, कामला, हलीमक, प्लीहा और उदर आदि रोग शान्त होता है।

वृहत् शुष्कमूलकाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, सूखी मूलका काढ़ा ४ सेर; सैजनकी छाल, धतूरेका पत्ता, पालिधावेकी छाल, पुनर्नवा, काकमाची, चालताकी छाल, पीपल, गजपीपल, कटफल, कूठ, काकड़ाशिंगी, रास्ना, जवासा कालाजीरा, हलदी, करञ्ज, नाटाकरञ्ज, श्यामालता, और अनन्त मूल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क। यथाविधि पाककर मालिश करनेसे सब प्रकारका शोथ, व्रणशोथ, अस्थिशूल श्वास, कामला और यावतीय श्लैष्मिक रोग आराम होता है।

कोषवृद्धि।

भक्तोत्तरीय।—अवरख, गन्धक, पीपल, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, त्रिफला, हरताल, मैनसिल, पारा अजवाईन अजमोदा, ब[illegible]रा, हींग, मेथी, चीतामूल, चाभ बच, दन्तीमूल तेवड़ी, मोथा, शिलाजीत, लोहा, रसांजन, नीमको बीज, परवरका पत्ता, और बिधारेको बीज, प्रत्येक दो दो तोले, शोधित धतूरेको बीज १००, एकत्र चूर्णकर ४ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे यावतीय वृद्धि रोग श्लीपद और आमवात आदि रोग आराम होता हैं।

वृद्धिवाधिका वटी।—पारा, गन्धक, लोहा, बङ्ग, ताम्बा कांसा, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कोडीभस्म, त्रिकटु, चाभ, त्रिफला, विड़ङ्ग, विधारेको बीज, शठी, पिपलामूल, अम्बष्ठा, हौवेर, बच, इलायची, देवदारु और पांचो नमक, प्रत्येक सम-भाग; हर्रोके काढ़ेमें खलकर मासे बराबर गोली बनाना पानी या हर्रा भिगोया पानीके साथ सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग आराम होता है।

वातारि—पारा दो भाग, गन्धक दो भाग, त्रिफला तीन भाग चीतामूल ४ भाग और गुग्गुलु ५ भाग, एकत्र रेंडीके तेलमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्राको गोली बनाना। खादिरा रस या तिलके तेलके साथ सेवन कर एरण्डमूलके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। रोगीके पीठमें रेड़ीका तेल मालिश कर सेंकदेना। विरेचन होनेसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन कराना। यह अन्त्रवृद्धि का श्रेष्ठ औषध है।

शतपुष्पाद्य घृत ।—घी ४ सेर; अडूसा मुण्डरी, रेंडकी जड, बेलका पत्ता, और कण्टकारी प्रत्येक का रस चार चार सेर, दूध ४ सेर; सोवा, गुरिच, देवदारु, लालचन्दन, हलदी, दार हलदी, जीरा, कालाजीरा, बच, नागेश्वर, त्रिफला, गुग्गुलु दाल चीनी, जटामासी, कूठ, तेजपत्ता, इलायची, रास्ना, काकडाशिंगी, चीतामूल, विडङ्ग, असगन्ध, शैलज, कुटकी सैन्धव, तगरपादुका, कुरैयाकी छाल और अतीस प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकार वृद्धिरोग और श्लीपद आदि रोग शान्त होताहै।

गन्धर्व्वहस्त तैल—रेंडीका तैल ४ सेर, रेंडका जड १२॥ सेर, शोंठ ८ तोले, जौ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; दूध १६ सेर; रेंडकी जड ३२ तोले, अदरख २४ तोलेका कल्क। यथाविधि औटाकर दो तोले मात्रा गरम दूधके साथ पीनेसे अन्त्र वृद्धि रोग आराम होता है। पथ्य—दूध और भात।

सैन्धवाद्य घृत—घोंघाके भीतरका मास वगैरह निकालकर उसके भीतर गायका घी और घीका चौथा हिस्सा नमक भरकर सात दिनतक धूपमें रखना। यह घी मालिश करनेसे कोषवृद्धि रोग शान्त होता है।

गलगण्ड और गण्डमाला।

काञ्चनार गुग्गुलु।—कचनारकी छाल ५ पल, सोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक एक एक पल, हर्रो, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक आधा पल, वरुणछाल दो तोले, तेजपत्ता, इलायची, और दालचीनी प्रत्येक आधा तोला, तथा सबके बराबर गुगुल एकत्र मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला, अपची और ग्रन्थि आदि रोग शान्त होता है। अनुपान थोड़ा गरम मुण्डरीका काढ़ा, खैरका काढ़ा अथवा हरीतकीका काढ़ा।

अमृताद्य तैल—तिलका तेल ४ सेर; गुरिच, नीमकी छाल, सुलकुड़ी, कुरैयाकी छाल, पीपल, बरियारा, सफेद बरियारा और देवदारु सब मिलाकर एक सेर इन सब द्रव्योंको यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

तुम्बीतैल—सरसोंका तेल ४ सेर, पके तितलौकी का रस १६ सेर; विडङ्ग, जवाखार, सेन्धव, वच, रास्ना, चीतामूल, त्रिकटु और हींग सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

छुछुन्दरी तैल—तिल तेल या सरसोंका तैल ४ सेर; छुछुन्दर का मांस एक सेर, पानी १६ सेर और छुछुन्दरके मांसके ४ सेर काढ़ेके साथ यथाविधि पाककर मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता है।

सिन्दूरादि तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, केशरियाका रस १६ सेर, चकवड़की जड़ आधा सेर, इसको आंचमें औटाना, पाकशेष

होनेपर मटिया सिन्दूर आध सेर मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होती है।

बिल्वादि तैल—तेलाकुचाकी जड़, करवीर और निर्गुण्डीका कल्क चौगूने पानीके साथ यथाविधि तिलका तेल पाककर नास लेनेसे गण्डमाला शान्त होती है।

निर्गुण्डी तैल—तिल तैल ४ सेर, निर्गुण्डीका रस १६ सेर, ईशलाङ्गलाकी जड़का कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गण्डमाला दूर होती है।

गुञ्जाद्य तैल—घुंघुची की जड़, कनैलकी जड़, बिधारेकी बीज, अकवनका दूध और सरसो इन सबके साथ चौगूने गोमूत्रमें क्रमशः १० बार तेल पाककर उसमें पीपल, पांचोनमक और मिरचका चूर्ण मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे अपची और नाड़ीव्रण आदि आराम होता है।

चन्दनादि तैल—तिलका तेल ४ सेर, लालचन्दन, हरीतकी, लाह, वच और कुटकी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे अपची रोग आराम होता है।

श्लीपद।

मदनादि लेप—मयनफल, नीलपद्म और सामुद्र लवण; यह सब द्रव्य भैंसके मक्खनमें मिलाकर लेप करनेसे दाहयुक्त श्लीपद जल्दी शान्त होता है।

कणादि चूर्ण—पीपल, वच, देवदारु और वेलकी छाल प्रत्येक समभाग, सबके बराबर बिधारेकी बीज, एकत्र चूर्णकर २ रत्ती मात्रा कांजीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद आराम होता है।

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुननवा, प्रत्येक दो दो पल, बिधारेकी बीज १४ पल एकत्र मिला कर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद, वातरोग और अग्नि-मान्द्य आराम होता है।

कृष्णादि मोदक—पीपलका चूर्ण दो तोले, चीतामूलका चूर्ण ४ तोले, दन्तीमूल चूर्ण ८ तोले, हरीतकी १० तोले और पुराना गुड़ १६ तोले; यथाविधि मोदक बनाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

श्लीपद गजकेशरी—त्रिकटु, विष, अजवाइन, पारा, गन्धक, चीतामूल, मैनसिल, सोहागा और जयपाल प्रत्येक समभाग; यथाक्रम भीमराज, गोखुर, जाम्बीर नीबू और अदरखके रसमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम पानीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद रोग आराम होता है।

सोमेश्वर घृत—घी ४ सेर; दशमूलका काढ़ा, कांजी और दही प्रत्येक चार चार सेर; काली तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, पांचोनमक, विडङ्ग, चीतामूल, चाभ, पीपलामूल,गुग्गुलु, हीवेर, बच, जवाखार, अम्बाष्ठा, शठी, इलायची और विधारा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद और गलगण्ड आदि रोग नष्ट होता है।

विडङ्गादि तेल—तिलका तेल ४ सेर; विड़ङ्ग, मिरच, अकवनकी जड़, शोंठ, चीतामूल, देवदारु, एलवा और पांचो-नमक सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पान और शोथ स्थानमें मालिश कर-नेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है

विद्रधि और व्रण।

वरूणादि घृत—वरूणछाल, झिंटी, सेजन, लालसेजन, जयन्ती, मेषशृङ्गी, डहरकरञ्ज, मूर्व्वा, गणियारी, कटसरैया, तेला-कुचा, अकवन, गजपीपल, चीतामूल, शतावर, बेलकी गिरी, मेढा शृङ्गी, कुशमूल, बृहती और कण्टकारी; इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घी औटाकर सबेरे भोजनके वख्त और शामको आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधि गुल्म, अग्निमान्द्य और उत्कट शिरःशूल दूर होता है।

करञ्जाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरञ्जका ,कोमल पत्ता और बीज, मालती पत्र, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, हलदी, दारुहलदी, मोम, मुलेठी, कुटकी, मजीठ, लालचन्दन, खसकी

जड, नीलाकमल, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक दो तोले यथाविधि पाककर चत स्थान प्रयोग करना।

जात्याद्य घृत और तैल—जातीपत्र, नीमपत्ता, परवरका पत्ता, कुटकी, दारुहलदी, हलदी, अनन्तमूल, मजीठ, खसकी जड, मोम तूतिया, मुलेठी और डहरकरञ्जको बीज मिलाकर एक सेरका कल्क और १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी या तेल यथाविधि औटाकर घावमें लगानेसे घावमेंसे पीप वगैरह निकालकर सुखा देता है।

विपरीतमल्ल तेल—सरसोंका तेल ४ सेर; सिन्दूर, कूठ, मिठाविष, हींग, लहसन, चीताभूल बालामूल और ईसलाङ्गला प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर यावतीय चतरोगमें प्रयोग करना।

व्रणराचस तैल—सरसोंका तेल आधा सेर, पारा, गन्धक, (कज्जली करलेना) हरताल, मटिया सिन्दूर मैनसिल, लहसन विष और ताम्बा प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र मिलाकर धूपमें रखना। इस तैलके लगानेसे नासूर, विस्फोट मांसवृद्धि, विचर्चिका और दाह आदि रोग शान्त होता है।

सर्ज्जिकाद्य तेल—तेल ४ सेर, सज्जीखार, सेंधानमक, दन्तीमूल, सफेद अकवनकी जड, नीलकाठ और चिरचिरो की बीज सब मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर; यथाविधि औटाकर नासूर और खराब घावमें लगाना।

निर्गुण्डी तैल—तैल ४ सेर और निर्गुण्डी की जड़, पत्ता और डाल ४ सेर; एकत्र औटाकर पान, मर्द्दन और नास लेनेसे व्रणरोग और पामा अपची आदि रोग दूर होता है।

समाङ्ग गुग्गुलु—विड़ङ्ग, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक सम-भाग, तथा समष्ठोके बराबर गुग्गुलु एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे दुष्टव्रण नाडीव्रण और कुष्ठादि रोग शान्त होता है।

भगन्दर।

सप्तविंशति गुग्गुलु।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग, गुरिच, चीतामूल, शठी, इलायची, पीपलामूल, होवेर, देवदारू, धनिया, भेलावा, चाभ, इन्द्रायण को जड़, हलदी, दारहलदी, कालानमक, सौवर्चल नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीखार और गजपीपल, प्रत्येक एक एक तोला; समष्ठोका दूना गुग्गुलु; एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, श्वास, कास, शोथ और प्रमेह आदि रोग शान्त होता है।

नवकार्षिक गुग्गुलु—हरीतकी, आंवला, बहेडा और पीपल प्रत्येक दो दो तोले, गुग्गुलु १० तोले, एकत्र घीमे मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, शोथ गुल्मादि रोग शान्त होता है।

व्रणगजांकुश।—हिंगुल, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसाञ्जन, मैनसिल, पुन्नाग पुष्प, पारा, गन्धक, ताम्बा, लोहा, सेंधानमक, अतीस, चाभ, शरपोंखा, विड़ङ्ग, अजवाईन, गजपीपल, मिरच, अकवनकी जड, वरूणकी जड, सफेद रान और हर्रा प्रत्येक समभाग उपयुक्त सरसोंके तेलमें मर्द्दनकर माषे बराबर गोली

बनाना। अनुपान मद्दत, इससे भगन्दर और विविध दुःसाध्य व्रणरोग दूरहोते है।

उपदंश।

वरादिगुग्गुल—त्रिफला, नीमकी छाल, अर्जुन, पीपल, खर, शाल और अडूसा; प्रत्येक का चूर्ण समभाग,तथा समष्टीके बराबर गुग्गलु, एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे उपदंश रक्तदुष्टि और दुष्ट व्रण आराम होता है।

रसशेखर।—पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती एकत्र लोहेकी पात्रमें रख तुलसीके पत्तेके रसमें नीमके डण्डेसे खल करना, फिर उसमें दो रत्ती हिंगुल मिला तथा तुलसीके पत्तेका रस मिला उसी डंडेसे मर्द्दन करना। फिर जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवाईन और अकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती और समष्टीका दूना खैर मिलाकर तुलसी पत्तेके रसमें मर्द्दन करना। मटर बराबर गोली बनाना। रोज शामको एक गोली सेवन करनेसे उपदंश, गलित कुष्ठ और सब प्रकारका स्फोटक आराम होता है।

करंजाद्य घृत—४ सेर, डहरकरञ्ज की बीज, नीमका पत्ता अर्जुनछाल, शालकी छाल, जामुनकी छाल, बड, गुल्लर, पीपर, पाकर और बेतसकी छाल सब मिलाकर एक सेर; इन सबका काढा यथविधि औटाकर चतस्थानमें लगानेसे उपदंश की दाह, घाव, पीप आदिका स्राव और लाली दूर होती है।

भूनिम्बादि घृत—घी ४ सेर, चिरायता, नीमका पत्ता, त्रिफला, परवरका पत्ता, डहरकरञ्ज की बीज, जातीपत्र, खैरकी लकड़ी और असन छाल प्रत्येक एक एक सेर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर काढा; तथा उक्त सब द्रव्य एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपदंशमें प्रयोग करना।

गोजी तैल—तिलका तैल ४ सेर; गोजिया, विड़ंग, मुलेठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कक्कोल, फल, अगरू, कुंकुम और लौंग सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि पाककर प्रयोग करनेसे उपदंश आराम होता है।

कुष्ठ और श्वित्र।

मंजिष्ठादि काढा—मजीठ, सोमराजी, चकवड की बीज, नीमकी छाल, हरीतकी, हल्दी, आंवला, अडूसेका पत्ता, शतावर, बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, सुरक बीज, परवरका पत्ता, खसकी जड, गुरिच और लालचन्दन; इन सबका काढा कुष्ठ नाशक है।

अमृतादि—गुरिच, एरण्डमूल, अडूसेकी छाल, सोमराजी और हरीतकी का काढा कुष्ठऔर वातरक्त नाशक है।

पंच निम्ब—नीमका पत्ता, फूल, छाल, जड और फल इन सबका समभाग चूर्ण गोमूत्र अथवा दूधके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, विसर्प और अर्श आराम होता है।

पंचतिक्तघृत गुग्गुलु।—घी ४ सेर; नीमकी छाल, गुरिच अडूसेकी छाल, परवरका पत्ता और कंटकारी प्रत्येक १० पल, पोटलीमें बंधा हुआ गग्गुलु ५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर छानकर वही पोटलीका गुग्गुल इस काढेमें मिलाकर घीके साथ औटाना। तथा अम्बठा, विडङ्ग, देवदारू, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, सोवा, चाभ, कूठ, लताफटकी, मिरच, इन्द्रयव, जीरा, चीतामूल, कुटकी भेलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजमोदा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठ, भगन्दर, नाडीव्रण और विषदोष आदि दूर होता है।

अमृतभल्लातक।—सोधा हुआ भेलावा ८ सेर, दो दो टुकडे़कर ३२ सेर पानी· टाना ८ सेर पानी रहते छान लेना तथा ८ सेर घीमें यह काढा औटाना। पाकशेष होनेपर ४ सेर चीनी मिला ७ दिन रख छे । चार आनेभर से आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठादि रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य आदि की वृद्धि होती है।

अन्तर्तांकुर लौह।—पारा एक पल और गन्धक एक पलकी कज्जली बना पत्थरके पात्रमें रखना तथा उसके ऊपर गरम ताम्बेका पत्तर दबाकर पर्पटीकी तरह करना। फिर वह कज्जली और लोहा एक एक पल, ताम्बा १ पल, भेलावेका रस १ पल, अवरख, एक पल, गुग्गुलु १ पल, और घी १६ पल, एकत्र ४ सेर त्रिफलाके काढेमें औटाना। पाकशेष होनेपर हरेंका चूर्ण ४ तोले, बहेडे़का चूर्ण ४ तोले और आवलेका चूर्ण १२ तोले मिला देना। पहिले एक रत्ती मात्रा फिर सहने पर

मात्रा बढ़ाना, यह औषध सेवन करनेसे कुष्ठ आदि रोग दूर होते है, तथा बल, वीर्य और आयु बढ़ती है। अनुपान,—घी और सहतमें मिलाकर नारियलका पानी अथवा दूधके साथ मिलाकर पीना चाहिये। यह दवा लौहपात्रमें लौहदण्डसे बनाना उचित है।

तालकेश्वर रस।—दो मासे हरिताल को भतुवेका रस, त्रिफला भिगोया पानी, तिलका तेल, घिकुआरका रस और काञ्जीको भावना देना। फिर गन्धक २ मासे और पारा दो मासेको कज्जली उस हरितालमें मिलाना, तथा छाग दूध, नीबूका रस और घिकुआरके रसको तीन तीन दिन भावना देकर छोटी टिकरी बनाना। सूखजानेपर एक हांडोमें पलाशका चार रख उसके भीतर टिकरी रखकर १२ पहर आगमें रख ठण्ढा होनेपर निकाल लेना। दो रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ कुष्ठादि रोगोंमें प्रयोग करना।

रसमाणिक्य —वंशपत्र हरिताल को भतुवेका रस और खट्टी दहीको ३ बार या ७ बार भावना दे छोटा छोटा टुकरा करना, फिर एक सिकोरेमें रख दूसरा सिकोरा औंधाढाक बरका पत्ता और मिट्टीका लेप करना। फिर एक खाली हांडीके उपर वह सिकोरा रख हांडी चूल्हेपर रखना। हांडी लाल होजानेपर औषध बाहर निकाल लेना। इस रीतिसे हरताल माणिक्य की तरह चमकीला होगा। मात्रा २ रत्ती घी और सहतके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ट, उपदंश और भगन्दर आदि रोग शान्त होता है। श्रीमहादेवजी की पूजाकर यह औषध सेवन करना उचित है।

पञ्चतिक्त घृत—घी सेर; नीमकी छाल, परवरका पत्त

कटेली, गुरिच और अडूसेकी छाल प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढा और त्रिफलाका कल्क एक सेर; यथा विधि औटाकर आधा तोला मात्रा कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, दुष्टव्रण और क्रिमि आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

महासिन्दूराद्य तैल।—सरसोंका तेल ४ सेर; मटिया सिन्दूर, लालचन्दन, जटामांसी, वायविडङ्ग, हल्दी दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, कूठ, मजीठ, खदिरकाष्ठ, बच, जातीपत्र, अकवनका पत्ता, तेवडी, नीमकी छाल, डहरकरञ्जको बोज, मिठाविष, सुरक, लोध और चकवडकी बीज, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठरोग आराम होता है।

सोमराजी तेल—सरसोंका तेल १ सेर, पानी १६ सेर, सोम राजीकी बीज, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद रससो, कूठ, डहरकरञ्ज की बोज, चकवडकी जड़ और अमिलतासका पत्ता सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे कुष्ठ, वातरक्त, फोडा और नासूर आराम होता है।

वृहत् सोमराजी तैल।—सरसोंका तेल १६ सेर; सोमराजी और चकवड को बीज अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना, गोमूत्र १६ सेर; तथा चीतामूल, ईशलाङ्गला, सोंठ, कूठ, हल्दी डहरकरञ्ज की बोज हरताल, मेनसिल, हापरमाली, अकवन की जड़, करवीर की जड़, छतिवनकी जड़, गोबरका रस, खदिरकाष्ठ, नीमका पत्ता, गोलमिरच और कालकासुन्दा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर कुष्ठादि रोगमें मालिश करना।

मरिचादि तेल—सरसोंका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, मिरच, हरताल, मैनसिल, मोथा अकवनका दूध, करवीरकी जड, तेवड़ीकी जड़ गोबरका रस, इन्द्रायणकी जड, कूठ, हल्दी दारुहल्दी, देवदारु और लालचन्दन प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क और मीठाविष ८ तोले यथाविधि औटाकर कुष्ठ और श्वित्र आदिमें मालिश करना।

कन्दर्पसार तेल।—सरसोंका तेल ४ सेर, छतिवनकी छाल, चुरक, गुरिच, नीमकी छाल, शिरीषकी छाल, घोडनीम, जयन्ती बच, तितलौकी, इन्द्रायण और हलदी प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर ; गोमूत्र १६ सेर, अमिलतासका पत्ता, भङ्गरैया, जयन्तीपत्र, धतूरेका पत्ता, हलदी, भांगकी पत्ती, चीताका पत्ता, खजूरका पत्ता, अकवनका पत्ता, सेहुंडका पत्ता प्रत्येकका रस चार चार सेर ; गोबरका रस ४ सेर, माकाल, बच, ब्रह्मोशाक, तितलौकी, चीतामूल, घिकुआर, कुचिला, परवरका पत्ता, हलदी, मोथा, पीपलामूल, अमिलतास का गूदा, अकवनका दूध, कालकासुन्दाकी जड, ईशमूल, आचमूल, मजीठ, कड़वा परवर, इन्द्रायणकी जड, बिछौटीका पत्ता, करञ्ज-मूल, हापरमाली, मूर्व्वामूल, छतिवनकी छाल, शिरीषकी छाल, कुतैयाकी छाल, नीमकी छाल, घोडनीमकी छाल, गुरिच, बाकुच बीज, सोमराजी (२ भाग) चकवडकी बीज, धनिया, भीमराज, मुलेठी, जङ्गली सूरण, कुटकी, शठी, दारुहलदी, तेवडी की जड, पद्मकाष्ठ, गेंठेला, अगरु, कूठ, कपूर, कायफल, जटामांसी, मूरा-मामी, इलायची, अदूसेकी छाल और खसकी जड प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठ, श्वित्र और गलगण्डादि रोग दूर होता है।

शीतपित्त।

हरिद्राखण्ड।—हलदी ८ पल, घी ६ पल, गायका दूध १६ सेर, चीनी ६। सवा छ सेर, एकत्र पाक करना, पाकशेष में त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविडङ्ग, तेवड़ीमूल, त्रिफला, नागेश्वर, मोथा और लोहा प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्त, उदर्द, कोठ और पाण्डु आदि रोग दूर होते है।

वृहत् हरिद्राखण्ड।—हलदीका चूर्ण आधा सेर, तेवड़ीका चूर्ण ४ पल, हर्रेका चूर्ण ४ पल, चीनी ५ सेर; दारु-हलदी, मोथा, अजवाइन, अजमोदा, चीतामूल, कुटकी, काला-जीरा, पीपल, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, वायविडंग, गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, ठ, हर्र, बहेड़ा, आंवला, चाभ, धनिया, लोहा और अवरख प्रत्येक एक एक तोला; एकत्र हलकी आंचमें घोटाना; आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्तादि पीड़ा और दाद आराम होते है।

यार्द्रकखण्ड—अदरखका रस ४ सेर, गायका घी दो सेर, गायका दूध ४ सेर, चीनी दो सेर; पिपलामूल, मिरच, चीता-मूल, वायविडंग, मोथा, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता और सठी प्रत्येक एक एक पल, यथाविधि घोटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे शीतपित्तादि रोग दूर होता है। यह यक्ष्मा और रक्तपित्त रोगमें भी उपकारी है।

अम्लपित्त

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, कालानमक वायविड़ङ्ग, इलायची और तेजपत्ता प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और चीनी ६६ तोला ; एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त,मलमूत्र रोध और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता है।

वृहत् पिप्पलीखण्ड।—पीपलचूर्ण आधा सेर, घी एक सेर, चीनी दो सेर, सतावरका रस एक सेर, आंवलेका रस दो सेर, दूध ८ सेर ; एकत्र यथाविधि औटाकर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, हर्रं, कालाजीरा, धनिया, मोथा, वंशलोचन और आंवला प्रत्येक दो दो तोले , तथा जीरा, कूठ, सोंठ और नागेश्वर प्रत्येक एक एक तोला मिलाना, ठण्ढा होनेपर जायफलका चूर्ण, मरिचका चूर्ण और सहत प्रत्येक तीन तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम. धके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, वमनवेग, वमि, अरुचि, अग्निमान्द्य और क्षयरोग आराम होता है।

शुण्ठीखण्ड ।—सोंठका चूर्ण आधा सेर, चीनी दो सेर, घी एक सेर, दूध ८ सेर, एकत्र यथाविधि औटाकर आंवला, धनिया मोथा, जीरा पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कालाजीरा और हर्रा प्रत्येक १॥ तोला, मिरच और नागेश्वर प्रत्येक ॥) आनेभर मिलाना। ठण्ढा होनेपर सहत ४ पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल और वमन आराम होता है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक ।—त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवाईन, लोहा, अबरख, काकड़ाशिंगी, कायफल, मोथा, इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, गन्धमात्रा, शठी, सुनैठी, लौंग और लालचन्दन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर सोंठका चूर्ण, सोंठके चूर्णके साथ सब चूर्ण की दूनी चीनी और समष्टीका चौगूना गायका घी यथाविधि टाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा दूध या पान के साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त शूल, अग्निमान्द्य, अरुचि और दौर्बल्य दूर होता है।

सितामण्डूर ।—पहिले मण्डूर सातबार आगमें गरम कर गोमूत्रमें बुझाकर शोध लेना। शोधा हुआ मण्डूरका चूर्ण १ पल, चीनी ५ पल, पुराना घी ८ पल, गायका दूध १६ पल; एकत्र यथाविधि औटाकर त्रकटु, मुलेठी, इलायची, जवासा, वायविडङ्ग, त्रिफला कूठ और लौंगका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्डा होनेपर २ पल मधु मिलाना। आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले धके साथ सेवन करने से अम्लपित्त, शूल, वमि, आनाह और प्रमेह आराम होता है।

पानीयभक्त वटी ।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तेवडी और चीतामूल प्रत्येक दो दो तोले, पारा और गन्धक आधा आधा तोला, लोहा, अभ्र और विडङ्ग चार चार तोले एकत्र त्रिफलाके काढेमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। कांजीके अनुपानमें सवेरे सेवन करनेसे शूल, श्वास, काम और ग्रहणी दूर होती है।

क्षुधावती गुड़िका ।—पारा, गन्धक, लोहा, त्रिकटु, त्रिफला, वच, अजवाईन, मोथा, चाभ, जीरा और कालाजीरा,

प्रत्येक एक एक पल, पुनर्नवा, मानकन्द, पोपलामूल, इन्द्रयव, केशुरिया, पञ्चगुरिच, दानकुनोमूल, तेवड़ी मूल, जयन्तीमूल, हुड़हुड़मूल, रक्तचन्दन, भीमराज, चिरचिड़ी की जड़, घरवरका पत्ता और खुलकुड़ी, प्रत्येक चार चार तोले; एक अदरखके रसमें खलकर बैरके गुठली बराबर गोली बनाना। अनुपान कांजोके साथ सवेरे सेवन करनेसे, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि रोग आराम होता है।

लीलाविलास रस—पारा, गन्धक, अबरख, ताम्बा और लोहा प्रत्येक समभाग, एकत्र आंवलेका रस और बहेड़े के काढ़ेकी तीन दिन भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। पुराने भतुवेका पानी, आंवलेका रस या दूध साथ सेवन करनेसे अम्ल-पित्त, शूल, वमन और छातीकी जलन दूर होता है।

अम्लपित्तान्तक लौह—रससिन्दूर, ताम्बा और लोहा प्रत्येक एक एक तोला, हर्रेका चूर्ण ३ तोले; एकत्र मिलाकर एक माशा अर्थात् दो आनेभर सहतके साथ चाटनेसे अम्लपित्त आराम होताहै।

सर्व्वतोभद्र रस।—लोहा, ताम्बा और अबरख प्रत्येक आठ आठ तोले, पारा दो तोले, गन्धक २ तोले, स्वर्णमाक्षिक २ तोले, मैनसिल २ तोले, स्वर्णमाक्षिक २ तोले, गुग्गुलु दो तोले, विडंग, भेलावा, चीतामूल, सफेद अकवन को जड़, हस्तिकर्ण-पलाश की जड़, तालमूली, पुनर्नवा, मोथा, गुरिच, गुलशकरी, चकवड़की बीज, मुंडरी, भीमराज, केशुरिया, शतावर, बधारेको बीज, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक चार चार मासे; यह सब द्रव्य एकत्र घी और सहतके साथ खलकर एक आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करसे उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, शूल, रक्तपित्त, अर्श, वातरक्त, अग्निमा . पांडु, कामला, श्वास, काम प्रभृति रोग शान्त होता है।

पिप्पली घृत—घी ४ सेर, पिपलका काढा ८ सेर और पीपल का कल्क एकसेर, यथाविधि पाककर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त आराम होता है।

द्राक्षाद्य घृत—मुनक्का, गुरिच, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, खसकी जड, आंवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायमाणा, पद्मकाठ, चिरायता और धनिया सब मिल कर एक सेरका कल्क, तथा १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और कास आदि रोग दूर होता है।

श्रीविल्व तैल।—तिलका तेल ४ सेर, बेलकी गिरी १२॥ सेर, पानी ६४ सेर और १६ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, दूध ८ सेर, आंवला, लाह, हर्रा मोथा, लालचन्दन, वाला, सरलकाठ, देवदारु, मजीठ, सफेद चन्दन, कूठ, इलायची, तगर-पादुका, जटामासी, शैलज, तेजपत्ता, प्रियगु, अनन्तमूल, बच, शतावर, असगन्ध, सोवा और पुनर्नवा सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे अम्लपित्त, शूल, हाथ पैरकी जलन और सूतिका रोग आराम होता है।

विसर्प और विस्फोट।

अमृतादि कषाय। गुरिच, अडूसेकी जड़की छाल, परवरका पत्ता, मोथा, छतिवनकी छाल, खदिरकाठ कालावेतस की जड, नीमका पत्ता, हल्दी और दारुहल्दी; इन सबका काढा घीमें

विविध विषदोष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कंडू और मसूरिका दूर होती है।

नवकषाय गुग्गुल गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, त्रिफला, खदिरसार और अमिलतास ; इन सबके काढ़ेमें आधातोला गुग्गुल मिलाकर पीनेसे विसर्प और कुष्ठ रोग आराम होता है।

कालाग्निरुद्र रस।—पारा, अवरख, कान्तलौह भस्म, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक समभाग ; एकत्र जङ्गली कांकरोलके रसमें एक दिन खलकर जंगली कांकरोलमें भरना, तथा चारो तरफ मिट्टी लपेटकर गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होने पर औषध बाहर निकाल लेना, तथा उसका दशवा हिस्सा मिठाविषका चूर्ण मिला २ रत्ती मात्रा पीपलका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे विसर्प रोग आराम होता हैं। अवस्थानुसार मात्रा बढा भी सकते है।

वृषाद्य घृत—अडूसेकी छाल, खेरकी लकडी, परवरका पत्ता, नीमकीछाल, गुरिच और आंवला इन सबका काढा ८ सेर, तथा कल्क १ सेरके साथ यथाविधि ४ सेर घी औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे विसर्प कुष्ट और गुल्मरोग आराम होता है।

पञ्चतिक्तक घृत—परवरका पत्ता, कतिवनकी छाल, नीमकी छाल, अडूसेकी छाल और गुरिच, इन सबका काढा ८ सेर और त्रिफलेका कल्क एक सेरके साथ ४ सेर घी औटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करनेसे विस्फोट विसर्प और कफरोग आराम होता है।

करञ्ज तैल—सरसोका तैल ४ सेर, डहरकरंज, छतिवनकी छाल, ईशलांगला, सेहुंड और मकयनका दूध, चीतामूल, भीमराज, हल्दी और मिठाविष मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर ;

यथाविधि औटाकर प्रयोग करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका रोग दूर होता है।

मसूरिका।

निम्बादि—नीमकी छाल, दवनपापडा, अम्बष्ठा, परवरका पत्ता, कुटकी, अडूसेकी छाल, जवासा, आंवला, खसकी जड, श्वेत चन्दन और लालचन्दन, इन सबके काढेमें चीनी मिलाकर पीनेसे ज्वर और मसूरिका दूर होती है तथा जिनकी गोटी एकदफे निकलकर बैठ जाती है वह फिर निकलती है।

ऊषणादि चूर्ण—मिरच, पीपलामूल, कूठ, गजपीपल, मोथा, मुलेठी, मूर्वामूल, बारंगी, मोचरस, वंशलोचन, जवाखार, मजीठ, अडूसेकी छाल, गोखुर, बृहती और कण्टकारी, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका रोमान्ती, विस्फोट और ज्वर आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस—सिन्दूर, अभ्रक रांगा, सोना और मैनसिल प्रत्येक समभाग, वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र पानीमें घसकर दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका आराम होता है।

इन्दुकला वटिका—शिलाजीत, लोहा और स्वर्ण प्रत्येक सम-भाग बनतुलसीके रसमें घसकर एक रत्ती बराबर गोटी बनाना। यह भी मसूरिका नाशक है।

एलादारिष्ट।—इलायची ५० पल, अडूसेकी छाल २० पल, मजीठ, कुरैयाकी छाल, दन्तीमूल, गुरिच, हलदी, दारुहल्दी,

रास्ना, खसको जड़, मुलेठो, शिरीष छाल, खैरकी लकड़ी, अर्जुनछाल, चिरायता, नीमकी छाल, चीतामूल, कूठ और सौंफ; प्रत्येक दश दश पल, पानी ५१२ सेर शेष ६४ सेर, यह काढ़ा ठण्ढा होनेपर धवईका फूल १६ पल, महत ३७॥ सेर, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची; नागेश्वर, सोंठ, पीपल; मिरच, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, जटामांसी, मूरामासी, शैलज, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक आठ आठ तोले मिला मुह बन्दकर एक महीना रख देना। फिर छानकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे, रोमान्ति, मसूरिका, शीतपित्त, विस्फोट, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पिड़का द विविध रोग शान्त होता है।

क्षुद्ररोग।

चांगेरी घृत—घी एक सेर, चांगेरीका रस, सूखी मूलीका काढ़ा और खट्टा दही सम मिलाकर १६ सेर; तथा सोंठ और जवाखार प्रत्येक १० तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे गुदभ्रंशका दर्द दूर होता है।

हरिद्राद्य तैल।—हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, लालचन्दन, पुण्डरिया, मजीठ, पद्मपुष्प, पद्मकाष्ठ, केशर और कयेथ, गाव, पाकुर और बड़ इन सबके पत्तेका कल्क और चौगूने दूधके साथ यथाविधि तैल पाककर मर्द्दन करनेसे युवानपिड़िका व्यङ्ग, नीलिका और तिलकालक आदि रोग दूर होता हैं।

कुङ्कुमाद्य तैल।—तिलका तैल आधा सेर, क्वाथार्थ—लालचन्दन, लाह, मजीठ, मुलेठी, खसकी जड, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, बडकीमोर, पाकुरका टूसा, पद्मकेशर और दशमूल प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर; मजीठ, महुआ, लाह, लालचन्दन और मुलेठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; बकरीका दूध एक सेर; यथाविधि औटाना पाकशेष होनेपर केशर ४ तोले मिलाकर लेप करनेसे पिडिका, नीलिका और व्यङ्ग आदि पीडा दूर हो मुखज्योति बढती है।

हिहरिद्राद्य तैल।—कडुवा तेल ४ सेर, हरदी, दारुहल्दी, चिरायता, त्रिफला, नीमकी छाल और लालचन्दन प्रत्येक एक एक पलका कल्क; पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मस्तकमें लेप करनेसे अरुंषिका रोग दूर होता है।

त्रिफलाद्य तेल।—तिलका तैल ४ सेर, त्रिफलाचूर्ण, जटामासी, भंगरैया, अनन्तमूल और सैन्धवलवण मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे रूचि दूर होता है।

वन्हितैल।—चीतामूल दन्तीमूल और घोषालता यह तीन द्रव्यके कल्कमें तैल पाककर केशदद्रुमें प्रयोग करना।

मालत्याद्य तैल।—तिलका तैल एक सेर, मालतीपत्र, करवीरकी जड, चीतामूल, और डहरकञ्ज की बीज, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर; यथाविधि औटाकर टाक और दारुणक रोगमें मालिश करना।

स्नुह्याद्य तैल।—सरसोका तैल ४ सेर, छागमूत्र ८ सेर, गोमूत्र ८ सेर; सेहुंडका दूध, अकवनका दूध, भंगरैया, ईशलांगला, मृणाल, घुंघुची, इन्द्रायणकी जड, और सफेद सरसो प्रत्येक

एक एक पल ; यथाविधि औटाकर टाकमें मालिश करनेसे अति दुःसाध्य टाक भी आराम होता है।

यष्टिमध्वाद्य तैल।—तिलका तैल एक सेर, दूध ४ सेर, मुलेठी ८ तोले और आंवला ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर नस्य लेने और मर्द्दन करलेसे केश और श्मश्रु पैदा होता है।

महानील तैल।—तिलका तैल १६ सेर, बहेड़ेका काढ़ा ६४ सेर, आंवलेका रस ६४ सेर, कुड़कुड़ की जड़, कालीझिंटी तुलसीका पत्ता, कृष्णशणकी जड़, भीमराज, काकमाची, मुलेठी और देवदारु, प्रत्येक १० पल ; पीपल, त्रिफला, रसाञ्जन, पौण्ड्रीक, मजीठ, लोध, कृष्णागुरु, नीलोत्पल, आम्रकेशी, कृष्णकर्द्दम, मृणाल, लालचन्दन, नीलकाठ, भेलावा, हीराकस, मल्लिकाफूल, सोमराजी, अशनछाल, लौहचूर्ण, कृष्णपुष्प, मदनछाल, चीतामूल, अर्ज्जुनपुष्प, गाम्भारीपुष्प, आम्रफल, जामून प्रत्येक पांच पांच पल ; यथाविधि औटाकर थोड़ी देर धूपमें रख, फिर छानकर लोहेके पात्रमें रखना। यह तैल नस्य, पान और मर्द्दनार्थ प्रयोग करनेसे शिरोरोग और केशकी अकालपकता दूर होती है।

सप्तच्छदादि तैल।—तिल तैल ४ सेर, छतिवनकी छाल, अडूसेकी छाल और नीमकी छाल प्रत्येक का काढ़ा १६ सेर, हलदी, दारुहलदी, हर्रा, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, मजीठ, खदिरकाठ, जवाखार और सैन्धव मिलाकर एक सेरका कल्क गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि इसकी पात्रमें औटाकर मालिश करनेसे पद्मिनीकण्टक चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्द्दभ आदि पीड़ा दूर होती है।

कुंकुमादि घृत।—घी एक सेर, चीतामूलका काढ़ा ४ सेर; केशर हल्दी, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक ४ तोले यथाविधि औटाकर पान नस्य और मालिश करनेसे नीलिका युवानपिडिका सिध्म और शिरोरोग आराम होता है।

सहचर घृत।—घी सेर, पीतझिंटी १२॥ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; शिरीष छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; पीपलामूल, चाभ चीतामूल, सोंठ, वायविड़ंग पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, बिछौटी की जड़, मटियासिन्दूर और गेरूमिट्टी मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे व्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अंगुलिवेष्टक, पाददारी और युवानपिडका दूर होती है।

मुखरोग।

— § —

दन्तरोगाशनि चूर्ण।—जातीपत्र, पुनर्नवा, तिल, पीपल, झाटीपत्र, मोथा, वच, सोंठ, अजवाइन और हर्रे इन सबके समभाग चूर्णमें घी मिलाकर मुहमें रखनेसे दांतकी क्रिमि, कण्डु, सूल और दुर्गन्ध दूर होता है।

दशनसंस्कार चूर्ण।—सोंठ, हर्रो, मोथा, खेर, कपूर, सुपारी भस्म, मिरच, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर सफेद मिट्टीका चूर्ण एकत्र मिलाकर दांत मलनेसे दन्त और मुखरोग दूर होता है।

कालक चूर्ण।—जाला, जवाखार, अम्बष्ठा, त्रिकटु रसाञ्जन, चाभ, त्रिफला, लौहचूर्ण और चीतामूल एकत्र सहतमें मिलाकर

मुहमें रखनेसे तालरोग तथा दन्त, जिह्वा और मुखरोग दूर होता है।

पीतक चूर्ण।—मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक, और दारुहल्दी, इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर मुहमें धारण करनेसे कण्ठरोग दूर होता है।

क्षारगुड़िका।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, तालीशपत्र, इलायची, मिरच, दालचीनी, पलाशका चार, घण्टापाटलाका चार और जवाखार, यह सब द्रव्य दूने गुडमें औटाकर बैर बराबर गोली बनाना, तथा गोली सात दिन घण्टा पारूलके चारमें रखकर मुहमे धारण करनेसे कंठरोग आराम होता है।

यवचारादि गुटी—जवाखार, लताफटकी या चाभ, चम्बहा, रसाञ्जन, दारुहल्दी और पीपल, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर गुडिका बना मुहमे रखनेसे गलरोग दूर होता है।

सप्तच्छदादि काढ़ा—छतिवनको छाल, खसकी जड, परवर का पत्ता, मोथा, हर्रा कुटकी, मुलेठी, अमिलतास और लाल-चन्दन, इन सबका काढा पीनेसे मुखके भीतरका घाव आराम होता है।

पटोलादि काढा—परवरका पत्ता, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण की जड, त्रायमाणा, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, और गुरिचके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे या मुहमें धारण करनेमे मुखरोग दूर होता है।

खदिर वटिका—खैर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, इस काढेमें जावित्री, कपूर, सुपारी, बबूलका पत्ता, और कायफल, प्रत्येक आठ आठ तोले मिलाकर गुड़िका बनाना। यह

गुड़िका मुहमें धारण करनेसे दन्त, ओष्ठ, जिह्वा, तालु और मुख-रोग दूर होते है।

वृहत खदिर वटिका।—खेर १२॥ सेर, बबूलकी छाल ३१। सेर, पानी २५ सेर, शेष ६४ सेर, यह काढा छानकर फिर औटाकर गाढ़ा करना, तथा इलायची, खसकी जड़, श्वेत-चन्दन, लालचन्दन, बाला, प्रियङ्गु, तमालपत्र, मजीठ, मोथा, अगरु, मुलेठी, बराहक्रान्ता, त्रिफला, रसांजन, धवईका फूल, नागेश्वर, पुण्डरिया, गेरुमिट्टी, दारहलदी, कटफल, पद्मकाष्ठ, लोध, बड़कीसोर, जवासा, जटामांसी, हलदी, रास्ना, शोंठ, दालचीनी प्रत्येक दो दो तोले; ककोलफल, जायफल, जाविती, और लौंग प्रत्येक आठ आठ तोले उसमे मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर कपूर मिलाकर मटर बराबर गोली बनाना। यह गोली मुहमें धारण करनेसे ओष्ठ, जिह्वा, दन्त, और तालुगत रोग दूर होता है तथा मुख स्वादिष्ट और सुगन्ध, तथा दांत दृढ़ और जीभ साफ होती है।

बकुलाद्य तल।—तिलतल ४ सेर, मौलसरीका फूल, लोध, छड़जोड़ नीलझांटी अमिलतासका पत्ता, बनतुलसी, साख और बबूल तथा असनकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; यह काढ़ा तथा उक्त सब द्रव्य मिलाकर एक सेरका कल्क यथा-विधि औटाकर मुहमें धारण करनेसे तथा नास लेनेसे हिलता हुआ दांत मजबूत होता है।

कर्णरोग।

भैरव रस।—पारा, गन्धक, मोठाविष, सोहागेका लावा, कौड़ी भस्म और गोलमिरच का चूर्ण प्रत्येक समभाग अादीके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान अादीके रसमें सेवन करनेसे कर्णरोग और अग्निमान्द्य आराम होता है।

इन्दुवटी—शिलाजीत, अवरख और लोहा प्रत्येक एक एक भाग, और सोनेका भस्म चार आनेभर एकत्र काकमाची, शतावर, अांवला और पद्मके रसको भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या काढेके साथ सेवन करनेसे कर्णनादादि वातज पीडा और प्रमेह आराम होता है।

सारिवादि वटी।—अनन्तमूल, मुलेठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, प्रियंगु, नीलोत्पल, गुरिच, लौंग, हर्रा, आंवला और वहेड़ा, प्रत्येक समभाग, सबहीके बराबर अबरख और अबरखके बराबर लोहा, एकत्र केशुरियाका रस, अर्जुन छालका काढ़ा, जौका काढ़ा, काकमाचीका रस और घुंघुचीके जड़के काढ़ेकी भावना दे दो रत्ती बराबर गोली बनाना। धारोष्ण दूध, शतावरका रस अथवा चन्दनके साथ सेवन करनेसे वातज कर्णरोग, प्रमेह और रक्तपित्त आराम होता है।

दीपिका तैल—महत् पञ्चमूलकी काठ अथवा लकड़ीमें अथवा देवदारु और सरलकाष्ठमें तेलसे भिगोया रेशमी वस्त्र लपेटकर जलाना। उससे से जो तेलका बुंद गिरेगा उसीको दीपिका तैल कहते हैं। यह तैल गरमकर कानमें डालनेसे तुरत दर्द शान्त होता है।

दशमूली तेल—तिल तेल ४ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा तथा एक सेर दशमूलका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे बहिरापन दूर होता है।

जम्ब्वाद्य तेल—नीम, करञ्ज अथवा सरसोंका तेल एक सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा लहसन, आंवला और हरताल सब मिलाकर दो पलका कल्क, यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे कर्णस्राव बन्द होता है।

शम्बूक तेल—सरसोंके तेलमें घोंघेका मांस औटाकर कानमें डालनेसे कर्णनाली दूर होती है।

निशातेल—सरसोंका तेल एक सेर, धतूरेके पत्तेका रस ४ सेर तथा हलदी ८ तोले और गन्धक ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे कर्णनाली दूर होता है।

कुष्ठाद्य तेल—तिलका तेल एक सेर, छागमूत्र ४ सेर; और कूठ, बच, देवदारु, सोवा, सोंठ और सैन्धव सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे पूतिकर्ण दूर होता है।

नासारोग।

व्योषाद्य चूर्ण—त्रिकटु, चीतामूल, तालीशपत्र, इमली, अम्लवेतस, चाभ, और कालाजीरा सब मिलाकर दोपल, इलायची, तेजपत्ता और दालचीनी मिलाकर ४ तोले, पुराना गुड़ ५० पल; एक औटाकर ४ आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, श्वास, कास, अरुचि और स्वरभङ्ग आराम होता है।

शिग्रुतैल—सेजनकी बीज, वृहती बीज, दन्तीबीज, त्रिकटु और सैन्धवका कल्क और बेलके पत्तेके रसके साथ यथाविधि तैल औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य रोग दूर होता है।

व्याघ्रीतैल—सरसोंका तैल १ सेर, पानी ४ सेर; तथा कण्टकारी, दन्तीमूल, वच, सेजनकी छाल, निर्गुण्डी, त्रिकटु, और सैन्धव मिलाकर १५ तोलेके कल्क; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य दूर होता है।

चित्रक हरीतकी।—पुराना गुड़ १२॥ सेर, चीतामूल ६। सवा छ सेर, पानी ५० सेर, शेष १२॥ सेर; गुरिच ६। सेर, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; दशमूल प्रत्येक पांच पांच पल, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; यह तीनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसके साथ गुड़ मिलाना तथा हर्रेका चूर्ण ८ सेर मिलाकर औटाना। पाकशेष में सोंठ, पीपल, मिरच, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल और जवाखार ४ तोले मिलाना। तथा दूसरे दिन २ सेर मधु मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, नासारोग, कास, क्षय और अग्निमान्द्य शान्त होता है।

लक्ष्मीविलास।—अबरख ८ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक चार चार तोले, विधारेकी बीज, भांगकी बीज, विदारीकन्दकी जड़, सतावर, गुलशकरी की जड़, बरियारेकी जड़ गोखुर बीज, और (निसुन) ईसनकी बीज प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानके रसमें घूमकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान मधु और पानका रसमें याश्तोव ऋेष्म विकारमें प्रयोग करना।

करवीराद्य तैल—तिलका तेल एक सेर, लाल कनेलका फूल जातीपुष्प, अशनपुष्प और मल्लिका पुष्प, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श रोग आराम होता है।

मुर्व्वाद्य तैल—चौगूने दूर्व्वाघासके रसमें तेल औटाकर नास लेनेसे नासारोग और रक्तस्राव बन्द होता है।

चित्रक तैल—तिलका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, चीता-मूल, चाभ, अजवाईन, कण्टकारी, करञ्जबीज, सेन्धानमक और चकवनका दूध सब मिलाकर एकसेर का कल्क, यथाविधि औटा-कर नास लेनेसे नासार्श दूर होता है।

नेत्ररोग।

चन्द्रोदयवर्त्ती।—हरीतकी, बच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेडेके गुठलीका गूदा, शङ्खनाभि और मैनसिल, यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाना। यह बत्ती मधुमें घिसकर आंखमें लगानेसे आंखकी खुजली, तिमिर, फूली, अर्व्वुद, अधि-मांस, कुसुम और रातअन्धता आदि रोग दूर हो दृष्टि प्रसन्न होती है।

वृहत् चन्द्रोदय वर्त्ती—रसांजन, इलायची, केशर, मैनसिल, शंखनाभि, सैजनकी बीज और चीनी; एकत्र पानीके साथ खल-कर बत्ती बनाना। पूर्व्ववत अञ्जन करनेसे पूर्व्वोक्त रोग दूर होता है।

चन्द्रप्रभावर्त्ती—रसांजन, सैजनको बीज, पीपल, मुलेठी, वहेड़ेके बोजका गूदा, शंखनाभि और सेनसिल, सब सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर वर्त्ती बनाना, छायामें सुखाकर इस वर्त्तीका अञ्जन करनेसे यावतीय चक्षुरोग आराम होता है।

नागाद्य नाञ्जन।—त्रिफला, त्रिकटु, सैन्धव, मुलेठी, तूतिया, रसांजन, पुण्डरिया, वायविडंग, लोध और ताम्बा एकत्र ओसके पानीमें खलकर वर्त्ती बनाना। यह वर्त्ती स्त्री दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे तिमिर रोग, किंशुक फूलके रसमें घिसकर अञ्जन करनेसे आंखकी फूली और छाग दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे माड़ा दूर होता है।

विभीतकादि क्वाथ—वहेड़ा, हर्रा, आंवला, परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छाल, इन सबके काढ़ेमें गूगल मिलाकर पीनेसे चक्षुशूल, शोथ और आंखकी लाली दूर होती है।

वृहत् वासादि।—अडूसेकी छाल मोथा, नीमको छाल, परवरका पत्ता, कुटकी, गुरिच, लालचन्दन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दारुहलदी, चीतामूल, सोंठ, चिरायता, आंवला हर्रा, वहेड़ा, श्यामालता और जो सब मिलाकर ४ तोले, पानी दो सेर, शेष आधा पाव, सबेरे यह काढा पीनेसे तिमिर, कण्डू, फूली और अर्व्वुद आदि नेत्ररोग दूर होते है।

नयनचन्द्र लौह।—त्रिकटु, त्रिफला, काकडाशिंगी, शटी, रास्ना, सोंठ, मुनक्का, नीलाकमल, काकोली, मुलेठी, हरियारा, नागेश्वर एकत्र त्रिफलेका काढा, तिल तैल और भीमराजके रसको भावना दे बेरकी गुठली बराबर गोली बनाना। त्रिफला भिगोया पानोके साथ सेवन करनेसे यावतीय नेत्ररोग शान्त होता है।

महात्रिफलाद्य घृत।—घी ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी ।६ सेर शेष ४ सेर, यह काढा, तथा भंगरैयाका रस ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर अथवा अडूसेका काढा ४ सेर, सता वरका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, गुरिचका रस या काढा ४ सेर, आंवले : सेर, तथा पीपल, चीनी, मुनक्का, त्रिफला नीलाकमल, मुलेठी, चीरकाकोली, गुरिच और कण्टकारी सब मिलाकर एकसेरका कल्क, यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले मध्यमें और पीछे आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन कर-सब प्रकारका नेत्ररोग आराम हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

शिरोरोग।

शिरशूलाद्रिवज्र रस।—पारा, गंधक, लोहा और तेवडी प्रत्येक एक एक पल, गूगल ४ पल, त्रिफलाका चूर्ण दो पल, कूठ मुलेठी, पीपल, सोंठ, गोखुर, वायविडङ्ग और दशमूल प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र दशमूलके काढेकी भावना देना फिर घीमें खलकर ८ मासे बराबर गोली बनाना। बकरीका दूध पानी या मधुके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शिररोग दूर होता है।

षड्बिन्दी नाटकेश्वर—कौडीभस्म २५ तोले, सोहागेका लावा २॥ तोले, मिरच ४॥ तोले, सिंगरफ २॥ तोले, एकत्र स्तनदूधमें घिसकर नास लेनेसे शिरोरोग शान्त होता है।

चन्द्रकान्त रस—रससिन्दूर, अबरख, ताम्बा, लोहा और गंधक ; प्रत्येक समभाग एकत्र सेहुंड़के दूधमें एकदिन खलकर मासे बराबर गोला बनाना। सहतके साथ सेवन करनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि शिरोरोग दूर होता है।

मयूराद्य घृत।—घी १६ सेर, काढ़ेके लिये एक मोरका मांस अथवा ३ पल वजन दशमूल (प्रत्येक तीन तीन पल) वरियारा, रास्ना और सुलेठी प्रत्येक तीन तीन पल एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतार लेना। फिर दूध ४ सेर ; तथा जीवक, ऋषभक, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, सुलेटी, मुगानी और माषोणी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शिरोरोग आदि कर्द्ध्व रोग समूह और अर्द्दित रोग आराम होता है।

षड़विन्दु तैल।—तिल तैल ४ सेर, छागदूध ४ सेर, भंगरैयाका रस १६ सेर ; तथा रेंड़की जड़, तगरपादुका, मोवा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, वायविडंग, सुलेठी और सोंठ प्रत्येक ६ तोले ३ मासे और दो रती का कल्क ; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे शिरोरोगकी शान्ति, तथा शिथिलकेश, दन्तादिकी दृढ़ता और दृष्टिशक्ति की वृद्धि होती है।

महादशमूल तैल।—सरसोंका तेल १६ सेर, दशमूल १२। सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, नीबुका रस १६ सेर, आदीका रस १६ सेर, धतूरेका रस १६ सेर ; तथा पीपल, गुरिच, दारुहल्दी, मोवा, पुनर्नवा सैजनकी छाल, पीपल, कुटकी, करंज बीज, कालाजीरा, सफेद सरसों, बच, सोंठ, चीतामूल, शठी, देवदारु, बरियारा, रास्ना, हुड़हुड, कटफल, निर्गुण्डीका पत्ता,

चाम, गेरुमिट्टी, पीपलामूल, सुखीमूली, अजवाईन, जीरा, कूठ, अजमोदा और बिधारेको जड़ प्रत्येक एक एक पल; यथाविधि औटाकर शिरमें मालिश करनेसे कफजन्य शिरोरोग और बदनमें मालिश करनेसे कफजन्य दर्द और शोथ दूर होता है।

वृहत् दशमूल तैल।—सरसोंका तेल १६ सेर, दशमूल, धतूरेका पत्ता, पुनर्नवा और निर्गुण्डीपत्र प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना तथा अड़ूसेके जड़की छाल, बच, देवदारु, शठी, रास्ना, मुलेठी, मिरच, पीपल, सोंठ, लालजीरा, कटफल, करंज बीज, कूठ, इमलीकी छाल, जंगली सेम और चीतामूल प्रत्येक आठ आठ तोले, यथाविधि औटाकर व्यवहार करनेसे शिरःशूल, कर्णशूल और नेत्रशूल दूर होता है।

अपामार्ग तैल—अपामार्ग बीज, त्रिकट्, हलदी, नकछिकनी का पत्ता, हींग और वायविडंग सब मिलाकर एक सेर और १६ सेर गोमूत्रके साथ यथाविधि ४ सेर तिल तैल औटाकर नास लेनेसे शिरकी क्रिमिका नाश होता है।

स्त्रीरोग।

दार्व्यादि काढा—दारुहलदी, रसांजन, अड़ूसेके जड़की छाल, मोथा, चिरायता, बेलकोगिरी और भिलावा, इन सबके काढेमें रसत मिलाकर पीनेसे प्रदर रोग आराम होता है।

उत्पलादि कल्क—लालकमल की जड़, लालकपास की जड़, कनेल की जड़, लालजिमिकन्द, मौलसरी की जड़, गंधमात्रा, जीरा और लालचन्दन ; यह सब द्रव्य आधा तोला मात्रा चावल भिंगोया पानीमें पीसकर पीनेसे रक्तशूल, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल दूर होती है।

चन्दनादि चूर्ण।—लालचन्दन, जटामासी, लोध, खसकी जड़, पद्मकेशर, नागेश्वर, वेलकीगिरी, नागरमोथा, चीनी, बाला, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, सोंठ, अतीस, धवईका फूल, रसाञ्जन, आम्रकेशी, जामुन की गुठली, मोचरस, नीलोत्पल, वराहक्रान्ता, छोटी इलायची, अनार की छाल ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त आराम होता है।

पुष्यानुग चूर्ण।—पाठा, जामुनके गुठलीकी गिरी, आमके गुठली की गिरी, पत्थरचूर, रसांजन, मोचरस, वराहक्रान्ता, पद्मकेशर, केशर, अतीस, मोथा, वेलकी गिरी, लोध, गेरूमिट्टी, कटफल, मिरच, सोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, श्योनाक छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धवईफूल, मुलेठी और अर्जुन छाल सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो आनेभरसे चार आनेभर मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, योनिदोष, अतिसार और अर्शरोग आराम होता है। पुष्यानक्षत्र में यह औषध प्रयोग और प्रस्तुत करना चाहिये।

प्रदरारि लौह—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढा छानकर औटाना, गाढा होनेपर वराह-

क्रान्ता, मोचरस, वारंगी, बेलकी गिरी, मोथा, धवईकाफूल, अतीस, अभ्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण समभाग उसमें मिलाकर चार आनेभर मात्रा कुशमूल पीसे हुए पानीसे सेवन करनेसे प्रदर और कुक्षिशूल दूर होतो है।

प्रदरान्तक लौह—पारा, गंधक, बंग, रौप्य, खपरिया और कौडीभस्मप्रत्येक आधा तोला, लोहा तीन तोले, एकत्र घीकुवार के रसमें एकदिन खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रदर रोग आराम होता है।

अशोक घृत।—गायका घी ४ सेर, अशोकमूल की छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, अरवाचावल भिंगोया पानी ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, केशुरियाको रस ४ सेर; तथा जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मागोनी, माषोणी, जीवन्ती, मुलैठी, पियाल सार अथवा पियाल बीज, फालसा, रसांजन, अशोकमूल, मुनक्का और सतावर प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर ठंडा होनेपर एक सेर चीनी मिलाना, इससे प्रदर और तज्जनित विविध उपद्रव दूर होता है।

सितकल्याण घृत।—घी ४ सेर, गायका दूध १६ सेर; तथाकुमुदपुष्प, पद्मकाठ, खसकी जड़, गोधूम, रक्तशालि, मागोनी, क्षीरकाकोली, गाभारी फल, मुलैठी, बरियारेकी जड़ गुलशकरी की जड़, नीलाकमल, तालका पानी, विदारीकंद, सतावर, सरिवन, जीरा, त्रिफला, खीरेको बीज और केलेकाफूल प्रत्येक चार चार तोले पानी ८ सेर यथाविधि औटाकर श्वेत प्रदरादिमें प्रयोग करना।

फलकल्याण घृत।—गायका घी ४ सेर, सतावरका रस ८ सेर, दूध ८ सेर; मजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, बरियारेका जड़, मेदा, बिदारीकंद, असगंधकी जड़, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, लालकमल, कुमुदफूल, मुनक्का, काकोली, चीरकाकोली, श्वेतचन्दन और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि पाककर सेवन करनेसे योनिदोष, गर्भदोष और प्रदरादि रोग शान्त होता है। कल्क द्रव्यमें एक भाग लक्ष्मणामूल देनेका उपदेश चिकित्सक लोग देते हैं।

फलघृत।—घी ४ सेर, सतावरका रस १६ सेर, तथा मजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, शर्करा, बरियारा, मेदा, काकोली, चीरकाकोली, असगंध, अजवाइन, हलदी, हींग, कुटकी, नीलाकमल, कुमुदफूल, मुनक्का, चन्दन और सफेद चन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे बन्ध्यादोष, मृतवत्सा, योनिदोष और योनिस्राव आदि दूर होता है।

कुमारकल्पद्रुम घृत।—घी ४ सेर, छागमांस ६० सेर और दशमूल ६ सेर, पानी १०० सेर शेष २५ सेर; दूध ८ सेर, सतावरका रस ८ सेर, तथा कूठ, शठी, मेद महामेद, जीवक, ऋषभक, प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, सतावर, गंभारीफल, मुलेठी, चीरकाकोली, मोथा, नीलाकमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, अनन्तमूल, श्यामालता, सफेद बरियारेकी जड़, सरपोंका की जड़, कोहड़ा, बिदारीकंद, मजीठ, सरिवन, पिठवन, नागेश्वर, दारुहलदी, रेणुक, लताफटकी की जड़, शंखपुष्पी, नीलपद्म, बच, अगरू, दालचीनी, लौंग और केसर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि ताम्बा या मिट्टीके पात्रमें औटाना, ठंढा होनेपर पारा, गंधक, अबरख दो दो तोले और

सहत दो सेर मिलाना। आधा तोला मात्रा यह घी पीनेसे विविध स्त्रीरोग और गर्भदोष दूर होता है।

प्रियङ्ग्वादि तैल।—तिलतैल ४ सेर, बकरीका दूध, दही और दारुहलदी का काढा प्रत्येक चार चार सेर ; प्रियंगु, पद्ममूल, मुलेठी, हर्रा, बहेडा, आंवला, शरबत, सफेद चन्दन, लालचन्दन, मजीठ, सोवा, लाल सैन्धव, मोथा, रोचरस, काकमाची, बेलकीगिरी, वाला, गजपीपल, पीपल, काकोली और क्षीरकाकोली सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर गंधपाक करना यह तेल मालिश करनेसे प्रदर योनिव्यापद, ग्रहणी और अतिसार रोग आराम होता है। यह गर्भस्थापक का उत्तम औषध है।

गर्भिणीरोग।

एरंडादि काढा—रेंडकी जड, गुरिच, मजीठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्मकाठ, इन सबके काढेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होता है।

बृहत् ह्रीवेरादि—बाला, श्योनाक छाल, लालचन्दन, बरियारा, धनिया, गुरिच, मोथा खसकी जड, श्यामा, दवनपापडा और अतीस इन सबका काढा पीनेसे अतिसार, रक्तस्राव और सूतिका रोग दूर होता है।

लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, सोहागेका लावा, मोथा, धवईका फूल, बेलकोगिरी, धनिया, जायफल, सफेद राल, मोथा, अनारका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, नीलाकमल, रसांजन, अभरख भंग, बराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ, अतीस, काकडा-

शिंगी और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे गर्भावस्थाका संग्रहणी, अतिसार और आमरक्त आराम होता है।

गर्भचिन्तामणि रस—पारा, गंधक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले अबरख ४ तोले, कपूर, वंग, ताम्बा, जायफल, जावित्री, गोखुर बीज, सतावर, बरियारा और सफेद बरियारा प्रत्येक एक एक तोला एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, दाह और प्रदर आदि आराम होता है।

गर्भविलासरस—पारा, गन्धक और तूतिया प्रत्येक समभाग एकत्र नीबूके रसमें खलकर त्रिकटुके काढ़ेको ३ बार भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना, इसे गर्भिणीके ज्वरादि रोगमें प्रयोग करना।

गर्भपीयूषवल्ली रस—पारा, गंधक, सोना, लोहा, रौप्य, माचिक, हरताल, वंग और अबरख प्रत्येक समभाग एकत्र ब्राह्मी, अडूसा, भंगरैया, दवनपापड़ा और दशमूल, इन सबका रस या काढ़ेकी सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गर्भिणीके ज्वरादिमें देना।

इन्दुशेखर रस।—शिलाजीत, अबरख, रससिन्दूर, प्रवाल, लोहा, स्वर्णमाचिक, और हरिताल प्रत्येक समभाग एकत्र भंगरैया, अर्जुनछाल, निर्गुण्डी, अडूसा, स्थलपद्म और कुरैयाके छालके रसको भावना दे मटर बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, कास, श्वास, शिरःपीड़ा, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन अग्निमान्द्य, आलस्य और दौर्बल्य दूर होता है।

गर्भविलास तैल—तिलका तेल एक सेर; बिदारीकन्द, अनारका पत्ता, कची, हलदी, त्रिफला, सिंघाड़ेका पत्ता, जातीपुष्प,

सतावर, नीलाकमल और पद्म सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क ; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे गर्भशूल और रक्तस्रावादि दूर हो पतनोन्मुख गर्भभी स्थिर होता है।

सूतिकारोग।

सूतिका दशमूल काढा—सरिवन, पिठवन, वृहती, कंटकारी गोखुर, नीलाकमल की जड, गधालीकी जड, सोंठ, गुरिच और मोथाका काढा पोनेसे सूतिका ज्वर और दाह दूर होता है।

महचरादि—पद्ममूल, मोथा, गुरिच, गंधाली, सोंठ और बाला ; इन सबके काढेमें आधा तोला सहत मिलाकर पोनेसे सूतिका ज्वर और वेदना आराम होती है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक।—कसेरु, सिंघाडा, पद्मबीज, मोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, शैलज, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, शठी धवईफूल, इलायची, सोआ, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिरच और सतावर प्रत्येक चार चार तोले, लोहा ८ तोले, सोंठका चूर्ण एक सेर, मिस्री ४० पल, घी एक सेर और दूध ८ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सूतिका जन्य अतिसार ग्रहणी आदि पीडा शान्त हो अग्निकी वृद्धि होती है।

जीरकाद्य मोदक।—जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनिया ३ पल, सोआ, अजवाइन और कालाजीरा १ पल, दूध ८ सेर, चीनी ।। सेर, घी ८ पल ; यथाविधि औटाकर त्रिकटु, दाल-चीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविडंग, चाभ, चीतामूल, मोथा

और लौंग प्रत्येक एक एक पलका चूर्ण उसमें मिलाना। इससे सूतिका और ग्रहणी रोग दूर हो अग्निको दीप्ति होती है।

सूतिकारि रस—पारा, गंधक, अवरख, ताम्बा, प्रत्येक समभाग एकत्र खुलकुड़ीके रसमें मर्द्दनकर छायासे सुखा उरद बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें यह सेवन करनेसे सूतिकावस्थाका ज्वर, तृष्णा, अरुचि, अग्निमान्द्य और शोथ दूर होता है।

वृहत् सूतिकाविनोद रस—सोंठ एक भाग, मिरच दो भाग, पीपल ३ भाग, सेन्धव आधाभाग, जावित्री २ भाग और तूतिया २ भाग, एकत्र निर्गुण्डीके रसमें एक प्रहर खलकर, सहतके साथ सेवन करनेसे विविध सूतिका रोग दूर होते हैं।

सूतिकान्तक रस—पारा, गंधक, अवरख, स्वर्णमाक्षिक, त्रिकटु, और मीठाविष, प्रत्येक समभाग, एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सूतिकाजन्य ग्रहणी, अग्निमान्द्य, अतिसार, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बालरोग।

भद्रमुस्तादि काढ़ा—नागरमोथा, हर्रा, नीम, परवरका पत्ता और मुलेठी, इन सबके काढ़ेमें थोड़ा सहत मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका बुखार आराम होता है।

रामेश्वर—पारा, गंधक, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक एक एक तोला यथाक्रम केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, पान, गुड़कंगनी, गिमा, हुडहुड़, शालिंच और खुलकुडोके रसमें एक एक दिन भावना दे,

उसमें आधा तोला गोलमिरच का चूर्ण और आधा तोला सफेद अपराजिताका चूर्ण मिलाना। सरसो बराबर गोली बना बालकोंके ज्वरादि रोगोंमें प्रयोग करना।

बालरोगान्तक रस—पारा, गन्धक प्रत्येक आधा तोला, स्वर्णमाक्षिक २ मासे एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, काकमाची, गिमा, हुड़हुड़, शालिंच और खुलकुडोके रसको एक एक दिन भावना देना, फिर सफेद अपराजिता की जड दो मासे और मिरच दो मासे मिलाकर सरसो बराबर गोली बनाना। यह बालकके ज्वर और कास आदि रोगोंमें उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना।

कुमारकल्याण रस—रससिन्दूर, मोथा, सोना, अबरख, लोहा और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक समभाग; घिकुआरके रसमें खलकर मूंग बराबर गोली बनाना। बालकके उमरका विचार कर एक या आधी गोली दूध और चीनीमें मिलाकर सेवन करानेसे ज्वर, श्वास, वमन, सूखडी, पसदोष, स्तन नहीं पीना, कामला, अतिसार और अग्निविकृति आराम होती है।

दन्तोद्भेदगदान्तक।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, अजमोदा, अजवाइन, हलदी, मुलेठी, देवदारु, दारुहलदी, वायविडंग, बडी इलायची, नागेश्वर, मोथा, शठी, काकड़ासिंगी, कालानमक, अबरख, शंखभस्म, लोहा और स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह पानीमें घिसकर दांतमें लगानेसे तथा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे दन्तोद्गमका ज्वर, अतिसार और आक्षेप आदि रोग आराम हो दांत जलदी निकलता है।

लवङ्ग चतु:सम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागीका लावा प्रत्येक समभाग ; एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा चीनी और सहतके साथ चटानेसे आमातिसार और तज्जनित शूल शान्त होता है।

दाडिम्बचतु:सम—जायफल, लौंग जीरा और सोहागेका लावाप्रत्येक समभाग ; एकत्र अनार फलके भीतर भरकर पुटपक्व करना। आधी रत्तीसे २ रत्तीतक मात्रा बकरीका दूध या पानीके साथ सेवन करानेसे बालकोंका उदरामय दूर होता है।

धातक्यादि चूर्ण—धवईफूल बेलकोगिर, धनिया, लोध इन्द्रयव और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा सहतके साथ सेवन करानेसे बालकोंका ज्वरातिसार और वमन दूर होता है।

बालचतुर्भद्रिका चूर्ण—मोथा, पीपल, इलायची और काकडा-शिंगी प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर पूर्व्ववत् मात्रा सहतके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, श्वास, कास और वमन दूर होता है।

बालकुटजावलेह—कुरैयाके छाल ८ तोले, पानी एक सेर, शेष एक पाव, यह काढा छानकर फिर औटाना, गाढा होने-पर अतीस, पाठा, जीरा, बेलकोगिरी, आमके गुठलीका गूदा, सोवा, मोथा और जायफल प्रत्येक का चूर्ण चार चार आनेभर उसमें मिलाना। यह एक आनाभर मात्रा चटानेसे बालक का आमशूल और रक्तभेद दूर होता है।

बालचाङ्गेरी घृत।—घी ४ सेर, चौपतियाका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा कयेथ, त्रिकटु, सैन्धव, बराह-क्रान्ता, उत्पल बाला, बेलकोगिरी, धवईफूल और मोचरस सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर एक आनेभर

माचा दूधमें मिलाकर पिलानेसे बालक का अतिसार और ग्रहणी रोग दूर होता है।

कंटकारी घृत।—घी ४ सेर, कटेली, वृहती, वारंगी और अडूसेकी छाल प्रत्येक का रस या काढा चार चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा गजपीपल, पीपल मिरच, मलेठी, बच, पीपलामूल, जटामासी, चाभ, चीतामूल, लालचन्दन, मोथा, गुरिच, सफेद चन्दन, अजवाइन, जीरा, बरियारा, शोंठ, मुनक्का, अनारकी छाल और देवदारु सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर एक आनेभर माचा दूधके साथ सेवन करानेसे बच्चोंका श्वास, काम, ज्वर, अरुचि, शूल और कफकी शान्ति तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

अश्वगन्धा घृत—घी ४ सेर, तथा असगन्धका कल्क एक सेर यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त माचा सेवन करानेसे बालक पुष्ट और मोटा होता है।

कुमारकल्याण घृत।—घी ४सेर, कटेली ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, दूध १६ सेर; तथा मुनक्का, चीनी, शोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियारा, शठी जवासा, बेलकीगिरी' अनारकी छाल, तुलसी, मरिचन, मोथा, कूठ, छोटी इलायची, गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर पूर्व्ववत् माचा सेवन करानेसे बालक का देह पुष्ट, अग्निवृद्धि और बल बढती है।

अष्टमङ्गल घृत—घी ४ सेर, तथा बच, कूठ, वाह्मीशाक, सफेद सरसो, अनन्तमूल, सैन्धव और पीपल सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त माचा सेवन करानेसे ग्रहावेशजनित पीड़ा दूर होती है।

वैद्यक-शिक्षा।

चतुर्थ-खण्ड।

विष-चिकित्सा।

विषके प्रकार और भेद—साधारणतः स्थावर और जङ्गम भेदसे विष दो प्रकार का होता है। उद्भिज विशेष का जड़, कन्द, पत्ता, फूल, फल, छाल, दूध, रस और सार तथा दारमुज और संखिया आदि धातुविष को स्थावर और प्राणीविषको जङ्गम विष कहते हैं।

स्थावर विषोंके भिन्न भिन्न लक्षण।—स्थावर विषमें विषका जड़, अयथा रीतिसे पेटमें जानेसे शरीरमें लाठीसे मारने की तरह दर्द प्रलाप और मोह उत्पन्न होता है। विषके पत्तसे शरीरमें कम्प और श्वास होता है। फलसे अंडकोष में शोथ, सर्व्वांगमें जलन और आहार में अरुचि होती है। छाल, रस और सार विष खानेसे सुखमें दुर्गन्ध, बदनका रूखापन, शिरमें दर्द और कफस्राव होता है। दूधसे मुहमे फेन निकलना, शरीरमें भारीपन और दस्त होती है। धातुविषसे छातीमें दर्द, मूर्च्छा और तालुमें जलन होता है। ये सब प्रायः जल्दी प्राणनाशक नहीं है पर क्रमशः अस्वस्थता पैदाकर कालान्तरमे प्राण लेते है।

जंगम विषके लक्षण।—जंगम विषमें फनवाले सांप का काटा हुआ स्थान कृष्णवर्ण और वह मनुष्य वातजनित विविध पीड़ासे पीड़ित होता है। मंडली सर्प अर्थात् गोहुमन सांपका काटा हुआ स्थान पीतवर्ण और कोमल शोथयुक्त तथा पित्तजनित विविध उपद्रव उपस्थित होता है। राजिल अर्थात् रंगीन और लम्बी रेखावाला सर्प काटनेसे काटे हुए स्थानमें कठिन, चटचटा और पाण्डुवर्ण शोथ पैदा होता है, तथा चत स्थानस स्निग्ध और गाढ़ा रक्तस्राव और नानाप्रकारके कफजनित उपद्रव उपस्थित होते हैं।

अजीर्ण रोगी, पित्तविकारी, आतपार्त्त, बालक, वृद्ध, मेधार्त्त, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेह और कुष्ठ रोगी, गर्भिणी, रूक्ष और दुर्बल व्यक्तिको सर्प काटनेसे थोड़ेही देरमें विपन्न हो जाता हैं।

सर्पदंशनकी सांघातिक अवस्था।—पीपल वृक्षके नीचे, श्मशानभूमि में, देवके के टीलेपर, या चौराहेपर सांप काटेतो उस रोगीका जीना कठिन है। इसीतरह सबेरे, शामको और भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिकानक्षत्र में सर्प काटनेसे भी रोगीको मृत्यु निश्चय जानना। मर्मस्थानमें काटनेसे अथवा जिस रोगीके शरीर में अस्त्रसे काटनेपर भी खून नहीं निकलता अथवा लता आदिसे जोरसे मारनेपर भी दाग नहीं पड़ता, किम्वा ठंढे पानीका छींटा देनेसे रोमांच नहीं होता, जिसका मुह टेढ़ा हो गयाहै, केश पकड़के खींचनेसे केश उठ आता है, गरदन झुक गयी है, हनु अर्थात् चहुआ बैठ गया है, काटे हुए स्थानमें लाल या काले रंगका शोथ हो मुहसे लारकी धार निकलने लगी, अथवा मलद्वार या मुह दोनो रास्तेसे लार या खून निकले,

ऐसे रोगोकी चिकित्सा विफल होतो है। काटे हुए स्थानमें चार दांत गड़े हुए चिन्ह दिखाइ देतो वहभी असाध्य जानना।

भिन्न विषप्रकोपके लक्षण।—बिच्छू काटनेसे अत्यन्त जलन और सूई गडानेको तरह दर्द होती है। तथा विष अति शीघ्र उर्द्ध शरीर में चढकर अन्तमे काटे हुए स्थानमें आकर रहता है। हृदय, नासिका, चक्षु और जिह्वा आदि स्थानोंमें काटनेसे काटे हुए स्थानमें घाव हो क्रमश: मांस गलकर गिरता है तथा रोगी दर्दको तकलीफसे व्याकुल हो मृत्यु मुखमें आ गिरता है। मेंढक सिर्फ एक दांतसे काटता है, उसके काटनेसे रोगीको प्यास, निद्रा, वमन, वेदनायुक्त शोथ और फुंसी पैदा होती है। मूषिकके शुक्रमें विष रहता है इससे उसका शुक्र शरीर में लगनेसे विषकी क्रिया प्रकाश होतो है। सिवाय इसके अन्य जातिके मुषिकके भी काटनेसे विष फैलता है। मूषिक काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव होता है, शरीर में गोल शोथ पैदा होता है तथा ज्वर, चित्तचाञ्चल्य, लोमहर्ष और सर्व्वाङ्ग में जलन होती है। किसी किसी मुषिकके काटनेसे मूर्च्छा, शरीरमें मुषिक की तरह काला शोथ, वधिरता, ज्वर, मस्तक भारी होना, शरीरकी शिथिलता, मुखसे लार और रक्तस्राव होते देखा गया है। ऐसे मुषिक के काटनेसे रोगीका जीना कठिन है। लुता अर्थात् मकडेके काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव और क्लेदयुक्त होता है। तथा त्रिदोषजनित ज्वर, अतिसार, दाह, फुडिया, शरीरमें नील और पीतवर्ण गोल चकता, कोमल स्पर्श और गतिशील शोथ पैदा होता है। अन्यान्य जीवोंके काटनेसे जलन शोथ और दर्द आदि विषके लक्षण प्रकाशित होते है।

उन्मत्त शृगालादिकी काटने का विष।—पागल सियार या कुत्ता आदि जीवके काटनेसे घावसे काले रक्तका रक्तस्राव और स्पर्शशक्तिकी अल्पता होती है। ये विष शरीरमें अधिक दिनतक रहनेसे क्रमश ज्वर होता है तथा अन्तमें रोगी पागलको तरह होकर काटे हुए जीवको तरह स्वर तथा उसके कार्य्यादिका अनुकरण कर मृत्युकोप्राप्त होता है। तथा रोगी पानी या दर्पण में काटे हुए जीवको देखनेसे किम्वा पानी देखनेसे अथवा पानीका नाम सुननेसे भयप्राप्त होता,उसकी मृत्यु निश्चय जानना। पागल सियार आदिका विष बहुत दिनतक शरीर में गुप्त रहकर एकाएको प्रकुपित हो सांघातिक हो जाता है; काटनेके एक या दो वर्ष बादभी बहुतोंको उन्माद और जलत्रासादि लक्षण उपस्थित हो मृत्यु होते देखा गया है।

हीनवीर्य्य विष।—हीनवीर्य्य विष शरीरमें जानेसे, एकाएकी प्राणनाश नहीं होता, किन्तु कफके साथ मिलकर शरीर में रहता है तथा क्रमशः मलकी तरलता, शरीर विवर्णता, मुखकी दौर्गन्ध, विरसता, पिपासा, भ्रम, वमन और स्वरको विकृति ये सब लक्षण प्रकाश होते है। यह विष आमाशय में रहनेसे कफ और वातजनित नानाप्रकार के रोग पैदा होते है। पक्वाशयमें रहनेसे वायु और पित्तजनित रोग उत्पन्न होता है तथा केश और शरीरके लोम झड़ जाते है। रस धातुगत होनेसे आहार में अरुचि, अग्निमान्द्य, शरीरमें वेदना दुर्व्वलता, ज्वर, वमनवेग, शरीरिक भारबोध, रोमकूप रोध, मुखको विरसता तथा अकालमें, चर्म्मको शिथिलता और केश सफेद होता है। रक्तगत होनेसे कुष्ठ, विसर्प, फुड़िया, फोड़ा, रक्तपित्त, न्यच्छ, व्यङ्ग आदि रोग पदा होते है। मांसगत विषसे अधिमांस, मांसार्व्वुद, अर्श, अधि-

जिह्व और उपजिह्व आदि पीड़ा होती है। मेदोगत विषसे ग्रन्थि, कोषवृद्धि, मधुमेह, स्थौल्य और अतिशय पसीना होता है। अस्थिगत होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, हड्डीमें दर्द और कुनख आदि रोग पैदा होते हैं। मज्जागत विषमें अन्धकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, सन्धिस्थान में भारबोध और नेत्राभिष्यन्द पैदा होता है। शुक्रगत में क्लीवता, शुक्राश्मरी और शुक्रमेह आदि रोग प्रकाश होते हैं। सिवाय इसके किसी किसीको ऐसे विषसे उन्माद भी होता है।

शरीरस्थित दूषित विष ठण्ढी हवा चलनेसे और बदरीले दिनोंमें प्रायः कुपित होता है, उसवक्त पहिले निद्राधिक्य, शारीरिक गुरुता, शिथिलता, जृम्हा रोमाञ्च और अङ्गमर्द आदि पूर्व्वरूप प्रकाश हो फिर सुपारी खानेकी तरह मत्तता, अपरिपाक, अरुचि, बदनमें गोल फुड़ियोंका निकलना, मांसक्षय, हाथ पैरमें शोथ, मूर्च्छा, वमन, अतिसार, श्वास, पिपासा, ज्वर और उदर वृद्धि आदि रोग प्रकाश होते हैं।

अहिफेन विष—अधिक अफीम खानेसे सर्व्वाङ्ग में अत्यन्त जलन, ब्रह्मरन्ध्र फट जानेकी तरह दर्द सर्व्वाङ्गका टूटना उदराध्मान, मोह और भ्रम आदि लक्षण प्रकाशित हो रोगीको मृत्यु होती है।

सर्पदंशन चिकित्सा।—हाथ या पैरमें सांप काटेतो तुरन्त काटे हुए स्थानके चार अङ्गुल ऊपर मजबूत रस्सीसे कसकर बांधना। इससे रक्त सञ्चालन बन्द हो विष सब शरीरमें नहीं फैलता। फिर काटे हुए स्थानको चीरकर खून निकालना। मुखके किसी स्थानमें कोई प्रकारका घाव न होतो, चुसकर खून निकालना। यह न हो सकेतो शृङ्ग लगाना या एक छोटी कटोरी या गिलास में स्पिरिट जलाकर वह गिलास घावके मुहपर रखकर

दबाना, इससे खून निकल जायगा, फिर घावमें लोहा गरम कर घावको जलाना. हात पैरके सिवाय और स्थानोंमें बांधनेका सुभीता नहीं है, ऐसे स्थानमें सर्प काटनेसे उस स्थानसे खून निकाल कर जलाना चाहिये इससे भी उपकार होनेकी आशा है। विष सब देहमें फैल जाय तो वमन कराना चाहिये, कालिया कंडाकी जड़का नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। ईशलांगला की जड़ पानीमें पीसकर नास देना। नाक आंख, जीभ और कंठरोध होनेसे वार्त्ताकु, शर्बती नीबू और मराफटको आदि पीस कर नास देना। हृदरोध होनेसे दारुहलदी, गोलमिरच, पीपल, सोंठ, हलदी, कनैल, करंज और तुलसी बकरीके दूधमें पीसकर आंखमें अञ्जन करना। जयपाल बीजकी गूदीको नीबूके रसकी २१ बार भावना दे बत्ती बना रखना, यह बत्ती मनुष्यके लारमें घिसकर अञ्जन करनेसे सांपका काटा मनुष्य बेहोश हो जानेपर भी होशमें आता है। सैंजनेके बीज को शिरीष फलके रसकी सात दिन भावना दे नस्य अञ्जन और पानमें प्रयोग करनेसे सर्पविष शान्त होता है। नेवडीकी जड़ दन्तीमूल, मुलेठी, हलदी दारुहलदी, मजीठ, अमिलतासका गूदा, पांचोंनमक और त्रिकटु यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण सहत में मिलाकर १५ दिनतक गऊके सिंगमें रखना, फिर बाहर निकाल चार आनेभर अथवा अधिक मात्रा दूध, घी और सहतके साथ सेवन कराना। इसका लेप और नास भी विशेष उपकारी है।

फनवाला सांप काटै तो निर्गुण्डी की जड़, श्वेतापराजिता और घंघरगोडीका काढ़ा पिलाना। मंडली सर्प काटे तो सहत मुलेठी, जीवक ऋषभक, दोनों काकोली और वटके टूसेका काढ़ा पिलाना। राजिल सर्प काटे तो मिरच, पीपल, सोंठ

अतीस, कूठ, भीन, रेणुक, कुम्भी और कुटकीके काढेमें सहत मिलाकर पिलाना। गृहधूम, हलदी और कटसरैया की जडके काढेमें घी मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका सर्पविष दूर होता है। हुडहुडकी जड, ८।१० गोलमिरच के साथ पानीमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है, यह दवा पीनेके थोडी देर बाद थोडी फिटकिरी मिलाया पानी पिलाना चाहिये, यदि वमन हो जायतो विषका ह्रास नहीं हुआ समझना तब फिर वही औषध पिलाना चाहिये। हाथीसूड़ की जड और भुईचम्पेकी जड सेवन करनेसे भी सर्पविष दूर होता है।

वृश्चिक दंशन मे।—बिच्छू काटनेसे काटे हुए स्थानमें बार बार तार्पिनका तेल मालिश करना। किम्वा पत्थरका कोयला घिसकर लेप करना। गायका घी और सैन्धव लवण एकत्र गरम कर लेप करनेसे किम्वा गोमय गरम कर लेप करनेसे भी वृश्चिक विष दूर होता है। कालो अरुई का लवाब मालिश करनेसे वृश्चिक विष दूर होता है। गुडका चोटा लगानेसे भी वृश्चिक काटनेकी जलन दूर होती है। मेडक के विषमें पहिले खून निकालकर शिरीष वीज सेहुंडके दूधमें पीसकर लेप करना। मूषिकके विषमें भी पहिले खून निकालकर फिर गृहधूम, मजीठ, हलदी और सेंधानमक एकत्र पीस गरमकर लेप करना। अथवा अकवन की जड पीसकर लेप करना, या दालचीनी और सोंठ का समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करना। मकडेके विषमें लालचन्दन, पद्मकाठ, खसकी जड, पाटला, निर्गुण्डी, स्वर्णचीरी, कुम्भी, शिरीष, बाला और अनन्तमूल, प्रत्येक समभाग, कूट २ भाग एकत्र लिसोडा इसके रसमें पीसकर लेप करना। अपराजिता, अर्जुनछाल, कूठ, लिसोडा, अश्वत्थ, बड, पाकुर गुलर

और वेतमकको छाल, इन सबका काढा पीनेसे मकड़ा और कीट विष दूर होता है। कच्चे केलेका दूध रोज ३।४ बार लगानेसे मकड़का विष दूर होता है। कच्ची हलदी दूधमें पीसकर मर्द्दन करनेसे भी गरल दूर होता है। बच, हींग, वायविडुग, सेंधनमक गजपीपल, पाठा, अतीस सोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे यावतीय कीटविष ... ता है।

पागल कुत्ता और सियार काटेको दवा।—

पागल कुत्ता या सियारका काटा हुआ स्थान चीरकर खून निकाल ना फिर वह स्थान आग, क्षार या गरम घीसे जलाना। तथा रोगीको पुराना घी पिलाना अथवा धतुरेकी जड़ किम्वा कुचिला एक या दो रत्ती वजन खिलाना। श्वेतपुनर्नवा और धतुरेकी जड़ एकत्र सेवन कराना उपकारी है। पारा गन्धक, कान्तलोह प्रत्येक एक एक तोला, अबरख दो तोले यथाक्रम इन्द्रायण, हड़ती ब्रह्मी, नीलाकमल, सतावर और कशाचके रसकी एक एक वार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाकर ठण्ढ पानीमें इसे सेवन कराना। कड़की राख अकवनके दूधमें भिगाकर धूपमें सुखा नाम लेनेसे विशेष उपकार होता है। कुत्ता काटे हुए स्थानमें सेंहुडके दूधमें सिरोपकी बीज पिसकर लेप करना। या चावल पीसकर उसके भीतर सेवलोम भरकर सेवन कराना।

विषाक्तद्रव्य भक्षण चिकित्सा।—

विष, विषाक्त द्रव्य या अफीम खानेपर तुरन्त कै कराना चाहिये। तुतिया भिगोया पानी श्रेष्ठ वमनकारक है। विष कण्ठगत हो तो कच्चा कयेथ, चीनी और सहतके साथ चटाना। आमाशयगत हो तो कुम्भीका चूर्ण चीनी और सहत मिलाकर चटाना। पक्काशयगत

विषमें पोपल, हलदो, दारहलदो और मजीठ, गोरोचनके साथ पोसकर पिलाना। रक्तगत विषमें सिरोंडेको जड, छाल और फुनगो बैरको जड, छाल और फुनगी, किम्वा गुल्लर को जड, छाल और फुनगो अथवा अपराजिताको जड, छाल फुनगी का काढा पिलाना। मांसगत विषमें खदिरारिष्ठ सहतके साथ और कुरैया की जड पानीके साथ सेवन कराना। विष सर्व्वदेहगत होनेसे और कफका वेग अधिक हो तो बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, महुयेका फूल, कुभो, पोपल, शोठ और जवाखार यह सब द्रव्य मखनमें मिलाकर वदनमे मालिश करना।

दूषिविषार्त्त रोगोको पहिले स्नेहपान करा वमन, विरेचन और शोधन कराना चाहिये। पोपल खसको जड, जटामासो, लोध, छोटो इलायचो, सोवचल नमक, मिरच, वाला, वडी इलायचो और स्वर्णगैरिक, इन सबके काढेमें सहत मिलाकर पिलानेसे दूषित विष शान्त होता है।

शास्त्रीय औषध।—मैनसिल, हरताल, मिरच, दारसुज हिंगुल, अपामार्गको जड, धतुरेको जड, कनैलको जड और शिरोषको जड प्रत्येकका समभाग चूर्ण को रुद्राच और अपराजिताके रसमें १०० वार भावना दे मूग बरावर गोलो बनाना। यह गोलो सेवन करनेसे सापके काटेसे या विषपानजनित वेहोशी दूर होतो है। इस औषधिका नाम भीमरुद्र रस है। तालमखाने को जड छतिवनके जडको छाल और कूठ प्रत्येक एक एक तोला, दारमुज दो आनेभर ; यह सब द्रव्य थकवनकी जड़के काढेमे पोसकर सरसो बराबर गोली बनाना। कुलिकादि नामक इस गोलीको सेवन करनेसे विषसे अधमरा हुआ मनुष्यभी पुनर्जीवन पाता है। इस औषध से दुरारोग्य विषम ज्वरमें भी

विशेष उपकार होता है। घी १ सेर, अपामार्गका रस ४ सेर तथा अनारका छिलका, कूठ, छोटी इलायची, काकडाशिंगी, शिरीषमूलकी छाल, मिठाविष, बच, कौटारिया, कार्टूनिया, पाठिधा छाल, लालचन्दन, कुम्भी और मुरामासी सब मिलाकर एक पावका कल्क, पानी न दे खाली कल्क मिला घी औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यावतीय विषदोष दूर होता है। यह भी विषम ज्वर नाशक है। इसको शिवरो घृत कहते है। घी ४ सेर, दूध १६ सेर, तथा हरीतकी गोलोचन, कूठ, अकवन का पत्ता, कमलकी जड, बेतसमूल, मिठाविष, तुलसी का पत्ता और पद्मकेशर सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटा तथा छानकर ४ सेर महत मिलाना। मृत्युपाशच्छेदी नामक यह घृतभी सब प्रार का विषदोष निवारक है।

शिरीषछाल ६। सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, इस काढेमें २५ सेर गुड मिलाकर उसमें पीपल, प्रियंगु, कूठ, इलायची नील की जड, नागेश्वर, हलदी और सोंठ प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिलाना। एक महीना मुंह बदकर रखने बाद उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे विषदोष दूर होता है। इसको शिरीषारिष्ट कहते है।

विषकी चिकित्सामें जब रोगी के वातादि दोष और रस, रक्तादि धातु प्रकृतिस्थ हो, प्रथमें रुचि हो, स्वाभाविक रीतिसे मलमूत्र निकले, वर्ण, इन्द्रिय, चित्त और चेष्टा आदिमें प्रसन्नता दिखाई दे तब रोगी निर्विष हुआ है जानना।

पथ्यापथ्य—विष नष्ट हो जानेपर रोगीको थोड़े दिन पथ्यसे रखना अत्यन्त आवश्यक है। विषकी चिकित्साके समय अति लघु पथ्य खानेको देना। कभी सोने न पावे; निद्रा दूर करनेके

लिये चाह काफी आदि पिलाना अच्छा है। पर विष दूर हो जानेपर पुराने चावलका भात, घीकी तरकारी आदि और दूध खानेको देना। मज्जनेपर बहती नदीमें स्नान करना अच्छा है। तेल, मछली, कुरथी, खट्टा और विरुद्ध द्रव्य भोजन तथा क्रोध, भय, परिश्रम और मैथुन अनिष्टकारक है।

दुर्गम अन्धकारादि स्थानमें कोई वस्तु गड जानेसे किसी जन्तुके काटनेकी आशंका होती है तथा इस आशंकामें ज्वर, सर्दी, मूर्च्छा दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार आदि उपस्थित होते है।

इस प्रकार विषमें रोगीको सान्त्वनाजनक और आनन्दजनक वाक्यादिसे सन्तुष्ट रखना। पूर्व्वोक्त सुपथ्य भोजन कराना और किसमिस, चीरकाकोली और मुलेठी का चूर्ण चीनी और महत के साथ सेवन कराना। जीवन्ती, वार्त्ताकु, सुपनी, चुहाकानी, पथरी और परवर इन सबकी शाक खानेसे शंकाविषमें विशेष उपकार होता है।



जलमज्जन और उद्वन्धनसे हुए मुमूर्षुकी चिकितसा।

जलमज्जनमें कर्त्तव्य।—पानीमें डूबे हुए व्यक्तिको पानीसे तुरंत उठाना तथा उसका शरीर गरम और अंग शिथिल होतो चिकित्सा करना, नहीतो चिकित्सा वृथा होती है। पहिले रोगीको उलटा टांगकर मुखसे पानी और लार निकालना। फिर श्वास ठीक करनेके लिये रोगीको एकबगल सोला कर तेज

सुधनी सुंघाना, किम्बा नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर नाकके पास रखना इससे यदि श्वास प्रवर्त्तित न हो तो अंगुली, पत्तीका पंख या और कोई वस्तुसे नाकमें सुरसुरी देना, इससे छींक या के हो श्वास ठिकाने आवेगी। ये सब क्रिया विफल होनेसे रोगीको औधा सुलाकर छातीके नीचे एक तकिया रख ऊंचा करना तथा फिर एक बगल सुलाना और दोनो पांजर हाथसे दबाकर धरना। इसी तरह एक पल समयमें ७८ बार करना। अथवा रोगीको चित्त सुलाकर पीठकेनीचे तकिया रख थोड़ा ऊंचा करना तथा दूसरा आदमी रोगीकी जीभ धरकर खींचे और आप रोगीके शिरहाने बैठकर उसके दोनो हाथ बार बार उठाकर छातीपर रखे। रोगीकी जीभ न खींचकर उसके मुखमें फूंक दिलाना तथा आप वैसही दोनो हाथ बार बार उठाने और छातीपर रखनेसे भी चलेगा। शीघ्र शीघ्र बार बार यह प्रक्रिया करनेसे यदि श्वास चले तो रोगीका हाथ और पैर नीचेसे उपरको रखना तथा गरम बालूकी पोटलीसे हाथ पैर सेंकना।

उक्त क्रियासे रोगी होशमें आनेपर बहुत कम मात्रा सञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डि शराब पानीमें मिलाकर पिलाना तथा जिससे सुखकी निद्रा हो ऐसा उपाय करना चाहिये। चिकित्साके वक्त रोगीके पास आदमी की भीड़ कदापि न रहे। रोगीके शरीरमें अच्छी तरह हवा लगे ऐसा उपाय करना आवश्यक है। कुछ ताकत और आराम होनेपर थोड़ा गरम दूध पिलाना। फिर ८।१० दिनतक परहेज और सुपथ्यसे रखना।

उद्बन्धनमें कर्त्तव्य ।—उद्बन्धनसे हुआ मुमूर्षु व्यक्तिके गलेकी रस्सी जलदी काटकर पूर्व्वोक्त क्रियाओंसे श्वास प्रवर्त्तित करना, तथा गलेमें गरम घी आहिस्ते आहिस्ते मालिश करना।

मुख और छातीमें बराबर ताडके पंखेसे हवा करना। होशमें आने पर पूर्ववत् सुरापान और आहारादि व्यवस्थाकर थोड़े दिनतक पथ्यसे रखना।

सर्द्दीगरमीकी चिकित्सा।

कारण और लक्षण।—बहुत देरतक धूपमें या आगके पास बैठना, किम्वा बहुत भीड़ में रहना अथवा अधिक चलना या मिहनतसे थक जानेके बादही स्नान, जलपान किम्वा और कोई ठंढी क्रिया करनेसे पहिले बहुत प्यास और बार बार पिसाब की इच्छा होती है। फिर क्रमशः शरीर उष्ण आंखें लाल और आंखकी पुतली छोटी हो बड़े जोरसे बार बार छाती धड़कती है। नाडीका वेग पहिले तेज हो पीछे विषम और दुर्ब्बल होता है श्वास जोरसे बार बार चलती है। तथा अन्तमें रोगी बेहोश होजाता है। इसको चलित भाषामें सर्द्दीगरमी कहते है, यह प्राय प्राणनाशक है। इससे यह पीड़ा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

चिकित्सा।—रोगी बेहोश होतेही हवादार घरमें चित्त सुलाना। रोगीके पास बहुत आदमी को भीड़ होना अच्छा नही। फिर मुख और छाती में ठंढे पानीका छींटा देना। श्वास रोध होनेसे पूर्व्वोक्त उपायसे श्वास प्रवर्त्तित करना। जयपाल घटित औषध या कोई दूसरी तेज विरेचक दवासे विरेचन कराना अच्छा है पर वमनकारक औषध देनेसे अनिष्ट होगा। जल्दी होशमें न आनेसे सरसोंका तेल, सोंठ और लाल मिरचा पीसकर उसको पट्टी गरदन पर लगाना। ये सब क्रियाओंसे रोगी होशमें

आनेपर और खास प्रवर्त्तित होनेपर ठंढा शर्ब्बत और दूध पिलाना उचित है। रोगी दुर्ब्बल होती पानी मिलाकर थोड़ शराब पिलाकर सुलाना। अच्छी तरह आराम होनेपर हलका आहार खानेको देना। तथा ४।५ दिनतक विशेष सावधानीसे रखना चाहिये।

वृच आदि ऊंचे स्थानसे गिरजानेपर अथवा पासही कहीं वज्रपातसे उसको तेजो या डरसे अभिभूत हो बेहोश होनेपर भी सर्दीगरमी की तरह चिकित्सा करना।

आतप व्यापद् (धूप के लू) की चिकित्सा।

लचण।—बहुत देरतक सूर्यको प्रखर किरण शरीर में लगनेसे, तृष्णा, बदनका रुखापन, भ्रम, आंखे लाल होना, मूर्च्छा, नाड़ीके गतिकी विषमता, निश्वास प्रश्वास में कष्टबोध, हाथ पैरका खिंच जाना, वमन और मूत्रवेग आदि लचण तथा किसी किसीको बुखार भी होते देखा गया है। चलित भाषामें इसको "लू" लगना कहते है। इस रोगमें यदि रोगी हात पैर पटके, तथा हाथ पैर नीला हो जाय और नाड़ीकी गति रह रहकर लोप हो जाया करें तो उसको जान बचना कठिन है।

कर्त्तव्य।—यह रोग उपस्थित होतेही बदनका कपड़ा तुरंत निकाल कर छायायुक्त, जनताशून्य और हवेदार घरमें रोगी को सुलाकर ताड़के पंखेको पानीमें भिंगो लेना, इससे हवेके साथ छोटे छोटे पानीके बूंद शरीरमें पड़नेसे अधिक उपकार होता है। चन्दन मिलाया पानी बार बार थोड़ा थोड़ा पिलाना, एक

सांससे अधिक पानी पिलानेसे भी अनिष्ट होता है। एकखण्ड वस्त्र ठण्ढे पानीमें भिगों निचोड़कर रोग जो ओढाना। आराम होनेपर महस्र धार या झरनेके नोचे स्नान कराना। मूर्च्छा होतो एकखण्ड कम्बल या फलालेन गरम पानीमें भिंगो निचोडकर उसके उपर तापिनके तेलका अच्छो तरह छोटा देना फिर गर्दनमें लपेट कर उसके उपर केलेका पत्ता या सूखा कपडा बांध देना। थोडी देर बाद रोगो होशमें आकर तकलीफ से व्याकुल होगा तब गर्दनको पट्टा खोल डालना चाहिये। देह शीतल और नाडो व्यतिक्रम होनेसे स्वेद प्रदान और मृतसञ्जीवनी सुरा पिलाना चाहिये।

औषध प्रयोग।—चीनी १६ तोले, घिसा चन्दन १ तोले, बड़े नीबूका रस ८ तोले और सौंफका तेल आधा तोला यह सब द्रव्य दो सेर पानीमें मिलाकर थोडा थोडाकर पिलानेसे तकलीफ दूर होती है। त्रिफलाका पानी, मूर्च्छा रोगोक्त तेलसमूह इस रोग में व्यवहार करना उचित है।

शरीर अच्छी तरह आराम न होनेतक सावधानीसे रहना चाहिये। बल और पुष्टिकारक स्निग्ध और सारक अन्न पान भोजन करना उचित है।

तत्त्वोन्माद चिकित्सा।

लक्षण।—धर्म्म विषयों में रातदिन निविष्ट मनसे चिन्ता करनेसे वायु प्रकुपित हो एक प्रकार का रोग पैदा होता है उसे

तत्त्वोन्माद कहते हैं। इस रोगमें मूर्च्छा, मुर्देकी तरह अचल आंखें, चक्षु उन्मीलित, स्पर्शज्ञानकी हानि आदि लक्षण उपस्थित हो रोगी मृतवत् गिर पड़ता है। किसीको वक्तृताशक्ति का प्रकाश, दाम्भिकता, उग्रता, आक्षेप, (हाथ पैर पटकना), हंसो, नाच, मत्तता और रोना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। नाच गाना आदि चित्तोन्मादकारी घटनाओंसे यह रोग अधिक बढ़ता है।

कर्त्तव्य।—इस रोगमें बेहोश होनेपर मूर्च्छा, अपस्मार रोगोक्त उपायों से होशमें लाना। शतधौत घृत मर्द्दन और मूर्च्छा, वातव्याधि और उन्माद रोगोक्त औषध विचार कर प्रयोग करनेसे रोग शान्त हो जाता है। सफेद चन्दन अनन्तमूल, श्यामालता तालमूली, मुलेठो, कालानमक, बड़ी हर्र, आंवला, बहेड़ा, हलदी दारुहलदी, नीलेकमल की जड़, नागेश्वर, जटामासी, तालमखाना ब्राह्मी, खसकी जड़, गेरूमिट्टी, बरियारा और कुंभी प्रत्येक सम-भाग का चूर्ण एकत्र कर आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे तत्त्वोन्माद रोग शान्त होता है। सोना, मोती, पारा, गन्धक, शिलाजीत, लोहा वंशलोचन और कपूर प्रत्येक समभाग; एकत्र त्रिफलेके काढ़ेकी भावना दे, एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखाना। इसे पानीमें घिसकर नास लेनेसे बेहोशी दूर होती है। रोज सतावर के रसमें एक गोली सेवन करनेसे क्रमशः रोग शान्त हो जाता है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, मूग और चनेकी दाल, जौ और गेहूंकी रोटो, तिल, धारोष्ण गायका दूध, घी, मक्खन, मिश्रीका शर्बत, पका पपीता, ईख आदि द्रव्य भोजन तथा बहते नदीमें स्नान, तेलमर्द्दन, विलासिता, सद्वृत्त प्रियजन और विश्वस्ता प्रियतमा युवती कामिनी के साथ सर्वदा बातचीत

आदि चित्तविनोदक क्रिया इस रोग में उपकारी है। इसके विपरीत आहार विहार अनुपकारक है।

ताण्डव वातव्याधि चिकित्सा।

निदान।—अतिरिक्त भय, क्रोध या इच्छा, आशाभङ्ग, शारीरिक क्षमता कारक क्रिया समूह, निद्रा, विघात, बलक्षय, चोट लगना, क्रिमिदोष, मलबद्धता और स्त्रीयोंके ऋतु विपर्य्यय आदि कारणोंसे वायु कुपित हो ताण्डव रोग उत्पन्न होता है। इससे पहिले अकसर बांया हाथ फिर दहिने हाथ तिसके बाद दोनो पैर और फिर क्रमशः सब शरीर कांपता है। यह रोगाक्रान्त व्यक्ति मुट्ठिमें कोई वस्तु अच्छीतरह धर नही सकता, तथा हाथसे कोई वस्तु उठाकर खा नही सकता, सर्व्वदा बेचैन रहता है,बार बार अति विकृत मुखभङ्गी करता है और चलती यखत पैर नचाता है। निद्रावस्था मे इस रोगका कोई भी लक्षण अनुभव नही होता है।

कर्त्तव्य।—साधारणतः इस रोगमें मल परिष्कारक तथा अग्नि और बल वर्द्धक औषध प्रयोग करना चाहिये। क्रिमिदोष से यह रोग पैदा होनेसे आगे क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना चाहिये। रजोरोध से पीडा होनेपर पहिले रजःप्रवर्त्तक औषध देकर फिर रजोदोष निराकरण करना। श्यामालता, अनन्तमूल, मुलैठी, सेवडीमूल, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, छोटी इलायची, बडी इलायची, और आंवला इन सबका काढा पीनेसे ताण्डव रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय वातव्याधि का वृहत्

छागलाद्य घृत आदि औषध और कुब्जप्रसारणी और महामाष तैल आदि व्यवहार करना चाहिये।

स्निग्ध, पुष्टिकर और बलवर्द्धक आहार इस रोगमें देना उपकारी है। वातव्याधि कथित पथ्य इस रोगमें देना चाहिये। परिश्रम त्याग, बहुत देरतक सोना और बहती नदीमें स्नान इस रोगमें हितकारी है।

स्नायुशूल चिकित्सा।

भिन्न भिन्न लक्षण।—छोटी छोटी शिरा समूहों को स्नायु कहते है, उसी स्नायु समूहमें शूलवत् तीव्र वेदाना होनेसे उसे स्नायुशूल कहते है। यह रोग वायुजनित एकप्रकार शूल है, इसमें सिवाय दर्दके और कोई लक्षण नही दिखाई देता। मस्तक, बाहु, पैर आदि स्थानोमें त्वकके नीचे यह दर्द होता है, गरज यह दर्द सर्व्वाङ्ग मे होता है। स्थानभेद के अनुसार स्नायुशूल ३ प्रकार का है। मुखमण्डल के स्नायुशूल को ऊर्द्धभेद, मुखमण्डलके अर्द्धांशकी शूलको अर्द्धभेद और स्फिच् अर्थात् चूतड़में होनेसे उसे अधोभेद कहते है। बलक्षय, रक्तक्षय, हृत्‌दोष, मस्तिष्क दोष, अजीर्ण और विविध दन्तरोगोंसे ऊर्द्धभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है; इससे ललाटके नीचेवाला अक्षिपुट, गाल, नासिका, ओठ, जीभ, पार्श्व, अधर और दांतमें शूल और दाहलिये दर्द होता है। पहिले मुखके एक तरफ से उठकर मुहभर फैल जाता

है। गीले स्थानमें वास, शैत्यसेवन, बलक्षय, तथा विकृत वायु और पानी सेवन आदि कारणोंसे अर्द्धभेद पैदा होता है। इसमें मुखमण्डलके अर्द्धांग में तीव्र दर्द होता है। यह रोग अकसर बायें तरफ होता है। तथा मस्तकमें तीरसे छेदनेकी तरह मालूम होता है। बीच बीचमें आराम हो जानेसे यह रोग देरसे आराम होता है। युवावस्थामें इसका प्रादुर्भाव अधिक होता है, तथा पुरुषकी अपेक्षा स्त्री रोगी अधिक दिखाई देती है। मलरोध, परिश्रम, शीतसेवा, दुर्ब्बलता, आमवात रोग, आर्द्र स्थान में वास और गर्भ विकृति आदि कारणोंसे अधोभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है। चूतड़, जांघसंधिके पीछे तथा कभी पैर और जंघेमें अधोभेद उपस्थित होता है यह अकसर एक पैरमें दिखाई देता है। रातको और प्रौढावस्था में इस रोगका प्रकोप अधिक होता है।

चिकित्सा।—वायु अनुलोमक, बलवर्द्धक और अग्नि-जनक औषधादि इस रोग में उपकारी है। वातव्याधि अधिकार का कुब्जप्रसारणी, महामास तैल मालिश, उरद उबालकर उसका सेंक, वातज वेदना निवारक प्रलेप और रेंड़ीके तैलका जुलाब इस रोगमें विशेष उपकारी है। बृहत् छागलाद्य घृत भी विशेष उपकारी है। छोटी इलायची, बड़ी इलायची, खसकी जड़, सफेद चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, सोंठ, हर्रा, आंवला, बहेड़ा और अजवाईन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर चांदी; सब एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा गायके घीके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका स्नायु-शूल और वातरोग दूर होता है। स्वर्णमाक्षिक, चांदी, लौह और रससिन्दूर प्रत्येक समभाग; एकत्र चीताके रसकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना; रोज सबेरे त्रिफला भिंगोया

पानीके साथ सेवन करनेसे भी आराम होता है। वातव्याधि का पथ्यापथ्य इस रोगमें पालन करना चाहिये।



भग्न चिकित्सा।

रोग परीक्षा।—ऊंचे स्थानसे गिर पडना, पीडन और अभिघात आदि नाना कारणोंसे अस्थि और अस्थिसन्धि भग्न होती है। एक सन्धिस्थल से दूसरे सन्धिस्थलके बीचवाले एकखण्ड अस्थिको काड और दो अस्थिके संयोग स्थनको अस्थिसन्धि कहते है। ऐसही ।नभेदके अनुसार काडभग्न और अस्थिभग्न नामसे भग्नरोग दो भागमें विभक्त है।

भिन्न भिन्न अवस्था और प्रकारभेद।—सन्धिभग्न छ प्रकार, उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तिक, तिर्य्यगत, चिप्त और अधोभग्न। साधारणतः यह छ प्रकारके भग्नसे अङ्गका पसारना, आकुञ्चन और परिवर्त्तन के वखत अत्यन्त दर्द होती है तथा भग्नस्थान छूनेसे भी अत्यन्त दर्द होतो है। उत्पिष्ट नामक सन्धिभग्न में दोनो हड्डी उत्पेषित हो जातो है इससे भग्नस्थान के दोनो तरफ शोथ हो जाता है और रातको दर्द अधिक बढ़ता है। विश्लिष्ट सन्धिभग्न से सन्धिस्थल शिथिल हो जाता है तथा सर्व्वदा अत्यन्त दर्द होता है और उत्पिष्ट भग्नको तरह अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देते है। सन्धि विवर्त्तित अर्थात् विपरीत भावसे परिवर्त्तित होनेसे दोनो तरफ तीव्र दर्द होतो है। तिर्य्यगत अर्थात् सन्धिस्थल टेढो होनेसे भी दर्द होतो है। सन्धिस्थलमे

अस्थि विक्षिप्त होनेसे शूलवत् दर्द और अधःक्षिप्त होनेसे दर्द और सन्धिका विघटन अर्थात् अमिलन होता है। कांडभग्न साधारणतः १२ प्रकारका देखनेमें आता है। जैसे कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, कांडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, विस्फुटित, वक्र और छिन्न। अस्थि वहिर्गत हो मध्यभाग ऊंचा और पार्श्वद्वय नीचा हो कैंकड़ेके आकार का होता है इसमें उसको कर्कटक भग्न कहते हैं। किसी स्थानकी विपुल अस्थि वहिर्गत हो अश्वकर्ण की तरह ऊंची हो जाती है, इसको अश्वकर्ण भग्न कहते हैं। हड्डी चूर हो जानेसे उसे विचूर्णित भग्न कहते हैं। शब्द और स्पर्शसे हड्डीका चूर्ण होना मालूम होता है। अस्थि पेषित होनेसे उसको पिच्चित कहते है इसमें अत्यन्त शोथ होता है; हड्डीका थोड़ा अंश विश्लिष्ट अर्थात् छिल जानेसे उसको छल्लित भग्न कहते है। अस्थिमांसादि पदार्थसे सर्व्वथा अलग हो त्वक्में रहनेसे उसे विश्लिष्ट कांडभग्न कहते हैं। अतिपातित भग्नमें अस्थि छिन्न हो जाती है। अस्थिका अवयव अस्थिमें प्रविष्ट हो मज्जा निकलनेसे मज्जागत भग्न जानना। विस्फुटित भग्नमें अस्थि अल्प विदीर्ण हो जाती है। अस्थि वक्र होनेसे उसे वक्रभग्न कहते हैं। छिन्नभिन्न दो प्रकार; एक प्रकार के छिन्नसे अस्थि विदीर्ण हो लग्न हो जाती है, दूसरे प्रकारसे विदीर्ण हो दो भागमें विभक्त हो जाती है। ये १२ प्रकारके कांडभग्न से अंगकी शिथिलता, प्रवल शोथ, प्रवल दर्द भग्नस्थान दवानेसे शब्दोत्पत्ति, छूनेसे अत्यन्त दर्द, स्पन्दन, सूचीवेधवत् पीड़ा, शूलवत् वेदना और बैठने उठने आदि सब अवस्थामें तकलीफ होती है।

अस्थिपरिक्षय।—इसमें अस्थिभग्न और विभिन्न रहती है। तरुणास्थि मुड़ जाती है। नलकास्थि विदीर्ण होता है।

कपाल स्थि दो भागमें विभक्त होती है और रुचक तथा वलया नामक अस्थिभी कटजाती है। इनकी प्रत्येक अवस्थाको भग्न कहते हैं। नाक, कान, आंख और गुह्य देशको अस्थिका नाम तरुणास्थि; जिस अस्थिमें छेद रहता है उसका नाम नलकास्थि; जानु नितम्ब, स्कन्ध, गंड, ताल, शंख, वङ्क्षण और मस्तक के अस्थिको कपालास्थि, दन्तसमूहको रुचकास्थि तथा दोनो हाथ, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, वक्ष, उदर, गुह्य और दोनो पैरके टेढी हड्डीयों कोवलयास्थि कहते हैं।

साध्यासाध्य —कपालास्थि टूटनेसे असाध्य जानना, सन्धिभग्नमें चिन्न और उत्पिष्टभग्नभी असाध्य है। असंयुक्त कपालास्थि का चूर्ण तथा छाती, पीठ, शंख और मस्तक के चूड़ा स्थानका टूटना भी असाध्य है; भग्नाङ्ग व्यक्ति यदि वायु प्रकृतिका हो, रोग प्रतिकारमें यत्नशील न हो, आहार बंद हो गया हो, तथा ज्वर, आध्मान, मूर्च्छा, मूत्राघात और मलबद्धता आदि उपद्रवयुक्त होतो वह भग्न कष्ट साध्य जानना अस्थि एकबार सम्यक योजित होनेपर भी यदि वह अयथारीतिसे स्थापित न हो, सुन्यस्त होनेपर भी यदि यथानियम बाधी न जाय और अच्छी तरह बाधनेपर भी यदि वह अभिघातादि से फिर हिलकर टेढो हो जाय तो फिर यह अवस्था दूर नही हो सकती अर्थात् वैसही रहजाती है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—भग्नस्थानमें पहिले ठंढे पानीसे सिञ्चनकर अवनत अस्थि उठाना और उन्नत अस्थि दबाकर स्वस्थान में ले जाना। फिर समान दो काठकी तख्ती दोनो तरफ रख कपड़ेसे न बहुत ढोला न बहुत कसकर बांधना। कारण बंधन ढीला होनेसे संयोग स्थिर नही रहता तथा कसकर बाधनेसे त्वक आदि स्थानोंमें शोथ, दर्द और घाव होता है। बंधन

के उपर बड़, गुल्लर, पीपर, पाकड़, मुलेठी, अमड़ा, अर्ज्जुन, आम, कोशाम्र, पिड़िंशाक, तेजपत्ता, बडा जामुन, छोटा जामुन,पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, लोध, गावरलोध, शल्लकी, भेलावा, पलाश और मेड़ाश्रृङ्गीके काढ़ेका पान करना। अभावमें नौसादर भिंगोया पानी किम्वा ठण्ढे पानीसे बन्धनका कपड़ा तर रखना। अतिरिक्त दर्द होतो स्वल्प पञ्चमूलके साथ दूध औटाकर वही दूधसे सींचना। रोगकी अवस्थाके अनुसार अकसर बन्धन खोलकर फिर बांधना। साधारणत: शीत ऋतुमें सातदिनके अन्तर, शीत ग्रीष्म दोनों जब समान अवस्थामें रहता है, तब ५ दिनके अन्तर और ग्रीष्म ऋतुमें तीन दिनके अन्तरपर बन्धन बदलना चाहिये। लहसन, सहत, लाह, घी और चीनी प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधातोला मात्रा रोज सेवन करना। अथवा बबूलकी छालका चूर्ण चार आनेभर मात्रा सहतके साथ चाटना। किम्वा पीतवर्ण कौड़ीभस्म २।३ रत्ती कच्चे दूधके साथ सेवन कराना हाड़जोड़, लाह, गोधूम और अर्ज्जुन छाल प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा दूध और घीके साथ सेवन करनेसे अस्थिसंयोगमें विशेष मदद पहुंचती है। अस्थि मिलजाने पर बन्धन खोलकर मजीठ और मुलेठी कांजीमें पीसकर उसका लेप करना। किम्वा शालि तण्डुल पीसकर उसमें घी मिलाकर प्रलेप देना। लाह, हाड़जोड़, अर्ज्जुनछाल, असगन्ध और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला, गूगल ५ तोले एकत्र पीसकर लेप करना। अथवा बबूलके जड़की छालका चूर्ण तथा त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण प्रत्येक समभाग सबके बराबर गूगल एकत्र खलकर भग्नस्थानमें लेप करना। पुरानी बिमारी होनेपर माषतैल, कुब्जप्रसारिणी तैल और सूअरकी चर्बी मालिश करनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें मांस, मांसरस, दूध, घी, मटर और उड़दका जूस अथवा अन्यान्य पुष्टिकर द्रव्य भोजन उपकारी है। अधिक लवण, कटु, चार, खट्टा और रुचद्रव्य भोजन, तथा कसरत, धूपमें बैठना और मैथुन भग्नरोगीको अनिष्टकारक है।

शीर्षाम्बु रोग चिकित्सा।

अधिक शैत्य, संयोगविरुद्ध भोजन, अतिरिक्त मद्यपान, दूषित, वायु सेवन, दूषित जलपान, मस्तकमें आघात प्राप्ति और अन्त्रमें क्रिमिसञ्चय आदि कारणोंसे मस्तिष्कके आवरणमें क्रमशः पानी जाकर, शिरोवेदना, आलोक दर्शन और शब्द सुननेसे चमक उठना, अल्पमूत्र आना, कालेरंगका कठिन मल आना, नाड़ी द्रुतगति, त्वक रूखा और गरम, जीभतन्नाना, चक्षुके तारेकी विकृति, क्रोधशीलता, मुखकी विवर्णता, निद्रावस्थामें दांत घिसना, ओठ और नासिकामें कण्ड्, हाथ पैर पटकना, पक्षाघात, प्रलाप तथा चक्षु रक्तपूर्ण और रक्तवर्ण आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होते हैं। इसीको शीर्षाम्बु रोग कहते हैं। यह रोग अधिक उमरवालोंकी अपेक्षा बालकों को अधिक होता है। खासकर बच्चोंके दांत निकलते वक्त यह रोग होनेकी सम्भावना रहती है। यह रोग अति कष्टसाध्य है। रोग प्रकाश होनेसे पहिले जिह्वा कफलिप्त, अ घन निद्रा, दुर्बलता, दुर्गन्धयुक्त निश्वास निकलना और मलकी कठिनता आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—इस रोगमें विरेचक, मूत्रकारक और रक्तपरिष्कारक औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगीका शिर मुड़ाकर सर्व्वदा गरम पकड़ेसे ढांके रखना उचित है। सेहुड़के पत्तेका रस अथवा जयन्ती पत्तेके रसके साथ कालाजीरा, कूठ, गेरूमिट्टी, सफेद मिट्टी, लालचन्दन, समुद्रफेन प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर भूजा हुआ चावल एकत्र पीस तथा थोड़ा गरमकर, दोपहर को मस्तकमें लेप करना, तथा सूखजानेपर निकाल डालना। दूधके साथ नारियलका तेल थोड़ा मिलाकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। रेवतचीनी, तेवड़ी की जड़, श्यामालता, हरीतकी, औरन्ना शठी, अनन्तमूल, मुलेठी, मोथा, धनिया, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, दालचिनी इलायची और तेजपत्ता, इन सबके काढ़में जवाखार मिलाकर पीनेसे रोग शान्त होता है। गायका घी १ सेर, तथा केशर, अनन्तमूल, मुनक्का, जीवन्ती, हरतकी, कालानमक, तेजपत्ता और परवरकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी ४ सेर यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करनेसे यह रोग तथा अन्यान्य शिरोरोग भी आराम होता है। महादशमूल तेल, बृहत्‌पुष्क मूलादि तैल और नीचे लिखा तेल शिरमें मालिश करना। सरसी का तेल एक सेर, धतुरेकी बीज, धवईका फूल, मूर्व्वामूल, महुये की छाल, मुलेठी, कालानमक, सोंठ, नीलकी जड़, पीपल, कटफल कुटकी और बाला; प्रत्येकका चूर्ण आधा आधा मात्रा मिलाकर एक पात्रमें रख मुह बन्दकर सात दिन रख देना। यह तेल शिरमें मालिश करनेसे शिराम्बु रोग दूर होता है।

ये सब क्रियाओंसे पीड़ा दूर न होनेपर उपयुक्त चिकित्सक से कपालमें फस्त लेना चाहिये। शस्त्रकर्म्मी चिकित्सक के सिवाय किसी अनाड़ीसे फस्त लेनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है।

लघुपाक तथा पुष्टिकारक और सारक अन्नपान भोजन को देना। शीतल द्रव्य या कफवर्द्धक द्रव्य आहार और विहार अनिष्टकारक है।

रसायन विधि।

"यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।"

रसायन संज्ञा—जिस औषधिके व्यवहार करनेसे स्वस्थव्यक्ति को बुढापा और कोई रोगके आक्रमणका डर नहीं रहता, उसे रसायन कहते है। रसायन सेवन करनेसे आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदि बढता है और एकाएकी कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकता है।

प्रकारभेद।—सबेरे पानीका नास लेनेसे रसान होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और कासरोग दूर होता है तथा दृष्टिशक्ति बढती है। सूर्य्योदय से पहिले यथाशक्ति जलपान करनेसे वातज, पित्तज रोग दूर हो मनुष्य दीर्घायु होता है। नाकसे जलपान करनेसे और भी अधिक उपकार होता है। इसको ऊषापान कहते है। अजीर्ण रोगमें ऊषापान विशेष उपकारी है। असगन्धका चूर्ण चार आनेभर मात्रा पित्तप्रधान प्रकृतिमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमें तेलके साथ, वात पैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ और वातकफ प्रकृतिमें गरम पानीके साथ १५ दिनतक सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता दूर होती है। विधारेकी जडके चूर्णको सातबार सतावरके रसकी भावना दे आधा तोला मात्रा घीके साथ एक मास सेवन करनेसे,

वुद्धि ; मेधा और स्मृतिशक्ति बढती है तथा वलिपलितादि रोग दूर होते है। हरीतकी वर्षातमें सैन्धवके साथ, शरत्काल में चीनीके साथ और ग्रीष्ममें गुडके साथ सेवन करनेसे विविध रोगकी शान्ति हो. रसायन होता है। इसका नाम हरीतकी रसायन या ऋतु हरीतकी है। पहिले हरीतकी का चूर्ण चार आनेभर माता सेवन आरम्भ करना फिर सहनेपर २ तोलेतक बढाना चाहिये। सैन्धव, शोंठ और पीपलसे कम माता हरीतकी लेना चाहिये तथा दूसरा अनुपान हरीतकीके बराबर लेना उचित है।

क्रमागत एकवर्षतक रोज ५, ६, या १० पीपल, सहत या घीके साथ सेवन करनेसे रसायन होता है। पीपल को पलाशके खारके पानीकी भावना दे घीमें भूनकर रोज भोजनके पहिले वही पीपल रोज तीन, घी और सहतके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, चय, शोष, हिक्का, अर्श ग्रहणी, पांडु, शोथ, विषम ज्वर स्वरभंग, पीनस और गुल्म आदि पीडा दूर हो आयु बढती है। पहिले दिनका आहार पच जानेपर सवेरे एक हर्रा, भोजनके पहिले २ वहेडा और भोजनके वाद ४ आंवला सहत और घीके साथ एकवर्षतक सेवन करनेसे मनुष्य निरोग शरीरसे बहुत दिन तक जीवित रहता है। लोहेके नये पत्तरमें त्रिफलाका कल्क लेपकर एकदिन रखकर फिर वह कल्क निकालकर सेवन करना उत्तम रसायन है। विधारेकी जडके चूर्णको ७ वार सतावरके रसकी भावना दे आधातोला माता घीके साथ सेवन करनेसे वुद्धि, मेधाकी वृद्धि तथा वलिपलित आदि दूर होते है। हस्तिकर्ण, पलाशके छालका चूर्ण घी और सहतके साथ रोज सवेरे खानेसे वल, वीर्य, इन्द्रियशक्ति और आयु बढती है।

रतिशक्ति और शुक्र बढ़ता है। घीमें भूनी रोहू मछली और अनारके रसमें भिंगोया चुया बकरेका मांस औटाकर भोजन करना फिर मांस रस पीना, इससे भी शुक्र और रतिशक्ति बढ़ती है। गोरइयाका मांस तितरपक्षीके मांसके काढ़ेमें, तितिरका मांस कुकुट मांसके काढ़ेमें, कुकुटका मांस मयुर मांसके काढ़ेमें और मयुर मांस हंस मांसके काढ़ेमें औटा तथा घीसे तलकर खट्टा रस विशिष्ट अथवा मधुर द्रव्य द्वारा मधुर रसविशिष्ट तथा एलादि सुगन्धित द्रव्य द्वारा सुगन्धित कर सेवन करनेसे शुक्रका अत्यन्त बल बढ़ता है। इसके सिवाय शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगाधिकारकी औषधादि सेवन करनेसे वाजीकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

विविध "टोटका" चिकित्सा।

बरैयादि। बरैया मधुमक्खी काटेतो पोईशाकका पत्ता, किंचुनी गास या हाथीशुंडाके पत्तेका रस मर्द्दन करनेसे जलन शान्त होती है। तथा छोट बेरकी जड़ या डंटेका रस मर्द्दन करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

शुआकीट लगनेसे पहिले गुलरका पत्ता घिसकर उसका कांटा निकाल लेना फिर उस स्थानमें चुना लगाना। अपरिपुष्ट चावल पीसकर उसका लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। हाथ पैरमें शुयोकीड़ा लगनेसे तेलाकुचाके पत्तेकारस मर्द्दन करनेसे आराम होता है।

आगसे जलना आदि—कोई स्थान आगसे जलनेपर तुरन्त गुड़के चोटेका लेप अथवा घिकुआरका रस, चूनेका पानी और

नारियलका तेल एकत्र म लाकर लेप करनेसे जलन शान्त होती है तथा फफोला नहीं आता। आलु पीसकर उसका पतला लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कोई स्थान कट जानेसे या कुचलकर खून जानेसे दन्तीके नरम पत्तेका रस लगाकर बांधनेसे क्षतस्थान जुट जाता है और खून बन्द होता है तथा पकनेका डर नहीं रहता। टटका गोबर बांधनेसे भी खून बन्द होघाव जुट जाता है। विषफोड़ेमें नीमकी सूखी छाल पानीमें चन्दनकी तरह घिसकर धतुरे पत्तेमें लगाकर फोड़ेपर रख बांध देना, लगातार तीन दिन ऐसही बांधनेसे विषफोड़ा आराम होता है। फोड़ा होनेसे कदमके पत्तेकी शिरा निकालकर फ की बराबर तह रख आहिस्तेसे बांध देनेसे फोड़ा आराम होता है। अच्छी तरह पक जानेपर कदमका पत्ता और सेमलका काढा एकत्र पीसकर लेप करनेसे आराम होता है। घुरघुरामें कीड़ा पड़ जानेसे मड़े मानका डण्डा और मखन एकत्र पीसकर लगा धूपमें बैठनेसे कीड़ा बाहर निकल घाव सूख जाता है। जातीफूलका पत्ता गायके घीमें भूनकर गरम रहते रहते गलेके घावमें, मुखके घावमें और दांतके जड़में लगानेसे तकलीफ दूर होती है। द्रोण-फूलके रसमें सहत और तिल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कीड़ा दूर होता है। टटके गोमूत्रमें नारियलका फूल पीसकर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंख आना दूर होता है। रोज सवेरे तुलसीके पत्तेका रस एक तोला पीनेसे जीर्णज्वर, रक्तस्राव, रक्तामाशय, आमाशय और अजीर्ण दोष शान्त होते है। बिछौटीका नरम पत्ता रोज सवेरे और तीसरे पहरको टाकमें रगड़नेसे टाक दूर होता है। एक छटांक चन्द्रसूर या हालिम दाना आधा सेर पानीमें मिलाकर या औटाकर वह पानी एक

तोला मात्रा आधा घण्टाके अन्तरपर पिलानेसे हुचकी दूर होतीहै, ओकडाका पत्ता नमकके साथ रगडकर उसका रस मालिश करनेसे ज्वरके समयको शिर:पीडा और शिरका भारीपन दूर होता है। कालाजीरा सेहुंडके पत्तेके रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा कालाजीरा और दालचीनी समभाग पानीमें पीसकर लेप करनेसे ज्वरको शिर:पीड़ामें विशेष उपकार होता है। शुनटा का पत्ता नमकके साथ रगड उसका रस मालिश करनेसे भयानक शिर:पीडा दूर होती है। दालचीनी, तेजपत्ता, मूचकुन्द फूल, शुनटा सफेद सरसो, गोलमिरच,मुसब्बर और कालाजीरा प्रत्येक समभाग शुलटाके पत्तेके रसमें पीसकर थोडा गरम लेप करनेसे कृच्छ्र-साध्य शिरोरोग दूर होता है। धतूरेके पत्तेके रसमें लालचन्दन घिसकर गाढा होनेपर थोडी अफीम मिला २।३ बार लेप करनेसे अधकपारी दूर होती है। मलमूत्र बन्द होनेसे पथरोका पत्ता और सोरा पानीमें पीस पेडूमें लेप करनेसे मलमूत्र निकलता है। किसी स्थानसे गिर जानेसे अथवा पीडनादि कारणोंसे हड्डीमें दर्द होनेसे टटका गोबर गरमकर लेप करना, चूना हलदी एकत्र गरम कर लेप करनेसे भी उपकार होता है। हाडजोड़का पत्ता पीसकर लेप करनेसे विशेष उपकार होता है।

——o——

वैद्यक-शिक्षा।

पञ्चम खण्ड।

शारीरविज्ञान की सारबातें।

शरीरही चिकित्सा-कार्यका प्रधान अङ्ग है; शारीरतत्त्व नहीं जाननेसे प्रकृत चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिये इस ग्रन्थमें शारीरतत्त्वकी आलोचना भी करना उचित है। आयुर्वेद में शरीरविज्ञानके बारेमें जितने उपदेश पाये गये हैं, पहिले उन्हींके सार बातोंकी आलोचना की जाती है। इसके बाद प्रत्येक अवयवके अवलम्बनसे प्राच्य और प्रतीच्य दोनों मतोंका समन्वय कर विस्तारमें शारीरतत्त्वकी आलोचनाकी जावेगी।

पञ्चभूत या पञ्चेन्द्रिय।—आकाश, वायु, तेज, पानी और पृथिवी,—यह पञ्चमहाभूत; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांच इन्द्रियार्थ; चक्षु कर्ण नासिका, जिह्वा और त्वक,—यह पांच ज्ञानेन्द्रिय; हाथ पैर, गुह्य, उपस्थ और वागेन्द्रिय,—यह पाच कर्मेन्द्रिय; तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और जीवात्मा—यही चौबीस तत्त्वोंके समष्टिभूत स्थूलपुरुष चिकित्सा कार्यका अधिष्ठान है, तथा इसी स्थूलपुरुषके उत्पत्तिके नियम और प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गका विवरण शारीरतत्त्वका आलोच्य विषय है।

शुक्रशोणित।—जिस स्त्रीका शोणित * और गर्भाशय अव्यापन्न है, उसके साथ ऋतुकाल में अव्यापन्न शुक्र पुरुषके सहवास से पुरुषका शुक्र स्खलित हो स्त्रीके गर्भाशयमें प्रविष्ट और

* शुक्र स्फटिक की तरह स्वच्छ, अतरल द्रव, स्निग्ध, मधुररस मधुगन्धयुक्त और मधुवत् हो उस को अव्यापन्न शुक्र जानना और जो आर्तव शोणित शशकके रक्तकी तरह किम्वा लाहके रसकी तरह लालवर्ण तथा वस्त्रमें लगनपर धोनेसे बदाग छूट जाती उसीको अव्यापन्न शुद्धशोणित कहते हैं।

दोनोका शोणित एकत्र मिलकर गर्भरूप धारण करता है। बारह वर्षसे पचास वर्षतक स्त्रोके योनिद्वारसे प्रत्येक मासमें रज निकलता है। इसी रजःसृतिकाल और ऋतुके पहिले दिनसे सोलह दिनतक को ऋतुकाल कहते है। इसमें प्रथम तीनदिन सहवास करना उचित नही है; इससे स्त्रीपुरुष दोनोके अनिष्ट की सम्भावना है, यदि दैवात् उक्त तीनो दिनमें गर्भ धारण हो तों वह नष्ट या विकृत होता है। तीनरातके बाद चतुर्थ आदि युग्मरातको सहवास करनेसे पुत्र और पञ्चमादि अयुग्म रातके सहवाससे कन्या उत्पन्न होती है। वस्तुतः शुक्रभागके आधिक्य से पुत्र और शोणितभागके आधिक्यसे कन्या पैदा होती हैं, यही पुत्रकन्याके उत्पत्तिका प्रशस्त कारण है। शुक्रशोणित दोनोके समान अंशमें नपुंसक पैदा होता है। स्त्रीपुरुषके विपरीत सहवाससे गर्भमें यदि पुत्र होय तो वह स्त्रीप्रकृति और कन्या हो वह पुरुष प्रकृति को प्राप्त होती है। शुक्र शोणित और गर्भाशय को व्यापत्ति रहनेसे अथवा गर्भिणी की मन वांछा पूर्ण न होनेसे किम्वा गर्भ किसी कारणसे आहत होनेसे पुत्रकन्या विकृताङ्ग होती हैं।

मासभेद से गर्भलक्षण और परिपुष्टि।—

सहवासके बाद यदि स्त्रीके योनिसे शुक्रादि न निकले तथा श्रान्तिबोध, ऊरुद्वय को अवसन्नता, पिपासा, ग्लानि और योनि स्पन्दन आदि लक्षण प्रकाशित हो तो स्त्रोको गर्भ रहा जानना चाहिये। गर्भोत्पत्ति होनेसे क्रमशः ऋतुरोध, मुखस्राव, अरुचि सर्वदा अकारण वमनवेग, खट्टा खानेकी इच्छा, नाना उपभोग की इच्छा, लोमराजिका ईषत् उद्गम अक्षि पक्ष्मका सम्मिलन, शरीर का अवसन्नता, मुखका पाण्डुवर्णता, स्तनाग्र और ओठ

अधरकी कृष्णवर्णता, पदद्वयमें शोथ और योनिद्वार की विस्तृति आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। द्वितीय मासमें मिश्रित शुक्र-शोणित किञ्चित गाढ़ा हो, पिण्डाकार, पेशीकी तरह अथवा अर्ब्बुदाकृति होता है। पिण्डाकार होनेसे पुरुष, पेशी होनेसे स्त्री और अर्ब्बुदाकार होनेसे नपुंसक पैदा होता है। तृतीय मासमें अति सूक्ष्म सब इन्द्रिय और समस्त अङ्गावयव उत्पन्न हो दोनो हाथ, दोनो पैर और मस्तक यही पांच अवयवोंके पांच पिण्ड उत्पन्न होते हैं। चतुर्थ मासमें वही सब पिण्ड परिस्फुट होते हैं तथा गर्भ भी कुछ कठिन होता है, इससे गर्भिणीका शरीर अधिक भारी हो जाता है। पञ्चम मासमें गर्भका मन, मांस और रक्त पैदा होता है इससे गर्भिणी दुब्बल हो जाती है। छठे मासमें गर्भको बुद्धि, बल और वर्ण उत्पन्न होता है इसलिये गर्भिणी का बलवर्ण क्षय होता है, तथा गर्भिणी भी इसवक्त क्लान्त हो जाती है। सप्तम मासमें गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है। गर्भिणी भी इस वख्त अत्यन्त क्लान्त हो जाती है। अष्टम मासमें गर्भ शरीरसे गर्भिणीके शरीरमें और गर्भिणीके शरीरमें गर्भ शरीरमें ओज पदार्थ सर्व्वदा आया जाया करता है ; इससे गर्भिणी कभी हृष्ट और कभी ग्लानियुक्त होती है। अष्टम मासमें प्रसव होनेसे गर्भ या गर्भिणीमें से एककी मृत्यु होनेकी सम्भावना है। गर्भिणीका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भिणीका और गर्भका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भकी मृत्यु होती है। *नवम मासमें द्वादश मासतक प्रसवका* काल है। गर्भाशय जरायु अर्थात् एकप्रकार पतले चमड़ेसे आवृत हो गर्भ गर्भिणीके पीठकी तरफ सन्मुख करके और संकुचित हो गर्भ रहता है। अमरा नामक गर्भकी नाभीनाड़ी

गर्भिणीके हृदयस्थ रसवाहिनी नाड़ीके साथ संयुक्त रहनेसे गर्भिणी के आहार का रस उसी नाड़ीसे गर्भ शरीरमें जाता है। इसीसे गर्भके जीवनकी रक्षा और क्रमशः बढ़ती है। एकप्रकारके आच्छादनसे जरायु का मुख ढका रहने से तथा कफसे उसका कण्ठ भरा रहनेके कारण गर्भस्थ शिशु हास्य रोदनादि नहीं कर सकता। तथा पक्काशय में वायु कम रहती है इससे मलमूत्र और अधोवायु निकल नहीं सकती। गर्भिणीके नश्वास प्रश्वास और निद्रा जागरण आदिके साथही उसकी भी क्रिया सम्पन्न होती है। प्रसवके पहिले जब प्रसव वेदना होती है उसवक्त गर्भस्थ बालक उलटकर उसका शिर योनिद्वार में उपनीत होता है। ऐसा न होनेसे प्रसवमें देर लगती है।

धातु।—सम्पूर्ण चेतनायुक्त देहको शरीर कहते हैं, शरीर रक्षाके लिये जो द्रव्य खाया जाता है वह क्रमशः परिपाक हो रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रधातु होता है। सुतरां इसीसे शरीरकी रक्षा, वृद्धि, पुष्टि और स्थायित्व होता है। सुतरां पदार्थका पहिला पदार्थ रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है। रससे शुक्रतक एक एक धातुसे बादवाला धातु परिणत होनेमें सात दिन लगते हैं। स्त्रीयोंका आर्त्तव रक्तधातु रक्तसे पृथक् है, वह रक्तका भेदमात्र है वह महीनेभर एकत्र हो मासके अन्तमें योनिद्वारसे निकल जाता है। गर्भावस्था में वह रक्त बन्द हो स्तनमें आजाता है और वहां दूध बनता है। इसीसे गर्भावस्थामें स्तनद्वय पीन और दुग्धयुक्त होते हैं।

त्वक्।—गर्भाशयका शुक्रशोणित जब क्रमशः परिपक्व होता है, उसी वक्त दूधमें मलाई की तरह शरीरके त्वक् को

उत्पत्ति होती है। त्वकसे शरीर जल वायु आदि शोषण, पसीना निकलना और देहके उष्माकी रचा होती है। बाहरसे मांसके ऊपर तक क्रमशः सात त्वक है। बाहरका पहिला त्वक एक धानके १८ भागके एक भागकी तरह पतला है; यही शरीरके रङ्गका आश्रय और इसीमें सिध्म और पद्मिनीकण्टक आदि रोग पैदा होते है। द्वितीय त्वक धानके सोलह भागका एक भाग पतला है; इसीमें तिलकालक न्यच्छ और व्यङ्ग आदि पीडाका अधिष्ठान है। तृतीय त्वक धान्यके द्वादशांशका एकांश है; चर्म्मदल अजगल्लिका और मशक आदि रोग इसीके आश्रयसे पैदा होते है। चतुर्थ त्वक धान्यके अष्टमांसका एकांश है; किलास और कुष्ठ आदि पीडाका यही अधिष्ठान है। पञ्चम त्वक धान्यके पांच भागका एक भाग; इसमें भी कुष्ठ और विसर्प रोग पैदा होते है छठा त्वक धानकी तरह मोटा है; ग्रन्थि, अपची, अर्व्वुद, श्लीपद और गलगण्ड आदि इसीका आश्रय लेते है। सप्तम त्वक दो धानकी तरह मोटा होता है, भगन्दर विद्रधि और अर्श आदि रोग इसीके आश्रय से उत्पन्न होते हैं। साधारणतः त्वकका परिमाण इसी तरह है, पर ललाट और अङ्गुलि आदि स्थानोंका त्वक इससे भी कम पतला होता है।

एक धातुके बाद दूसरा धातु जहां आरम्भ होता है वहा दोनोके सन्धिमें तन्तुकी तरह कफजडित बहुत पतला एक प्रकारका आवरण रहता है; आयुर्वेदमें उसे कला और भाषामें उसको झिल्लि कहते हैं।

धातुका स्थान।—त्वक, रक्त और मांस शरीरमें सर्व्वत्र रहता है; तथापि यकृत् और प्लीहा रक्तके यही दो प्रधान स्थान है। मेदधातु अन्य स्थानके सिवाय उदर और पतली हड्डीमें

अधिक रहता है। मज्जा मोटी हड्डोमें रहती है। शुक्र सर्व्व-शरीरव्यापी है उसका कोई निर्द्दिष्ट स्थान नहीं है। कामवेग से सब शरीरसे निकलकर लिङ्गद्वार से जब बहिर होता है तभो दिखाई देता है। शुक्र पहिले सब शरीरसे निकलकर बस्तिद्वारके नोचे दो अङ्गुलके अन्तर पर दक्षिण भागमें एकत्र होकर फिर निकलता है।

शरीरकी अस्थिसंख्या।—शरीरकी अस्थिसंख्या चरक ऋषिके मतमे ३६०, सुश्रुतके मतमे ३०० और आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतसे १४०। सुश्रुताचार्य्यके मतसे प्रत्येक हाथ पैरको अङ्गुलियोंमें तीन तीन, पैर या हाथकी तलवो, कूर्च्च, गुल्फ या मणिबन्ध, प्रत्येक हाथ और पैरके उक्त स्थानोंमें दश दश, पाद, पार्ष्णी और हस्तपृष्टमें एक एक, जङ्घे में दो; जानुमें दो; ऊरूमें एक एक, केहुनोंके नोचेसे मणिबन्धतक दो दो; केहुनीमें एक; प्रत्येक पार्श्वमें ३६ कर ७२　पटमें २०; छातोमें आठ ८, दोनो चक्षुगोलक से एक एक कर दो २; ग्रीवामें ८ नव; कण्ठमें ४ चार; हनुद्वयमें दो २; दांतमें ३२ बत्तोस; नासिका मे, ३; तालुमें एक; ललाट, कान और शङ्ख—प्रत्येक स्थानमें एक एक और मस्तकमें ६ छ है। अवयव और अवस्थानविशेषानुसार अस्थियें नानाप्रकारकी विभिन्नता है। अस्थोसमूह पांच प्रकारमें विभक्त है—जैसेतरुण, कपाल, नलक, वलय और रुचक। नासिका कर्ण चक्षु और गुह्य अस्थिको तरुणास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड, तालु, शङ्ख, वंक्षण और मस्तकके अस्थिको—कपालास्थि, दोनो हाथ, पार्श्वद्वयो को टेढो अस्थिको वलयास्थि; छिद्रवालि अस्थिको नलकास्थि और दन्तसमूह को अस्थिको रुचकास्थि कहते

है। दन्त चार प्रकार—छेदन, शोवन, दयग्र और पेषण। छेदन दन्त ऊपर ४ और नीचे ४ ; शोवन दन्त दो ऊपर और दो नीचे ; दयग्रदन्त ४ ऊपर और ४ नीचे और पेषण दन्त छ ऊपर और छ नीचे।

अस्थिसन्धि—अङ्गुली, मणिबन्ध, गुल्फ, जानु, कूर्पर, कक्ष, वंक्षण, दन्त, स्कन्ध, गुह्य, योनि, नितम्ब, ग्रीवा, पृष्ठ, मस्तक, ललाट, हनु, अक्ष, कण्ठ, हृदय, नासा और कर्ण आदि स्थानोंको हड्डी परस्पर मिली हुई रहती है। इससे इसको अस्थिसन्धि कहते है। सन्धिस्थानमें एक चिकना पदार्थ कफ मिला हुआ रहता है, इससे इच्छानुसार सङ्कुचित और विस्तृत होता है।

अस्थिसन्धि सब २१० है ; जिसमें अङ्गुठेमें २ ; तथा अन्यान्य अंगुलियोंमें तीन तीन कर मोट ४८, गुल्फमें एक, जङ्घेमें एक, वंक्षणमें एक, मणिबन्धमें एक, केहुनीमें एक, कंधेमें एक, कमरमें ३, पीठमें २४, पार्श्वद्वयमें २४, छातीमें ८, गलेमें ८, गलेकी नालीमें ३, हृदय, फुसफुस और क्लोम स्थानके निबन्ध नाडीमें १८, दन्तमूलमें ३२, कण्ठमें १, नेत्रवर्त्मसे २, प्रत्येक गाल, कान और शङ्खमे एक एक कर ६, हनुद्वयमें २, भौंके ऊपर दो, शङ्खके ऊपर दो, मस्तकके कपालास्थिमें ५ और बीचमें एक अस्थिसंन्धि है।

स्नायु, शिरा और धमनी।—सूतकी तरह एक पतला पदार्थ समस्त शरीरमें फैला हुआ है, उसे स्नायु कहते है। इन्द्रियोंका अनुभव और अवयवोंका चलाना आदि कार्य्य स्नायुसे होता है। लताकी तरह पदार्थ को शिरा कहते हैं, इसीके भीतरसे रक्तादि प्रवाहित होता है ये सब शिरायें मूल शिरा की शाखा प्रशाखा है। इसके सिवाय ४० मूल शिरा है। इसमें १० शिरा वायु, १० पित्त, १० कफ और १० रक्तवहन करती है। सब

शराभका मूलस्थान नाभि है। शिराकी तरह कई रक्त स्रव हैं, उसे धमनी कहते हैं। इसमें २ प्राणवहा, २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ शब्दज्ञानवहा, २ निद्राकारक, २ जागरणकारक, २ अश्रुवहा, २ स्त्रियोंकी आर्त्तव वहा, २ स्तन्यवहा, २ पुरुषका शुक्रवहा, २ अन्नवहा, २ जलवहा, २ मूत्रवहा, २ मलवहा और बहुतेरी अपरिसंख्येय धमनी स्वेद वमन करती है। शरीरके लोमकूप सब धमनीका बहिर्मुख है। प्राणवहा और रसवहा धमनीका मूलभाग हृदय, अन्नवहाका मूलभाग आमाशय, जलवहाका मूलभाग तालु और क्लोम, रक्तवहाका मूलभाग यकृत् और प्लीहा, मूत्रवहाका मूलभाग वस्ति और लिङ्ग, मलवहाका मूलभाग पक्वाशय और गुह्य, शुक्रवहाका मूलभाग स्तन और अण्डकोष तथा आर्त्तववहाका मूलभाग गर्भाशय है।

पेशी।—स्नायु, शिरा और धमनीकी संख्या निर्दिष्ट नहीं हो सकती। शास्त्रानुसार जितनेकी उपलब्धि हुई है, केवल उसीकी संख्या निर्दिष्ट की गई है। फोतेकी तरह एक प्रकारके पदार्थ अस्थि, शिरा और स्नायु आदि आच्छादित रखता है, उसको पेशी कहते हैं। यह स्थानभेदके अनुसार मोटी, पतली, सूक्ष्म, विस्तृत, [illegible], कठिन, कोमल, मृदु, कर्कश आदि नानाप्रकार की होती [illegible] शरीर का जो जो स्थान [illegible] बनाया जाता है, उसी स्थानमें पेशी रहती है; इसकी भी संख्या अपरिमित है।

कण्डरा।—पेशीनिर्मित [illegible] नाम कण्डरा है; इससे आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य सम्पादित होता है। कण्डराकी आकृति रस्सीकी तरह है। कण्डरा १६; इसमें ४ हस्तद्वयमें, ४ पदद्वयमें, ४ ग्रीवामें और ४ [illegible] पीठमें है।

जाल—शिरा, स्नायु, मांस और हड्डी ये चार पदार्थोंमें कोई एक पदार्थ जालकी तरह छिद्रयुक्त रहनेसे उसे जाल कहते हैं। प्रत्येक मणिबन्ध और गुल्फमें ऐसही प्रत्येक का जाल अर्थात् शिराजाल, मांसजाल और अस्थिजाल रहता हैं।

मेरुदण्डके दोनो तरफ दो दो पर जो चार मांसमय रस्सोकी तरह पदार्थमे मेरुदण्ड बँधा है उसे रज्जु कहते हैं।

सेवनी—मस्तकमें पांच,लिङ्ग और अण्डकोषमें एक और जीभमें जो एक सिया हुआ स्थान दिखाई देता है; उसे सेवनी कहते हैं।

मर्मस्थान—शिरा, स्नायु, मांस, अस्थि और सन्धि ये सब जिस जगह परस्पर मिल जाती है उसको मर्मस्थान कहते हैं। मर्मस्थान सब १०७; इससे शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, मांसमर्म ११, अस्थिमर्म ८, और सन्धिमर्म २० बीस है।

मर्मस्थानविभाग।—जिस शिरामें नाक, कान, आंख और जिह्वा आप्यायित होती है; तथा मस्तक के भीतर जहां ये सब शिराओंका मुख मिला हुआ है, वहां एक शिरामर्म चार अङ्गुल लम्बा है। मस्तकके बीचमें केशके आवर्त्तके भीतर शिरा और सन्धिके संयोगस्थलमें एक सन्धिमर्म है; इसका परिमाण आधा अङ्गुल। दोनो भौंके प्रान्तभागमें यानि कान और ललाटके बीचमें डेढ़ अंगुलका एक अस्थिमर्म है। गुह्यद्वारके भीतर गुह्यनाड़ीमें चार अंगुलका मर्मस्थान है; इसे मांसमर्म कहते हैं। स्तनद्वयके बीच हृदयमें चार अंगुलका एक शिरामर्म है। नाभि, पृष्ठ, कटि, गुह्य, वंक्षण और लिङ्ग इन अङ्गोंके मध्यमें मांस्थ है, बस्तिमें एक स्नायुमर्म है। नाभिके चारो तरफ चार अंगुलका एक शिरामर्म है। ये सब मर्ममें छेद करने या जोरसे चोट लगनेसे तुरन्त प्राण नष्ट होता है।

चोट लगनेका फल।—दोनो स्तनके नीचे छातीमें दो अंगुल बराबर दो शिरामर्म है, स्तनोंसे ऊपर दो अंगुल बराबर दो मांसमर्म हैं, दोनो स्कन्धकूटके नीचे और पार्श्वद्वयके ऊपर आधा अंगुल दो शिरामर्म और छातीके दोनो बगल की वात वहा नाड़ीमें आधा अंगुल बराबर दो शिरामर्म है उक्त मरमोंको सद्यमर्म कहते है। ये सब मर्ममें चोट लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु होती है। इनमेंसे शेषोक्त मर्ममें चोट लगनेसे कोष्ठमें वायुपूर्ण हो श्वास कास रोगहो मृत्यु होती है। मस्तकके पांच अस्थिसंधिको भी सन्धिमर्म कहते है। इसमें चोट लगनेसे उन्माद, भय और चित्तविभ्रम उपस्थित हो प्राणनाश होता है। मध्यमांगुली के समसूत्रमें और हाथ पैरके तलवेके मर्मस्थानमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द हो अन्तमें मृत्यु होती है। अंगूठा और तर्जनीके बीचवाले स्थानके शिरामर्ममे चोट लगनेसे कालान्तरमें आक्षेप रोग हो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है; अकसर इसमें जल्दी प्राणनाश होते देखा गया है। प्रत्येक प्रकोष्ठ और जङ्घाके बीचवाले दो अंगुलके मर्ममें चोट लगनेसे शोणित क्षय हो थोड़े दिनमें मृत्यु होती है। स्तनमूल से मेरुदण्ड तक दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर शिरामर्म छिद्र होनेसे अत्यन्त रक्तस्राव होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। दोनो जघन और दोनो पार्श्वके सन्धिवाले शिरामर्ममें चोट लगनेसे कोठरतासे पूर्ण होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। मेरुदण्डके नीचे नितम्बके सन्धिस्थलके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर दो अस्थिमर्म है इसमें चोट लगनेसे रक्तक्षयहो रोगीको पांडुवर्ण या विवर्ण कर कालान्तरमें प्राण लेता है। नितम्बके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर और दो अस्थिमर्म है, इसमें चोट लगनेसे कमरसे पैरके तलवेतक अधोगमें शोथ और दौर्बल्य उपस्थित होता है।

वंक्षण और कन्धेके नीचे भी एक आधे अङ्गुलका शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदाहोता है। जानुद्वय के तीन अङ्गुल उपर आधे अङ्गुल बराबर एक स्नायुमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त शोथ और दोनो पैर स्तब्ध होते है। जङ्घा और उरुकी सन्धिमें दो अङ्गुलका एक सन्धिमर्म्म हैं इसमेचोट लगने से मनुष्य खञ्ज होता है। उरुद्वयके मध्य और केहुनीसे बगल तथा बाहुके मध्यभाग में एक अङ्गुल बराबर एक शिरामर्म्म है,इसमे चोट लगनेसे रक्तक्षय हो दोनो हाथ पैर सूख जाते है। दोनो पैरका अंगुठा और उसके पासवाली अंगुलीके जडके बीचमें अर्थात् पूर्व्वोक्त शिरामर्म्म के किञ्चित् उपर एक एक और उसके नीचे पैरके तलवेकी तरफ एक एक स्नायुमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे पैर घूम-कर कांपने लगता है। वंक्षण और अण्डकोषके बीचवाले स्थानके दोनो तरफ एक अंगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे मनुष्य क्लीव होता है अथवा उसका शुक्र क्षीण हो जाता है। दोनो केहुनीमें दो अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे हाथ सिकुड़ जाता है। कुकुन्दर अर्थात् नितम्ब कूपमें आधे अंगुलका सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे स्पर्शशक्तिका नाश और नीचेवाले अङ्गकी क्रियामें हानि पहुंचती है। छाती और बगलके बीचमें एक अंगुलका स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। दोनो कानके पीछे नीचेकी तरफ आधे अंगुलका एक स्नायुमर्म्म है उसमें चोट लगनेसे मनुष्य बधिर हो जाते है। मस्तक और ग्रीवाकी सन्धिके दोनो तरफ आधे अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे शिरःकम्प होता है। दोनो स्तनमें आधे अङ्गुलका दो स्नायुमर्म्म है; इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथकी क्रिया लोप होती है। पीठके उपर जहां ग्रीवा और मेरुदण्डकी सन्धि है उसके

दोनो तरफ आधे अङ्गुलका एक एक अस्थिमर्म है इसमे चोट लगनेसे दोनो हाथ शून्य और शोथ होता है। दोनो आंखके प्रान्तभाग अर्थात् अपांगमें आधे अङ्गुलका दो शिरामर्म है इसमें चोट लगनेसे मनुष्य अन्धा और क्षीणदृष्टि होता है। कण्ठनालीके दोनो तरफ ४ धमनी है; इनमे दोको नीला और दोको मन्या कहते हैं; अर्थात् कण्ठनालीके दोनो तरफ दो नीला और ग्रीवाके दोनो तरफ दो मन्या है। यह चार धमनीमें चार शिरामर्म है प्रत्येकका परिमाण दो दो अङ्गुल है, इसमे चोट लगनेसे मनुष्य गूङ्गा और विकृत स्वर होता है तथा मुहके स्वाद शक्तिका लोप होजाता है।

नाकके छेदके भीतर आधे अङ्गुलका दो शिरामर्म है; इसमें चोट लगनेसे घ्राणशक्ति नष्ट होती है। भौंके ऊपर और नीचे आधे अङ्गुलका दो सन्धिमर्म है इसमे चोट लगनेसे दृष्टि क्षीणता और अन्ध रोग पैदा होता है। दोनो गुल्फमें दो अङ्गुलका दो सन्धिमर्म है इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और पङ्गुता पैदा होती है; मणिबन्धमें भी वैसही एक एक सन्धिमर्म है इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथकी क्रिया लोप होती है। गुल्फ-सन्धिके दोनो तरफ एक अङ्गुलका एक एक स्नायुमर्म है, इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और शोथ होता है।

दोनो शङ्खके ऊपर केशतक आधे अङ्गुलका दो स्नायुमर्म और भौंके बीचमें आधे अङ्गुलका एक शिरामर्म है। इसमें शल्य गड़नेसे जबतक शल्य न निकला जाय तबतक मनुष्य जीवित रहता है शल्य निकालतेही मृत्यु होती है।

उक्त मर्मोंमें जिसमें चोट लगतेही मृत्यु होना लिखा है, उसमें यदि ठीक बीचमें चोट न लगकर प्रान्तभागमें चोट लगेतो

कालान्तरमें मृत्यु होती है तथा ठीक बीचमें चोट लगनेसे प्राण-नाश न हो केवल यन्त्रणाप्रद होता है। मर्मस्थान की सारी पीड़ा कष्टसाध्य है। इससे मर्मस्थानों को अच्छी तरह जानना चाहिये।

शरीर-विभाग।—संक्षेपतः शरीर ६ भागमें विभक्त है मस्तक, मध्य शरीर, दोनों हाथ और दोनों पैर। छातीसे नितम्ब तकको मध्य शरीर कहते हैं। इन्हीं अवयवोंमें शरीरके प्रधान यन्त्र हैं। हृदयके बीचमें तीन अङ्गुलका हृदय नामक चेतना स्थान है। यहां शुद्ध रक्त और प्राणरस रहता है। इसमें चार गर्भप्रकोष्ठ हैं;—दो ऊपर और दो नीचे। रक्तवहा शिराद्वय शरीरका सब रक्त दहिने हृद्गर्भमें लाती है तथा क्रमशः उक्त चार प्रकोष्ठोंमें चालित हो विशुद्ध होता है। हृत्पिण्ड रातदिन आकुञ्चित और प्रसारित होता रहता है; आकुञ्चित होतेही वहांका खून वेगसे धमनीके जड़में जाता है तथा धमनीके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है। हृदयकी आकुञ्चन और प्रसारण क्रिया बन्द होतेही मृत्यु होती है। हृदयके बायें फुसफुस (श्वासयन्त्र) दहिने क्लोम (पिपासा स्थान) और नीचे जो यकृत अपस्मार रोग होता है। तथा कण्ठसे गुदामार्गतक ३॥ साढ़े तीन व्याम दीर्घ एक अन्त्रनाड़ी कहीं फैली और कहीं सिकुड़ी हुई है। स्त्रियोंका अन्त्र ३ व्याम लम्बा है। उसीके कण्ठसे पहिला आमाशय फिर पित्ताशय या ग्रहणी तथा फिर पक्वाशय है; इसका दूसरा नाम मलाशय या उण्डूक। इसके नीचे गुह्यनाड़ी है। उदरके दहिने और बायें तरफ यकृत और प्लीहा—यही दो रक्ताशय हैं, लिङ्गके ऊपर वस्ति और मूत्राशय है। स्त्रियोंके योनीमें शङ्खावर्त्तकी तरह तीन आवर्त्त हैं; तथा इसीके तीसरे आवर्त्तमें गर्भाशय

है। गर्भाशयकी आकृति रोहित मछलीके मुखकी तरह अर्थात् बाहर सूक्ष्म और भीतर विस्तृत है।

वायुके कार्य्य।—यही सब आशयोंमें आमाशय कफका, पित्ताशय पित्तका और पक्वाशय वायुका अवस्थिति स्थान है। यह तीन दोष शरीरमें सर्व्वत्र और सर्व्वदा रहते हैं ये तीन दोषोंमें वायु शरीरके यावतीय धातु और मलादि पदार्थको चलाता है। तथा वायुहीसे उत्साह श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेगप्रवृत्ति और इन्द्रिय समूहोंके कार्य्य सम्पादित होते है। वायु स्वभावतः रुक्ष, सूक्ष्म, शीतल, लघु, गतिशील, आशुकारी, खर, मृदु और योगवाही है। सन्धिभंश, अङ्गप्रत्यंगादि विक्षेप, मुदगरादिसे मारनेकी तरह या शूलकी तरह अथवा सूई गडानेकी तरह दर्द, सर्वाङ्गता अङ्गकी अवसन्नता,मलमूत्रादिका अनि 'स और शोषण, अङ्गभङ्ग, शिरादिका संकोच, रोमांच, कम्प, ककशता, अस्थिरता, सच्छिद्रता, रसादिका शोषण, स्पन्दन, स्तम्भ, कषायस्वाद और श्याम या अरुणवर्णता वायुके कार्य्य है। वायु प्रकुपित होनेसे यही सब लक्षण प्रकाश होते है।

पित्तके कार्य्य।—पित्त स्वभावतः द्रव, तीक्ष्ण, पूति अपक्वावस्थामें नीलवर्ण पक्वावस्थामें पीतवर्ण, उष्ण और कटुरसपर विदग्ध होनेसे अम्लरस। सन्ताप, दाह, रक्त, पाण्डु या पीतवर्णता, उष्णता, पाक, स्वेद, क्लेद, पचन, स्राव, अवसाद, मूर्च्छा और मदरोग आदि पित्तके कार्य्य है। पित्तप्रकुपित होनेसे रोग विशेषानुसार यह सब लक्षण प्रकाशित होते है।

कफके कार्य्य।—कफ स्वभावतः श्वेतवर्ण, शीतल, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल विलम्ब से कार्य्यकारी और मधुर रस; पर विदग्ध होनेसे लवणस्वाद होता है। स्निग्धता, कठिनता, शैत्य,

श्वेतवर्णता, गौरव, कण्ड, स्रोतसमूहोंका रोध, लिप्तता, श्लेष्मत्व, शोथ, अपरिपाक, अग्निमान्द्य और अतिनिद्रा आदि कफके कार्य्य है। कफ कुपित होनेसे रोगविशेष में इस सब लक्षण प्रकाशित होते है।

वायुप्रकोप शान्ति।—बलवान लोगके साथ मल्लयुद्ध, अतिरिक्त व्यायाम अधिक मैथुन, अत्यन्त अध्ययन, ऊंचे स्थानसे गिरना, तेज चलना, पीडन या आघातप्राप्ति ; लङ्घन, सन्तरण, रात्रि जागरण, भारवहन, पर्य्यटन या अश्वादि यानमें अतिरिक्त गमन; मलमूत्र अधोवायु, शुक्र, वमन, उद्गार, छींक और अश्रुवेग धारण ; कटु तिक्त, कषाय, रुक्ष, लघु और शीतल द्रव्य, शुष्कशाक, शुष्क मांस, मडुआ, कोदो, सामा और नोवार धान्य ; मूंग, मसूर, अडहर, मटर और सेम आदि द्रव्य भोजन ; उपवास, विषमासन, अजीर्ण रहते भोजन और वर्षाऋतु, मेघागमकाल, भुक्तान्नके परिपाक का काल, अपराह्नकाल वायु प्रवाहका समय, यही सब वायुप्रकोप के कारण है। घृत तैलादि स्नेहपान, स्वेदप्रयोग, अल्प वमन, विरेचन, अनुवासन, (स्नेह पिचकारी) ; मधुर, अम्ल, लवण और उष्णद्रव्य भोजन, तैलाभ्यङ्ग, वस्त्रादि द्वारा वेष्टन, भयप्रदर्शन, दशमूल—क्वाथ का प्रयेक, पैष्टिक और गौड़िक मद्यपान, परिपुष्ट मांसका रस पान और सुखसच्छन्दता आदि कारणोंसे वायु शान्त होता है।

पित्तप्रकोपशान्ति।—क्रोध, शोक, भय और श्रमजनक कार्य्य, उपवास, मैथुन, कटु अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, लघु और विदाही द्रव्य, तिलतैल, किमवाल्क, कुरथी सरसों, तीसी, शाक, मछली, छागमांस, दही, दहीकीमलाई, तक्रकूर्चिका, सौवीर, सुरा, अम्लफल और माखनयुक्त दहीका मट्ठा आदि द्रव्य भोजन तथा शरत्

काल, मध्याह्न आधीरात और भुक्तद्रव्यके परिपाकके वख्तमें पित्त प्रकुपित होता है। घृतपान मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन, मधुर, तिक्त और कषाय रसयुक्तभोज्य औषध सेवन, सुगन्ध, शीतल गन्ध सूंघना, कर्पूर, चन्दन, और खसका अनुलेपन ; चन्द्र किरण सेवन सुधाधवलित घरमें वास, शीतल वायु सेवन, मधुर गीतवाद्य और वाक्य श्रवण, प्रिय सत्पुत्रके साथ कथोपकथन और आलिङ्गन तथा उपवन और पद्म कुमुदादि शोभित सरोवर तीरमें भ्रमण आदिसे पित्त शान्त होता है। इनही सब कारणोंसे रक्तका भी प्रकोप और शमन होता है।

कफप्रकोप शान्ति।—दिवानिद्रा, परिश्रम शून्यता, कुभोजन अजीर्णमें भोजन, मधुर, अम्ल लवण, शीतल, स्निग्ध, गुरु, चिकना, क्लेदजनक, यव, गेहूं हायन और नैषध धान्य, उरद बवटी, तिलपिष्टक, दही, दूध, पायस, खिचड़ी, गुड़, आनूप और जलचर जीवका मांस, चर्बी, मृणाल पद्ममूल, सिंघाड़ा, ताड़, मधुर फल, लौआ, खरा भतुवा, पक्का बेला आदि द्रव्य भोजन तथा शीतल द्रव्य सेवन, शीतकाल, वसन्तकाल, पूर्वाह्ण, प्रदोष और आहारके बाद आदि कफ प्रकोपके कारण हैं। तीक्ष्ण वमन और विरेचन, मैथुन, शीत, जागरण, धूमपान, गण्डूष धारण, चिन्ता, परिश्रम, व्यायाम, पुराना मद्यपान, तथा रूक्ष, उष्ण, मधुर कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे कफ शान्त होता है।

गर्भधारण के समय पिता माताका शुक्रशोणित आदि वायु प्रकृति तीन दोषोंमें से जिस दोषका अनुबन्ध अधिक रहता है, मनुष्य स्वभावत: उसी प्रकृतिका होता है। तीनों दोष समान रहनेसे समप्रकृतिका होता है। वातप्रकृति के मनुष्यगण कृश, रूक्ष, अल्प

वयव, अव्यक्तावयव, अगम्भीर स्वर, जागरूक, चञ्चलगति, शीघ्र कार्य्यकारी, बहुप्रलापी, बहुशिरावृत, थोड़ी देरमें सामान्य कारणसे क्रोध आना, भीत, अनुरागी या विरागी, शीतसहन में असमर्थ, स्तब्ध, कर्कश केश, कर्कश श्मश्रु, कर्कश लोम, कर्कश नख, कर्कश दन्त, और कर्कशांग होते है। तथा चलती वख़्त सन्धियोंमें चट चट आवाज होती है और बार बार आंखका निमेष गिरता है। पित्तप्रकृतिगण गरम सहने में असमर्थ, शुक्ल और सुकुमार गात्र, गौरवर्ण मृदु और कपलवर्ण, केशश्मश्रु और लोमयुक्त, ताम्रनख, रक्तनेत्र, तीक्ष्ण पराक्रम, तीक्ष्णाग्नि, अधिक भोजनशील, क्लेश सहनेमें अक्षम, द्वेषी, अल्प शुक्र, अल्प मैथुन और अल्प सन्तान-जनक होते हे। तथा मुख, कांख मस्तक और अन्यान्य अवयवों में गन्ध रहती है सर्व्वांगमे तिल, मेहुआ, खुजली आदि पैदा होते है, वलिपालित्य और टाक भी पित्तप्रकृतिवालेको शीघ्र पडता है। कफप्रकृतिगण स्निग्धांग, सुकुमार शरीर, उज्ज्वल श्याम या गौरवर्ण, स्थिर शरीर, पुष्टांग, विलम्ब में कार्य्यकारक, प्रसन्न मुख, प्रसन्न दृष्टि, स्निग्ध स्वर, बलवान्, तेजस्व, दीर्घजीवी और अल्प क्षुधायुक्त होते हैं, तथा थोड़े ही कारण से क्रोधित नहीं होते है; शुक्र मैथुनशक्ति और सन्तति अधिक होता है। समधातु व्यक्तिगणोंके यह सब लक्षण मिले हुए होते है। इन सब मनुष्योंमें समधातुका मनुष्य प्रशंसनीय है।

—·—

वैद्यक शिक्षा।

छठा खण्ड।

नरदेह-तत्त्व और जीव-विज्ञान।

ANATOMY & PHYSIOLOGY.

जिस शास्त्रमें जीवित अवस्थामें प्राणियोंके शरीरका यन्त्र और धातु समूहोंकी क्रिया अथवा प्रवर्त्तनादि जाना जाता है उसको जीव विज्ञान कहते है। सामान्य रूपसे असामान्य मनुष्य तक सब इस विज्ञान जीव जगतके अन्तर्गत है। कारण देहकी सृष्टि, पुष्टि और क्षय आदि सभी कारण एकही प्रक्रियामें होती है। किन्तु उन सब विषयोंको आलोचना करना इस पुस्तक का उद्देश्य नही है, यहां केवल मनुष्य जातिका शरीरतत्व और जीवविज्ञान सम्बन्धीय प्रयोजनीय व्यापार समूहोंका अनुशीलन करना है, इस लिये इस ग्रन्थको मानवशरीरतत्व और जीव विज्ञान कहा जा सकता है।

प्राण क्या है।—प्राण क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है। जीवसृष्टिके आदिकालसे वर्त्तमान समय तक इस प्रश्नका उपयुक्त उत्तर नही मिला है। भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिक पण्डितोंने जीवतत्वको आलोचनाकर इस कठोर प्रश्नके बारेमें जो सब मत प्रकाश कर गये हैं उससे यह जाना जाता है

कि मस्तिष्क, हृत्पिण्ड और श्वास यन्त्रके अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही का नाम प्राण है। इस लिये उक्त तीन यन्त्रको "त्रिपद" कहते है। किन्तु अधिक सूक्ष्म विश्लेषणसे जाना जाता है कि जीवन की सिर्फ दो पैर फुस्फुस् और हृत्पिण्ड हैं; कारण केवल मस्तिष्कमें आघात अथवा उसके विक्रियासे मृत्यु कभी नही होती पर वही चोट अथवा विक्रिया फुस्फुस् या हृत्पिण्डमें होनेसे मृत्यु होती है।

हृत्पिण्डका कार्य्य—शोणित सञ्चालन और फुस्फुस्का प्रधान कार्य्य श्वास प्रश्वास है। शोणित सञ्चालन और श्वास प्रश्वास यह दोमे एक भी रहित होनेसे मस्तिष्क की क्रिया रहित होती है। किन्तु यदि किसी कृत्रिम उपायसे हृत्पिण्ड और फुस्फुस्का काय्य ठीक रखकर मस्तिष्क बाहर निकाल लिया जायतो जीव को मृत्यु नही होती है।

जीव क्या हैं?—ऊपर कह आए है कि सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सभी जीवपदवाच्य हैं। जीव जड और जङ्गम ऐसे दो श्रेणीमें विभक्त है। उद्भिदादि जड तथा चक्षुके अगोचर चलच्छक्तिविशिष्ट जीवानुसे पूर्ण मनुष्य तक को मजङ्ग कह सकते है। यही दो प्रकारके जीवोंको सृष्टि, पुष्टि और नाश प्रायः एकही क्रियासे होता है।

कोष वा सेल (CELL)।—जीव विज्ञानवित् पण्डितोंने बहुत खोजकर स्थिर किया है। कि जीवमात्रके देहमें असंख्य कोषों (CELL) की एक समष्टी है। यह सब कोष अति सूक्ष्म रीतिसे जीवनी शक्तिका एक एक आधार हैं। इन सबका आकार इतना छोटा है कि विना अनुवीक्षण यन्त्रसे दिखाई नही देता। आधुनिक वैज्ञानिकोंने इसका व्यास एक

दूधका ६००० वां अंश स्थिर किया है। हड्डो, मज्जा, मांस, मेद, शोणित आदि शरीरके सब धातु इसी कोषसे बनाया गया है।

पलल या "प्रटोप्लाज्म् (Protoplasm) |—नय-नसे अगोचर अति सूक्ष्म जीवानुरूप जीव जो जननीके जठरमें जन्म लेता है वह भी ऐसही एक कोषके सिवाय और कुछ नहीं है। परीक्षा करनेसे उक्त कोषमें एक प्रकार अर्द्धतरल पदार्थ दिखाई देता है उसको पलल या "प्रटोप्लाज्म" कहते है। पलल स्वच्छ और वर्णविहीन क्षारमय पदार्थ जीवमात्रके अनुप्राण-नोशक्ति इस पललमें निहित हैं।

मृत्यु क्या है |—जड या जङ्गम जीवमात्रका शरीर असंख्य कोषोंकी समष्ठी तथा उक्त कोषोंमें पलल नामक एकप्रकार अर्द्धतरल स्वच्छ पदार्थ और यह पलल जीवनीशक्तिका आधार स्थिर हुआ है। ऐसही शरीर उपकरणमें असंख्य जीवनीशक्ति है। जीवका देह जैसे असंख्य कोषको समष्ठी है वैसही जीवका जीवन भी क्षुद्र क्षुद्र पलल अर्थात् जीवनीशक्ति की समष्ठी है। पहले कह आए है कि हृत्पिण्ड,फुस्फुस् और मस्तिष्कका अप्रति-हत स्वाभाविक कार्य्यही जीवन है। जबतक यह कार्य्य होता रहता है तभीतक जीवन भी रहता है तथा इस कार्य्यकी निवृत्ति होनेसे मृत्यु होती है।

मृत्यु दो प्रकार |—साधारणकी धारणासे मृत्यु एक प्रकार; किन्तु वास्तवमें मृत्यु नानाप्रकार है। यही सब मृत्यु स्थानिक (Local) और सार्व्वाङ्गिक (General) भेदसे दो भागमे विभक्त है। सावदेहमें प्राय सर्व्वद प्रतिक्षणमें स्थानिक मृत्यु होती है। शरीरके भीतर और बाहरी त्वकमें सर्व्वदा असंख्य

सेल अर्थात् कोष विनाश होते हैं तथा नये नये कोष पैदा हो स्थान अधिकार करता है। शोणितके लालकण समूहोंमें भी सर्व्वदा ऐसाही परिवर्त्तन हुआ करता है। स्थानिक मृत्यु, मनुष्यको सर्व्वदा दिखाई नहीं देती है तथा यह प्राणरक्षा में विशेष उपयोगी है।

स्थानिक मृत्यु (Local Death)।—कभी कभी स्थानिक मृत्यु प्रसृत स्थानमें फैलकर होती दिखाई देता है; किसी प्रकारकी क्षयकारी पीड़ा अथवा आघात लगनेसे शरीरके प्रभूत अंशकी मृत्यु होती है। शरीरका कोई अंश गल जानेसे अथवा किसी स्थानमें फोड़ा होनेसे शरीरका चमड़ा अल्प या अधिक नष्ट हो जाता है। स्नायु, पेशी, हड्डी, चमड़ा आदि शरीर उपादान के मृत्यु होनेसे वह फिर पैदा होता है।

सार्व्वाङ्गिक मृत्यु (General Death)।—सार्व्वांगिक मृत्यु दो प्रकार, समग्र शरीर की मृत्यु और शरीरके उपादान समूहों की मृत्यु, प्रथमोक्त मृत्युसे हृत्पिण्ड फुसफुस् और मस्तिष्कके सम्पूर्ण कार्य्य का ध्वंस को कहते हैं। दूसरी मृत्यु, शरीरके समस्त विधान उपादान अर्थात् समस्त कोष समूहोंकी जीवन-शक्तिके सम्पूर्ण अपगम को कहते हैं। जीवकी मृत्यु होनेसे उसका समस्त शरीर पहिले मरता है; किन्तु शरीरके उपादान समूह शरीरके साथही नहीं मरते अकसर बहुत देरके बाद समस्त उपादानोंकी मृत्यु होती है। इसलिये फांसी आदि प्राणदण्डसे दण्डित व्यक्तिगण की मृत्यु होनेके थोड़ी देर बाद भी उपयुक्त उत्तेजक पदार्थके संयोगसे उसके पेशीमण्डलमें सङ्कोच होता है, इस अवस्थामें मनुष्य मर जानेपर भी पेशीसमूह बहुत देरतक जीवित रहती है।

मौलिक उपादान।

ELEMENTARY TISSUES

जीव-शरीर अच्छी तरह परीक्षा करनेपर उसकी मौलिक उपादान समूह दिखाई देते है। जिसकी संख्या चार प्रकार, (१) कौषिक, (२) संयोजक, (३) पेशिक और (४) स्नायविक; कोई २ मौलिक और लसिका कोभी इसके साथ मिलाकर सब समेत पांच प्रकारके उपादान उल्लेख कर गये हैं।

पहले कह आये है कि जीव देहमें असंख्य कोषको समष्टिमात्र है। जो सब कोष त्वक, कफज और रसवाही झिल्लीको ढांके रखता है तथा जिससे शरीरके अपरापर अंशोंको आवृत्ति होती है उसीको कौषिककला कहते हैं। शरीरके ऊपरवाले चमड़ेका कौषिककला प्रधान उपादान है। यहांतक कि नख और केश त्वकमें भी कौषिक उपादान दिखाई देता है। इसके सिवाय नासारन्ध्र, मुखगह्वर, मलमार्ग और मूत्रमार्ग आदि प्रधान २ रन्ध्र तथा श्वासमण्डल, अन्नमण्डल, मूत्र और जनन मण्डल के भीतर की यन्त्री समूहोंके अन्दरमें भी यह भरपूर विद्यमान है।

संयोजक उपादान।

(CONNECTIVE TISSUES.)

प्रकृति और कार्य्य।—जिसमे हड्डी, उपहड्डी बन्धन, आदि शरीरके अंशोंको अपने २ स्थानमें मिलाकर आकार बनावे तथा स्नायु, पेशी और ग्रन्थि यन्त्रोंके गठन और आवरण कार्य्यमें सहायता करे उसको संयोजक उपादान कहते हैं। शरीरके सब अंश अपने २ स्थानमें अलग न होय अर्थात् उचित स्थानमें रहकर जोड़नेका उद्देश्य साधन करना ही संयोजक उपा-

दानका प्रधान कार्य्य है। यह सब कार्य्यसाधन के लिये यह शरीर के सब धातुओंसे मिला हुआ रहता है।

संयोजक उपादान कठिन और कोमलभेदसे दो प्रकार का है। किन्तु श्रेणीविभाग के लिये सचराचर तीन प्रधान विभागमें विभक्त है। तान्तव, संयोजक उपादान, उपास्थि और अस्थि।

तान्तवसंयोजक उपादान।

यह विधानोपादान शरीरके प्रायः सभी कोमल अंशोंमें है। धमनी, पेशी, वस्तनी, रज्जु या अधः त्वक, श्लैष्मिक झिल्लि, स्नायु और ग्रन्थि आदि आवरण, झिल्लि, तथा मस्तिष्क, प्लीहा और यकृत् आदि जो सब तन्तुवत् कर्दमसदृश, श्वेत, पीत और रक्तवर्ण पदार्थ दिखाई देते है, उसीको तान्तव संयोजक उपादान कहते है।

उपास्थि। (CARTILEGE.)

पक्के नारियलके गूदाकी तरह जो सब अर्द्धकठिन, अर्द्धकोमल पदार्थ नाक, कान, अस्थिका प्रान्त, श्वासनाली आदि स्थानोंमें दिखाई देता है, उसको उपास्थि कहते हैं। महर्षि सुश्रुत उपास्थि को तरुणास्थि कहते हैं। उपास्थि हड्डीकी तरह कठिन नहीं होती। उपास्थि नानाप्रकार तथा श्वेत, पीत और स्थितिस्थापक है। शेषोक्त उपास्थि मूषिक, धमगीदड आदि प्राणियोंके कानमें दिखाई देती है।

अस्थि। (BONE.)

उपादान।—जीवदेह के कठिन पदार्थ को अस्थि कहते हैं। उपास्थिमें दो चार पार्थिव पदार्थ मिलानेसे हड्डी होती

है। लवनका चूर्ण इसका प्रधान उपादान है। यह ही उपादान निकाललेनेसे हड्डीमें कठिनता नहीं रहती और अति कोमल हो जाती है।

संख्या।—मनुष्यदेहमें दोसो से अधिक अलग अलग हड्डी दिखाई देती है, किन्तु विशेष विचार कर देखनेसे जीवके सर्व्व अवस्था में अस्थिसंख्या बराबर नहीं रहती। बाल्यावस्थामें बहुतेरो हड्डी अलग अलग रहती है, वह फिर वार्द्धक्यमें एकत्र मिलजाती है। देखिये, मेरुदण्डमें पहिले ३३ अलग अलग कशेरुका रहती है; इससे ऊर्द्धांशकी २४ कशेरुका जन्मभर वैसही अलग अलग देखनेमें आती है; बाकी ८ में ५ एकत्र मिलकर पृष्ठवंशके मूलमें मिलजाती है। शेष ४ की एक हड्डी हो जाती है, इसीको गुह्यावर्त्त कहते है। लड़कपनमें करोटीमें २२ अलग अलग हड्डी रहती है; तथा जवानीमें इसकी संख्या और भी बढ़जाती है तथा बुढ़ौतीमें फिर कम हो जाती है। छातीके दोनो तरफ १२ कर २४ पर्शुका याने पञ्जरी है। इसमें अधिकांश उपास्थिसे छातीके हड्डीका सम्बन्ध है। यह सब पर्शुका पृष्ठवंश अर्थात् मेरुदण्डसे आरम्भ हो धनुष की तरह टेढ़ी हो छातीके हड्डीसे मिली हुई है। छातीके हड्डीके ऊपर कंधेके सामने और पीछे चक्र और अंस फलकास्थि नामसे दो दो कर चार हड्डियां है।

करोटीमें ८ हड्डी है; यथा—ललाटमें १ और दोनो पार्श्वके ऊपरकी तरफ २ पार्श्वास्थि है। यह दोनो ऊपरकी तरफ परस्पर मिली हुई है। ऊर्द्धशिरः दोनो पार्श्वास्थिके नीचे दोनो पार्श्वमें दो शंखास्थि है। करोटीके तहमें और आगे एक झीदिरास्थि है। बाकी दो करोटीके पीछे पार्श्वमें है।

अस्थिके कार्य्य।—शरीरके अवयवोंमें हड्डी ही प्रधान उपादान है। हड्डी कठिन और हलकी अथच लघु है; इसीलिये उक्त कार्य्योंमें यह विशेष उपयोगी है। हड्डी जैसी कठिन और हलकी है वैसही यदि भारी होती तो शरीरीगणोंका चलना फिरना एक तरहसे रहित हो जाता। हड्डी भीतरी कोमल यंत्र समूहोंको (मस्तिष्क, हृत्पिण्ड, यकृत् आदि) बाहरी आघातादि से रक्षा करता है। करोटी और पर्शुका आदि यदि कठिन न हो कोमल होती तो सामान्य चोटसे ही जीवका प्राणनाश होता। हड्डी कठिन होनेके सिवाय किसीकदर इसमें स्थितिस्थापकता भी है। इसीलिये सहजमें नहीं टूटती, इसके सिवाय हड्डीसे भारी वस्तु उठाना, चलना, सिकोड़ना आदिमें भी विशेष सहायता मिलती है। *

दन्त।

दांत जिस उपादानसे बनाया गया है उसका नाम रदहै। वही एक पदार्थ हड्डीकी तरह कठिन है; इसीलिये दांतकी अस्थि और संयोजक तन्तुकी समश्रेणी कहकर एकत्र वर्णित किया है; दांतके अन्यान्य उपादान भी हड्डी ही की तरह है; इसीलिये यहां

* हिन्दू आयुर्वेद के मतसे नरकङ्काल में सब २४६ हड्डियां है।

सक्थिद्वय (दोनो निम्नशाखा)	६२	वदनमण्डल	१४
बाहुद्वय (ऊर्द्धशाखा)	६४	दोनो कान	६
छाती	१	जिह्वामूल	१
पृष्ठवंश	२६	अणुमण्डलास्थि	८
पर्शुका (पञ्जरी)	३२	दन्त	०
करोटीमें	८	मोट	२४६

दांतके विषयमें भी कुछ कहता है। हिन्दू आयुर्व्वेद शास्त्रमें दांतको रुचकास्थि नामकी आख्या है।

स्तनपायी अन्यान्य प्राणियोंकी तरह मनुष्य भी जीवनके दो निर्दिष्ट समयोंमें दोवार दांतसे सजाया जाता है,—प्रथम जब दांत निकलतेहै उसको अस्थाई या दूधके दांत कहते है। दूधके दांत टूटकर फिर दूसरे दांत जब आते है उसे स्थायी दन्त कहते है। स्थायो दांत टूटनेपर फिर नही आते है।

दांत चार प्रकार ;—छेदन, शोवन, द्वयग्र और पेषण। ऊपर को पातोंमें ४ और नोचेको पातोंमें ४ को छेदन दन्त ; शोवन दन्त उपर दो और नोचे दो; द्वयग्रदन्त उपर ४ और नीचे ४, और पेषण दन्त उपर छ और नोचे छ ; इसी तरह मोट ३२ दांत है।

दांत ठीक कौन वखत निकालता है, इस विषमें कुछ मतभेद दिखाई देता है ; किसी बालक को छ मास होनेसे पहिले ही दांत निकलता है,किसीको नवे महीने और किसीको १२वे महीने निकलता है। गरज मोटा ताजा सबल बालक को छठे महीने दांत निकलता है। इसोलिये हमारे देशमें छठे महीने अन्नप्राशन करनेकी विधि है। पूतना आदि पीडासे हड्डोके पुष्ट होनेमें वाधा पड़नेसे दांत निकलनेमें देर होती है।

प्रत्येक दांतमें सचराचर तीनभाग है ; यथा—अग्र, ग्रोवा और मूल। बाहर निकले हुए भागको अग्र, इसके नीचेवाले भागको ग्रीवा तथा इसके नोचेवालेको मूल कहते है। दांतका प्रधान उपा-दान रद नामक पदार्थ है। इसमें हड्डोकी अपेचा थोड़ा जान्तव पदार्थ भी है। यह रद एकप्रकार अस्थिमय पदार्थसे मण्डित है, दांतकी उज्ज्वलता और मसृणता इसोसे साधित होती है। रदका जो अंश दन्तवेष्टके बाहरहै उसोसे यह उज्ज्वल पदार्थ दिखाई देता

है, तथा इसका अंश जो चहुएके भीतर रहता है, वह भी एक कठिन पदार्थसे बना है। दांतके भीतर एक छोटा छेद है। इस छेदमें दो छोटा मुह दन्तमूलके दो तरफ से निकला हुआ है। स्नायु और शोणित नाली सब यही दो मुखसे दांतके गर्भमें प्रविष्ट हुई है। इसीलिये दांतका गर्भ कोमल रहता है।

प्रौढ़मानव-शरीरकी अस्थिसंख्या।

बहुत खोज करनेपर मालूम हुआ है कि दन्त आदि कई छोटी छोटी अस्थिके सिवाय मनुष्य देहमें सब २०० हड्डी है। नीचे उसकी फिहरिस्त दी जाती है।

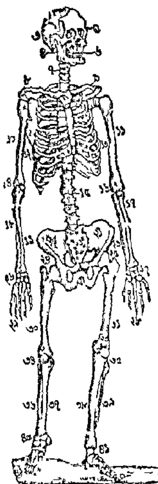
पृष्टवंश	...	...	...	२६
करोटी	...	...	...	८
मुखमण्डल	...	...	...	१४
छाती और पञ्जरी आदि		...	...	२६
ऊर्द्ध शाखा द्वय ...		...	...	६४
सकथि या निम्न शाखाद्वय		...	...	६२
			मोट	२००

अस्थिसमूहोंके प्रकारभेद।

---o---

महर्षि सुश्रुतके मतसे हड्डी पांच प्रकार ; यथा—कपाल,रुचक तरुण, वलय और नलक। डाक्तरी मतसे भी हड्डी चार श्रेणीमें विभक्त है, यथा—दीर्घास्थि, खर्व्वास्थि, प्रशस्तास्थि और विविधाकार अस्थि समूह। सुश्रुत कहते हैं जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड,

नरकङ्काल।



तालु, शङ्ख, और मस्तक में कपोल नामक हड्डियां है। दांतको रुचक अस्थि कहते है। नासिका, कर्ण, ग्रीवा और आंखके दोनो कोनोमें तरुण अस्थि रहती है। तरुण हड्डियोंको अङ्गरेजीमें कार्टिलेज (Cartilege) अर्थात् उपका उपास्थि कहते है। वलय नामक हड्डियां पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, उदर और छातीमें दिखाई देती है। अवशिष्ट स्थानो में नलक नामक हड्डियां रहती है। सुश्रुतोक्त तरुण हड्डी अर्थात् कार्टिलेज को छोड देनेसे केवल चारही प्रकार बाकी रहता है। सुतरां डाक्तरी शास्त्रोक्त चार प्रकार की हड्डीयोंके साथ इसकी समानता हो सकती है। किन्तु इसमें कौन दीर्घ और छोटी तथा कौन विविधाकार है इसका निर्णय करना कठिन है।

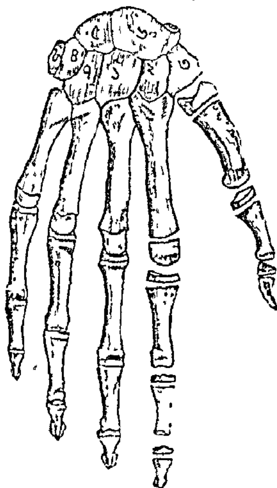
१। दीर्घास्थि—मनुष्य शरीरमें सब समेत ८० दीर्घास्थि है। इनही सब हड्डीयोंमें देहकी रचा होती है, तथा चलना फिरना, भारी वस्तु उठाना और उठना बैठना कार्य्य इसीसे होता है। इसमे प्रत्येक के मध्यमें अस्थिमज्जानाली और एक एक काण्ड है।

२। खर्व्वास्थि—सब समेत ३० है, देहके जिस अंशमें अधिक बल किन्तु कम सञ्चालन क्रिया की जरूरत है, यह हड्डी उन्हीं सब स्थानोंमें रहती है।

३। प्रशस्त अस्थि—की संख्या ८ है। यह भीतरी यन्त्र समूहों के चारों तरफ दीवालकी तरह घेरकर चोटसे रक्षा करता है।

४। विविधाकार अस्थिसमूह—की संख्या ३९ है। यह पृष्ठ-वंशास्थि, मस्तावर्त्त मस्तास्थि, शाखास्थि, कोलकास्थि और कशेरुका हड्डीयोंका अंशोंके अन्तर्गत है।

हाथ और पांव अङ्गुली।



अस्थिसन्धि या जएण्टस्। (Joints)

उत्थान, गमनागमन, भारोत्तोलन आदि क्रिया जिससे बेखटके होती है उसको अस्थिसन्धि कहते हैं। अस्थिसन्धि तीन प्रकार में विभक्त की जाती है। (१) अचलसंधि, (२) आंशिक चलत् संधि, और (३) चलत् संधि।

अचलसन्धि और उसके भाग।—१। केवल नीचे वाली हनुसंधिके सिवाय बाकी करोटी और मुखमण्डल तथा और सब संधिको अचल संधि कहते हैं। यह अचलसंधि ३ उपश्रेणीमें विभक्त है तथा इसमें सेवनी संधि ही प्रधान है। २ आरीके दांत परस्पर मिलानेसे जैसा दिखाई देता है, सेवनीसंधि भी ठीक वैसही दिखाई देती है। करोटीकी संधि भी ऐसही है।

२। आंशिक चलत् सन्धि—थोड़ी सञ्चलनशील है। कशेरुका और वस्तिके अधिकांश सन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

३। चलत् सन्धि—की चार प्रकार उपश्रेणी है; (क) कई चारों तरफ सञ्चलनशील सन्धि; यह सन्धि सब तरफ आवर्त्तित होती है। (ख) उदूखल सन्धि; यह सन्धि सब ऊखल की तरह गह्वरमें दूसरी हड्डीका गोलमुख प्रविष्ट हुआ रहता है। स्कन्धसन्धि और ऊरुसन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। (ग) जानु-

---

महर्षि सुश्रुत कहते हैं।

सन्धयस्तु द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च।
शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः।
शेषास्तु सन्धयः सर्व्वे विज्ञेयाहि स्थिरा बुधैः॥

अर्थात् सन्धि दो प्रकार, चेष्टावान और स्थिर। हाथ, पैर, हनु और कमरकी सन्धि चेष्टावान अर्थात् सचल, अवशिष्ट सन्धि को अचल जानना। हजारों वर्ष पहिले महर्षि सुश्रुत जी कहगये हैं, आधुनिक डाक्टरी मतके साथ इसका कितना सादृश्य है देखिये।

सन्धि, गुल्फसन्धि और कफोणिसन्धि दूसरे श्रेणीके अन्तर्निविष्ट है। (घ) आवर्त्तनशील सन्धि। इसके सिवाय प्रकोष्ठ और कोदन्त संधि भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

देहकाण्ड के अस्थिसमूह।

१। पृष्ठवंशकी अस्थिसंधि। यह संधि कशेरुका समूह के अस्थिका कोई अंश और प्रवर्द्धनोंसे बनी है।

२। पार्श्वकपाल अस्थिकासंयोग।

३। पार्श्व-कपालके साथ आंखका संयोग।

४। हनुसंधि।

५। कशेरुका समूहके साथ पर्शुका का संयोग। यह सब अचलसंधिकी बन्धनी इतनी दृढ है कि सहजमे उसको अलग नही किया जा सकता है।

६। उरोऽस्थिके साथ पर्शुका का संयोग। इसमें एक अर्द्ध-चलत् और ६ चलत् संधि है, पर्शुका उपास्थि और वक्ष अस्थिके किनारे की संधि।

७। वस्तिके साथ पृष्ठवंशास्थिका संयोग। यह सातप्रकारकी सन्धिके सिवाय छातीमें और एक प्रकार संधि है।

ऊर्द्धशाखा की सन्धिसमूह।

१। उरःअस्थिके साथ जत्रु अस्थिका संयोग। जत्रुका आभ्यन्तरिक प्रान्त, छाती और प्रथम पर्शुका के उपास्थिके साथ यह संधि निर्मित है।

२। अंशफलकास्थि के साथ जत्रु अस्थिको संधि।
३। अंशफलकास्थि की प्रकृत सन्धियां।
४। स्कन्धसंधि।
५। कफोणिसंधि।
६। कोदण्डास्थिके साथ प्रकोष्ठास्थिका संयोग।
७। मणिबंधसंधि।
८। मणिबंधमें इंगितवत् अस्थिसमूहोंका संयोग।

निम्नशाखाकी संधिसमूह।

१। ऊरुसंधि।
२। जानुसंधि।
३। अग्रजङ्घास्थिके साथ अनुजङ्घास्थिका संयोग।
४। गुल्फसंधि।
५। प्रपदास्थिसमूहोंका संयोग।
६। अङ्गुलिसमूहोंका संयोग।

द्विविध सन्धि।—यद्यपि सुश्रुत ने क्रियाविशिष्ट और स्थिर ऐसे दो भागोंमें संधियों को विभक्त किया है। हाथ पैर हनु, और कमर इन स्थानोंको संधिको क्रियाविशिष्ट तथा बाकी को स्थिर कहते है। सब समेत २१० संधि है। जिसमें हाथ पैर में ६८, कोठमें ५९, ग्रीवाके ऊपर ८३, प्रत्येक पदाङ्गुलिमें तीन तीन कर १२ और अङ्गुठेमें २ सब समेत १४; जानु, गुल्फ और वङ्क्षण में एक एक। प्रत्येक पैरमें ८७ कर ३४; संधि है। कमर और कपालमें ३, पृष्ठमें २४, दोनो पार्श्व में २४, छातीमें ८, गरदनमें ८ और कण्ठमें ३ संधि है। नाड़ी, हृदय और क्लोममें १८ तथा दांतमें जितने दांत उतनीही संधि है। कण्ठमें एक,

नाकमें एक नेत्रमें दो, गाल, कान और शङ्खमें एक एक, हनुमें दो, भौंके उपर दो, दोनों शङ्खमे दो, सिरके खोपडोमें ५ और मूर्द्धमें एक।

सन्धि आठ प्रकार।—उपरोक्त संधियां ८ प्रकार, यथा कोर, प्रतर, उदूखल, सामुद्ग, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अङ्गुलि मणिबंध, जानु गुल्फ और कूर्पर इन सब स्थानोंकी संधिको कोरसंधि कहते है। काख वंक्षण और दांतके संधिको उदूखल; कांधा, मलद्वार, योनि और नितम्बके संधिको सामुद्ग, गरदन और पीठके संधिको प्रतर; मस्तक, कमर और कपालके संधिको तन्नसेवनी; तथा दोनो हनुके संधियोंको वायसतुण्ड कहते है। कण्ठ, हृदय, नेत्र, क्लोम और नाडी की संधि, मण्डल नामसे अभिहित है।

पेशी समूह। (Muscles)

प्रकृति और विभाग।—पेशियोंसे देह और अंश सब सञ्चालित होते है। स्थितिस्थापक, किञ्चित् लालरंगके पतले तन्तुमय पदार्थ को पेशी कहते हैं।, इसमें बहुत पानी रहता है। पेशी दो श्रेणीमें विभक्त है। (१) इच्छानुग, और (२) स्वाधीन। अन्नवहा नाली, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, धमनीकी दीवाल, विशेषकर शिरा और लसिका नाली समूहों को दीवाल आदि स्थानोंमें स्वाधीन पेशी दिखाई देती है। बाकी स्थानोंमें इच्छानुग पेशी है।

पेशीसंख्या।—मनुष्यके देहमें प्रायः चार सौ पेशी है; जिसमें करोटीके पेशीके बारेमें पहिले लिखता हूं। (१) ललाट और कपालकी पीछेकी पेशीसे भी, ललाट और मुखमण्डल की क्रिया प्रकाश होती है। (२) अक्षिपुट सम्मिलक पेशी; इससे अक्षिपुट बन्द होता है। (३) भ्रूसङ्कोचक पेशी, इससे भौं नीचे

और भीतरके तरफ आकृष्ट होता है। (४) अक्षिपुटाग्र—आकर्षक पेशी; यह अक्षिगोलक के उपर अश्रुग्रन्थिका छिद्र और अश्रुस्थाली को दबा रखती है। (५) एक पेशी उपर के अक्षिपल्लव को उठाती है। (६) और एक पेशी अक्षिगोलक के उपर हैं। (७) एक पेशी नीचेकी तरफ है। (८) एक पेशी भीतरकी तरफ। (९) एक पेशी बाहरकी तरफ। (१०) अपर एक पेशी सामने और पीछे अक्षरेखामें घूमती है। (११) एक पेशी अक्षिगोलक के पीछे और बाहर घूमती है, तथा कनीनिका को अक्षिकोटर के बाहरी और उपरवाले कोनेमें ले जाती है।

इसके सिवाय नासिकामें तीन, कई ओष्ठमें छ, अधरमें चार, हनुमें पांच, कानमें तीन, कानके भीतर चार, ग्रीवाके सर्व्वत्र तैतीस, तालुमें आठ, पीठमें सब समेत सात, छातीमें पांच, उदरमें छ, विटपमें आठ किन्तु स्त्रीके विटपमें सात, कंधेके ऊर्द्धशाखा और प्रगण्डमें पंदरह, प्रकोष्ठमें इक्कीस, हाथमें एगारह और सक्थि अर्थात् निम्नशाखामें बावन यही सब प्रधान पेशी है। इसके सवाय और भी दोसौ छोटी शाखाप्रशाखा पेशी है।

स्नायुसमूह। (Nerves)

पेशी और स्नायु।—स्नायु क्या है?—पेशीयें समूहोंसे शरीर अथवा शरीर के अङ्गप्रत्यङ्ग सञ्चालित होते है; किम्वा अपने अपने कार्य्यसाधनमें समर्थ होते हैं। यह शक्ति स्नायुमण्डलसे पेशीको मिलती है। अर्थात् स्नायुके सहायतासे पेशी अपना काम करती है तथा हमलोग जैसे चलते, फरते, उठते, बैठते और काम कर सकते है। क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध आदि वृत्ति और प्रवृत्ति आदि सब स्नायुके कार्य्य है। रूपदर्शन, शब्द

श्रवण, गन्धग्रहण, रसास्वादन और स्पर्शज्ञान आदि सब कार्य्य स्नायुसे साधित होता है। मत्त मातङ्गकी तरह बलवान पुरुष विराट देह और विशाल हाथ पैरसे कुद फाद रहा है, उसके सिरमें मारतेही देखेंगे की थोडेही देरमे ऐसा महाबली पुरुष मिट्टीके गोलेकी तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पडा है। यह दशा उसकी सिर्फ स्नायुमण्डल मे चोट लगनेसे हुई है, यदि वह चोट थोडी हो तो थोडी देरमें होशमें आसकता है और यदि चोट जोरसे लगेतो मूर्च्छाके साथही साथ मृत्यु होती है। इससे स्पष्ट हुआ कि स्नायु मण्डल ही जीवकी चेष्टा और चैतन्य का प्रधान यन्त्र है।

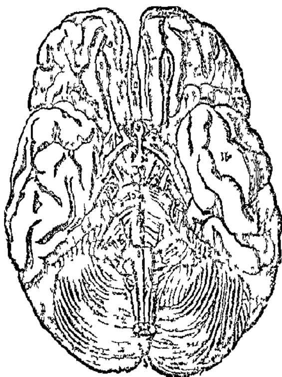
मस्तिष्क।

बनावट।—पहिले कह आये है, कि करोटी-गह्वरके हड्डीकी कठिन दीवारके भीतर मस्तिष्क है। ठीक अखरोटके गूदेकी तरह इसके भीतर का हिस्सा दिखाई देता है। मस्तिष्क के चार प्रधान विभाग है, (१) बृहत् मस्तिष्क, (२) क्षुद्रमस्तिष्क (३) सीता या एक सफेद रङ्गका बन्धन और (४) मात्रका मूलाधार। इसके सिवाय इसमे ३ झिल्ली है जिससे यह चारो तरफ आच्छादित रहता है।

वजन।—पूरे उमरके व्यक्तिका मस्तिष्क प्राय डेढ सेर वजनका होता है। हाथी और ह्वेल मछली आदि प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यका मस्तिष्क भारी होता है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका मस्तिष्क १॥ छटांक कम वजन होता है।

मस्तिष्कके चार भागोंमें वृहत् मस्तिष्क ही सबसे बडा है इसका वजन ४६से ५२ औंस है। करोटी गह्वरके उपरि अंशमें इसका स्थान है। यह स्नायुमय पिण्डपदार्थ अण्डेकी तरह होताहै।

मस्तिष्क की तस्वीर।



—— . .

मेरुरज्जु।

——o——

झिल्ली और स्नायु।—कसेरुका प्रणालीके भीतरवाली स्नायुकी पोली नलीके पिण्डको मेरुरज्जु कहते है। यह तीन मज्जा मय झिल्लीसे आच्छादित है, तथा वही तीन झिल्ली अनेक अंशमें

मस्तिष्कके झिल्लीमें मिली हुई है। मेरुमज्जामें ३१ युग्म स्नायु उत्पन्न हुई है; इसीलिये यह स्नायुसब मेरुमज्जाजात स्नायु नामसे अभिहित है। कसेरुकाकेपाससे जो जो स्नायु निकाला है, कसेरुका उसी उसी नामसे प्रसिद्ध है।

गरदनमें ८ स्नायु है। यह स्नायु जितनी नीचे गई है, आकार भी उसका उतनाही बढता गया है।

पीठमें १२ स्नायु है। इसमें प्रथम स्नायु पीठके प्रथम और द्वितीय कसेरुका के मध्यभागसे और शेष स्नायु द्वादश संख्यक पृष्ठावलम्बी और प्रथम संख्यक कमरकी कसेरुका से उत्पन्न हुई है।

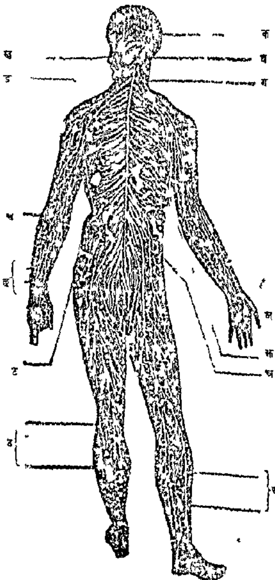
कमरमें स्नायु २० दश,—प्रत्येक पार्श्वमें पाच कर है। इसमें बहुतेरी नीचे वर्द्धितायतन की साह्यानुभूतिक स्नायुसे मिला हुआ है।

पूर्वोक्त त्रिविध स्नायुके सिवाय पृष्ठवंशमूलमें पांच और अण्डावर्त्तमें एक स्नायु और है। यही दो प्रकार स्नायु यथाक्रम पृष्ठवंशमूलीय और अण्डावर्त्तीय स्नायु नामसे अभिहित है। उपर जितनी स्नायुका नाम कहा गया है, इन स्नायुओंके सिवाय चुद्र और वृहत् बहुतेरी स्नायु तथा साह्यानुभूतिक स्नायु नामसे और एक स्नायुहै।

स्नायुसमूह।

(क) मस्तिष्कका सामना। (ख) मुखमण्डलकी स्नायु। (ग) पश्चात् मस्तिष्क और मादका। (घ) कसेरुका मज्जा। (ङ) अर्द्ध

शाखाका स्नायु। (च) प्रकोष्ठकी स्नायु। (छ) मणिबन्ध और हाथ का स्नायु। (ज) अङ्गुली का स्नायु। (झ) छाती और पीठका



स्नायु। (ञ) निम्न शाखा की स्नायु। (ट) उरूकी स्नायु। (ठ) जानु और पैर की स्नायु।

बगल की तस्वीरमें शरीरके समस्त स्नायुविधान दिखाये गये है। मस्तिष्क के सम्मुख अंशमें मातृका मूलाधार और कशेरुका-मज्जा दिखाई देती है, तथा मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से जितनी स्नायु निकल कर शरीर के नानास्थानों मे व्याप्त हुई है, वह दिखाया गया है।

शरीर और मन।

दोनोंमें प्रभेद।—पहिले कह आए है कि, शत मत्त-मातङ्गके तुल्य बलवान व्यक्तिके मस्तिष्क मे सामान्य चोट लगनेसे वह निर्जीव जड़ मांसपिण्डकी तरह जमीनपर गिरपड़ता है। इस अवस्थामें वह मुर्देकी तरह हो जाता है; पर सेवा करनेसे तुरन्त ही जाग उठता है; मानो उसको किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं हुई थी। उत्कट मनोवेग अथवा विकट दुर्गन्धसे भी कोई कोई स्नायविक प्रकृतिवाले मनुष्य को ऐसही अवस्था हो जाया करती है। मनके साथ शरीरका कितना घना सम्बन्ध है, यह इससे जाना जाता है। तथा इससे यह भी स्पष्ट है कि शरीर अर्थात् पेशी सब मनके सम्पूर्ण आधीन है। पर थोड़ा विचार करनेहो से यह बात भूल मालूम होगी। इसका कारण यह है कि मानलो कि किसीके पृष्ठवंश या पीठमें किसीने छूरी मारी अथवा गोली किया,इससे उसका मेरुदण्ड दो टूकड़े हो गया और बाकी यन्त्र सब ज्योंके त्यों है। तुम समझोगे कि वह अब नहीं बचेगा। यह न हो वह बच गया और उसके बाकी सब

यन्त्र ठोकहै। उसका मनभी पूर्व्ववत् है सिर्फ मेरुदण्ड कट जानेमें सीधा खड़ा होनेकी शक्ति लोप हो गई है। सिर्फ यही नही उसके दोनो पैरकी अनुभूति शक्ति भी नष्ट हो गई है, इसलिये वह इच्छानुसार नीचेका अङ्ग चलाने अथवा वहांके पेशी समूहोंका सङ्कोच और विस्तार नही कर सकता है। इससे मालूम होता है कि उक्त अवस्थामें नीचेके अङ्गोंके उपर मनकी चमता नही रहती है।

मन कहां है।—विचारकर देखनेसे मालूम होता है कि मस्तिष्क ही सब प्रकार की अनुभूति शक्ति और मानसिक कार्य्य का आधार है तथा सब स्वेच्छानुग पेशी प्राय सर्व्वतोभावसे इसी मस्तिष्क के आधीन है। सुतरा मस्तिष्क ही मनका आधार है।

शोणितसञ्चालन प्रणाली।

कार्य्य और परिचय।—जीवदेह कभी भी निष्क्रिय नही रहता; जीव चुप क्रियाशून्य और निश्चिन्त मनसे बैठा रहने पर भी शरीरयन्त्रके भीतर उसके नानाप्रकारके कार्य्य हरवक्त जारी है,—हृत्पिण्ड, फुसफुस, धमनी, शिरा, पाकस्थली, प्लीहा, यकृत आदि अपने अपने कार्य्यमें लगातार लगे हुए है। इन सब के कार्य्य क्रमशः दिखाये जायगे। पर इन सबके परिश्रम से प्रत्येक की सञ्चित शक्ति क्रमशः अपचय हो जाती है, कारण कार्य्यके होनेसे इसकी शक्तिका भी थोड़ा अपचय होता ही है।

शक्ति-सञ्चय।—जिस शक्तिका एक दफे अपचय या चय हुआ, वह फिर शरीर यन्त्रसे पूर्ण नहीं होता। उसे बाहरी द्रव्यसे पूरा करना पड़ता है, बाहरी द्रव्यका नाम है भोजन। हमलोग जो कुछ खाते हैं वह पाकस्थली में जाकर शोणित, मलमूत्र आदिमें क्रमशः परिणत होता है। इसी शोणित से चय हुई शक्तिका फिर सञ्चय होता है तथा मलमूत्रादि शरीरके दूषित पदार्थोंको बाहर निकालते हैं। अतएव शोणित ही जीवकी शक्ति है। इसका रङ्ग लाल है, इससे सचराचर इसे रक्त कहते हैं।

शोणित क्या है?—शोणित क्या है? शोणित एक खारा और पतला पदार्थ है। इसमें जलीय, कठिन और वायव पदार्थभी मिला है। स्त्री और पुरुष तथा उमर और अवस्था भेदसे यही सब पदार्थ के परिणाम में प्रभेद हो जाता है। अर्थात शोणित के १०० भागमें ७९ भाग पानी और २१ भाग सूखा कठिन द्रव्य दिखाई देता है। वायुमें यवाचार और खड़ा जितना है, ठीक उतनाही शोणित में पानी और कठिन पदार्थ हैं। अर्थात् शोणित में चार आने कठिन पदार्थ और बारह आने केवल पानी है, तथा इक्कीस भाग कठिन पदार्थ में १२ भाग सफेद और लाल कणिका है बाकी ९ भागमें ६ भाग एलबिउमेन नामक पदार्थ और तीन भाग लवण, वसा और शर्करा है। इसके सिवाय शरीरके भीतरकी शक्तिका चय हो जो सब पदार्थ शरीरके बाहर निकलते हैं; उसका कुछ अंश और फाइब्रिन नामक एक प्रकार तन्तु सदृश पदार्थका कुछ कुछ अंश शोणित में दिखाई देता है।

वायव पदार्थ।—शोणितका प्रायः आधा हिस्सा वायव

पदार्थ इसमें है; अर्थात् प्रति १०० इञ्चो गाढे खूनमें कुछ कम ५० इञ्ची गाढा वायव पदार्थ है। यह वायव पदार्थ को अङ्गाराम्ल, अम्लजान और जवाखारजान कहते हैं। यहोवायव पदार्थ बाहरी हवामें भी है। बाहरी वायुमें बारह आने यवाखार जान, चौथाई अम्लजान और अङ्गाराम्लका बहुत सामान्य लेशमात्र दिखाई देता है। पर शोणितमें वायव पदार्थ का परिणाम ऐसा नहीं है; शोणित में प्राय दश आने अङ्गाराम्ल और कुछ कम छ आने अम्लजान और बहुत कम जवाखारजान है।

पहिले कह आये हैं कि उमर, आहार धातुप्रकृति, और स्त्री पुरुष भेदमें स्वस्थ अवस्था में भी शोणितके उपकरण समूहोंमें तारतम्य दिखाई देता है।

१। स्त्री पुरुष भेद। स्त्री जातिकी अपेक्षा पुरुषके शोणितमें लाल कणाका परिमाण बहुत वेशी है, इससे स्त्रोकी अपेक्षा पुरुषमें गुरुत्व भी अधिक है।

२। ससत्त्वावस्था। गर्भिणीके शोणितमें लाल कणाका परिमाण कम रहता है, इसीलिये ससत्त्वावस्था की अपेक्षा शोणित में गुरुत्व भी कम है।

३। वयस। गर्भस्थ बालक से दो महीनेतक के बालकके शोणित में कठिन पदार्थ विशेषकर लालकणाका परिणाम बहुत अधिक है। लड़कपन में यह कठिन पदार्थ नीचे बैठजाता है तथा यौवन और प्रवीण अवस्था में फिर उपरको उठ आता है। तथा बुढौती में यह कम हो जाता है।

४। धातुप्रकृति। तामसिक प्रकृति या क्रोधी स्वभाववालेके शोणित में कठिन द्रव्य अर्थात लालकणिका का परिमाण अधिकतर रहता है।

५। खाद्य। मांसाहारी की अपेक्षा शाकभोजीके शोणित में कम कठिन द्रव्य दिखाई देता है।

६। शोणित मोचण। फस्त लेनेसे शोणितकी लालकणिका का परिमाण कम हो जाता है।

वर्ण और विभिन्नता।—शरीरके सब स्थानोंके शोणित का रङ्ग एकसा नहीं हैं; धमनीका रक्त शिराके रक्तकी तरह नहीं होता, तथा शिरामण्डल में भी सब जगह एकसा रक्त नहीं हैं। धमनीके शोणितका रङ्ग उज्ज्वल लाल; कारण इसमें अम्लजान अधिक है; शिरा मण्डलका शोणित बैंगनी रङ्ग; कारण उसमें अम्लजान कम हैं। इसके सिवाय धमनीका शोणित जितना जल्दी जम जाता है उतना जल्दी शिराका शोणित नहीं जमता। तथा फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिराओंका शोणित भी और शिराओंके शोणित् से भिन्न प्रकार है

रक्तका परिमाण।—जीव शरीर में कितना रक्त है, इसका अभ्रान्त निर्णय करना अति कठिन है; तथापि बहुत विचार करने पर स्थिर हुआ हैं कि जीवके शारीरिक बोझके साथ रक्तका भी अनेक सम्बन्ध है। पण्डितगणोंने अनेक परिक्षा-कर निर्णय किया हैं कि शरीरके समग्र भागके प्रायः १।१२ से १।१४ भाग शोणित जीवके शरीरमें रहता है। मनुष्यका भी ठीक ऐसही है। पर अवस्था भेदसे कुछ तारतम्य दिखाई देता है। भरपूर भोजनके थोड़ी देर बाद शरीरके रक्तका जो परिमाण रहता है उपवास में उससे कुछ कम हो जाता है।

रक्तका उपादान।—रासायनिक उपकरणके सिवाय बाकी शोणितके जो सब प्रधान उपादान है, यहां उसका संक्षेप में और लिखा जाता है। शोणित के चार प्रधान उपादान है।

जैसे (१) रस, (२) कस, (३) कणिका और (४) तन्तु। शोणित के पतले अंशमें जो कणिका सब तैरती है उसको रस कहते है। शोणितसे खूनका गाढ़ापन निकाल लेनेपर जो मैला पतला पदार्थ बाकी रहता है वही उसका कस है। कणिका दो प्रकार (१) श्वेत अथवा वर्णहीन (२) और लाल कणिका। स्वस्थ शरीर मे खूनकी सफेद कणिका की अपेक्षा लाल कणिका अधिक रहती है; कारण वही कणिका रक्तका सार पदार्थ है और इसीको सत्तासे शोणित का रङ्ग लाल होता है।

रक्तकी उद्भव।—लाल कणिका ही जब रक्तका प्रधान सार पदार्थ है, तब उसकी उत्पत्ति निर्णीत होनेहो से रक्तका उद्भव स्थिरीकृत हो सकता है। कोई कोई कहते है, जीवकी मर्मका अर्थात् पञ्जरास्थि समूहो के भीतर जो लाल रङ्गकी मज्जा है उसीमे से खूनके लालकण उद्भूत और परिपुष्ट होते है। कोई कहते है, प्लीहाके उपादानमें लाल और वर्ण-हीन दोनो कणिका पैदा होती है। किसीका मत यों है कि सफेद कणिका सब दिन पाकर लाल कणिका का रूप धारण करती है। गरज इस विषय अबतक कोई अभ्रान्त मत प्रचार नही हुआ है।

शोणित की क्रिया।—शोणित जैसा जीवका प्रधान साधन है, वैसही यह शरीर के बाहरी और भीतरी सब यन्त्रोंका जीवन स्वरूप है। कारण इससे सब क्रिया की कुशलता साधित होती है। जो स्नेह पदार्थ मस्तिष्क का प्रधान उपादान है वह शोणित से उत्पन्न होता है। शोणित छातीका गह्वर, पञ्जिका झिल्लीजाल और मज्जा, मज्जाकी कोमलता, पेशीका तन्तु, पाकस्थली की पाचकाग्नि, मुखकी लार, यकृत् का पित्त, इनमें

मूत्र, आंखमें आंसु, त्वक्में पसीना, मस्तकमें केश, और अङ्गुलियों मेंनख की योजना कर सबको परिपुष्ट भी रखता है।

शोणित-सञ्चालन।

शोणितका चलाचल।—पहिले कह आये हैं कि शोणित ही जीवका मूल आधार है खाया हुआ अन्न परिपाक हो शोणित होता है। तथा यह सारे शरीरमें व्याप्त हो रहता है और इसके चलाचल के लिये शरीरके समस्त अंगो में रास्ता या नाली है। यही नाली धमनी, शिरा आदि नामसे प्रसिद्ध है। वृक्षादि स्थावर जीव जैसे पृथिवी से रस आकर्षण कर जीवित रहते है, जङ्गम जीवगण जैसे पाकस्थलीके अन्नसे रक्त संग्रह कर जीवन की रक्षा करते हैं। धमनी और शिरायें भी वैसही शरीरके सब अंगोमें शोणित लेजाकर शरीरको सजीव रखती है। इस नालीका शोणित शरीरके सब अंगोमें पानीको तरह व्याप्त है।

सच पूछिये तो हृत्पिण्डही शोणितका प्रधान आधार है। हृत्पिण्ड से धमनी और धमनी से शिरामण्डलमें प्रवाहित होता है। यहांसे फिर शोणित फुसफुससे होते हुए हृतपिण्डमें लौट आता है और हृतपिण्ड से फिर धमनी और शिरामें जाता है। इसी तरह शरीर यन्त्रमे शोणित बराबर चलता रहता है। शोणित केनाली में कोई द्रव्य रहनेसे शोणित प्रवाह में वह भी घूमता फिरता है। यदि यह पदार्थ दूषित हो तो मुहूर्तभर में सारे शरीर को दूषित कर डालता है। इसीलिये शरीर के चाहेजिस प्रान्तमे सांप काटनेसे थोड़ेही देरमें शोणित मण्डल विषाक्त हो मृत्यु, आ घेरती है।

नाड़ी ।—हृत्पिण्ड में शोणित बराबर चलता रहता है। इसके खुलनेसे शोणित इसमें सञ्चय होता है और प्रत्येक सङ्कोचनसे शरीरमें सर्व्वत्र चलता हैं। हृत्पिण्डके प्रतिसङ्कोचन से शोणितपूर्ण धमनीमें जो शोणित तरङ्ग उत्पादित होताहै उसीको नाडोकहतेहैं।



हृत्पिण्ड और वृहत् रक्तनाली समूह।

हृत्पिण्ड।—हृत्पिण्ड एक शून्य गर्भ अर्थात् पोल पैशिक यन्त्र है। यह छाती गह्वर के बांये और दहिने फुसफुस के मध्यमें स्थित हैं। इसके ऊपर झिल्लीका एक आवरण है, उसको हृदावरण कहते हैं। हृत्पिण्ड चार कक्षोंमें विभक्त है;—दक्षिण और वामकोष्ठ तथा दक्षिण और वाम उदर है। दक्षिण तरफ जो कोष्ठ है उसके पास और उदरके साथ उसका संयोग है तथा वाम उदरके साथ वाम कोष्ठका संयोग दिखाई देता है; किन्तु बांये तरफके दोनो कक्षसे दहिने तरफवाले दोनो कक्षसे प्रत्यक्ष संयोग नही है। बांये कक्षके धमनीसे शोणित प्रवाहित हो दक्षिणकक्षमें लौट आता है। शरीरके ऊर्द्ध और अधोदेशके कैशिक-नाली नामक अति छोटी छोटी शिरायोंसे परस्पर मिला हुआ है।

आकार और वजन।—मनुष्य हृत्पिण्डकी लम्बाई प्राय ५ इञ्च, चौडाई साढे तीन ३॥ इञ्च और मोटाई अढ़ाई इञ्च है। जवान मनुष्यका हृत्पिण्ड ८ से १० औंस भारी है। प्रौढावस्था तक इसका वजन बढताही जाता है तथा बुढौती में कमना शुरू होता है।

शोणितसञ्चालन।—हृत्पिण्डके दहिने तरफ के फुसफुस धमनीसे शोणित फुसफुस में प्रवाहित होता है। तथा फिर फुसफुसके कशिका नाली और शिरा समूहोंसे हृत्पिण्डके बांये तरफ लौट आता है। अतएव इससे स्पष्ट जाना जाता है कि शोणित दो रास्तेसे प्रवाहित होता है। इससे एक छोटा और दूसरा बडा रास्ता हैं। हृत्पिण्डके दहिने तरफ से फुसफुसमें और वहांसे हृत्पिण्डके बांये तरफका छोटा रास्ता है। दूसरा हृत्पिण्डके बांये तरफ से प्रवाहित हो शोणित सारे शरीरमें

सञ्चालित हो हृदयके दहिने तरफ लौट आता है—इसको बड़ा रास्ता कहते हैं। पर विशेष विचार कर देखनेसे शोणित सञ्चालन प्रणाली केवल एकही है; कारण समग्र शोणित प्रवाह एक तरहसे फुसफुस के भीतर से प्रवाहित होता है।



फुसफुस और हृत्पिण्ड।

हृत्कोष्ठ के शोणितका परिमाण।—पहिले कह आए हैं कि शोणित वामकोष्ठसे वाम उदरमें और वाम उदरसे सारे शरीरमें व्याप्त होता है। परीक्षासे जाना गया है कि प्रत्येक हृदयमें प्रायः४से ६ औंस तक शोणित रहता है। ८ हृत्कोष्ठमें इससे कम रहता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचन में भी वही परिमाण अर्थात् ४से ६ औंस तक शोणित शरीरमें सञ्चालित होता है। इसी तरह हृत्पिण्डके प्रत्येक विस्फारण में उसी परिमाण से शोणित इसके उदरमें आकर प्रवेश होता है।

शोणित-संकोच।—इसी तरह हृत्पिण्ड बार बार सङ्कुचित और विस्फारित होता रहता है। इसी बार बार विस्फारण और सङ्कोचनसे शरीर को काण्डरा, धमनी और शिरा प्रभृति शोणित नाली सब सर्व्वदा शोणितपूर्ण रहती है। इसी परिपूर्ण नालीमें हृत्पिण्ड जोरसे बार बार शोणित सञ्चालन करनेके समय उसकी दिवाल आहत और विस्फारित होती है। इसीको शोणित-सञ्चाप कहते हैं।

धमनी या आर्टरि।

जो सब नलाकार प्रणालीके भीतरसे होतेहुए हृत्पिण्डके उदर से शोणित सारे शरीरमें सञ्चालित होता है, उसको धमनी या आर्टरि कहते है।

आर्टि काण्डरा।—शरीर की प्राय सब धमनी दो प्रधान धमनीकी शाखा प्रशाखा है। यह दोने एकका नाम

आदिकाण्डरा है, यह हृत्पिण्ड के वाम उदरसे उत्पन्न हुई है। इसकी उत्पत्ति स्थानके पाससे २ शाखा धमनी उत्पन्न हो मस्तक, ग्रीवा और ऊर्द्ध अङ्गोंमें फैली है। तथा इसके बाद आदि काण्डरा छाती और उदर में प्रवेश हुई है। उदरसे इसकी दो शाखा उत्पन्न हो दोनों सक्थि तक फैली है। इसी दो धमनीसे दोनों सकथिका पोषण होता है।

फुसफुस धमनी।—दूसरी सबसे बडी धमनीका नाम फुसफुस धमनी है। यह हृत्पिण्डके दक्षिण उदरसे उत्पन्न हुई है। सिर्फ इसी एक धमनी से शिरिक रक्त प्रवाहित होता है। यह धमनी प्राय २ इञ्च लम्बी है। इससे शोणित हृत्पिण्डके दहिने तरफसे फुसफुस में जाता है। यह दक्षिण हृदय के एक विशेष अंशसे उत्पन्न हो ऊर्द्धगामी काण्डराके सामनेसे होते हुए ऊपर और पीछेकी तरफ गई है; और काण्डराके नीचे दो भागमें विभक्त हुई है। यही दो शाखाका नाम वाम और दक्षिण फुसफुस धमनी है।

वाम।—बाये तरफ की फुसफुस धमनी दहिने तरफ से छोटी है। यह नीचेवाली काण्डराको अतिक्रम कर बाये फुसफुस के जडतक गई है; फिर दो प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुस के दो अंशोंमें छितर गई है।

दक्षिण।—दहिनी फुसफुस धमनी बाये धमनीसे अधिक स्थूल और बडी है। यह ऊर्द्धगामी काण्डरा और महाशिरा के पीछे दक्षिण फुसफुस के जडमें जाकर दो प्रशाखा में विभक्त हुई है। यह दो प्रशाखामें एक नीचे और दूसरी उपर को गई है। नीचेवाली शाखा फुसफुसके निम्न प्रान्त में और ऊर्द्धशाखा उसके बीचमें फैली हुई है।

धमनीका मिलन।—कण्डरा सर्व्वदा साफ खूनसे पूर्ण रहता है और यही रक्त सारे शरीरमें सञ्चालित हो स्वास्थ्यको अव्याहत रखता है। धमनिओंका मूल अलग होने पर भी परस्पर मिला हुआ है। इसका यही मिलन विशेष मङ्गल कर है; कारण किसी पीड़ाके सबब एक धमनी काटनेसे अथवा कोई कारण से वह बन्द हो जानेसे उसी मिलन पथसे शोणित स्रोत प्रवाहित ह ता है। इसको औपान्तिक सञ्चालन कहते है।

संस्थिति।—धमनी सब प्रायः शरीरके गभीर निरापद अंशमें रहती है। इन सब स्थानोंमें एकाएको दाब या चोट नहीं लगता। इन सबकी गति प्रायः सीधी और सर्व्वदा परस्पर मिली हुई है। प्रायः सब धमनी साहानुभूतिक स्नायुसे वेष्टित है। यह सब स्नायु जालकी तरह धमनी से लिपटी हुई है। अति सूक्ष्म धमनी और केशिक नाली भी इसी तरह स्नायुजाल से वेष्टित है।

आदिकण्डरा।

—:o:—

उत्पत्ति और भाग।—आदि-कण्डरा ही वैधानिक धमनी की जड़ है; इसलिये इस को मूल धमनी भी कहते है। इसका कुछ अंश छातीके गह्वर में और कुछ उदर गह्वर में है। वह हृत्पिण्डके बांये उदर से उत्पन्न हो बांये फुसफुस तक फैली है। फिर मूल धमनी कशेरुका—स्तम्भके सामने निम्नगामी हो उदर गह्वर तक नीचे उतर गई है। और चौथी कमर की कशेरुका के सामने दो भागमें विभक्त हुई है।

आदि काण्डराको गोलाई।—यह तीन अंशमें विभक्त है। यह तीन अंशके गति अनुसार उसका नामकरण हुआ है, यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी, गोलाईके न्युज अंशमें बांये फुसफुसका मूल और फुसफुस धमनो में शाखा भेद आदि दिखाई देते है।

ऊर्द्धगामी अंश।—प्रायः दो इञ्च दीर्घ है। वक्षस्थिके मध्यभागके पीछेके अंशमें तृतीय पञ्जर वक्षास्थि के बराबर उठकर ऊपर को तरफ तीर्य्यक भावसे दक्षिण की तरफ गई है। और द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्धप्रान्तके वक्षास्थिके पास खतम हुई है। शाखा दक्षिण और वाम हृदय धमनी हृत्पिण्ड में व्याप्त है।

अनुप्रस्थ अंश।—द्वितोय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्धप्रान्त से आरम्भ हो फुसफुस मूलके ऊपर होते हुए पीछेकी तरफ कोर भावसे पीठको कशेरुका तक गई है। इसको दो शाखा है। प्रथम शाखाका कोई विशेष नाम नहीं है; इसलिये इसको अनामिका कहते हैं। अनामिका १॥ डेढ़से २ इञ्च लम्बी है। यह अनुप्रस्थ अंशके आरम्भ स्थानसे उठी है और दक्षिण तरफ को गई है। इसकी दो प्रशाखा है।

निम्नगामी अंश।—चतुर्थसे प्रथम पीठकी कशेरुका तक फैली है।

शोणित शोधन।—इसके पहिले प्रमाणित हो चुका है कि, हृत्पिण्डसे रस बाहर हो धमनोके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है, और शिराके रास्तेसे हृत्पिण्डमें लौट आता है। यह शोणितका सञ्चालन हुआ। समस्त शरीर में भ्रमण करनेसे रक्त दूषित हो जाता है, तथा दूषित अवस्थाही में हहत् शिरासे हृत्पिण्डके दक्षिण कोठमें उपस्थित होता है। यहांसे दक्षिण हृदुदरमें आता है।

तथा दक्षिण हृदुदरसे फुसफुस धमनी द्वारा फुसफुस में प्रवेश करता है। यहां अम्लजान वाष्प ग्रहण कर दूषित रक्तको साफ कर निर्दोष करता है। फुसफुसका शुद्ध शोणित फुसफुस के शरासे हृत्पिण्डके वाम कोष्टमें आता है। वाम कोष्ठ से वाम उदर में और वहांसे आदि कण्डरा द्वारा सर्वत्र शरीर में सञ्चालित होता है। यह वृहत् धमनो व क्षुद्र धमनी समूहोंमे, धमनोसे छोटे छोटे कैशिक नाली में कैशिकनाली से शिरा समूहोंमें और वहीं सब शिरासे दूषित अवस्था में शोणित फिर हृत्पिण्ड में लोट आता है। जन्मसे मृत्युतक हृत्पिंडके सञ्चालन और विस्फारण से शोणित का यह चलाचल होता रहता है।

कपाट।—यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि रक्त हृत्पिंड के दक्षिण कोष्ठ से वाम कोष्ठहो में और धमनी से शिराहो मे प्रवेश करता है इसका क्या कारण? क्यों वह दक्षिण हृदुदर से वाम कोष्ठमें और शिरासे धमनी में जाता है? इसका विशेष कारण है। हृत्पिंड का कोष्ठ और उदरके मध्यभागमें एक एक कर दरवाजा है तथा इस दरवाजे में एक एक जोड़ा पेशीका किवाड है। यह किवाड इस ढङ्गसे बना है कि हृत्कोष्ठसे हृदुदर में रक्त जातोवक्त खुल जाता है तथा तुरन्त ही ऐसा बंद हो जाता है कि हृदुदर से शोणित किसी तरह हृत्कोष्ठ में नहीं आसकता। इसी तरह हृदुदरमें भी किवाड रहनेसे रक्त हृदुदर से फुसफुस धमनी में जातेही किवाड वन्द हो जाता है, तब रक्त किसी तरह धमनी से फुसफुस में नही आसकता है। प्रायः हृत्-कोठ, वाम हृदुदर तथा वाम हृदुदर और आदि कंडरा में इसी तरहका किवाड दिखाई देता है। शिरा समूहोंमेभी किवाड़ है।

यह किवाड़ ऐसे कौशलसे बनाया गया है कि रक्तशिराने हृत्पिंड की तरफ आसकें किन्तु हृत्पिंड से शिरामें किसी तरह न आसके।

कैशिक रक्तनाड़ी और शिरासमूह।

कैशिक नाली।—पहिले कह आए हैं कि धमनीके छोटे छोटे शाखाग्रसे कैशिक नाली द्वारा शोणित शिरा समूहों में प्रवाहित होता है। केवल शिश्नकी रक्तनाली और जरायुका परिस्रव या फुलकी सिवाय प्राय सर्व्वत्र ही यह वैचित्र दिखाई देता है। कहां किस अंशमें धमनीका शेष और कहां छोटी छोटी शिरायें आरम्भ हुई है, यह ठीक नहीं जाना जाता है। कारण यह शोणित नालीका व्यास सर्व्वत्र समान नहीं है; किन्तु कैशिक नालीमें ऐसा नहीं दिखाई देता,—इसमें आरम्भसे लेकर अवसान तक का व्यास एक समान है। यह एक इञ्ची का ५००० वा भाग होगा।

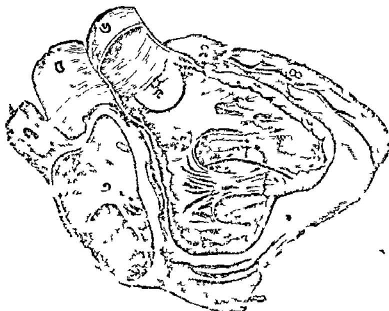
शरीरके प्रायः सब अंश में कैशिक रक्तनाली दिखाई देती है, पर जितने यन्त्र अधिक सक्रिय है उतने अधिक और जितने यन्त्र अल्प क्रियाविशिष्ट है उसमें कम देखनेमें आती हैं।

शिरायें सब।—शिरायें सब कैशिक नालीसे उत्पन्न हुई है। इसका आकार पहिले बहुत पतला होता है पर कैशिक नालीसे पतला नहीं है। कैशिक नाली इससे भी पतली होती है। शिरायोंकी जड़ संकीर्ण होनेपर भी मूल शिराद्वय और हृदयके शिरायोंकी तरफ जैसे जैसे अग्रसर हुई है आकार भी उतनाही बढ़ता गया है।

कपाट ।—पहिले कह चुके है कि, हृत्पिंडके कोटरको तरह शिरायोंमें भी किवाड है ; इसके रहनेसे रक्त विपरीत तरफ नही जासकता। निम्नशाखाकी शिरा समूहोंमें कपाटकी संख्या सबसे अधिक है। कपाट का आकार अर्द्धचन्द्राकार है। इसका न्युज अंश शोणितस्रोत प्रतकूलमें है। कई शिरायोंमें कपाट नही है।

श्वासक्रिया।

पूर्व्व अध्यायमें शोणित सञ्चालन प्रणाली सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय बातें कह चुके है। यहा शोणित क्या है, किस उपायसे कौन कौन यन्त्र या कौन कौन स्थानमें उत्पन्न होता है, तथा सारे शरीरमें प्रवाहित होते होते क्योंकर दूषित होता है, तथा वह दूषित रक्त फुसफुसमें आकर कैसे विशोधित होता है, इस विषय की आलोचना को जाती है। अब यह देखना चाहिये कि श्वास कार्य्य किस तरह होता है, श्वासकार्य्यका प्रधान यन्त्र फुसफुस कैसे बनाया गया है, उक्त कार्य्यमें यह कैसे मदद करता है, और कौन उपाय से फुसफुस शोणितको साफ करता है।



हृत्पिंड छेदित।

हृत्पिंड दित।

दक्षिण हृत्कोष्ठ और हृदुदर उन्मुक्त और अभ्यन्तर भाग प्रकाशकर दक्षिण और सम्मुख प्राचीरका कियदंश अन्तरित है।

१, दक्षिण हृदुदरका बाहरी अंश। २, उसका अभ्यन्तर। ३, दक्षिण हृत्कोष्ठका अभ्यन्तर। ४, वाम हृदुदरका वहिरंश। ५, आदि कंडराका मूल। ६, फुसफुस धमनी। ७, प्रधान मूल शिरा। ८, अप्रधान मूल शिरा। ९, फुसफुस धमनीका अर्द्ध चन्द्राकार कपाट। १०, वाम हृत्कोष्ठका एकांश।

दोनो फुसफुस।—दोनो फुसफुस स्पञ्जको तरह सछिद्र तथा वक्षःगह्वर को ढाके हुए है। दोनोंके मध्यमें हृत्पिण्ड और हरेक फुसफुस एक एक स्वतन्त्र गह्वर में स्थित और श्लैष्मिक झिल्लीसे आच्छादित है। इस झिल्लीको फुसफुसावरण कहते हैं। प्रत्येक फुसफुस देखनेमें शंकाकार है।

वजन और वढ़न।—बांये फुसफुस को अपेक्षा दहिने फुसफुस को लम्बाई कम है। किन्तु यह कुछ चौड़ा तथा वजनमें भारी है। फुसफुसका विधानोपादान स्पंजकी तरह शिथिल है। दोनों फुसफुस का वजन साधारणतः २॥ अढाई पौंडसे कुछ वेशी है। औरतोंका फुसफुस पुरुषको अपेक्षा वजन में चौथाई हिस्सा कम होता है

श्वासनाली।—मुख गह्वरके भीतर पीछेकी तरफ दो छिद्र है, उसमें एकमें से खाया हुआ अन्न पाकस्थालीमें जाता है। उसको अन्नवहानाली कहते हैं और दूसरे से वायु फुसफुसमें प्रवेश करता है इसको श्वासनाली कहते है। इस नालीके मुखपर एक आच्छादन है, भोजनके वख्त यह श्वासनालीका मुंह बन्दकर

रखता है। इसीलिये खाया हुआ द्रव्य उसमें नहो जाकर अन्न-वहा नालीमें आता है। नासारन्ध्र भी इस छिद्रके पास तक फैला है इसीलिये मुखरन्ध्र और नासारन्ध्र दोनो छिद्रोंसे कोई वस्तु श्वासनाली में नही जाती है।

लम्बाई और गढ़न।—श्वासनालीका अग्रभाग और सब स्थानोंकी अपेक्षा बड़ा है। इसमें पांच उपास्थि है, यहींसे कण्ठस्वर उत्पन्न होता है। मुखके पीछेसे आरम्भ हो गरदनके भीतर से होते हुए श्वासनाली वक्षगह्वर में प्रविष्ट हुई है। गलेके सामने हाथ लगानेसे श्वासनाली का अनुभव होता है। किसी पीडाके सबब श्वासरोध होनेसे शल्य चिकित्सक गलेके श्वासनालीमें छेद करदेते है, तथा इस छेदसे वायु प्रविष्ट हो श्वासकार्य्य सम्पन्न होता है। उपास्थि निर्म्मित अग्रभाग कण्ठ और तत्परवर्त्ती अंशको गलनाली कहते है। गलनाली ४से ४॥ इञ्च लम्बी है। यह स्वाधीन पेशी और १६से २० तक उपास्थिसे बनी है। यह उपास्थि ठीक अङ्गूठी की तरह है। गलनाली छातीमें जाकर दो भागोंमें विभक्त हो दोनो फुसफुसमें प्रवेश हुई है। इसको वायु नाली भी कह सकते है। यह वायुनाली पहिले दो भाग, फिर चार भाग तथा क्रमश' आठ भाग इसी तरह अगन्य छोटी छोटी शाखा प्रशाखा में विभक्त हो फुसफुसके सर्व्वत्र छितराई हुई है। यह वायुनालीके सब स्थूल अंश उपास्थिसे बने हुए है, यह क्रमश: जैसे पतली होती गयी है वैसही इसके गढनमें पेशीने आकर उपास्थिका स्थान अधिकार लिया है। गलनालीकी परिधि प्राय एक इंच, किन्तु यह विभक्त हो वायुनाली आकार से क्रमश. छोटेसे छोटे आकारमें जब फुसफुसमें विस्तृत हुई है तब इसकी परिधि एक इञ्चके चालीस भागका एक भाग हुआ है।



फुसफुस और हृत्पिण्ड।

शिरा और नाली।—पहिले कह आये हैं, कि फुसफुसमें असंख्य वायुकोष हैं तथा उसके बीचवाले स्थानोंमें शिरा, कैशिक नाली, स्नायु और स्थितिस्थापक तन्तु है। दो वायुकोषके बीचमें कैशिक धमनी भी दिखाई देती है। कैशिकनालीके भीतर शोणित के दोनों तरफ वायु भरा हुआ वायुकोष है।

शोणित शोधन।—बाहरी वायुमें अम्लजान नामक जो वायव पदार्थ है, वही हम लोगोंका जीवन स्वरुप है, कारण इसी अम्लजान से शोणितका दोष दूरीकृत होता है। अम्लजान प्रश्वास द्वारा फुसफुस में जाकर उसके असंख्य वायुकोषों में प्रविष्ट हो खूनमें मिलजाता है। खूनकी लाल कणिका अम्लजान शोषण करलेता है, फिर खून शरीरमें प्रवाहित हो दूषित होता है, तब उसमें द्रयम्ल-अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक मिल जाता है। यह दूषित रक्त फुसफुस में फिर लौट आनेसे उसमेंका द्रयम्ल-अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक होनेसे यह निश्वास से निकल जाता है, इसलिये रक्तमें अम्लजानका भाग अधिक रहता है।

श्वाससंख्या।—सचराचर युवावस्था में एक मिनिट में १४से १८ दफे श्वास चलती है। प्रत्येक निश्वास में हम लोग प्राय ३० घन इञ्ची वायु ग्रहण करते हैं; अतएवं सारे दिन रात अर्थात् २४ घण्टेमें ५८६००० घन इञ्च वायु फुसफुस में प्रविष्ट होता है और वहांसे निकलता है; प्रत्येक घण्टेमें १५८४ इञ्च वायु ग्रहण और १२४६ घन इञ्च द्रयम्ल-अङ्गार वायुका परित्याग किया जाता है। युवाकी अपेक्षा बालक अधिक बार श्वास ग्रहण करता है। परिश्रम और आहारके बाद श्वासकार्य्य किञ्चित तेज हो जाता है।



खाद्य और परिपाक।

खाद्य और क्षुधा क्यों?—जीवन धारण करनेके लिये किसी तरहका कुछ खाद्य अवश्य चाहिये। पहिले कह आए हैं कि जीव देहमें प्रतिनियतही शक्तिका क्षय होता है। कोई काम न कर केवल आलसी की तरह निश्चिन्त मनसे रातदिन सोकर बितानेवालेको भी शरीरके भीतरी शक्तिका क्षय होता रहता है। यही क्षय हुई शक्तिका अभाव पूरा करनेके लिये आहार की जरूरत पड़ती है।

क्षुधा क्यों।—भोजनका प्रधान उद्देश्य—शरीर पोषण और शरीर पोषणका अर्थ—शरीर की क्षय हुई शक्तिका पूरण कर नई शक्तिका साधन है। अतएव शरीर पोषण के निमित्त क्षुधा चाहिये, और क्षुधाकी निवृत्तिके लिये पुष्टिकर खाद्य आवश्यक है। पुष्टिकर खाद्यके अभाव से पाकाशय में प्रबल वेगसे शोणित सञ्चारित होता रहता है, इससे उसकी गांठे फूल उठती है। साधारणभूतिक स्नायुमंडलकी ऐसी चेष्टासे मनमें जो उद्वेग होता है वही क्षुधा है। पाकस्थली में खाद्यद्रव्य प्रहट होतेही उनकी ग्रन्थियोंमेंसे एक प्रकारका पाचक रस निकलता रहता है इसी रसके सहारे भुक्तद्रव्य जीर्ण होता है।

तृष्णा क्यों।—सभी जानते हैं कि पाकाशय में क्षुधा और कण्ठनाली में तृष्णा का उद्रेक होता है। पहिले कह आए हैं कि हम लोगोंके शोणितमें चार प्रधान उपादान है जिसमें पानी-

का परिमाण सबसे अधिक हैं। परिश्रमादि से पानीका परिमाण कम होता है तब उस कमी को पूरा करनेके लिये मनमें जो उद्वेग होता है, वही तृष्णा है। शरीर रक्षाके लिये खाद्य जैसा आवश्यक है पानी भी वैसाही प्रयोजनीय है। इसीलिये हिन्दूशास्त्रमे पानीको जीवन कहा है।

क्षुधा और पाकाशय।—पीड़ा किम्वा और किसी कारणसे शरीरका बल अधिक कम हो जानेसे आहार की उत्कट इच्छा होती है; इसीलिये बहुमूत्र रोगीको क्षुधा अकसर प्रबल रहती है। क्षुधाके समय पाकाशय खाद्यद्रव्यसे पूर्ण होते ही क्षुधाकी शान्ति होती है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि पाकाशयके साथ क्षुधाका अति घनिष्ठ सम्बन्ध है; किन्तु हरवक्त यह सम्बन्ध नही रहताहै कारण पाकाशयमें खाद्यद्रव्य रहनेपर भी बहुतोंको अकसर क्षुधा लगती है। भुक्तद्रव्य दोर्ष हो शोषित न होनेतक अथवा कच्चा रहनेपर भी पाकस्थली मे रहता है। सुतरां इससे शरीरके शक्तिका पूरण नही होता इसी तरह पाकस्थली पूर्ण रहनेपर भी कई रोगीमें क्षुधा लगते देखा गया है।

परिपाक।—अन्न मुखमें जातेही चहुधा उसको चर्व्वन करता है। इस विषय में जीभही प्रधान सहायक है। अन्न दांत से पिस जानेपर लारसे पिण्डाकार होता है, फिर वह पिण्ड गले को नालीसे पाकस्थली मे जाता है तथा यहां पाचक रसके सहायतासे परिपक्क होता है, तिसके बाद अंत्रमें प्रवेश होता है। यहां पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस उसके साथ मिलकर परिपाक होता है। यहां यह कहना जरूरी है कि पाकस्थलीमें जो अन्न परिपाक होता है वह प्रायः शरीरके सब अंशोमें शोषित

को शक्ति वृद्धि करता है। बाकी अन्न अन्त्रमें शोषित हो जाता है। इसके बाद जो बाकी बचता है वह पूरीषही सरलांत्र से शरीरके बाहर निकलता है। उपर जो कहा है इससे स्पष्ट प्रतीत होगा कि सब समेत पांच रसोंसे भुक्त अन्नका परिपाक होता है। यथा लार, पाचक रस, पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस। यही पांच रसके अभाव, आधिक्य अथवा और कोई विक्रियाहोनेसे परिपाक में बाधा होती है।

लाला रस।—लार निःसारक ग्रन्थियोंसे लार निकलता है। यह सब ग्रन्थि नानाप्रकार की है। तथा औष्ठाधर, गण्ड, कोमलतालु, और जिह्वामूल की श्लैष्मिक झिल्लीके निम्नभाग में उक्त ग्रन्थि सब रहती है। दो स्नायु शाखा, यह सब ग्रन्थियों पर फैली है इसी दो स्नायुसे इन सबका कार्य्य उत्तेजित होता है; इसीलिये कोई खट्टा पदार्थ देखनेसे मुहसे लार निकलतीहै।

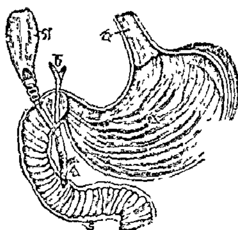
पाचक रस।—पाकस्थलीके भीतरी भागसे पाचक रस निकलता है। भुक्त अन्न पाकाशयमें जातेही यह रस बाहर निकलता है। यह रस पानीकी तरह पतला, अर्द्ध स्वच्छ, गन्धहीन और अम्लस्वाद विशिष्ट होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १००२ से १०११ तक है। सम्दर्शन से स्थिरीकृत हुआ है कि सारे दिनरात अर्थात् २४ घण्टेमें एक स्वस्थ युवा पुरुषको १० से २० पांउड तक पाचक रस निकलता है। इसमें खट्टापन रहनेके सबब इसका स्वाद खट्टा होता है।

पहिले जो पांच प्रकारके पाचक रसके बारेमें कह आए हैं, उसमें अधिकांशके निकलने में और भुक्तद्रव्यके परिपाक कार्य्यमें निम्नलिखित पांच यन्त्रविशेष से सहायता मिलती है; यथा—

पाकाशय, क्षुद्रान्त्र, वृहदन्त्र, क्लोमग्रन्थि और यकृत्। इन सबका व्योरा क्रमशः दिया जाता है।

पाकस्थाली।

स्थिति, भार और प्रसार।—पाकस्थली अन्तरङ्ग नालियोंमें सबसे अधिक प्रशस्त है। यह उदर गह्वर में संस्थित हैं। इसका आकार सब जगह एकसा नहीं है। जो व्यक्ति जितना अधिक आहार करता है पाकस्थली भी उसकी उतनी ही बड़ी होती है, पर मोटामोटी परिमाण करनेमें पाकस्थ वायुसे विस्फारित करना पड़ता है। वायुसे विस्फारित पाक स्थली की लम्बाई १०।१२ इञ्च, गभीरता प्राय ४ इञ्च, और इसका वजन ४॥ औंस होता हैं। इसका आकार ठीक शूण्डको तरहहै। बाया अंश स्फीत और दक्षिण अंश क्षुद्र और संकुचित है, तथा सम्मुख प्रदेश न्युञ्ज और ऊर्द्धाभिमुख है। यह यकृत् वा निम्नप्रदेश और उदरप्राचीरके साथ मिला हुआ है। इसका पश्चात् प्रदेश निम्नाभिमुख है। यह प्रदेश अनुप्रस्थ वृहदन्त्रके ऊर्द्ध और सम्मुख में अवस्थित हैं। इसके पीछे क्लोमग्रन्थि, वामवृक्क या मूत्रग्रन्थि और प्लीहा आदि अंश तथा मेरुदण्ड और संसृष्टस्थ वृहत् रक्तनाली सब संस्थित हैं।



प.कस्थाली।

क्रिया।—पहिले कह चुके हैं, कि पाकाशयसे पाचक रस निकलता है। पाकस्थाली जब शून्य अथवा निष्क्रिय रहती है, तब उसमे से रस नहीं निकलता तब केवल कफसे इसके भीतर की प्राचीर आवृत रहती है। पर इसमें अन्न अथवा और कोई द्रव्य प्रविष्ट होतेही पाकस्थाली की शोणित नाली वेगसे चलने लगती है तथा इस प्रचुर शोणित संसर्गसे कफकी भिल्ली लाल होजाती है। पाकस्थाली की ग्रन्थि सब साथही बहुत वेगसे रस देने लगती है। पाचक रस बाहर निकलतेही पाकस्थाली हिलने लगती है, इसी तरह ३।४ घण्टेमें भुक्त अन्न हजम ह ता ,

---

अन्त्रमण्डल।

प्रकार।—अन्त्रमण्डल क्षुद्र और वृहत् भेदसे दो प्रकारका है यह द. भागों के भिन्न भिन्न दो अंश हैं यह केवल व्याम

की विभिन्नता से दो भागमें विभक्त है। जहां क्षुद्र अन्त्रका शेष और बृहदंत्रका आरम्भ हुआ है, वहां एक किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे बना है कि क्षुद्र अन्त्रसे अन्न विपाक का अवशेष बृहदन्त्र में आ सके पर बृहदन्त्रसे क्षुद्रांत्र में न आसके।

क्षुद्रांत्र। वर्णन करनेके सुबीतेके लिये यह तीन अंशोंमें विभक्त है। पूरी उमरवाले व्यक्तिका क्षुद्रांत्र २० फीट लम्बा होता है।

बृहदंत्र। पूरी उमरवाले व्यक्तिका बृहदंत्र ४ से ६ फीट लम्बा रहता है। वर्णनके सुबीतेके लिये इसेभी तीन अंशोंमें विभक्त किया है;—यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी। सरलांत्र अपने निम्नांश में विस्फारित हो फिर संकीर्ण भाव धारण करता है तथा फिर विस्फारित हो मलद्वार में पर्यवसित हुआ है।

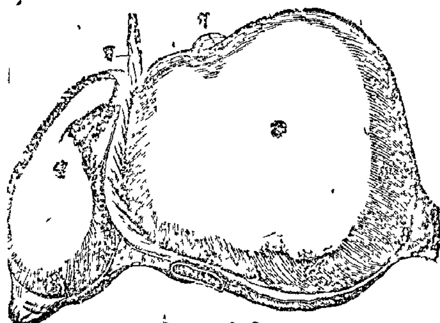
अन्त्रमें परिपाक।—दोनो प्रकारके अन्त्रोंमें कई ग्रन्थि है। पहिले जिस आंत्रिक रसकी बात कह आए हैं, वह इन्हीं ग्रन्थियोंसे निकलता है। पाकस्थली में परिपाक और शोषणके बाद जो भुक्त द्रव्य बचता है वही अंत्रमूल में जाता है। यहां क्लोमग्रन्थि और यकृत्का रस तथा क्षुद्रांत्रके रससे परिपाक होता रहता है। घृत और चर्व्वी आदिका अधिकांश अंत्रमूल में परिपाक होता है।

स्थिति और विस्तार।—क्लोमग्रन्थि। क्लोमयंत्र देखने में एक गांठकी तरह है यह अंत्रमूल के कोर अंशमें अवस्थित है। इसका एक मुह नलाकार अंत्रमूलके साथ मिला हुआ है। इसी नलसे इसका रस अंत्रके उक्त अंशमें जाता है। यह पाकाशयके पीछे और बृहत् रक्तनालियोंके सामने मेरुदण्डके उपर न्यस्त है।



पाकप्रणाली और मलवहा नाली।

की लम्बाई ६।८ इञ्च, गभीरता १से १॥ इञ्च, और, स्थूलता
२ से ३।४ इञ्च है तथा वजन २ से ३॥ औंस। क्लोमयन्त्रसे जो
स निकलता है, अन्न परिपाक में उसकी विशेष जरूरत है। तैल
ो और चर्बी आदि इसी रसके सहारेसे हजम होती है।



यकृत् का ऊर्द्ध प्रदेश।

क। यकृत् का दक्षिण खण्ड। ख। वामखण्ड। ग। पित्त-
नाली मुख। घ। बन्धनी, ङ। रक्तनाडी

स्थिति और वजन।—यकृत् एक ग्रन्थिमय यन्त्र है। यह ग्रन्थिमय और औदरीय यन्त्रोंमें सबसे बड़ा है तथा यह दक्षिण उदर का अधिकांश ढाके हुए है। इसका ऊर्द्ध प्रदेश न्युब्जाकार; निम्नप्रदेश में पाकाशय, अनुप्रस्थ में अंत्रमूल, अन्तांश और दक्षिण मूत्रपिण्डके ऊपर स्थित है। यकृत् सचराचर १०।१२ इञ्च प्रशस्त होता है। इसका जो अंश सबसे स्थूल है उसका परिमाण २॥ से १। इञ्च और वजन ३।४ पाउण्ड होगा। यकृत् दो

असम खण्डों में विभक्त है। इन दो अंशोको वाम और दक्षिण खण्ड कहते हैं ये दोनो खण्ड परस्पर अविच्छिन्न भावसे संबद्ध है। इसके सामने और पोछे एक छेद है, ऊपर एक ओर धमनीके नीचे अनुनम्ब विदार है। पित्तको निकालनाही यकृत् का प्रधान कार्य्य है इससे पित्तको परिपाक कार्य्यमें सहायता मिलती है।

यकृत् ।—पित्त, रक्ताभपीत या पीत अथवा सबुज रङ्गके पतले पदार्थ को कहते है। इसका स्वाद उत्कटतिक्त; गन्धहीन, इसका आपेक्षिक गुरुत्व १०२०. क्षारगुणविशिष्ट हवा लगनेसे हरा रङ्ग होता है मांसाहारी जीवका पित्त पीतवर्ण और शाकभोजी का पित्त हरिद्वर्ण होता है। यह एक यौगिक पदार्थ है। पित्त यकृत् से उत्पन्न हो अन्त्रमें जाता है; अथवा जब परिपाक कार्य्य बन्द रहता है तब वहांसे पित्तकोषमें आता है यहा क्रमश: संचित होता रहता है और जरूरत होनेपर वहांसे निकल जाता है।

पित्तकोष ।—ठीक अमरुद फलको तरह है यह यकृत् के नोचे लगा हुआ तथा उदरझिल्लि को धरे हुए रहता है। यह सामने और पीछे तीर्य्यकभावसे स्थित तथा इसका प्रशस्त अंश सामने, नोचे और दहिने तरफ है तथा इसका सङ्कीर्ण अंश अर्थात् ग्रीवा नीचेवाली दूसरी नालीमें शेष हुई है। इसकी लम्बाई ३।४ इंच; इसका प्रशस्त अंश प्राय १॥ इंच प्रशस्त है। पित्तकोष में प्राय: २॥ औंस पित्त रहता है।

पित्तका परिमाण ।—यकृत् से दिनरात में कितना पित्त निकलता है यह नीचे लिखे अनुसार स्थिर हुआ है। यकृत का वजन जितना रहता है २४ घण्टेमें उतना ही पित्त निकलता है। पित्त बराबर निकलता रहता है। उपवास में बन्द रहता

है और आहार के बाद परिमाण अधिक हो जाता है। पित्तकोष में पथरी पैदा होनेसे अथवा और कोई कारण से पित्त यंत्र से न निकले तो यह खूनको सुखाता है पित्तमिला शोणित शरीरमें फैलनेसे पांडुरोग होते देखा गया है।

क्रिया।—पित्तका प्रधान कार्य्य अन्नको परिपाक करना है, किस उपायसे यह कार्य्य सम्पन्न होता है इस विषय में बहुत कुछ कह आये हैं। यहां संक्षेप में यही कहा जाता है कि पित्त भुक्तद्रव्यके साथ मिली हुई चर्ब्बी आदि पदार्थ को गलाकर छोटा छोटा कण करता है। इससे वह पदार्थ बहुत जल्दी शरीर में शोषित हो जाता हैं। पाकाशयके पाचक रसको तरह इसमें भी पचननिवारणी शक्ति है; उस शक्तिके प्रभावसे यंत्रस्थ भुक्तद्रव्य समूह नहीं सड़ता। इसके सिवाय पित्तमें विरेचन शक्तिभी है।

प्लीहा।

वजन और आकार।—प्लीहा एक वृहत् यंत्र है। यह उदर गह्वर के वाम पश्चात् अंश में अवस्थित है। उसके दहिने पाकाशय का प्रशस्त अंश है। साधारणतः इसका आकार पिष्टकाकार रङ्ग घोर बैगनी इसका आकार हरवख्त एकसा नहीं रहता, इसकी भीतर खूनके कमो वेशीसे आकार भी घटता, बढ़ता रहता है। साधारणतः इसकी लम्बाई ५ इञ्च, चौड़ाई ३।२ इञ्च और मोटाई १।। इञ्च और वजन ६।० औंस होगा। बुढ़ौती में इसका आकार और वजन कम हो जाता है तथा सविराम और कम्पज्वर

से अधिक बढता है यहांतक की कभी कभी कई पौंडतक बढ़ जाता है।

संख्या।—प्राय: मनुष्यको एक प्लीहा रहती है किन्तु किसी २ समय एक से अधिक अर्थात् छोटी छोटी कई प्लीहा मूल प्लीहाके नीचेकी तरफ लगी हुई रहती है। इसका आकार मटर सेलेकर अखरोट की तरह तक होता है।

क्रिया।—प्लीहाका प्रकृत कार्य्य अभीतक स्थिर नहीं हुआ है। परविशेष सन्दर्शन से स्थिर हुआ है कि भुक्त अन्नका परिपाक जैसे जैसे शेष होता रहताहै प्लीहाका आकार भी उसी हिसाब से बढता रहता है। थोडो देरके बाद फिर घटने लगता है। इसलिये बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि भुक्तद्रव्य में अण्डलाल नामका जो पदार्थ रहता है वह अन्न परिपाक के बखत वहांसे अन्तरित हो प्लीहामें संचित होता है। इससे प्लीहा बढती है तथा फिर शोणित में मिलनेसे प्लीहा कमहो जाता है। इसके सिवाय प्लीहासे खूनको श्वेत और लाल कणिका की उत्पत्ति होती है।

वृक्कद्वय (किडनिस् ।)

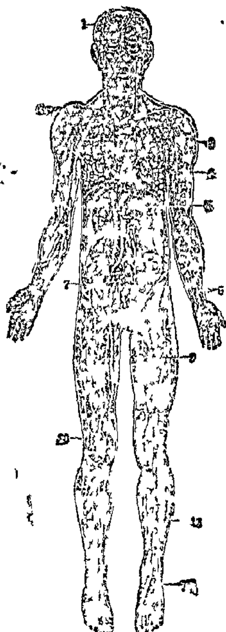
—:o:—

वजन और आकार।—इनकी संख्या दो। यह पन्थिमय यंत्र देखने में ठीक बहुत बड़ी सेमके बीजकी तरह हैं। यह कमरके भीतर मेरुदण्डके दोनों तरफ रहता है। इसका रङ्ग गुलाबी, लम्बाई ४ इञ्च, चौड़ाई २॥ इञ्च और मोटाई

१। इञ्च। पुरुषके वृक्कका वजन प्राय: ४॥ औंस, स्त्रीके वृक्कका वजन पुरुषसे कुछ कम होता है।

क्रिया।—वृक्क या मूत्रपिण्ड से मूत्र उत्पन्न होता है। यह ऐसे कौशल से बना है कि, शोणित का जलीय अंश इससे परिस्रुत और इसमें आकर सञ्चित हो फिर मूत्राशय में जाता है। मूत्राशय मूत्रपूर्ण होनेहीसे पिशाब की हाजत होती है।

परिमाण।—सारे दिनरात में एक सबल मनुष्य ५२॥ औंस अर्थात् प्राय डेढ सेर मूत्रत्याग करता है। अवस्था भेदसे इसमें तारतम्य दिखाई देता है। मूत्रसे रक्तका दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है, पसीनेसे भी यह कार्य्य साधित होता है। ग्रीष्मकाल में पसीना अधिक आता है इससे मूत्रका परिमाण कम हो जाता है, तथा फिर शीतकालमें पसीना कमहोनेसे मूत्रका परिमाण बढ़जाता है।



शरीरके भीतरी यन्त्र और शोणितनाली समूह।

5,6, हृदय 7, मूत्राशय। हाथोंके बारेमें पहिले कहचुके है।

वैद्यक शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

धात्री-विद्या।

MIDWIFERY.

धात्रीविद्या क्या है?—जिस विज्ञान और शिल्पशास्त्र की सहायता से समत्त्वावस्था या प्रसव के पहिले और प्रसवके वक्त तथा सूतिकावस्था में जननी और सन्तान के विषय की शिक्षा और उनके चिकित्सा कार्य्यमें पारदर्शिता लाभ होती है उसको धात्री विद्या कहते है। प्रसवकाल में धात्रीकी सहायता एकान्त आवश्यक है; इसलिये इसका नाम धात्रीविद्या रखा गया है।

त्रिकास्थि या वस्ति।—धात्रीविद्या मे ज्ञानलाभ करने वालों को पहिले वस्तिगह्वर और जननेन्द्रिय विषयों को सीखना चाहिये। इसीलिये यहां वही दो विषयों की आलोचना की जाती है। मेरुदण्ड और दोनो सक्थि अर्थात् दोनो अधःशाखाके बीचमें जो हड्डीका गह्वर है उसको त्रिकास्थि या वस्ति कहते है। यह चार हड्डियोंसे बनी है। यह चार हड्डी पृष्ठवंशमूलीय शंखावर्त्त और दो अनामिका है। पहिली २ हड्डी वस्तिके पीछे और दो अनामिका हड्डी इसके सामने और बगलमें है।

माप और परिमाण।—वस्तिके दो दरवाजे है; एक प्रवेश द्वार और दूसरा निर्गम द्वार। प्रवेश द्वार इसके उपरी अंशमें है इसकी परिधि प्रायः १६ इञ्च होगा। सन्तान भूमिष्ठ होनेसे पहिले इसी द्वारसे वस्तिगह्वर मे जाता है। इसके तीन व्यास है; (क) सामने और पीछे; इसकी लम्बाई ४। इञ्च, (ख) अनुप्रस्थ; इसकी लम्बाई ५। इञ्च; और (ग) तिर्य्यक; इसकी लम्बाई ५ इञ्च है। वस्तिके निम्नांश को इसका निर्गम द्वार कहते है। इसका व्यास सामने और पीछे अनुप्रस्थ। पहिले की लम्बाई ५ इञ्च और दूसरे को ४। इञ्च होगी।

स्त्री-वस्ति।



१, २, ३, ४ और ५, ६, वस्तिके भागत्रय, ७ पृष्ठवंशमूलीय अस्थि; इसके नीचेवाली चूडा गह्वावर्त्त; ८ और १०—११, वाम तिर्य्यक व्यास; १२—१३ दक्षिण तिर्य्यक व्यास; दोनो व्यासके संयोगविन्दु मे वाम और दक्षिण सूत्रपात में एक सीधी लकीर खींचने से अनुप्रस्थ व्यास होगा।

जननेन्द्रिय।



विवरण।—धात्री विद्याका मुख्य आधार जननेन्द्रिय है, तथा जीव सृष्टिका प्रधान कारण भी इन्द्रियही है। जिसके उपयुक्त कार्यके अभाव से जीवकी सृष्टि नहीं होती उसको जननेन्द्रिय कहते है। जननेन्द्रिय का दूसरा नाम उपस्थ है। जननेन्द्रिय के सिवाय जीवोत्पत्तिका दूसरा उपाय नही है। जननेन्द्रिय का सङ्ग प्रतिज्ञा पूर्व्वक परित्याग करने से जीवोत्पत्ति बन्द होती है। इस यन्त्रकी बनावट अति विचित्र है; यह कैसे अपूर्व्व कौशल से बना है और इसके अङ्ग प्रत्यङ्गोंका परस्पर सम्बन्ध और क्रियाविशेषकारिता शक्ति कैसी अनिर्व्वचनीय है कि जिसकी शक्तिमें ब्रह्माण्डके जीव सब अवश और सुग्धमानस हो पागवत बन्दर की तरह निरन्तर नाचता फिरता है। तथा इसीके प्रभाव से आनन्दप्रवाह, कर्म्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, दक्षिण्य, आस्तिक्य और मैत्री इस भूमण्डलमें नित्य विराजमान है। जननेन्द्रिय पुरुष और स्त्रीभेद से दो प्रकार है।

मेढ़ और मेढ़भूमि।—वस्तिकी दोनो अनामिका जहां परस्पर मिली है उसके उपर के प्रशस्त अंशको मेढ़भूमि कहते है। शिश्न इसी स्थानमें अवस्थित है। यही सङ्गम साधन की प्रधान इन्द्रिय है। मूल, देह और मुण्ड ऐसे इसके तीन अंश है। मूलभाग दो प्रवर्द्धन से दोनो शाखा और एक बन्धनी से वस्तिके साथ संयुक्त है। उपरवाले भागको लिङ्ग मुण्ड तथा मुण्ड और मूलके बीचवाले को लिङ्ग शरीर कहते है। शिश्न कई उत्थानशील तन्तुओंसे बना है। इन तन्तुके भीतर बहुतेरी

छोटी छोटी रक्तनाली है। चैतन्य होतेही इन सब रक्तनालियो में शोणित बड़े वेगसे धावमान होता है, इसीसे शिश्न उत्तेजित होता है। लिङ्ग मुण्डवाला अनुप्रस्थ छिद्र प्रस्राव द्वार है। मूत्रनाली मूत्राशय से आरम्भ हो यहीं आकर खतम हुई है।

अण्डकोष।—अण्ड दो ग्रन्थिमय यन्त्र है। यही दो यन्त्रोंसे पुरुष का शुक्र बनता है। यह मुष्क नामक दो चमड़े की थैलीमें निहित और वस्तिप्रदेश से रेतोरज्जु नामक दो रज्जु से लम्बित है। साधारणतः प्रत्येक अण्ड प्राय १॥ इञ्च दीर्घ है। इसका सम्मुख प्रथात् भाग १० इञ्च और अनुप्रस्थ अंश ३।४ से १ इञ्च होगा। वजन ३।४ से १ औंस। दो अण्डकी बीचमें सचराचर एकको अपेक्षा दूसरा कुछबड़ा होता है।

शुक्रकोष।—अण्डकोष में पुरुष का शुक्र बनता है, पाश्चात्य शरीरतत्त्ववित् पण्डित यह कहते है कि शुक्र यहांसे दोनो अण्डकोष के ऊपरवाली दो थैलीमें जाता है, यही दो थैलो को शुक्रकोष कहते है, तथा इन्ही दो कोषोंमें पुरुषका शुक्र संग्रहीत होता है। शुक्र उज्ज्वल श्वेतवर्ण तरल पदार्थ तथा लसदार और इससे एक प्रकार विचित्र गन्ध होती है। शुक्रमें एक प्रकार अगण्य सूक्ष्म जीव विद्यमान है। यह जीव प्राय १।५०० इञ्च लम्बा है। मैथुन कालमें शुक्रकोष से शुक्र प्रक्षेपक नालीमे यह निक्षिप्त होता है।

स्त्री-जननेन्द्रिय।

भग, भग्नांकुर, योनि, भगोष्ठ, जरायु, अण्डाधार आदि की समष्टी को जननेन्द्रिय कहते है। यह अन्तः और वाह्य ऐसे दो

भागों में विभक्त है। इसमें भग, भगांकुर, बृहदोष्ठद्वय, क्षुद्रोष्ठद्वय कामाद्रि, प्रसव द्वार, सतीच्छद, योनि आदि बाह्य जननेन्द्रिय तथा अण्डाधार, डिम्बवाही दो नाली और जरायु यह तीन की अन्तर्जननेन्द्रिय कहते हैं। इ नो स्तनोंके साथ यद्यपि जननेन्द्रिय का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, तथापि यह दो उसके अन्तर्गत नहीहै।

कामाद्रि। भगके ऊर्द्धांश को कहते है। युवावस्था में यहां लोम पैदा होता है।

योनि। यह एक नलाकार गह्वर है। यह जरायुसे भगतक फैला है। इसका निम्नांश संकीर्ण और ऊर्द्धप्रसारित है। योनिके सामने मूत्राशय और प्रसव द्वार, पीछे सरलान्त्र और विटप, दोनो तरफ प्रशस्त दो बन्धनी और ऊपर यह जरायुसे संयुक्त है।

बृहदोष्ठद्वय।—दोनो बृहदोष्ठ योनिमुख के दोनो तरफ स्थित है। इसका बहिर्देश त्वक् और अभ्यन्तर भाग श्लैष्मिक झिल्लिसे आवृत है। शैशवावस्था में यह दो ओष्ठका भीतरी अंश परस्पर मिला रहता है। फिर पुरुष सङ्ग और सन्तान पैदा होनेसे अलग हो जाता है।

क्षुद्रोष्ठद्वय। बृहदोष्ठद्वय के भीतर दोनो क्षुद्रोष्ठ है। दोनो तरफ के क्षुद्र ओष्ठ भग्नांकुर के पास आकर दो भाग में विभक्त हुआ है।

भग्नांकुर। ऊपर दोनो बृहदोष्ठका जहां सम्मिलन हुआ है उसके प्राय आध इञ्च नीचे भग्नांकुर है। यह शिश्नकीतरह उत्थान शील तन्तुओं से बना है तथा रतिकाल में उत्तेजित होता है।

सतीच्छद।—प्रसव द्वारके नीचे योनिमुख है। शैशवावस्था में वह एक पतली झिल्लि से आवृत रहता है, उसको सतीच्छद कहते है। पुरुष संगसे सतीच्छद कट जाता है; किसी

का सतीच्छद इतना कडा होता है कि बिना काटे पुरुष सङ्ग नहीं कर सकता है।

विटप। यह योनिमुख के पीछे और मलद्वारके सामने करीब १॥ डेढ इञ्च लम्बा है।

स्त्री जननेन्द्रिय—छेदित।



क, ख, ख, प. सरलांत्र। प, घ, ग, जरायु। ड योनि नाली। ध. प्रस्राव द्वार। ग, गुह्योष्ठ। ठ. भगांकुर। ट, मूत्रप्रणाली। ए, ङ, मूत्राशय। भ मध्यस्त बन्धनी। य, पक्वाधार। फ, ब, य, ब. मद्यावर्त्त।

जरायु। यह ठीक बड़े अमरुद की तरह है। सामने और पीछेका अंश थोड़ा चिपटा तथा भीतर पोला है, इसीको गर्भाशय कहते हैं; पुरुष का शुक्र और स्त्रीके अण्डसंयोगसे इस यन्त्रसे भ्रूण उत्पन्न और क्रमशः पुष्ट हो प्रसवकालमें यहांसे बाहर निकलता है।

विभाग और विस्तार।—जरायु तीन अंश में विभक्त है—ऊर्द्ध, मध्य और निम्न। इसका ऊर्द्धांश मुण्ड, मध्यांश देह और निम्नांश ग्रीवा नामसे अभिहित है। जरायु वस्तिगह्वर में योनिके ऊर्द्धांश मे अवस्थित है तथा इसके दोनो तरफ दो बन्धनी इसको आबद्ध किये हुए है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे सरलांत है। कुमारियों का जरायु १॥ इञ्च लम्बा तथा जिन्हे एकबार सन्तान प्रसव हुआ है उनका जरायु ३।४ इञ्च लम्बा होता है।

डिम्बवाही नाली। जरायुके ऊपरवाले दो कोनेसे यह दो नाली उत्पन्न हो किञ्चित् वक्रभावसे अण्डाधार तक विस्तृत है। हरेक नालीकी लम्बाई ३।४ इञ्च होगी। इसका भीतरी भाग पोला तथा नालीका शेषांश लालकी तरह बना हुआ है।

अण्डाधार। जरायुके दोनो पार्श्वकी प्रशस्त दोनो बन्धनीके पीछे दो अण्डाधार है। यह देखनेमे ठीक अण्डेकी तरह है। प्रत्येक अण्डाधार प्राय दो इञ्च लम्बा पौन इञ्च चौड़ा और आध इञ्च मोटा है। ऋतुकाल में इसका आकार बढ़जाता है और गर्भावस्थामें दूना आकार हो जाता है। अण्डाधारके भीतर असंख्य अण्ड निहित है।

स्तनद्वय।—दोनो स्तन जननेन्द्रियके अन्तर्गत न होनेपर भी इन दोनोका घनिष्ट सम्बन्ध देखनेमें आता है; इसी लिये यहां उसके बारेमें थोड़ा लिखते है। दोनो स्तन अर्द्ध गोलाकार, इसके ऊपरीभागमें क्षुद्र वर्त्तुलाकार दो पदार्थ है; इसीको चूंची कहते

है। दोनो स्तन छातीके दोनो तरफ तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ पञ्जरास्थि आवरणकर उत्पन्न होता है। इसके भीतर बहुतेरी दूध निकालनेवाली ग्रन्थि है। यौवनके प्रारम्भमें दोनो स्तन कठिन और छोटा रहता है; फिर उमर वृद्धिके साथ साथ इसका भी आकार बढ़ता रहता है; तथा गर्भावस्थामें अत्यन्त स्फारित और पीनोन्नत हो जाता है। प्रसवके बाद स्तन शिथिल और झुक जाता है।

ऋतु और गर्भाधान।

हिन्दू और पाश्चात्य मत।—ऋतु और गर्भाधान सम्बन्ध में हिन्दू और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रमें भिन्न प्रकार विवरण दिखाई देता है। यह विवरण भिन्न होनेपर भी मूल विषय में दोनोका सादृश्य है। इसीलिये यहां दोनो मतोंकी आलोचना करते है। हिन्दू आयुर्वेदकारोंमें सबसे अधिक इस विषयकी आलोचना महर्षि चरक और सुश्रुतने की है। यहां उनके ग्रन्थका वही अंश संग्रह किया जाता है।

शुक्र। जो पदार्थ स्त्रीमें समाहित हो गर्भ पैदा करता है उसे पण्डितगण शुक्र कहते है। शुक्रमें वायु अग्नि, भूमि और पानी यह चार महाभूतका अंश विद्यमान है तथा यह मधुरादि छ रसोंसे उत्पन्न होता है।

शुक्र, शोणित और जीव कुक्षिगत हो संयुक्त होनेहीसे उसको गर्भ कहते है। अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, पानी और भूमिके

विकृतिको गर्भ कहते हैं, यही गर्भ चेतनाका अधिष्ठान है। इसी चेतनाको गर्भकी छठी धातु कहते है। बाल्यवस्था अतिक्रम कर युवावस्था मे स्त्रियोंके अनेक भावोंमें परिवर्त्तन दिखाई देता है। युवावस्थामें दोनो स्तन पीनोन्नत योनि विवर्द्धित और वस्ति-लोमसे व्याप्त होती हैं। जरायु कोषसे पतला और साफ रक्त निकलता है। इसी रक्तको आर्तव या पुष्प कहते है, चलित भाषामें इसको स्त्रीधर्म कहते हैं

स्त्रीधर्म्म।—प्रति मासमें यह रक्त निकलता। रक्त यदि शश रक्त या लाहके पानीकी तरह हो और वस्त्रादि में दाग न लगे तो निर्दोष रक्त जानना, यह रक्त ४।५ दिनतक स्थायी रहता है। इन सब नियमोंका व्यतिक्रम होनेसे रजोदुष्टि स्थिर करना। रोग शोक वर्जित परिपुष्टांगी स्त्री की प्रायः बारह वर्ष अतिक्रम होनेसे रजःप्रवृत्ति होता है तथा यह पचास वर्षके बाद बन्द होता है। शरीरमें खराबी होनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजो निवृत्ति हो जाती है। रजःप्रवृत्तिके पहिले दिनसे सोलहवें दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। यही काल गर्भ ग्रहणका उपयुक्त काल है। प्रकृतिभेदसे स्त्रियोंके ऋतुकालमे भी हेरफेर होता है अर्थात् किसी किसी स्त्रीको सोलह दिनतक गर्भ ग्रहण की शक्ति नही रहता है। सूर्य्य अस्त होनेसे जिस तरह पद्मिनी मूद्रित होता है, वैसही ऋतु-काल अतीत होनेसे नारीका जरायु सङ्कुचित हो जानेसे गर्भ ग्रहण-की शक्ति नही रहती। ऋतुकालमें स्त्रीगण अपेक्षाकृत अधिक सम्भो-गाभिलाषिणी होती हैं; यह समय प्रकृत रतिकाल है। उसर भूमिमें बीज डालनेकी तरह और समयका शृङ्गार निरर्थक होता है।

ऋतुमती।—यह आर्तवास्रवणीको ऋतुके पहिलेही दिनसे ब्रह्मचर्य्य रहना चाहिये। दिवानिद्रा, अञ्जन, अश्रुपात,

स्नान, अनुलेपन, तैलादि मर्द्दन, नखच्छेदन, धावन, अतिशय हमना, बहुत बोलना, तेज आवाज सुनना, अवलेखन, वायु सेवन, और परिश्रम उनको त्यागना चाहिये। यह सब विधि पालन न करनेसे गर्भ नानाप्रकारसे दूषित हो जाता है तथा उस गर्भमें सन्तान पैदा होनेसे वह नानाप्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहती। जिसका ब्यौरा नीचे सक्षेपमें दिया जाता है।

विशेष विशेष रोग।—ऋतुमतीके दिवानिद्रासे भावी सन्तान निद्राशील, अञ्जन लगानेसे अन्धा, अश्रुपातसे विकृति दृष्टि, स्नानानुलेपनसे दुःखशील, तैलादि मर्द्दनसे कुष्ठो, नख छिदनसे कुनखी, धावनसे चञ्चल, अधिक बोलनेसे प्रलापी ऊंचा शब्द सुननेसे बधिर, अवलेखनसे खलमति, वायुसेवन और श्रमसे उन्मत्त तथा अधिक हसनेसे सन्तानको दात, ओठ, तालू और जीभ श्यामवर्ण होते है। अतएव ऋतुमती स्त्री सर्वतोभावसे यह सब त्याग दें। ऋतुके तीन दिन उनको कुशासनपर सोना, करतल अथवा पत्तलमें हविष्यान्न भोजन और स्वामी सहवास बन्द करना चाहिये।

ऋतुस्नाता।—ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नानकर सुन्दर और पवित्र वस्त्रालङ्कार धारण और स्वस्तिवाचन पूर्व्वक सबसे पहिले भर्त्ताका दर्शन करें। स्वामी न उपस्थित होतो सूर्य्यको देखना, इसका तात्पर्य्य यह है कि ऋतुस्नानकर रमणी जैसे पुरुष को देखेगी वैसेही सन्तान होगी। इसके बाद अब गर्भाधान।

गर्भाधान।—भर्त्ता एकमास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर भार्य्याके ऋतुकालके चौथे दिन घी दूध और शालिधान्यका भात भोजन करे तथा भार्य्या एक मास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर उस दिन तेल मर्द्दन अधिक उरदका द्रव्य भोजन करें, फिर भर्त्ता वेदादिमें विश्वास कर पुत्रकामी हो उसी रातको अथवा षष्ठ,अष्टम

या द्वादश दिनको भार्य्यासे उपगत होवे। ऋतुकालके चौथे दिन से बारवें दिनतक उत्तरोत्तर जितने दिन पर समागम हो सन्तान उतनीही सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यशाली और बलशाली होती है। कन्याकी इच्छा हो तो पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश दिन गमन करना चाहिये। तेरहवें दिनका समागम अवैध है यहां यह याद रखना आवश्यक है कि पुरुषाभिलाषिणी कामातुरा व्याधिहीना स्त्रीके साथ सञ्जातहर्ष, व्याधिहीन रतिज्ञ पुरुषका ऋतुकाल संसर्ग होनेसे अपत्योत्पादन इच्छाफलवती होती है। क्लष्ट जल-सिक्त उपयुक्त गुणसम्पन्न क्षेत्रमें यथासमय में निर्दोष बीज वपन करनेसे जैसे उसमेंसे अङ्कुर निकलता है, वैसही अदोष योनिमें यथासमय अदोष शुक्र आहित होनेसे गर्भोत्पत्ति अवश्य होती है।

अभिगमन।—ऋतुकालका संसर्ग नानाप्रकारके अनर्थका निदान है। ऋतुके पहिलेदिन गमन करनेसे पुरुषका आयुक्षय होता है। उसमें यदि गर्भ हो तो गर्भस्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी वैसही फल होता है, अथवा सूतिका गृहमें ही सन्तान मरजाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे वही फल अथवा सन्तान अपूर्णाङ्ग या अल्पायु होती है। चौथे दिन गमन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। पर जबतक शोणित स्राव होता रहे तबतक बीज प्रविष्ट होनेमें कोई फल नहो होता। जैसे नदीके स्रोतमें कोई द्रव्य डालनेसे बह जाता है, बीजभी वैसही गर्भकोषमें न जाकर प्रत्यावृत्य होता है। इसलिए ऋतुकालके तीन दिन गमन नहो करना चाहिये। ऋतुका १२ वां दिन बीत जानेसे फिर एक महीनेके बाद गमन करना उचित है। इस नियममें सन्तान पैदा हो तो वह सन्तान

रूपवान, महा बलवान, बुद्धिमान, आयुष्मान, पितृपरायण, धनवान और सत्पुत्र होता है।

वर्ण और चक्षु।—गर्भोत्पत्ति कालमें तेजोधातु अधिकाश जलधातुके साथ मिलनेसे गर्भ गौर वर्ण होता है; अधिकाश पार्थिव धातुके साथ मिलनेसे गर्भ कृष्णवर्ण होता है। अधिकाश पृथिवी और आकाश धातुके साथ मिलनेसे कृष्ण श्याम और अधिकाश जलीय और आकाश धातुके साथ मिलनेसे गौर श्याम होता है। कोई कोई कहते हैं कि गर्भावस्थामें गर्भिणी जिस रङ्गका द्रव्य आहार करती है सन्तान भी वही रङ्गकी होती है। तेजदृष्टिशक्तिके साथ न मिलनेसे सन्तान जन्मान्ध होती है। तेज शोणितका आश्रय ले तो सन्तान रक्ताक्ष होती है। पित्तका आश्रय लेतो चक्षु पीतवर्ण; कफका आश्रयलेतो शुक्लाक्ष और वायुका आश्रय लेतो विकृताक्ष (टेरा) होती है।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।—जिस गर्भका शुक्र और शोणित, आत्मा आशय अर्थात् भ्रूणोत्पत्ति स्थान (जरायु क्षेत्र) और काल यह सब दोष वर्जित हो तथा गर्भिणीके आहार विहार मे कोइ दोष न होतो वह अदुष्टशुक्र शोणित सम्भूत गर्भ सब्वतो भावस सब अवयव सम्पन्न हो प्रसूत होता है। अप्रजा अर्थात् अवन्ध्या स्त्रीका योनि या जरायु का दोष, मानसिक विविध अशान्ति या क्रोध, शुक्र या शोणितकी खराबी आहारादि का अत्याचार अकाल योग किम्वा व्याधि आदिसे देरमें गर्भ धारण होता है।गर्भस्रावका विषय अति भयानक है, इसमें एक रहस्य है। रुक्षान पानादिसे गर्भाशय की वायु कुपित हो किसी किसी स्त्रीका ऋतुशोणित बन्द हो ठीक गर्भका लक्षण प्रकाश होता है। बहुतेरे लोग इसे गर्भ स्थिर करते हैं, पर थोड़े दिन बाद जब

शोणित अधिक सञ्चय होता है तब अथवा अग्नि या, सूर्य्य ताप, श्रम, क्रोध, शोक, अथवा उष्ण अन्नपानसे परिस्रुत हो जाता है।

पुत्र कन्या और बहु सन्तान।—यदि बीज अर्थात् मिलित शुक्र शोणित में रक्तका भाग अधिक होतो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो पुत्र पैदा होता है कोई कोई कहते हैं कि चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि युग्म दिनोंमें गमन करनेसे पुत्र और पंचम, सप्तम, नवम आदि अयुग्म दिवसमें कन्या पैदा होती है। वायु कुपित हो बीजको दो भागमें विभक्त करें तो यमज सन्तान होती है। इस दो भागमें यदि एक भागमें रक्त अधिक होतो कन्या और दूसरे भागमें शुक्र अधिक होतो पुत्र जन्मता है या दोनो भागो में रक्तका भाग अधिक होतो दो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो दो पुत्र होता हैं। अति प्रवृद्ध वायु जब बीजको कई विभागोंमें विभक्त करेता बहु सन्तान प्रसव होती है। प्रकुपित वायुकर्तृक यदि बीज विषमांशमें विभक्त हो अर्थात् एक अंशमें अधिक बीज और दूसरे अंशमें कम तथा गर्भिणी यदि उपयुक्त आहार प्राप्त न हो और उसका कोई धातुका क्षय या अधिक स्राव होतो गर्भ सूखजाता है;—इससे प्रसवके निर्द्दिष्ट समयसे अधिक दिनपर प्रसव होता हैं।

नपुंसक।—अब नपुंसकादिके जन्मका कारण लिखता हूं। उपरोक्त बीज में शुक्र और शोणितका भाग बराबर हो तो स्त्री या पुरुष चिह्नयुक्त सन्तान होती है। वायु कुपित हो गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय नष्ट करनेसे वह प्राणी-पवनेन्द्रिय होता है। वायुकर्तृक गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय द्वार विघटित होनेसे संस्कारवाही सन्तान पैदा होती है। यदि पितामाता क्षीण बीज या अल्प बीज-विशिष्ट दुर्ब्बल और प्रहर्ष

अर्थात् मैथुनमें अल्प हर्ष-विशिष्ट होनेसे वह पुत्र या कन्या नरषण्ड या नारीषण्ड होते है। माताकी मैथुनको अनिच्छा और पिताका बीज दुर्ब्बल होनेसे सन्तान ठेढो (वक्र) होती है। पिता माता ईर्षाभिभूत हो मैथुनमें मन्द होनेसे सन्तान ईर्षापरतन्त्र होती है। जिस पुरुषका दोनो कोष वायु और अग्निदोषसे नष्ट हो जाता है उसको वातिक षण्ड कहते है।

विशेष विशेष इन्द्रिय।—गर्भका शरीर माता आदिसे उत्पन्न होनेपर भी वह पांच महाभूतका विकार है, कारण जीवदेह पंच महाभूतात्मक है। किस महाभूतसे क्या उत्पन्न होता है, वह क्रमशः विवृत होगा। शब्द, श्रोत्र, लघुता, सूक्ष्मता, और छिद्र। यह सब आकाशसे उत्पन्न होता है। स्पर्शनेन्द्रिय, रुक्षता, श्वासप्रश्वास क्रिया, धातुव्यूह और शारीरिक चेष्टा वायुसे उत्पन्न होता है। रूप दर्शनेन्द्रिय प्रकाश, परिपाक और उष्णता यह सब अग्निसे उत्पन्न है। रस, रसेन्द्रिय, शैत्य, मृदुता, स्नेह, और क्लेद पानीसे उत्पन्न है। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गुरुत्व, स्थैर्य्य, और मूर्त्ति यह सब पृथिवीसे उत्पन्न है। जगतमें जितने भाव है पुरुषमें वही सब भाव दिखाई देते हैं। पण्डितगण जगत् और पुरुषके भावका एकही रूप बताते है। इसी तरह तृतीय मासमें गर्भ और भी कई अङ्ग और अंगावयव एकहीवार उत्पन्न होतेहै। इसके सिवाय कालान्तरमें और भी कई भाव उत्पन्न होते है। दांत, स्तनोन्नति अधोलोम, श्मश्रु और कक्षलोम कालविशेषमें उत्पन्न होते है। बुद्धि, रूप, वाक्शक्ति, शुक्र और गमन धावनादि भावोंकी उत्पत्ति भी क्रमशः होती है।

—•—

भ्रूणका क्रमस्फ़ुरण।

गर्भको सब इन्द्रियां उत्पन्न होनेपर शिशुको अन्तःकरण का दर्द अनुभव करनेकी शक्तिका सञ्चार होताहै। इन्हो सबसे गर्भ स्पन्दित होता रहता है। इसको लोग सचराचर गर्भ यन्त्रणा कहते है। वास्तवमें इस दर्दकी तरह भयङ्कर दर्द दूसरा नही है। इसवक्त जीव गर्भ यातनासे व्याकुल हो भगवानको स्तुति करता है। गर्भस्थ शिशुका हृदय माताका और माताके हृदयके साथ शिशुका घना सम्बन्ध है इसीलिये वृद्धगण गर्भको द्वैहृद्य कहते हैं। इसवक्त गर्भिणीको गर्भके प्रतिकूल आहार विहारादि त्याग करना चाहिये कारण इसवक्त गर्भके प्रतिकूल कार्य्यादिसे गर्भका नाश या विकृति होनेका डर है।

इसवक्त इन्द्रियोंको कोई कोई विषय भोगको इच्छा होती है। यह इच्छा पूर्ण होनेसे सन्तान गुणवान और आयुष्मान होती है। किन्तु माताको यह इच्छा यदि पुरी न होतो गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, खञ्ज, वामन, विकृताक्ष अथवा अन्ध होती है। अतएव गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अभिलषित द्रव्य अवश्य देना उचित है।

चौथे महीनेमें गर्भ स्थिर होता है; इससे गर्भिणीका शरीर इसवक्त भारी हो जाता है। पांचवे महीने गर्भका मांस और शोणित कुछ बढता है। इसोलिये गर्भिणो पांचवे महीने बहुत दुबली हो जाती है। छठे महीनें और महोनेको अपेक्षा भ्रूणका बल और वर्णका ह्रास होता है। सातवें महीने गर्भके सब भावोंको वृद्धि हो गर्भिणोके आकारमें क्लान्ति दिखाई देती

है। आठवें महीने गर्भ और माता रसवाहिनी शिरा समूहोंसे परस्परका ओज ग्रहण करते हैं। इसवक्त गर्भिणी वारवार ग्लानि युक्त मोटी ताजी होती है। ओजोधातुके अनवस्थितत्वसे यह विपद होनेको सम्भावना है। इसीसे पण्डितगण अष्टम मासको गर्भका अहितकर निर्देश करते हैं। आठवां महीना पूरा हो नवें महीनेके पहिले दिनसे दशवें महीने तक प्रसवका मुख्यकाल है। इससे अन्यथा होतो विकृति स्थिर करना।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।

गर्भस्राव।—पहिले कह आए है कि किसी तरह की सांघातिक पीडा होनेसे अकसर गर्भस्राव हो जाता है। गर्भाधानके बाद २८ हफ्ता पूर्ण होनेके पहिले भ्रूण निकलतो उसे, गर्भस्राव कहते है। इसके बाद शिशु भूमिष्ठ होनेसे प्रायः शिशु मरता नहो है, इसे अकाल प्रसव कहते है। बहु प्रसविनी स्त्रीको गर्भस्राव अधिक होता है।

कारण।—गर्भस्राव नाना कारणोंसे होता है; जरायुके भीतरका रक्तस्राव हो तो गर्भ नहीं ठहरता। भ्रूणकी मृत्युभी गर्भस्रावका अन्यतम प्रधान कारण है। उपदंश, चेचक आदि रोगोंमें भी गर्भस्राव होता है। उत्कट परिश्रम या मानसिक अवसाद, अत्यधिक वमन, अधिक सुरापान, विषद्रव्य सेवन, गर्भके उपर अकस्मात् गुरुतर आघात, जरायु प्रदाह किम्बा स्थानच्युति आदि कारणोंसे भी गर्भस्राव की सम्भावना है।

उपर जितने कारणोंका उल्लेख किया गया है, उनसेसे कोई कोई पूर्व्वप्रवर्त्तक और कोई कोई उत्तेजक कारण हो जाते हैं। पहिलेहीसे गर्भस्रावके लक्षण जिसमें रहते है, उसको थोड़ेही कारणसे गर्भस्राव हो जाता है। पर पूर्व्व प्रवणता न रहनेसे गर्भ सहजमें नष्ट नहो होता।

लक्षण।—गर्भस्राव होनेसे पहिले जरायु सङ्कुचित होता हैं, तब गर्भिणीके पेटमें उत्कट दर्द होता है साथही इसके अथवा थोड़ी देर बाद जरायुसे शोणितस्राव होना आरम्भ होता है। शोणित कभी थोड़ा थोड़ा, निकलता है इस दशामें गर्भिणीको अवस्था सङ्कटापन्न हो जातीहै। कभी पहिले दो तीन दिन थोड़ा थोड़ा शोणित निकलकर क्रमश: कमहो बन्द होजाता है। तब लोग समझते है कि गर्भिणी आराम हो गई, फिर एकाएकी शोणित दिखाई देता है। फलत: शोणितस्राव और दर्द यह दोनो गर्भस्रावके प्रधान लक्षण हैं। इन दो लक्षणोंमें एक भी दिखाई देनेसे चिकित्सा करना उचित है।

माता और शिशु।—गर्भावस्था गर्भिणीके हकमें बड़ा विषम काल है। भ्रूणका जन्म और क्रमस्फुरणसे लेकर जबतक भूमिष्ठ न हो तबतक गर्भिणीको विशेष सावधानीसे रहना चाहिये। सामान्य त्रुटि या अनियम, अथवा थोड़ा अत्याचारभी गर्भिणी और साथहो गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य नष्ट कर सकता है। इसीलिये इस वक्त गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहे इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना चाहिये। इससे केवल गर्भिणीका मङ्गल है सो नहो गर्भस्थ शिशुका भी स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शिशु जबतक गर्भमें रहता है तबतक माताके शोणितसे ही उसका पोषण होता है; अर्थात् शोणित माताके शरीरसे सन्तानके शरीरमें जाकर उसको

जीवन रक्षा होती है। सुतरां इससे स्पष्ट जाना जाता है कि माताका शोणितही शिशुके जीवनशक्तिका एकमात्र प्रस्रवन है। वही प्रस्रवन दूषित होनेसे शिशुका स्वास्थ्य नष्ट और कहांतक कि जीवन विपन्न होनेकी सम्भावना है इससे स्पष्ट जाना जाता है कि गर्भावस्थामें गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहनेसे गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और उसके क्रमस्फुरण में कोई तरहकी बाधा नहीं होगी। गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रखने में पथ्य, परिश्रम, निद्रा आदि कई एक विषयमें ध्यान रखना उचित है।

भोज्य।—पहिले आहारके सम्बन्धमें कहते हैं;—गर्भावस्थामें हलका और पुष्टिकर द्रव्य आहार करना उचित है। गर्भिणीका पथ्य जितना सुपाच्य और पुष्टिकर हो उतनाही अच्छा है। मांस, टटका पका फल-मूलसे विशेष उपकार होता है, हमारे देशमें सदराचर जो सब कन्दमूल मिलते हैं उनमे आलू, गोभी, बैगन, मटरकी छीमी; चीट और केला, कमलानीबू, तरबूज, शरीफा, अमरुद, आम, जामुन आदि व्यवहार किया जा सकता है। मछली कम आहार करनेमें बाधा नहीं हैं, यदि कोई मांस बिना खाये न रहसके उनको थोड़ा मांस भी देना चाहिये। मांसाहारसे गर्भिणीका स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना है; इससे जहांतक बने मांस न खावाही अच्छा है। मरे प्राणीके मांससे गर्भस्थ शिशुका कोमल शरीर नहीं बन सकता; इसलिये शरीरतत्त्ववित् पश्चिमोंने गर्भावस्थामें मांसाहार मना किया है। बहुतेरी स्त्रियां गर्भावस्थामें अधिक खट्टा खाती हैं, यह सर्वथा बन्द करना चाहिये। यदि बिना खट्टा खाये न रहसके तो थोड़ी पुरानी इमली आदि खट्टा खानेको देना चाहिये। पीनेके द्रव्यमें शुद्ध पानी और दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका उत्तेजक

पेय बन्द रखना ; यहांतक कि यदि किसीको चाह पीनेका अभ्यास हो तो वहभी त्यागना चाहिये।

लघु आहार।—बहुतेरोंका यह ख्याल है कि गर्भिणीको जब अपने शरीरके साराससे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा और पोषण करना पड़ता है तब उसका आहार बढ़ाना चाहिये। बहुतेरे इसके अनुसार काम कर भ्रूण और माताका नाना प्रकार अमङ्गल कर बैठते हैं। यह धारणा जैसी भ्रमसंकुल है वैसही अनिष्टकर है। इसीलिये गर्भावस्थामें परिमित आहार आवश्यक है ; इससे माता और शिशु दोनोंके शरीरकी रक्षा और भ्रूणके स्फूर्ती साधनोपयोगी सब प्रयोजन सिद्ध होते है। अतएव गर्भिणीको लघु पुष्टिकर और परिमित द्रव्य भोजन देना चाहिये।

पेय।—हमारे देशमें गृहस्थके स्त्रियोंमें सुरा आदि मादक द्रव्य सेवन की प्रथा नहीं है। पर पाश्चात्य देशीय बहुतेरी कुल-कामिनी हरवखत और कहांतक कि गर्भावस्थामें भी सुरापान करती हैं। इसीसे उनकी सन्तान प्रायः उन्मत्त और दुर्नीति-परायण होती है। अतएव गर्भावस्थामें किसी तरहका मादक द्रव्य सेवन करना उचित नहीं है ; और कहांतक कि चाह काफीतक पीना मना है। शुद्ध पानी और दूधही गर्भिणीका एकमात्र पेय है।

कदर्य्य रुचि।—हमारे देश और विलायतमें भी बहुतेरी गर्भिणीकी जघन्य द्रव्यादि सेवनकी इच्छा बलवती होती है। कोई जली हुई मिट्टी, कोई राख आदि पदार्थ बड़ी रुचिसे खाती है। यह बड़ा अन्याय है ; कारण ऐसे द्रव्य आहार करनेसे गर्भिणी पाण्डु, कामला और अजीर्ण आदि पीड़ासे पीड़ित होती है।

शौचाचार।—गर्भावस्थामें शौचाचारके विषयमें विशेष ध्यान रखना आवश्यक है; कारण इस दशामें शौचाचार का सामान्य व्यतिक्रम होनेसे गर्भिणीको नानाप्रकारकी पीड़ा होनेकी सम्भावना है। इस देशकी औरतें शौचाचार में जैसी सावधान हैं, अन्य देशकी औरतें वैसी सावधान देखनेमें नहीं आती। यहांकी औरतें अशौच अत्यन्त दूषणीय मानती है। शौचाचार में स्नान ही प्रधान है। इनसे त्वक् और लोमकूप रोज साफ होनेसे शोणित भी साफ रहता है। स्वस्थ शरीरमें रोज स्नान करनेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। पर अस्वस्थ शरीरमें विशेषकर मलेरियाके विषसे जिनका शोणित दूषित हो गया है उनको रोज स्नान करना उचित नहीं है। अवस्था और सहने पर हफ्तेमें दो दिन या तीन दिन स्नान करना अच्छा है।

वायु और परिश्रम।—गर्भावस्थामें अपना और शिशुका शोणित शुद्ध रखनेके लिये साफ हवा सेवन करना उचित है। स्वास्थ्यरक्षाके हकमें यही जीवनका प्रधान उपाय है। आहार न कर आदमी २४ दिनतक रह सकता है पर साफ वायुके बिना एक मुहूर्त्त भी नहीं बच सकता। अतएव रहनेके घरमें सर्वत्र साफ हवाका चलाचल हो इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना उचित है। मकानके सब घरोंकी अपेक्षा सोनेके घरमें साफ हवाका ख्याल रखना आवश्यक है। मकानमें सर्व्वत्र साफ हवा सञ्चालित होनेसे शिरःपीड़ा, अजीर्ण, दृष्टिदौर्बल्य और नानाविध स्नायविक पीड़ा नहीं होगी। हम लोगोंके सहज शरीर में जब साफ वायु इतनी उपकारी है तब गर्भिणीके हकमें वह तो अधिक आवश्यक है इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं है। अतएव क्या दिन क्या रात, क्या जाग्रत, क्या निद्रित इरवक्त और सब अवस्थामें गर्भिणीको साफ हवामें रखना चाहिये।

व्यायामादि।—जीवका जीवन धारणके निमित्त किसी तरहका परिश्रम या व्यायाम आवश्यक है; इससे शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्ग और यन्त्र समूहों की उन्नति और स्फूर्त्ति होती है और साथही स्वास्थ्य भी ठीक रहता है अतएव परिश्रम सुख स्वास्थ्य और स्वच्छन्दता में विशेष उपयोगी है। जो परिश्रम न कर आलसीकी तरह बैठे रहते हैं उनका जीवनही वृथा है। सहज शरीरमें सब प्रकारका व्यायाम करना चाहिये, पर गर्भिणीको श्रमसाध्य गृहस्थीका काम अवश्य करना चाहिये। इस देशमें गवई गांवकी औरतें स्नान शौचकर्मके लिये मैदानमें जो जाया करती हैं यह अच्छी प्रथा है। इससे विशुद्ध वायु सेवन और सामान्य परिश्रम दोनो उद्देश्य साधित होते हैं।

विश्राम और निद्रा।—विश्रामविशेषका निद्रा स्वास्थ्य-रक्षाका एक प्रधान उपायहै। मस्तिष्क और शरीरके सब यन्त्रोंको दिन रातमें एक दफे विश्राम आवश्यक है। परिश्रमके अनुसार विश्राम भी स्थिर करना चाहिये अर्थात् परिश्रमके परिमाणसे उस-का उतनाही विश्राम चाहिये। कोई रात दिनमें ६ घण्टा कोई ८ घण्टा सोनेसे अपनेको स्वस्थ मानतेहै। सहज शरीरमें अनिद्रा और अतिनिद्रा दोनोंही जैसी अनिष्टकर है, गर्भावस्थामें यह और भी अनिष्टकर है। सचराचर ६से ८ घण्टातक सुनिद्रा होनेसे ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, इससे अधिक निद्रासे शरीर खराब होनेका डर है।

मानसिक व्यवस्था।—निद्रा, आहार आदि व्यापारसे गर्भिणीको जैसा विशेष सतर्क रहना आवश्यक है, मानसिक अव-स्थाके तरफ भी इनको वैसही दृष्टि रखना चाहिये। सबसे अधिक मानसिक शान्तिके लिये एकान्त आवश्यक है। चित्त स्थिर और

मन सर्व्वदा शान्तिमय रहनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु दोनोका स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसलिये भावीजननीको सर्वदा क्रोधादि रिपु और जिस कार्य्य या दृश्यसे मानसिक उद्वेग और उत्तेजना हो उससे दूर रहना चाहिये। गर्भिणीका आतंक, उद्वेग और उत्तेजनासे अक्सर शिशुका विशेष अनिष्ट होता है। इन सब व्यापारसे माताके स्नायुमण्डल में हटात् प्रचण्ड विप्लव होता है तथा साथही शिशुके स्नायुमण्डलमें भी उत्पन्न होता है इसवक्त शिशुका मस्तिष्क और स्नायुमण्डल इतने जोरसे परिस्फुरण होने लगता है कि कोई प्रकारका इसमें विकार होनेसे कोई कोई वक्त उसका प्रतिविधान भी नही हो सकता। गर्भिणीके अकस्मात् आतङ्क, क्रोध या और कोई रिपुके उत्कट उत्तेजनासे अक्सर गर्भस्थ शिशुको मृगी और उन्माद आदि पीडा होते देखा गया है। अतएव गर्भावस्थामें रमणीको सर्व्वदा शान्त और निरुद्वेग रहना चाहिये। धर्म्मचिन्ता, धर्म्मकर्म्मका अनुष्ठान और आलोचना, अथवा धर्म्म पुस्तकादि पाठ करनेसे गर्भिणीका मन सर्व्वदा शान्तिरससे आप्लुत रहता है और उसके साथही गर्भस्थ शिशुके मस्तिष्क में भी धर्म्मचिन्ताका बीज धीरे धीरे अंकुरित होता है। इसके सिवाय सुन्दर आलेख्य सन्दर्शन श्रुतिसुखकर मनोहर सङ्गीत या स्वरलहरी श्रवण आदि कार्य्य भी गर्भिणीके हकमें विशेष हितकर है।

प्रसव-प्रक्रिया।

द्विविध प्रसव।—प्रसव दो प्रकार,—स्वाभाविक और अस्वाभाविक। सर्वाङ्गमे मस्तक स्वभावतः भारी है इससे प्रसव

काल में सचराचर पहिले वही बाहर आता है। इसको स्वाभाविक प्रसव कहते है। यह २४ घण्टेमें सम्पन्न होता है। शिशुका माथा नीचे रहनेपर भी प्रसवको २४ घण्टा लगेतो उसे विलम्बित प्रसव जानना। तथा २४ घण्टेके पहिले प्रसव होनेसे उसे द्रुत-प्रसव कहते है।

वेदना।—प्रसवकार्य्यमें जरायुका सङ्कोचन एकान्त आवश्यक है; जरायु सङ्कुचित न होनेसे गर्भस्थ सन्तान भूमिष्ठ नही होती। जरायुके सङ्कोचनसे जो एक प्रकारको दर्द होती है उसको प्रसव वेदना कहते है। प्रसव वेदना रह रहकर उठती है तिसपर भी माताको कितनी तकलीफ होती है; यदि वह दर्द लगातार निरवच्छिन्न होता रहता, तो माता और गर्भस्थ शिशु दोनोका जीवन संकटापन्न होजाता कारण प्रसवमे विलम्ब होनेसे प्राय ऐसाही अनिष्ट होता है।

द्विविध वेदना।—प्रसवके पहिले कभी दो प्रकारका दर्द होता है; जरायु आपही संकुचित होनेसे जैसा दर्द होता है और जो जरायुके आधेयको क्रमश: प्रसव पथमें ले आता है, उसको प्रकृत वेदना कहते है। प्रकृत वेदनाका आरम्भ पहिले धीरे धीरे मृदुभावमे होता है, फिर बढते बढते कुछ कम हो अन्तमें थोडी देरके लिये बन्द हो जाता है। इसके बाद फिर दर्द तेज हो कम हो जाता है। जैसे जैसे दर्द उठताहै वैसही उसका निर्दिष्ट क्रमभो दिखाई देता है। पर अप्रकृत वेदना ऐसो नही है,—इसका कोई निर्दिष्ट क्रमभी नही है। इससे जरायुका समस्त अंश संकुचित न हो उसका एक अंग मात्र संकुचित होता है। जरायुके किसी अंशमे घाव या रक्ताधिक्य होनेसे अथवा पाकस्थली या यन्त्रके उत्तेजनासे जरायुका कोई अंश उत्तेजित

होनेसे यहां भी यही अप्रकृत वेदना उठती है। पूर्ण गर्भमें सन्तान भूमिष्ठ होनेके कई दिन पहिले अप्रकृत वेदना अक्सर उठती है।

उपक्रम।—प्रकृत प्रसव वेदना प्रकाश होनेसे कई दिन पहिलेहो से गर्भिणीके शरीरमें कई एक लक्षण प्रतीयमान होने लगते हैं। इस समयसे जरायु अल्प अल्प सकुचित होने लगता है। प्रसव पथके कोमल तन्तु सब शिथिल होने लगते हैं और जरायु इसी रास्तेसे आहिस्ते आहिस्ते नीचे आने लगता है। इस अवस्थाको प्रसवका उपक्रम कहते हैं।

तीन क्रम।—सचराचर प्रसवके तीन क्रम हैं; पहिले क्रममें जरायुका मुख बड़ा हो साथही संकोचन आरम्भ होता है तथा जरायुके ऊर्द्धभागमें सकोचन आरम्भ हो क्रमशः नीचे आता है। द्वितीय क्रममें शिशु भूमिष्ठ होता है। जरायुमुखका पूरा विस्फारण इसी क्रममें आरम्भ हो शिशु निकलने पर उसकी समाप्ति होती है। इस क्रमके पहिले झिल्ली फटकर पतला फेनकी तरह एक प्रकार पदार्थ निकलता है इसका जरायुका आकार कम हो जाता है। शिशु भूमिष्ठ होनेपर तीसरा क्रम आरम्भ होता है और खेरी बाहर होनेसे उसका शेष होजाता है। शिशु प्रसूत होनेके आधा घण्टा बाद खेरी निकलती है, किसी वक्त दूसरा क्रम शेष होतेही बाहर निकलती है।



अपत्यपथमें सन्तान परीक्षा।

उत्तर वेदना।—शिशु भूमिष्ठ और खेरी निकल जानेसे जरायु संकुचित होता है, इस संकोचनसे अकसर दर्द होता है। इसीलिये इसको उत्तर वेदना कहते है। इस देशकी औरतें इसे पीतनहर का फिरना कहती है। यह दर्द अकसर प्रसवके कई घण्टे बाद उठता है; कभी यह क्रमागत २।३ दिनतक रहता है, इस दर्दसे प्रसूतीका अच्छा है, कारण प्रसवके बाद भी जरायुके भीतरका जमा हुआ रक्त आदि जो कुछ रहता है यह इस दर्दसे निकल जाता है।

विविध प्रसव।—पहिले कहचुके है, कि शिशुका मस्तकही अकसर पहिले प्रसव पथमें आता है। यही सहज प्रसव है कारण इसमें माता या शिशुको कदाचित् कोई कष्ट होता है। अर्थात् शिशुका मस्तक माताके वस्तितटके तिर्यक व्यास-

इसके कोई एकमें समान्तर भावसे वस्तितटमें प्रविष्ट होता है। उसवक्त शिशुकी कपालास्थि माताके सामने अथवा पीछे रहती है। इसके बाद शिशुका मस्तक माताके वस्तिगह्वर में तिर्यक व्याससे उतरने लगता है ; इसवक्त आवर्त्तन क्रियासे वह वस्तिके निर्गम द्वारके सम्मुख पश्चात् व्याससे आकर उपस्थित होता है। फिर थोड़ा फैलकर प्रसव-पथसे बाहर आता है।

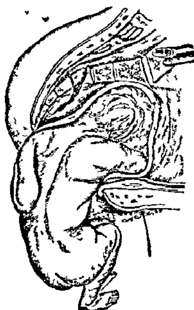


शिरःप्रागवतरण।

सुख और ललाट।—शिशुका मस्तक पहिले न निकल कभी कभी इसका मुख बाहर आता है। किसी कारणसे पश्चात् कपालास्थि वस्तितटमें अवरुद्ध होनेसे माथेका विवर्त्तन नहीं होने पाता ; इससे जरायुके संकोचनसे शिशुका मुखभी क्रमशः प्रसव पथसे उतरता आता है और अन्तमें बाहर गिर पड़ता है। कभी कभी मुखके बदले पहिले ललाट उतरता है ; किसी कारणसे मस्तक उपयुक्त परिमाणमें विस्तृत नहीं होनेसे भी ऐसा होता है।

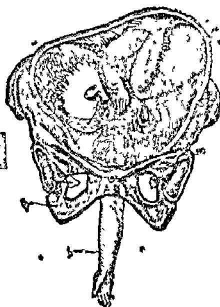
वस्ति।—किसी किसी वक्त शिशुका माथा, मुख या ललाट आगे न उतर वस्ति जङ्घा अथवा पैर निकले तो इसे वस्ति प्रागव-

तरण कहते है। इस प्रागवतरणसे शिशुको अपेक्षाकृत अधिक विपद होनेको सम्भावना है; कारण आगे शिशुका निम्नांग अवतीर्ण होनेसे नाभिरज्जुके ऊपर दाब पडनेसे शोणित सञ्चालन बन्द होनेको सम्भावना है। तथा शोणित सञ्चालनमें बाधा पडनेसे प्रायः शिशुको मृत्यु होती है।



जानु-प्रागवतरण।

पार्श्व देश।—सब शरीरके बाद मस्तक निकलता है। भ्रूणका ऊर्द्धांग या निम्नाङ्ग प्रसवपथमें न आकर कभी कभी इसके बगलमें आजाता है। इस अवस्थामें शिशुका कंधा पहिले निकलता है; या किसी वक्त केहुनी या हाथका पंजा आगे निकलता है। यह प्रसव अत्यन्त संकटमय है कारण इसमें माता और भ्रूण दोनोंके जानका डर रहता है।



पार्श्वप्रागवतरण।

१। शिशुका दहिना हाथ। २। मातृवस्तिकी दक्षिण बाहु। ३। वस्तिकी बाहुसन्धि

चिकित्सा।

ऊपर जितने प्रकारके प्रसव कहे आए हैं उसमें वस्ति और पार्श्वप्रागवतरण में विपद की सम्भावना है। बाकी दो प्रागवतरण की अपेक्षा पार्श्व-प्रागवतरण में शिशुका विपद अधिक होते देखा गया है। यहां शेषोक्त द्विविध प्रसवकी चिकित्साविधि लिखते हैं।

निर्णय।—शिशुकी वस्ति पहिले प्रसव पथमें आती है या नहीं सबसे पहिले इसका निर्णय करना चाहिये। उसका श्रोणिदय, उपस्थ आदि बाह्य जननेन्द्रिय अङ्गुलीसे मालूम होती

समझना कि वस्ति पहिले उतर रही है। इस तरह उसका प्रागवतीर्ण अंश निर्णीत होनेसे चिकित्सा करना चाहिये।

नाभिरज्जु रक्षा।—जिसवक्त शिशुकी वस्ति पहिले निकले तथा प्रसव द्वारमें दिखाई देतेही चिकित्सक उसे अपने हाथसे धर लें। यदि पहिले पैर बाहर आवे तो चिकित्सक को सावधान होना चाहिये कारण इस अवस्थामें प्रसव पथ अच्छी तरह विस्फारित नहीं होने पाता और इसीसे शिशुका शिर जल्दी नही निकलता इसीलिये अकसर जानपर नौबत आती है। इस दशामें शिशुके नाभिरज्जुमें दाब न पड़े इस विषयमें दृष्टि रखना आवश्यक है। शिशुके नाभिस्थलतक बाहर आनेपर मातृवस्ति जहां अधिक चौड़ी है वह रज्जु रखना।

हस्तद्वय।—नाभिस्थल बाहर होनेके बादही दोनो हाथ बाहर दिखाई देते हैं। यह न हो यदि शिशुके दोनो हाथ माथेपर उठ जाय तो भी सामनेसे शिशुका दोनो हाथधर नीचे उतारना। दोनो हाथ एक दफे न धर पिछना हाथ पहिले निकालना, फिर सामने का हाथ निकालना चाहिये।

मस्तक निर्गमन।—यदि सर्वाङ्ग निकलकर मस्तक अड़जायतो शिशुको तकलीफ अधिक बढ़जाती है। इस अवस्थामें शिशुके मुखमें हवा लगे इसेलिये अङ्गुलीसे योनि की पश्चात् प्राचीर थोडी हटाकर मुह बाहर करना तथा उदर प्राचीरमें हाथ रख जरायुको दबाना। इससेभी यदि जल्दी शिशुका माथा न निकले तो जरायु पर दाब दूसरेसे दिलाकर चिकित्सक शिशुके कपालके पीछे अङ्गुलीसे दबावें तो मस्तक जल्दी निकल आवेगा।



जानु प्रागवतरण।

दोनो कंधा आगे आता है फिर छाती विवर्त्तित होती है।

पार्श्वप्रागवतरण।—पार्श्वप्रागवतरण में अर्थात् जब शिशुका एक हाथ निकल आवे तब बाहरी उपायोंसे शिशुका मस्तक या वस्ति प्रसवपथ में घुमाकर लाना चाहिये। इससे सतकार्य्य न होनेसे चिकित्सक जरायुके भीतर एक हाथ डालकर शिशुका पैर निकालनेकी चेष्टा करें। यदि इससे भी भ्रूण बाहर न निकले तो शस्त्रसे काटकर प्रसवकार्य्य सम्पादन करना चाहिये।

—०—

प्रसवमें बाधा

जरायुका दोष।—नानाकारणोंसे प्रसवमें बाधा होती है, इन बाधाओंमें से कई प्रधान बाधाके बारेमें यहां लिखते हैं। जरायुकी ग्रीवा अत्यन्त दृढ़ होनेसे या उसका बाहरी मुख बंद हो जानेसे, किम्वा जरायु ग्रीवामें किसी सबबसे घट्ठा पड़नेसे अथवा जरायु मुखमें खराबघाव होवे तो जरायुका मुख सहजमें नही खुलता। तथा जरायुका मुख न खुलनेसे सन्तान अपत्यपथ-में नही आसकती। इस अवस्थामें माता और शिशु दोनोका जीवन विपन्न हो जाता है।

योनिका दोष।—जरायुमें किसी प्रकारका दोष न हो तो शिशु उसकेमुखसे निकल कर योनिमें आता है। इस अवस्थामें योनिमें कोई दोष हो तो उसमें से भी शिशु निकल नही सकता। अन्यान्य दोषोंसे योनिकी दृढ़ता अधिक विपज्जनक है। योनि नानाकारणोंसे दृढ़ होती है; उपदंशसे अथवा और कोई कारणसे घाव होनेपर योनि दृढ़ हो जाती है, तथा किसीके योनिकी प्राचीर स्वभावतः इतना दृढ़ होती है कि सहजमें नही फैलती; इसीसे बालक निकल नही सकता।

अन्यान्य दोष।—इसी तरह योनिद्वार और उसके पासवाले तन्तु समूहोंके विकृत अवस्थामें प्रसवमें प्रबल बाधा हो सकती है। वस्तिका विटप दृढ़ और भगपृष्ठमें शोथ होनेसे भी प्रसव प्रतिरुद्ध होनेकी सम्भावना है। इसके सिवाय माताकी वस्ति विकृत, संकीर्ण अथवा टेढ़ी होनेसे [किम्वा वस्तिमें अर्व्वुद पैदा होनेसे भी प्रसव में बाधा होती हैं। मूत्राशय मूत्रपूर्ण और

सरलान्त्र मलपूर्ण रहनेसे भी कभी कभी प्रसव प्रतिरुद्ध हो जाता है। पर शेषोक्त दो बाधा बहुत सामान्य है। बाकी बाधायें बड़ी विषम है कारण सहज में उन सबका प्रतिकार नहीं होसकता।

शीर्षाम्बु।—कभी कभी भ्रूणके स्वाभाविक अवस्था दोषसे भी प्रसवमें घोर बाधा हो जाती है। इस प्रकारकी बाधाओंमें शीर्षाम्बुहीका उल्लेख करने योग्य है। भ्रूणके शिरमें अधिक पानी जमकर कभी कभी उसका आकार इतना बड़ा हो जाता है कि वह विकृत मस्तक किसी तरहसे जननीके प्रसव पथसे बाहर नहीं आसकता।

चिकित्सा।

योनिनालीमें घट्टा पड़े तो उसे छूरीसे काटना चाहिये। विटप अत्यन्त दृढ़ हो तो उसके उपर सेंक देना उचित है। यदि इससे,भी नरम न हो तो स्नेह द्रव्य मालिश कर अन्तमें छूरीसे कई जगह चीरदेना चाहिये। भगपृष्ठ में शोथ हो तो उसमें कई छेद करना और उसमें अर्बुद हो तो पहिले उसे वस्तितटके उपर उठानेकी चेष्टा करना, तथा इससेभी सतकार्य्य न होनेसे अंकुशयन्त्रसे शिशुको बाहर निकाल लेना। यह कोशिश भी व्यर्थ हो जाय तो मस्तकसे शिशुको काटकर प्रसव कार्य्यपूरा करना। वस्तिको विकृति या सङ्कीर्णता के सबब प्रसवमें बाधा हो तो, अंकुयन्त्र, विवर्त्तन, अकाल प्रसवसाधन, किम्वा मातृगर्भ विदारण

करना चाहिये। शिशुके माथेमें पानी जमकर प्रसवमें बाधा होनेसे त्रिकूर्चक अस्त्रसे उसके माथेमें होशियारीसे छेदकर पानी बाहर निकालना अथवा मस्त प्रयोग से उसे तोडकर प्रसव कार्य्य पूरा करना चाहिये ।

अकालमें प्रसव ।—जिसकी वस्ति विकृत अथवा संकीर्ण है उसको गर्भोत्पत्ति होना विशेष अमङ्गलका निदान है। इस लिये इस विषयमें पहिलेहीसे सतर्क होना चाहिये। गर्भ होतेही उसे अकालहीमें प्रसव कराना उचित है। इससे माता और शिशु दोनोंके जानकी रक्षा होती है ; यदि यह काम असाध्य मालूम होतो गर्भके तरुण अवस्थाहीमें उसको नष्ट करना उचितहै।

शंकुयंत्र या फर्सप्स ।—शंकु—वेडोकी तरह एकप्रकार के यन्त्रको कहते है महात्मा सुश्रुतने मूढगर्भ की चिकित्सामें शङ्कु नामक यन्त्रके बारेमें जो लिखा है वह प्राय: इसी प्रकारका था। आजकल जो शङ्कु यन्त्र व्यवहृत होता है वह विलायती है, विलायती शङ्कु दो प्रकार, छोटा और बडा। इसके प्रत्येक में एक एक फलक और मुट्ठी है। फलक लोहेका और मुठ्ठी काठकी है। मुठ्ठीके उपर एक खोल है वही खोल दो फलक को आबद्ध करनेसे एक जोडा शंकुयन्त्र होता है। इसे बड़ी होशियारीसे प्रयोग करना चाहिये।

शंकुयंत्र या फर्सेप्स।

(क) अधुना प्रचलित सिम्पसनका फर्सेप्स।

(ख) „ „ जिगलका फर्सेप्स।

विकृत वस्ति।

जननीकी वस्ति नानाप्रकार से विकृत होती है। उसमेंसे कई एकके बारेमें नीचे लिखा जाता है।

(१) संकुचित वस्ति।—खर्व्वाकृति (नाटी) स्त्रीकी वस्ति





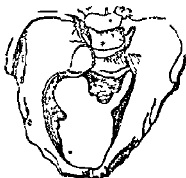
(क) (ख)

अचराचर ऐसही देखनेमें आती है संकुचित वस्तिसे प्रसव में बाधा होती है तथा सन्तान सहजमें नहीं निकलता है।

(२) विस्तृत वस्ति।—इस वस्तिका सर्व्वांश साधारण वस्ति की अपेक्षा बड़ा होता है; इसलिये प्रसव बहुत जल्दी होता है।

(३) शैशव वस्ति।—जिस स्त्रीकी वस्ति थोड़ेही उमरमें कठिन हो जाती है और अधिक उमरमें भी नहीं बढ़ती उसको शैशव वस्ति कहते हैं। इस तरह की वस्तिसे प्रसवमें विघ्न होता है।

(४) पौरुष वस्ति।—इस वस्तिका तट अचराचर स्वाभाविक, किन्तु इसका गह्वर गभीर और संकीर्ण तथा निर्गम पथका व्यास छोटा होता है।



रिकेट या पूतनीग्रस्त वस्ति।

(५) पूतनीग्रस्त वस्ति।—रिकेट या पूतना रोगसे वस्तिमें एक प्रकार विकृति होती है। इसलिये वस्तितटका सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होता है। पृष्ठवंशमूलीय का कोरभाव बढ़ जानेसे और विटप शाखा पीछे हटजानेसे वस्तितटका आकार अङ्गरेजीके "8" अङ्कको तरह हो जाता है।

(६) भङ्गुर विकृत वस्ति। अस्थिका लवणांश कम हो जानेसे हड्डी कोमल और बेदम हो जाती है। अङ्गरेजीसे इसीको "अष्टीयो मेलेकिया" रोग कहते हैं। इस रोगके आक्रमणसे वस्ति बहुत विकृत हो जाती है।

(७) माकुवत् वस्ति।—हड्डीके कोई कोई रोगसे पश्चम कशेरूका अस्थि स्थानच्युत होती सामनेकी तरफ झुक जाती है। इससे वस्तितट का सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होजानेसे माकुरके आकारके तरह हो जाता है।

(८) संकीर्ण वस्ति।—इस प्रकारकी वस्ति दोनों पार्श्वकी वस्तिबाहु भीतर के तरफ आजानेसे निर्गम-पथका अनुप्रस्थ व्यास छोटा हो जाता है। इस तरहकी विकृतिसे प्रसवमें भयानक बाधा होती।

इसके सिवाय वस्तिप्राचीरमें अर्बुद होनेसे, अथवा वस्ति-तिर्य्यकभावसे संकुचित हो तो उसेभी विकृत वस्ति जानना।

चिकित्सा।

वस्तिको सामान्य विकृतिमें केवल स्वभावके उद्यमसे ही प्रसव कराना, यदि विकृति अधिक और घोरतर हो तो कृत्रिम उपायसे प्रसव कार्य्य सम्पादन करना चाहिये। इस दशामें अवस्थाभेदके अनुसार शंकुप्रयोग, विवर्त्तन, अकाल प्रसव साधन, अथवा कुक्षि-पाटन (सिजारियन् सेक्शन) यही चार प्रकारके उपायोंमें से कोई एक अवलम्बन करना चाहिये। चारो उपायोंको क्रमशः लिखते है। पाश्चात्य जगतके सुप्रसिद्ध प्रसव चिकित्सक लिश् मैन, विकृत वस्तिके भिन्न अवस्थामें कौन उपाय अवलम्बन करना चाहिये, इस बारेमें जो संक्षिप्त नियम प्रगट करगये है यहां वहभी उद्धृत किया जाता है।

अनुप्रस्थ व्यास ४ इंचसे ३। इंच होनेसे		शंकुप्रयोग	आवश्यक।
”	३। ” ३॥ ” ”	विवर्त्तन	”
”	३ ” १॥ ” ”	छेदन भेदन	
”	१॥ या इससे कममें	कुक्षिपाटन	”

शंकु-प्रयोग।

शंकुप्रयोग के पहिले नीचे लिखे बातों पर दृष्टि रखना उचित है। शलाका और पिचकारीसे गर्भिणीका मूत्राशय तथा निम्नयन्त्र साफ करना चाहिये। जलथाली न फटे तो उसे फाड डालना और भ्रूणके माथे की स्थिति सब परिष्कार शिशुका आसन निर्णय करना। शंकुप्रयोग करती बक्त अकसर बेहोश करना पडता है। इस विषयमें एक नियम पर दृष्टि रखनेसे सन्देह दूर होता है। भ्रूणका मस्तक वस्तिके

ऊपर हो तो वेदोग्र करना चाहिये; यदि वह नीचे उतर आवे तो वेदोग्र करने की जरूरत नहीं है।

प्रयोग में शयन।—शंकुप्रयोगके समय प्रसूती को दायें तरफ सुलाना अच्छा है; तथा उसका दोनो जंघा समेट पेटके उपर रख चौकी या उसके उपरवाले कठिन बिछौने के दक्षिण किनारेपर सुलाना। प्रसव सङ्कटापन्न होनेसे गर्भिणी को उतानी सुलानेसे सुबीता होता है।

शंकुके दोनो फलक गरम पानीमे तपाकर उसमे कार्ब्वलिक तेल अथवा कार्ब्वलिक भेसिलिन लगाकर प्रसवपथमे प्रवेश करना।

प्रवेशन।—शंकुके दो फलो में से एक को ऊर्द्ध और दुसरे को निम्न फलक कहते हैं। बड़ा यंत्र का निम्न फलक पहिले और ऊर्द्धफलक पीछे से प्रवेश करना चाहिये। छोटे शंकुका दो में चाहे जो फलक प्रवेश कर सकते हैं। पीडा कम होनेपर ही शंकु धीरे धीरे प्रवेश करना उचित है तथा प्रसव पथके किसी स्थानमें अड़ जानेसे तुरन्त फलक निकाल लेना चाहिये; तथा थोडी देर बाद फिर प्रवेश करना। दोनो फलक प्रविष्ट होजाने पर दोनो एकत्र कर सावधानो से खील बन्द करना उचित है और खील बन्द होनेपर आकर्षण और सञ्चालन आदि कार्य्य करना।

आकर्षण।—खींचनाही शंकुका प्रधान कार्य्य है। सिर्फ दर्दके समय अपत्य पथके अक्षरेखा में भ्रूणका मस्तक धीरे धीरे खींचना चाहिये। जबतक शिशुका माथा बस्तितटके उपर रहे तबतक उसे नीचे ओर पीछे की तरफ खींचना। तथा वह नीचे आतेही तुरन्त पीछेकी तरफ से सामने को खींचना; अन्तमें जब निर्गम द्वारके पास आवे तब शंकु उपर और सामने को खींचना

चाहिये। इसी तरह शिशुका मस्तक शंकुसे विटपमें आजाने पर यदि देखें कि दर्द जोरसे और नियमित हो रहा है तो खींचना बन्द कर प्रकृतिके ऊपर निर्भर करनेसे प्रसव आपही हो जाता है।

प्रसव कार्य्यके सुबीते के लिये विलायत में नाना प्रकारके फर्सेप्स बनाया गया है; जिसमें डेनमेन्, जिग्लर और सिम्सन्— यही तीन प्रसव चिकित्सक के बनाये फर्सेप्स अधिक प्रचलित है। यह त्रिविध शंकुमें जिग्लरका अधिक और सिम्सन् का अधिकतर व्यवहृत होता है।

फर्सेप्स आविष्कार होनेसे पहिले युरोप में सेकटिस् और फिलेट नामके दो प्रकारका यंत्र व्यवहृत होता था। आजकल इन दोनो का प्रयोग प्रायः उठगया है कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं होगी।

मूढ़गर्भ चिकित्सा।

और

भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार।

गर्भ और प्रसव सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय विषय आर्य्य ऋषिगणोंको विदित था। किस किस कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है या प्रसवमें बाधा हो सकती है, बाधा कितने प्रकारकी है और बाधा विपत्ति होनेसे कौन उपायसे उन सब का प्रतिकार होता है, महर्षि सुश्रुत ने इसको विस्तृत आलोचना की है। यहां उसे भी उद्धृत किया जाता है।

निर्व्वचन।—गर्भ नष्ट हो प्रसव में बाधा होनेसे उसे मूढगर्भ कहतेहैं।

प्रकार।—मूढ़गर्भ चार प्रकार;—कील, प्रतिखुर, बीजक, और परिघ। बाहु, मस्तक और पैर ऊपरकी तरफ तथा बाकी शरीर नीचेकी तरफ गठरीके आकारसे योनिमुखका रोध कर रखे तो उसे कील कहते हैं। एक हाथ, एक पैर और माथा निकलकर बाकी शरीर अटका रहने से प्रतिखुर कहते है। केवल एक हाथ और माथा निकले तो उसे बीजक जानना, और भ्रूण परिघ की तरह योनिमुख आवृत किये रहे तो उसे परिघ कहते है।

निदान।—ग्राम्यधर्म, सवारीका पथश्रम, ठोकर लगना, गिरना, किसी तरह से चोट लगना, विपरीत भावसे शयन और उपवेशन, उपवास, मलमूत्र वेगधारण, रुक्ष, कटु और तिक्त भोजन, शाक या अतिशय क्षार भोजन, अतिशय वमन, विरेचन, दोलन, और गर्भपातन आदि कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है।

निर्णय।—गर्भका स्पन्दन आदि लक्षण लक्षित न होनेसे गर्भिणी का सब शरीर श्याम या पाण्डुवर्ण तथा श्वास में दुर्गन्ध और गर्भमें शूलवत् वेदना होनेसे गर्भस्थ सन्तान गर्भमें मरगयी है जानना।

चिकित्सा।—मूढ़गर्भ रूप शल्यका उद्धार करना अति कठिन है। इसमे सचराचर उत्कर्षण, आकर्षण स्थानापवर्त्तन, उत्कर्त्तन,भेदन,छेदन,पीड़न,ऋजुकरण और दारण,—यही नौ प्रक्रियाओं में से एक की जरूरत पड़ती है। इनमे से भेदन, छेदन, और दारण यह त्रिविध कार्य्य से भ्रूणके अङ्गप्रत्यङ्गोंका छेदन करना पड़ता है; बाकी ६ प्रक्रिया कर कौशल से सम्पादित होती है।

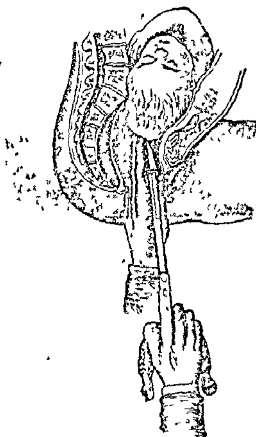
महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि गर्भस्थ शिशु जीवित रहनेसे कदापि यन्त्रसे दारण नहीं करना। कारण इससे जननी और सन्तान दोनोंके प्राण नाश होते हैं। सुश्रुत यन्त्र प्रयोग के पक्षपाती नहीं हैं। उनका मत यह है कि पहिले कर कौशल या औषधादि से मूढ़गर्भ निकालने की कोशिश करना; इस से कार्य्यसिद्धि न होनेसे यन्त्र प्रयोग उचित है। अन्तर्गत शिशुके अङ्गप्रत्यङ्गादि को छेदने के लिये, सुश्रुत मण्डलाग्र * और वृद्धिपत्र, यही दो प्रकार के यन्त्रको काममें लाने को कहते हैं। इनमें से मण्डलाग्र नामक यन्त्रका व्यवहार उनके मतसे प्रशस्त है, कारण तीक्ष्णाग्र वृद्धिपत्र द्वारा जननीके अपत्यपथमें आघात लगने का डर है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में मूढ़गर्भ या संकटापन्न प्रसव के चिकित्साके बारे में प्रायः इसीतरह का उपदेश है। इनके मतसे भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार चार प्रकारका है; जैसे क्रेनियटमी, सिफालोट्रिप्सि, डिक्यापिटेशन और एभिसारेशन।

छेदन भेदन।—इस प्रक्रियासे भ्रूणका मस्तक और कर उसी छिद्रसे मस्तिष्क बाहर निकालना। मस्तिष्क निकालेने से मस्तक का आकार छोटा हो जायगा तब क्रोचेट और हुक आदि यन्त्र से सन्तान को बाहर निकालना चाहिये। भ्रूण हन्तारक शस्त्रोपचार में सचराचर पांच यंत्र व्यवहृत होते हैं; जैसे पार्फोरेटर, क्रोचेट, भार्टिस्लहुक, क्रेनियटमी, फर्सेप्स और सिफै-लोट्राइब।

---

* मण्डलाग्रेण कर्त्तव्यं छेदनमन्तर्विजानता।
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात् कदाचन॥
सुश्रुत—चिकित्सास्थान, १५ अध्याय।

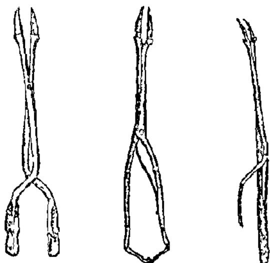


भेदन और छेदन प्रक्रिया।

पार्फोरेटर से भ्रूणकी करोटी काटी जाती है।

पार्फोरेटर ।—पार्फोरेटर यन्त्र में दो चोखा फलक है। इससे करोटी विदारित होती है। इसी लिये इसे पार्फोरेटर कहते है। इसे क्रेनियटमी—सिजार्स भी कहा जा सकता है। इसके दो फलक का बाहरी हिस्सा चोखा होनेसे करोटी को काट कर दोनो तरफ फैला देता है।

क्रोचेट।—क्रोचेट देखने में ठोस सडसी की तरह है। पर यह खूब मजबूत और तीक्ष्णाग्र है। करोटीके बाहरी या भीतरी किसी कठिन अंशमें हुक लगाकर चेट धर कर खींचना पडता है। इस यंत्रका व्यवहार बहुत कम है। सेंटिबेलहुक प्राय: क्रोचेट की तरह होता है।



नानाप्रकारके पार्फोरेटर।

क्रेनियटमी फर्सेप्स।—क्रेनियटमी फर्सेप्स दो फलक से बनता है। तथा दोनो फलक के भीतरी तरफ आरी की तरह दांत रहता है। ऐसा दांत रहनेसे भ्रूणका मस्तक मजबूत धरने में आता है।

सिफालोट्राइब।—सिफालोट्राइब भी दो कठिन फलकसे बनता है। इससे माथे का कई टुकडा कर सहज में बाहर किया जा सकता है। सिफालोट्राइब से जो काम होता है उसे सिफालोट्रिपसि कहते हैं।

किसवक्त मेंनियटमी प्रयोग करना चाहिये, इसबारे में मत-भेद दिखाई देता है। पर भिन्न भिन्न मत का समन्वय साधन कर-नेसे केवल यही जाना जाता है कि साधारणतः जहां वस्तिका व्यास तीन इंच से लगा १॥ इंचसे भी कुछ अधिक है वहां क्रेनिअटमी की जरूरत है। ठीक १॥ इञ्च हो तो सिजारियन सेकशन अर्थात् कुक्षिपाटन करना चाहिये।

अस्वाभाविक गर्भ।

एकसे अधिक भ्रूणका उद्भव, विकृत भ्रूणोत्पत्ति, अथवा जरायुके सिवाय अन्य स्थानमें गर्भोत्पत्ति होनेसे उसे अस्वाभाविक गर्भ कहते है।

एकाधिक भ्रूणोत्पत्ति।

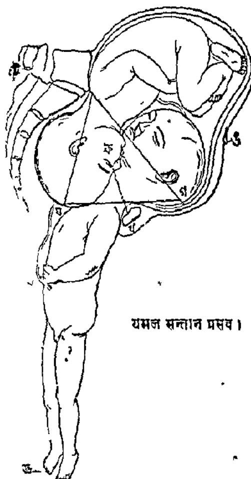
दो, तीन, चार और कभी कभी पांच भ्रूण पैदा होता है। पर ऐसी घटना बहुत कम देखने में आती है। गढ़ में ८० गर्भमें एक यमज सन्तान होती हैं, ७००० गर्भमें एक, तीन सन्तान उद्भूत होती है, चार या पांच सन्तानकी सम्भावना इससे भी कम है।

वहिर्जरायुज गर्भाधान।

Extra-Uterine-Gestation]

जरायु-गह्वर के सिवाय अन्य स्थानमें भी अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित हो सकता है। पर इस तरह का गर्भाधान क्वचित

देखने में आता है। पर सभ्यजगत में आजतक कितने अस्वाभाविक गर्भ हुए हैं उसका श्रेणी विभाग नीचे लिखा जाता है।


यमल सन्तान प्रसव।

१। नालीय या टिउब्याल ;—अण्डवहा (फेलोपियन) नली में अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है। तथा इसके दो प्रकार है। (क) जरायुप्राचीर और नलीके संयोग स्थल में अण्डको

संस्थिति (ख) अण्डवहा नाली का झालरवाला मुख और अण्डाधार के भीतर अण्डकी संस्थिति।

२। औदरीय या एब्डोमिनेल;—उदर गह्वरमें अण्डका निवेशन। इसके दो प्रकार। (क) प्राथमिक अनुप्राण के आरम्भसे उदर में निवेशन तक। (ख) द्वैतीयक अर्थात् नालीगर्भ नालो-विदीर्ण हो जानेसे अण्डवहा से गर्भमें जाकर रहता है।

३। अण्डाधारीय या ओभेरियान,—ओभेरी अर्थात् अण्डाधार के भीतर अण्डका अनुप्राणन, परिस्फुरण और निवेशन। इसके सिवाय द्विखण्डित जरायुके अपरिस्फुट शृङ्गमें अथवा किसी स्थालोमें अण्ड जानेसे अनुप्राणित और परिस्फुरित होना है।

केवल एकके पैरसे छातीतक बाहर आया है; दोनोंका मस्तक प्रसवपथमें अटका है।

ये नाना प्रकारके अस्वाभाविक गर्भमें भी गर्भसूचक प्रायः सब लक्षण दिखाई देते हैं, पर ऐसे गर्भका निर्णय और चिकित्सा करना कठिन है। इस दशामें गर्भिणी और गर्भस्थ शिशुको अवस्था अत्यन्त सङ्कटापन्न हो जाती है। इस लिये अस्वाभाविक गर्भ निर्णित होने ही भ्रूणका प्राणनाश करना उचित है। पर इस समयका शस्त्रोपचार बहुत कठिन है बहुदर्शी प्रसव चिकित्सकके सिवाय और किसीको ऐसे कठोर कार्यमें हाथ लगाना उचित नहीं है, कारण ऐसा करनेसे भ्रूणहत्या और स्त्रीहत्याकी पापमें लिप्त होना पड़ता है।

कुक्षिपाटन।—ऊपर कहे हुए उपाय समूहोंसे प्रसव साधन असम्भव जान पड़े तो कुक्षिपाटन या सिजारियान् सेक्सन करना चाहिये। किसी वक्त यह प्रक्रिया बड़ी विपज्जनक थी किन्तु आजकलके पाश्चात्य शल्य चिकित्सासे बहुत सहज और

निरापद जान पड़ती है। ऐसे प्रक्रियासे गर्भिणीका उदर विदीर्ण कर, इसी पथसे भ्रूण निकालना चाहिये, इस उपायसे सजीव भ्रूण भी निकल सकता है, किन्तु इसमें माताकी बड़ी विपदमें पड़ना पड़ता है। पहिले जमानेमें यही शल्य चिकित्साका प्रचार भारतमें था। सुश्रुत आदि कह गये हैं कि मूढगर्भ जीवित रहते घृताक्त हाथ योनिमें डालकर धात्री सन्तानको निकाले, गर्भ नष्ट होनेसे शस्त्रपण्डिता भयशून्या और लघुहस्ता धात्रीको योनिके भीतर शस्त्र प्रविष्ट करानेको कहना। सजीव गर्भमें शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। भ्रूणका जो जो अङ्ग योनिसे संसक्त हो उसी अङ्गमें शस्त्र लगाकर निकालना चाहिये। अङ्कु अथवा युग्म शंकुसे मूढगर्भ खींचना चाहिये। आसन्न प्रसवा गर्भिणी वस्तमासे विपन्न हो यदि उसकी कुक्षि स्पन्दित होती चिकित्सक को गर्भ विदारकर सन्तानका उद्धार करना चाहिये।

संक्रामक रोग-परिचय।

---o---

विउवोनिक प्लेग।—युरोप के अनुग्रह से हमलोग अच्छे बुरे सब विषयमें शामिल हो चुके हे और हो रहे हैं। इस प्लेग की इस देशमें युरोप से नई आमदनी हुई है। प्लेग के ऐसा सत्यानाशी रोग का इतना अधिक विस्तार और सालाना बढ़न्ती भारतवर्षमें किसी कालमें नही था। प्लेग के इन सब विषयमें अधिक विचार करना इस स्थान पर उचित नही है। इस रोग से हमलोगों के साथ इतना अधिक सम्बन्ध हो गया है कि इसका विशेष परिचय देना जरुरी नहीं है।

प्लेग तीन भागमे विभक्त है।—जैसे विउवोनिक, निऊमोनिक और ड यारिक। इन सबमें विउवोनिक प्लेग का आक्रमण कुछ अधिक है, इस लिये हम यहां इस विउवोनिक प्लेगका विवरण संक्षेपमें देते है। प्लेग में सेवा और जीवन रक्षा करने के विषय में जो मुख्य बातें है, उसे मनुष्य मात्रको जानना बहुत जरुरी है। क्यों कि समय समय पर उसकी जरुरत पड सकती है।

प्रदेश।—कलकत्ता, बम्बई, पूना, इलाहाबाद, पश्चिमोत्तर और मध्य भारत के बहुतेरे प्रधान प्रधान शहरों और नगरोंमें, प्लेग हर वर्ष फैलकर आदमियों का सत्यानाश करता है, लेकिन पहिले लोग प्लेग के नामसे डरतेथे, और प्लेगाक्रांत रोगी का सत्कार करनेमें कोई भी सहजमे राजी

नहीं होता था और रोगियों के साथ शामिल होने और उन लोगों की सेवा करने में कोई भी अग्रसर नहीं होता था। लेकिन अब वैसी डरावनी अवस्था न रही। आगे यूरोप में प्लेग के फैलने के समय बहुतेरे प्लेगाक्रान्त रोगी बिना दवा और चिकित्साके ही मृत्युग्रासहोतेथे। प्लेग की कोई निर्दिष्ट चिकित्सा भी नहीं थी और कोई चिकित्सक भी प्लेगाक्रांत रोगी को छूते नहीं थे। तब प्लेग असाध्य रोगों में गिना जाताथा। मगर अब चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान के मददसे यह (Preventible Disease) याने साध्य रोगों में गिनाजाता है।

बनिस्बत और सब प्लेग के विभाग से विऊबोनिक का ज्यादा विस्तार है।—क्योंकि बहुतेरे आदमी इसी रोग से आक्रान्त होते हैं। राजधानी और बड़े बड़े शहरों में प्लेग के फिहरिस्त में जिन सब प्लेगाक्रान्त रोगियों की मृत्युखबर प्रचारित होती है उसमें ज्यादातर बिऊबोनिक का ही नाम रहता है। म्युनिसिपलटी रोजाना और हफ्तावारी जो सब प्लेग सम्बन्धि तालिका निकाला करती है, उसमें कितने आदमी प्लेग आक्रांत हुये हैं कितनेकी मृत्यु हुई है वह सब उस फिहरिस्त से हमलोग जान सकते हैं।

आजकल कलकत्ता, बम्बई, आदि बड़े बड़े शहरों में स्वास्थ्य विधानानुमोदित उपायसे प्लेग के प्रतिकार और फैलाव का निवारण करने के लिये कई प्रकार की सुव्यवस्था हो रही है। इसलिये सरकारी और म्युनिसिपलटीके खजानोंसे अपरिमित रुपये व्यय होरहे हैं। इससे जो सुफल नहीं होता है सो नहीं। कई वर्ष पहिले बम्बई और कलकत्तेमें प्लेग का जोर जितना था उतना अब नहीं है।

सम्भवत: बहुतोंने सुना होगा कि अस्वास्थ्यकर स्थानमें ही प्लेगका अधिक प्रबलता देखी जाती है। बम्बईकी बस्तीका अवस्था बड़ी शोचनीय है हर वर्ष किसी एक निर्दिष्ट समयमें उस स्थानोंमें प्लेगकी बढ़न्ती होती है। कलकत्ते में कोलुटोला, जोड़ाबगान, बड़ाबाजार, आदि कई निर्दिष्ट स्थानों में हरवर्ष प्लेगकी मृत्युसख्या का आधिक्य दिखाई पड़ता है। अगर यह सब स्थानोंमें उपयुक्त ड्रेन और नाली वगैरह बनाई जावेतो प्लेग का नाम निशान भी न रहे। स्वास्थकर स्थानमें रहना उत्तम खाद्य वस्तु भोजन करना और खुब सफाई के साथ रहनेसे प्लेग का डर उतना नही होता। इसके सिवाय सब शरीरमें सरसोंके तेल का मालिश करना सफाईके साथ देह धोना इरवक्त पुष्टि-कर द्रव्य खाना आदि स्वास्थ्य रक्षक नीति अवलम्बन करना चाहिये।

प्लेगके कीड़े ही प्लेगकी बढ़न्तीके कारण है।

—अन्यान्य संक्रामक रोगोंकी तरह प्लेगमें भी विभिन्नता है। प्लेगाक्रान्त रोगी के साथ बात करनेसे या उसके पास बैठनेसे ही जो प्लेग होता है यह बेजड़ की बात है। जबतक प्लेग विष किसी सुस्थ शरीरमें नही घुसता है तबतक अपना असर नही दिखा सकता। प्लेगके कीड़े के विषयमें डाक्टर कियासेटो और डाक्टर हाफकिन् आदि वैज्ञानिक पंडित लोग आजतक कई प्रकारका अनुसन्धान याने खोजकर रहे है। वैजिक तत्त्व-वित् डाक्टर हाफकिन् को आजकल प्लेग सम्बन्ध में खोजाखोजी के लिये भारत सरकारने नियुक्त किया है। हाफकिन् के मतसे प्लेग कीड़ेसे पैदा हुवा रोग है। बसन्तका टीका जैसे लगाया जाता है वैसे ही प्लेग में भी टीका लगाया जाता है।

जिन रोगियों को टीका लगा रहता है उन लोगोंको प्लेग होने से मरनेका सम्भावना नहो रहतो। तथा शरीर प्लेगके आक्रमण से सम्पूर्णरूपसे विमुक्त रहता है। हाफ्किन का यह सिद्धान्त अभीतक सर्व्वसाधारणमें परिगृहीत नहीं हुवा है।

१८६४ सालमें चीन देशके हंकं शहर में प्लेगका बड़ा जोर हुवा था, उस समय कियाशिटो नामक वैजिक तत्व-वित् कई एक चिकित्सकोंने प्लेगसे मरे हुवे एक रोगीके शरीर को चीरा था। दुरवीनसें उसके भीतरी पीप रक्तादि परीक्षा कर उन्होंने उसके भीतर एक लाठो के तरह एक प्रकार का छोटा कीडाको देखाथा। इसी कीड़ेके मददसे सर्व्व-प्रकार परीक्षाकर यह स्थिर किया कि यही प्लेगका कीड़ा प्लेगरोग को बढाने वाला है। किन्तु बढनेके वक्त मदद न पानेसे यह दुसरे शरीरमें नहीं पैठ सकता। डाक्टर कियाशिटो के दिखाये हुये रास्तेमे और कई एक युरोपीय वैज्ञानिक पण्डितोंने इस विषय में बहुत दिन तक खोजाखोजी के बाद सर्व्वप्रकार यन्त्र और दैहिक परीक्षाके बाद यह सिद्धान्त किया है कि मरेहुवे आदमियों के शरीरके भीतरसे जो कीड़े निकलते हैं, उसीसे प्लेग पैदा होता है। इस प्रकारका लाठी के तरह कीड़ेका आकार और संक्रामक रोगके कीड़ेके आकारमे बहुत फर्क है। और सुस्थ शरीरमें यह कभी ही नहो दिखाई पड़ता, यदि चूहा खरगोश आदि छोटे छोटे जानवरोंके शरीरमें यह वीज प्रवेश करे तो उस शरीरमें भी प्लेग उत्पादन करसकता है यही उनलोगों का सिद्धान्त है।

डाक्टर कियासिटो की निकाली हुई प्रथासे प्लेगी कीड़ेके बारेमें बहुत कुछ परीक्षा हुई है। प्लेगाक्रान्त स्थान में

रह कर इस विषय में बहुत कुछ खोजाखोजी करने की इच्छा से १८८७ सालमें कई एक जीवानुतत्ववित युरोपीय पंडित बम्बईमें आयेथे। वेलींग कोडे को परीक्षा करनेके लिये थोडेसे कोडोको अपने देश लेगयेथे। यह कीडा चूहे और खरगोश के शरीरमें प्रवेशकर कैसा असरदिखाता है, इसकी परीक्षाकरनेके लिये वेलोग एक वर्ष बाद इन कीडोंको कइ एक चुहे के शरीरमे प्रवेश कराया था। जो नौकर उन चूहों को खानावगैरह देताथा पहिले उसीपर प्लेगने अपना असर दिखाया। खोज खबर लेनेके बाद मालूम हुवा कि उस नोकरका हुका चूहोंके पिंजरे के पास रखाथा। कीडा चूहे के देहसे निकल नलसे नौकर के शरीरमें प्रवेश हुआथा। उसी बेचारे नौकर के मुह से निकले हुये फेनमें किटासिटोके उद्घावित किये हुवे कोडे उसमे देखाई पडे इससे यह प्रमाण हुआ कि यह निऊमोनिक प्लेगसे मारागया है। केवल मात्र वह नौकरही नहो बल्कि वह चिकित्सक जो उसकी चिकित्सा करताथा तथा सेविका जो उसके विछानेके पास बैठी रहती थी उनदोनोंको भी प्लेगने धरदबाया। लेकिन दोनों को बहाँसे खसका देनेके कारण रोग ज्यादा बढ नहो सका। इससे प्रमाणित हुआ कि प्लेगका कोडा एक सालतक मनुष्य के शरीरमें रह कर रोग उत्पन्न करता है।

बिना दुरवीनके मददसे प्लेगका कोडा या माइक्रोब देखाइ नहो पडता साठ कीडों को इकठ्ठा करने पर एक गुच्छा बाल के तरह मोटा होता है यानहो सन्देह है। प्लेगाक्रांत रोगीके गांठ को चीरनेसे उसमें यह कोडे देखाई पडता है। इसीलिये नस्तर देनेके समय डाक्टरलोग जिस छूरी को इस्तामाल

करते है फिर उसे इस्तामाल नही करते मरने के थोड़ी देर पहिले प्लेगरोगीके खूनकी परीक्षा करने से भी उसमे कीड़े नजर आते है। मनुष्यके शरीरके सिवाय रोगाक्रान्त जगहपर भी कीड़े नजर आते है। सूर्य्यके तापसे, गरमपानी और प्रतिशोधक रासायनिक द्रव्य आदिसे यह कीड़े मरजाते है।

कईसौ वर्ष पहिले इङ्गलंड में एकबार प्लेगका खुब प्रकोप हुवा था लंडन शहरमें ही बहुतेरे गरीब आदमियों इसी रोगसे आक्रांत हो दुनिया से चलबसे। इसलिये लंडनके प्रधान प्रधान अधिवासियोंने इसका नाम "गरीबोंका रोग" रखाहै। भूखे रहना, गरीबी, पुष्टीकीकमी, अस्वास्थ्य कर घर और ठंडी जगहमें रहना, बराबर परिश्रम करना आदि तथा कुसमय खाना, धूप और हवा विहीन दुगन्ध जगहमें रहना आदि कारणोंसे प्लेगका प्रकोप हुवाता है। इस कलकत्ता शहरमें साहबो के रहनेकी जगह चौरंगी, प्लेग प्रकोप विहीन स्थान है। ऐसा क्या साहबों के इस देशीय नौकर भी रोगाक्रांत जल्दी नही होते। लेकिन जोड़ाबागान, कुमारटोली, चितपुर,कलुटोला,आदि देशीय स्थानों में उत्तम मारवाड़ीयोंमें भी प्लेगका प्रकोप देखा जाता है।

संक्रामन का रास्ता।—चिवरामसे या चमड़ेके उपर का कोई भी फोड़ा या घावसे प्लेगका कीड़ा मनुष्य के शरीरमें घुसता है। प्लेगाक्रांत स्थान के मट्टी पर जो धुला रहता है वह भी प्लेगके कीड़ोसे भरा रहता है। सम्भवत: वह हवाके सहारे उड़कर दुसरोंके नाक और मुहमें घुस प्लेग उत्पादन कर सकता है। प्लेग रोगीके साथ मिलनेसे और उनके चिजोंको इस्तामाल करनेसे (विछौने पर सोनेसे) यह रोग हो सकता है। विउबोनिक प्लेगके रोगीके कोषको चीरनेसे जो पाप निकलता है या निऊ-

मोनिक प्लेगके आक्रान्त रोगी के मुखसे निकला हुवा कफ और डायरिक प्लेगाक्रान्त रोगियों के दूषित मल मुत्रके दुर्गन्धसे भो यह रोग उत्पन्न होता है। आधुनिक मतसे आसपासमें चूहे के मरनेसे वहां प्लेगका प्रारम्भ देखाइ पडता है। प्लेगके विषसे मट्टी खराब होनेसे ही चूहे लदालद मरते है। इसीलिये कलकत्ते के म्युनिसिपल डाक्टर प्लेगाक्रांत रोगोको देखने जाते है तब पूछते है कि आसपास कहीं चुहा तो नहो मरा है। आजकल के स्वास्थ्य रक्षकों के मतसे चूहेसे ही प्लेग एक जगह से दूसरे जगह पहुचाया जाता है। चूहे प्लेगाक्रान्त हो इधर उधर दौडादौडी कर प्लेग चारोतरफ फैला देते है। प्लेगाक्रांत रोगोको एक स्थानसे दुसरे स्थानमें लेजानेसे वहां भी प्लेग फैल जाता है।

प्लेगके लक्षण विकाश।—रोगके अन्तःस्फुरण काल (Inculation Period) ज्यादे संख्या दसदिन तक है। कोई सुस्थ आदमो के शरीरमें प्लेग घुसनेहीसे उसी वक्त रोग फैल नहो जाता दसदिनके भीतर रोगबीज देह में घुसकर आस्ते आस्ते अपनी शक्ति विस्तारकर रोग के लक्षण समूह देखाई देते है। इसलिये रोगी प्लेगक्रान्त है या नहो इसका सन्देह होतेहो, उस रोगोको प्लेग परोक्षा के स्थान में लेजाकर १० दिन तक रोक रखनेका नियम प्रचलित है।

प्लेगका प्रधान लक्षण।—खुब जोरसे बोखार आना पड़ा और बगलमें गांठ होना। किसीके बगलमें और गर्दन पर गांठ दिखाई देती है। इस गांठमें असह्य दर्द होता है। रोग प्रकाश होनेके पहिले होसे गांठका जलना और रोगोका

तथा बोलना बढ़ जाता है। कोई कोई रोगीको खांसी के साथ खांसी और साथही साथ बहुत कफ गिरता है। यह कफ युक्त प्लेग ही निऊमोनिक प्लेग है। निऊमोनिया और इनफ्लुएंजा के साथ इसका बहुत सादृश्य है। रोगीके मुहंसे निकले हुवे कफ में यह कीड़ा दिखाई दे तो उस रोग को प्लेग समझना चाहिये प्लेग विष रक्तके साथ न मिलने तक कोई प्रकारकी तकलीफ नहीं मालूम होती। रोगके लक्षण विकाश के साथ ही साथ रोगी अगर चार या पांच दिन बच जायतो उसके जीनेकी आशा की जासकतीहै। बहुत स्थानोंमें देखा जाताहै कि २४घण्टेके ज्वर भोग के बाद ही रोगी मरजाता है। प्लेगरोग मात्रही सांघातिक है। बहुत स्थानोंमें रोगीके दवापानी करनेका भी मौका नहीं मिलता। और और रोगके तरह प्लेगको कोई स्थिर चिकित्सा भी नहीं है। उपसर्ग वगैरहका उपशम होने से ही रोगका शान्ति होती है।

सेवा व चिकित्सा।—घरमें किसीको प्लेग हुवा हो तो किसीको डरना नहीं चाहिये। संक्रामक रोगमें साहस और निडरता की जरुरत है। प्लेग होनेहो से मृत्यु निश्चित है इसका कोइ माने नहीं है। प्लेग रोग के होतेही रोगीको एक अलग कमरेमें रखना चाहिये। उस कमरेमें धूप व साफ हवाका संचालन होना चाहिये। (धूप आने वाला व हवादार कमरा होना चाहिये) चिकित्सकको खबर देनेपर जैसा वह कहे वैसाही करना चाहिये। कोई निर्दिष्ट नियमसे प्लेगकी चिकित्सा करने की व्यवस्था न होनेसे भी चिकित्सक रोगीकी तकलीफ और उपसर्ग देखने पर उसे आराम कर सकते है। प्लेग रोगीको,सेवा वगैरहमें बहुत सावधानी आवश्यकते है। रोगी अवस्था में कोइ तरह का अदल बदल होनेसे या कोई नया

उपसर्ग वगैरह दिखाई पड़ने से चिकित्सक को उसी वक्त खबर भेजना चाहिये। रोगीके दवा देने में व खाने पीनेमें जो कुछ कह जांयगी उसे प्रतिपालन करना चाहिये। रोगीके वाई के भोंक व वेहोशीके वक्त किसीको भी रोगीका साथ नहो छोडना चाहिये। प्लेग रोगमें रोगी पुरेतौरमे कमजोर हो जाता है। इसलिये मलमुत्रादि त्याग व और कोई प्रयोजनमें रोगीको शय्या त्याग करने देना न चाहिये। "वेड प्यान" वगेरहमें रोगी का मलमूत्र धारण करना। उसी मूल-मुत्रको शुद्ध द्रव्योंसे शुद्धकर पायखानामें डालदेना चाहिये। रोगीके मुंहसे निकले हुवे कफ व के वगेरह को कपड़े मे पोंछ कर शुद्ध द्रव्योंसे शुद्ध करना चाहिये। रोगीका बिछौना व तकियाको रोज धूपमें रखना चाहिये। प्रचण्ड धूपसे प्लेगके कीडों को मृत्यु होती है। रोगीके घरमे ज्यादे भीड न करना चाहिये। रोगी के कमरेको जमीन रोज शुद्ध द्रव्य में कपडा भींगो अच्छी तरह पोंछना चाहिये। घरके भीतर फजूल आसवाव रखनेको कोई जरुरत नही हैं। पथ्यादि विषयमें चिकित्सक जैसा कहे वैसाही करना चाहिये इस रोगमें ज्वर के साथ गांठ भी आराम होती है। दवा के सेवनसे धीरे धीरे सब उपसर्ग भी कम होजाता है। रोगी इस समयमें बहुत दुर्बल होजाता है। यहां तक कि थोड़े ही मेहनत से उसे मुर्च्छा आजाती है। इसलिये रोगी इस बिछौने से उस बिछौने इस कमरेसे उस कमरेमे लेजानेमे बहुत सावधानी की जरुरत है अपने ख्याल और लज्जावश बहुत रोगी बिछौने पर मल मूत्र नही करते है। ऐसा न करना चाहिये प्लेग रोगीके सेवाके समय सेविकाओंको बहुत सावधानीसे चलना चाहिये सेविका जिस कपडे को पहिन कर रोगीकी सेवा करती है उस

कपड़े को पहिन कर खाना पीना न चाहिये और उस कपड़े को शुद्ध करना चाहिये। विशोधक द्रव्य न कार्बलिक साबुनसे हाथ व पांव दो तीन बार धोकर खानेको बैठना चाहिये। रोगी परित्यक्त मल मूत्र कफ, या नस्तर करनेके बाद पट्टीमेंसे निकला हुआ पीप उसकी बिछौनेमें या बिछौनेसे किसी कपड़ेमें या घरके और कोई कपड़ेमें लगना न चाहिये। बहुतेरे रोगियों के पट्टेमें नस्तर देना पड़ता है, ऐसे मोकेपर चिकित्सक जैसा कहें वैसा एक एक बार मत करनेसे बाज न आना चाहिये रोगीका व्याण्डेज कपड़ा वगैरह रोज गरम पानीमें औटाकर धूपमें सुखा लेना चाहिये। जो लोग रोज एक एक नया व्याण्डज व्यवहार करसकते है उन्हें यह उच्छिष्ट कपड़ा व्यवहार न करना चाहिये। परन्तु उस कपड़ेको आगमें जलादेनेसे सब तरह की डर दूर हो जाता है।

प्लेग निवारक व्यवस्था।—प्लेगके कीड़ेसे प्लेग होता है सही, लेकिन यह कोड़ो की बढ़न्ती व रचापाने का कारण न होनेसे देहके भीतर ताकत नहो दिखा सकता। इसीलिये रोग के बढ़न्ती की आशा कम रहती है। देह अगर ताकत वर व नीरोग रहे और रहने को जगह धूप और हवादार हो घर व आसपास के मकानों के नाला नहंमा वगैरह साफ रहे तब कोड़े देहमें घुसने परभी कोई नुकसान नहो पहुंचा सकता है लेकिन अगर घर और आसपास के मकान वगैरह बहुत गन्दे होवे और चारो तरफ मोरी नरदमासे दुर्गन्ध निकलती हो ऐसे मौकेपर प्लेग के कीड़े आदमियोंके शरीर के भीतर घुसने लग जाते है। प्लेगके प्रकोपमें अपनी गली वो महल्लेको बचानेके लिये

प्रधानतः दो विषयमें ध्यान रखना चाहिये प्रथमतः रोगीके साथ घरके और कोई आदमीको मिश्रित न होना चाहिये दुसरे अपने और पड़ोमियोके मकान के चारों तरफ खूब सफाई रखना चाहिये। मैलेहीमे प्लेग की उत्पत्ति होती है यह कहना फजूल नहो है। इसीलिये घरके चारों तरफ या कोनेमें ड्रैन या पैखाना कहीं भी किसी प्रकारका मैला जमने देना नही चाहिये। बहुत आदमी एक घरमें नही रहना चाहिये और खाने पीनेमें भी सावधानी रखना चाहिये धनी भले, आदमियो के मकानके आसपास नीच जाति की बस्ती रहती हैं स्वाभाविक इच्छा के अनुसार यह लोग प्रायः ही अपरिच्छन्न अवस्थामें रहते है बहुतेरे इन्लोगों में भुखे व आधा पेट खा कर समय बिताते है महल्ल के अवस्थापन्न आदमी अगर ऐसे मौके पर उन गरीबोंको धनसे मदद करे जिससे वेलोग सफाई रख सके अपना खाना पीना सावधानी से करे। किसी महल्लेमे यदि प्लेग की उत्पति होने की सम्भावना होवे तो अमीरो को दरिद्र व निःसहाय आदमियों के लिये थोड़ा बहुत जितना होसके चन्दाकर उन्लोगोंका दुःख निवारण करना चाहिये।

प्लेगके फैलाव के निवारण के लिये खास सर्कार और म्यु,निसिपलटीके पक्षमे नानाप्रकारके नियम प्रचलित हुये है और होरहे है। पाठकों को जाननेके लिये उसका विवरण थोडासा नीचे दिया जाता हैं। उसके अनुसार चलने से आसपास के मकान व पड़ोस प्लेगसे बच सकते है।

(१) महल्लमें किसी के घरमें प्लेग होनेसे उस गली को छोड़ देना चाहिये, ऐसा करनेसे वह गली प्लेगके उत्पात से बच सकती है। रोग की पहिली अवस्थामें कोई स्वास्थ्यकर

महल्ले में जाकर रहनेसे रोगी की जान बच सकती है और परिवारोंको प्लेग ग्राक्रान्त होनेको आशङ्का नहीं रहती है।

(२) महल्ले में यदि कोई गरीब आदमी को प्लेग होवेतो उसे मालूम कराकर निकटस्थ कोई हस्पताल में भेजना चाहिये। हस्पताल में जानेसे रोगीका जीवन बच सकता है। रोगीको हस्पताल भेजकर उसका मकान अच्छी तरहसे शुद्ध करालेना चाहिये।

(३) घरमें किसीको प्लेग होनेसे पीड़ित व्यक्तिको सुस्थ व्यक्ति के पास से दूर रखना चाहिये। रोगीको हस्पताल भेजनेमे आपत्ति होवे तो उसे अन्तत: एक अलग कमरेमें रखना चाहिये।

(४) मकान में सबसे बड़ा और लम्बा चौड़ा कमरा जिसमे धूप और हवेका पुरा इन्तजाम रहे ऐसे घरमें रोगीको रखना चाहिये। जिन्‌लोगोंको कमरेकी कमी है, उन लोगोंको दुसरे किसीके घर नही भेजना चाहिये। जोलोग खोलेके घर और खपड़ेलेमें रहते है, उन लोगों को उसी घर को जहांतक बन पड़े सफाई रखना चाहिये।

(५) रोगी के कमरेमें चिकित्सक व उसकी सेविका छोड़ और किसीको आने देना न चाहिये। घरके और किसी आदमी के साथ सेविका को मिलना जुलना न चाहिये।

(६) जिस घरमें एक बार प्लेग होगया है, उस घरमें फिरसे रहना होतो घरको पुरे तौरसे विशुद्ध करलेना चाहिये। शहरमें मिउनिसिपल्टी को खबर कर देनेसे विनाखर्च सफाईका काम हो जाता है। मफःस्सलमें जिन्‌लोगोंको घर साफ करनेकी जरुरत

पडे वेलोग सबसे पहिले घरका दरवाजा और खिड़की खोल उसमें अच्छीतरहसे धूप और हवा पहुँचने देना चाहिये, हवा और धूप प्राकृतिक संशोधक उपादान है। फिर पारक्लोराइड-अव-मार्कारि मिश्रित पानीसे घरकी दीवाल कडी आदि धोना चाहिये। यह विशोधक द्रव्य डाक्टरखानेमें मिलता है। दाम भी ज्यादा नहीं है। फिर घरमें चूनाकाम करलेना सबसे अच्छा है।

(७) कलकत्ता या और कोई बड़े शहरमें प्रवासी रूपसे रहने की इच्छा करने वाले मकानभाड़ा लेनेके आगे पहिले पता लगा लेना चाहिये कि यहां पर प्लेग रोग होनेके बाद कमरे की अच्छी तरह से सफाई हुई है कि नहीं।

(८) प्लेग-रोगी जो सब कपड़ा बिछौना और पहिनने का पोशाक व्यवहार करता है, वह रोग विषसे जहरीला होजाता है। अवस्था वैगुण्यसे इन सबको फेंक या जलादेना अथवा विशोधक चीजके मददसे अच्छी तरह से साफकर धूपमें सुखालेना चाहिये। जो लोग यह सब को जला आर फेंक सकते हैं। उनलोगों को वही करनाही ठीक है।

(९) खास गभर्णमेण्ट और म्युनिसिपल डाक्टर लोगों का सिद्धान्त यह है कि रोग तत्वको जानने वाले डाक्टर हाफकिन् के निकाले हुये बीजसे प्लेगका छापा लेनेसे प्लेग आक्रमण नहीं कर सकता या करनेसे भी वह प्राणघातक नहीं होता। छापा लेने के सम्बन्धमें भिन्न आदमीका भिन्न मत है। अभी तक इस विषयका कुछ ठीक याने पक्का सिद्धान्त नहीं हुवा है। जोलोग अच्छा समझते हैं वे लोग लेसकते हैं।

(१०) जिस जगह प्लेगदेखाई दे वहां भीड कमानेकी कोशिश करना चाहिये (याने ज्यादे भीड़ न होने देना चाहिये)।

घरके एक कमरेके चार या पांच आदमी सोते हैं, नाना स्थानसे पाहुने भी आकर कुछ दिन के लिये आकर रह जाते हैं। एक घरमें अधिक आदमी के रहनेसे प्लेगका असर बाकीयों परभी पड सकता है।

(११) प्लेगके के समय हर घरवालेको चाहिये कि अपने घरके चारोतरफ की मोरी नदमा वगैरह को फिनाईल और विशोधक चीजसे सफाई करना चाहिये। रोगके बढ़नेके वक्त हररोज ऐसा करनेमें बहुत अच्छा है। लेकिन अवस्था के अनुकूल न होनेसे हफ्तेमें कम से कम तीनदिन इस तरफ ध्यान रखना चाहिये।

(१२) सिर्फ अपनेही सफाई के साथ रहनेसे नहीं चलेगा पड़ोसी को भी सफाई रखनेको जरूरपना समझा उसको समय के माफिक कर्त्तव्य पालन करनेमें बाध्य करना चाहिये। हरेक गलीके पढे लिखे आदमी यदि अज्ञ और निरक्षर आदमियों को घर वगैरह और उसके चारोतरफ सफाई रखनेकी आवश्यकता समझा काम करानेसे गली प्लेग मुक्त हालतमें रह सकती है।

(१३) नीचेके कमरेमें प्लेग ज्यादातर हुवा करता है। उपर के घरमें धूप और हवेका बन्दोबस्त रहने से रोगके बढ़नेकी उमेद कम रहती है जिन लोगों का पक्का मकान है उन लोगोंको प्लेग के समय दोतल्ले पर रहना चाहिये।

(१४) जो लोग नीचेके घरमें रहते हैं और जिनलोगोंको वहां मकान के सिवाय रहनेका और कोई उपाय नहीं है। वेलोग रहनेकी जगह खुब साफ और परिष्कार रखें। हर रोज बराबर सवेरे खिडकी खोल शुद्ध हवा और धूप पहुंचाना चाहिये।

तथा हररोज सवेरे किवाडो और खिड़की खोलकर धूप और हवा का निकास कर देना चाहिये.

(१५) बहु तेरोंका मत है कि प्लेग बहुत संक्रामक होने परभी प्लेग रोगीके शरीरमे संक्रामकत्व नही रहता रोगीके घरका मैला, कलवार अशुद्ध हवा, गन्दा कापड़ा आदि संक्रामक है। यथासाध्य उन सबोंको त्याग करना चाहिये।

(१६) चेचक रोगी का विष हवेसे चारो तरफ फैलता है। लेकिन प्लेग का विष जमीन मे ही रहता है (यानि एक जगह से दुसरे जगह नही जाता) प्लेग दुषित जमीन पर ही चूहे मरते है। जिस विषसे चूहे आंक्रान्त होते है। उस विषसे बच जाना मनुष्य के लिये असम्भव है। इसीलिये उस जमीनको अच्छी तरह से पारक्लोराइड अफ मार्कारि द्रव्यसे विशोधन करलेना चाहिये।

(१७) किसी जगह में ज्यादा चूहा मरता होवेतो वहां समझना चाहिये कि यह जगह पुरे तौर से विषाक्त होगयी है जीते चूहे को ढंगसे मार डालना चाहिये। अगर किसी घरमें चूहा मरेतो उसे चिमटा व ग्रंड़सी से पकड़ किरोसिन तेलमे भिंगो कर जला देना चाहिये। मरे चूहेको हाथसे छूना बडा विपजनक है।

(१८) ऐसे वक्त चूहा अगर काटे तो उसीवक्त डाक्टर खानासे कार्बालिक लोशन या और कोई विशोधक चीज मंगाकर काटे हुवे स्थानको धो डालना चाहिये।

(१८) प्लेग के समय व्यर्थ धूपमे न फिरना चाहिये, भुखे न रहना चाहिये, रातभर जागना और ज्यादा मेहनत

करना मना है। इन सब कामोंसे देहमें कान्ति और ताकतकी कमी होती है।

(२०) हरवक्त बुरे ख्याल न करना चाहिये, घरमें व घरके पास प्लेग हुवा है सुनकर अपने आपसे बाहर न होइयेगा। विपद् के समय चित्तकी दृढ़ता होना अत्यावश्यक है।

(२१) घरके सामने महीन चूना छितरा देना चाहिये। नंगे पांव कभी भी घूमना नहीं चाहिये। भूखे कभी भी किसी रोगी के पास न जाना चाहिये।

(२२) धूप, शुद्ध हवा और अग्नि यही तिन प्रकृति प्रदत्त दवा है। घर को साफ और उजियाला रखना ही संक्रामकता के नाशका प्रधान उपाय है।

(२३) प्लेग के प्रकोप के वक्त देह को हर तरह से साफ रखना चाहिये। रोज सवेरे प्रातःकृत्य समापन कर शरीर का धूला व कादेको अच्छी तरह से दूर करना चाहिये। नहानेके वक्त बहुतसा कड़वा तेल बदनमें मलकर नहाना चाहिये। जो लोग साबुन इस्तमाल करते है। उन लोगों को इस मौके पर साबुन इस्तमाल न करना चाहिये। शुद्ध सरसोंका तेल शरीर के छिद्र को कार्य्यशील करता है। इसीलिये उसके भीतर की मैल वगैरह समड़े के साथ बाहर निकल आती है।

(२४) कामकाज के अनुरोधसे सबको बाहर जाना पड़ता है। हर बार बाहर से भीतर आनेके वक्त मुंह नाक अच्छी तरह से साफ करलेना चाहिये।

(२५) दुर्गन्धमय मोरी व नर्दमा के पाससे जाना पड़े तो नाक अच्छीतरह बन्द कर जाना चाहिये। एक रुमाल इत्र वगैरह लगा सूंघना चाहिये।

(२६) सवेरे और शामको भीगी कपड़ेसे बदनको अच्छी तरह पोंछलेना चाहिये। नहानेसे आगे या बाद इसके सिवाय शरीर के लोमकूप साफ और कार्य्यक्षम रखने का उपाय दूसरा नही है।

(२७) हाथ या पावका नाखून बडा होनेसे उसके भीतर मेला जमता है। इस मैले में नाना प्रकार के नुख्सान करने वाली चीजें रहतीं है। महामारी प्रकोपके समय हफ्तेमें दो दिन नाखून कटवा देना चाहिये। इस वक्त चित्तको धर्मबलसे बलीयान करना चाहिये क्योंकि चित्तबल ही श्रेष्ठ बल है।

(२८) हररोज दोनो वक्त खाना खाने-के पेश्तर हाथ, पाव के नाखून को अच्छी तरहसे साफ करलेना चाहिये। हिन्दु लोग अंगुली के मददसे खाना खाते है। ऐसा करनेसे खानेके चीजमें नाखून का मयला मिलजाने का डर नहीं रहता।

(२८) हिन्दु मात्र ही सवेरे प्रातःकृत्यसे छुट्टी पा रातके कापडे को बदल देते है। प्लेग के प्रकोपके समय दिनभर जिस कापडे को इस्तमाल करेंगे उसे रातको इस्तमाल न करना भीतरके कापडेमें शरीर का मयला जमजाता हैं। इसलिये इसे दो एक दिन में साफ करलेना चाहिये।

(३०) जो लोग घरके अच्छे है और घरमें गोशाला अस्तबल रखते हैं। घरके सफाई के साथ साथ अस्तबल वगेरह कोभी सफाई के तरफ ध्यान रखना चाहिये। घरमें पाले हुवे पची और जानवर रहे तो उन्हे उसे दूसरे जगह हटा देना चाहिये। कारण पशु पची प्लेग के प्रकोप को बढानेमें मदद करते है।

(३१) पायखाना, ड्रेन, नाला मोरी वगेरह को साफ रखनेकी बात पहिले ही कही जा चुकी है। फिनाइल बाजारमें

बनिया व डाक्टरखाने में मिलता है। दामको कम है। अगर कोई नाली व मोरी में से दुर्गन्ध निकले, तब समझना चाहिये कि वह अच्छी तरह से साफ नहीं है। एक बालटी व लोटा में थोडासा फिनाइल के साथ चगुना पानी मिला इन सब स्थानोंमें रोज डाल देना चाहिये। सामान्य दो चार आने की किफायत कर फिर सैकड़ों रुपये डाक्टर बुलाने में खर्च करना बुद्धिमानों का काम नहीं है।

(३२) बजार की मिठाई का खाना एकदम निषिद्ध है अपने घरमेंही जलपानका बन्दोबस्त करलेना चाहिये। इसमें खर्च कम होता है और साथही साथ रोगाक्रमण का डर नहीं रहता दोकान की मिठाई हरवक्त धूला मक्खी मैला आदि सब चीज पड़ी रहती है। बाजार से तरकारी वगैरह भी घर लेजानेसे पहिले अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

(३३) मक्खी व मच्छडसे खाद्य द्रव्यमें रोग बीज संचारित हो सकता है। इसलिये खाने के चीजोंको हरवक्त ढांक रखना चाहिये। जिस खानेकी चीज में मक्खी व मच्छड पड़ जाय तो उसे न खाना चाहिये।

(३४) १ आउन्स कार्बलिक एसिड् १८ आउन्स गरम पानी के साथ मिलानेसे कार्बलिक लोशन तैयार होता है। फिनाईल लोसन भी ऐसे ही तैयार होता है। Cholonde of lime (Bleaching powder) का दाम कम है। एक छटाक Chloride of lime तीन सेर पानी में मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ब्लिचिं पाउडर व कार्बलिक पाउडर को छितरा देनेसे संक्रामता दो नाश व भूमिकी शुद्धता होती है। प्लेग के समय इन सब को सहायता से खूब सफाई चारोतरफ रखना चाहिये।

प्लेग बीज को नाश करनेका उपाय।—
आगे कहा गया है कि स्वास्थ्य विधानानुमोदित थोडेसे रासायनिक द्रव्य के मददसे रोगके गिल्टो व माइक्रोब नष्ट हो सकता है। यह रसायन चीजे कलकत्ते के दरदवाखानेमें मिलतीहै मफःस्सिल के बड़े बड़े डाक्टरखानों में भी मिलती है। इसका दाम भी इतना थोडा है कि भविष्यत् में सैकडों रुपये चिकित्सा के लिये खर्च करने के सामने यह कुछ नहो है। रोग होने पर उसे आराम करनेके लिये चिन्ता न कर धैर्य्य धारण करना चाहिये और जिससे घरमें रोग अपना असर न जमा सके वैसी कोशिश करना चाहिये। आजकल कलकत्ते व और और जगहों में लोग बड़े बड़े डाक्टरखानोंसे डिसइनफेक्टान्ट या विशोधक द्रव्य खरोद कर रोज अपने मकान को सफाई किया करतें है। इसे समयोचित शुभ्र चिह्न बोलना चाहिये। विशेषतः प्लेग के फैलनेके समय ऐसी व्यवस्थासे यथेष्ट लाभ होसकता है। जो सब दवायें गिल्टो नाशक और जीव के जीवन रक्षामे मदद पहुंचाती है, तथा जो सब हालत मनुष्योंके आयत्ताधीन है हम यहां उसके कई एक सहज उपाय का उल्लेख करते हैं।

जिस जमीन पर प्लेग के कीड़े फले और जिस वायुके झोंकमें कोड़े इधर उधर फिरतें हैं तथा जिस सूर्य्यकिरण मे रोग जीवाणु अपना अस्तित्व स्थाई न रख सके। उसी जमीन पर हवा और धूप सर्व्वश्रेष्ट विशोधक पदार्थ है। घरकी खिड़की व किवाड खोलदेनेमें या घरके भीतर अग्निजलाने से सहजही में कीड़े मर जातें है। इङ्गलण्ड वगैरह देशमें कमरेके भीतर अग्नि जलानेका नियम है। शीत प्रधान देशमें गरम हवा के लिये सोसब कमरें तैयार होतें है। वे सब विशेष प्रक्रियासे बने रहते है। लेकिन

हमारे गरम देशमें इन सबका प्रयोजन नहीं है। दोपहर के वक्त ३।४ घन्टा घर के किवाड व खिडकी खोल दिया जाय तो सहजहीमें कीडे मर जाते हैं। २४० से २५० डिग्री फारेनहिट तापसे कीडे नष्ट हो जाते हैं। सूर्य्य किरणसे यह ताप संग्रह करना बहुत कठिन है। घरके सब जगह में व उसके भीतर वाली चीजोंमें जिसमें खूब ज्यादा सूर्य्य किरण पडे वैसी व्यवस्था करना। इसके बाद फिर पानी। दुषित जलको अच्छी तरह गरम करने हीसे रोग बीज नष्ट होता है। रासायनिक विशोधक द्रव्यको उस गरम जलमें मिला रोगीके कपडेको धोना चाहिये। धोनेसे कपडा निर्दोष होजाता है, और उसके भीतर वाले कीडे भी नष्ट होजाते हैं।

इस देशके राजधानियोंमें म्युनिसिपल्टी के परिशोधक वाष्पागार या Disinfecting chamber है। इङ्गलैंडमें ऐसी कोई म्युनिसपल्टी नहीं है जहां यह न हो। गृहस्थ के घरमें इसका बन्दोबस्त होना बहुत कठिन है। गद्दी, गलीचा, तकिया, कम्बल वगरह जिसे घरमें गरम पानीसे धोने लायक नहीं है ऐसी चीजों को म्युनिसिपल्टी के वाष्पागारमें भेजना चाहिये।

कार्बोलिक एसिड से भी रोगबीज नष्ट होता है। लेकिन यह बहुत तीव्र विष है। इसको घरमें खूब सावधानी से रखना चाहिये। लडके वाले इसके पास न जासकें वैसी व्यवस्था करना चाहिये। कान्भर्टका क्रामिड सबसे बढ़िया विशोधक पदार्थ है। आजकल इस देशमें रासायनिक पदार्थ बनानेके कारखाने भी कार्बोलिक एसिड बनता है। यह लोशन की तरह व्यवहार होता है। एक पाइंस एसिड व १८ पाइंस गरम पानी मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है उससे बदन का चमडा व दूषित कपडे बगैरह गन्ध

किये जा सकते है। रोगो की पिकदानो मे इस विशोधक, द्रव्यको डाल देना चाहिये। एक आउंस कार्व्वलिक आसिड को दश गुने पानोके साथ मिला घरका कपडा मैला पिसाव वगैरह सब चीजों की सफाई करना चाहिये। कार्व्वलिक लोशन हाथ पांव वगैरह धोनेमे भो व्यवहृत होता है। कार्व्वलिक पाउडर बाजार में मिलता है। लेकिन जहांपर ऐसे सबोते का अभाव है। वहां पर एक आंउस कार्व्वलिक आसिड् के साथ आधासेर बालु मिलाकर पाउडर बनाया जा सकता है। इसी ड्रेन मोरी व नालीमें देनेसे प्लेगके कोडे नष्ट होते है।

क्लोराइड अफ लाइम एक दामी चोज है, यह आध सेर २ सेर पानी के साथ मिलाकर जो मिश्र बनता है उससे ड्रेन, पायखाना वगैरह साफ हो सकता हे। यह एक छटाक तीन सेर पानी के साथ मिला घरके असबाब वगैरह विशोधित हो सकतें है। किरोसिन् सब्लिमेट या रस कपुर बडा विषाक्त पदार्थ हैं। इसको मिलानेमें थोडो नैपुण्यता को जरुरत है। इससे डाक्टर खाने से इसको बनवा लेना चाहिये। इसे खुब सावधानी मे रखना चाहिये। रोगीका मयला व मयलायुक्त कपडा घरकी दिवाल वगैरह इनोसे धो लेना चाहिये सलफेट अफ आइरन या सोराकस डेढ सेर ३ सेर पानीके साथ मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ड्रेन व रोगी के मलपात्रको विशोधन करनेमे इसको बहुत आवश्यकता है। पायखाने के लिये भी यह इस्तमाल किया जा सकता है, बजारमें (Condy's flied) नामक एक प्रकार का लोशन बिकता है। यह पार्म्मागानेट अफ पटास का सत् है। एक छटाक Condy's flied को तीनसेर पानीके साथ मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है। उसे सेविका व घर

के और लोगों के हाथपांव धोनेमें जरूरत पड़ सकता है। कै वगैरह भी इसी से धोया जाता है। गन्धक जलाने से जो भाप निकलता है उसे सालफुरिक आसिड ग्यास कहते हैं। घर साफ करने में यह इस्तमाल होता है। किवाड़ व खिड़की अच्छी तरह से बन्दकर शोधन करने लायक कपड़ोंको रस्सी के ऊपर झुला रखना घरकी दीवाल, छत् वगैरह को अच्छीतरसे पानी से तर करना। १८०० फिट स्थान को विशोधन करने वक्त निम्न-लिखित उपाय अवलम्बन करना चाहिये। एक सेर गन्धक तोड़कर छोटा छोटा टुकड़ा करना फिर एक मिट्टीके बर्त्तन में मिथिलेटेड् स्पिरिट की एक बाल्टी पानी के ऊपर रखना चाहिये। उसके बाद स्पिरिट को जला घरको चारो तरफ से बन्द करदेना चाहिये। २४ घंटे ऐसा करने के बाद किवाड़, खिड़की को खोल शुद्ध हवा आनेदेना चाहिये। स्पिरिट के अभाव में मिट्टी के पात्रमें भी गन्धक को जलादेने पर भी काम चल सकता है।

प्रस्तावना।

आयुर्वेद चिकित्सापर जो साधारणका मनोयोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, यह अवश्य बड़े आनन्दका विषय है। जिन सब असाधारण गुणोंके बलसे आयुर्वेद चिकित्सा सब चिकित्सासे श्रेष्ठ है, वही सब रहस्य जाननेके लिये लोग व्यग्र हो रहे हैं। पर आयुर्वेद शास्त्रके सब ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रहनेके सबब दरिद्र भारतवासीको अर्थकारी विद्या अंगरेजी आदि सीखनेके बाद संस्कृत पढ़नेका अवसर नहीं मिलता; सुतरां लोग अपना मनोरथ पूरा करनेमें समर्थ नहीं होते हैं। साधारणकी सुबीतेके लिये कई महात्माओंने कई एक सानुवाद आयुर्वेद ग्रन्थको प्रचारकर संस्कृत न जाननेवालोंको आयुर्वेद शिक्षाका सुबीता किया है। तथापि वर्त्तमान समयमें विविध ग्रन्थ अनुशीलनके लिये चाहिये जैसा अवकाश न रहनेके सबब उक्त ग्रन्थोंसे लोगोंका मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। इधर बहुतेरे लोग हिन्दी भाषाके केवल एक ग्रन्थसे चिकित्सा शास्त्रकी सब बातें जानना चाहते हैं; ऐसी पुस्तकके अभावसे लोगोंकी प्रबल इच्छा चिकित्साशास्त्र जाननेकी पूरी न होनेसे दुःखित हो रहे हैं। तथा रोग-प्रवण भारतवासी प्रत्येक गृहस्थको चिकित्सा विषयमें व्युत्पत्ति होना भी एकान्त आवश्यक हो रहा है; कारण बहुतेरे चिकित्सकशून्य स्थानवासियोंको उपयुक्त चिकित्सकका अभाव और दरिद्रोंको चिकित्सोपयोगी अर्थके अभावसे दारुण रोग यन्त्रणा भोगकर अकालमें कालके कवलमें पड़ते दिखाई देता है।

मैंने यही सब बातें विचारकर प्रत्येक मनुष्य सहजमें चिकित्सा कर सकें इस आशासे "वैद्यक शिक्षा" नामक यह पुस्तक तयार किया है। इसमें यथाक्रम स्वास्थ्यरक्षा, रोगपरीक्षा, सब रोगोंका निदान, लक्षण और प्रणाली, रोग विशेषमें औषधप्रयोग तथा पथ्यापथ्य, काढ़ा, औषध; तैल, घृत, मोदक, मकरध्वज आदि बनानेकी विधि और धातु आदिका शोधन, मारण आदि विषय इसमें सन्निवेशित किया गया है। आयुर्वेद-शास्त्रके भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें हरेक रोगोंपर बहुतेरी दवावें लिखी हैं, उनमें से जो जो दवायें प्राय सब चिकित्सकोंके द्वारा व्यवहृत होती है, तथा जो सब दवायें हमारे कुलपरम्परासे व्यवहार कर हर १ रोगोंपर परीक्षाकर अव्यर्थ स्थिर हुई हैं; इस ग्रन्थमें वही सब परीक्षित दवायें सन्निवेशित की गई है। अव्यवहृत या कदाचित व्यवहृत दवायें जान बूझकर त्याग की गई है, और जहांतककी साधारण व्यक्तिमात्र जिसमें केवल इसी पुस्तकके सहायतासे बिना किसीका उपदेश लिये चिकित्सा कर सके, तदपयुक्त यह पुस्तक बनानेकी चेष्टा की गई है। अब गृहस्थ मात्र यदि चिकित्सामें व्युत्पत्ति लाभकर परिवारवर्ग और अपने शरीरको निरोग रख सकें तब यह परिश्रम सफल हुआ समझूंगा।

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।

मेदो रोग।

उदर रोग।

शोथ रोग।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला।

श्लीपद।

विद्रधि व्रण।

भगन्दर।

उपदंश और व्रण।

कुष्ठ और श्वित्र।

शीतपित्त।

अम्लपित्त।

विसर्प और विस्फोट।

रोमान्ती और मसूरिका।

क्षुद्ररोग।

मुखरोग।

कर्णरोग।

नासारोग।

बालरोग।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

धातु आदिकी शोधन और मारण विधि।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।

प्लीहा और यकृत्।

रक्तपित्त।

राजयक्ष्मा।

कासरोग।

हिक्का और श्वास।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला।

श्लीपद।

विद्रधि और व्रण।

भगन्दर।

उपदंश।

कुष्ठ और श्वित्र।

चतुर्थ खण्ड।

विष चिकित्सा।

वैद्यक-शिक्षा

पञ्चम खण्ड।

वैद्यक-शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

धात्री-विद्या।

सूचीपत्र सम्पूर्ण।

वर्णानुक्रमिक निर्घण्ट ।

फ।

शास्त्रीय औषध।

ब।

शास्त्रोक्त औषध।

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध।

ष।

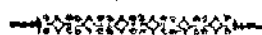
शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध ।

সূচীপত্র সম্পূর্ণ।

॥ श्री ॥

अथ स्त्रीचिकित्साविषयानुक्रमणिका.



॥ श्रीः ॥

अथ स्त्रीचिकित्सा ।

भाषानुवादसमलङ्कृता ।

गौरीसुतं साम्बमुमापतिं च नत्वाऽथ धन्वन्तरिमादिवैद्यम् ॥ ग्रन्थान् समालोच्य पुरातनानां नारीचिकित्सां सुगमां करोमि ॥ १ ॥

अर्थ–गौरीके पुत्र गणेशजीको और पार्वतीजी तथा महादे को तथा आदिवैद्य धन्वंतरिजीको नमस्कार करके पुरातन र्वत् सुश्रुतादि आचार्योंके ग्रंथोंको देखकर सुगम नारीचि- । यानी स्त्रीचिकित्सा नामक ग्रंथको रचताहूं ॥ १ ॥

अथ सोमरोगाधिकार, तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विका संप्राप्तिः ।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि ॥ अतिसारकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ २ ॥

अर्थ–अब सोमरोगका अधिकार कहतेहैं–तहां प्रथम सोमरोगका निदान और संप्राप्ति कहतेहैं । स्त्रियोंके ज्यादा मैथुन करनेसे वा शोकसे तथा श्रम वा अतीसार बीमारीके योगसे तथा कोई विषयुक्त वस्तु खानेसे यह सोमरोग होताहै ॥ २ ॥

आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ॥
तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गे व्रजन्ति हि३

अर्थ-तब संपूर्ण शरीरमें स्थित हुए जल क्षोभ (चंचलता) को प्राप्त होकर झिरने लगजातेहैं. तिस स्त्रीके संपूर्ण शरीरसे झिरके निकलाहुआ जल मूत्रमार्गमें आजाताहै ॥ ३ ॥

तस्य लक्षणमाह ॥

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः॥
स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला
॥ ४ ॥ वेगं धारयितुं तासां न विन्दाति सुखं
क्वचित् ॥ शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च
शुष्यति ॥ ५ ॥

अर्थ-तिसका लक्षण-तब वह स्त्री स्वच्छ विमल शीतल और दुर्गंधरहित तथा पीड़ारहित सफेद मूत्रको वारंवार मूतै और मूत्रका इतना वेग आवै कि वह दुबली होजाय तथा मूत्रके वेगको रोक नहीं सके. ऐसी उन स्त्रियोंको कभी सुख नहीं होताहै. और उनका शिर शिथिल होजाताहै मुख और तलुआ सूखा करताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ॥
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥६॥
सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ॥
ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥ ७॥

अर्थ-मूर्च्छा होय, जँभाई आवे, प्रलाप हो, त्वचा

बहुत रूखी पड़जाय और खाने पीनेके पदार्थोंको भोजन करके तृप्त नहीं होवे ॥ ६ ॥ शरीरमें रहनेवाले जल शरीरको धारण रखते हैं इसलिये उन जलोंको सोमसंज्ञक कहतेहैं. फिर सोमसंज्ञक उन जलोंका क्षय होनेसे स्त्रियोंके सोमरोग होताहै ॥ ७ ॥

अथ सोमरोगस्य चिकित्सा ॥

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ॥
शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ-अब सोमरोगका इलाज कहतेहैं-पकेहुए केलाके फल, आंवलोंका रस, शहद, खांड़, इन्होंको मिलाकर खावे तो सोमसंज्ञक जल शरीरमें ठीक स्थिर रहे, स्त्रियोंका मूतनेका रोग दूर हो ॥ ८ ॥

माषचूर्णं समधुकं विदारीं मधुशर्कराम् ॥ पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥९॥ स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः॥तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ १० ॥

अर्थ-अथवा उड़दोंका चून, मुलहटी, विदारीकंद, शहत, खांड़, इन्होंकी फंकी प्रातःकाल दूधके साथ लेवे तो सोमरोग दूर हो ॥ ९ ॥ जो यदि सोमरोग होवे तब दर्द होकर वारंवार मूत आता हो तो इलायचीके पत्तोंके चूर्णको फंकी देकर नवीन मदिरा पिलावे ॥ १० ॥

जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् ॥ पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ११ ॥ तक्रौदना-

हाररता सम्पिबेन्नागकेसरम् ॥ त्र्यहं तक्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रदरशान्तये ॥ १२ ॥

अर्थ-अथवा आंवलोंको जलमें पीस कल्क बनाकर तिसमें शहत और खांड़ मिलाकर जलके साथ तीन दिन पीवे तो सफेद प्रदर यानी सोमरोग दूर हो ॥ ११ ॥ जो स्त्री तक्र (छाछ) के साथ चावलोंका भोजन करे और नागकेसर पीस तक्रके साथ तीन दिनतक पीवे तो सोमरोग दूर हो ॥ १२ ॥

इससे उनकी शुद्धि होजातीहै; इसलिये जैसे पुरुषोंके प्रमेह-रोग होताहै ऐसा प्रमेहरोग स्त्रियोंको नहीं होताहै. प्रमेह नाम इंद्रियद्वारा पतली धातुके गिरनेका है ॥ १४ ॥

॥ इति सोमरोगचिकित्सा ॥

अथ प्रदररोगचिकित्सा ॥

दार्वी रसाञ्जनं वासा रुष्कराब्दं किरातकम् ॥
सविल्वं घृतमेतेषां मधुना सह या पिबेत्॥१५॥
वामाऽतिबलमाहन्यात्प्रदरं श्वेतपातकम् ॥ सशू-
लं नीलवर्णं च तस्यार्थः स्फुट ईरितः ॥ १६ ॥

अर्थ-दारुहलदी, रसौत, अडूसा, भिलावां, नागरमोथा, चिरायता, वेलगिरी, इन सबोंको जलमें डाल काथ बना तिस काथमें घृत डालकर संपूर्ण काथ जलजावे तबतक घीको सिद्ध करे फिर इसमें सहत डालके पीवे तो स्त्रीके सफेद, काले, पीले, नीले, अनेक प्रकारके शूलयुक्त प्रदर (पैरारोग) दूर होवें ॥ १५ ॥ १६ ॥

उद्धृत्य कुशमूलं च पिष्ट्वा तन्दुलवारिणा ॥
पीत्वैव त्रिदिनान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-कुशकी जड़को चावलोंके पानीमें पीस तीनदिनतक पीवे तो स्त्रीका प्रदर रोग दूर हो ॥ १७ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निपीय वह्वेर्बलादेकमहो
द्व्यहं वा ॥ स्त्रियस्त्र्यहं वा प्रदरं स्रवन्त्यः प्रसह्य
पारं परमाप्नुवन्ति ॥ १८ ॥

अर्थ-मूसेकी मींगनको गौके दूधके साथ वा बकरीके दूधके साथ जठराग्निका बलाबल विचारके एकदिन वा दो दिनतक पीवे तो स्त्रियोंका अत्यंत प्रदर (पैरा छूटना) शीघ्रही बंद हो ॥ १८ ॥

अशोकवल्कलं पिष्ट्वा सतार्क्ष्यं तन्दुलाम्भसा ॥
सक्षौद्रं तद्रसं पीत्वा प्रदरान्मुच्यतेऽङ्गना॥१९॥
भूम्यामलकमूलं तु पीतं तन्दुलवारिणा ॥ द्वि-
त्रिरेव दिनैर्नार्याः प्रदरं दुस्त्यजं जयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-अशोकवृक्षकी छाल और रसौत इन दोनोंको चावलोंके पानीमें पीसकर तिस जलमें शहद मिलाकर पीवे तो स्त्रीका प्रदररोग दूर हो ॥ १९ ॥ भूंईआवलेकी जड़को चावलोंके पानीमें पीसकर दो दिन अथवा तीनदिनतक पीवे तो स्त्रीका दारुण प्रदररोग दूर हो ॥ २० ॥

तन्दुलीयकमूलं च लाक्षारसमथाञ्जनम् ॥ सम्पि-
ष्याजेन पयसा मधुनाज्येन या पिबेत्॥असृग्दरं
निहन्त्येव ह्यवश्यं सप्तवासरात् ॥ २१ ॥ दध्ना
सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ पिबेत्
क्षौद्रयुतं नारी वाताऽसृग्दरशान्तये ॥ २२ ॥

अर्थ-चौलाईकी जड़, लाखका रस, रसौत इन सबोंको बकरीके दूधमें पीस शहत और घृत मिला बकरी वा गौके दूधके साथ सातदिनतक पीवे तो प्रदररोग दूर हो ॥ २१ ॥ सोरा, जीरा, महुआके पुष्प, नीला कमल, इन्होंको

पीस दही और शहत मिलाकर पीवे तो वातका प्रदर रोग दूर हो ॥ २२ ॥

धातकीकुसुमं बोलं मूषकस्य मलं समम् ॥
चूर्णं टङ्कप्रमाणेन देयं प्रदरनाशनम् ॥ २३ ॥

अर्थ–धायके फूल, बीजबोल, मूसाकी मींगन, इन्होंको समान भाग ले चूर्ण बना फिर चार ४ मासे इस चूर्णकी फंकी लेवे तो प्रदररोग दूर हो ॥ २३ ॥

लाक्षा कर्षमिता पीता गोदुग्धे पलपञ्चके ॥
त्रिदिनात्प्रदरं नार्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥२४॥

अर्थ–और दश १० मासे लाखको पीस पावभर दूधके साथ तीनदिनतक फंकी लेवे तो स्त्रीका प्रदररोग और रक्तपित्त दूर होवे ॥ २४ ॥

पक्कं फलं कदल्या धात्रीचूर्णेन संयुतं वाले ॥
मधुसंयुतं निहन्यात्प्रदरं तद्वच्च सोमगदम् ॥२५॥

॥ इति श्रीवेरीनगरनिवासिद्विजशाल्ग्रामात्मजबुधव–
सतिरामसंगृहीतस्त्रीचिकित्सायां सोमरोगप्रदररोग-
प्रकरणम् ॥ १ ॥

अर्थ–केलाके पकेहुए फलमें आंवलेका चूर्ण, शहद, फिर शहत मिलाके खावे तो प्रदर (पैरा) और सोमरोग दूर होवे ॥ २५ ॥ इति श्रीवेरीनिवा० बुधवसतिरामसंगृहीत-स्त्रीचिकित्सायां तद्विरचितभाषाटीकायां सोमरोगप्रदररोग-प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ वन्ध्यारोगप्रकरणम् ॥ तत्रादौ योनिरोगचिकित्सा ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥
सौरभेयं पयो वापि ससितं स्त्री यथाबलम् ॥ १ ॥

अर्थ—अब वंध्यारोगप्रकरण कहतेहैं. तहां पहले योनिरोगकी चिकित्सा कहते हैं—आंवलोंके रसमें मिश्री मिलाकर पीवे तो योनिका दाह दूर होवे. अथवा जठराग्निके बलके अनुसार गौके दूधमें मिश्री मिलाकर पीवे तो योनिका दाह जाय ॥ १ ॥

कासीसकांक्षी धवपुष्पकं च जम्ब्वाम्रजास्थि
त्रिफलं सुपिष्टम् ॥ क्षौद्रेण पैच्छिल्यहरं प्रयुक्तं
वैशद्यकृद्योनिरुजापहारी ॥ २ ॥

अर्थ—हीराकसीस, फिटकरी, धायके फूल, जामुन, आंबकी गुठली, त्रिफला, इन सबोंको पीस शहत मिला तिसकी पोटली बनाकर योनिमें रक्खे तो योनिका गीलापन व चिकनाई दूर हो और योनिके सब रोग दूर होवें तथा योनि स्वच्छ (विशद) होजावे ॥ २ ॥

जम्बूफला समङ्गा मोचरसैः सर्जधातकीसहितैः ॥
दौर्गन्ध्यपिच्छलत्वक्लेदेषु स्तम्भनं चूर्णम् ॥ ३ ॥

अर्थ—गुठलीसहित जामनके फल, मोचरस, राल, धायके फूल, इनका चूर्ण बना पोटली बना योनिमें धारण करे तो योनिकी दुर्गंधि, चिकनाई, गीलापन, रुधिर गिरना, ये सब रोग दूर होवें ॥ ३ ॥

अथ योनिकन्दरूपं चिकित्सा च॥

पूयशोणितसङ्काशं लकुचाकृतिसान्निभम्॥ जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः॥४॥

अर्थ—अब योनिकंदका स्वरूप और चिकित्सा कहतेहैं—लकुच (बड़हल) के समान गोल गांठ योनिमें होजाय तिसमें लोहू झिरै वह योनिकन्द कहलाताहै॥ ४॥

गैरिकाम्रास्थिजन्तुघ्नरजन्यञ्जनकट्फलाः॥ पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः॥ ५॥

अर्थ—गेरू, आंवकी गुठली, वायविड़ंग, हलदी, रसौंत, कायफल, इन्होंका चूर्ण कर तिसमें शहत मिलाकर योनिमें धरे तो योनिकंद आदि योनिके रोग दूर होवें॥ ५॥

त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेवयेत्॥ प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते॥ ६॥

अर्थ—अथवा त्रिफलाके काथमें शहत मिलाकर तिससे योनिको धोवे तो स्त्रीका योनिकंद रोग दूर होवे॥ ६॥

अथ योनिरोगनिदानम्॥

अत्यानंदा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण विन्दति॥ कर्णिन्यां कार्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते॥७॥

अर्थ—अब योनिरोगका निदान कहतेहैं—जो स्त्री मैथुनकरनेके समय अत्यंत आनंद पावे, विषयसे तृप्त नहीं हो, उसकी योनि अत्यानंदा कहलातीहै. और जिसकी योनिके

भीतर चौगिर्दसे खड़ीसी मांसकी गांठ कफ और रक्तके उपद्रवसे होजावे वह कर्णिनी योनि २ कही है ॥ ७॥

मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ॥
बहुशश्चातिचरणात्तयोर्वीर्यं न तिष्ठति ॥ ८॥

अर्थ-जो स्त्री मैथुन करतेसमय पुरुषसे पहले स्खलित होजावे उसकी योनिका नाम चरणा है ३ और जो अनेकवार बहुत ज्यादा स्खलित होवे वह अतिचरणा योनि कही है ४ इन दोनों योनियोंमें पुरुषका वीर्य नहीं ठहरता है ॥ ८ ॥

श्लेष्मला पिच्छला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-कफके दोषवाली योनि शीतल फेनोंवाली होतीहै और खाज उठती है, व गीली रहतीहै, पहली इन चार प्रकारकी योनियोंमें कफदोषका चिह्न बढ़ाहुआ जानना ॥ ९ ॥

अनार्त्तवाऽस्तनी पण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने ॥
महामेढ्रगृहीताया बालाया अण्डिनी भवेत् ॥१०॥

अर्थ-अनार्तवा यानी जो रजस्वला नहीं होती हो १ जिस स्त्रीके स्तन छोटे २ हों वह पण्ढी २, खरस्पर्शा यानी मैथुनसमय खरधरे स्पर्शवाली ३, जो स्त्री बालक अवस्थामें दीर्घ लिंगवाले पुरुषके साथ मैथुन करे, तिसकी योनि नीचेको लटक जाय वह अंडिनी ४, ऐसे ये सब योनियां गर्भको धारण नहीं करतीहैं ॥ १० ॥

अथ चिकित्सा ॥

कर्णिन्यां वर्त्तयो देयाः शोधनद्रव्यनिर्मिताः। गुडूची त्रिफला दन्ती क्वथितोदकधारया॥योनिं प्रक्षालयेत्तेन तत्र कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ११ ॥

अर्थ-जो कर्णिनी योनि कही है उसमें शोधन द्रव्य यानी नींबके पत्तेआदिकोंकी वत्ती वनाकर धरे और गिलोय, त्रिफला, जमालगोटाकी जड़ इन्होंका काथ वना, तिसकी धारासे योनिको धोवे तो योनिकी खाज मिटै ॥ ११ ॥

कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भिषक् ॥ योनिः संकीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावयेत् ॥१२

अर्थ-कौंचकी जड़के क्वाथको वैद्य औटाकर क्वाथ बनालेवे फिर विधिपूर्वक तिस क्वाथके पानीसे योनिको धोवै तो योनिसंकोच होवे. यह इलाज अंडिनीयोनिका जानना॥१२॥

मूषकक्वाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः॥नाशयेद्योनिरोगांस्तान् धृतो योनौ न संशयः॥ १३ ॥

अर्थ-और मूसाके मांसके क्वाथमें तिलोंके तेलको पकालेवे फिर तिस तेलका फाहा भरके योनिमें धारण करे तो योनिके संपूर्ण रोग दूर होवें और योनि संकुचित होवे ॥ १३ ॥

अथ नष्टार्त्तवाचिकित्सा ॥

आर्त्तवाऽदर्शने नारी मत्स्यान् सेवेत नित्यशः ॥ काञ्जिकं च तिलान्माषानुदश्विच्च तथा दधि ॥१४॥

अर्थ-अब नष्टार्त्तवा यानी जो स्त्री रजस्वला नहीं होती है उसका इलाज-जो स्त्री रजस्वला न हो वह हमेश मच्छियोंका भक्षण करे. अथवा कांजी, तिल, उड़द, छाछ (तक्र), दही, इन्होंका सेवन करे ॥ १४ ॥

इक्ष्वाकुबीजदंती, चपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः॥
रस्नुक्क्षीरैर्वर्ति, योनिगता कुसुमं जनयति॥१५॥

अर्थ-और कडुई तुंबीके बीज, जमालगोटाकी जड़, पीपल, मैनफल, मदिराका बीज, जवोंके फोलर इन्होंको पीसकर थोहरके दूधमें इनकी बत्ती बनाकर स्त्रीकी योनिमें रक्खे तो वह स्त्री रजस्वला हो ॥ १५ ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम् ॥
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अर्थ-और मालकांगनी, तेजपात, साजीखार, वच, रयसार इनको पीसकर शीतल दूधके साथ तीन दिनतक । तो स्त्री रजस्वला हो ॥ १६ ॥

गर्भग्रहणयोग्यार्त्तवलक्षणम् ॥

शशाऽसृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरज्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-जो खरगोसके रुधिरकी बराबर अथवा लाखके की बराबर लाल हो और वस्त्रमें लगजाय तो धोनेसे र जाय यह शुद्ध रज जानना ॥ १७ ॥

अथ वन्ध्याचिकित्सा॥

सितवलातिवला गजकेशरं वटजशुङ्गमधूकसम-

न्वितम् ॥ घृतपयोमधुभिः प्रयुतं च या पिबति साऽप्यसुता सुसुतं लभेत ॥ १८ ॥

अर्थ–सफेद कंगही, खरेंहटी, नागकेशर, बड़की डाढ़ी, महुआके फूल, इन सबोंको पीसकर इनमें घृत और शहत मिला गौके दूधके साथ पीवे तो वंध्या स्त्रीके पुत्र होवे ॥ १८ ॥

यद्यश्वगन्धाशततोयसिद्धपयोघृतेनैव पिबेच्च वन्ध्या ॥ साऽप्याऽऽर्त्तवस्नानदिनात्मशुद्धा भूत्वा सगर्भा तनयं प्रसूते ॥ १९ ॥

अर्थ–जो वंध्या स्त्री आसगंधका काथ बना तिसमें घृत और दूध मिलाकर पीवे अथवा आसगंधका काथ बना तिसमें चौगुना गौका दूध पकावे फिर इसमें गौके घृतको घृतपाककी विधिके अनुकूल सिद्ध करे फिर इस घृतका सेवन ऋतुसमयमें करे तो उसके गर्भ रहे और पुत्र उत्पन्न हो ॥ १९ ॥

सवत्सैकवर्णागवीदुग्धयुक्ता जटा लक्ष्मणायाश्च कन्याप्रपिष्टा ॥ सुपुष्योद्धृता चार्तवस्नानशुद्धौ निपीतापि वन्ध्यागणैर्गर्भदा स्यात् ॥ २० ॥

अर्थ–सफेद कटेहलीकी जड़को पुष्यनक्षत्रके दिन उखाड़ लावे फिर कन्याके हाथसे पिसवावे पीछे बच्छावाली एक रंगकी गौके दूधमें ऋतुसमयमें चौथे दिन पीवे तो वंध्यास्त्रियोंके अवश्य गर्भ रहे ॥ २० ॥

धीरा स्वनाथस्य च दक्षिणे हि भागे च पर्यङ्कगता प्रसुप्य ॥ तत्सङ्गहृष्टा सुमनाः स्वनाथं भज-

न्त्स्वगर्भे विदधाति गर्भम् ॥ २१ ॥ कुरण्डमूलं धातक्याः कुसुमानि वटाङ्कुराः ॥ नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ २२ ॥

अर्थ–धीरा यानी चंचलता न करे, अपने पतिके दहिनी-तर्फ पलँगपर और पतिके संग प्रसन्नमन रक्खे इसप्रकार अपने पतिका सेवन करतीहुई उस स्त्रीके गर्भधारण होताहै ॥ २१ ॥ अन्य०–कुरंडकी जड़, धायके फूल, वड़के अंकुर, नीला कमल, इनको पीस दूधके साथ पीवे तो स्त्रीके गर्भ रहे ॥ २२ ॥

पुत्रोत्पत्तिमाह ॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी ॥
पीत्वा पुत्रत्वमाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥ २३ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके कन्या होती हों वह ऋतुसमयमें ढाकके एक पत्तेको दूधमें पीसकर पीवे तो उसके पराक्रमवाला पुत्र उत्पन्न होवे ॥ २३ ॥

शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम्॥
पीत्वाऽथो भवलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री॥२४॥

अर्थ–शूअरशिंबीकी जड़, कैथाके फलकी गुठली, शिवलिंगी, इनको पीस गौके दूधके साथ ऋतुसमयमें पीवे तो पुत्र उत्पन्न होवे; कन्या नहीं जन्मे ॥ २४ ॥

अथ हारीतसंहितामतेन वन्ध्यारोगलक्षणं चिकित्सा च ॥

॥ आत्रेयउवाच ॥ वन्ध्या स्यात्पड्प्रकारेण वा-

ल्येनाप्यथवा पुनः ॥ गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥ २५ ॥

अर्थ-अब हारीतसंहिताके मतसे वंध्यारोगका लक्षण और चिकित्सा कहतेहैं । आत्रेयजी कहतेहैं-वंध्या स्त्री छह प्रकारसे होतीहै, तहां प्रथम १ वंध्या तो बालअवस्थामें विशेप मैथुनसे गर्भाशय नष्ट होजानेसे तथा धातुक्षीण होनेसे होतीहै ॥ २५ ॥

जायते न च गर्भस्य सम्भूतिश्च कदाचन ॥ काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥ २६ ॥ गर्भस्रावी तृतीऽयाथ कथिता मुनिसत्तमैः ॥ मृतवत्सा चतुर्थी स्यात्पञ्चमी च बलक्षयात् ॥२७॥

अर्थ-तब उस स्त्रीके कभीभी गर्भ नहीं रहता है, यह एक वंध्या कही. और कहतेहैं-एक तो काकवंध्या १ दुसरी २ अनपत्या;. ॥ २६ ॥ तीसरी गर्भस्रावी वंध्या, चौथी मृतवत्सा यानी जिस स्त्रीके मसानका रोग होकर बालक मरजातेहैं, और पांचवी बलक्षय होनेसे वंध्या होजाती है, ऐसे ये ६ वंध्या जननी ॥ २७ ॥

तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ॥ अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम् ॥ तेनैव गर्भसङ्कोचं भगत्वमुपगच्छति ॥ २८ ॥

अर्थ-अब जो पहले १ वंध्या कही है उसका निदान कहतेहैं कि जिससे वह पुत्रको प्राप्त होवे, कि जो स्त्री, रज-

स्वला नहीं हुई हो उसके साथ मैथुन किया जावे तो उसका गर्भाशय संकुचित (भीड़ा) होकर भगरूप होजाता है ॥२८॥

तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् ॥
सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक्॥२९॥

अर्थ-तिस कारणसे वह स्त्री वंध्या होजाती है, विशेषकरके गर्भ धारण नहीं करती. हे वैद्य ! वह स्त्री कष्टसे यानी कोई उपाय करनेसेभी विलंबमें गर्भवती होतीहै ॥ २९ ॥

औषधैश्चोपचारैश्च सिद्धिश्चापि न संशयः ॥ अ-
नपत्याऽबलायाश्च जायते भिषजाम्वर ॥ ३० ॥
न भवेत्काकवन्ध्या च अनपत्याऽपि सिध्यति ॥
सिध्यति क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर॥३१॥

अर्थ-और हे वैद्यवर ! अनपत्या स्त्रीकी सिद्धि यानी गर्भधारणाभी औषधउपचारोंकरके होजातीहै ॥ ३० ॥ फिर वह अनपत्या गर्भवती होजावे तो फिर काकवन्ध्याभी नहीं होतीहै. और हे वैद्य ! जो स्त्री क्षीणधातु होकर वंध्या होगई हो उसकेभी गर्भ स्थित होसक्ता है ॥ ३१ ॥

अथ वन्ध्यारोगहरौषधानि ॥

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पटोलं घनवालकम् ॥
मधुकं मधुयष्टी च तथा लोहितचन्दनम् ॥३२॥
सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकञ्च पुनर्नवा ॥
क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥ ३३ ॥

अर्थ–अब वंध्यारोगको दूर करनेवाली औषध कहते हैं–चंदन, खश, मंजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआके पुष्प, मुलहटी, लालचंदन ॥ ३२ ॥ सारिवा (अनंतमूल), जीरा, नागरमोथा, पद्माक, सांठी, इनका चूर्ण बना खांड मिलावे फिर फंकी लेकर दूध पीवे तो पित्तसे उत्पन्न हुआ रजस्वलादोष शांत हो ॥ ३३ ॥

ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥
चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥३४॥
क्षीरेण लेडिता पित्ते पुष्पशुद्धिं करिष्यति॥३५॥

अर्थ–योनिको शुद्ध हुई जानकर उत्तम औषध देना, चंदन, खश, मंजीठ, सफेद गोकर्णी, इनका चूर्ण कर दूधके साथ पीवे तो पित्तरोगवाली स्त्रीके पुष्पकी शुद्धि हो ॥३४॥३५॥

त्रिदोषदूषितरजश्चिकित्सा ॥

रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम्॥सरुजञ्च सकृष्णञ्च पक्वजम्बूनिभं च यत्॥ वातेन वाधितं पुष्पं तच्च संलक्षयेद्बुधः ॥ ३६ ॥

अर्थ–अब त्रिदोषरजकी चिकित्सा कहतेहैं–जो रजस्वलाका रक्त पीड़ासहित आता हो, कालारंगका हो और पकाहुआ जामनके फलसरीखा रंग काला होवे तो उस रजस्वलाका रज, वात, पित्त, कफ, ऐसे त्रिदोषसे अथवा वा तसे विगड़ाहुआ जानना. तब पहले उस रजस्वलाकी शुद्धि करे ॥ ३६ ॥

तस्य नागरपिप्पल्यौ मुस्ता धन्वयवासकम् ॥
बृहत्यौ पाटला चैव क्राथः सगुडको दधि ॥३७॥
सप्ताहं पाययेद्धीमान्यावत्स्रवति शोणितम् ॥ वि-
शुद्धे च तथा रक्ते पाययेत्पयसाऽन्वितम् ॥३८॥
श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुञ्जा पुनर्नवा ॥ तेन
सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥ ३९ ॥

अर्थ–उसका इलाज, कहतेहैं कि–सूंठ, पीपल, नागरमोथा, धमासा, दोनों कटेहली, पाड़लवृक्षकी छाल, इन्होंका काथ बना तिसमें गुड़ और दही मिलाकर पीछे बुद्धिमान् पुरुष सातदिनतक जबतक स्त्रीके रज (रक्त) प्रवर्त्त रहे तबतक पिलावे फिर सात दिन पीछे रक्त आना बंद होजावे तब सफेद गोकर्णी, सफेद चिरमठी, सांठीकी जड़ इन्होंको पीसकर गौके दूधके साथ एक महीनातक पिलावे इसप्रकार करनेसे रजस्वलादोष यानी जामनसरीखे रंगवाला काला रक्त गिरना इत्यादि रजोदोष मिटकर उस स्त्रीके गर्भधारण रहै. यहां सफेद चिरमठी फकत् रजस्वलाकी शुद्धिमें कही है और जिसका रज शुद्ध हो उसका इलाज आगे कहेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ पित्तदूषितरजश्चिकित्सा ॥

जपाकुसुमसङ्काशं कुसम्भरक्तसन्निभम् ॥
दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं तत्पित्तदूषितम् ॥ ४०॥

अर्थ–अब पित्तदूषित रजकी चिकित्सा कहतेहैं–जासवंद (गुड़हल) के पुष्पसरीखा अथवा कसूंभाके रंगसरीखा रज आवे,

दाह हो, शोष हो और मूत्रकृच्छ्र हो, ये लक्षण पित्तदूषित रजके कहे हैं ॥ ४० ॥

अथ कफदुष्टरजश्चिकित्सा ॥

सघनं पिच्छिलं चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम्॥
आलस्यं तन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः॥४१॥

अर्थ–अब कफदुष्ट रजकी चिकित्सा कहतेहैं–फेनोंवाला गाढ़ा लोहू गिरै, शरीरमें जड़ता रहै, मूत्रबंध होवे, आलस्य आवे, आखें झिपैं, निद्रा आवे, ये सब लक्षण कफसे दूषित हुए रजके हैं ॥ ४१ ॥

त्रिफला गिरिकर्णी च तथारग्वधवत्सकौ ॥
पयसा पयसा पानं स्त्रीणाञ्च गर्भकारणम् ॥ ४२॥

अर्थ–तहां त्रिफला, गोकर्णी, अमलतास, कूड़ाकी छाल, दूधी, इन्होंको पीसकर दूधके साथ स्त्रियोंको पिलावे तो कफसे दूषित रजवाली स्त्रीके अवश्य गर्भस्थिति होवे ॥ ४२ ॥

अथ ग्रन्थान्तरात् ॥

कणेभकेसरं शृङ्गवेरं मरिचमेव च ॥
घृतेनापिष्य पातव्यं वन्ध्याऽपि लभते सुतम् ४३॥

अर्थ–अब दूसरे ग्रंथके मतसे कहतेहैं–पीपल, नागकेशर, सुंठ, काली मिरच इन्होंको घीमें पीसकर गौके दूधके साथ पीवे तो वंध्या स्त्रीके गर्भ स्थिति होके पुत्र उत्पन्न होवे ॥ ४३॥

अथ शिवोक्तेन्द्रजालमतात्काकवन्ध्यामृतवत्सा-चिकित्सा ॥

अश्वगन्धीयमूलं तु प्राहरेत् पुष्यभास्करे ॥

पेपयेन्महिषीक्षीरैः पलार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥
सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या चिरायुषम् ॥४४॥

अर्थ—अब शिवजीकरके कहेहुए इंद्रजालके मतसे काकवंध्या और मृतवत्सा स्त्रीका इलाज कहतेहैं—जिस दिन पुष्य नक्षत्र हो और रविवार हो उस दिन आसगंधकी जड़को उखाड़लावे. फिर भैंसके दूधके साथ पीसकर दो २ तोले प्रमाण पीवे. ऐसे सात दिनतक करनेसे काकवंध्या यानी जिसके एकही बार संतान होकर बंद होगई हो उसके गर्भ स्थित हो और बहुत आयुवाला पुत्र जन्मे ॥ ४४ ॥

अथ मृतवत्साचिकित्सा ॥

प्राङ्मुखः कृत्तिकाऋक्षे वन्ध्याकर्कोटकीं हरेत् ॥
तत्कन्दं पेपयेत्तोयैः कर्षमात्रं सदा पिबेत् ॥४५॥

अर्थ—अब मृतवत्सा यानी मसानका रोग होकर जिसके बालक मरजाते हों उसका इलाज कहतेहैं—कृत्तिका नक्षत्रके दिन पूर्वकी तर्फ मुख करके बांझककोड़ीको उखाड़लावे. फिर उस बांझककोड़ीकी १० दश मासा जड़को पीस पानीके साथ हमेशा पीवे तो स्त्रीका मसान रोग जाय ॥ ४५ ॥

या बीजपूरद्रुममूलमेकं क्षीरेण पक्वं प्रपिबेद्विमिश्रम् ॥ऋतौ निजं या तु पतिं प्रयाति दीर्घायुषं सा तनयं प्रसूते ॥ ४६ ॥

अर्थ—अथवा यह मृतवत्सा स्त्री ऋतुसमयमें बिजौराकी जड़को पीसकर दूधमें पकाकर तिस दूधको पीवे फिर

ऋतुसमय अपने पतिसे भोग करे तो उसके बहुत आयुवाला पुत्र उत्पन्न होवे ॥ ४६ ॥

अथ स्त्रीणां गर्भार्थं पथ्यम् ॥

अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणाञ्च शृणु पुत्रक ॥ क
च्चरं सूरणं चैव तथा चाम्लं च काञ्जिकाम्॥४७॥
विदाहिकं च तीव्रं च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत ॥ व-
न्ध्याककोंटकीमूलं लाङ्गली कटुतुम्बिका ४८॥
देवदाली द्विबृहती सूर्य्यवल्ली च भीरुका ॥ नि-
र्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्यादृतुसङ्गमः ॥४९॥
पुत्रवत्याः सुशीलायाः सङ्गमः कथितः शुभः ॥
अन्यस्त्रीस्नातमुदकं स्त्रीणां पथ्यमुदाहृतम्५०॥

अर्थ–अब गर्भस्थित होनेके वास्ते स्त्रियोंको पथ्य कहतेहैं– कचरी, जमीकंद, खट्टा पदार्थ, कांजी, विदाही (गरम) पदार्थ, तीव्र मिरच आदि, इन सब वस्तुओंको गर्भ-स्थितिकी इच्छावाली स्त्रियां दूरसे त्याग देवें. वांझककोड़ीकी जड़, कलहारी, कडुवी तुंबी, देवदाली (कडुवी तोरी), दोनों कटेहली, सूर्यमुखी, शतावरी, इन औषधोंका सेवन, और पुत्र जननेवाली स्त्रीका पहिनाहुआ वस्त्र, माला, आदिको धारण करना और वह रजस्वला हुई हो तव उसके साथ समागम करना तथा तिन स्त्रियोंके स्नानका जल पीना वा उससे न्हाना, ये सब वस्तु उन वंध्या स्त्रियोंको पथ्य कही हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

क्षीरशाल्यन्नमुद्गं च लघ्वाहारं प्रदापयेत् ॥
एवं सप्तदिनं कुर्याद्वन्ध्या भवति गर्भिणी ॥५१

॥ इति श्रीवेरीनगरनिवासि-द्विजशाल्ग्रामात्मजधुधवस-
तिरामसंग्रहीतस्त्रीचिकित्सायां वन्ध्याचिकित्सानाम
द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अर्थ-और दूध, भात, मूंग, इत्यादि हलका भोजन करना, यह सब पथ्य ऋतुसमयके पीछे सात दिनतक करनेसे वंध्या स्त्रीके गर्भधारण होताहै ॥ ५० ॥

इति श्रीवेरीनिवासिद्विजशाल्ग्रामात्मजधुधवसतिरामविरचित स्त्रीचिकित्साभाषाटीकायां वंध्यारोगचिकित्सानाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ स्त्रीचिकित्सायां गर्भवतीचिकित्साप्रसूतिकाचिकित्सानाम तृतीयं प्रकरणम् ॥ ३ ॥

तत्रादौ गर्भोपचारविधिः ॥

प्रथमे मासि यष्टिमधु,परुपकमधुपुष्पाणि यथालाभम् ॥ नवनीतेन पयो मधु, मधुरं सम्पाययेच्चैव

अर्थ-अब स्त्रीचिकित्सानामक इस ग्रंथमें गर्भवती प्रसूतिका चिकित्सा-नामक ३ प्रकरण कहतेहैं-तहां गर्भके एप रहनेको पथ्य [illegible]

द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥
तृतीये कृशरा श्रेष्ठा चतुर्थे च घृतौदनम् ॥ २ ॥

अर्थ-दूसरे महीनामें काकोली, शहत, इनको मिलावे, तीसरे महीनामें खिचड़ी खिलानी श्रेष्ठ है और चौथे महीनेमें घृत औ भातका भोजन करावे ॥ २ ॥

पञ्चमे पायसं दद्यात् पष्ठे च मधुरं दधि ॥
सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूरकम् ॥ ३ ॥

अर्थ-पांचवें महीनेमें खीर दूध आदि भोजन करावे और छठे महीनेमें गर्भवतीको मीठा खिलावे, सातवें महीनेमें घृत खांडका भोजन दे, आठवें महीनेमें घेवरआदि पक्वान्नभोजन करावे ॥ ३ ॥

नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ॥ मासे
तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः ॥ ४ ॥

अर्थ-नवमे महीनेमें अनेक प्रकारके भोजन और दशवें महीनेमें दोहद यानी गर्भवती स्त्रीको जिस वस्तुमें इच्छा हो वही वस्तु खिलावे. जब तीन महीनोंका गर्भ होजाता है तब गर्भवतीकी इच्छा अनेक पदार्थोंपर होती है ॥ ४ ॥

यद्यत् कामयते सा च तत्तद्द्याद्भिषग्वरः ॥ वर्ज-
येद्द्विदलान्नानि विहीनानि गुरूणि च ॥ ५ ॥
अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-तिस्से वह गर्भवती स्त्री जिस २ वस्तुको खाने पीनेकी इच्छा करे सो सब वैद्य जन देवे. परंतु उड़द, चना, मटर आदि द्विदल अन्नोंको वर्ज देव. और विहीन यानी नि-

रस नहीं हो ऐसे तथा भारी पदार्थोंको नहीं खिलावे ॥ ५ ॥ और खट्टे तथा गरम दूधके पदार्थ, ये सब गर्भवती स्त्रीको वर्ज देनेचाहिये ॥ ६ ॥

मृत्तिकाभक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः ॥ रसोनश्च पलाण्डुश्च सन्त्याज्यौ गुर्विणीस्त्रिया ॥७॥

अर्थ-और मृत्तिका नहीं खानी चाहिये तथा जमींकंद, लस्सन, प्याज, ये वस्तु गर्भिणी स्त्रीको नहीं खानी चाहिये ॥ ७ ॥

व्यायामं मैथुनं रोषं शोकं चंक्रमणं तथा ॥ वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः॥ ८ ॥

अर्थ-और परिश्रमका काम नहीं करना तथा मैथुन नहीं करना, क्रोध नहीं करना और शोक नहीं करना, चंक्रमण यानी ज्यादा डोलना नहीं चाहिये. ऐसे करनेसे गर्भवती स्त्रियोंको सुख संपत्ति मिलती है. यानी गर्भमें कोई उपद्रव नहीं होताहै ॥ ८ ॥

गद्यम्-॥

अथोपपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पञ्चममासिकं षष्ठमासिकं वा ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रिभोजनमपि कर्त्तव्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ-और पांचमहीनोंका गर्भ हो तथा छठा महीना होवे तब अपने कुलमें जैसी मर्यादा हो तैसे परंपरा कुलाचारकी विधिसे ब्राह्मणोंसे मंगल, स्वस्तिवाचन करावे और

ब्राह्मणोंको तथा अपने गोत्रके भाइयोंको जिमाना चाहिये ॥ ९ ॥

दोहदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पण्डितः शीलवान् पुत्रो जायते ॥ १० ॥

अर्थ-जो दोहद यानी गर्भवती स्त्रीकी इच्छा होवे वही वस्तु गर्भवती स्त्रीको खानेको मिलती रहे तो उसके रूपवान, शूर वीर, पंडित तथा सुंदर स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥

अथ चलितगर्भचिकित्सा ॥

प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ॥ तदा मधूकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पयसा लोडितं पीतं तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ-अब जिस स्त्रीका गर्भ चलायमान होता हो उसका इलाज कहतेहैं-पहिले महीनामें गर्भवती स्त्रीका गर्भ चलाहुआ दीखे तो महुआके पुष्प, मुनक्का दाख, चंदन, लाल चंदन, इन्होंका क्वाथ बना गौके दूधके साथ पीवे तो गर्भ स्थिर रहे ॥ ११ ॥

द्वितीये मासि चलिते मृणालं नागकेशरम् ॥ तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा॥१२॥ तदा मूषककिट्टं तु शर्करापयसा पिबेत्॥चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च॥१३॥गद्यम्-ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलते तदोशीरचन्दनना

गकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधीनि पाययेत् ॥ पञ्चमे मासे चलिते गर्भे दाडिमपत्राणि चन्दनदधिमधूनि पाययेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-दूसरे महीनेमें स्त्रीका गर्भ चलायमान होवे तो कमलकंद, नागकेशर, ये पिलावे और तीसरे महीनेमें गर्भ चलायमान होवे तो मुसाकी (बीट) पीसकर दूध और खांडके साथ पिलावे, और चौथे महीनेमें गर्भवती स्त्रीके दाह हो, तृषा ज्यादा लगे शूल हो तथा ज्वर चढ़ता होवे तो खशखश, चंदन, नागकेशर, धायके फूल, इन्होंका क्वाथ बना खांड, शहत, घृत, दही, इन्होंके साथ पीवे. पांचवें महीनेमें गर्भ चलायमान हो जाय तो अनारके पत्ते, चंदन, दही, शहत ये पिलावे तो गर्भ स्थित रहे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

समधुच्छागदुग्धेन कुलालकरमर्दिता ॥ मृत्स्ना सा स्थापयेद्गर्भं चलितं नात्र संशयः ॥ १५ ॥

अर्थ-और बकरीके दूधमें शहत मिला चाकसे बाकी रही कुम्हारके हाथकी चिकनी मट्टी मिलाकर पीवे तो स्त्रीका गिरता हुआ गर्भ स्थित रहे ॥ १५ ॥

षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिका गोमयभस्मउदकं परिस्रुतं शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत्॥१६॥ सप्तमे मासि गोक्षुरसमङ्गापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधु पाययेत् ॥ १७ ॥

अर्थ-छठे महीनेमें गर्भ चलायमान होजाय तो गेरू,

काली मृत्तिका, गोबरके आरनोंकी राख, चन्दन इन्होंको जलमें घोलकर धरदे फिर जल नितर ठंढा होजाय तब खांड मिलाकर उस सर्बतको पीवे ॥ १६ ॥ सातवें महीनेमें गर्भ चलायमान होवे तो गोखरू, मँजीठ, पद्माक, नागरमोथा, खशखश, नागकेशर, इन्होंका काथ बना शहतके साथ पिलावे ॥ १७ ॥

अष्टमे मासि रोध्रं मधु मागधिकाश्च सह दुग्धेन॥
पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते१८॥

अर्थ–आठवें महीनेमें लोध, शहत, पीपल, इन्होंको दूधके साथ पीनेवाली स्त्रियोंके सुख उत्पन्न होताहै ॥ १८ ॥

गर्भोपद्रवाः ॥

शोषो हृल्लासकश्छर्दिर्ज्वरशोफौ तथाऽरुचिः ॥
अतीसारो विवर्णत्वमष्टौ गर्भे ह्युपद्रवाः ॥ १९ ॥

अर्थ–अब गर्भके उपद्रव कहतेहैं–तहां शोष, धुकधुकी, वमन, शोजा, ज्वर, अरुचि, अतीसार, बुरा वर्ण, गर्भमें ये आठ उपद्रव होतेहैं ॥ १९ ॥

वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम्॥ वट-
प्ररोहं मगधा ह्युशीरं घनमेव च॥२०॥सितायुक्ता
गुटी चास्ये विहिता शोषवारिणी ॥ वत्सकं मग-
धा शुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥ २१ ॥ युक्तं
कोमलविल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत् ॥ शर्करा-
संयुतं पानं स्त्रीणा गर्भे हितं सदा ॥ २२ ॥

अर्थ-अब इन आठ प्रकारके उपद्रवोंकी चिकित्सा कहतेहैं-वड़की दाढ़ी, पीपल, खश, नागरमोथा इन्होंको पीस मिश्री मिलाकर गोली बनालेवे. तिस गोलीको स्त्री मुखमें रक्खे तो शोपरोग दूर हो. और कूड़ाकी छाल, पीपल, सूंठ, आंवले, कच्चा बेलफल, इन्होंको दहीमें पीस खांड़ मिला सर्वत बनाके स्त्रियोंको पिलावे तो गर्भके उपद्रव दूर होवें ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः ॥
छर्दिं हरेच्च हृल्लेदं मधुना वा समन्वितः ॥ २३ ॥

अर्थ-और चिरायताका कल्क बना तिसमें बराबरकी खांड़ मिला वा शहत मिलाकर पीवे तो गर्भवतीका वमन वा थुकथुकी मिटे ॥ २३ ॥

शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥२४॥ गुर्विणीनां च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ वत्सकं दाडिमं पाठा लघुबिल्वबलास्तथा ॥ २५ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवाश्चैव यथालाभेन सत्तम ॥ शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणांश्चवातिसारके ॥ २६ ॥

अर्थ-अदरक वा सूंठ, काली मिरच, बिजौराकी केशर इन्होंका चूर्ण बना दांत और जीभमें मार्जन करे अथवा इनका क्वाथ बना तिस गरम जलके कुरले करे तो गर्भवती स्त्रियोंकी अरुचि दूर हो. और कूड़ाकी छाल, अनारदाना, पाठा, कच्ची बेलगिरी, खरैटीकी जड़, जामन तथा आंवके

पत्ते इनमेंसे जितनी वस्तुयें मिलें उनको पीस खांड और द-हीके साथ खावे तो गर्भवती स्त्रीका अतिसार दूर होवे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

मूत्रविवन्धे त्रपुषो वीजा निवारि मागधी च ॥
शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥
मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम्॥२७॥

अर्थ–गर्भवती स्त्रीका मूत्र वंद होगया हो तो खीराके वीज, नेत्रवाला, पीपल, पाषाणभेद, इन्होंको पीस मिश्री मिला चावलोंके धोवनके पानीके साथ पीवे तो गर्भवती स्त्रियोंका मूत्रबंध रोग शीघ्रही निश्चय दूर होवे ॥ २७ ॥

अथ मधुकादिकल्कः ॥

मधुकविसमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं . घनमति-विषमैन्द्रं वीजमौशीरनीरम् ॥समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ–अथ मधुकादिकल्क–मुलहटी, कमलकंद, कमलकेशर, कमलकी दंडी, नागरमोथा, अतीस, इंद्रजव, खशखश, नेत्र-वाला, इन्होंको समान भाग ले जलमें पीसकर कल्क वनावे. फिर जलमें घोलकर मिश्री मिला सर्वत वनाकर पिलावे तो गर्भवती स्त्रियोंके गर्भ चलनेके सव उपद्रव दूर होवें ॥ २८ ॥

अथ गर्भस्रावस्य निदानम् ॥

प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलं च पार्श्वयोः ॥
पृष्ठरुक् प्रदरानाहौ मूत्रसङ्गश्च जायते ॥ २९ ॥

अर्थ-गर्भस्रावका निदान कहते हैं-जिस स्त्रीके गर्भस्राव होनेलगे उसके दाह हो, पसलियोंमें शूल हो, पीठमें पीड़ा हो, पैरा छूटे, अफारा हो, और मूत्रबंध हो ॥ २९ ॥

अथ गर्भपाते दृष्टान्तः॥

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीड़नाद्यैः ॥
पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ ३० ॥

अर्थ-गर्भपातमें दृष्टांत कहतेहैं-चोट लगनेसे और कुपथ्य भोजन करनेसे, मसलनाआदि पीड़ा होनेसे गर्भवतीका गर्भ क्षणमात्रमें इसप्रकार गिरपड़ता है कि जैसे वृक्षसे पकाहुआ फल आपही गिर पड़ताहै ॥ ३० ॥

अथ वातशुष्कगर्भस्य चिकित्सा ॥

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि ॥
सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥३१॥

अर्थ-वातसे शुष्क हुए गर्भकी चिकित्सा कहतेहैं-वायुसे सूखा हुआ गर्भ उदरमें नहीं बढ़े तो वह स्त्री धातुओंको बढ़ानेवाली बृंहण औषधोंमें सिद्ध कियेहुए तथा मांसके रसमें सिद्ध कियेहुए दूधको पीवे ॥ ३१ ॥

अथ शिवोक्तेन्द्रजालमतात् गर्भशुष्कचिकित्सा॥

गोक्षीरं शर्करायुक्तं गर्भशुष्कप्रशान्तये॥ पिबेद्वा मधुकं चूर्णं गम्भीरफलचूर्णकम् ॥ समांसं गव्यदुग्धेन गर्भिणीरोगशान्तये ॥ ३२ ॥

अर्थ-अब शिवोक्त इंद्रजालके मतसे शुष्क गर्भकी चि-

कित्सा कहतेहैं-खांड मिलाकर गौका दूध पीनेसे अथवा मुलहटी, फालसा,इनके चूर्णकी फंकी लेकर खांड मिला गौका दूध पीनेसे गर्भिणीका वातशुष्क गर्भ रोग दूर हो ॥ ३२ ॥

अथान्यत् ॥

वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या ॥
गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम्॥३३॥
कुट्टयेन्मुसलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले ॥
विषमं चाशनं पानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ३४ ॥

अर्थ-दूसरा इलाज-वायुसे गर्भसंकोच होनेसे गर्भवती स्त्री दशवें तथा ग्यारहवें महीनेतकभी गर्भको नहीं जनें उसकी चिकित्सा कहतेहैं ॥ ३३ ॥ कि ऊखलमें धानोंको डालकर मुसलसे कूटै, कुपथ्य, ज्यादे भोजन, पान, ऐसे करनेसे वह बालक जन्मैं ॥ ३४ ॥

अथ काले प्रसवविलम्बे चिकित्सा ॥

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम् ॥
कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डातकेन वा ॥३५॥

अर्थ-बालक होनेके समय विलंब होजाय तिसकी चिकित्सा-बालक होनेमें देरी लगे तो सांपकी कांचली और मैनफल, इन्होंकी धूनी भगमें देनी चाहिये ॥ ३५ ॥

कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैलात्खलु- नाभिलेपात् ॥ सुखप्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां नि- पीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ३६ ॥ मातुलुङ्गस्य

मूलं तु मधुकेन युतं तथा ॥ घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ३७ ॥

अर्थ–पीपली, वच इनको अरंडीके तेलमें पीस नाभिपर लेप करे तो अनेक पीड़ावाली स्त्रीभी सुखसे बालक जनें ३६॥ बिजौराकी जड़को और मुलहटीको पीसकर घृतमें मिलाकर (दूधके साथ) पीवे तो स्त्री सुखसे बालक जने ॥ ३७ ॥

अथ मन्त्रः ॥

"हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी ॥ तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गर्भिणी भवेत्" ॥ ३८ ॥ "ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा " ॥ एभिर्मन्त्रैर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः ॥ ३९ ॥

अर्थ–अथ मंत्रः ॥ " हिमालयपर्वतकी उत्तरदिशामें सुरसानामवाली राक्षसी रहती है उसके बिछुवोंका शब्द सुनकर स्त्रीके गर्भकी पीड़ा मिटती है " यह इस मंत्रका अर्थ है–सो इस श्लोकको पढ़कर पीछे " ऐं ह्रीं भगवति " यहांसे लेकर स्वाहातक संपूर्ण मंत्रको पढ़तारहे हाथमें जल रक्खे. ऐसे पढ़ेहुए जलको पिलावे तो स्त्रीके सुखसे बालक होवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ यन्त्रम् ॥

ओं ऐं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः । इदं यन्त्रं भूर्जपत्रस्योर्ध्वभागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन सुखेन प्रसवः ॥ ४० ॥

यन्त्रस्वरूपम्

ॐ ऍं -हां-हीं-हूं-हैं-हौं-हौं-हः		
८	३	४
१	५	९
६	७	२

अर्थ–अत्र यंत्रं कहते हैं "औं ऐं न्हां न्हीं न्हूं न्हैं न्हौं न्हौं न्हः" इस यंत्रको भोजपत्रके ऊपर लिखै और यह १५ का यंत्र लिखे फिर जिस स्त्रीके मूढगर्भ यानी उलटा वालक आरहा हो उसको दिखावे और उसकी शय्याके तले रखदेवे ऐसे करनेसे वह स्त्री सुखसे बालक जनै ॥ ४० ॥

अन्यः ॥ कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः ॥
कटुतैलान्वितैर्धूपो योनेः पातयतेऽपराम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–कडुवी तुंबीकी गिरी, सांपकी कांचली, हींग, सिरसम इन्होंको पीस कडुवे तेलमें मिला इसकी धूनी योनिमें देवे तो जिस स्त्रीकी अपरा (जेर) नहीं पडी हो उसके शीघ्रही गिरपडे ॥ ४१ ॥

गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ॥ न
दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान्॥४२॥

अर्थ–गर्भके उपद्रवसे स्त्रीके सूजन होजाती है. गरम २ जलसे शेक कर पसीना देवावे और तहां बुद्धिमान् वैद्यको दारुण जुल्लाब नहीं देना चाहिये ॥ ४२ ॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा ॥

विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च॥ मस्तके
ह्यभिघाताद्वा पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥ ४३ ॥

अर्थ—अब मूढगर्भकी चिकित्सा कहतेहैं–विरुद्ध (कुपथ्य) भोजन, परिश्रम, गर्भको पीड़ा होनेसे अथवा गर्भके मस्तककी जगह चोट लगजानेसे वह बालक पीडित होजाता है ॥४३॥

तिर्य्यग्वापि च गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च॥
अन्यद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ–फिर भगके द्वारको छोड़कर गर्भाशयमें तिरछा होजाता है. कोई गर्भ मरजाता है तब स्त्रीको कष्ट होजाता है ॥ ४४ ॥

अथवा लज्जया स्त्रीणां भृशं सङ्कुचिते भगे ॥
मूढगर्भश्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥४५॥

अर्थ–अथवा बालक होनेके समय जो स्त्री बहुत सरमावे उसकी भग संकोचको प्राप्त होजाती है तब भी मूढगर्भ होजाताहै (भगमें उलटा बालक आजाताहै) तिसके लक्षण कहेंगे ॥ ४५ ॥

गर्भे जीवति मूढे तु गर्भं यत्नेन निर्हरेत् ॥
हस्तेन सर्पिपाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ ४६ ॥

अर्थ–जीवताहुआ गर्भ मूढ यानी भगमें उलटा आजाय तो यत्नसे उसको बाहिर निकालै । हाथमें घृत लगाकर योनिके भीतर हाथ देकर निकालै ॥ ४६ ॥

मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥
शस्त्रशस्त्रार्थविदुषी लघुहस्ताभयोऽज्झिता॥४७॥

अर्थ-और गर्भिणी स्त्रीका गर्भ मरजाय तो उसकी योनिके भीतर शस्त्र प्रवेश करना चाहिये. शस्त्रको और शस्त्रके कामको जाननेवाली, हलके हाथवाली, भयरहित दाई होनी चाहिये ॥ ४७ ॥

सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत्॥ स दीर्य-
माणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् ॥ ४८ ॥
नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः॥ तदाशु
जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम्॥ ४९ ॥

अर्थ-परंतु जीवतेहुए गर्भको कभी नहीं काटे क्योंकि काटा जाताहुआ वह बालक आपको और अपनी माताको भी शीघ्रही मारदेताहै. और मृतगर्भका निष्काशन शीघ्र करना चाहिये नहीं तो वहभी माताको ऐसे मार देता है जैसे बहुत ज्यादे अन्न खालियाजावे तो वह अन्न अफारा करके पशुको मार देताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ प्रसूतायाः योनौ क्षतादेश्चिकित्सा ॥

तुम्बीदलं लोध्रमिदं द्वयं च समानभागं परिपेष्य
दद्यात् ॥ लेपं भगस्याऽथ यथा प्रसूता भगस्य तु
स्यादपि निर्मलत्वम्॥ ५० ॥

अर्थ-प्रसूताकी योनिमें घाव हो जाय तिसका इलाज-तुंबीके पत्ते, लोध, इन दोनोंको समानभाग ले जलमें पीसकर योनिपर लेप करे तो प्रसूता स्त्रीकी योनि निर्मल होजाय॥ ५० ॥

अन्यः ।। पलाशकोदुम्बरयोः फलाना समाक्षिकस्तैलयुतः प्रलेपः ।। प्रसूतिकाना च भगस्य कुर्यात्कन्याभगस्यापि समानभावम् ।। ५१ ।।

अर्थ-अन्य उपाय-ढाकके फल, गूलरके फल, इन्होंको पीस शहत और तिलोंका तेल मिला तिसकी मालिस करे तो प्रसूतिका स्त्रीकी भग कन्याकी भगके समान संकुचित होजावे ।। ५१ ।।

प्रसूतायाः उदरस्थाऽपरोपद्रवाः ।।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि ।।
तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम् ।।५२।।

अर्थ-प्रसूता स्त्रीके उदरमें अपरा (जेर) रह जानेके उपद्रव-प्रसूता स्त्रीके उदरसे अपरा नहीं गिरे तो उदरमें शूल हो, अफारा हो, जठराग्नि मंद होय ।। ५२ ।।

अपराचिकित्सा ।।

निर्मोककटुकालाबुकृतवेधनसर्षपैः ।।
चूर्णितैः कटुतैलाढ्यैर्धूपयेदभितो भगम् ।। ५३ ।।
लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि ।।
प्रलिम्पेत्सूतिकायोपिदपरापातनाय वै ।। ५४ ।।

अर्थ-अपरा (जेर) नहीं गिरी हो तिसकी चिकित्सा-सांपकी कांचली, कडुई तुंबी, हींग, सिरसम, इन्होंका चूर्ण बना, तिसमें तेल मिलाकर भगमें धूनी देवें तो अपरा गिरे. अथवा कलहारीकी जड़को पीस कल्क बना तिसको प्रसूता स्त्रीके पांवोंके तलवोंपर, अथवा हथेलियोंपर लेप करे तो अपरा (जेर) गिरे ।। ५३ ।। ५४ ।।

अथ मकल्लस्य चिकित्सा ॥

संचूर्णितं यवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा ॥
सर्पिषा वा पिबेन्नारी मकल्लकनिवृत्तये ॥ ५५ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके वायुके कोपसे अफारा आदि उपद्रव होताहै वह मकल्लरोग कहा है. तिसकी चिकित्सा—जवाखारका चूर्ण बना तिसको गरम जलके साथ अथवा घृतके साथ पीवे तो प्रसूता स्त्रीका मकल्लरोग दूर हो ॥ ५५ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ॥

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ॥
दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद्घृतान्वितम् ॥५६॥

अर्थ—अब सूतिका स्त्रीके रोगका इलाज कहतेहैं—सूतिका स्त्रीके रोग हरनेके वास्ते वातको हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये.—और दशमूलका क्वाथ बना तिसमें घृत मिला गर्भवती स्त्रीको कुछ गरम २ पिलावे ॥ ५६ ॥

अथ देवदार्वादिक्वाथः ॥

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ५७ ॥

अर्थ—अथ देवदारु आदि क्वाथ—देवदारु, बच, कूट, पीपल, सूंठ, चिरायता, कायफल, नागरमोथा, कुटकी, धान्यके कोठेमें धरीहुई हरड़ै ॥ ५७ ॥

गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः ॥ बृहत्यतिविषा च्छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ५८ ॥

अर्थ-गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा, कटेहली, अतीस, गिलोय, काकड़ाशींगी, काला जीरा ॥ ५८ ॥

समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ॥ क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूता पाययेत्स्त्रियम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-और सेंधा नमक, हींग, इन सबोंको समानभाग ले काथ बनावे, फिर आठवाँ हिस्सा जल बाकी रहे तब प्रसूता स्त्रीको पिलावे ॥ ५९ ॥

शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिभिः॥ युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ६० ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-यह औषध शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्छा, कम्प, शिरकी पीड़ा, प्रलाप, तृषा, दाह, तंद्रा, अतीसार, वमन ॥ ६० ॥ इन सब रोगोंको तथा प्रसूता स्त्रीके वातकफके रोगोंको दूर करती है. ऐसी यह परम औषध है ॥ ६१ ॥

अथ सौभाग्यशुण्ठी ॥

आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः॥ पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरम् ॥ प्रस्थार्द्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकात् मिस्याः पञ्चपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ ६२ ॥ व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वक्क्षाविडीनां फलम् ॥ पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगनुत् ॥ तृट्छर्दिज्व-

रदाहशोषशमनं सश्वासकासापहम् ॥ प्लीहव्याधि-
विनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसन्दीपनम्॥६३॥इति०

अर्थ–अथ सौभाग्यशुंठी–घृत ८ तोला, दूध १२८ तोले, खांड २०० तोले, सूंठका चूर्ण ३२ तोले, इन सबोंको मिलाकर गुड़की चासनीकी तरह पकालेवे. पीछे धनियां १२ तोले, सौंफ २० तोले, वायविडंग ४ तोले, काला जीरा ४ तोले, सफेद जीरा ४ तोले, व्योष अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, और नागरमोथा, पत्रज, धायके फूल, दालचीनी, इलायचीके बीज, इन सबोंका चूर्ण बना तिस पाकमें डाले, इसप्रकार यह सौभाग्यशुण्ठीपाक बनता है, यह औषध प्रसूतिका स्त्रीके संपूर्ण विकारोंको दूर करे. तृषा, छर्दि, ज्वर, दाह, शोष, इन्होंको शांत करतीही है. और श्वास, खांसी, प्लीहा (तिल्ली) कृमिरोग (चुरने) इन सबोंको दूर करती है. और मंदाग्निको दीप्त करतीहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति०

स्तनरोगसम्प्राप्तिः सुश्रुतात् ।

धमन्यः संवृतद्वारा कन्यानां स्तनसंश्रिताः ॥
दोषाविसरणास्तासां न भवन्ति स्तनामयाः॥६४॥

अर्थ–स्तनरोगकी प्राप्ति सुश्रुतके मतसे–रसवाहिनी धमनी नाड़ियां जो स्तनोंके आश्रय रहती हैं वे जो कन्याओंके हैं उनके मुख रुकेहुए रहते हैं इसीलिये उनमें वातादिदोष प्रवृत्त नहीं होनसे कन्याओंके स्तनरोग नहीं होते ॥ ६४ ॥

तासामेव प्रसूतानां गर्भिणीनां च ताः पुनः ॥
स्वभावादेव विवृता जायन्ते संस्रवन्त्यतः ॥६५॥

अर्थ-फिर जब वे प्रसूता स्त्री होती हैं अथवा गार्भणी होतीहैं तब स्वभावसेही उन धमनी नसोंके मुख खुलजातेहैं इसीकारणसे उनसे दूध झिरता है और रोगभी होताहै ॥६५॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम् ॥ आमे विदाहिनि तथैव च तस्य पाके यस्याः स्तनौ सततमेव च निग्रहार्त्तौ ॥ ६६ ॥

अर्थ-अथ स्तनरोगचिकित्सा-स्तनोंपर सोजा आया हुआ देखकर वैद्यजन जो विद्रधिमें कहा है सो सब अनेक प्रकारका विधान करे. और शोजा कच्चा हो, दाह ज्यादा हो, तथा स्तन पक गये हों, जैसा कारण हो वैसीही विद्रधि (फोड़ा) के अनुकूल लेप वा नस्तर आदि विधि करना॥६६

पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत् ॥ जलौकाभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ-और पित्तको नष्ट करनेवाली औषध करे. अथवा जोक लगवाकर लोहू निकलवावे. परंतु स्तनोंपर उपनाह (पिंडीऔषध) नहीं बांधनी चाहिये ॥ ६७ ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ॥ निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ६८

अर्थ-और गंदूभाकी जडको पीस स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंकी पीडा दूर होवे, और हल्दी, धतूराके पत्ते, इन्होंको पीस कल्क बना स्त्रीके स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंकी पीडा दूर हो ॥ ६८ ॥

स्त्रीणां दुग्धवृद्ध्युपायाः ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं घनवालकम् ॥ कु-
स्तुम्बुरूणि मञ्जिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत् ॥६९॥

अर्थ-अव स्त्रीके दूध बढ़ानेका उपाय कहतेहैं-पीपल, पीप-
लामूल, सूंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, धनियां, मँजीठ, इन्होंको
दूधमें पीस कल्क बना लेवे ॥ ६९ ॥

पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् ॥
मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ॥ ७० ॥
मागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥ पानं
जनयते क्षीरं स्त्रीणां च परमोत्तमम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-फिर प्रसूता स्त्री इस कल्कको खाकर दूध पीवे
तो उसके स्तनोंमें दूध बढ़े. अथवा काली मिरच, पीपला-
मूल, पीपल, सूंठ, हरड़े इन्होंका चूर्ण बना, तिसमें गुड़ मि-
लाकर फंकी लेवे, ऊपरसे घृतसहित दूध पीवे तो स्त्रियोंके
बहुत उत्तम दूध बढ़े ॥ ७० ॥ ७१ ॥

एवं कृत्वा च नारीणा द्वादशाहे भिषग्वरः ॥
माङ्गल्यवाचनं कृत्वा योपार्थं च प्रदर्शयेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ-इसप्रकार प्रसूता स्त्रियोंका इलाज कर उत्तम वैद्य
बारहवें दिन स्वस्तिवाचन करावे और स्त्रियोंका गीतहास्यादि
मंगल कराके प्रसूता स्त्रीको दिखावे ॥ ७२ ॥

नियमस्तु प्रसूतायाः प्रोच्यते सर्वदा बुधैः ॥ वा-
तारिभोजनं पथ्यं पथ्यं च लघु भोजनम् ॥ ७३ ॥

अर्थ-पंडित जनोंने प्रसूतास्त्रीको नियमसे रहना कहा है, सो कहते हैं-कि जो वादीको नष्ट करे ऐसा हलका भोजन करे ॥ ७३ ॥

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना ॥
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ७४ ॥

अर्थ-और सर्वदा शुद्ध रहे, चिकना थोड़ा पथ्य भोजन करे, नित्य पसीना लेती रहे, तेल उबटना आदि मालिस करावे, एक महीनातक सावधान रहे, आलस्य नहीं करे ॥ ७४ ॥

उपद्रवविशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम् ॥ ऊर्ध्वं
चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विवर्जयेत् ॥ ७५ ॥

इति श्रीवेरीनगरनिवासिद्विजशालग्रामात्मजवुधवसति-
रामसंगृहीतस्त्रीचिकित्सायां गर्भवतीचिकित्साप्र-
सूताचिकित्सानाम तृतीयं प्रकरणम् ॥ ३ ॥

अर्थ-फिर सब उपद्रवोंसे शुद्ध हुई उत्तम वर्णवाली स्त्रीको जानकर चार महीने पीछे उसके सब पथ्य छुडा देवे ॥ ७५ ॥

इति श्रीवेरीनगरनिवासिद्विजशालग्रामात्मजवुधवसति-
रामविरचितस्त्रीचिकित्साभाषाटीकायां गर्भवतीचिकि-
त्सा, प्रसूताचिकित्सानाम तृतीयं प्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ स्त्रीचिकित्सायां संकीर्णप्रकरणं चतुर्थम् ।

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरणम् ।

तत्रादौ लक्षणम् ।

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीव सुरतक्षमम् ॥ तद्वा-
जीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ १ ॥

अर्थ-अब स्त्रीचिकित्सामें संकीर्ण चौथा ४ प्रकारण कहेंगे. अथ वृद्धक्षीणोंको वाजीकरण-तहां पहले लक्षण-जो औषध पुरुषोंको स्त्रीसंग करनेमें वाजी अर्थात् घोड़ासमान करदेवे वह औषध वैद्योंने वाजीकरण कहा है ॥ १ ॥

क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ॥
निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥
जायते रेतसो हानिः क्लीबत्वञ्चापि जायते ॥२॥
त्रिविधं जायते क्लैब्यं मानसं रेतसः क्षयात् ॥
सहजं ध्वजभङ्गाच्च जायते क्लीबता नरे ॥ ३ ॥

अर्थ-नपुंसकपना ५ प्रकारका है सो संक्षेपसे सुनो. मैथुनके रोकनेसे १ और ज्यादा मैथुन करनेसे २ और वृद्ध अवस्थाका प्रभाव होनेसे ३ मनुष्यके वीर्यकी हानि होजाती है और नपुंसकपनाभी होजाता है, ऐसे ३ प्रकारका नपुंसकपना कहा है. और वीर्य क्षीण होजानेसे मानस ४ और सहजनपुंसकपना ५ लिंगइंद्रियकी चैतन्यकारक नसोंके नष्ट होजानेसे होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

यस्य वै ममता चित्ते दृष्ट्वा स्त्रीणां विरागिताम् ॥
स्पर्शने स्वेदकम्पौ च तत्साध्यं मानसं स्मृतम्॥४॥

अर्थ-जिस पुरुषके चित्तमें स्त्रीकी इच्छा रहे और स्त्रीको देखकर वैराग्य होवे, स्पर्श करनेमें पसीना आवे, शरीर कांपे तो वह वैराग्य मानसक्लैब्य, साध्य जानना ॥ ४ ॥

यस्य विद्वेषतः स्त्रीणां व्यवायेन मनःक्षतिः ॥
ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत्क्लैब्यं रेतसः क्षयात् ॥५॥

अर्थ-जो पुरुष स्त्रीपर कुछ इच्छा नहीं रखता हो, मैथुन करके मन दुःख पाता हो, लिंगइंद्रिय शीघ्रही शिथिल होजाती हो वह वीर्य क्षीण होनेसे नपुंसकता जाननी ॥ ५ ॥

समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः स्मृतः ॥
मनःक्षये मनोद्रेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ॥ ६ ॥

अर्थ-जो सदा एकसा रहे, किंचित्‌भी स्त्रीमें चित्त नहीं रक्खे वह असाध्य नपुंसक कहा है. जिसके मन क्षीण होने-से नपुंसकता हुई हो उसके मनको बढावे, जवान स्त्रियोंके साथ समागम करावे ॥ ६ ॥

सरागविभ्रमकथालापैः संवर्द्धते मनः ॥
शुक्रक्षये शुक्रवृद्धिं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

अर्थ-प्रीतिपूर्वक हास्यकी बात कहनेसे उसका मन बढताहै और जिसका वीर्य क्षीण होगया हो उसके वीर्य बढ़-नेका उपाय कहतेहैं ॥ ७ ॥

अथ शुक्रवृद्ध्युपायाः ॥

विदारिकागोक्षुरमूसलीनां धात्रीफलं स्यात्कपि-
कच्छुबीजम् ॥ समानि चैतानि च मागधीनां
युक्तं सिताढ्यं पयसा पिबेच्च ॥ ८ ॥

अर्थ-वीर्यवृद्धिका उपाय-विदारीकंद, गोखरू, मूसली, आंवला, कौंचके बीज, पीपल, इन्होंको समानभाग ले और इन सबके बराबर मिश्री मिलोवे फिर दूधके साथ इसको फंकी लेवे तो वीर्यकी वृद्धि होवे ॥ ८ ॥

अथान्यः ॥ बलाद्वयं वै मगधा त्रिकण्टा तथा-

त्मगुप्ता सशतावरी च ॥ सशर्करं गोपयसा घृतेन पानं नराणां प्रकरोति बीजम् ॥ ९ ॥

अर्थ-अब दूसरा उपाय कहतेहैं-खरैंहटी, गँगेरनकी जड़, पीपल, गोखरू, कौंचके बीज, शतावरी, इन्होंका चूर्ण बना, इनकी बराबर मिश्री मिला फिर दूध और घृतके साथ पीवे तो पुरुषोंके वीर्यकी वृद्धि हो ॥ ९ ॥

यवगोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ॥
दुग्धेनेक्षुरसेनापि संस्कृत्य हि घृतेन तु ॥ १० ॥

अर्थ-और यव, गेंहू, उड़द, इन्होंका बक्कल उतार तिस चूनको दूध, ईखका रस, घृत, इन्होंमें सिद्ध करके भोजन करना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥
तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥ ११ ॥

अर्थ-और उड़दोंके बड़े, घृतमें बनाकर प्रातःकाल खावे. तिसके ऊपर पीपल और खांड़ मिलाकर दूध पीवे ॥ ११ ॥

यवक्षारं विदारीञ्च माषचूर्णं तथा यवान् ॥ मरिचानां सिताढ्यञ्च घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥ १२ ॥

अर्थ-और जवाखार, विदारीकंद, उड़दोंका चून. जवोंका चून, मिरच, मिश्री, ये सब मिलाकर कचौरीआदि पुष्ट पदार्थ खाने श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

पाचयेद्भक्षयेत्प्रातः पयःपानं तथोपरि ॥
वीर्य्यञ्च कुरुते पुंसां नारीभी रमते भृशम् ॥ १३ ॥

अर्थ-प्रातःकाल उस पदार्थको खाकर ऊपरसे दूध पीवे,

ऐसे करनेसे पुरुषोंके वीर्यकी वृद्धि होतीहै और स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्ति होतीहै ॥ १३ ॥

गुडूची शतमूली च स्वयंगुप्ता बला तथा ॥
गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा च यष्टिका ॥१४॥

अर्थ-गिलोय, शतावरी, कौंचके बीज, खरैंहटी, गोखरु, तालमखाना, असगँध मुलहटी, ॥ १४ ॥

शाल्मली मुसली मूलं चूर्णं गोपयसान्वितम् ॥
पानं नराणां श्रेष्ठं तु बीजमिन्द्रियकारकम् ॥ १५ ॥

अर्थ-शाल्ममिश्री, मूसली कंद, इन्होंका चूर्ण बना मिश्री मिला गौके दूधके साथ पीना श्रेष्ठ है, इससे वीर्यवृद्धि होतीहै ॥ १५ ॥

अथ विदार्याद्यौषधानि ।

विदारिकन्दोंऽशुमती बृहत्यौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ॥ भृङ्गाटकं मागधिका बला च चूर्णं सिताढ्यं पयसा प्रयोज्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ-अथ विदार्यादिऔषध-विदारीकंद, शालवन, दोनों कटेहरियोंकी जड़, दोनों सांठी, काकड़ासींगी, पीपल, खरैंहटी, इन्होंका चूर्ण बना बराबरकी मिश्री मिला गौके दूधके साथ पीवे तो वीर्यकी वृद्धि होवे ॥ १६ ॥

जीर्णे पयः पायसमेव योज्यं करोति पुंसां बलमेवमोजः ॥ स्त्रीणां सहस्रं भजतेऽपि पण्ढो मासद्वयं स्यान्नितरां प्रयोगः ॥ १७ ॥

अर्थ-फिर वह दूध हजम होजावे तब खीरका भोजन करै. ऐसे करनेसे पुरुषोंके वीर्यकी वृद्धि होती है, पराक्रम बढ़ता है, मनका उत्साह बढ़ता है. दो महीनातक इस औषधके सेवन करनेसे नपुंसकभी हजार स्त्रियोंके साथ रमण करै ॥ १७ ॥

अथ शुक्रवृद्धौ वर्ज्यम् ॥

वर्जयेत्कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ॥
रूक्षं वाऽपि च सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षतौ॥१८॥

अर्थ-वीर्यवृद्धिमें वर्ज्य पदार्थ-चर्चरा, खट्टा, तीक्ष्ण, गरम, विदाही (दाहकारक) रूखा पदार्थ कांजीके पदार्थ, ये सब वस्तु नपुंसकके इलाजमें वर्ज देने चाहिये ॥ १८ ॥

पलाण्डुं च तथा कन्दांस्तिलान्माषान्यथाबलम् ॥
तथौदनं विशालीनां दुग्धं चेक्षुरसं तथा ॥ १९ ॥

अर्थ-और प्याज, कंद (मूल), तिल, उड़द ये सब जठराग्निके बलके अनुसार खाने श्रेष्ठ हैं. पुराने चावल, दूध, ईखका रस ये पथ्य हैं ॥ १९ ॥

वास्तुकस्य तथा शाकं पथ्यं शुक्रक्षयेऽपि च ॥
पथ्ये च सूरणं शुण्ठी योगयुक्तो न योजयेत्॥२०॥

अर्थ-और बथुवाका शाक श्रेष्ठ है, तथा जमींकंद खाना और सूंठका खाना श्रेष्ठ नहीं है ॥ २० ॥

अथ रतिवर्द्धनम् ॥

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी ॥
मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला ॥ २१ ॥

अर्थ-अथ रतिवर्धन औषध-गोखरू, तालमखाना, आसगँध, शतावरी मूसली, कौंचके बीज, मुलहटी, खरैहटी, गँगेरनकी जड़ ॥ २१ ॥

एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाऽज्येन भर्जितम् ॥
सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥२२॥

अर्थ-इन्होंका चूर्ण बना दूधमें पकावे, फिर घृतमें भून लेवे फिर मिश्री मिलाकर मोदक बना लेवे. ये मोदक परम उत्तम वाजीकरण औषध है ॥ २२ ॥

चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं क्षीरसमं स्मृतम् ॥
सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥ २३ ॥

अर्थ-यहां ऐसी विधि है कि चूर्णसे आठ गुना दूध डाले और दूधकी बराबर घृत डाले और इन सबसे दूनी मिश्री मिलावे फिर मोदक बनावे. इसको जठराग्निके बलको विचारके भक्षण करे ॥ २३ ॥

वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः ॥
तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥२४॥

अर्थ-यह औषध अनेक वाजीकरण औषधोंसे संग्रह करके रचा है. इसलिये यह प्रयोग बहुत उत्तम है ॥ २४ ॥

अथ गर्भसञ्जननशुक्रलक्षणम् ॥

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥२५॥

अर्थ-अब गर्भको उत्पन्न करनेलायक वीर्यके लक्षण कहते हैं-बिल्लौरी पत्थरसमान सफेद, झिरताहुआ द्रवरूप

चिकना, मधुर स्वादवाला, शहतकी सुगंधवाला ऐसा वीर्य श्रेष्ठ कहा है. कितेक कहते हैं कि तेल और शहतसमान आकारवाला वीर्य भी श्रेष्ठ होताहै अर्थात् उसमेंभी कुछ रोग नहीं है ॥ २५ ॥

शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥
शब्दसंश्रवणाद्ध्यानात्संयोगाच्च प्रवर्त्तते ॥ २६ ॥

अर्थ-यह वीर्य स्त्रीकी इच्छा करनेसे दर्शन करनेसे वा स्पर्श करनेसे वा स्त्रीके शब्द सुननेसे, ध्यान करनेसे वा स्त्रीसंयोग करनेसे प्रवृत्त होता है ॥ २६ ॥

हारीत उवाच ॥ संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ॥ संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-हारीतजीने प्रश्न किया-कि हे प्राज्ञ! स्त्रीपुरुषका संयोग हुए विना गर्भ कैसे उत्पन्न नहीं होताहै और संयोगविना पुष्प (रजस्वला) होजाताहै, फिर संयोगविना फलभी क्यों नहीं लगै ॥ २७ ॥

वृक्षवन्न कथं स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते ॥
एतत्पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच ऋषिपुङ्गवः ॥ २८ ॥

अर्थ-जैसे आम आदि वृक्षोंमें पुष्पके साथही फल आजाता है ऐसे स्त्रियोंके फलभी क्यों नहीं होवे ? ऐसे पूंछा तब महाआचार्य ऋषिप्रवर बोले ॥ २८ ॥

अत्रिरुवाच ॥ विरुद्धाना च वल्लीनां स्थावराणां च पुत्रक ॥ तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्त्तते २९

अर्थ-अत्रिऋषि कहने लगे-हे पुत्र! विरुद्ध स्वभाववाली वेल (लता) हैं और ये स्थावर वृक्षादिकभी मनुष्योंसे विरुद्ध स्वभाववाले हैं इसलिये इनके तो धातुवीजका संयोग फलवीजकेही साथ होजाताहै ॥ २९ ॥

न भिन्नदृष्टिस्तेषां वै दृश्यते शृणु पुत्रक ॥
स्थावराणा च सर्वेषां शिवशक्तिमयं विदुः ॥ ३०॥

अर्थ-इन वृक्षोंके कुछ भिन्न दृष्टि नहीं है. हे पुत्र! सुनो तिन संपूर्ण स्थावर वृक्षोंके वीचमें शिव और शक्ति, विराजमान है ॥ ३० ॥

निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तशक्तिर्महामते ॥
तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्त्तन्ते समयोगतः ॥ ३१ ॥

अर्थ-हे महामते! तहां जो निश्चलता है सो शिव है और शक्तिदेवी उनमें सब जगह व्याप्त रहतीहै इसलिय तिन वृक्ष लता आदिकोंमें स्त्रीपुरुषोंके गुण साथ मिलेहुए ही रहते हैं ॥ ३१ ॥

स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाख्यमिन्द्रियं नरे ॥
तस्मात्संयोगतः पुत्र जायते गर्भसम्भवः॥३२ ॥

अर्थ-और स्त्रियोंके रजस्वल्यारूप वीर्य है और पुरुषकी इंद्रियमें जो शुक्र है वह बीज है, हे पुत्र!, इसलिये उन दोनोंका संयोग होनेसे गर्भ उत्पन्न होताहै ॥ ३२ ॥

अथ नपुंसक तथा अपत्ययुग्मयोर्विचारः ॥

समवीर्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत् ॥
नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत् ॥३३॥

अर्थ-अब नपुंसक, तथा जोड़ले बालक होनेका विचार कहतेहैं-पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज ये दोनों बराबर होकर गर्भाशयमें ठहर जावें, कोईसाभी कम ज्यादा नहीं होवे तो नपुंसक उत्पन्न होताहै. वह न तो स्त्री है और न पुरुष है ॥ ३३ ॥

दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसम्भवः ॥
कृतभ्रान्ते च सम्भोगे द्वाभ्यां च द्रवते मनः ॥
दृश्यते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियंकरी ॥ ३४ ॥

अर्थ-और जो स्त्री पुरुषका संयोग होतेसमय वातादि दोष और धातु विशेष उत्पन्न हों तहां संभोग करनेके समय-वातादि दोष और धातु, इन दोनोंकरके मन द्रवता है अर्थात् मन दो जगह भ्रांत होजाता है ऐसे संयोग होनेमें यमल (जोड़ले बालक) उत्पन्न होतेहैं, तिनकी उत्पत्तिसे अन्य पुरुषोंका चित्त प्रसन्न होता है ॥ ३४ ॥

अथ गर्भाऽसम्पादनम् ॥

कणाविडङ्गटङ्कणैः पयः पिबेच्च याऽबला ॥
ऋतौ न गर्भधारणं करोति वा कदाऽपि सा ॥३५

अर्थ-अब गर्भ नहीं ठहरनेका उपाय कहतेहैं-पीपल, वायविडंग, सुहागा इन्होंको पीस जो स्त्री दूधके साथ पीवे ऐसे ऋतुसमयमें जो करती रहे तो उस स्त्रीके गर्भ स्थित कभी नहीं रहे ॥ ३५ ॥

अथारनालपेषितं जपाप्रसूनमञ्जना ॥
त्रिवार्षिकैर्गुडै ऋतौ पिबेन्न गर्भभागिनी ॥ ३६ ॥

अर्थ-अथवा जपापुष्पको पीसकर तीन वर्षके पुराने गुड़के साथ ऋतुसमयमें पीवे तो उस स्त्रीको गर्भधारण नहीं रहै ॥ ३६ ॥

अन्यः ॥ यावन्ति पत्राण्युषितानि तोये पिबेच्च बालाऽप्यथ चम्पकस्य ॥ तावन्ति वर्षाणि न पुष्पमेषा लभेद्यथा कामरतिप्रसक्ता ॥ ३७ ॥ अन्यः ॥ गवाक्षी जटा योनिगा धारिता चेत् करोत्येव पुष्पस्य नाशं सदैव ॥ भजेज्जारिणी जारसङ्घाननेकान्दधात्येव नो गर्भमेषा कदापि ३८

अर्थ-अन्य-चंपाके जितने पत्तोंको रात्रीमें जलमें भिगोकर दिनमें उसी जलमें घोटकर ऋतुसमयमें पीवे तो उतनेही वर्षोंतक स्त्रीके गर्भधारण नहीं रहै चाहे कितनाहीं कामसंभोग करै ॥ ३७ ॥ और इंद्रायण (गंडूभा) की जड़को योनिमें धारण रक्खे तो स्त्रीके पुष्पका नाश करती है तब वह जारिणी स्त्री अनेक जार पुरुषोंके साथ रमण करे तोभी उसके कभी गर्भधारण नहीं होता है ॥ ३८ ॥

अथ रोमशातनम् ॥

हरतालमिहैकभागिकं दरचूर्णं खलु पञ्चभागिकम् ॥ भसितेन पलाशजेन तत्परिलिप्तं भगरोमशातनम् ३९

अर्थ-अब बाल उड़ानेकी विधि कहतेहैं-हरताल १ भाग, शंखका चूर्ण ५ भाग और ढाकके फलोंकी राख, इन सबोंको जलमें घोलकर भगके चारों तर्फ लगावे तो रोम दूर होवें ॥ ३९ ॥

अन्यः ॥ करवीरशिफारम्भाक्षारोदकत्रिवृद्युतम् ॥
कोशातक्या भृतं तैलमभ्यङ्गाल्लोमशातनम् ॥४०॥

अर्थ–अन्य–कनेरकी जड़, केलाके पत्ते इन्होंको जलाकर बनाईहुई राखको जलमें घोलदेवे फिर उस जलमें क्षार उत्पन्न होजाताहै, तब उस जलमें कडुइ तोरईका काथ बनावे और नौसादर मिलावे पीछे इसमें तिलोंके तेलको पकालेवे फिर इस तेलकी मालिस करनेस शरीरके रोम (बाल) उड़ जातेहैं ॥ ४० ॥

तालं रालाचूर्णमेकद्विचतुर्भागमम्बुना पिष्टम् ॥
अग्निवशात्पक्वमेतल्लेपाल्लोमानि नश्यन्ति ॥ ४१ ॥

अर्थ–हरताल १ भाग, राल २ भाग, चूना ४ भाग इनको जलमें पीस अग्निपर चढ़ाके पकालेवे फिर इसका लेप करनेसे रोम (बाल) उड़ जावें ॥ ४१ ॥

अथ गर्भपातविधिः ॥

गृञ्जनस्य च बीजानि तिलकारविके अपि ॥
गुडेन भुक्तमेतत्तु गर्भं पातयति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–अब गर्भ गिरानेकी विधि कहतेहैं–गाजरके बीज, तिल, कलौंजी, इन्होंको गुड़के साथ खावे तो स्त्रीका गर्भ गिरै. (अथवा गाजरके बीज और इंद्रायणकी जड़को पीस बत्ती बनाकर भगमें धरे तो गर्भ गिरै) ॥ ४२ ॥

अथ भगसंकोचनम् ॥

मोचरससूक्ष्मचूर्णं क्षिप्तं योनौ स्थितं प्रहरम् ॥
शतवारं सूताया अपि योनिः सूक्ष्मरन्ध्रा स्यात् ४३॥

बकुलकुसुमं लोध्रं दाडिमीमूलवल्कलम् ॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेद्योनौ योनिसंकोचनं परम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-अथ भगसंकोचन-मोचरसका बारीख चूर्ण बना योनिमें एक महूरतक धरा रक्खे तो सौवार प्रसूता हुई स्त्रीकीभी योनि संकुचित होजाय ॥ ४३ ॥ और बबूलके पुष्प, लोध, अनारकी जड़की छाल, इन्होंका चूर्ण बना योनिमें रक्खे तो योनि अत्यंत संकुचित होजाय ॥ ४४ ॥

अथान्यः ॥ माजूफलं च त्रिफला खदिरोन्मत्तिनी तथा ॥ पटपूतं च सौराष्ट्री पूगं चैव समं समम् ॥ जलेन गुटिकां कृत्वा योनौ स्थाप्या घटीद्वयम् ॥ ४५

अर्थ-अथ अन्य०-माजूफल, त्रिफला, कत्था, फिटकड़ी, मुलतानी माटी, सुपारी, इन्होंको बारीक पीस कपड़छानकर जलमें पीस गोली बनाकर योनिमें दोघड़ीतक रक्खे तो योनि संकुचित हो ॥ ४५ ॥

अथ स्तनवृद्धिः ॥

पिष्ट्वा गोपवधूं दुग्धेनाङ्गनास्तनलेपनम् ॥
कृत्वाऽप्नोति कुचौ स्तब्धौ चोन्नतौ पतितावपि ॥ ४६
तैलं वचादाडिमकल्कसिद्धं सिद्धार्थजं लेपनतो नितान्तम् ॥ नारीकुचौ चारुतरौ सुपीनौ कुर्यादतो योगवरः प्रदिष्टः ॥ ४७ ॥

अर्थ-अथ स्तनवृद्धिउपाय-मरीहुई गोपवधू (बीरबहूटीको) दूधमें पीस जो स्त्री कुचोंपर लेप करे उसके ढीले पड़ेहुएभी कुच कड़े और ऊंचे होवें ॥ ४६ ॥ बच, अनारकी

छाल, इन्होंका कल्क बना तिसमें सिरसमके तेलको पकावे फिर उसका निरंतर लेप करे तो स्त्रीके कुच अत्यंत सुंदर कड़े व ऊंचे होजावें . यह प्रयोग श्रेष्ठ कहा है ॥ ४७ ॥

अथ स्तन्यवर्द्धनम् ॥

शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्द्धनी ॥
कवोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्द्धनम् ॥४८॥

अर्थ-स्त्रीके स्तनोंमें दूध बढ़ानेका उपाय-शतावरीको पीस दूधके साथ पीवे तो स्त्रीके दूध बढ़ै और पीपलमें सिद्ध कियाहुआ कुछ गरम २ दूध पीवे तो स्तनोंमें दूध बढ़ै ॥ ४८॥

अथ स्तनपीडाचिकित्सा ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्॥
निशाधत्तूरपत्राभ्या लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा॥४९

अर्थ-स्तनपीड़ाकी चिकित्सा-इंद्रायण (गंडूभा) की जड़को पीस स्त्रीके स्तनोंपर लेप करे तो स्तनपीड़ा जाय, अथवा हल्दी और धतूराके पत्तोंको पीस लेप करे तो स्त्रीके स्तनोंकी दर्द आदि पीड़ा दूर हो ॥ ४९ ॥

अथ केशोत्पत्तिविधिः ॥

हस्तिदन्तमर्षीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम् ॥
लोमान्यनेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥५०॥

अर्थ-अब बाल जामनेकी विधि कहते हैं —हाथीके दांतोंकी भस्म बना तिसको बकरीके दूधमें मिला और रसोंत मिला तिसका लेप करै तो हथेलीमें भी रोम जाम आवैं. फिर शिरपर बाल जामना क्या मुशकिल है ॥ ५० ॥

अथ केशकृष्णीकरणम् ॥

लोहचूर्णस्य कर्षं तु दशार्द्धं चूतमज्जतः ॥
धात्रीफलं द्वयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम्॥५१॥
पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेन्निशि वासयेत्॥
लेपोऽयमचिराद्धन्ति पलितं नात्र संशयः॥५२॥

अर्थ-अब बाल काले करनेकी विधि कहतेहैं-लोहाका चूर्ण १ तोला, आंबकी गुठली ५ तोला, आंवले २, हरड़ २, बहेड़ा १ इन सबोंको लोहेके बरतनमें खरल करे फिर १ रात्रीभर उसी बरतनमें धरी रक्खे फिर इस औषधका लेप करे तो पलित अर्थात् सफेद बाल काले होवें इसमें संदेह नहीं॥ ५१ ॥ ५२ ॥

त्रिफलानीलिकापत्रं भृङ्गराजायसो रजः॥
अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-त्रिफला, नीलके पत्ते, भँगरेका रस, लोहेकी रज, इन्होंको भेड़के मूतमें खरल करे, फिर इसका लेप करनेसे सफेद बाल काले होवें ॥ ५३ ॥

माजूफलं कणानीलीसैन्धवैरारनालकैः ॥
पिष्टैः शिरोरुहा लिप्ताः श्यामवर्णा भवन्ति हि५४॥

अर्थ-माजूफल, पीपल, नील बड़ी, सेंधा नमक, इन्हों को कांजीमें पीस बालोंपर लेप करे तो बाल काले होजावें॥५४॥

माजूफलहरीतकीआमलकीखदिरसारतुत्थली-

लवङ्गीनौसदरलोहचूर्णसौराष्ट्रीजङ्गालैतान्यौषधानि भृङ्गद्रवैस्त्रिदिनं लोहपात्रे मर्दितव्यानि ॥ ५५ ॥

अर्थ-और माजूफल, हरडै, आंवला, कत्था, लीलवड़ी, नौसादर, लोहका चूर्ण, फिटकड़ी, जंगाल, इन सबोंको भँगराके रसमें तीन दिनतक लोहाके पात्रमें खरल करे ॥ ५५ ॥

ततश्चानेनौषधेन रूक्षान्केशानालिप्य वातारिपत्रैरावेष्ट्य सुप्यात् ॥ ततः प्रातस्तैलामलकैः स्नात्वा सितकेशोऽसितकेशो भवति ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर इस औषधको रूखे सफेद बालोंमें लगाकर उनको अरंडके पत्तोंसे लपेटकर रात्रीमें सोजावे फिर प्रातःकाल उठ तेल और आमलोंके चूर्णको लगाकर स्नान करे तो सफेद बालोंवाले मनुष्यके बाल काले होवें ॥ ५६ ॥

अथ देहरञ्जनम् ॥

कदम्बपत्रं लोध्रं च ह्यर्जुनस्य च पुष्पकम् ॥
पिष्ट्वा गात्रोद्वर्त्तनाच्च कायदुर्गन्धनाशनम् ॥ ५७ ॥

अर्थ-अब देहके सुगंधित होनेकी विधि कहते हैं-कदंबके पत्ते, लोध, अर्जुनके पुष्प, इन्होंको पीस शरीरमें उबटना मसलकर स्नान करे तो शरीरकी दुर्गंध दूर हो ॥ ५७ ॥

एलाशठीपत्रकचन्दनानि तोयाभयाशिग्रुघनामयानि ॥ पिष्टानि तोये च विलेपितानि देहे च कुर्वन्ति सुगन्धभावम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-और इलायची, कचूर, तेजपत्ता, चंदनका बुरादा, नेत्रबाला, हरडै, सहंजिनाके पत्ते, नागरमोथा, कूट, इन्होंको

जलमें पीस शरीरमें लेप करके स्नान करे तो शरीरमें सुगंधि होवे ॥ ५८ ॥

चतुःप्रकरणानीह श्लोकाश्चेह दशोत्तरम् ॥
द्विशतं स्त्रीचिकित्सेति नाम्ना ग्रन्थः प्रकीर्त्तितः॥५९॥

अर्थ-इस ग्रंथमें चार प्रकरण हैं. और २१० श्लोक कहे हैं. ऐसे यह स्त्रीचिकित्सानामक ग्रंथ मैंने रचा है ॥ ५९ ॥

वत्सरे वैक्रमीयेऽक्षिबाणाङ्केन्दुमिते शुभे ॥
मार्गशीर्षे सिते दुर्गातिथौ चायं समापितः ॥६०॥

इति श्रीवेरीनगरनिवासिद्विजशालग्रामात्मजबुधवसतिराममसंगृहीतस्त्रीचिकित्सायां संकीर्णप्रकरणं चतुर्थम् ॥ ४ ॥

अर्थ-श्रीविक्रमादित्य संवत् १९५२ में मार्गशिरशुक्ला नवमी ९ तिथिके दिन यह ग्रंथ समाप्त किया है ॥ ६० ॥

इति वेरीनगरनिवासि-द्विजशालग्रामात्मज-बुधवसतिरामविरचितस्त्रीचिकित्सायां संकीर्ण नाम चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम् ॥

इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥

खतर्कगोभूमितविक्रमाब्दे ।
शुक्ले नभोमासि सुरारितिथ्याम् ॥
श्रीदेवकीनन्दनसूनुनाऽयं ।
संशोधितः श्रीरघुवंशनाम्ना ॥ १ ॥

(समाप्तोऽयं ग्रन्थः)

जाहिरात.

औषधिप्रकाश-(व्याधिहरण) भाषावार्तिक.

लीजिये महाशयो ! लीजिये ! लीजिये ! ! यह वैद्यकका एकही अनूठा ग्रंथ लीजिये ! जिसके देखते देखते मनहरण होताहै. बांचते बांचते तृप्ति नहीं होती. कुछ काल देखनेसे अल्पज्ञ पुरुषभी भली भाँति चिकित्सा करसक्ता है. ऐसा यह एकही ग्रंथ है. इसमें ग्रंथकर्तानें मनुष्यमात्रके उपकारार्थ अपनी जानी व अजमा कर मानी हुई या गुरुमुखसे सुनी हुई, वाग्भटादि ग्रंथोंसे चुनी हुई, यूनानी हिकमतसे गुनी हुई. अनेक दवाइयां लिखी हैं. और अरबी, फारसी तथा हिन्दी भाषामें औषधियोंके नाम व गुण भली प्रकार दर्शाये हैं. यह एकही ग्रंथ देखनेसे यूनानी व मिसरानी चिकित्सा बखूबी जानसक्ते हैं. विशेष लिखनेसे क्या ? एकवार देखेनेसे आपही जानोगे. की. ॥~) डा. ~)

रसराजमहोदय (रसायनग्रंथ) सुललित गद्यपद्यों०

पाठकगण ! यह ग्रंथ अपार परिश्रम करके वाग्भट, सुश्रुत, चरक आदि अनेक प्राचीन अर्वाचीन आयुर्वेद ग्रंथोंके आश्रयसे बनाया गया है. और इसमें संत महात्माओंकी जड़ी बूटी यूनानी इस प्रकारके यंत्र, मंत्र, तंत्र, सोना, चांदी,हीरा मोती, पन्ना आदि जवाहिर बनानेकी विधि, विविध रसपाकादि बनानेकी विधि, तथा नीली काली, पीली, सोनेरी, स्याही बनानेकी

विधि, इत्यादि विषय भलीभाँति वर्णित् हैं. यहांतक कि यावत् वैद्यकका विषय है, कुछभी छोड़ा नहींगया. बहुत क्या लिखें ? ऐसा ग्रंथ आजतक कहीं नहीं छपा. की. ॥।) डा. ≡)

स्मार्तधर्मेन्दु-भाषाटीका.

यहभी धर्मशास्त्रका एक अपूर्व ग्रंथ है. इसमें प्रद त्रिंशत् स्मृतियोंका सार भली प्रकार वर्णित है. यहांतक कि धर्मशास्त्रका यावत् विषय है, सो कुछभी छोड़ा नहीं. यह ग्रंथ सब वर्णाश्रम संप्रदायवाले पुरुषोंका अतीव उपयोगी है. इस्की प्रशंसा कहांतक वर्णन करें ? देखनेसेही मालूम पड़ेगा. इस भाँति यह अमूल्य होनेपरभी इस्का मूल्य स्वल्पही रक्खा है. की. ॥) डा. ≈)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

HARIPRASAD BHAGIRATHJI,
KALKADEVI ROAD, RAMWADI,
BOMBAY.

हरिप्रसाद भगीरथजीका-
पुस्तकालय, कालकादेवीरोड़-मुंबई.